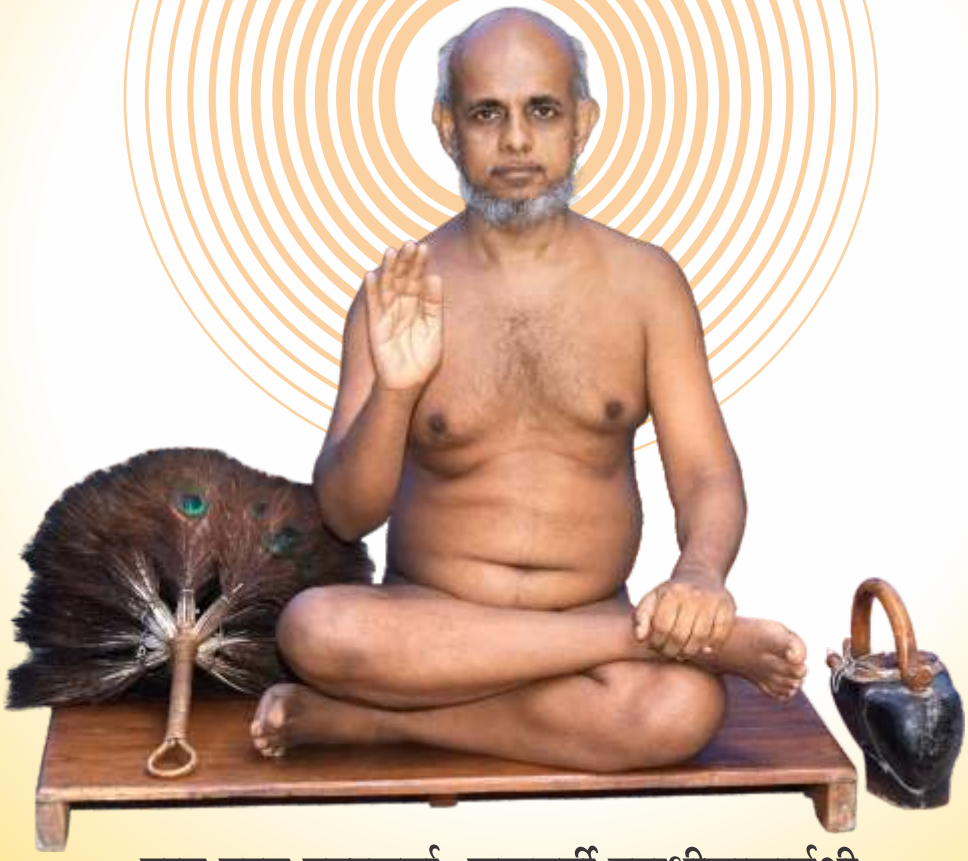

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

गोम्मटसार- जीवकाण्ड

(प्रथम भाग)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

द्वयटीका
कर्णाटकवृत्ति और जीवतत्त्वप्रदीपिका

सम्पादक-अनुवादक
डॉक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ

(परम्परानायक)

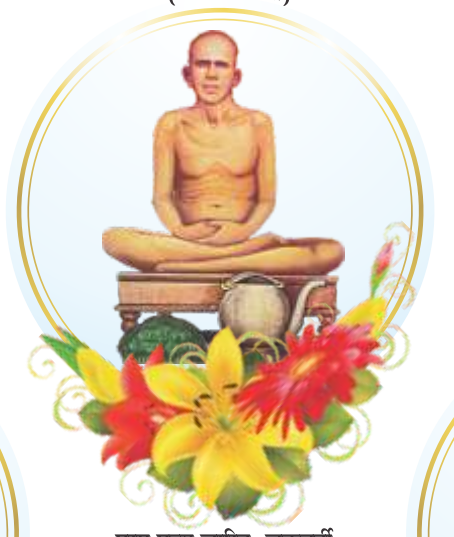

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

भाग-१

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

गोम्मटसार

जैन-धर्म के जीवतत्त्व और कर्मसिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या करनेवाला महान् ग्रन्थ है 'गोम्मटसार'। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (दसवीं शताब्दी) ने इस वृहत्काय ग्रन्थ की रचना 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' और 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' के रूप में की थी। डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से सन् 1978-1981 में प्राकृत मूल गाथा, श्रीमत् केशववर्णी विरचित कर्णाट-वृत्ति जीवतत्त्व-प्रदीपिका संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत प्रस्तावना के साथ पहली बार चार वृहत् जिल्दों (गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग 1,2 और गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग 1,2) में प्रकाशित हुआ था। और अब जैन धर्म-दर्शन के अध्येताओं एवं स्वाध्याय-प्रेमियों को समर्पित है ग्रन्थ का यह एक और नया संस्करण।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती रचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

प्रथम भाग

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक—१४

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती रचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

प्रथम भाग

[श्रीमत्केशववर्णी विरचित कर्णाटवृत्ति, संस्कृत टीका जीवतत्त्वप्रदीपिका,
हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावना सहित]

सम्पादन एवं अनुवाद
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ

तृतीय संस्करण : २००० □ मूल्य : २०० रु.

ISBN 81-263-0505-3 (Set)
81-263-0506-1

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण 9; वीर नि. सं. 2470; विक्रम सं. 2000; 18 फरवरी 1944)

पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की स्मृति में
साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की ग्रन्थसूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक : (प्रथम संस्करण)
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : नागरी प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA : Prakrit Grantha No.14

GOMMAṬASĀRA

(JĪVAKĀṆḌA)

of

ACHARYA NEMICHANDRA SIDDHANTA-CHAKRAVARTI

PART I

[With Karṇāṭa-vṛtti, Sanskrit Tīkā Jīvatattvapradīpikā,
Hindi Translation & Introduction]

by

Dr. A. N. Upadhye
Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

BHARATIYA JNANPITH

Third Edition : 2000 □ Price : Rs. 200

ISBN 81-263-0505-3 (Set)
81-263-0506-1

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9; Vira N. Sam. 2470; Vikrama Sam. 2000; 18th Feb. 1944)

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

FOUNDED BY

Sahu Shanti Prasad Jain

In memory of his illustrious mother Smt. Moortidevi

and

promoted by his benevolent wife

Smt. Rama Jain

In this Granthamala critically edited jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc. are being published in original form with their translations in modern languages. Also being published are catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies on art and architecture by competent scholars and also popular Jain literature.

•

General Editors : (First edition)

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

Dr. Jyoti Prasad Jain

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

Printed at : Nagri Printers, Navcen Shahdara, Delhi-110 032

© All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

GENERAL EDITORIAL

(Second Edition)

GOMMAṬSĀRA, composed in Prakrit, is a potential work in the metaphysico-ontological literature of the Jains. For about a thousand years, it has succeeded in holding the field as the most popular and handy work on the subject. The major part of Gommaṭasāra is based on Ṣatkhaṇḍāgama and its commentaries. This important work was composed by Nemichandra Siddhanta-chakravarti in 978 A.D. It is divided into two parts as Jīvakāṇḍa consists of 734 gāthās. It is a good introduction in the style of Mathematics to the great element Jīva or Soul. "Know Thyself" has been the percept and practice of all sincere seekers after the truth about soul. Jainism is an uncompromising apotheosis of knowledge. There is no knowledge or knowing ability without soul. There are infinite souls. Each one has infinite attributes and qualities. It is not easy to classify, analyse and describe them.

The author deals with the other way of gaining some slight and distant idea of omniscience in the Jaina theory of Numbers: such as - Saṁkhyāta (=S), Asaṁkhyāta (=A) and Ananta (=A). The details of these numbers is the subject matter of a separate book. The real character of the Jaina Mathematical idea of an innumerable number, which although innumerable is still not infinite, and the tremendous, soul - staggering extent of omniscience.

The work mainly deals with Jīva or consciousness. Conciousness is attentiveness of conation or of knowledge itself. Actually through consciousness one can know things directly without the intermediation of the senses or the mind. It is the real characteristic of life. Consciousness is the most essential difference between the Living and the Non-Living. Further the Living have and the Non-Living do not have the ten vitalities of the five senses; the power of mind, speech and body; respiration and age. The other distinction is attentiveness of consciousness to four kinds of conation—Ocular, Non-Ocular, Visual and Perfect; and to eight kinds of knowledge—sensitive, scriptural, and visual of the right and as well as the wrong kind; Mental and perfect of the right kind only. Thus, conciousness is as such purely itself, that is quite separate from matter which is unconscious and lifeless. The human being has all the five senses fully developed and distinct, and a mind also which is made of subtle matter called Manovargaṇā or mental matter.

The author deals with certain topics like simple equations, quadratic equations Varga (square), Ghana (cube), Varga-Varga (square of square or biquadratic equations), Vikalpa (abstraction of permutation and combination), place value notation, numeral systems, sequences (especially of diadic type) and progressions (arithmetical and geometrical), mensuration (dealing with circles, cylinders, cones, pyramids, prisms and their frusta) and symbolism etc. which are common in various ancient Jaina canonical scriptures.

The present edition is a well-edited version of the text and has Sanskrit, Kannada, Hindi commentaries as well.

Humbly I pay my tribute to the meticulous editior of this classic work of cosmology, namely, late Pt. Kailash Chandra Siddhāntācārya, who, being my revered Guru, was also a general editor of the Mūrtidevī Granthamālā. I would, with the same gesture, pay my tribute to the illustrious scholars, Dr. Hiralal Jain, Dr. A.N. Upadhye and Dr. Jyoti Prasad Jain, who, as general editors of the Mūrtidevī Granthamālā, have immensely contributed to the Bharatiya Jnanpith. Also, it is my first and foremost duty to pay my humble homage to the late lamented couple, Sahu Shanti Prasad Jain and Smt. Ramarani who had been the pivot of diverse progressive expeditions of literary pursuits at national level and whose mission is competently carried on by their worthy son, Shri Sahu Ashok Kumar Jain. Let me also thank Sahu Ramesh Chandra Jain, Trustee, Hony. Director Shri Dinesh Misra, my seniors and colleagues in the office who have enabled me to take up this tedious job.

Devendra Kumar Shastri
Dy. Director (Research)

Bharatiya Jnanpith, New Delhi
2nd March, 1997

आद्य वक्तव्य

(प्रथम संस्करण)

सम्भवतया सन् १९६४ या ६५ की बात है। डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने मेरे पास केशववर्णी की कन्नड़ टीका की नागराक्षरों में लिखित 'गोम्मटसार' टीका के प्रारम्भ के कुछ पृष्ठ भेजे और उसकी संस्कृत टीका के आधार पर उसका हिन्दी अनुवाद करने की प्रेरणा की। मैंने अनुवाद प्रारम्भ किया, किन्तु वह रोक देना पड़ा; क्योंकि कन्नड़ टीका के शोधन के लिए प्राचीन कन्नड़ भाषा के जानकार विद्वान् की प्राप्ति नहीं हो सकी। इसी से उसका सब कार्य रुका रहा। मैं उनको बार-बार लिखता रहा कि जीवन का कोई भरोसा नहीं है। हम दोनों ही वयोवृद्ध हो चुके हैं। यदि हम लोगों के रहते हुए 'गोम्मटसार' की मूल कन्नड़ टीका का प्रकाशन नहीं हुआ, तो फिर इसका प्रकाशन नहीं हो सकेगा। किन्तु डॉ. उपाध्ये तो सम्पादन कला के आचार्य थे। जब तक उनका मन न भरे, तब तक वह कैसे उस कार्य में आगे बढ़ सकते थे। जब उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, तो उन्होंने स्वयं इस कार्य को हाथ में लिया और मुझे अनुवाद कार्य करते रहने की प्रेरणा की। उनका सुझाव था कि मैं कार्बन लगाकर बालपेन से अनुवाद की दो प्रतियाँ तैयार करूँ। एक प्रति हम अपने पास रखेंगे और एक प्रेस में दे देंगे। तदनुसार मैंने कार्बन लगाकर अनुवाद की दो प्रतियाँ तैयार कीं।

अन्तिम बार उनसे दिल्ली में भेंट हुई। तब बोले थे कि अब मैं मैसूर विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर रहा हूँ। उसके पश्चात् हम मिलकर इसका सम्पादन करेंगे। मैं कनड़ी देखूँगा, आप संस्कृत देखना। इस तरह दोनों का मिलान करके इसे प्रेस में देंगे। किन्तु उन्होंने तो जीवन से ही अवकाश ले लिया और उसके प्रकाशन का सब भार मेरे ऊपर आ गया। हिन्दी अनुवाद तैयार था, किन्तु कनड़ी भाषा मेरे लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' थी।

डॉ. उपाध्ये इसका प्रकाशन जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर से करना चाहते थे। उनके स्वर्गगत हो जाने के पश्चात् ग्रन्थमाला के मन्त्री सेठ बालचन्द देवचन्द शाह की प्रेरणा और पूज्य आचार्य श्री समन्तभद्रजी महाराज के आदेश से ग्रन्थमाला सम्पादन का भार भी मुझे ही वहन करना पड़ा, तो कन्नड़ टीका के प्रकाशन पर विचार हुआ। जीवराज ग्रन्थमाला ने डॉ. उपाध्ये के समस्त लेखों का एक संकलन प्रकाशित करने का भार लिया। अतः उसे अपने सीमित साधनों से 'गोम्मटसार' की कन्नड़ टीका के प्रकाशन का भार लेना कठिन प्रतीत हुआ।

उसी समय बाहुबली (कुम्भोज) में उपस्थित विद्वानों के सम्मुख, जब कन्नड़ टीका के प्रकाशन की बात आयी, तो सबका यही कहना था कि उसे कौन समझ सकेगा। अतः उसके साथ में उसका संस्कृत रूपान्तर देने का भी विचार हुआ। इससे ग्रन्थ का परिमाण दूना हो गया और व्यय-भार भी बढ़ गया। आचार्य महाराज आदि की भावना हुई कि भारतीय ज्ञानपीठ इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व लेवे। मैं उसकी मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला का भी सम्पादक हूँ। अतः मैंने तत्काल भारतीय ज्ञानपीठ के मन्त्री बाबू लक्ष्मीचन्द्र जी को लिखा। उनकी तार से स्वीकृति प्राप्त हुई। और इस तरह भारतीय ज्ञानपीठ के सन्मति मुद्रणालय से इसका प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ। कन्नड़ भाषा के नागराक्षरों का कम्पोजिंग उत्तर भारत में कैसे हो सकेगा, प्रूफ देखने की व्यवस्था कैसे हो सकेगी, ये सब चिन्ता करने वाला मैं एकाकी व्यक्ति था। किन्तु सन्मति मुद्रणालय के व्यवस्थापक, प्रूफनिरीक्षक और कुशल कम्पोजीटर श्री महावीरप्रसाद ने मेरी सब चिन्ताएँ दूर कर दीं और मुद्रण कार्य बिना किसी बाधा के चालू है।

कन्नड़ भाषा का प्रूफ शोधन केवल प्रेस कापी के आधार पर किया गया है। कन्नड़ भाषा का परिज्ञान न होने से पदविच्छेद आदि भी तदनुसार ही किया गया है। यदि उसमें कुछ अशुद्धियाँ हों, जो अवश्य हो सकती हैं, तो कन्नड़विज्ञ पाठक हमें क्षमा करेंगे।

कन्नड़ की प्रेसकापी कब, किसने, किस मूल प्रति के आधार पर की; यह भी हमें ज्ञात नहीं है; जीवकाण्ड की प्रेसकापी के अन्त में 'लेखक—एन्. चन्द्र राजेन्द्र विशारद ता. १-६-१९६५ मंगलवार' लिखा है। प्रेसकापी इतने सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है कि लेखक की लेखनी चूमने की इच्छा होती है। हमारा उन्हें साधुवाद है।

संस्कृत टीका के लिए हमने कलकत्ता संस्करण में मुद्रित पाठ को ही अपनाया है। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के अकलंक सरस्वती भवन की एक हस्तलिखित प्रति से उसका मिलान अवश्य किया है। 'ब' नाम से टिप्पण में उसी के पाठान्तर दिये हैं। उसमें कुछ ऐसे अंश भी मिले जो मुद्रित में नहीं हैं, छपने से छूट गये हैं। उन्हें सानुवाद पूर्ण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद पं. टोडरमलजी की टीका का शब्दशः रूपान्तर तो नहीं है, किन्तु हमने यथाशक्ति उसका अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। उसमें हमारा अपना कुछ भी कृतित्व नहीं है। जो कुछ है वह पं. टोडरमलजी साहब की ही देन है। हाँ, त्रुटियों के लिए यदि कोई उत्तरदायी है, वह इन पंक्तियों का लेखक है। उसने केवल अपने मित्र डॉ. उपाध्ये की शुभभावना से प्रेरित होकर ही उनके द्वारा छोड़े गये इस महान् उत्तरदायित्व को वहन किया है। आशा है अपनी भावना की इस आंशिक पूर्ति से उनकी स्वर्गगत आत्मा को प्रसन्नता होगी।

कलकत्ता से प्रकाशित संस्करण के बहुत समय से अनुपलब्ध होने से 'गोम्मटसार' जैसे ग्रन्थराज के एक महान् संस्करण का अभाव खटकता था। स्व. डॉ. उपाध्ये इसके प्रकाशन से उसकी भी पूर्ति करना चाहते थे। डॉ. उपाध्ये ने ही केशववर्णी की कन्नड़ टीका के अस्तित्व का उद्घाटन किया था, अन्यथा तो सब संस्कृत टीका को ही उनकी मानते थे। उन्होंने यदि बीड़ा न उठाया होता, तो कन्नड़ टीका कभी प्रकाश में नहीं आ सकती थी। और नागराक्षरों में उसका परिवर्तन तो असम्भव ही था।

अन्त में हम बाहुबली विद्यापीठ के श्री शास्त्रीजी को सर्वप्रथम धन्यवाद देते हैं। उनका नाम हमें स्मरण नहीं है। वे सिद्धान्तज्ञ होने के साथ प्राचीन कन्नड़ के भी ज्ञाता हैं। टीका के प्रारम्भिक कन्नड़ पद्यों का हिन्दी अनुवाद उन्होंने ही किया है और प्रेसकापी का शोधन भी किया है। बाहुबली विद्यापीठ के संचालक श्री पं. माणिकचन्दजी भिसीकर गुरुजी से भी बराबर सहयोग मिलता है। आचार्य श्री समन्तभद्रजी महाराज का शुभाशीर्वाद और सेठ बालचन्द देवचन्द शाह का सहयोग तो हमें प्राप्त है ही।

भारतीय ज्ञानपीठ के मन्त्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी, डॉ. गुलाबचन्द्रजी तथा सन्मति मुद्रणालय का सब परिवार धन्यवाद का पात्र है। खेद है कि साहू शान्तिप्रसादजी आज उपस्थित नहीं हैं। उन्हीं की प्रेरणा से ज्ञानपीठ ने इस महत् भार को उठाया था। उन्हें हम सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

सिद्धान्तसेवक
कैलाशचन्द्र शास्त्री

ऋषभ जयन्ती
वि. सं. २०३४

प्रस्तावना

प्रथम संस्करण से

पूर्वों का महत्त्व

भगवान् महावीर की वाणी या जिनवाणी को द्वादशांगवाणी भी कहते हैं, क्योंकि भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गौतम गणधर ने उसे बारह अंगों में निबद्ध किया था। इन बारह अंगों में अन्तिम दृष्टिवाद नामक अंग सबसे विशाल था। उसके पाँच भेदों में-से एक भेद पूर्व था और पूर्व के चौदह भेद थे। इन पूर्वों का महत्त्व विशेष था। आचार्य कुन्दकुन्द[1] ने अपने बोधपाहुड के अन्त में श्रुतकेवली भद्रबाहु का जयघोष करते हुए उन्हें बारह अंगों और चौदह पूर्वों का ज्ञाता कहा है। इसी तरह आचार्य यतिवृषभ[2] ने भी भगवान् महावीर के पश्चात् हुए पाँच श्रुतकेवलियों को 'चउदसपुव्वी' और बारस अंगधर कहा है। इन दोनों आचार्यों के द्वारा बारह अंगधर के साथ चउदसपुव्वी का पृथक् उल्लेख बतलाता है कि द्वादशांगवाणी में पूर्वों का कितना महत्त्व था। जो पूर्वों का ज्ञाता होता था, वह ग्यारह अंगों का ज्ञाता होता ही था। सम्भवतया ग्यारह अंगों के पश्चात् ही पूर्वों का ज्ञान दिया जाता था।

'षट्खण्डागम' के वेदनाखण्ड के कृति अनुयोग द्वार के प्रारम्भ में सूत्रकार भूतबली ने 'णमो जिणाणं' आदि ४४ सूत्रों से मंगल किया है। उसमें एक सूत्र है—'णमो दस पुव्वियाणं'। इस सूत्र की धवला टीका में लिखा है कि ग्यारह अंगों को पढ़कर पश्चात् दृष्टिवाद को पढ़ा जाता था। तथा चौदह पूर्वों का धारी उस भव में मिथ्यात्व और असंयम को प्राप्त नहीं होता। श्वेताम्बर परम्परा में भी यद्यपि स्त्री मुक्ति प्राप्त कर सकती है, किन्तु उसे दृष्टिवाद को पढ़ने का अधिकार नहीं है। अतः श्वेताम्बर परम्परा में भी दृष्टिवाद का विशेष महत्त्व रहा है। उसी के भेद पूर्व हैं।

आज जो 'षट्खण्डागम' और 'कसायपाहुड' नामक सिद्धान्त ग्रन्थ हैं जो अपनी धवला और जयधवला नामक टीका के नाम पर धवल और जयधवल नाम से ख्यात हैं, वे पूर्वों के ही अवशिष्ट अंश हैं। 'कसायपाहुड' के रचयिता गुणधर भट्टारक ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्व की दसवीं वस्तु सम्बन्धी तीसरे कषायप्राभृत के पारगामी थे। उन्होंने सोलह हजार पदप्रमाण 'पेज्जदोस पाहुड' को एक सौ अस्सी गाथाओं में उपसंहृत करके उसे कसायपाहुड नाम दिया। दूसरे आचार्य धरसेन 'महाकर्म प्रकृति प्राभृत' के ज्ञाता थे। उन्होंने भूतबली पुष्पदन्त को समस्त 'महाकर्मप्रकृति प्राभृत' पढ़ाया और भूतबली पुष्पदन्त ने 'महाकर्मप्रकृति प्राभृत' का उपसंहार करके 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की रचना की। वीरसेन स्वामी के अनुसार दूसरे अग्रायणी पूर्व के अन्तर्गत चौदह वस्तु अधिकारों में चयन लब्धि नामक पाँचवाँ वस्तु अधिकार है। उसमें बीस प्राभृत हैं। उनमें चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृति है। उसके भी चौबीस अनुयोगद्वार हैं। उन्हीं से 'षट्खण्डागम' का उद्गम हुआ है। इस तरह द्वादशांगवाणी में पूर्वों के कुछ अंश आज सिद्धान्त ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध हैं और वे प्रायः जीव और कर्म के वर्णन से सम्बद्ध हैं।

---

१. बारस अंग वियाणं चउदसपुव्वंग विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहु गमयगुरू भगवओ जयउ ॥६२॥ बोधपा.।

२. पंच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगम्मि विक्खादा।
ते बारस अंगधरा तित्थे सिरि वड्ढमाणस्स ॥१४८३॥—ति. प., अ. ४।

कर्मसिद्धान्त

जैन साहित्य में कर्मसिद्धान्त विषयक साहित्य का महत्त्व रहा है और उस महत्त्व का कारण है—जैन धर्म में कर्मसिद्धान्त का चलन होना। जैनधर्म आत्मा को अनादि-अनिधन स्वतन्त्र द्रव्य स्वीकार करता है। जैन दर्शन में केवल छह द्रव्य माने गये हैं—जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और काल। किन्तु यह संसार केवल जीव और पुद्गल द्रव्यों के मेल का ही खेल है। शेष चार द्रव्य तो उसमें निमित्तमात्र हैं। ये छहों द्रव्य नित्य और अवस्थित हैं। न इनका कभी विनाश होता है और न ये कभी कमती-बढ़ती होते हैं। छह के छह ही सदा रहते हैं। उनमें-से धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक हैं। जीव अनन्त हैं और पुद्गल उनसे भी अनन्तगुणे हैं। पुद्गलद्रव्य में पृथिवी, जल, आग, वायु चारों तत्त्व गर्भित हैं। पुद्गलद्रव्य तेईस वर्गणाओं में विभाजित है। उनमें-से पाँच वर्गणाएँ ऐसी हैं जो जीव के द्वारा, आहारादि के रूप में ग्रहण की जाती हैं। उन्हीं से, उसका शरीर आदि बनता है। उन वर्गणाओं में एक कार्मण वर्गणा भी है जो समस्त लोक में व्याप्त है। जीव के कायिक, वाचनिक और मानसिक परिस्पन्द का निमित्त पाकर यह कार्मणवर्गणा जीव के साथ सम्बद्ध हो जाती है और उसका विभाजन आठ कर्मों के रूप में होता है। इसी का नाम कर्मबन्धन है। जीव के क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषाय भावों के अनुसार उन कर्मों में स्थिति और अनुभागबन्ध होता है। जैसी तीव्र या मन्द कषाय होती है, तदनुसार ही कर्मपुद्गलों में तीव्र या मन्द स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है। कर्म बँधने पर जितने समय तक आत्मा के साथ बद्ध रहते हैं, उसे स्थितिबन्ध कहते हैं, और कर्म में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति को अनुभागबन्ध कहते हैं। जीव के भावों का निमित्त पाकर कर्म स्वयं बँधता है और अपना फल स्वयं देता है।

इस तरह जीव और कर्मपुद्गलों के बन्धन का नाम संसार और उस बन्धन से छुटकारे का नाम मोक्ष है जो जैनधर्म का अन्तिम सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। इससे जैनधर्म में कर्मसिद्धान्त का महत्त्व अन्य दर्शनों से अधिक है। अन्य दर्शनों में तो केवल कर्म को संस्कार के रूप में माना गया है तथा उनका फलदाता ईश्वर को माना गया है। किन्तु जैनदर्शन में कर्मफलदाता ईश्वर नहीं है। जीव स्वयं ही कर्मों को बाँधता है, स्वयं कर्म उसे अपना फल देते हैं और जीव अपने पुरुषार्थ से ही कर्मबन्धन से छूटता है। इसके लिए मुमुक्षु जीव को जहाँ अपना स्वरूप जानना आवश्यक है, वहाँ कर्मबन्धन से बचने के लिए कर्मसिद्धान्त की प्रक्रिया को भी जानना आवश्यक है। इसी से जैन सिद्धान्त में कर्मसिद्धान्त का महत्त्व अत्यधिक है; क्योंकि जीव के आरोहण और अवरोहण का उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्वबद्ध कर्म के उदय के अनुसार जीव के राग-द्वेषरूप भाव होते हैं और राग-द्वेषरूप भावों के अनुसार ही जीव नवीन कर्मबन्धन से बँधता है। यही संसार है। इसी से छुटकारा पाना है। सिद्धान्तग्रन्थ मुख्य रूप से इसी जीव और कर्मविषयक चर्चा से सम्बद्ध हैं।

षट्खण्डागम का महत्त्व

ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों में-से 'कसायपाहुड' की अपेक्षा 'षड्खण्डागम' का प्रचलन विशेष रहा है। इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में षट्खण्डागम की रचना को प्रथम स्थान दिया है और उस पर रची गयी टीकाओं की एक लम्बी सूची दी है। अन्तिम टीकाकार वीरसेन स्वामी थे। उन्होंने भी प्रथम षट्खण्डागम पर ही धवला नामक टीका रची। पश्चात् कसायपाहुड पर जयधवला नामक टीका रची, जिसे वह अपूर्ण ही छोड़कर स्वर्गवासी हुए और उसे उनके शिष्य जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया।

धवला-जयधवला टीका रचे जाने के बाद भी षड्खण्डागम का ही प्रचलन विशेष रहा प्रतीत होता है। उसी के अध्ययन को लेकर सिद्धान्तचक्रवर्ती नामक उपाधि प्रवर्तित हुई; क्योंकि जो भरतक्षेत्र के छह खण्डों को जीतता था वह चक्रवर्ती कहा जाता था। षट्खण्डागम के भी छह खण्ड थे, अतः जो उनकी निर्विघ्न साधना

करता था, वह सिद्धान्तचक्रवर्ती कहाता था। गोम्मटसार कर्मकाण्ड में उसके रचयिता नेमिचन्द्राचार्य ने एक गाथा[1] के द्वारा इस बात को स्पष्ट लिखा है कि जैसे चक्रवर्ती अपने चक्ररत्न के द्वारा भरत के छह खण्डों को बिना विघ्न-बाधा के साधित करता है, उसी प्रकार मैंने अपने बुद्धिरूपी चक्र के द्वारा सिद्धान्त के छह खण्डों को साधा है।

षट्खण्डागम को लेकर सिद्धान्तचक्रवर्ती का विरुद कब, कैसे, किसने प्रचलित किया, यह ज्ञात नहीं होता। वीरसेन स्वामी और उनके गुरु एलाचार्य दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे और वीरसेन स्वामी ने तो दोनों पर विशाल टीका ग्रन्थ रचे थे। उनके समय तक इस उपाधि का कोई संकेत नहीं मिलता। उनकी धवला, जयधवला के रचे जाने के पश्चात् ही इस उपाधि की चर्चा मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन टीका ग्रन्थों के निर्माण के पश्चात् इनके पठन-पाठन की विशेष प्रवृत्ति हुई और तभी से सिद्धान्तचक्रवर्ती का विरुद प्रवर्तित हुआ। इस तरह उत्तरकाल में भी षट्खण्डागम का विशेष महत्त्व रहा है और षट्खण्डागम ने अपनी टीका धवला के कारण ही विश्रुति पायी है तथा दोनों ही सिद्धान्त ग्रन्थ अपने-अपने मूल नाम को छोड़कर धवल और जयधवल नाम से ही विश्रुत हुए। अपभ्रंश महापुराण के रचयिता पुष्पदन्त ने उनका उल्लेख इन्हीं नामों से किया है। यथा–'सिद्धंतु धवलु जयधवलु णाम'। इन्हीं धवल-जयधवल सिद्धान्तों का अवगाहन करके आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार नामक ग्रन्थ को निबद्ध किया था।

गोम्मटसार-नाम

गोम्मटसार–नाम का प्रथम पद 'गोम्मट' सुनने में कुछ विचित्र-सा लगता है। यह शब्द न तो संस्कृत भाषा के कोशों में मिलता है और न प्राकृत भाषा के। अतः यह शब्द विद्वानों के विवाद का विषय रहा है। इस गोम्मट नाम से ही श्रवणबेलगोला में गंगनरेश राममल्ल के प्रधानमन्त्री और सेनापति चामुण्डराय के द्वारा स्थापित बाहुबली की उत्तुंग मूर्ति भी विश्रुत है। उसे भी गोम्मटस्वामी या गोम्मटजिन कहते हैं। मूल रूप से ये दो ही वस्तु ऐसी हैं जो गोम्मट नाम से व्यवहृत होती हैं। उसी मूर्ति के अनुकरण पर जो अन्य मूर्तियां कारकल और वेणूर में निर्मित हुईं, वे भी गोम्मट के नाम से ही व्यवहृत हुईं।

इस गोम्मट नाम के सम्बन्ध में एक लेख श्री गोविन्द पै का "जैन सिद्धान्त भास्कर", आरा, जिल्द ४, पृ. १०२-६ में प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि बाहुबली कामदेव होने के कारण मन्मथ कहे जाते थे, जिसका कनडी में गोम्मट एक तद्भव रूप है, जिसे मराठी से लिया गया है।

इसके बाद डॉ. ए. एन. उपाध्ये के भारतीय विद्या (जि. २, भाग १) में प्रकाशित अनुसन्धानपूर्ण लेख का हिन्दी अनुवाद अनेकान्त वर्ष ४ की किरण तीन और चार में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक है–गोम्मट। इसमें विद्वान् लेखक ने सभी मतों की समीक्षा करते हुए जो प्रमाण अपने मत के समर्थन में दिये; उनसे यह विवाद दूर हो गया और उसके पश्चात् किसी का भी कोई लेख इसके विरोध में हमारे देखने में नहीं आया। उस लेख का सारांश यहाँ दिया जाता है।

ग्रन्थ के निर्माण में निमित्त चामुण्डराय-गोम्मट

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि 'गोम्मट' नाम से व्यवहृत मूलतः दो वस्तुएँ हैं–एक गोम्मटसार नामक ग्रन्थ और दूसरी श्रवणबेलगोला के विन्ध्यगिरि पर्वत पर स्थापित बाहुबली की उत्तुंग मूर्ति और इन दोनों का सम्बन्ध जिस एक व्यक्ति से है वह है–गंग साम्राज्य का प्रधानमन्त्री और सेनापति चामुण्डराय। चामुण्डराय ने ही उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठाविधि आदि करायी थी। तथा गोम्मटसार के टीकाकार अभयचन्द्र, केशववर्णी और

1. जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥ कर्मकाण्ड अ. 1, गा. 39

नेमिचन्द्र अपने प्रारम्भिक कथन में लिखते हैं कि नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने अनेक उपाधिधारी चामुण्डराय के लिए प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ के आधार पर गोम्मटसार ग्रन्थ रचा।

नेमिचन्द्र और चामुण्डराय समकालीन थे तथा मूर्ति की स्थापना और गोम्मटसार का संकलन भी प्रायः समकालीन घटनाएँ हैं। इसलिए गोम्मट का जो भी अर्थ लगाया जाये, वह मूर्ति तथा उक्त प्राकृत ग्रन्थ के नाम के साथ में संगत होना चाहिए। क्योंकि चामुण्डराय का सम्बन्ध बेलगोला की मूर्ति के साथ भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार उक्त ग्रन्थ के साथ है।

यदि हम गोम्मटसार की कुछ अन्तिम गाथाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ें, तो एक बात निर्विवाद सिद्ध है कि चामुण्डराय का—जो वीर मार्तण्ड की उपाधि से शोभित थे, एक नाम गोम्मट था और वे गोम्मटराय भी कहे जाते थे। नेमिचन्द्र ने ओजपूर्ण शब्दों में उनकी विजय की भावना की है। जैसा कि निम्न दो गाथाओं से प्रकट है—

अज्जज्जसेण गुणगणसमूह संधारि अजियसेण गुरू।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयउ ॥७३३॥ —जीवकाण्ड
जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो रओ गोम्मटो जयऊ ॥९६९॥ —कर्मकाण्ड

इनमें पहली गाथा जीवकाण्ड की और दूसरी कर्मकाण्ड की है। पहली में कहा है कि वह राय गोम्मट जयवन्त हों, जिनके गुरु वे अजितसेन गुरु हैं जो भुवनगुरु हैं। दूसरी गाथा में कहा है कि वह राजा गोम्मट जयवन्त हों, जिनकी निर्माण करायी हुई प्रतिमा (बाहुबली की मूर्ति) का मुख सर्वार्थसिद्धि के देवों और सर्वावधि तथा परमावधि के धारक योगियों के द्वारा देखा गया है।

इस समकालीन साक्षी के सिवाय ई. सन् ११८० के एक शिलालेख[1] से ज्ञात होता है कि चामुण्डराय का दूसरा नाम गोम्मट था।

डॉ. उपाध्ये इसे चामुण्डराय का घरेलू नाम बतलाते हैं। और लिखते हैं—कि बाहुबली को प्राचीन जैन साहित्य में गोम्मटेश्वर नहीं कहा गया है तथा यह शब्द केवल बेलगोला की मूर्ति की प्रतिष्ठा के बाद ही व्यवहार में आया है—इन बातों को स्मृति में रखते हुए यह बात आसानी से विश्वास किये जाने योग्य हो जाती है कि यह मूर्ति गोम्मटेश्वर के नाम से इसलिए प्रसिद्ध हुई; क्योंकि इसे चामुण्डराय ने, जिसका दूसरा नाम गोम्मट था, बनवाकर स्थापित किया था। गोम्मटेश्वर का अर्थ होता है—'गोम्मट के देवता'। इसी तरह गोम्मटसार नाम इसलिए दिया गया, क्योंकि वह धवलादि ग्रन्थों का सार था, जिसे नेमिचन्द्र ने गोम्मट चामुण्डराय के लिए तैयार किया था। जब एक बार बेलगोला की मूर्ति का नाम गोम्मटेश्वर पड़ गया, तो धीरे-धीरे यह नाम कर्मधारय समास के तौर पर (गोम्मटश्चासौ ईश्वरः) समझ लिया गया। और बाद में बाहुबली की दूसरी मूर्तियों के लिए भी व्यवहृत हुआ।

आगे डॉ. उपाध्ये ने अनेक प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि भारत की आधुनिक भाषाओं में मराठी ही ऐसी भाषा है जिसमें यह शब्द प्रायः व्यवहृत हुआ है।

इस तरह डॉ. उपाध्ये के निष्कर्ष के अनुसार गोम्मट चामुण्डराय का व्यक्तिगत नाम था, चूँकि उन्होंने बाहुबली की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी थी, इसलिए वह मूर्ति गोम्मटेश्वर कहलाने लगी और अन्त में नेमिचन्द्र ने जो धवलादिका सार तैयार किया, वह गोम्मटसार कहलाया। अक्षरशः गोम्मट का अर्थ है—उत्तम आदि। (यह डॉ. उपाध्ये के लेख का सार है)

किन्तु जिन आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने गोम्मटसार के अन्त में गोम्मट राजा का जयकार किया है, उन्होंने

१. देखो (I. C. II) नं. 238, पंक्ति 16 और अँगरेजी संक्षेप का पृष्ठ 98 भी।

ही 'गोम्मट' शब्द का व्यवहार दूसरे अर्थों में भी किया है। कर्मकाण्ड की अपनी अन्तिम प्रशस्ति में, जो आठ गाथाओं में निबद्ध है। सर्वप्रथम वह लिखते हैं–

गोम्मट संगह सुत्तं गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं।
कम्माण णिज्जरट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥९६५॥

इसकी संस्कृत टीका इस प्रकार है–

"इदं गोम्मटसारसंग्रहसूत्रं गोम्मटदेवेन श्रीवर्धमानदेवेन गोम्मटं
नयप्रमाणविषयं रचितम् किमर्थं? ज्ञानावरणादि-कर्मनिर्जरार्थम् ॥"

अर्थात् गोम्मटदेव श्रीवर्धमानदेव ने गोम्मट अर्थात् नय प्रमाणविषयक यह गोम्मटसार संग्रहसूत्र ज्ञानावरण आदि कर्म की निर्जरा के लिए रचा।'

इसमें श्रीवर्धमान तीर्थंकर को गोम्मटदेव कहा है तथा गोम्मट का अर्थ नयप्रमाण जिसका विषय है, ऐसा किया है। हमें टीकाकार का यह अर्थ सम्यक् प्रतीक नहीं होता; क्योंकि महावीर स्वामी कर्मों की निर्जरा के लिए कोई रचना कैसे कर सकते हैं। इसी तरह गोम्मट का अर्थ नयप्रमाणविषय भी चिन्त्य होता है

आगे लिखा है–

गोम्मट संगह सुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मिय दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥९६८॥

इसकी संस्कृत टीका में कहा है–'गोम्मट संग्रहसूत्र, चामुण्डराय के द्वारा निर्मित प्रासाद में स्थित एक हस्त प्रमाण इन्द्रनीलरत्नमय नेमीश्वर का प्रतिबिम्ब और चामुण्डराय के द्वारा विनिर्मित दक्षिणकुक्कुट जिन सर्वोत्कर्ष रूप से जयवन्त हों।'

इसमें तीन कार्यों का उल्लेख है–१ गोम्मट संग्रह सूत्र, २ गोम्मट जिन, और ३ दक्षिण कुक्कुट जिन। गोम्मट संग्रह सूत्र तो गोम्मट के लिए संग्रह किया हुआ गोम्मटसार नामक सूत्रग्रन्थ है। गोम्मट जिनसे अभिप्राय श्री नेमिनाथ की एक हाथ प्रमाण इन्द्रनील मणि से निर्मित प्रतिबिम्ब से है, जिसे चामुण्डराय ने विंध्यगिरि पर निर्मित अपने जिनालय में प्रतिष्ठित किया था। और दक्षिण कुक्कुट जिनसे बाहुबली की विशाल मूर्ति कही गयी है। इससे आगे की गाथा में इसी प्रतिमा की ऊँचाई का उल्लेख है।

जैसे पूर्व गाथा में 'गोम्मट' शब्द का व्यवहार 'गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं' रूप से किया गया है, उसी प्रकार इस गाथा में 'गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो' रूप से किया गया है। 'गोम्मटसार' गोम्मट के लिए बनाया गया, गोम्मट जिनकी रचना भी गोम्मट ने की। अतः इन दोनों को गोम्मट नाम से कहना तो उचित है। किन्तु जिस पर्वत के शिखर पर इन्द्रनीलमणि निर्मित बिम्ब रूप में विराजमान की गयी, उस विन्ध्यगिरि को 'गोम्मट' कहना तो खटकता है। हाँ, विन्ध्यगिरि पर निर्मित जिस जिनालय में वह बिम्ब विराजमान की गयी, उसे गोम्मट कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी रचना भी चामुण्डराय ने करायी थी। शायद इसी से टीकाकार ने 'गोम्मट शिखर' का अर्थ चामुण्डराय विनिर्मित प्रासाद किया है; क्योंकि यदि विन्ध्यगिरि को गोम्मट कहा जा सकता है, तो जिस चन्द्रगिरि पर गोम्मटेश्वर की उत्तुंग मूर्ति स्थापित है, उसे 'गोम्मट' न कहना असंगत प्रतीत होता है।

किन्तु आचार्य नेमिचन्द्र ने उस उत्तुंग मूर्ति का उल्लेख गोम्मट नाम से नहीं किया। वे अपने द्वारा रचित ग्रन्थ को 'गोम्मट संग्रह सूत्र' कहते हैं। चामुण्डराय को गोम्मट कहते हैं। चामुण्डराय के द्वारा निर्मित जिनालय को और उसमें स्थापित बिम्ब को 'गोम्मट' शब्द से कहते हैं, किन्तु बाहुबली की मूर्ति को गोम्मट शब्द से नहीं कहते। उसे वह दक्षिण कुक्कडजिन कहते हैं।

आचार्य नेमिचन्द्र के उल्लेखों के आधार पर यह तो निर्विवाद है कि चामुण्डराय का उल्लेख गोम्मट नाम से किया गया है और उसी के उस नामपर-से उसके द्वारा या उसके उद्देश से निर्मित वस्तुओं को भी

'गोम्मट' कहा है। किन्तु उसकी अनेक उपाधियों के साथ उसके इस नाम का कोई निर्देश देखने में नहीं आया तथा इस नाम का कोई कारण भी प्रतीत नहीं होता। अतः इस शब्द गोम्मट की स्थिति अभी भी विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'गोम्मट' शब्द जिस देशी भाषा का है, उसमें उसका कोई अन्य अर्थ अवश्य रहा है। डॉ. उपाध्ये ने अपने लेख में लिखा है कि भारत की आधुनिक भाषाओं में मराठी ही ऐसी भाषा है जिसमें यह शब्द प्रायः व्यवहृत हुआ है और अब भी इसका व्यवहार होता है। उन्होंने कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। आगे वे लिखते हैं–

'गोम्मट' शब्द मराठी में एक विशेषण है और उसका अर्थ है साफ, सुन्दर, आकर्षक, अच्छा आदि। कोंकणी भाषा में भी 'गोम्टो' शब्द है और उसका वही अर्थ है जो मराठी में है।' अन्त में वह लिखते हैं–अक्षरशः गोम्मट शब्द का अर्थ है–उत्तम, आदि।

श्रवणबेलगोला के तीन शिलालेखों में जो क्रमशः ई. सन् १११८, ११५६, ११८० के हैं और कन्नड़ भाषा में हैं–'गोम्मट' शब्द आया है। और वहाँ उनका अर्थ प्रसन्न करनेवाला या उत्तम है।

डॉ. उपाध्ये भी 'गोम्मट' शब्द के और शाब्दिक परिज्ञान के लिए अधिक अध्ययन की आवश्यकता बतलाते हैं। आचार्य नेमिचन्द्र के द्वारा प्रयुक्त 'गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं', पद से हमें भी उसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। क्योंकि उक्त वाक्य में 'गोम्मट' शब्द का प्रयोग न तो चामुण्डराय के लिए है और न उनके द्वारा निर्मित वस्तु के लिए है। उसमें कहा गया है कि गोम्मट देव ने कर्मों की निर्जरा के लिए और तत्त्वार्थ के निर्णय के लिए गोम्मट संग्रह सूत्र की रचना की है। 'गोम्मट संग्रह सूत्र' का ही विशेषण दूसरा 'गोम्मट' शब्द है, उसे प्रशंसावाचक विशेषण माना जा सकता है। किन्तु रचना करनेवाला गोम्मटदेव कौन है? जिसने कर्मों की निर्जरा और तत्त्वार्थ के अवधारण के लिए इस ग्रन्थ को रचा? ऐसा तो रचनाकार ही लिख सकता है। और रचना करनेवाले स्वयं आचार्य नेमिचन्द्र हैं? तब क्या उन्होंने अपना उल्लेख भी 'गोम्मटदेव' शब्द से किया है? आगे उन्होंने कहीं भी ग्रन्थकार के सम्बन्ध में या ग्रन्थरचना के सम्बन्ध में इस प्रकार का कथन नहीं किया है।

हाँ, आगे गा. ९६७ में वह इसका संकेत अवश्य करते हैं–

उन्होंने यह ग्रन्थ चामुण्डराय के लिए ही बनाया था; इसका उल्लेख एक रूपक के रूप में उन्होंने इस प्रकार किया है–

वह कहते हैं–

सिद्धंतुदयतडुग्गय णिम्मलवर णेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभूषणंबुहिवेला भरउ भुवणयलं ॥९६७॥

'सिद्धान्तरूपी उदयाचल के तट पर उदित निर्मल नेमिचन्द्र की किरण से युक्त गुणरत्नभूषण अर्थात् चामुण्डराय रूपी समुद्र की मतिरूपी वेला भुवनतल को पूरित करे।' सिद्धान्तरूपी उदयाचल के तट पर उदित नेमिचन्द्र स्वयं ग्रन्थकार हैं, उनके प्रताप से चामुण्डरायरूपी समुद्र की मतिरूपी वेला का प्रसार हुआ है। गुणरत्नभूषण चामुण्डराय की उपाधि थी। आचार्य नेमिचन्द्र ने 'गोम्मटसार' का मंगलाचरण करते हुए भी 'गुणरयणभूषणुदयंजीवस्स परूवणं वोच्छं' लिखकर प्रकारान्तर से चामुण्डराय का निर्देश किया है। इसी प्रकार उन्होंने 'कर्मकाण्ड' की कई मंगल[1] गाथाओं में द्व्यर्थक रूप से चामुण्डराय की उपाधियों का प्रयोग किया है। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि गोम्मटसार की रचना चामुण्डराय के लिए नेमिचन्द्राचार्य ने की है। उन्होंने अपनी दूसरी रचना

---

1. णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं ॥८७॥
णमिऊण वड्ढमाणं रूवणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ॥३५८॥
असहाय जिणवरिंदं असहायपरक्कमं महावीरं ॥३९८॥
णमिऊण णेमिणाहं सज्जणजुहिट्ठिणमंसियं विजुगं ॥४५१॥
असहाय पराक्रम, देवराज, सत्ययुधिष्ठिर, ये सब चामुण्डराय की उपाधियां हैं।

'त्रिलोकसार' भी चामुण्डराय के प्रतिबोध के लिए रची थी। यह आचार्य नेमिचन्द्र के शिष्य और 'त्रिलोकसार' की संस्कृत टीका के रचयिता माधवचन्द्र ने अपनी टीका के प्रारम्भ में स्पष्ट लिखा है। उसके मंगलाचरण में प्रयुक्त 'बलगोविन्द' का अर्थ उन्होंने बल—चामुण्डराय और गोविन्द—राचमल्लदेव भी किया है। चामुण्डराय गंगनरेश राचमल्लदेव (वि. सं. १०३१-४१) के सेनापति और मन्त्री थे।

अतः जैसे वीरसेन स्वामी ने अपने भक्त शिष्य सम्राट् अमोघवर्ष की उपाधि को उपलक्षित करके सिद्धान्त ग्रन्थों की अपनी टीकाओं को धवला-जयधवला नाम दिया, उसी प्रकार नेमिचन्द्र ने अपने भक्त शिष्य चामुण्डराय के गोम्मट नाम को उपलक्षित करके उनके निमित्त से निर्मित अपने संग्रह ग्रन्थ को गोम्मटसार नाम दिया—इसमें कोई विवाद नहीं है। किन्तु अनेक उपाधियों से भूषित चामुण्डराय के इस अप्रसिद्ध नाम 'गोम्मट' को ही क्यों इतनी महत्ता आचार्य नेमिचन्द्र ने दी, इसका कोई हेतु स्पष्ट नहीं होता। स्वयं चामुण्डराय के अपने पुराण में भी इस नाम के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है। अस्तु—

ग्रन्थकार के गुरु

'गोम्मटसार' आचार्य नेमिचन्द्र की प्रमुख रचना है और उसके दो भाग हैं—जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड। किन्तु इन दोनों के ही अन्त में उन्होंने अपने और अपने गुरु के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। कर्मकाण्ड के अन्त में तो आठ गाथाएँ प्रशस्ति सम्बन्धी हैं और जीवकाण्ड के अन्त में एक है। इन सब में राजा गोम्मट का ही जयकार है। उन्हीं के गुरु अजितसेन का निर्देश दोनों भागों के अन्त में अवश्य है; किन्तु अपने गुरु का नहीं है। हाँ, 'त्रिलोकसार' की अन्तिम गाथा में नेमिचन्द्र मुनि का नाम अवश्य है और उन्हें अभयनन्दि का शिष्य कहा है। किन्तु कर्मकाण्ड के अन्तर्गत प्रकरणों में उनके एक नहीं, अनेक गुरुओं का नामोल्लेख है। यथा—

सत्त्वस्थान नामक तीसरे अधिकार के अन्त में कहा है—

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

इन्द्रनन्दि गुरु के पास में समस्त सिद्धान्त को सुनकर श्री कनकनन्दि गुरु ने सत्त्वस्थान को कहा।

इसी के आगे वह गाथा आती है जिसमें चक्रवर्ती के समान छह खण्डों को साधने की घोषणा है।

आगे चतुर्थ अधिकार के अन्तर्गत पंचभागहार नामक चूलिका के प्रारम्भ में कहा है—

जत्थ वरणेमिचंदो महणेण विणा सुणिम्मलो जादो।
सो अभयणंदि णिम्मलसुओवही हरउ पावमलं ॥४०८॥

जिसमें मथन के बिना ही नेमिचन्द्र अत्यंत निर्मल रूप से प्रकट हुए, वह अभयनन्दिरूपी निर्मल श्रुतसमुद्र पापमल को दूर करे।

आगे इसी के अन्तर्गत दसकरणचूलिका के प्रारम्भ में कहा है—

जस्स य पायपसायेणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥४३६॥

जिसके चरणों के प्रसाद से वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिका शिष्य अनन्त संसारसमुद्र के पार हो गया, उन अभयनन्दि गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

आगे छठे अधिकार के प्रारम्भ में कहा है—

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारागिंदणंदि गुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥

अभयनन्दि को और श्रुतसमुद्र के पारगामी इन्द्रनन्दि गुरु को तथा वीरनन्दि स्वामी को नमस्कार करके प्रकृतियों के प्रत्यय कहूँगा।

आगे आठवें त्रिकरण चूलिका नामक अधिकार के प्रारम्भ में कहा है—

णमह गुणरयणभूषण सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं।
वरवीरणंदिचंदं णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥८९६॥

हे गुणरत्नभूषण चामुण्डराय! सिद्धान्तशास्त्ररूपी अमृतमय महासमुद्र में उत्पन्न हुए उत्कृष्ट वीरनन्दिरूपी चन्द्रमा को तथा निर्मल गुणवाले इन्द्रनन्दि गुरु को नमस्कार करो।

इस प्रकार अभयनन्दि, वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि और कनकनन्दि ये चार उनके गुरु थे। सम्भवतया ये सभी सिद्धान्त समुद्र के पारगामी होने से सिद्धान्तचक्रवर्ती थे।

आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने जीवकाण्ड में अपने किसी भी गुरु का स्मरण नहीं किया और कर्मकाण्ड के कई अवान्तर अधिकारों के प्रारम्भ में उनका स्मरण किया, क्या इसमें कोई विशेष कारण हो सकता है? ऐसा मन में प्रश्न होता है।

जीवकाण्ड का विषय बीस प्ररूपणाओं से सम्बद्ध है, किन्तु कर्मकाण्ड का विषय कर्मसिद्धान्त से सम्बद्ध है। हो सकता है उक्त आचार्य कर्मसिद्धान्त के उस-उस विषय के विशेषज्ञ रहे हों और आचार्य नेमिचन्द्र ने उन-उन विषयों का विशेष अनुशीलन उनसे किया हो। जैसे सत्त्वस्थान नामक प्रकरण के अन्त में कहा है कि इन्द्रनन्दि गुरु के पास में सम्पूर्ण सिद्धान्त को सुनकर कनकनन्दि गुरु ने सत्त्वस्थान का कथन किया।

स्व. श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने (अनेकान्त वर्ष ८, कि. ९-६, पृ. ३०४) लिखा था कि यह सत्त्वस्थान ग्रन्थ विस्तर सत्त्वभंगी के नाम से आरा के जैनसिद्धान्त भवन में मौजूद है। इस सत्त्वस्थान ग्रन्थ को नेमिचन्द्र ने अपने गोम्मटसार ग्रन्थ के सत्त्वस्थान नामक अधिकार में प्रायः ज्यों-का-त्यों अपनाया है। इन्द्रनन्दि, वीरनन्दि आदि के द्वारा रचित कोई कर्मसिद्धान्त-विषयक ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है, किन्तु कनकनन्दी ने उन्हीं से सकल सिद्धान्त का अध्ययन करके सत्त्वस्थान का कथन किया था। अतः उक्त दोनों ही आचार्य उस विषय के मर्मज्ञ विद्वान् होने चाहिए। खेद है कि आचार्य नेमिचन्द्र के इन सकल श्रुत पारगामी गुरुजनों के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। एक वीरनन्दि का 'चन्द्रप्रभचरित' काव्य उपलब्ध है। उसकी प्रशस्ति में उन्होंने अपने गुरु का नाम अभयनन्दि लिखा है और उनका समय भी प्रायः वही है। मात्र इसी आधार पर उन्हें नेमिचन्द्र के द्वारा स्मृत वीरनन्दि माना जाता है।

इन्द्रनन्दि नामक आचार्य रचित एक 'श्रुतावतार' है जो माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 'तत्त्वानुशासनादि संग्रह' में प्रकाशित हो चुका है। उससे ज्ञात होता है कि वे सिद्धान्तशास्त्रों की परम्परा से तथा उनके विषयादि से सुपरिचित थे। सिद्धान्तग्रन्थ विषयक उनका वर्णन बहुत ही प्रामाणिक और सुसंगत है। अतः वे इन्द्रनन्दि आचार्य नेमिचन्द्र के गुरु हो सकते हैं। इन सबमें अभयनन्दि ही बड़े और प्रधान प्रतीत होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि विक्रम की ११ वीं शती में सिद्धान्त विषयक ज्ञाताओं का अच्छा समूह था और ये सब चामुण्डराय के समय में भी वर्तमान थे; क्योंकि कर्मकाण्ड की एक गाथा में आचार्य नेमिचन्द्र चामुण्डराय से उनको नमस्कार करने की प्रेरणा करते हैं। अतः उसकी रचना करते समय वे सब अवश्य ही उपस्थित होने चाहिए। 'गोम्मटसार' की रचना में उन सबका ही योगदान रहा प्रतीत होता है।

आचार्य नेमिचन्द्र के एक शिष्य माधवचन्द्र त्रैविद्य थे। उन्होंने अपने गुरु के द्वारा निर्मित 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ पर संस्कृत में टीका रची थी। उन्होंने अपनी टीकाकार प्रशस्ति में कहा है कि अपने गुरु नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती को सम्मत अथवा ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव के अभिप्राय का अनुसरण करनेवाली कुछ गाथाएँ माधवचन्द्र त्रैविद्य ने भी यहाँ-वहाँ रची हैं। माधवचन्द्र भी करणानुयोग के पंडित थे। उनकी गणित शास्त्र में विशेष गति थी। उनके द्वारा सिद्ध गणित को त्रिलोकसार में निबद्ध किया गया है और यह गाथा में प्रयुक्त 'माधवचंदुद्धरिया' पद से जो द्वि-अर्थक है, स्पष्ट होता है। 'गोम्मटसार' जीवकाण्ड में भी योगमार्गणाधिकार में इनके मत का निर्देश है। अतः गुरुजनों के साथ शिष्यजन भी इस ग्रन्थरचना गोष्ठी में सम्मिलित थे।

ग्रन्थरचना-स्थान

यह ग्रन्थरचना चन्द्रगिरि पर चामुण्डराय के द्वारा निर्मापित जिनालय में इन्द्रनीलमणि निर्मित नेमीश्वर प्रतिबिम्ब के सान्निध्य में ही हुई है। 'गोम्मटसार' कर्मकाण्ड की प्रशस्ति में इस जिनालय में स्थित बिम्ब का निर्देश है तथा जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड और त्रिलोकसार की आद्य मंगल गाथाओं में नेमिजिन को नमस्कार भी किया गया है।

'बाहुबलिचरित' के अनुसार जब चामुण्डराय अपनी माता के साथ गोम्मटेश्वर की मूर्ति के दर्शन के लिए पोदनापुर गये थे, तो नेमिचन्द्र भी उनके साथ थे। तथा नेमिचन्द्र को ही यह स्वप्न आया था कि विन्ध्यगिरि पर गोम्मटेश्वर की मूर्ति थी। उसके पश्चात् ही चामुण्डराय ने वहाँ मूर्ति की स्थापना की और नेमिचन्द्र के चरणों में चामुण्डराय ने मूर्ति की पूजा के निमित्त ग्राम अर्पित किये, जिनकी आय छियानवे हजार द्रव्य प्रमाण थी। यथा—

भास्वद्देशीगणाग्रेसररुचिरसिद्धान्तविन्नेमिचन्द्र—
श्रीपादाग्रे सदा षण्णवति दशशतद्रव्यभूग्रामवर्यान्।
दत्त्वा श्रीगोम्मटेशोत्सव-नित्यार्चना वैभवाय
श्रीमच्चामुण्डराजो निजपुरमथुरां संजगाम क्षितीशः ॥६१॥

रचनाकाल

जैसा ऊपर के लेख से स्पष्ट है कि नेमिचन्द्राचार्य ने चामुण्डराय के निमित्त से अपने 'गोम्मटसार' और 'त्रिलोकसार' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। तथा 'गोम्मटसार' की अन्तिम प्रशस्ति में राजा गोम्मट अर्थात् चामुण्डराय का जयकार करते हुए उनके द्वारा निर्मित दक्षिण कुक्कुटजिन-बाहुबली की मूर्ति तथा चन्द्रगिरि पर निर्मित जिनालय का उल्लेख किया है। इससे यह प्रकट है कि उक्त निर्माणों के पश्चात् या उनके समकाल में ही 'गोम्मटसार' रचा गया है।

चामुण्डराय ने अपना 'चामुण्डरायपुराण' शक सं. ९०० (वि. सं. १०३१) में समाप्त किया था। उसमें उन्होंने अपने सब कार्यों का विवरण दिया है, किन्तु मूर्ति निर्माण-कार्य का उल्लेख नहीं किया। अतः इसके पश्चात् ही मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई है। तथा मूर्ति की प्रतिष्ठा गंगनरेश राचमल्ल द्वितीय के राज्यकाल में हुई है और उसका राज्यकाल वि. सं. १०३१ से १०४१ तक है। 'बाहुबलीचरित' में गोम्मटेश की प्रतिष्ठा का जो समय दिया है, उसके अनुसार वि. सं. १०३७-३८ में प्रतिष्ठा हुई है। उस समय राचमल्ल का राज्यकाल था। तथा 'त्रिलोकसार' की टीका में उसकी प्रथम मंगल गाथा के 'बलगोविन्द' आदि पद का व्याख्यान श्री माधवचन्द्र त्रैविद्य ने 'बलश्चामुण्डरायः गां पृथ्वीं विन्दति पालयतीति गोविन्दो राचमल्लदेवः' किया है। तथा 'गोम्मटसार' जीवकाण्ड की मन्दप्रबोधिनी टीका के प्रारम्भ में भी गंगराज राचमल्ल के मन्त्री चामुण्डराय इत्यादि निर्देश है। अतः गोम्मटसार और त्रिलोकसार की रचना वि. सं. १०३७-४० में हुई है।

रचनाएँ

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की तीन ही रचनाएँ समुपलब्ध हैं—गोम्मटसार, लब्धिसार और त्रिलोकसार। 'बाहुबलीचरित' में भी उनकी इन्हीं तीन रचनाओं का निर्देश है। यथा—

सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्ष्माभृदालोड्य मध्ये
लेभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः।
श्रीमद् गोम्मट-लब्धिसार विलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माजश्रीसुरधेनुचिन्तितमणीन् श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥६३॥

इनके सिवाय एक द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ भी नेमिचन्द्रमुनि रचित है। इस पर ब्रह्मदेव की टीका है। श्री शरच्चन्द्र घोषाल ने इसका अँगरेजी में अनुवाद किया है। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने इसे गोम्मटसार के कर्त्ता की ही कृति माना है। किन्तु स्व. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार ने उसकी विस्तृत आलोचना करते हुए उनके इस मत को मान्य नहीं किया है। उनकी अनुपपत्तियाँ इस प्रकार हैं—प्रथम द्रव्यसंग्रहकार का सिद्धान्त चक्रवर्ती के रूप में कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। संस्कृत टीकाकर ब्रह्मदेव ने उन्हें सिद्धान्तिदेव प्रकट किया है। सिद्धान्तचक्रवर्ती का पद सिद्धान्ती, अथवा सिद्धान्तिदेव से बड़ा है।

दूसरे 'गोम्मटसार' के कर्ता नेमिचन्द्र अपने ग्रन्थों में अपने गुरु का नामोल्लेख अवश्य करते हैं। परन्तु 'द्रव्यसंग्रह' में वैसा नहीं किया है। तीसरे टीकाकार ब्रह्मदेव ने अपनी टीका के प्रस्तावना वाक्य में लिखा है कि यह द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव के द्वारा सोम नाम के राजश्रेष्ठि के निमित्त आश्रम नामक नगर में मुनिसुव्रत चैत्यालय में रचा गया। वह नगर उस समय धराधीश महाराज भोजदेव सम्बन्धी श्रीपाल मण्डलेश्वर के अधिकार में था। भोजकाल के नेमिचन्द्र का समय ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी बैठता है।

चौथे द्रव्य संग्रह के कर्ता ने भावास्रव के भेदों में प्रमाद को भी गिनाया है और अविरत के पाँच तथा कषाय के चार भेद किये हैं। परन्तु गोम्मटसार के कर्त्ता ने प्रमाद को भावास्रव के भेदों में नहीं माना और अविरत के दूसरे ही प्रकार से बारह तथा कषाय के पच्चीस भेद किये हैं।

मुख्तार साहब की सभी युक्तियाँ जोरदार हैं, किन्तु जहाँ तक सिद्धान्तचक्रवर्ती और सिद्धान्तिदेव के अन्तर की बात है, वह जोरदार प्रतीत नहीं होती; क्योंकि त्रिलोकसार की टीका के प्रारम्भ में टीकाकार माधवचन्द ने अपने गुरु का निर्देश नेमिचन्द्र सैद्धान्तदेव रूप से किया है तथा अपने अन्तिम वक्तव्य की गाथा की टीका में 'गुरुणेमिचंद' पद की व्याख्या में 'स्वकीयगुरुनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रिणां अथवा ग्रन्थकर्तृणां नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेवानाम्' लिखकर दोनों पदों को समकक्ष प्रमाणित किया है। यहाँ गुरु नेमिचन्द्र के साथ तो सिद्धान्तचक्री पद और ग्रन्थकार नेमिचन्द्र के साथ सिद्धान्तदेव पद का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

अतः नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती और नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव तो एक ही व्यक्ति हो सकता है। इसके साथ ही त्रिलोकसार की अन्तिम गाथा के साथ द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा की तुलना भी द्रष्टव्य है।

त्रिलोकसार की अन्तिम गाथा इस प्रकार है—

इदिणेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रईओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया ॥

और द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा इस प्रकार है—

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंद मुणिणा भणियं जं ॥

दोनों में 'णेमिचंद मुणि' पद समान है। 'अप्पसुदेण' और 'तणुसुत्तधरेण' विशेषणों में भी केवल शब्दभेद है; अर्थभेद नहीं है। 'बहुसुदाइरिया' और 'सुदपुण्णा मुणिणाहा' पद भी एकार्थक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि एक में गुरु का नाम है और दूसरे में नहीं है। हमने अपने जैन साहित्य के इतिहास भाग२ में इस पर विशेष प्रकाश डाला है। अतः यह रचना भी गोम्मटसार के कर्ता की हो सकती है।

गोम्मटसार अपरनाम पंचसंग्रह

ग्रन्थकार नेमिचन्द्राचार्य ने तो 'गोम्मटसार' के दूसरे भाग कर्मकाण्ड के अन्त में इस ग्रन्थ का नाम गोम्मट संग्रह सूत्र या गोम्मट सूत्र ही दिया है, जिसका अर्थ होता है गोम्मटराय चामुण्डराय के लिए संग्रह किया गया सूत्रग्रन्थ। किन्तु टीकाकारों ने इसका अपरनाम पंचसंग्रह लिखा है।

जीवकाण्ड की मन्दप्रबोधिनी टीका के प्रारम्भ में लिखा है—

'श्रीचामुण्डराय'''द्रव्यानुयोगप्रश्नानुरूपं महाकर्मप्रकृति प्राभृत प्रथम सिद्धान्त जीवस्थानाख्य प्रथम खण्डार्थ संग्रह गोम्मटसार नामधेय पंचसंग्रहशास्त्रं प्रारभमाण'''तद्गोम्मटसार प्रथमावयवभूतं जीवकाण्डं विरचयन्।'

और केशववर्णी की कर्णाटवृत्ति में लिखा है—

'श्रीमत् चामुण्डराय'''प्रश्नावतीर्णैकचत्वारिंशत् पदनामसत्त्वप्ररूपणाद्वारेण'''भगवान् शास्त्रकारो महाकर्मप्रकृतिप्राभृत-प्रथमसिद्धान्तजीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्णाखण्ड-महाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समुद्धृत्य गृहीत्वा गोम्मटसार-पंचसंग्रहप्रपंचमारचयन्।'

इनमें प्रथम में प्रथम सिद्धान्त के प्रथम खण्ड जीवस्थान से गोम्मटसार के प्रथम भाग जीवकाण्ड की रचना बतलायी है। और दूसरे में प्रथम सिद्धान्त के छह खण्डों में-से समस्त जीवादि प्रमेयांश को गृहीत करके गोम्मटसार पंचसंग्रह की रचना बतलायी है।

दोनों ही टीकाकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से ठीक ही लिखा है। मन्दप्रबोधिनी के कर्ता जीवकाण्ड को दृष्टि में रखकर उसे प्रथम सिद्धान्त के प्रथम खण्ड जीवस्थान से संगृहीत बतलाते हैं। और केशववर्णी पूरे गोम्मटसार को दृष्टि में रखकर उसे छहों खण्डों से संगृहीत कहते हैं। अतः दोनों ही कथन यथार्थ हैं। दोनों ही गोम्मटसार का अपरनाम पंचसंग्रह कहते हैं। किन्तु गोम्मटसार के रचयिता ने उसका यह अपरनाम कहीं भी नहीं लिखा है। तब टीकाकारों ने उसे यह नाम कैसे दिया? यह जिज्ञासा हो सकती है।

पंचसंग्रह नाम

'पंचसंग्रह' नामक चार ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध हैं—दो प्राकृत में और दो संस्कृत में। प्राकृत में 'पंचसंग्रह' एक दिगम्बर परम्परा का है और एक श्वेताम्बर परम्परा का। दिगम्बर परम्परा के पंचसंग्रह में पाँच प्रकरण हैं—जीवसमास, प्रकृति समुत्कीर्तन, कर्मस्तव, शतक और सप्ततिका। अतः 'पंचसंग्रह' नाम उचित ही है। संस्कृत के दोनों पंचसंग्रह इसी प्राकृत पंचसंग्रह के संस्कृत रूपान्तर हैं। इस प्राकृत पंचसंग्रह के अन्त में एक वाक्य लिखा है—'इति पंचसंग्रहो समत्तो' ग्रन्थ में कहीं भी यह नाम नहीं आता। अमितगति ने अपने संस्कृत पंचसंग्रह में एक स्थान पर (पृ. १३१) लिखा है—पंचसंग्रह के अभिप्राय से यह कथन है। अतः संस्कृत पंचसंग्रह के रचनाकाल (वि. सं. १०७०) में यह ग्रन्थ पंचसंग्रह के नाम से प्रसिद्ध था। उसी संस्कृत पंचसंग्रह के आदि में इस पंचसंग्रह नाम की परिभाषा[1] दी है—जो बन्धक, बध्यमान, बन्ध के स्वामी, बन्ध के कारण और बन्ध के भेद कहता है, वह पंचसंग्रह है।

किन्तु श्वेताम्बराचार्य चन्द्रर्षि महत्तरकृत 'पंचसंग्रह' के प्रारम्भ में पंचसंग्रह नाम की सार्थकता बतलाते हुए कहा[2] है—इस ग्रन्थ में शतक आदि पाँच ग्रन्थों को संक्षिप्त किया गया है अथवा इसमें पाँच द्वार हैं, इसलिए इसका नाम पंचसंग्रह है। शतक आदि पाँच ग्रन्थों का नाम ग्रन्थकार ने नहीं बताया। किन्तु इसके टीकाकार मलयगिरि ने लिखा[3] है कि इस पंचसंग्रह में शतक, सप्ततिका, कषायप्राभृत, सत्कर्म और कर्मप्रकृति इन पाँच ग्रन्थों का संग्रह है। अथवा योगोपयोग विषय मार्गणा, बन्धक, बन्धव्य, बन्धहेतु, बन्धविधि इन पाँच अर्थाधिकारों का संग्रह होने से इसका नाम पंचसंग्रह है। दिगम्बर पंचसंग्रह में भी जीवसमास, कर्मप्रकृतिस्तव, बन्धोदयोदीरणासत्त्व, शतक, सप्ततिका नामक पाँच अधिकार हैं, इसलिए इसका पंचसंग्रह नाम सार्थक है। इन्हीं में बन्धक, बध्यमान, बन्ध के स्वामी, बन्ध के कारण और बन्धक भेद आ जाते हैं। अतः इन पाँचों का कथन होने से इसे पंचसंग्रह कहते हैं। यह दिगम्बर आचार्य कृत प्राकृत पंचसंग्रह वीरसेन स्वामी की धवला टीका से

---

१. 'बन्धकं बध्यमानं यो बन्धेशं बन्धकारणम्। भाषते बन्धभेदं च तं स्तुवे भाव (पंच) संग्रहम् ॥'

२. सयगाइ पंचगंथ-जहारिहं जेण येत्थ संखिता। दाराणि पंच अहवा वेम जहत्थाभिणाम इदं ॥

३. 'पंचानां शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत-सत्कर्म, कर्मप्रकृति लक्षणानां ग्रन्थानामथवा पंचानामर्थाधिकाराणां योगोपयोगविषय-मार्गणा-बन्धक-बन्धव्य-बन्धहेतु-बन्धविधिलक्षणानां संग्रहः पंचसंग्रहः।'

भी प्राचीन है। धवला में पंचसंग्रह की बहुत-सी गाथाएँ उद्धृत हैं। वे गाथाएँ धवला में जिस क्रम से उद्धृत हैं, प्रायः उसी क्रम से पंचसंग्रह में पायी जाती हैं। अधिकांश गाथाएँ पंचसंग्रह के अन्तर्गत जीवसमास नामक प्रकरण की हैं। यद्यपि वीरसेन स्वामी ने पंचसंग्रह का नामोल्लेख नहीं किया है, किन्तु एक स्थान पर जीवसमास का उल्लेख किया है। धवला पु. ४, पृ. ३१५ पर 'जीवसमासए वि उत्तं' करके नीचे की गाथा उद्धृत है—

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥

यह गाथा 'पंचसंग्रह' के अन्तर्गत जीवसमास नामक प्रथम अधिकार में है। तथा सत्प्ररूपणा की धवला टीका में उद्धृत लगभग १२५ गाथाएँ भी जीवसमास नामक अधिकार की हैं। तथा कुछ गाथाएँ 'पंचसंग्रह' के अन्य अधिकारों की भी उद्धृत हैं।

इसी धवला टीका के आधार पर आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार का संग्रह किया था। अतः पंचसंग्रह से परिचित उसके टीकाकारों ने उसे पंचसंग्रह नाम देकर उचित किया है।

सत्प्ररूपणा पंचसंग्रह और गोम्मटसार

आचार्य नेमिचन्द्र ने यद्यपि अपने ग्रन्थ का नाम गोम्मटसंग्रहसूत्र रखा है और उसी के आधार पर टीकाकारों ने उसे गोम्मटसार नाम दिया है, किन्तु ग्रन्थकार ने यह स्पष्ट रूप से नहीं लिखा कि इसका संग्रह किस ग्रन्थ से किया गया है। तथापि कर्मकाण्ड में जो उन्होंने छह खण्डों की साधना करने का कथन किया है, उसपर-से तथा षट्खण्डागम और गोम्मटसार के विषयों की समानता होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि षट्खण्डागम अर्थात् धवला टीका से उसका संग्रह किया गया है। 'पंचसंग्रह' नाम का उन्होंने कोई संकेत नहीं किया। फिर भी तुलना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पंचसंग्रह का भी उपयोग उन्होंने किया है और अपनी इस बहुमूल्य कृति को संग्रह नाम देकर उन्होंने 'पंचसंग्रह' नाम को ही प्रकारान्तर से व्यक्त किया है। सम्भवतया पंचसंग्रह नामक ग्रन्थ वर्तमान था, इसलिए भी उन्होंने अपनी इस कृति का नाम पंचसंग्रह न रखकर गोम्मटसंग्रह रखना उचित समझा हो। इसमें नाम की पुनरुक्ति भी नहीं होती और पंचसंग्रह की ध्वनि भी व्यक्त होती है। अतः यथार्थ में इसका नाम गोम्मटसंग्रह ही ग्रन्थकार को इष्ट रहा है। इस तरह पंचसंग्रह के इस लघुभ्राता का नाम गोम्मटसंग्रह उचित भी है। इससे दोनों में आनुवांशिकता भी आ जाती है।

यहाँ इन तीनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हम सर्वप्रथम पंचसंग्रह और सत्प्ररूपणा की धवला टीका को उपस्थित करते हैं।

वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम की रचना का इतिवृत्त देते हुए लिखा है कि आचार्य पुष्पदन्त ने विंशति सूत्रों की रचना करके जिनपालित को पढ़ाकर भूतबली भगवान् के पास भेजा और उन्होंने विंशति सूत्रों को पाकर द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रन्थरचना की। श्रुतावतार के रचयिता इन्द्रनन्दि ने लिखा है—

वाञ्छन् गुणजीवादिकविंशतिविधसूत्र सत्प्ररूपणया।
युक्तं जीवस्थानाद्यधिकारं व्यरचयत् सम्यक् ॥१३५॥

'अर्थात् भूतबली ने गुणस्थान जीवसमास आदि बीस प्रकार के सूत्रगर्भित सत्प्ररूपणा से युक्त जीवस्थान नामक प्रथम अधिकार रचा।'

ये बीस प्रकार के सूत्र कौन हैं, यह वीरसेन स्वामी ने स्पष्ट नहीं किया। किन्तु 'पंचसंग्रह' की दूसरी गाथा में ही स्पष्ट कर दिया है कि गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और चौदह मार्गणा तथा उपयोग ये बीस प्ररूपणाएँ हैं। इन्हीं बीस प्ररूपणाओं का कथन पंचसंग्रह के जीवसमास नामक प्रथम अधिकार में है। षट्खण्डागम के प्रारम्भिक सत्प्ररूपणा सूत्रों में भी गुणस्थान और मार्गणाओं का कथन है, किन्तु इस प्रकार से

बीस प्ररूपणाओं का कथन नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्प्ररूपणा सूत्रों की धवला टीका में गुणस्थान और मार्गणाओं का कथन वीरसेन स्वामी ने 'पंचसंग्रह' के जीवसमास नामक अधिकार के आधार पर ही किया है, क्योंकि उसमें प्रमाण रूप से उद्धृत लगभग सवा सौ गाथाएँ पंचसंग्रह की हैं। इसकी विगत नीचे दी जाती है—

सत्प्ररूपणा में पहले मार्गणाओं का निर्देश है, पीछे गुणस्थानों का। और पंचसंग्रह के जीवसमास में पहले गुणस्थानों का कथन है, पीछे मार्गणाओं का। गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी पंचसंग्रह का ही क्रम है और प्रायः गाथाएँ भी वही हैं। सत्प्ररूपणा के चौथे सूत्र में चौदह मार्गणाओं के नाम गिनाये हैं। उसकी धवला में चौदह मार्गणाओं का सामान्य कथन करते हुए वीरसेन स्वामी ने चौदह मार्गणाओं से सम्बद्ध सोलह गाथाएँ उद्धृत की हैं जो पंचसंग्रह के जीवसमास अधिकार में वर्तमान हैं।

आगे गुणस्थानों के वर्णन में बाईस गाथाएँ प्रमाणरूप से उद्धृत हैं।

जीवसमासाधिकार में उनकी क्रमसंख्या ३, ६, ७, ९, १०, १२, ११, १३, १४, १५, १६, १८, १९, २०, २१, २३, २४, २५, २७, २९, ३०, ३१ है। केवल एक स्थान में गाथा का व्यतिक्रम है। साधारण-सा पाठभेद भी क्वचित् ही है।

सत्प्ररूपणा में गुणस्थान के पश्चात् मार्गणाओं का क्रमशः विस्तार से कथन है। उसकी धवला में प्रत्येक मार्गणा के अन्तर्गत जीवसमास से गाथाएँ उद्धृत हैं। उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

१. गतिमार्गणा में गति सम्बन्धी पाँच गाथाएँ उद्धृत हैं और उनकी क्रमसंख्या जीवसमास में ६० से ६४ तक हैं।
२. इन्द्रियमार्गणा में जीवसमास की गाथा ६६, ६७, ६९, क्रम से उद्धृत हैं।
३. कायमार्गणा में ग्यारह गाथाएँ उद्धृत हैं जो जीवसमास में हैं, किन्तु उनके क्रम में अन्तर है।
४. योगमार्गणा में बारह गाथाएँ उद्धृत हैं। उनमें अन्तिम को छोड़कर जो धवला में प्रथम उद्धृत है, शेष जीवसमास में यथाक्रम पायी जाती हैं। केवल तीन गाथाओं के प्रथम चरण में पाठभेद है।
५. वेदमार्गणा में उद्धृत चार गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं।
६. कषायमार्गणा में उद्धृत चार गाथाओं में पाठभेद है।
७. ज्ञानमार्गणा में भी उद्धृत आठ गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं।
८. संयममार्गणा में भी उद्धृत आठ गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं।
९. दर्शनमार्गणा में उद्धृत तीन गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं।
१०. लेश्या मार्गणा में उद्धृत दस गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं।
११. सम्यक्त्व मार्गणा में उद्धृत पाँच गाथाओं में-से तीन गाथाएँ जीवसमास में यथाक्रम हैं। अन्त की दो गाथाओं में-से उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप बतलानेवाली गाथा भी पाठभेद के साथ जीवसमास में है। किन्तु वेदक सम्यक्त्ववाली गाथा के स्थान में अन्य गाथा है।

इस तरह सत्प्ररूपणा की धवला टीका में उद्धृत बहुत-सी गाथाएँ पंचसंग्रह के जीवसमास नामक अधिकार में यथाक्रम विद्यमान हैं।

अतः जीवसमास नाम का कोई अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है और न उसके अस्तित्व का ही संकेत मिलता है। अतः यही मानना पड़ता है कि वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रमाणरूप से उद्धृत जीवसमास पंचसंग्रह के अन्तर्गत जीवसमास अधिकार ही होना चाहिए। इन्द्रियमार्गणा प्ररूपणा के अन्तर्गत एक गाथा उद्धृत करते हुए जो जीवसमास में ६९ नं. की है, उसका 'आर्ष' शब्द से निर्देश किया है और तत्त्वार्थसूत्र से भी पूर्व में उसे स्थान दिया है। अतः जीवसमास का वीरसेन स्वामी के चित्त में बहुत आदर था; यह स्पष्ट है।

अब हम गोम्मटसार की ओर आते हैं—

'गोम्मटसार' जीवकाण्ड के तीन संस्करण प्रकाशित हुए हैं। गांधी नाथारंग बम्बई द्वारा प्रकाशित संस्करण में मूल गाथाएँ और उनकी संस्कृत छाया मात्र है। संस्कृत में गाथाओं की उत्थानिका भी है। रायचन्द शास्त्रमाला बम्बई से प्रकाशित संस्करण में पं. खूबचन्दजी रचित हिन्दी टीका भी है। ये दोनों संस्करण पुस्तकाकार हैं। गांधी हरिभाई देवकरण ग्रन्थमाला से प्रकाशित शास्त्राकार संस्करण में मूल और छाया के साथ दो संस्कृत टीकाएँ तथा पं. टोडरमल रचित ढूंढारी भाषा में टीका है। पहले दो संस्करणों में गाथा संख्या ७३३ है, किन्तु प्रथम मूल संस्करण में दूसरे से एक गाथा जिसका नम्बर ११४ है, अधिक है, यह गाथा दूसरे संस्करण में नहीं है। फिर भी गाथा संख्या बराबर होने का कारण यह है कि प्रथम मूल संस्करण में दो गाथाओं पर २४७ नम्बर पड़ गया है। अतः गाथा संख्या ७३४ है। तीसरे संस्करण में गाथा संख्या ७३५ है। इसमें एक गाथा बढ़ने का कारण यह है कि गाथा नं. ७२६ दो बार आयी है और उसपर क्रम से ७२६,७३० नम्बर पड़ गया है। अतः जीवकाण्ड की गाथा संख्या ७३४ है।

यह ऊपर लिख आये हैं कि 'गोम्मटसार' एक संग्रह ग्रन्थ है। उसके प्रथम भाग जीवकाण्ड का संकलन मुख्य रूप से 'पंच संग्रह' के जीवसमास अधिकार तथा षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड जीवट्ठाण के सत्प्ररूपणा और द्रव्य प्रमाणानुगम अधिकारों की धवला टीका के आधार पर किया गया है।

'जीवसमास' और 'जीवकाण्ड' दोनों का विषय एक है। दोनों में गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग इन बीस प्ररूपणाओं का कथन है। फलतः दोनों की दूसरी गाथा जिसमें बीस प्ररूपणाओं के नाम गिनाये हैं, समान है और यह गाथा धवला में नहीं है। अतः गोम्मटसार के कर्ता ने इसे जीवसमास से लिया है। इस प्रकार से जीवकाण्ड की रूपरेखा और विषय-वर्णन का आधार जीवसमास रहा है। उसी को सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने षट्खण्डागम की धवला टीका के आधार पर विस्तृत किया है। उसी का यह परिणाम है कि जीवसमास की गाथा सं. २१६ मात्र है और जीवकाण्ड की ७३४। इस तरह से उन्होंने संक्षिप्त जीवसमास और विस्तृत जीवट्ठाण को अपना कर उसे जीवकाण्ड के मध्यम रूप में इस प्रकार संग्रथित किया कि जीवकाण्ड की रचना के पश्चात् जीवसमास और जीवट्ठाण दोनों को ही भुला दिया गया और एकमात्र गोम्मटसार ही सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। यह इसकी रचना के वैशिष्ट्य और इसके रचनाकार की कुशलता का ही परिचायक है।

आगे हम देखेंगे कि ग्रन्थकार ने 'जीवसमास' को आधार बनाकर किस प्रकार उसे विस्तृत किया—

'जीवसमास' में प्रथम ही गुणस्थान का स्वरूप और गुणस्थानों के नाम तीन गाथाओं से कहकर प्रत्येक गुणस्थान का स्वरूप क्रम से कहा है। इन गाथाओं का क्रमांक ३, ४, ५ है। किन्तु जीवकाण्ड में इनका क्रमांक ८, ९, १० है। इस तरह जीवकाण्ड में पाँच गाथाएँ बढ़ गयी हैं। यह धवला या सिद्धान्त ग्रन्थों की देन है। सिद्धान्त में कथन की दो शैलियाँ हैं—ओघ और आदेश या संक्षेप और विस्तार। गुणस्थानों में कथन को ओघ या संक्षेप कहते हैं और मार्गणाओं में कथन को आदेश या विस्तार कहते हैं।

'जीवसमास' में गा. ६, ७, ८ तीन द्वारा प्रथम गुणस्थान का कथन है। इनमें-से केवल ६ और ८ नम्बर की गाथा ही जीवकाण्ड में हैं और वहाँ उनका क्रमांक १७ और १८ है। इस तरह ग्यारह गाथाएँ जीवकाण्ड में अधिक हैं। इसका कारण है कि जीवकाण्ड में गुणस्थानों के नामों के पश्चात् बतलाया है कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय, उपशम, क्षयोपशम आदि को लेकर किस गुणस्थान में कौन भाव होते हैं, क्योंकि संसार के जीवों को जिन चौदह गुणस्थानों में विभाजित किया है, वे गुणस्थान मोह और योग को लेकर ही निर्धारित किये गये हैं। प्रारम्भ के बारह गुणस्थान मोह के उदय, उपशम, क्षयोपशम या क्षय से होते हैं और अन्त के दो योग के भाव और अभाव से होते हैं। यह सब कथन 'जीवसमास' में नहीं है।

'जीवसमास' में दूसरे और तीसरे गुणस्थान का स्वरूप एक-एक गाथा से कहा है और उनका क्रमांक ९ और १० है। किन्तु जीवकाण्ड में दूसरे गुणस्थान का स्वरूप दो गाथाओं से और तीसरे का चार गाथाओं से कहा है, फलतः उनका क्रमांक १९-२० और २१-२४ हैं।

'जीवसमास' का कथन बहुत साधारण है कि सम्यक्त्वरूपी पर्वत के शिखर से मिथ्यात्वरूपी भूमि की ओर गिरता हुआ जीव सासादन गुणस्थानी होता है। इसमें यह नहीं बतलाया कि वह क्यों सम्यक्त्व से गिरता है। यही सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण बात है कि उपशम सम्यक्त्व के काल अन्तर्मुहूर्त में एक समय से लेकर छह आवली काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय हो जाने से वह सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्व से च्युत होता है। च्युत होते ही वह चतुर्थ गुणस्थान से गिरकर दूसरे में आता है और दूसरे से प्रथम में आकर पुनः मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यह सब जीव के परिणामों का खेल है।

इसी तरह 'जीवसमास' में तीसरे सम्यक् मिथ्यात्व या मिश्रगुणस्थान का स्वरूप कहा है कि दही और गुड़ के मिलने से जैसे एक विचित्र स्वाद होता है, उसी तरह से सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के मिले-जुले भाव का नाम मिश्रगुणस्थान है। जीवकाण्ड में इसका कारण सम्यक्मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय कहा है। तथा तीसरे गुणस्थान की अन्य विशेषताएँ भी बतलायी है कि वहाँ मरण नहीं होता। यह सब कथन जीवसमास में नहीं है।

'जीवसमास' में चतुर्थ गुणस्थान का स्वरूप दो गाथाओं से कहा है, जिनका क्रमांक ११ और १२ है; किन्तु 'जीवकाण्ड' में चार गाथाओं से कहा है; जिनमें ये दोनों गाथाएँ भी हैं। वहाँ इनका क्रमांक २९ और २७ है। जीवसमास में सम्यग्दर्शन के भेदों का स्वरूप और कारण नहीं कहा है; किन्तु जीवकाण्ड में कहा है। इसी तरह जीवसमास में पंचम और षष्ठम गुणस्थान का स्वरूप एक और दो गाथाओं से कहा है, किन्तु जीवकाण्ड में षष्ठम गुणस्थान का स्वरूप बारह गाथाओं से कहा है।

छठे गुणस्थान का नाम है—प्रमत्तविरत अर्थात् जो मुनि होकर भी प्रमाद सहित है, वह प्रमत्तविरत है। प्रमाद पन्द्रह हैं—चार विकथा, चार कषाय, पाँच इन्द्रिय, निद्रा, स्नेह। इन्हीं के भंगों के निकालने की विधि का वर्णन विस्तार से किया है।

१. 'जीवसमास' में अप्रमत्त गुणस्थान का स्वरूप एक गाथा से कहा है। इसके दो भेद हैं—स्वस्थानाप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त। जीवसमास में केवल स्वस्थानाप्रमत्त का स्वरूप कहा है। यह गुणस्थान मध्य का ऐसा केन्द्र है जहाँ से उत्थान और पतन दोनों सम्भव हैं। आगे बढ़ने का नाम उत्थान है। उत्थान के लिए अधःकरणरूप परिणामों का होना आवश्यक है; उसके बिना ऊपर के गुणस्थानों में नहीं चढ़ सकता। ऊपर चढ़नेवाले को ही सातिशय अप्रमत्त कहते हैं। जीवकाण्ड में उसका स्वरूप और अधःकरणरूप परिणामों की रचना का वर्णन है। टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में उसका रहस्य अंकसंदृष्टि के द्वारा विस्तार से उद्घाटित किया है। यह सब जैन सिद्धान्त का मार्मिक रहस्य है, जिसका 'जीवसमास' में अभाव है।

इस तरह जीवसमास में ३१ गाथा तक चौदह गुणस्थानों का कथन है जो जीवकाण्ड में ६९ गाथापर्यन्त है।

२. इसके पश्चात् जीवसमास का कथन जीवसमास में ४२ गाथापर्यन्त अर्थात् केवल ग्यारह गाथाओं में है। किन्तु जीवकाण्ड में ११७ गाथापर्यन्त ४८ गाथाओं में है। इन ग्यारह में-से केवल दो गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं जिनमें जीवसमास का स्वरूप तथा चौदह भेद गिनाये हैं। जीवसमास में जीवसमास के चौदह, इक्कीस, तीस, बत्तीस, छत्तीस, अड़तीस, अड़तालीस, चौवन और सत्तावन भेद कहे हैं। किन्तु जीवकाण्ड में एक से लेकर उन्नीस तक भेद गिनाये हैं। पुनः सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त और सामान्य, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त को लेकर उन्नीस, अड़तीस, और सत्तावन भेद किये हैं। सत्तावन में-से एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय के इक्यावन भेदों को अलग रखकर सकलेन्द्रिय के सैंतालीस भेद मिलाकर ९८ भेद किये हैं।

'जीवकाण्ड' में जीव समासों की प्ररूपणा उक्त स्थानों के द्वारा, योनियों के द्वारा, शरीर के अवगाहना के द्वारा और कुलों के द्वारा की गयी है। इन सबका जीवसमास में अभाव है।

३. पर्याप्तिका कथन जीवसमास में दो गाथाओं से है। ये दोनों गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। किन्तु इनके सिवाय नौ गाथाएँ अधिक हैं, जिनके द्वारा अपनी-अपनी पर्याप्तियों के प्रारम्भ और पूर्ति का काल, पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त का काल, लब्ध्यपर्याप्तक का स्वरूप आदि का विस्तृत कथन है।

४. जीवसमास में प्राणप्ररूपणा का कथन छह गाथाओं में है। इनमें-से तीन गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। इनके सिवाय दो गाथाएँ भिन्न हैं जिनमें प्राणों की उत्पत्ति, सामग्री तथा स्वामी कहे हैं।

५. जीवसमास में संज्ञाप्ररूपणा पाँच गाथाओं में है। ये पाँचों गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। इनके सिवाय एक गाथा अन्य है जिसमें संज्ञाओं के स्वामी कहे हैं। आगे चौदह मार्गणाओं का कथन प्रारम्भ होता है।

१. **गतिमार्गणा**—जीवसमास में प्रारम्भ में मार्गणा का स्वरूप और भेद कहे हैं। ये दोनों गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। इसके पश्चात् जीवकाण्ड में आठ सान्तर मार्गणाओं का कथन है जो जीवकाण्ड में नहीं हैं। गति का स्वरूप दोनों में कहा है, किन्तु गाथा में भेद है। इसके पश्चात् जीवसमास में पाँच गाथाओं के द्वारा नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति का स्वरूप कहा है। ये पाँचों गाथाएँ भी जीवकाण्ड में हैं।

यहाँ से दोनों में एक मौलिक अन्तर प्रारम्भ होता है। वह यह है कि जीवकाण्ड में प्रत्येक मार्गणाप्ररूपणा के अन्त में उस मार्गणावाले जीवों की संख्या भी जीवट्ठाण के द्रव्यप्ररूपणानुगम के अनुसार दी है; किन्तु जीवसमास में वह सब कथन नहीं है। और इस दृष्टि से जीवकाण्ड का महत्त्व जीव समास से बहुत बढ़ जाता है। जीवकाण्ड के इस अधिकार में ग्यारह गाथाओं के द्वारा चारों गतियों में जीवों की संख्या कही है। संख्या सम्बन्धी ये गाथाएँ नेमिचन्द्राचार्य की हैं। कहीं से उद्धृत नहीं हैं।

२. **इन्द्रियमार्गणा**—जीवसमास में इन्द्रियमार्गणा की प्ररूपणा दस गाथाओं में हैं। उनमें-से आदि और अन्तिम तथा एक मध्य की इस तरह केवल तीन गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। जीवकाण्ड के इस प्रकरण में सतरह गाथाएँ हैं, जिनमें से छह गाथाओं में संख्याप्ररूपणा है। शेष गाथाओं में इन्द्रियों का विषय क्षेत्र, उनकी अवगाहना आदि कही है जो जीवसमास में नहीं है। जीवसमास में दो इन्द्रिय आदि जीवों के भेद कहे हैं जो धवला में भी कहे हैं, किन्तु जीवकाण्ड में वे भेद नहीं कहे हैं। उन्हें विशेष उपयोगी न समझा हो, यह सम्भव है।

३. **कायमार्गणा**—जीवसमास में कायमार्गणा का वर्णन तेरह गाथाओं में है। उनमें-से नौ गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं, जिन चार गाथाओं में पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के भेद कहे हैं, वे गाथाएँ जीवकाण्ड में नहीं हैं। जीवकाण्ड में इस प्रकारण में पैंतीस गाथाएँ हैं, जिनमें-से ग्यारह गाथाओं में तो संख्या कही है। वनस्पतिकाय के प्रत्येक और साधारणकाय की पहचान चार गाथाओं से कही है। त्रसजीवों का निवासस्थान, सप्रतिष्ठितशरीर, स्थावर तथा त्रसजीवों के शरीर का आकार आदि अनेक विशिष्ट और उपयोगी कथन इस प्रकारण में हैं जो जीवसमास में नहीं हैं।

४. **योगमार्गणा**—जीवसमास में योगमार्गणा के कथन में तेरह गाथाएँ हैं। जिनमें-से प्रायः दस गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। किन्तु जीवकाण्ड के इस प्रकारण में चौवन गाथाएँ हैं, जिनमें-से बारह गाथाओं में संख्या कही है। जीवसमास में दस प्रकार के सत्यवचन और अनुभय भाषा का निर्देश मात्र है। किन्तु जीवकाण्ड में पाँच गाथाओं से उनका कथन किया है। सयोगकेवली के मनोयोग की सम्भावना सहेतुक बतलायी है। आहारक काययोग के स्वरूप, प्रयोजन आदि का कथन पाँच गाथाओं से किया है। शरीरों में कर्म-नोकर्म का विभाग करके प्रत्येक शरीर के निर्माण में संलग्न समयप्रबद्धों की संख्या कही है। कर्म और नोकर्म के उत्कृष्ट संचय का स्वरूप और स्थान के साथ उत्कृष्ट संचय की सामग्री भी कही है। तथा शरीरों में संलग्न समयप्रबद्धों के प्रतिसमय बन्ध, उदय और सत्त्व का प्रमाण कहा है। यह सब कथन करणानुयोग में अपना विशेष स्थान

रखता है। योग ही जीव के प्रति कर्मों के आस्रव का प्रमुख कारण है। अतः योगमार्गणा का भी विशेष महत्त्व है। जीवसमास में तो स्थूल बातें कही हैं।

५. **वेदमार्गणा**—जीवसमास में वेदमार्गणा का कथन आठ गाथाओं में है, जिनमें-से चार गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। जीवकाण्ड के इस प्रकरण में ग्यारह गाथाएँ हैं, जिनमें-से पाँच गाथाओं द्वारा संख्या का कथन है।

६. **कषायमार्गणा**—जीवसमास में इस प्रकरण में आठ गाथाएँ हैं, जिनमें-से आदि और अन्त की दो गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। जीवकाण्ड के इस प्रकारण में सतरह गाथाएँ हैं, जिनमें-से अन्त की तीन गाथाओं में जीवसंख्या है। इसमें विशेष कथन है, शक्ति, लेश्या तथा आयु के बन्ध और अबन्ध की अपेक्षा कषाय के भेदों का कथन। शक्ति की अपेक्षा प्रत्येक कषाय के चार भेद हैं और प्रत्येक भेद एक-एक गति का कारण है; जैसे क्रोध कषाय के चार भेद किये हैं—पत्थर की लकीर, पृथ्वी की लकीर, धूल की लकीर और जल की लकीर। ये भेद उपमा रूप में हैं। पत्थर की लकीर नहीं मिटती, उसके समान न मिटनेवाली क्रोध कषाय नरकगति का कारण है, आदि। इन कषायों के अनुसार ही लेश्या होती हैं और लेश्या के अनुसार ही आगामी भवकी आयु का बन्ध होता है। यह सब कथन बहुत उपयोगी है जो जीवसमास में नहीं है।

७. **ज्ञानमार्गणा**—जीवसमास में इस मार्गणा का कथन केवल दस गाथाओं से है, जिनमें से नौ गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं; किन्तु जीवकाण्ड में ज्ञानमार्गणा कड़ी है। इसमें एक सौ छियासठ गाथाएँ हैं, जिनमें-से केवल अन्त की चार गाथाओं में जीव संख्या कही है। शेष एक सौ बासठ गाथाओं में ज्ञान के भेदों का वर्णन है। ज्ञान के पाँच भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान। इन्द्रियजन्य ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं और मतिज्ञानपूर्वक होनेवाले विशेष ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। उसके दो भेद हैं—शब्दजन्य और लिंग जन्य या अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। तथा इनके बीस भेद भी हैं। इन बीस भेदों का कथन श्वेताम्बर परम्परा में केवल कर्मग्रन्थ में ही देखने में आया है। दिगम्बर परम्परा में भी धवला की तेरहवीं पुस्तक में है। उसी से जीवकाण्ड में लिया गया प्रतीत होता है। श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विस्तृत कथन के कारण ही यह मार्गणा बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है।

८. **संयममार्गणा**—जीवसमास में इसमें ग्यारह गाथाएँ हैं, जिनमें-से नौ गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। जीवकाण्ड में इसमें सतरह गाथाएँ हैं। अन्त की दो गाथाओं में जीव संख्या है।

९. **दर्शनमार्गणा**—जीवसमास में केवल चार गाथाएँ हैं। चारों गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। जीवकाण्ड में सात गाथाएँ हैं, जिनमें-से दो में जीवसंख्या है।

१०. **लेश्यामार्गणा**—जीवसमास में इसमें बारह गाथाएँ हैं, जिनमें-से ग्यारह जीवकाण्ड में हैं। किन्तु जीवकाण्ड के इस प्रकारण में गाथा संख्या एक सौ अड़सठ है अर्थात् ज्ञान मार्गणा से भी यह मार्गणा बड़ी है। इसमें सोलह अधिकारों के द्वारा लेश्या कथन किया गया है, वे हैं—निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इन्हीं के कारण इसका विस्तार है। जीवसमास में तो केवल लक्षण का ही कथन है।

११. **सम्यक्त्वमार्गणा**—जीवसमास में इस मार्गणा का कथन पन्द्रह गाथाओं से है। उनमें-से छह गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। किन्तु जीवकाण्ड में इस प्रकरण में लगभग सौ गाथाएँ हैं। छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहते हैं। अतः ग्रन्थकार ने छह द्रव्यों का वर्णन नाम, उपलक्षण आदि द्वारा विस्तार से वर्णन किया है। कालद्रव्य का वर्णन तेरह गाथाओं से है। तथा पुद्गल द्रव्य के वर्णन में तेईस वर्गणाओं का वर्णन वर्गणाखण्ड के आधार पर दिया है। जीवसमास के अन्त में उसका उपसंहार करते हुए जो कथन है, वह व्यवस्थित नहीं है। उसमें-से कुछ गाथाएँ जीवकाण्ड में लेश्या और सम्यक्त्व मार्गणाधिकार में व्यवस्थित रूप में हैं।

इस प्रकार यद्यपि जीवकाण्ड की रचना का आधार जीवसमास रहा है, किन्तु जीवकाण्ड में उससे बहुत अधिक विषय है और वह अपने विषय का पूर्ण ग्रन्थ है। उसमें जीवसमास से सम्बद्ध विषयों के साथ जीवट्ठाण में प्रतिपादित विषयों का भी संग्रह है।

मूलाचार और जीवकाण्ड

मूलाचार जैन मुनि के आचार का एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें भी कुछ गाथाएँ ऐसी हैं जो जीवकाण्ड में भी हैं। उसके शीलगुणाधिकार में शीलगुणों का वर्णन संख्या, प्रस्तार, अक्षसंक्रमण, नष्ट और उद्दिष्ट रूप में किया गया है और जीवकाण्ड के प्रारम्भ में प्रमाद का वर्णन भी इसी रूप में है। अतः इस अधिकार की गाथा २० से २५ तक जीवकाण्ड में वर्तमान हैं और उनका क्रमांक ३६, ३७, ३८, ३९, ४१, ४२ है।

मूलाचार के अन्त में भी एक पर्याप्ति नाम का अधिकार है। उसमें २०६ गाथाएँ हैं। उसमें भी पर्याप्ति, योनि, वेद, लेश्या, जीवस्थान, गुणस्थान, मार्गणास्थान, लेश्या, कुल आदि का वर्णन है। सम्भवतया अहिंसा धर्म के पालक मुनि को जीव रक्षा के लिए जीवों के उत्पत्तिस्थानादि का जानना आवश्यक होने से इस आचार-विषयक ग्रन्थ के अन्त में इन सबका वर्णन किया है। फलतः इस प्रकारण की भी कुछ गाथाएँ जीवकाण्ड में हैं। किन्तु उन्हें आचार्य नेमिचन्द्र ने मूलाचार से संगृहीत किया है; ऐसा निर्णयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बहुत-सी गाथाएँ परम्परा से भी प्रवर्तित चली आती हैं।

जीवकाण्ड और संस्कृत पंचसंग्रह

अमितगति का संस्कृत 'पंचसंग्रह' प्राकृत 'पंचसंग्रह' को ही आधार बनाकर रचा गया है। किन्तु उसमें ऐसे भी विषय संगृहीत हैं जो पंचसंग्रह में नहीं हैं; किन्तु 'गोम्मटसार' में हैं। यहाँ हम उसके केवल जीव समास अधिकार को लेंगे।

१. जीवसमास में गुणस्थान में औदायिकादि भावों का कथन नहीं है, किन्तु जीवकाण्ड में है। संस्कृत पंचसंग्रह में ५२ आदि श्लोकों में यह कथन है।

२. जीवसमास में गुणस्थानों में जीवों की संख्या का कथन नहीं है। जीवकाण्ड के सम्यक्त्व मार्गणाधिकार में है। संस्कृत पंचसंग्रह में इसी प्रकरण में उसे ले लिया है।

३. जीवसमास में जीवसमास के भेदों का वर्णन एक से लेकर उन्नीस तक नहीं है। जीवकाण्ड में है। संस्कृत पंचसंग्रह में भी श्लोक १२० में यह कथन है।

४. जीवसमास में सान्तर मार्गणाओं का कथन नहीं है; जीवकाण्ड में है। संस्कृत पंचसंग्रह में भी श्लोक १३४-१३५ में यह कथन है।

५. जीवसमास के काय मार्गणाधिकार में त्रसों का निवासस्थान नहीं कहा है; जीवकाण्ड में कहा है। संस्कृत पंचसंग्रह में भी श्लोक १६१ में यह कथन है।

६. जीवसमास के योगमार्गणाधिकार में दस प्रकार के सत्यवचनों को नहीं गिनाया है; जीवकाण्ड में गिनाया है। संस्कृत पंचसंग्रह में भी श्लोक १६९-१७० में यह कथन आया है। इसी प्रकारण में जीवसमास में आहारक शरीर के आकारादि का वर्णन नहीं है; जीवकाण्ड में है। संस्कृत पंचसंग्रह में भी श्लोक १७६-१७७ में यह कथन है।

इससे स्पष्ट है कि अमितगति के सामने जीवकाण्ड वर्तमान था। अमितगति ने अपना पंचसंग्रह वि. सं. १०७० में पूर्ण किया था। इससे लगभग तीन दशक पहले 'गोम्मटसार' की रचना हो चुकी थी और अमितगति ने अपने पंचसंग्रह की रचना में उसका उपयोग किया है। पंचसंग्रह के शेष प्रकरण कर्मविषयक चर्चा से सम्बद्ध हैं; अतः कर्मकाण्ड के साथ उनकी तुलना कर्मकाण्ड के संस्करण में की जायेगी।

विषय-परिचय

गुणस्थान—जीवकाण्ड का मुख्य प्रतिपाद्य विषय गुणस्थान और मार्गणास्थान हैं। अतः यहाँ उनके सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है—

गुणस्थान का एक नाम जीवसमास भी है। जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं, उसे जीवसमास कहते हैं। जीव रहते हैं—गुणों में अर्थात् भावों में। और वे भाव हैं पाँच—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। कर्मों के उदय से होनेवाले भाव को औदयिक कहते हैं। कर्मों के उपशम से होनेवाले भाव को औपशमिक कहते हैं। कर्मों के क्षय से होने वाले भाव को क्षायिक कहते हैं। कर्मों के क्षयोपशम से होनेवाले भाव को क्षायोपशमिक कहते हैं। और कर्मों के उदयादि के बिना जीव के स्वभाव मात्र से उत्पन्न होनेवाले भाव को पारिणामिक कहते हैं। इन भावों या गुणों के साहचर्य से आत्मा भी गुण कहलाता है। इसी से जीवकाण्ड गाथा ८ में कहा है—

'दर्शन मोहनीय आदि कर्मों के उदय, उपशम आदि अवस्थानों के होनें पर उत्पन्न हुए जिन परिणामों से युक्त जीव देखे जाते हैं; उन जीवों को सर्वज्ञदेव ने गुण संज्ञावाला कहा है।'

'पंचास्तिकाय' में गाथा ५८ की व्याख्या करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रजी ने कहा है—कर्म के बिना जीव के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी नहीं होते। अतः क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक भाव कर्म कृत मानना चाहिए। पारिणामिक भाव तो अनादि निधन स्वाभाविक भाव है। क्षायिक भाव स्वभाव की व्यक्ति रूप होने से यद्यपि अनन्त है; तथापि कर्म के क्षय से उत्पन्न होने के कारण कर्मकृत ही है।

इस तरह चारों भावों को कर्मकृत बतला कर पुनः कहते हैं—अथवा उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम रूप चार अवस्थाएँ द्रव्य कर्म की हैं; एक पारिणामिक अवस्थावाले जीव की नहीं है। इसलिए उदयादि से होने वाले आत्मा के भावों को निमित्तभूत उस प्रकार की अवस्था रूप से स्वयं परिणमित होने के कारण द्रव्य कर्म भी व्यवहारनय से आत्मा के भावों का कर्ता होता है। अतः संसारी जीव यथायोग्य इन भाववाले होते हैं। इसी से वे चौदह गुणस्थानों में विभाजित किये गये हैं।

१. **मिथ्यादृष्टि**—पहला गुणस्थान मिथ्यादृष्टि है। जिनकी दृष्टि मिथ्या होती है, उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं। दृष्टि, रुचि, श्रद्धा, प्रतीति के विपरीत होने से वे जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। उन्हें धर्म में रुचि नहीं होती।

२. **सासादन सम्यग्दृष्टि**—अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो गया है और मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्व परिणाम को अभी प्राप्त नहीं हुआ है; किन्तु मिथ्यात्व के अभिमुख है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है। जीवकाण्ड गाथा २० में कहा है—सम्यग्दर्शन रूपी रत्न पर्वत से गिरकर जो जीव मिथ्यात्व रूपी भूमि के अभिमुख है, अतएव जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो गया है, वह जीव जब तक मिथ्यात्व में नहीं आता, तब तक सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

३. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि**—जिस जीव की दृष्टि, श्रद्धा, रुचि या प्रतीति समीचीन और मिथ्या दोनों प्रकार की रिली-मिली होती है; जैसे दही और गुड़ मिले होते हैं, उन्हें पृथक् करना शक्य नहीं है, उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

४. **असंयत सम्यग्दृष्टि**—जिसकी दृष्टि या श्रद्धा समीचीन है, वह सम्यग्दृष्टि है और संयम से रहित सम्यग्दृष्टि को असंयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इसके सम्बन्ध में जीवकाण्ड में कहा है—जो न तो इन्द्रियों के विषयों से विरत है और न त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा से विरत है, केवल जिन भगवान् के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों का श्रद्धान करता है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

५. **संयतासंयत**—जो संयत और असंयत दोनों होते हैं, वे संयतासंयत हैं। इनके सम्बन्ध में जीवकाण्ड, गा. ३१ में कहा है—

जो एकमात्र जिनदेव के वचनों में श्रद्धा रखते हुए एक ही समय त्रस हिंसा से विरत और स्थावर हिंसा से अविरत होता है, वह विरताविरत या संयतासंयत है।

आगे के सब गुणस्थान संयमी साधुओं के ही होते हैं।

६. **प्रमत्तसंयत**—प्रकर्ष से मत्त जीवों को प्रमत्त कहते हैं और अच्छी तरह से विरत या संयमी को संयत कहते हैं। जो प्रमत्त होते हुए भी संयमी है, वह प्रमत्त संयत है। यहाँ प्रमाद से वही प्रमाद विवक्षित है जो संयम का घातक नहीं है। यहाँ प्रमत्त शब्द अन्त दीपक है जो छठे से पहले के सब गुणस्थानों में प्रमाद का अस्तित्व सूचित करता है।

७. **अप्रमत्तसंयत**—जो पन्द्रह प्रमादों से रहित संयमी हैं, वे अप्रमत्त संयत हैं। उनके सम्बन्ध में जीवकाण्ड गा. ४६ में कहा है—जिसके समस्त प्रमाद नष्ट हो गये हैं, जो व्रत, गुण, शील से शोभित हैं। जो मोहनीय कर्म का न तो उपशम करता है न क्षय करता है; केवल ध्यान में लीन रहता है, वह अप्रमत्त संयत है। सातवें गुणस्थान से आगे के कुछ गुणस्थान दो श्रेणियों में विभाजित हैं : एक का नाम उपशम श्रेणी है और दूसरे का क्षपक श्रेणी। जिसमें जीव उत्तरोत्तर मोह का उपशम करता है, वह उपशम श्रेणी है। उपशम श्रेणी के गुणस्थान हैं—अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय और उपशान्त कषाय। उपशान्त कषाय में चढ़कर जीव नियम से गिरता है और सम्हलने पर पुनः ऊपर चढ़ सकता है; किन्तु क्षपक श्रेणि पर चढ़ा जीव मोह का क्षय करते हुए ऊपर चढ़कर मोक्ष प्राप्त करता है। क्षपक श्रेणि के गुणस्थान हैं—अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय, क्षीणमोह।

८. **अपूर्वकरण**—करण का अर्थ परिणाम है, और जो पहले प्राप्त नहीं हुए, उन्हें कहते हैं—अपूर्व। ऐसे अपूर्व परिणामवाले जीव अपूर्वकरण कहे हैं। अपूर्वकरण रूप परिणामों को धारण करनेवाले जीव मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम करने में तत्पर होते हैं।

९. **अनिवृत्तिकरण**—एक समयवर्ती जीवों के जिस प्रकार शरीर के आकार वर्णादि भिन्न-भिन्न होते हैं, उस प्रकार जिन एक समयवर्ती सब जीवों के परिणाम भिन्न-भिन्न न होकर समान ही होते हैं; क्योंकि इस गुणस्थान में एक समय में एक ही परिणाम है, अपूर्वकरण की तरह बहुत परिणाम नहीं होते, ऐसे समान परिणामवाले वे जीव अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती होते हैं। उनका ध्यान अत्यंत निर्मल होता है और वे उस ध्यानरूपी अग्नि से कर्मरूपी वन को जलानेवाले होते हैं।

१०. **सूक्ष्मसाम्पराय**—सूक्ष्म कषाय को सूक्ष्म साम्पराय कहते हैं। अर्थात् जिन जीवों के केवल सूक्ष्म लोभ कषायमात्र शेष रहती है, शेष समस्त मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय हो जाता है,वे सूक्ष्म साम्पराय संयमी कहलाते हैं।

११. **उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ**—जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है, उन्हें उपशान्त कषाय कहते हैं। जिनका राग नष्ट हो गया है, उन्हें वीतराग कहते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मों को छद्म कहते हैं, उनमें जो रहते हैं, उन्हें छद्मस्थ कहते हैं। जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ हैं, वे वीतराग छद्मस्थ हैं। जो उपशान्त कषाय होते हुए वीतराग छद्मस्थ हैं, वे उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ हैं। इस गुणस्थान में समस्त कषाय (मोहनीयकर्म) उपशान्त हो जाती हैं, अतः उन्हें उपशान्त कषाय कहते हैं।

१२. **क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ**—जिनकी कषाय क्षीण हो गई हैं, वे क्षीण कषाय हैं। और क्षीण कषाय होने के साथ जो वीतराग छद्मस्थ हैं, वे क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ हैं। उनका सम्पूर्ण मोह नष्ट हो जाता है।

१३. **सयोगकेवली**—जिस ज्ञान में इन्द्रिय, प्रकाश और मन की अपेक्षा नहीं होती, उसे केवल अर्थात् असहाय कहते हैं। वह केवल ज्ञान जिनके होता है, उन्हें केवली कहते हैं। और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। जो योग सहित होते हैं, उन्हें सयोग कहते हैं। इस तरह जो योग सहित केवल ज्ञानी होते हैं, उन्हें सयोगकेवली कहते हैं। इसमें जो सयोग पद है, वह नीचे के सब गुणस्थानों में योग का अस्तित्वसूचक है।

१४. **अयोगकेवली**—जिनके योग नहीं होता, वे अयोग होते हैं। ऐसे योगरहित केवल ज्ञानी अयोगकेवली होते हैं। जीवकाण्ड गा. ६५ में कहा है—जिन्होंने अठारह हजार शील के स्वामित्व को प्राप्त कर लिया है, जिनके सम्पूर्ण कर्मों का आस्रव रुक गया है तथा नवीन कर्म बन्धन से भी रहित हैं, वे अयोगकेवली होते हैं। इन चौदह गुणस्थानों से रहित सिद्ध जीव होते हैं। वे कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होंने अपना सब करणीय कर लिया है, कुछ करना शेष नहीं है। उनके सब कर्म बन्धन नष्ट हो गये हैं।

इस प्रकार मिथ्यात्व से ऊपर चढ़ते हुए मोक्षमार्गी संसारी जीवों के भावों के उतार-चढ़ाव को लेते हुए ये चौदह गुणस्थान कहे गये हैं। ये समस्त संसारी जीवों की हीन और उच्चदशा का चित्र उपस्थित करके मनुष्य को अपने विकास की प्रेरणा देते हैं।

मार्गणा

मार्गणा का अर्थ है—खोजना। चौदह गुणस्थान जिसमें या जिनके द्वारा खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवकाण्ड गा. १४१ में कहा है कि परमागम में जीव जिस प्रकार देखे गये हैं, उसी प्रकार से वे जिन नारक आदि पर्यायों में या जिन नारक आदि पर्यायों के द्वारा खोजे जाते हैं, वे मार्गणा हैं और वे चौदह हैं। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार इनमें या इनके द्वारा जीवों को खोजा जाता है।

१. **गति**—गति नाम कर्म के उदय से जीव की जो चेष्टाविशेष होती है, उसे गति कहते हैं अथवा जिसके निमित्त से जीव चतुर्गति में जाते हैं, उसे गति कहते हैं। गति चार हैं—नरक गति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देव गति। नरक गति में और देवगति में प्रारम्भ के चार ही गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचगति में प्रारम्भ के पाँच होते हैं, मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान होते हैं।

२. **इन्द्रिय**—इन्द्र अर्थात् आत्मा के चिह्नविशेष को जिनके द्वारा वह जानता है, इन्द्रिय कहते हैं। वे पाँच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये इन्द्रियाँ क्रम से एक-एक बढ़ती हुई होती हैं। इसी से जीव एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक जीव एकेन्द्रिय होते हैं। उन्हें ही स्थावर कहते हैं। तिर्यंच एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक होते हैं। किन्तु नारकी मनुष्य और देव पंचेन्द्रिय ही होते हैं। पंचेन्द्रिय मनरहित और मनसहित भी होते हैं, उन्हें क्रम से असंज्ञी और संज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक सब मनरहित असंज्ञी होते हैं। इनमें पहला ही गुणस्थान होता है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के भी पहला गुणस्थान होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय के ही चौदह गुणस्थान हो सकते हैं।

३. **काय**—काय शरीर को कहते हैं। उसके दो भेद हैं। स्थावर और त्रस, एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर कहते हैं, उनके पाँच भेद पृथिवीकाय आदि हैं। और दोइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक को त्रस कहते हैं। स्थावरों के एक पहला ही गुणस्थान होता है। त्रसों के चौदह तक हो सकते हैं।

४. **योगमार्गणा**—मन-वचन-काय के निमित्त से होनेवाली क्रिया से युक्त आत्मा के जो शक्ति विशेष उत्पन्न होती है जो कर्मों के ग्रहण में कारण है, उसे योग कहते हैं। योग के तीन भेद हैं—मनोयोग, वचनयोग, काययोग। मनोयोग के चार भेद हैं—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। इसी तरह वचनयोग के भी चार भेद हैं।

सत्य और अनुभय मनोयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त गुणस्थानों में होता है। असत्य मनोयोग और उभयमनोयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त होता है।

अनुभय वचन योग दोइन्द्रिय से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त होता है। सत्यवचनयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त होता है। असत्य वचन योग और उभय वचन योग संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यंत होते हैं।

काय योग के सात भेद हैं—औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, आहारकाययोग, अहारकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग। उदार अर्थात् महत्शरीर को औदारिक कहते हैं। उसके निमित्त से होनेवाले योग को औदारिक काययोग कहते हैं। औदारिक जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक मिश्र कहलाता है, उसके द्वारा होनेवाला योग औदारिक मिश्रकाययोग है। अनेक गुणों और ऋद्धियों से युक्त शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं। उसके द्वारा होने वाले योग को वैक्रियिककाययोग कहते हैं। वैक्रियिक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक वैक्रियिक मिश्र कहलाता है। उसके द्वारा जो योग होता है, वह वैक्रियिक मिश्रकाययोग है। जिसके द्वारा मुनि सन्देह होने पर सूक्ष्म अर्थों को ग्रहण करता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं, उससे जो योग होता है, उसे आहारक काययोग कहते हैं। जब तक आहारक शरीर पूर्ण नहीं होता, तब तक उसे आहारक मिश्र कहते हैं और उससे होनेवाले योग को आहारक मिश्र योग कहते हैं। कर्म ही कार्मण शरीर है। उसके निमित्त से जो योग होता है, वह कार्मणकाय योग है। तिर्यंच और मनुष्यों के औदारिककाय योग औदारिक मिश्रकाययोग होते हैं। देवों और नारकियों के वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिक मिश्र काययोग होते हैं। ऋद्धि प्राप्त मुनियों के आहारक काययोग आहारक मिश्रकाययोग होते हैं। विग्रहगति में स्थित चारों गतियों के जीवों के तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवलिजिन के कार्मणकाययोग होता है।

औदारिककाययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, सयोगकेवली पर्यन्त गुणस्थानों में होते हैं। वैक्रियिक काययोग वैक्रियिक मिश्र काययोग प्रारम्भ के चार गुणस्थानों में होते हैं। आहारक काययोग आहारक मिश्र काययोग एक प्रमत्त संयत गुणस्थान में ही होता है। कार्मणकाययोग विग्रहगति में तथा सयोगकेवली के समुद्घात समय में होता है।

५. **वेदमार्गणा**—वेद तीन हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद। स्त्रीवेद और पुरुषवेद असंज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। नपुंसक वेद एकेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्तिगुणस्थान पर्यन्त होता है। उसके बाद के सब गुणस्थान वाले जीव वेद रहित होते हैं। मूल वेद के दो भेद हैं—द्रव्यवेद और भाववेद। शरीर में स्त्री या पुरुष का चिह्न होता है—लिंग, योनि, आदि वह द्रव्यवेद है। द्रव्यवेद तो शरीर के साथ सटा रहता है। रमण की भावना का नाम भाववेद है; वही नौवें गुणस्थान तक रहता है। उक्त कथन भाववेद की अपेक्षा है।

नारकी सब नपुंसक वेदी होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय पर्यन्त सब तिर्यंच भी नपुंसक वेदी होते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय से लेकर सब तिर्यंचों में तीनों वेद होते हैं। मनुष्यों में भी तीनों वेद होते हैं। देवों में स्त्री-पुरुष दो ही वेद होते हैं।

६. **कषायमार्गणा**—क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद दृष्टान्त द्वारा जीवकाण्ड में कहे हैं। क्रोध के चार भेद—पत्थर की लकीर, पृथ्वी की रेखा, धूलि की रेखा और जल की रेखा के समान। अर्थात् जैसे ये रेखायें होती हैं, जो नहीं मिटतीं या देर-सबेर मिटती हैं, उसी तरह क्रोध कषाय है। मान के चार भेद हैं—पर्वत के समान, हड्डी के समान, काष्ठ के समान और बेंत के समान। विनम्र न होने का नाम मान है। पर्वत कभी नमता नहीं है और बेंत झट नम जाता है। इसी तरह मान के चार प्रकार हैं।

माया के चार प्रकार हैं—बाँस की जड़, मेढ़े के सींग, बैल का मूतना और खुरपा के समान। जैसे इनमें टेढ़ापन अधिक-कम होता है; वही स्थिति माया की है।

लोभ के चार प्रकार हैं—कृमिराग के समान, गाड़ी के चक्के के मल के समान, शरीर के मल के समान और हल्दी के रंग के समान। जैसे-जैसे इनका रंग गाढ़ा-हल्का होता है, वैसे ही लोभ भी होता है।

क्रोध, मान, माया, कषाय, एकेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्ति, गुणस्थान पर्यन्त होती हैं। लोभकषाय सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त होती है। अन्त के शेष चार गुणस्थान कषाय रहित हैं।

७. **ज्ञानमार्गणा**—इसके आठ भेद हैं—मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी। जो जानता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान दो प्रकार का है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष के दो भेद हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। पाँच इन्द्रियों और मन से जो पदार्थ का ग्रहण होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञानपूर्वक जो विशेष ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। जो श्रुतज्ञान शब्द के निमित्त से होनेवाले मतिज्ञानपूर्वक होता है, उसके दो भेद हैं—अंग श्रुत और अंगबाह्य। अंगश्रुत के बारह भेद हैं और अंगबाह्य के चौदह भेद हैं। जीवकाण्ड में श्रुतज्ञान के भेदों का विस्तार से कथन ज्ञानमार्गणाधिकार में है। इन्द्रियों से होनेवाले मिथ्यात्व सहित ज्ञान को मति अज्ञान कहते हैं और उस पूर्वक होनेवाले विशेष ज्ञान को श्रुत-अज्ञान कहते हैं। और मिथ्यात्व सहित अवधिज्ञान को विभंग कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन भेद हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। सम्पूर्ण मूर्त पदार्थों को इन्द्रियादि की सहायता के बिना साक्षात् जाननेवाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। तथा देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेद विषयों को जानने की अपेक्षा से हैं। मन का आश्रय लेकर मनोगत विचारों को साक्षात् जाननेवाले ज्ञान को मनःपर्यय कहते हैं। अर्थात् जिसका भूतकाल में चिन्तवन किया है, अथवा भविष्यकाल में चिन्तवन होगा, अथवा जो अर्धचिन्तित है, इत्यादि अनेक भेद रूप दूसरे के मन में स्थित पदार्थ को जो जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है। त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को साक्षात् जाननेवाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। एकेन्द्रिय से सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी जीव होते हैं। विभंगज्ञान संज्ञीमिथ्यादृष्टि जीवों के तथा सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आदि के तीनों ही ज्ञान-अज्ञान से मिश्रित होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, ये तीनों असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। मनःपर्ययज्ञान प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। केवलज्ञान सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धों में होता है।

८. **संयममार्गणा**—इसके भेद इस प्रकार हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयतासंयत और असंयत। मैं सभी प्रकार के सावद्ययोग का त्याग करता हूँ—इस प्रकार सर्वसावद्ययोग के त्याग को सामायिक संयम कहते हैं। उस एक व्रत को छेद करके अर्थात् दो-तीन आदि भेद करके व्रतों के धारण करने को छेदोपस्थापना संयम कहते हैं। तीस वर्ष तक इच्छानुसार भोग भोगकर सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम को धारण करके प्रत्याख्यान पूर्व में पारंगत होकर जिसने तपोविशेष से परिहार ऋद्धि को प्राप्त कर लिया है, ऐसा जीव तीर्थंकर के पादमूल में परिहार विशुद्धि संयम को धारण करता है। इस प्रकार संयम को धारण करके जो उठना-बैठना, भोजन करना, आदि सब व्यापारों में प्राणियों की हिंसा के परिहार में दक्ष होता है, उसके परिहार विशुद्धि संयम होता है। अब साम्पराय कषाय को कहते हैं। जिसकी कषाय सूक्ष्म हो गयी है, उसे सूक्ष्म साम्पराय कहते हैं। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम को धारण करनेवाले साधु जब अत्यन्त सूक्ष्म कषायवाले हो जाते हैं, तब उनके सूक्ष्म साम्पराय संयम होता है। सम्पूर्ण कषायों का अभाव होने पर यथाख्यात संयम होता है।

प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगकेवलीपर्यन्त सब मनुष्य संयमी होते हैं। सामायिक और छेदोस्थापना प्रमत्तसंयत से लेकर अनिवृत्तिगुणस्थान पर्यन्त होते हैं। परिहारविशुद्धि संयम प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयत दो

गुणस्थानों में होता है। सूक्ष्म साम्पराय संयम एक सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में होता है। यथाख्यात संयम अन्त के चार गुणस्थानों में होता है। संयतासंयत एक संयतासंयत या देशसंयत गुणस्थान में ही होता है। असंयम एकेन्द्रिय से लेकर चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है।

९. **दर्शनमार्गणा**—इसके चार भेद हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। चक्षु के द्वारा सामान्य पदार्थ के ग्रहण को चक्षुदर्शन कहते हैं। शेष इन्द्रिय और मन से जो प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। परमाणु से लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त मूर्त पदार्थों के प्रत्यक्ष प्रतिभास को अवधिदर्शन कहते हैं। लोक-अलोक को प्रकाशित करनेवाला केवलदर्शन है जो केवलज्ञान के साथ होता है। शेष दर्शन ज्ञान से पूर्व होते हैं। चक्षुदर्शन चौइन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। अचक्षुदर्शन एकेन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। अवधिदर्शन असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। विभंगदर्शन का अन्तर्भाव अवधिदर्शन में होता है। मनःपर्ययज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसलिए मनःपर्यय दर्शन नहीं है।

केवलदर्शन सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धों के होता है।

१०. **लेश्यामार्गणा**—कषाय से अनुरंजित योग-प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। कषाय का उदय छह प्रकार है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर, मन्दतम। अतः लेश्या भी छह हो जाती है—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। इनकी पहचान—तीव्र क्रोध का होना, वैर को न छोड़ना, धर्म और दया से रहित होना, मन्द होना, विवेकहीन होना, पाँच इन्द्रियों के विषयों का लम्पटी होना, मानी और मायावी होना कृष्णलेश्यावाले के लक्षण हैं। अतिनिद्रालु होना, दूसरों को ठगने में दक्ष होना, धनधान्य में तीव्र लालसा का होना, नीललेश्यावाले के लक्षण हैं। दूसरों पर क्रोध करना, निन्दा करना, उन्हें दुःख देना, उन पर दोष लगाना, उनका विश्वास नहीं करना, अपनी स्तुति सुनकर सन्तुष्ट होना, युद्ध में मरने की चाहना होना, कार्य-अकार्य को न देखना कापोतलेश्यावाले के लक्षण हैं।

जो कार्य-अकार्य, सेव्य-असेव्य को जानता है, समदर्शी है, दया-दान में तत्पर है, कोमल परिणामी है वह पीतलेश्यावाला है। त्यागी, भद्रपरिणामी, निर्मल, कार्य करने में उद्यत होना, गुरुजनों की पूजा में रत होना पद्मलेश्यावाले के लक्षण हैं।

पक्षपात नहीं करना, निदान नहीं बाँधना, सबके साथ समान व्यवहार करना, इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में राग-द्वेष नहीं करना शुक्ललेश्यावाले के लक्षण हैं।

कृष्ण, नील, कापोतलेश्या एकेन्द्रिय से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त होती है। पीत और पद्मलेश्या संज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान पर्यन्त होती है। शुक्ललेश्या संज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त होती है। तेरहवें गुणस्थान से आगे सभी जीव लेश्यारहित होते हैं।

११. **भव्यत्वमार्गणा**—जिन्हें आगे मुक्ति प्राप्त होगी, उन्हें भव्य कहते हैं। उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं। अभव्य के केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है। भव्यत्व और अभव्यत्वभाव कर्मजन्य नहीं है, स्वाभाविक है।

१२. **सम्यक्त्वमार्गणा**—जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्यों, पाँच अस्तिकायों और नौ पदार्थों के श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—दर्शनमोहनीय के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है, वह क्षायिक सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व श्रद्धान को भ्रष्ट करनेवाले वचनों से, युक्तियों से, भयकारक रूपों से, अधिक क्या तीनों लोकों से भी श्रद्धान से विचलित नहीं होता।

सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति का उदय रहते हुए पदार्थों का जो चल, मलिन और अगाढ़दोष से युक्त श्रद्धान होता है, वह वेदक सम्यक्त्व है। दर्शन मोह के उपशम से कीचड़ के नीचे बैठ जाने से निर्मल जल के समान जो निर्मल श्रद्धान होता है, वह उपशम-सम्यग्दर्शन है।

क्षायिक सम्यक्त्व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त होता है। वेदक सम्यक्त्व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान पर्यन्त होता है। उपशम सम्यक्त्व असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशान्त कषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि अपने-अपने गुणस्थान में होते हैं।

१३. **संज्ञी मार्गणा**—इसके दो भेद हैं—संज्ञी और असंज्ञी। मन सहित जीवों को संज्ञी और मन रहित जीवों को असंज्ञी कहते हैं। संज्ञी मिथ्यात्व से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। असंज्ञी के प्रथम ही गुणस्थान होता है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यन्त जीव असंज्ञी होते हैं।

१४. **आहार मार्गणा**—तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने का नाम आहार है। एकेन्द्रिय से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त जीव आहारक होते हैं। विग्रह गति को प्राप्त मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि तथा समुद्घात करते हुए केवली, अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक होते हैं।

इस प्रकार यह गुणस्थानों और मार्गणाओं का संक्षिप्त विवेचन है। जीवकाण्ड में इसी का विस्तार है।

गोम्मटसार की टीकाएँ

लगभग पाँच दशक पूर्व भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता के अन्तर्गत गांधी हरिभाई देवकरण जैन ग्रन्थमाला से 'गोम्मटसार' का बृहत्संस्करण प्रकाशित हुआ था। उसमें मूलग्रन्थ के साथ दो संस्कृत टीकाएँ तथा एक ढूंढारी भाषा टीका दी गयी थी। संस्कृत टीकाओं का नाम जीवतत्त्वप्रदीपिका और मन्दप्रबोधिका है और ढूंढारी भाषा टीका का नाम सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका है। ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका को केशववर्णीकृत और मन्दप्रबोधिका को अभयचन्द्राचार्यकृत अंकित किया है तथा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के कर्ता पं. टोडरमलजी हैं।

इस तरह उस समय तक उपलब्ध टीकाओं के साथ इस संस्करण का सर्वप्रथम प्रकाशन हुआ था। और उसके साथ ही तीनों टीकाएँ भी प्रथम बार ही प्रकाश में आयी थीं। इन तीनों टीकाओं में से मन्द-प्रबोधिका तो अपूर्ण है। मुद्रित संस्करण में जीवकाण्ड की गाथा ३८३ तक ही यह टीका मुद्रित है। अतः यह टीका पूर्ण ग्रन्थ पर नहीं है। केवल एक जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका और तदनुसारी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका ही परिपूर्ण है।

जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के कर्तृत्व में भ्रम

जैसा ऊपर लिखा है कि इस संस्करण के मुख पृष्ठ पर जीवतत्त्वप्रदीपिका का कर्ता केशववर्णी को लिखा है। इस टीका की भाषा टीका करनेवाले पं. टोडरमलजी ने भी इसे केशववर्णीकृत लिखा। उन्होंने अपनी भाषा टीका के अन्त में लिखा है—

केशववर्णी भव्यविचार कर्णाटक टीका अनुसार।
संस्कृत टीका कीनी यहु जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥

यह हिन्दी पद्य जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के अन्तिम पद्य का ही अनुवाद है और उसी पद्य की अशुद्धि के कारण यह भ्रम प्रवर्तित हुआ कि संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका केशववर्णीकृत है और वह जिस कर्णाटकवृत्ति के आधार पर रची गयी है, वह चामुण्डराय विरचित है; क्योंकि गोम्मटसार के अन्त में उसके रचयिता नेमिचन्द्राचार्य ने चामुण्डराय की एक वृत्ति का निर्देश करते हुए उसका नाम वीरमार्तण्डी लिखा है। वीर मार्तण्ड चामुण्डराय की एक उपाधि थी। किन्तु इस टीका का कोई पता नहीं चला।

स्व. डॉ. ए.एन. उपाध्ये के एक लेख का हिन्दी अनुवाद अनेकान्त वर्ष ४, कि. १, पृ. ११३ पर 'गोम्मटसार की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, उसका कर्तृत्व और समय' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उसमें विद्वान् लेखक ने विद्वानों में प्रचलित इस भ्रम का निवारण सप्रमाण किया था कि संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के कर्ता केशववर्णी हैं और उन्होंने किसी कर्णाटकवृत्ति के आधार पर उसे रचा है। इससे पूर्व में केशववर्णी की कर्णाटकवृत्ति से विद्वान् अपरिचित थे। डॉ. उपाध्ये ने ही अपने उस लेख में उससे उद्धरण उपस्थित करके उसके साथ में संस्कृत टीका की तुलना करते हुए संस्कृत टीका को उसकी अनुगामिनी बतलाया था।

संस्कृत टीका के रचयिता ने, जिनका नाम नेमिचन्द्र है, अपनी टीका प्रारम्भ करते हुए प्रथम मंगल श्लोक कहा है—

नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥

इसमें वह स्पष्ट कहते हैं कि मैं कर्णाटवृत्ति के आधार से गोम्मटसार की टीका करता हूँ। किन्तु वह कर्णाटवृत्ति किसकी है, उसका नाम क्या है; इसका निर्देश वह नहीं करते। परन्तु अपनी टीका के अन्त में वह लिखते हैं—

'श्रित्वा कर्णाटकीं वृत्तिं वर्णिश्रीकेशवैः कृताम्।
कृतेयमन्यथा किंचित् विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ॥'

'इसमें स्पष्ट कहा है कि केशववर्णीकृत कर्णाटकवृत्ति का आश्रय लेकर यह संस्कृत टीका रची गयी है।' किन्तु भ्रम फैलने का कारण अशुद्ध पाठ है जो कलकत्ता संस्करण में छपा है। उसमें 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः' छपा है। 'कृताः' के स्थान में कृतिः पाठ होने से यह भ्रम प्रवर्तित हुआ।

पं. टोडरमलजी ने इसी का पद्यानुवाद किया है जो ऊपर दिया गया है—

इस पद्यानुवाद का भी यही अर्थ है कि केशववर्णी ने कर्णाटक टीका के अनुसार संस्कृत टीका रची है। उन्होंने अपनी टीका में अन्यत्र भी केशववर्णी को ही संस्कृत टीकाकार लिखा है।

जीवकाण्ड कलकत्ता संस्करण, पृ. ७५५ पर उनकी टीका में स्पष्ट छपा है—केशववर्णी संस्कृत टीकाकार।

पण्डित टोडरमलजी तो महाविद्वान् थे। उनके सामने भी 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः' पाठ आया प्रतीत होता है। शुद्ध पाठ 'कृताः' नहीं आया। उसी से यह भ्रम प्रवर्तित हुआ है; क्योंकि उन्हीं की टीका के आधार पर ही 'गोम्मटसार' का पठन-पाठन चला है। संस्कृत टीका का वाचन तो इस काल में किसी विरल ही विद्वान् ने किया हो।

अब तो केशववर्णी की कर्नाटक टीका के प्रकाश में यह हस्तामलकवत् स्पष्ट है कि जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका उनकी कृति नहीं है। किन्तु उनकी कर्णाटक वृत्ति का नाम भी जीवतत्त्वप्रदीपिका ही है जो प्रत्येक अधिकार के अन्त में आता है। संस्कृत टीकाकार ने उसे भी ज्यों का त्यों अपना लिया है। उसमें भी परिवर्तन नहीं किया, इससे भी भ्रम को बल मिल सका है।

इस तरह वर्तमान में गोम्मटसार पर तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं—अभयचन्द्राचार्यकृत मन्दप्रबोधिका, केशववर्णीकृत कर्नाटकवृत्ति और तदनुसारी संस्कृत टीका। इनमें से प्रथम अपूर्ण है। शेष दोनों परिपूर्ण हैं। किन्तु यह कहना ही उचित होगा कि 'गोम्मटसार' पर केवल एक ही टीका उपलब्ध है और वह है—जीवतत्त्वप्रदीपिका। उसका मूल रूप कुछ संस्कृत मिश्रित कर्नाटक भाषा में है। उसके कर्ता केशववर्णी हैं। उसी का संस्कृत रूपान्तर संस्कृत टीका है। उसमें केशववर्णी की टीका से नवीन कुछ भी नहीं है, किन्तु कहीं-कहीं उसमें प्रयुक्त गणितादिकी प्रक्रिया को संक्षिप्त ही कर दिया गया है। किन्तु उसके इस संस्कृत

रूपान्तर ने ही जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका से स्वाध्यायी जनों को लाभान्वित किया है। उसका यह संस्कृत रूपान्तर न होता, तो पं. टोडरमलजी ढूंढारी भाषा में उसका अनुवाद नहीं कर सकते थे।

मन्दप्रबोधिका टीका

यह अपूर्ण टीका गोम्मटसार जीवकाण्ड की तीन सौ तेरासी गाथा पर्यन्त ही उपलब्ध है। अर्थात् उसके आधे भाग से कुछ अधिक पर ही है। कलकत्ता संस्करण में प्रथम संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका दी गयी है। उसके नीचे मन्दप्रबोधिका दी गयी है। गाथा 383 के नीचे प्रथम जीवतत्त्वप्रदीपिका देकर मन्दप्रबोधिका के सामने एक वाक्य दिया है–

'श्रीमदभयचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्तिविहितव्याख्यानं विश्रान्तमिति कर्णाटवृत्त्यनुसारमनुवदति।'

अर्थात् श्रीमान् अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के द्वारा किया गया व्याख्यान (टीका) समाप्त हुआ, इसलिए कर्णाटवृत्ति के अनुसार अनुवाद करता हूँ।

यह वाक्य किसका हो सकता है? केशववर्णी की टीका में तो इस प्रकार का वाक्य नहीं है; न वह ऐसा लिख ही सकते हैं, क्योंकि उनकी टीका ही कर्णाटवृत्ति है। वह उसके अनुसार अनुवाद करने की बात क्यों लिखेंगे? यह वाक्य तो संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के रचयिता का ही हो सकता है। हमारे पास गोम्मटसार जीवकाण्ड की जो हस्तलिखित प्रति है, उसमें वह पत्र ही नहीं है। फिर भी हमें यह वाक्य उनका ही प्रतीत होता है। किन्तु उस पर भी यह आशंका होना स्वाभाविक है कि संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका के कर्ता तो प्रारम्भ में ही यह लिख चुके हैं कि कर्णाटवृत्ति का आश्रय लेकर मैं यह टीका लिखता हूँ। ऐसी स्थिति में मन्दप्रबोधिका के समाप्त होने पर उन्होंने ऐसा क्यों लिखा? इसके समाधान के लिए हमें तीनों टीकाओं का मिलान करना आवश्यक प्रतीत हुआ। और उससे यह निष्कर्ष निकला कि तीनों की वाक्य-रचना और विषय-वर्णन में बहुत साम्य है। अन्तर केवल कर्णाटक भाषागत है। अर्थात् मन्दप्रबोधिका के संस्कृत वाक्य तथा कर्नाटवृत्ति के कन्नड़ वाक्यों में भी समानता है। अतः कर्णाटवृत्ति का आश्रय लेकर संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका की रचना करनेवाले ने कर्णाटवृत्ति का संस्कृत रूपान्तर करने में मन्दप्रबोधिका से मदद ली हो, यह सम्भव है। मन्दप्रबोधिका समाप्त होने पर उन्हें केवल कर्णाटवृत्ति का ही आश्रय लेना पड़ा है, उसी की सूचना उन्होंने इस वाक्य के द्वारा की प्रतीत होती है।

इसका स्पष्ट आशय यह है कि केशववर्णी के सामने कर्णाटवृत्ति रचते समय मन्दप्रबोधिका वर्तमान थी। उन्होंने अपनी कन्नड़ वृत्ति में उसके रचयिता अभयचन्द्र चक्रवर्ती का निर्देश किया है। यह बात डॉ. ए.एन. उपाध्ये ने अपने उक्त लेख में तीनों टीकाओं से एक उद्धरण देकर स्पष्ट की है। हम भी यहाँ उस उद्धरण को देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। वह उद्धरण इस प्रकार है--

देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं ॥१३॥

मन्दप्रबोधिका–

देशविरते प्रमत्तविरते इतरस्मिन्नप्रमत्तविरते च क्षायोपशमिकचारित्रलक्षण एव भावो वर्तते। देशविरते प्रत्याख्यानावरणकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणे क्षये तेषामेव हीनानुभागरूपतया परिणतानां सदवस्थालक्षणे उपशमे च, देशघातिस्पर्धकोदयसहिते उत्पन्नं देशसंयमरूपचारित्रं क्षायोपशमिकम्। प्रमत्तविरते तीव्रानुभागं संज्वलनकषायाणां प्रागुक्तलक्षणक्षयोपशमसमुत्पन्नसंयमरूपं प्रमादमलिनं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकम्। अत्र संज्वलानुभागानां प्रमादजनकत्वमेव तीव्रत्वम्। अप्रमत्तविरते मन्दानुभागसंज्वलनकषायाणांप्रागुक्त क्षयोपशमोत्पन्नसंयमरूपं निर्मलं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकम्।

कन्नड़वृत्ति—

'देशविरतनोळं प्रमत्तसंयतनोळं इतरनप्प अप्रमत्तसंयतनोळं क्षायोपशमिक संयममक्कुं। देशसंयतापेक्षेयिंदं प्रत्याख्यानकषायंगळुदपि सल्पट्ट देशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागोदयदोडने उदयमनैय्दे क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्धकंगळ नंतबहुभागंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळमवरुपरितन निषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्पुपशममुंटागुत्तिरलु समुद्भूतमप्पुदरिंदं चारितमोहमं कुरुत्तु देशसंयममदु क्षायोपशमिकभावमेंदु पेळल्पट्टुदु। अंते प्रमत्ताप्रमत्तर्ग संज्वलनकषायंगळ उदितदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागदोडने उदयमनैय्दे क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितोदयनिषेकंगळ् सर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्प उपशममुंटागुत्तिरलु समुत्पन्नमप्पुदरिंदं चारित्रमोहमं कुरुतिल्लियुं सकलसंयममुं क्षायोपशमिकभावमेंदुं पेळल्पडुवुदेंवुदु श्रीअभयसूरिसिद्धान्तचक्रवर्तिगळभिप्रायं।'

संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका—

'देशविरते प्रमत्तसंयते तु पुनः इतरस्मिन् अप्रमत्तसंयते च क्षायोपशमिकसंयमो भवति। देशसंयतापेक्षया प्रत्याख्यानकषायाणां उदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागोदयेन सहानुदयागतक्षीयमाणविवक्षितनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानामुदयाभावलक्षणक्षये तेषामुपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुद्भूतत्वात्। चारित्रमोहं प्रतीत्य देशसंयमः क्षायोपशमिकभाव इत्युक्तम्। तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोरपि संज्वलनकषायाणामुदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागेन सह अनुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानां उदयाभावलक्षणक्षये तेषां उपरितननिषेकाणामनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्यात्रापि सकलसंयमोऽपि क्षायोपशमिको भाव इति भणितं, इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्यभिप्रायः।'

तेरहवीं गाथा के व्याख्यान मन्दप्रबोधिका टीका के रचयिता श्री अभयचन्द्र सूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती ने प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव कहा है। उसी का निर्देश केशववर्णी ने अपनी कर्णाटवृत्ति में किया है और उसी का अनुवाद संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका में है। इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि मन्दप्रबोधिका केशववर्णी के सम्मुख थी। तथा केशववर्णी की टीका कन्नड़ में होते हुए भी संस्कृत शब्दबहुल है। उसमें अधिकतर विभक्तियाँ और क्रियापद ही कन्नड़ भाषा के हैं। सैद्धान्तिक सब शब्द वही हैं जो संस्कृत में प्रचलित हैं। अतः उसका संस्कृत रूपान्तर करने में संस्कृत टीकाकार को मन्दप्रबोधिका का साहाय्य अवश्य मिला है। दोनों टीकाओं के मिलान से यह स्पष्ट हो जाता है। किन्तु संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका के रचयिता ने स्वयं मन्द्रप्रबोधिका का कोई अनुसरण नहीं किया है, कर्नाटवृत्ति और मन्दप्रबोधिका में जहाँ शब्दसाम्य है, वहीं उसके संस्कृत रूपान्तर में शब्दसाम्य पाया जाता है। यह बात भी ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है।

मन्दप्रबोधिका प्रारम्भिक अवतार वाक्य ही विस्तृत होकर कर्नाटकवृत्ति का अवतार वाक्य बनाया गया है।

मन्दप्रबोधिका का अवतार वाक्य इस प्रकार है—

'श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यन्तरनिवासि प्रवादिमदान्धसिंधुरसिंहायमानसिंहनन्दिमुनीन्द्राभिनन्दित-गंगवंशललामराजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेय-श्रीमद्राचमल्लदेव महीवल्लभ महामात्य पदविराजमान-रणरंगमल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषण सम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणनामसमासादितकीर्तिकान्त-श्रीचामुण्डरायभव्यपुण्डरीकद्रव्यानुयोग-प्रश्नानुरूपं महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्तजीवस्थानाख्यप्रथमखण्डार्थसंग्रहं गोम्मटसारनामधेयपञ्चसंग्रहं शास्त्रं प्रारभमाणः'.....

केशववर्णी की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका में भी प्रथम गाथा का अवतार वाक्य शब्दशः प्रायः यही है।

अन्तर केवल इतना है कि उसमें 'जीवस्थान-क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्डमहाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समृद्धृत्य गोम्मटसार' लिखा है। तथा आगे मंगलादि की चर्चा विस्तार से की है। इसके सिवाय इस अवतार वाक्य से पहले टीका के आरम्भ में कन्नड़ पद्यों के द्वारा चौबीस तीर्थंकरों और उनके गणधरों का स्तवन किया है। उसके पश्चात् उक्त अवतार वाक्य है। उसके अनन्तर त्रिलोकप्रज्ञप्ति की प्रारम्भिक गाथाओं को देकर मंगल, निमित्त, हेतु, आदि की विस्तृत चर्चा है।

केशववर्णी की कन्नड़ टीका को संस्कृत रूप देनेवाले नेमिचन्द्र ने इस सब विस्तृत चर्चा को नहीं अपनाया है। आगे भी कहीं-कहीं गणितादि सम्बन्धी विस्तृत चर्चाओं को संक्षिप्त कर दिया है; किन्तु कोई मौलिक प्रसंग कहीं भी छूटा नहीं है।

केशववर्णी का वैदुष्य और समय

केशववर्णी ने 'गोम्मटसार' के प्रत्येक अधिकार की अन्तिम पुष्पिका में अपने गुरु अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती का उल्लेख बहुत ही सम्माननीय शब्दों में किया है। उन्हें श्रीमत् राय राजगुरु भूमण्डलाचार्य, महावादवादीश्वर वादिपितामह, विद्वज्जनचक्रवर्ती लिखा है और अपने को उनके चरणकमलों की धूलि से रंजित ललाटपट्ट मात्र लिखा है। अपने नाम के साथ कोई विशेषण आदि नहीं लगाया है। किन्तु उनकी यह टीका ही उनके वैदुष्य का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वीरसेन स्वामी ने अपनी धवला टीका के द्वारा षट्खण्डागम के रहस्य का उद्घाटन किया, उसी प्रकार श्री केशववर्णी ने अपनी जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के द्वारा 'गोम्मटसार' के रहस्य का उद्घाटन किया है। धवला टीका प्राकृत-संस्कृत के मिश्रण से रची गयी है, तो जीवतत्त्वप्रदीपिका कन्नड़ और संस्कृत के मिश्रण से रची गयी है। इतनी विद्वत्तापूर्ण टीका को केशववर्णी ने संस्कृत में न रचकर कर्नाटक देश की भाषा में क्यों रचा? क्या संस्कृत में रचना करने में वे अक्षम थे या इसका कोई अन्य कारण था; यह हम कहने में असमर्थ हैं। सिद्धान्त के वे मर्मज्ञ थे। गणित में उनकी अबाधगति थी। उनके द्वारा रचित करणसूत्र भी उनकी इस टीका में हैं। उन्होंने अंकसंदृष्टि के द्वारा अर्थसंदृष्टि को स्पष्ट करने का जो प्रयत्न किया है, वह उनके गम्भीर वैदुष्य का परिचायक है। पर्याप्ति अधिकार से पहले उन्होंने अलौकिक गणित के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र अधिकार ही अपनी इस टीका में दिया है, जिसमें त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार का उपयोग किया गया है।

उनकी इस टीका में ग्रन्थान्तरों से लिये गये प्राकृत पद्यों के साथ संस्कृत पद्यों का भी समावेश है। अधिकांश प्राकृत गाथाएँ 'उक्तं च' के बिना ही सम्मिलित कर ली गयी हैं। अकलंक के 'लघीयस्त्रय' से तथा विद्यानन्द की 'आप्तपरीक्षा' से भी पद्य उद्धृत हैं। कुछ ग्रन्थों का भी नामोल्लेख है; जैसे 'प्रमेयकमलमार्तण्ड'।

यह सब तो उनके विस्तृत वैदुष्य का परिचायक है, किन्तु उनका गम्भीर वैदुष्य तो सिद्धान्त-विषयक है और सिद्धान्त-विषयक यह तलस्पर्शी ज्ञान उन्हें अपने गुरु अभयसूरि से प्राप्त हुआ था। इसी से उन्होंने उनका स्मरण इतनी श्रद्धा के साथ किया है।

यह अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती कौन थे, इस सम्बन्ध में हम अभी कुछ कहने में असमर्थ हैं। यह मन्दप्रबोधिका के रचयिता अभयचन्द्र तो नहीं हो सकते। सम्भवतः इसी से उन्होंने अपने गुरु के नाम के साथ 'चन्द्र' पद न लगाकर सूरि पद लगाया है।

डॉ. उपाध्ये ने अपने लेख में लिखा है कि मन्दप्रबोधिका ईस्वी सन् १३५९ से, जब केशववर्णी ने अपनी वृत्ति समाप्त की थी, पहले की रचना है। अभयचन्द्र ने अपनी मन्दप्रबोधिका में एक बालचन्द पण्डितदेव का स्मरण किया है, जिन्हें मैं (डॉ. उपाध्ये) वे ही बालेन्दु पण्डित समझता हूँ, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोला के ईस्वी सन् १३१३ के एक शिलालेख में हुआ है। और यदि यह बात मान ली जाये, तो हम उस समय को लगभग पचास वर्ष पीछे ले जाने में समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त उनकी पदवियों, उपाधियों और छोटे-छोटे वर्णनों

से जो कि उनमें दिये हैं; मुझे ज्ञात हुआ है कि हमारे अभयचन्द्र और बालचन्द, सभी सम्भावनाओं को लेकर वही हैं, जिनकी प्रशंसा बेलूर शिलालेखों में की गयी है और जो हमें बतलाते हैं कि अभयचन्द्र का स्वर्गवास ईस्वी सन् १२७६ में और बालचन्द्र का ईस्वी सन् १२७४ में हुआ था। इस प्रकार हम अभयचन्द्र की मन्दप्रबोधिका का समय ईस्वी सन् की १३वीं शताब्दी का तीसरा चरण स्थिर कर सकते हैं।

मन्दप्रबोधिका में भी कुछ उद्धरण अन्य ग्रन्थों से दिये गये हैं। प्रथम गाथा की टीका में एक उद्धरण इस प्रकार है–

'नेष्टुं विहन्तुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदार्हदादेः ॥'

यह श्लोक केशववर्णी की टीका में भी उद्धृत है। यह पं. आशाधर के अनगार धर्मामृत के नौवें अधिकार का छब्बीसवाँ पद्य है। आशाधर ने अपना धर्मामृत वि. सं. १२८५ (ई. सन् १२२८) से पूर्व में रचा था। अतः उक्त समय के साथ इसकी संगति बैठ जाती है।

जीवकाण्ड की जिस हस्तलिखित प्रति पर से नागराक्षरों में परिवर्तित करके कन्नड़ टीका का यह मुद्रण कार्य हुआ है, उसकी अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है–

स्वस्ति श्रीनृपशालिवाहनशके १२०६ वर्षे क्रोधिनाम संवत्सरे फाल्गुणमासे शुक्लपक्षे शासिरऋतौ (शिशिरतौ) उत्तरायने अद्यां सृष्टिभ्यां (?) तिथौ बुधवासरे सत्तावीसघटिकादुपरांतिक सप्तम्यां तिथौ अनुराधानक्षत्रे तीसघटिकावुपरांतिक ज्येष्ठानक्षत्रे व्याघातनामयोगे छहघटिकावुपरांतिक हर्षणनामयोगे बवाकरणे सत्तावीसघटिका यस्मिन् पंचांगसिद्धि तत्र मोलेद सुभस्थाने श्रीपंचपरमेष्ठीदिव्यचैत्यालयस्थिते श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्नाटकवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोलु जीवकांडं संपूर्णमादुदु मंगलं भूयात्।

सम्भवतया यह वही प्रति है, जिसका उल्लेख डॉ. उपाध्ये ने अपने लेख 'गोम्मटसार की जीवतत्त्व प्रदीपिका' में किया है। और उसे कोल्हापुर के लक्ष्मीसेन मठ की प्रति बतलाया है। तथा टिप्पण में लिखा है कि यह कागज पर लिखी हुई प्रति है। इसका परिणाम १२.५ × ८.५ इंच है। इसमें ३८७ पृष्ठ हैं। प्रतिलिपि का समय शक १२०६ दिया है जो कि स्पष्ट ही लिपिकार का प्रमाद है; जबकि हमें ज्ञात है कि केशववर्णी ने अपनी वृत्ति शक १२८१ में लिखी थी।

इस तरह केशववर्णी अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे और उन्होंने अपनी वृत्ति धर्मभूषण भट्टारक के अनुसार शक संवत् १२८१ या ईस्वी सन् १३५९ में लिखी थी।

संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका

संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका, जो गोम्मटसार के कलकत्ता संस्करण में मुद्रित है और जिसे भ्रम से केशववर्णी की मान लिया गया था, वह केशववर्णी की कर्नाटक टीका का ही संस्कृत रूपान्तर है। इसमें प्रथम गाथा के उत्थानिका वाक्य से पूर्व में जो कर्नाटकवृत्ति में चौबीस तीर्थंकरों और उनके गणधरों के सम्बन्ध में नमस्कारात्मक कन्नड़ पद्य हैं तथा उनके पश्चात् जो मंगल आदि की चर्चा तिलोयपण्णत्ति के आधार पर की गयी है, उस सबको छोड़ दिया है और जहाँ से मूलग्रन्थ से सम्बद्ध टीका प्रारम्भ होती है, वहाँ से उसका संस्कृत रूपान्तर प्रायः ज्यों का त्यों दिया गया है। दोनों टीकाओं में कन्नड़ भाषा से सम्बद्ध विभक्ति, धातु आदि को छोड़कर प्रायः शब्दशः साम्य है। क्वचित् ही विस्तृत चर्चाओं को संक्षिप्त रूप दिया गया है। जैसे गाथा ४६ की टीका में अधःकरण सम्बन्धी विवरण को कुछ संक्षिप्त किया गया है। वह शब्दशः रूपान्तर नहीं है। मत्स्याकार रचना के विवरण में भी ऐसा ही किया गया है। कायमार्गणा में गाथा २५८ के विवेचन में उत्कृष्ट संचय को जोड़ने की प्रक्रिया में भी ऐसा ही किया गया है। किन्तु किसी भी उपयोगी सैद्धान्तिक

विवेचन में ऐसा नहीं किया गया है। अतः इस संस्कृत टीका के रचयिता श्री नेमिचन्द्र भी 'गोम्मटसार' में प्रतिपादित विषय के अवश्य ही सुलझे हुए विद्वान् थे। और उनका कर्नाटक भाषा तथा संस्कृत भाषा पर भी समान अधिकार था। यदि उन्होंने केशववर्णी की टीका को संस्कृत रूप न दिया होता, तो पं. टोडरमलजी साहब अपनी सम्यक्ज्ञान चन्द्रिका टीका नहीं लिख सकते थे। और उसके अभाव में 'गोम्मटसार' के पठन-पाठन की जो परम्परा आज भी प्रचलित है, उसका अभाव हो जाता। अतः जिस प्रकार केशववर्णी का हम पर महान् उपकार है, उसी प्रकार संस्कृत टीका के रचयिता का भी कम उपकार नहीं है। उन्होंने बहुत ही सरल संस्कृत में छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा गूढ़ विषयों को स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

संस्कृत टीकाकार और उनका समय

यद्यपि 'गोम्मटसार' के कलकत्ता संस्करण में मुखपृष्ठ पर इस टीका को केशववर्णीकृत छापा है और उसके प्रथम भाषा टीकाकार पं. टोडरमलजी ने भी उसे केशववर्णी कृत लिखा है; तथापि इस टीका के प्रारम्भिक श्लोक में टीकाकार ने अपना नाम, अपने गुरु का नाम और अपनी इस टीका का आधार सब स्पष्ट कर दिया है। वह लिखते हैं—

नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥

उनका यह प्रथम मंगलश्लोक मन्दप्रबोधिका के प्रथम मंगल श्लोक से प्रभावित प्रतीत होता है जो इस प्रकार है—

मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचन्द्रं जिनेश्वरम्।
टीकां गोम्मटसारस्य कुर्वे मन्दप्रबोधिकाम् ॥

मन्दप्रबोधिका के रचयिता ने किसी वृत्ति का आश्रय लेने की बात नहीं कही है, किन्तु संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका के कर्ता ने कर्णाटवृत्ति का आश्रय लेने का स्पष्ट कथन किया है। और श्री नेमिचन्द्र से अपना नाम और उसके ज्ञानभूषण विशेषण से अपने गुरु का नाम भी बतला दिया है।

गोम्मटसार कलकत्ता संस्करण के अन्त में (पृ. २०६७-८) जो प्रशस्ति प्रथम पद्य में तदनन्तर गद्य में मुद्रित है, उसमें कहा है—संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका के कर्ता मूलसंघ, शारदागच्छ, बलात्कारगण, कुन्दकुन्दान्वय और नन्दिआम्नायके थे। उनके गुरु का नाम भट्टारक ज्ञानभूषण था। कर्नाटक देश में मल्लि भूपाल के प्रयत्न से मुनिचन्द्र से सिद्धान्त का अध्ययन किया था। भट्टारक प्रभाचन्द्र ने उन्हें भट्टारकपद प्रदान किया था। त्रैविद्यविद्या में विख्यात विशालकीर्ति सूरि ने इस रचना में उनकी सहायता की थी और सर्वप्रथम प्रसन्नतापूर्वक उसका अध्ययन किया था। श्री धर्मचन्द्रसूरि, अभयचन्द्र भट्टारक और लालावर्णी आदि भव्य जीवों के लिए चित्रकूट में पार्श्वनाथ जिनालय में कर्णाटवृत्ति से इसकी रचना की थी। साहु साग और सहेस ने रचने की प्रार्थना की थी।

यह पद्यात्मक प्रशस्तिका का सार है। उसमें ग्रन्थकार ने अपना नाम नहीं दिया। किन्तु उसी के पश्चात् गद्यात्मक प्रशस्ति में नेमिचन्द्र नाम दिया है। तथा यह भी लिखा है कि कर्णाट देश में मुनिचन्द्र से सिद्धान्त का अध्ययन करने के पश्चात् लाला वर्णी के आग्रह से वह गुर्जर देश से आकर चित्रकूट में जिनदास शाह के द्वारा बनवाये गये पार्श्वनाथ जिनालय में ठहरे थे और वहीं उन्होंने विशालकीर्ति की सहायता से कर्णाटवृत्ति के अनुसार रचना की थी।

नेमिचन्द्र ने अपनी इतनी विस्तृत प्रशस्ति में भी उसके रचनाकाल का कोई संकेत तक नहीं किया है किन्तु केशववर्णी की कर्नाटवृत्ति के आधार से रचना होने के कारण यह निर्विवाद है कि उसके पश्चात् ही उसकी

रचना हुई है तथा उसका भाषानुवाद पं. टोडरमलजी ने वि. सं. १८१८ में पूर्ण किया था। अतः इन दोनों टीकाओं के मध्य में ही किसी समय यह संस्कृत टीका रची गयी है; इतना निश्चित है। किन्तु यह एक लम्बी अवधि है। डॉ. उपाध्ये ने इसे सीमित करने का प्रयत्न किया है। वह लिखते हैं—जैन साहित्य के उद्धरणों के अनुसार मल्लि नाम का एक शासक कुछ जैन ग्रन्थकारों के साथ सम्पर्क रखता है। शुभचन्द्र गुर्वावली के अनुसार विजयकीर्ति (ई. सन् की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में) मल्लिभूपाल[1] के द्वारा सम्मानित हुआ था। विजयकीर्ति का समकालीन होने से उस मल्लिभूपाल को १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रखा जा सकता है। उसके स्थान और धर्म का कोई परिचय नहीं दिया गया है। दूसरे, विशालकीर्ति के शिष्य विद्यानन्द स्वामी[2] के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये मल्लिराय के द्वारा पूजे गये थे। और ये विद्यानन्द[3] ई. सन् १५४१ में दिवंगत हुए थे। इससे भी मालूम होता है कि १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक मल्लिभूपाल था। हुमच का शिलालेख इस विषय को और भी स्पष्ट करता है। वह बतलाता है कि यह राजा जो विद्यानन्द के सम्पर्क में था, सालुव मल्लिराय[4] कहलाता है। यह उल्लेख हमें मात्र परम्परागत किंवदन्तियों से हटाकर ऐतिहासिक आधार पर ले जाता है। सालुव नरेशों ने कनारा जिले के एक भाग पर राज्य किया था और वे जैन[5] धर्म को मानते थे। मल्लिभूपाल मल्लिराय का संस्कृत रूप है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नेमिचन्द्र सालुव मल्लिराय का उल्लेख कर रहे हैं; यद्यपि उन्होंने उसके वंश का उल्लेख नहीं किया है। १५३० ई. के शिलालेख में उल्लिखित होने से हम सालुव मल्लिराय को १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण में रख सकते हैं। इस तरह नेमिचन्द्र के सालुव मल्लिराय के समकालीन होने से हम संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका की रचना को ईसा की १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ की ठहरा सकते हैं।

इस प्रकार डॉ. उपाध्ये ने संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका का काल निर्धारित किया है।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

गोम्मटसार की तीसरी ढूँढारी भाषा की टीका का नाम सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका है। इसके रचयिता स्व. पण्डितप्रवर टोडरमल हैं। इन्होंने अपनी टीका की प्रशस्ति में वि. सं. १८१८ में उसके समाप्त होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्ल पंचमि दिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत ॥

यह टीका गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार और क्षपणासार नामक ग्रन्थों पर है। प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है। पं. हुकुमचन्दजी भारिल्ल ने 'पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक अपने महानिबन्ध में इन पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पण्डित टोडरमलजी जयपुर के निवासी थे। जाति से खण्डेलवाल थे और गोत्र गोदीका था। उन्होंने अपने गुरु आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। किन्तु वे महान् विद्वान् थे, इसमें सन्देह नहीं है। जब हमने संस्कृत टीका के आधार पर उसका हिन्दी अनुवाद करना प्रारम्भ किया, तो जहाँ तक संदृष्टियाँ नहीं थीं वहाँ तक तो लेखनी द्रुतगति से चली। किन्तु संदृष्टियों के आते ही लेखनी की गति अवरुद्ध-जैसी हो गयी और हमें पं. टोडरमलजी की टीका सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की

---

१. जैन सिद्धान्त-भास्कर, भाग १, कि. ४, पृ. ५४। और भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट एनाल्स VIII पृ. ४१।

२. जैन सिद्धान्त-भास्कर, भाग ५, कि. ४, प्रशस्तिसंग्रह, पृ. १२५, १२८ आदि।

३. डॉ. बी.ए. सालेतौर ने विद्यानन्द के व्यक्तित्व और कार्यों पर अच्छा प्रकाश डाला है। देखो—'मिडियावल जैनिज्म' (बम्बई १९३८) पृ. ३७१ आदि। वादि विद्यानन्द—जैन एण्टिक्वेरी ४, कि. १, पृ. १-२०।

४. एपिग्राफिया कर्नाटिका भाग VIII नगर नं. ४६।

५. एपिग्राफिया कर्नाटिका भाग VIII प्रस्तावना पृ. १०, १३४। शिलालेखों के आधार पर मैसूर और कुर्ग (लन्दन १९०९) पृ. १५२-५३ मिडियावल जैनिज्म, पृ. ३१८ आदि।

ही शरण लेनी पड़ी। उस समय में उन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से संस्कृत टीका के गूढ़ विषयों को कितनी स्पष्टता से खोलकर सरल रूप से लिखा है, यह हम लिखने में असमर्थ हैं। यद्यपि वे श्रावक थे, किन्तु आचार्य कोटि के समकक्ष थे; इसमें सन्देह नहीं। उनकी परमार्थ बुद्धि अद्‌भुत थी। स्वाध्याय करनेवालों को सरलता से विषय का बोध हो, यही उनकी भावना रही है। जैन ग्रन्थकार जैसे मन्दकषायी, निरभिमानी और वीतरागी होते थे, टोडरमलजी उसके उदाहरण हैं। इस टीका को लिखते समय हमें उनकी गुणगरिमा का स्मरण पद-पद पर होता है। और हम मन ही मन उनको प्रणाम करते हैं। यदि उन्होंने यह टीका न लिखी होती, तो गोम्मटसार का पठन-पाठन ही प्रचलित न होता। इसी टीका को पढ़कर गुरुवर्य पण्डित गोपालदासजी बरैया गोम्मटसार के ज्ञाता बने और उनकी शिष्यपरम्परा प्रवर्तित हुई। धन्य हैं पं. टोडरमलजी। गोम्मटसार और त्रिलोकसार का रहस्य भाषा में उद्‌घाटित करके उन्होंने महान् उपकार किया है, और मोक्षमार्ग-प्रकाश की रचना करके तथा उसमें निश्चयाभासी और व्यवहाराभासी का स्वरूप अंकित करके तो उन्होंने अपनी कृति पर कलशारोहण कर दिया है।

यही कारण है कि उस समय के विद्वानों और तत्त्व-जिज्ञासुओं ने उनकी विद्वत्ता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। जिन साधर्मी राजमल की प्रेरणा से उन्होंने गोम्मटसार की टीका लिखी; उन्होंने अपनी पत्रिका में गोम्मटसार की टीका की रचना का पूरा इतिवृत्त दिया है। उसे यहाँ हम उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर देना उचित समझते हैं–

टोडरमल्लजी सूं मिले, नाना प्रकार के प्रश्न किये, ताका उत्तर एक गोम्मटसार नामा ग्रन्थ की साखि सू देते भये। ता ग्रन्थ की महिमा हम पूर्व सुणी थी, तासूं विशेष देखी। अर टोडरमल्लजी का ज्ञान की महिमा अद्‌भुत देखी।

पीछै उनसूं हम कही–तुम्हारै या ग्रन्थ का परचै निर्मल भया है। तुम करि याकी भाषा टीका होय तो घणां जीवां का कल्याण होइ अर जिनधर्म का उद्योत होई। ...तब शुभ दिन मुहूर्त विषै टीका करने का प्रारंभ सिंघाणा नग्र विषै भया। सो वै तो टीका बणावते गये, हम बांचते गये। बरस तीन मैं गोम्मटसार ग्रन्थ की अड़तीस हजार ३८०००, लब्धिसार क्षपणासार ग्रन्थ की तेरह हजार १३०००, त्रिलोकसार ग्रन्थ की चौदह हजार १४००० सब मिली चारि ग्रन्थां की पैंसठ हजार टीका भई।

अवार के अनिष्ट काल विषै टोडरमल्लजी कै ज्ञान का क्षयोपशम विशेष भया।

पं. टोडरमलजी ने भी अपनी प्रशस्ति में उनके सम्बन्ध में लिखा है–

'राजमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में प्रगट विवेक
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज थयो'।

इन्द्रध्वजविधान-पत्रिका में भी लिखा है–

'यहाँ सभा विषै गोमट्टसारजी का व्याख्यान होय है सो बरस दोय तौ हुआ अर बरस दोय ताईं और होइगा, एह व्याख्यान टोडरमल्लजी करै हैं।' यह विधान वि. सं. १८२१ में हुआ था।

'सिद्धान्तसारसंग्रह' वचनिका प्रशस्ति में पं. देवीदास गोधा ने पं. टोडरमलजी के अनेक विशेष श्रोताओं का नामोल्लेख किया है। उस समय के विशिष्ट विद्वान् पं. जयचन्द छावड़ा ने अपनी सर्वार्थसिद्धि वचनिका की प्रशस्ति में तथा पं. भूधरदासजी कृत चर्चासमाधान में पं. टोडरमलजी का उल्लेख बहुमानपूर्वक किया गया है। इस तरह पं. टोडरमलजी इस युग के एक महान् भाषा टीकाकार हुए हैं। पण्डितजी ने अपनी टीका के प्रारम्भ में एक पीठिका भी दी है जो गोम्मटसार के पाठकों के लिए उपयोगी है। उसका आवश्यक अंश हम यहाँ देकर इस प्रस्तावना को समाप्त करेंगे।

गोम्मटसार-पीठिका

भाषाटीकाकार स्वर्गीय पं. टोडरमलजी ने गोम्मटसार की भाषा टीका से पूर्व में पीठिका निबद्ध की है जो गोम्मटसार के अध्येताओं के लिए उपयोगी है। अतः उसके आवश्यक अंशों का सार यहाँ दिया जाता है।

मैं मन्दबुद्धि हूँ, विशेष ज्ञानरहित हूँ, अविवेकी हूँ, शब्द-न्याय-गणित-धार्मिक आदि ग्रन्थों का विशेष अभ्यास मेरे नहीं है, तथापि धर्मानुरागवश टीका करने का विचार किया है। सो इसमें जहाँ-जहाँ चूक हो, अन्यथा अर्थ हो, वहाँ-वहाँ मुझे क्षमा करके उस अन्यथा अर्थ के स्थान में यथार्थ अर्थ लिखना, ऐसी विनय है।

कोई कहता है कि तुमने टीका करने का विचार तो भला किया। परन्तु ऐसे महान् ग्रन्थ की टीका तो संस्कृत में ही चाहिए, भाषा में उसकी गम्भीरता प्रकट नहीं होती। उसको कहते हैं—इस ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका तो पहले से ही है। परन्तु जो संस्कृत-गणित-आम्नाय आदि के ज्ञान से रहित मन्दबुद्धि हैं, उनका उसमें प्रवेश नहीं है। और यहाँ कालदोष से बुद्धि आदि के तुच्छ होने से संस्कृत आदि के ज्ञान से रहित जीव बहुत हैं। उनको इस ग्रन्थ के अर्थ का ज्ञान कराने के लिए भाषाटीका करते हैं। जो जीव संस्कृत विशेष ज्ञान से युक्त है, वे मूलग्रन्थ अथवा संस्कृत टीका से अर्थ धारण कर सकते हैं। किन्तु जो जीव संस्कृत आदि के विशेष ज्ञान से रहित हैं, वे इस भाषाटीका से अर्थ का अवधारण करें। तथा जो जीव संस्कृत आदि के ज्ञान से सम्पन्न हैं परन्तु गणित, आम्नाय, आदि के ज्ञान का अभाव होने से मूल ग्रन्थ अथवा संस्कृत टीका में प्रवेश करने में असमर्थ हैं, वे इस भाषाटीका से अर्थ की धारणा करके मूलग्रन्थ अथवा संस्कृत टीका में प्रवेश करें।

पूर्व में अर्धमागधी भाषा में महान् ग्रन्थ थे। जब बुद्धि की मन्दता हुई, तब संस्कृत आदि भाषा में ग्रन्थ बने। अब विशेष बुद्धि की मन्दता होने से देशभाषा में ग्रन्थ रचने का विचार हुआ। भाषा के द्वारा संस्कृत आदि का अर्थ लिखने में तो कुछ दोष नहीं है।

अब इस शास्त्र के अभ्यास में जीवों को प्रेरित करते हैं—

हे भव्यजीवो! तुम अपना हित चाहते हो, तो तुम्हें जैसे बने तैसे इस शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि आत्मा का हित मोक्ष है। मोक्ष के सिवाय अन्य जो कुछ है, वह सब परसंयोगजनित है, विनाशीक है, दुःखमय है। किन्तु मोक्ष निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनन्त सुखमय है। अतः तुम्हें मोक्षपद पाने का उपाय करना चाहिए। मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। और इनकी प्राप्ति जीवादि का स्वरूप जानने से ही होती है। क्योंकि जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। किन्तु बिना जाने श्रद्धान का होना असम्भव है। अतः पहले जाने, पीछे वैसी ही प्रतीति होने से श्रद्धान होता है। श्रद्धान होने पर जो जीवादि का जानना होता है, उसी का नाम सम्यग्ज्ञान है। तथा श्रद्धानपूर्वक जीवादि को जानकर स्वयं ही उदासीन हो, हेय को त्यागे और उपादेय को ग्रहण करे, तब सम्यक्चारित्र होता है। अज्ञानपूर्वक क्रियाकाण्ड से सम्यक्चारित्र नहीं होता। इस प्रकार जीवादि को जानने से ही मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति का निश्चय करना। सो इस शास्त्र के अभ्यास से जीवादि का जानना उत्तम रीति से होता है। क्योंकि संसार जीव और कर्म का सम्बन्ध रूप है। विशेष जानने से इनके सम्बन्ध का जो अभाव होता है, वही मोक्ष है। सो इस शास्त्र में जीव और कर्म का ही विशेष निरूपण है। अथवा जीवादि छह द्रव्यों और सात तत्त्वों का भी इसमें उत्तम निरूपण है। अतः इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना।

कोई-कोई इस शास्त्र में अरुचि होने के कारण विपरीत विचार प्रकट करते हैं। वे प्रथमानुयोग अथवा चरणानुयोग अथवा द्रव्यानुयोग का पक्ष लेकर इस करणानुयोगरूप शास्त्र के अभ्यास का निषेध करते हैं।

प्रथमानुयोग के पक्षपाती कुछ मन्दबुद्धि कहते हैं कि इस 'गोम्मटसार' शास्त्र में गणित की कठिन समस्या सुनी जाती है। हम कैसे इसमें प्रवेश करें? उनसे कहते हैं कि डरो मत, इस भाषा टीका में गणित आदि का अर्थ सुगम रूप से कहा है। अतः उसमें प्रवेश करना कठिन नहीं रहा। तथा इस शास्त्र में कहीं सामान्य कथन

है और कहीं विशेष कथन है। कहीं सुगम है, कहीं कठिन है। यदि सबका अभ्यास बन सके तो, उत्तम है और जो न बने तो अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बने तैसा अभ्यास करो, अपने उपाय में आलस्य मत करो। और जो यह कहा जाता है कि प्रथमानुयोग सम्बन्धी कथादि सुनने से जीव पाप से डरते हैं और धर्मानुरागी बनते हैं। सो वहाँ तो दोनों कार्य मन्द रूप से होते हैं? किन्तु यहाँ पाप-पुण्य के कारण कार्य आदि का विशेष ज्ञान होने से दोनों कार्य दृढ़ता से होते हैं। अतः इस शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए।

चरणानुयोग के पक्षपाती कहते हैं कि इस शास्त्र में कहा जीव, कर्म का स्वरूप तो जैसा है, वैसा ही है। उसके जानने से क्या लाभ? यदि हिंसादि को त्याग कर व्रत पालें, उपवासादि तप करें अथवा अरहन्त आदि की पूजा-भक्ति करें, दान दें, विषयादि से उदासीन हों, तो आत्महित हो।

उनको कहते हैं--

हे स्थूलबुद्धि! व्रतादि शुभ कार्य तो करने योग्य ही हैं, परन्तु सम्यक्त्व के बिना वे ऐसे हैं, जैसे अंक बिना बिन्दी। और जीवादि को जाने बिना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसा बाँझ के पुत्र। अतः जीवादि को जानने के लिए इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। तथा जैसे व्रतादि शुभ कार्य हैं और उनसे पुण्यबन्ध होता है, उसी प्रकार जीवादि के स्वरूप को जानने रूप ज्ञानाभ्यास भी प्रधान शुभ कार्य है और उससे सातिशय पुण्य का बन्ध होता है। तथा व्रतादिक में भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है; क्योंकि जो जीव प्रथम जीवसमास आदि जीवादि के विशेष जानता है, पीछे यथार्थ ज्ञान के द्वारा हिंसादि को त्याग व्रत धारण करता है, वही व्रती है। जो जीवादि के विशेष जाने बिना किसी प्रकार हिंसादि के त्यागमात्र से अपने को व्रती मानता है, वह व्रती नहीं है। अतः व्रतपालन में भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है। तथा दो प्रकार का तप कहा है—बहिरंग और अन्तरंग। जिससे शरीर का दमन होता है, वह बहिरंग तप है और जिससे मन का दमन होता है, वह अन्तरंग तप है। इनमें बहिरंग तप से अन्तरंग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादि तो बहिरंग तप है और ज्ञानाभ्यास अन्तरंग तप है। सिद्धान्त में भी छह प्रकार के अन्तरंग तपों में चौथा स्वाध्यायनामा तप कहा है। उससे उत्कृष्ट, व्युत्सर्ग और ध्यान ही हैं। अतः तप करने में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

तथा जीवादि के विशेष रूप गुणस्थानादि का स्वरूप जानने पर ही अरहन्त आदि का स्वरूप ठीक रीति से जाना जाता है तथा अपनी अवस्था को पहचानता है। ऐसा होने पर जो तीव्र अन्तरंग भक्ति प्रकट होती है, वही कार्यकारी है। जो कुलक्रमादि से भक्ति होती है, वह किंचित्मात्र ही फल की दाता है। अतः भक्ति में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

तथा दान चार प्रकार का है। उनमें-से आहारदान, औषधदान और अभयदान तो तत्काल के भूख, रोग और मरण आदि के दुःख को दूर करते हैं। किन्तु ज्ञानदान अनन्तभव सम्बन्धी दुःख को दूर करने का कारण है। अतः ज्ञानदान उत्कृष्ट है। यदि अपने को ज्ञानाभ्यास हो, तो अपना भी भला करता है और अन्य जीवों को ज्ञानदान देता है। ज्ञानाभ्यास के बिना ज्ञानदान कैसे हो सकता है? अतः दान में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

अनादिकाल से सब जीव संसार में रहते हुए कर्मों को अपना मानते हैं। कोई जीव जीव और कर्म का यथार्थ ज्ञान होने पर कर्मों से उदासीन हो, उन्हें पर जानने लगता है और उनसे अपना सम्बन्ध छुड़ाना चाहता है। ऐसी उदासीनता ज्ञानाभ्यास से ही होती है और वही कार्यकारी है। ज्ञान के बिना जो उदासीनता होती है, वह तो पुण्यफल की दाता है। उससे मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार अन्य शुभ कार्यों में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। अतः शास्त्राध्ययन से जीव और कर्म का स्वरूप जानकर अपने स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

प्रश्न—कोई जीव शास्त्र-अध्ययन तो बहुत करता है, किन्तु विषयादि का त्याग नहीं करता। उसका शास्त्राध्ययन कार्यकारी है या नहीं? यदि है, तो महान् पुरुष विषयादि का त्याग क्यों करते हैं? यदि नहीं है, तो ज्ञानाभ्यास की महिमा कहाँ रही?

समाधान—शास्त्राभ्यासी दो प्रकार के होते हैं—एक लोभार्थी और एक धर्मार्थी। जो अन्तरंग अनुराग बिना ख्याति-पूजा-लाभादि के लिए शास्त्राभ्यास करते हैं, वे लोभार्थी हैं। अतः विषयादि का त्याग नहीं करते। किन्तु जो अन्तरंग अनुराग से आत्महित के लिए शास्त्राभ्यास करते हैं, वे धर्मार्थी हैं। सो प्रथम तो जैनशास्त्र ऐसे हैं जिनका यदि धर्मार्थी होकर अभ्यास करे, तो विषयादि का त्याग करता ही है। उसका ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है। यदि कदाचित् पूर्वकर्म के उदय की बलवत्ता से विषयादि का त्याग न बने, तो भी सम्यग्दर्शन आदि के होने से ज्ञानाभ्यास कार्यकारी होता है। जैसे असंयत गुणस्थान में विषयादि का त्याग बिना भी मोक्षमार्गपना सम्भव है।

प्रश्न—जो धर्मार्थी होकर जैनशास्त्र का अभ्यास करता है, उसके विषयादि का त्याग न हो, यह तो सम्भव नहीं है। क्योंकि विषयादि का सेवन तो परिणामों से होता है और परिणाम अपने अधीन हैं?

समाधान—परिणाम दो प्रकार के हैं—बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक। जो अपने अभिप्राय के अनुसार होता है, वह बुद्धिपूर्वक है। और दैववश अपने अभिप्राय से विपरीत हो, वह अबुद्धिपूर्वक है। जो धर्मार्थी होकर जैनशास्त्र का अभ्यास करता है, उसका अभिप्राय तो विषयादि के त्यागरूप वीतराग भाव का ही होता है। यहाँ वीतराग भाव तो बुद्धिपूर्वक है। और चारित्रमोह के उदय से सरागभाव का होना अबुद्धिपूर्वक है। उसी के कारण उसकी प्रवृत्ति विषयादि में देखी जाती है।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है कि इस शास्त्र में जीव के गुणस्थानादि रूप विशेष और कर्म के विशेष का वर्णन किया है। उनके जानने से अनेक विकल्पतरंग उठती हैं और कुछ सिद्धि नहीं होती। अतः अपने शुद्ध स्वरूप का ही अनुभवन करना चाहिए या अपना और पर का भेदविज्ञान करना चाहिए, इतना कार्यकारी है अथवा इनके उपदेशक अध्यात्मशास्त्रों का ही अभ्यास करना योग्य है। उसको समझाते हैं—

हे सूक्ष्माभासबुद्धि! तेरा कहना तो सत्य है, परन्तु अपनी अवस्था देख। जो स्वरूपानुभवन में या भेदविज्ञान में निरन्तर उपयोग रहे, तो अन्य विकल्प क्यों करने? उसी में सन्तुष्ट होना। परन्तु निचली अवस्था में निरन्तर उपयोग उनमें नहीं रहता। उपयोग तो अनेक आलम्बन चाहता है। अतः जिस काल में वहाँ उपयोग न लगे, तब गुणस्थानादि विशेष के जानने का अभ्यास करना। तेरे कहे अनुसार अध्यात्मशास्त्रों का अभ्यास करना तो युक्त ही है। परन्तु भेदविज्ञान करने के लिए उनमें स्व-पर का सामान्य ही निरूपण रहता है। और विशेष ज्ञान के बिना सामान्य का जानना स्पष्ट नहीं होता। अतः जीव और कर्म का विशेष स्वरूप अच्छी तरह जानने पर ही स्व-पर का जानना स्पष्ट रूप से होता है। उसके लिए इस शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—अध्यात्मशास्त्र में तो गुणस्थानादि विशेषों से रहित शुद्ध स्वरूप के अनुभवन को उपादेय कहा है। और इस शास्त्र में गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। इससे अध्यात्मशास्त्र और इस शास्त्र में विरोध प्रतीत होता है सो कैसे?

समाधान—नय के दो प्रकार हैं—निश्चय और व्यवहार। निश्चय से जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष से रहित अभेद वस्तु मात्र ही है। और व्यवहार नय से गुणस्थानादि विशेष से युक्त अनेक प्रकार हैं। जो जीव सर्वोत्कृष्ट अभेदरूप एक स्वभाव का अनुभवन करते हैं, उनको तो शुद्ध उपदेशरूप शुद्ध निश्चय ही कार्यकारी है। किन्तु जो स्वानुभव दशा को प्राप्त नहीं हुए हैं अथवा स्वानुभव दशा से छूट सविकल्प दशा को प्राप्त हुए हैं, ऐसे अनुत्कृष्ट अशुद्ध स्वभाव में स्थित जीव को व्यवहारनय प्रयोजनीय है। वही समयसार में कहा है—

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे ॥१४॥

इस सूत्र का अर्थ विचार कर देखना। और भी सुन—तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा में तो प्रवृत्त नहीं हैं। और विकल्प जानकर गुणस्थानादि का विचार करेगा नहीं, तब तू 'इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट' होकर अशुभोपयोग में ही प्रवृत्ति करेगा और इससे तेरा बुरा ही होगा। तथा गुणस्थानादि विशेष जानने से जीव की शुद्ध, अशुद्ध और मिश्र अवस्था का ज्ञान होता है। तब निर्णय करके यथार्थ अंगीकार होता है। तथा जीव का गुण ज्ञान है। विशेष जानने पर आत्मगुण प्रकट होता है, अपना श्रद्धान भी दृढ़ होता है; जैसे केवलज्ञान होने पर सम्यक्त्व परमावगाढ़ नाम पाता है। अतः विशेष जानना चाहिए।

प्रश्न—आपका कहना तो सत्य है। परन्तु करणानुयोग द्वारा विशेष जानकर भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्मश्रद्धान बिना संसारी ही रहता है। और अध्यात्म अनुसार तिर्यंचादि को थोड़े श्रद्धान से भी सम्यक्त्व होता है। 'तुषमाष भिन्न' इतने श्रद्धान से ही शिवभूति मुनि मुक्त हुए। अतः हमसे तो विशेष विकल्पों का साधन नहीं होता। हम तो प्रयोजन मात्र अध्यात्म का अभ्यास करेंगे।

समाधान—द्रव्यलिंगी जैसे करणानुयोग से विशेष जानता है, वैसे ही उसे अध्यात्म शास्त्रों का भी ज्ञान होता है। परन्तु मिथ्यात्व के उदय से अयथार्थ साधना करता है। ऐसी दशा में शास्त्र क्या करे? शास्त्रों में तो परस्पर विरोध है नहीं। सो ही दिखलाते हैं—

करणानुयोग के शास्त्रों में और अध्यात्म शास्त्रों में भी रागादि भाव को आत्मा के कर्मनिमित्त से उपजा कहा है। द्रव्यलिंगी उनका कर्ता अपने को मानता है। शरीराश्रित सब शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कही है। द्रव्यलिंगी अपनी जानकर उनमें त्याग और ग्रहण की बुद्धि करता है। सब ही शुभाशुभ भाव आस्रव-बन्ध के कारण कहे हैं। द्रव्यलिंगी शुभ क्रिया को संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण मानता है। शुद्ध भाव को संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण कहा है, द्रव्यलिंगी उसे पहचानता भी नहीं। शुद्धात्म स्वरूप को मोक्ष कहा है, द्रव्यलिंगी को उसका यथार्थ ज्ञान नहीं है। इसमें शास्त्रों का क्या दोष है?

तुमने कहा—मुझसे विकल्पसाधन नहीं होता, सो जितना बने उतना करो। पापकार्य में तो तुम प्रवीण हो और इसके अभ्यास के लिए कहते हो, मेरे में बुद्धि नहीं है, यह तो पापी का लक्षण है।

(इस प्रकार स्वाध्याय प्रेमी जनों को इस करणानुयोग-विषयक शास्त्र में प्रवृत्त होने की प्रेरणा करने के पश्चात् पीठिका में 'गोम्मटसार' का विषय-परिचय दिया है। उसके पश्चात् गणित का ज्ञान कराया है, उसे यहाँ देते हैं।)

आवश्यक गणित

इस करणानुयोग रूप शास्त्र के अभ्यास के लिए गणित का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए गणित सम्बन्धी ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए। यदि वह सम्भव न हो, तो परिकर्माष्टक तो अवश्य जानना चाहिए। अतः यहाँ प्रयोजन मात्र परिकर्माष्टक का वर्णन करते हैं।

संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल ये आठ नाम हैं। इन्हें ही परिकर्माष्टक कहते हैं। ये लौकिक गणित में भी प्रचलित हैं और अलौकिक गणित में भी प्रचलित हैं। लौकिक गणित तो प्रसिद्ध ही है। अलौकिक गणित जघन्य संख्यातादि अथवा पल्यादि का कथन आगे जीवसमासाधिकार पूर्ण होने के पश्चात् इस ग्रन्थ में किया है। यहाँ संकलनादि का स्वरूप कहते हैं—

किसी राशि को किसी राशि में जोड़ना संकलन है। जैसे सात में पाँच जोड़ने से बारह हुए। अथवा पुद्गलराशि में जीवादि का प्रमाण जोड़ने से सब द्रव्यों का प्रमाण होता है। तथा किसी राशि में से किसी राशि को घटाने का नाम व्यवकलन है। जैसे बारह में से पाँच घटाने पर सात रहते हैं। अथवा संसारी जीवराशि में से त्रसराशि घटाने पर स्थावर जीवों का प्रमाण होता है। किसी राशि को किसी राशि से गुणा करने का नाम गुणकार है; जैसे पाँच को चार से गुणा करने पर बीस होते हैं। अथवा जीवराशि को अनन्त से गुणा

करने पर पुद्गलराशि होती है। किसी राशि को किसी राशि से भाग देने का नाम भागहार है; जैसे बीस में चार का भाग देने से पाँच रहते हैं। अथवा जगतश्रेणी में सात का भाग देने से राजू होती है। किसी राशि को दो जगह रखकर परस्पर में गुणा करने पर उस राशि का वर्ग होता है। जैसे पाँच को दो जगह रखकर परस्पर में गुणा करने से पच्चीस होता है; यह पाँच का वर्ग है। अथवा सूच्यंगुल को दो जगह रखकर परस्पर में गुणा करने पर सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होता है। जिस राशि का वर्ग करने पर जो प्रमाण होता है, उस प्रमाण का वर्गमूल वह राशि होती है। जैसे पाँच का वर्ग करने पर पच्चीस होता है, अतः पच्चीस का वर्गमूल पाँच है। अथवा सूच्यंगुल का वर्ग करने पर प्रतरांगुल होता है, अतः प्रतरांगुल का वर्गमूल सूच्यंगुल है।

किसी राशि को तीन जगह रखकर परस्पर में गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उसे घन कहते हैं। जैसे पाँच को तीन जगह रखकर परस्पर में गुणा करने पर पाँच का घन एक सौ पच्चीस होता है। अथवा जगतश्रेणी को तीन जगह रखकर परस्पर में गुणा करने पर लोक होता है। तथा जिसका घन करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, वह उसका घनमूल होता है। जैसे पाँच का घन करने पर एक सौ पच्चीस होता है, अतः एक सौ पच्चीस का घनमूल पाँच है। अथवा जगतश्रेणी का घन करने पर लोक होता है। अतः लोक का घनमूल जगतश्रेणी है।

यहाँ कुछ संज्ञाएँ कहते हैं—संकलन में जोड़ने योग्य राशि का नाम धन है। व्यवकलन में घटाने योग्य राशि का नाम ऋण है। गुणकार से जिसका गुणा किया जाता है, उसे गुण्य कहते हैं। और जिससे गुणा किया जाता है, उसे गुणकार कहते हैं। जिसमें भागहार का भाग दिया जाता है, उसको भाज्य कहते हैं। और जिसका भाग दिया जाता है, उसे भागहार अथवा भाजक कहते हैं। भागहार का भाग देकर एक भाग ग्रहण करना हो, तो उसे एकभाग कहते हैं; जैसे पल्य का असंख्यातवाँ भाग। एक भाग के बिना शेष भाग को बहुभाग कहते हैं।

वर्ग का एक नाम कृति भी है। तथा वर्गमूल का नाम कृतिमूल, मूल या पद या प्रथममूल भी है। प्रथममूल के मूल को द्वितीयमूल कहते हैं। द्वितीयमूल के मूल को तृतीयमूल कहते हैं; जैसे पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस का प्रथममूल दो सौ छप्पन, द्वितीयमूल सोलह, तृतीयमूल चार और चतुर्थमूल दो है। इसी प्रकार अन्य संज्ञाएँ भी जानना।

अब यहाँ प्रथम लौकिक गणित की अपेक्षा विधान कहते हैं।

अंकों का अनुक्रम बायीं ओर से होता है। दो सौ छप्पन २५६ के तीन अंकों में से छह आदि अंक, पाँच दूसरा अंक और दो अन्तिम अंक हैं। इस शास्त्र में लौकिक गणित के कथन की मुख्यता नहीं है। यहाँ उसका स्वरूप मात्र दिखाने को कुछ लिखते हैं—जोड़ना, घटाना, गुणा करना, भाग देना, आदि तो प्रायः सब जानते हैं, अतः यहाँ उन्हें न लिखकर भिन्न परिकर्माष्टक को कहते हैं—

जैसे छह बटे पाँच कहा। उसका मतलब होता है—छह का पाँचवाँ भाग। यहाँ छह को अंश या लव आदि कहते हैं और पाँच को हार या छेद कहते हैं। अंश को ऊपर और हार को नीचे लिखा जाता है; जैसे $\frac{६}{५}$।

यहाँ समच्छेदविधान विशेष प्रयोजनीय है, उसे दर्शाते हैं—पृथक्-पृथक् अंश और उनके हार लिखकर एक-एक अंश को अन्य अंशों के हार से गुणा करो, सब अंशों और सब हारों को परस्पर में गुणा करो। ऐसा करके यदि संकलन करना हो, तो अंशों को परस्पर जोड़ दें। और व्यवकलन करना हो, तो मूल राशि के अंशों में से ऋणराशि के अंश घटा दें तथा हार सबके समान हुए। अतः हार परस्पर में गुणा करने से जितने हुए, उतने ही रखिए। इस प्रकार समान हार होने से इसका नाम समच्छेदविधान है। यहाँ उदाहरण—

यदि संकलन में पाँच बटे छह, दो बटे तीन और तीन बटे चार को जोड़ना हो तो $\frac{५}{६}+\frac{२}{३}+\frac{३}{४}$ लिखकर पाँच अंश को अन्य के तीन और चार हारों से तथा दो अंश को अन्य के छह और चार हारों से तथा तीन

अंश को अन्य के छह और तीन हारों से गुणा करने पर साठ, अड़तालीस और चौवन अंश हुए। और हारों को परस्पर में गुणा करने पर सर्वत्र बहत्तर हार इस प्रकार हुए $\frac{६०}{७२} + \frac{४८}{७२} + \frac{५४}{७२}$।

यहाँ अंशों को जोड़ने पर एक सौ बासठ अंश और बहत्तर हार हुए। अंशों को हार का भाग देने पर दो पाये तथा अठारह का बहत्तरवाँ भाग शेष रहा। उसे अठारह से अपवर्तन करने पर एक का चौथा भाग हुआ। इस प्रकार उनका जोड़ सवा दो $२\frac{१}{४}$ आया। सम्भव प्रमाण का भाग देकर भाज्य या भाजक राशि के महापरिमाण को थोड़ा करने या निःशेष करने को अपवर्तन कहते हैं; जैसे यहाँ अट्ठारह का भाग देने से भाज्य अट्ठारह के स्थान में एक रहा और भागहार बहत्तर के स्थान में चार रहा। इस प्रकार अपवर्तन का स्वरूप जानना।

अब व्यवकलन लीजिए। जैसे तीन में से पाँच का चौथा अंश घटाना है। सो जिसका हार नहीं होता, वहाँ एक हार कल्पित करना चाहिए। सो यहाँ तीन का हार नहीं, अतः एक हार कल्पना करके लिखें; जैसे $\frac{३}{१} - \frac{५}{४}$। यहाँ तीन अंशों को अन्य के चार हार से और पाँच अंशों को अन्य के एक हार से गुणा करो और हारों का परस्पर में गुणा करो। तब ऐसा हुआ $\frac{१२}{४} - \frac{५}{४}$। यहाँ बारह अंशों में से पाँच घटाने पर सात अंश रहे और हार चार रहा। सो अंश को हार का भाग देने पर $१\frac{३}{४}$ फल आया।

तथा भिन्न में गुणा करना हो, तो गुण्य और गुणकार के अंश को अंश से और हार को हार से गुणा करो। जैसे दस की चौथाई को चार की तिहाई से गुणा करना हो, तो $\frac{१०}{४} \times \frac{४}{३}$ लिखकर परस्पर में गुण्य और गुणकार के अंशों को और हारों को गुणा करने पर $\frac{४०}{१२}$ हुए। यहाँ अंश को हार का भाग देने पर तीन पाये और चार का बारहवाँ भाग $\frac{४}{१२}$ शेष रहा। उसे चार से अपवर्तन करने पर $\frac{१}{३}$ एक का तीसरा भाग रहा। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

भिन्न के भागहार में भाजक के अंशों को तो हार करें और हार को अंश करें। इस प्रकार पलटकर भाज्य-भाजक का गुण्य-गुणकार की तरह विधान जानना। जैसे सैंतीस के आधे को तेरह की चौथाई का भाग देना हो, तो $\frac{३७}{२} \div \frac{१३}{४}$ लिखें। भाजक के अंश और हार को पलटकर $\frac{३७}{२} \div \frac{४}{१३}$ लिखें।

गुणा करने पर एक सौ अड़तालीस अंश और छब्बीस हार $\frac{१४८}{२६}$ हुआ। हार का अंश को भाग देने पर पाँच पाये और अट्ठारह का छब्बीसवाँ भाग शेष रहा। उसे दो से अपवर्तन करने पर नौ का तेरहवाँ भाग $\frac{९}{१३}$ रहा।

भिन्न में वर्ग और घन का विधान गुणकार की तरह ही जानना। क्योंकि समान राशि दो को परस्पर में गुणा करने पर वर्ग होता है और तीन को परस्पर में गुणा करने पर घन होता है। जैसे तेरह के चौथे भाग को दो जगह रखकर $\frac{१३}{४} \times \frac{१३}{४}$ परस्पर में गुणा करने पर उनका वर्ग एक सौ उनहत्तर का सोलहवाँ भाग $\frac{१६९}{१६}$ होता है। और तीन जगह रखकर $\frac{१३}{४} \times \frac{१३}{४} \times \frac{१३}{४}$ परस्पर में गुणा करने पर इक्कीस सौ सत्तानवे का चौसठवाँ भाग $\frac{२१९७}{६४}$ घन होता है।

तथा भिन्न वर्गमूल और घनमूल में अंश और हारों का पूर्वोक्त विधान द्वारा अलग-अलग मूल ग्रहण करें। जैसे वर्गित राशि एक सौ उनहत्तर का सोलहवाँ भाग $\frac{१६९}{१६}$ पूर्वोक्त विधान से एक सौ उनहत्तर का वर्गमूल तेरह और सोलह का चार इस तरह तेरह का चौथा भाग $\frac{१३}{४}$ वर्गमूल आया। तथा घन राशि इक्कीस सौ सत्तानवे का चौसठवाँ भाग $\frac{२१९७}{६४}$। यहाँ भी पूर्वोक्त विधान अनुसार इक्कीस सौ सत्तानवे का घनमूल तेरह और चौंसठ का चार इस तरह तेरह का चौथा भाग $\frac{१३}{४}$ घनमूल आया। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

इस प्रकार लौकिक गणित की अपेक्षा परिकर्माष्टक का विधान जानना।

अलौकिक गणित का विधान सातिशयज्ञानगम्य है, क्योंकि उसमें अंकादि का अनुक्रम व्यक्त रूप नहीं है। यथा—

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में एक जोड़ने पर जघन्यपरीतानन्त होता है। और जघन्यपरीतानन्त में एक घटाने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होता है। पल्य को दस कोड़ाकोड़ी से गुणा करने पर सागर होता है। जगतश्रेणि में सात का भाग देने से राजू होता है। जघन्य युक्तासंख्यात का वर्ग करने पर जघन्य असंख्यातासंख्यात होता है। सूच्यंगुल का घन करने पर घनांगुल होता है। प्रतरांगुल का वर्गमूल निकालने पर सूच्यंगुल होता है। लोक का घनमूल निकालने पर जगतश्रेणि होती है, इत्यादि। इस प्रकार अलौकिक गणित में संकलन आदि होने पर जो प्रमाण होता है, उसका नाम मात्र कहा है। और कहीं संकलन आदि होने पर जो प्रमाण हुआ, उसका नाम नहीं कहा है; केवल संकलनादि ही कहा है; क्योंकि सब संख्यात, असंख्यात और अनन्तों के भेदों के नाम वक्तव्य रूप नहीं हैं। जैसे जीवराशि से अधिक पुद्गलराशि कही है अथवा सिद्धराशि से हीन जीवराशि कही है या असंख्यात गुणा लोक कहा है, या संख्यात प्रतरांगुल से भाजित जगतप्रतर कहा है, या पल्य का वर्ग अथवा उसका घन कहा है अथवा केवलज्ञान का वर्गमूल कहा है या आकाश के प्रदेशराशि का घनमूल कहा है।

त्रैराशिक का भी कथन आता है। अतः उसे भी समझना चाहिए। त्रैराशिक में तीन राशियाँ होती हैं—प्रमाण, फल, इच्छा। विवक्षित प्रमाण से जो फल प्राप्त हो, वह प्रमाणराशि और फलराशि जानना। और अपना इच्छित प्रमाण को इच्छाराशि जानना। फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण का भाग देने पर जो फल आवे, उसे लब्ध कहते हैं। जैसे पाँच रुपये का सात मन अन्न आता है, तो सात रुपये का कितना अन्न आवेगा। ऐसा त्रैराशिक करने पर प्रमाणराशि पाँच, और फलराशि सात। सो फल से इच्छा को गुणा करके प्रमाण का भाग देने पर उनचास का पाँचवाँ भाग प्रमाण आया। सो नौ मन और चार मन का पाँचवाँ भाग मात्र लब्ध आया। इसी प्रकार छह सौ आठ सिद्ध छह महीना आठ समय में होते हैं, तो सब सिद्ध कितने काल में हुए। ऐसा त्रैराशिक करने पर प्रमाणराशि छह सौ आठ, फलराशि छह मास आठ समयों की संख्यात आवली। इच्छाराशि सिद्धराशि। फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण का भाग देने पर संख्यात आवली से गुणित सिद्धराशि मात्र अतीत काल का प्रमाण लब्ध आता है।

शेष कथन टीका में यथास्थान आया है सो जानना।

विषय-सूची

चौबीस तीर्थंकरों तथा उनके गणधरों को नमस्कार १-८
मंगलाचरण के सम्बन्ध में शंका-समाधान १०-११
मंगल शब्द की व्युत्पत्ति ११
मल का स्वरूप और भेद १२
अभ्यन्तर द्रव्यमल १२
मंगल के भेद १३
नाममंगल १३
स्थापनामंगल और द्रव्य मंगल १३
क्षेत्रमंगल और कालमंगल १४
भावमंगल १५
ग्रन्थावतार का निमित्त १६
गोम्मटसार ग्रन्थ के अध्ययन में हेतु १७
प्रत्यक्ष हेतु, परोक्ष हेतु १७
परोक्ष हेतु : अभ्युदय सुख और मोक्ष सुख १७
अभ्युदय सुख : राजा आदि १७
राजा आदि का लक्षण १८
मोक्ष-सुख १८
ग्रन्थ का प्रमाण २०
ग्रन्थ का नाम २०
ग्रन्थकर्ता के प्रकार २०
अर्थकर्ता का कथन २१
द्रव्यरूप से अर्थकर्ता २२
क्षेत्र की अपेक्षा अर्थकर्ता २२
काल की अपेक्षा अर्थकर्ता २३
मूलकर्ता भगवान् महावीर २४
उपतन्त्रकर्ता गौतम गणधर २४
प्रमाण, नय, निक्षेप की उपयोगिता तथा स्वरूप २५
शास्त्र के आदि में उपकार का स्मरण क्यों? २५
प्रथम मंगल गाथा की व्याख्या २६
बीस प्ररूपणाएँ ३३
गुणस्थान और मार्गणा में शेष प्ररूपणाओं का अन्तर्भाव ३४
गुणस्थान का स्वरूप ३६
चौदह गुणस्थानों के नाम ४०
गुणस्थानों का स्वरूप ४१
गुणस्थानों में औदयिक आदि भाव ४२
मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का स्वरूप ४६
सासादन गुणस्थान का स्वरूप ५०
सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का स्वरूप ५१
मिश्र गुणस्थान की विशेषताएँ ५२
वेदक सम्यक्त्व का स्वरूप ५४
चल, मलिन, अगाढ़ दोष ५५
उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व का स्वरूप ५७
सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि ५८
अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप ५९
देशसंयत गुणस्थान का स्वरूप ५९
प्रमत्तविरत का स्वरूप ६०
पन्द्रह प्रमाद ६२
प्रमादों के कथन के लिए संख्या आदि कथन ६३
प्रथम प्रस्तार का कथन ६५
द्वितीय प्रस्तार का कथन ६७
नष्ट लाने की विधि ७१
उद्दिष्ट की विधि ७३
नष्ट-उद्दिष्ट के लिए उपयोगी गूढ़यन्त्र ७४
प्रमादों की विशेष संख्या ७७
अप्रमत्त गुणस्थान का स्वरूप ७८
सातिशय अप्रमत्त का स्वरूप ७९
अधःप्रवृत्तकरण का लक्षण ८०
अधःप्रवृत्तकरण के काल का प्रमाण ८१
अधःप्रवृत्तकरण की संदृष्टि आदि ८२
अधःप्रवृत्तकरण की अंकुश रचना ९९

अधःप्रवृत्तकरण की हल रचना १००
अधःप्रवृत्तकरण की विशुद्धता की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन १०२
अधःप्रवृत्तकरण की अंकसंदृष्टि रचना १०५
अधःप्रवृत्तकरण की अर्थ संदृष्टि का स्पष्टीकरण १०६
अपूर्वकरण गुणस्थान का स्वरूप ११२
अपूर्वकरण में अंकसंदृष्टि और अर्थसंदृष्टि का क्रम ११३
अपूर्वकरण का विशेष कार्य ११८
अनिवृत्तिकरण का स्वरूप ११९
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का स्वरूप १२१
उपशान्तकषाय गुणस्थान का स्वरूप १२६
क्षीणकषाय गुणस्थान का स्वरूप १२७
सयोगकेवली गुणस्थान का स्वरूप १२८
अयोगकेवली गुणस्थान का स्वरूप १२९
चौदह गुणस्थानों में गुणश्रेणि निर्जरा १२९
सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप १३७

२. जीवसमासप्ररूपणा

जीवसमास का लक्षण १४२
जीवसमास की उत्पत्ति के हेतु १४३
संक्षेप से जीवसमास १४५
विस्तार से जीवसमास १४६
जीवसमास के चार अधिकार १४६
स्थानाधिकार का कथन १४७
एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय के जीवसमास १५१
पंचेन्द्रियगत जीवसमास के भेद १५१
जीवसमास के भेदों का विशेष कथन १५३
आकारयोनि के भेद १५५
जन्म के भेद और गुणयोनि १५५
सम्मूर्छन आदि जन्मों के स्वामी १५६
जन्म के भेदों में योनिभेद १५७
योनियों के विस्तार से भेद १५९
गति के आश्रय से जन्म का कथन १६०
नरकादि गतियों में वेद का निर्णय १६१
जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के स्वामी १६१
इन्द्रियों के आश्रय से उत्कृष्ट अवगाहना और उसके स्वामी १६३
पर्याप्त दो-इन्द्रिय आदि की जघन्य अवगाहना और उसके स्वामी १६७
शरीर की अवगाहना के विकल्प और उसके स्वामी १६७
उक्त अवगाहना स्थानों में गुणकार का विधान १७३
सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यर्याप्त की जघन्य अवगाहना से सूक्ष्मवायुकायिक लब्धपर्याप्त की जघन्य अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है; उसकी उत्पत्ति का क्रम और उन दोनों की मध्य अवगाहना के भेद १८०
सब अवगाहनास्थानों की उत्पत्ति का क्रम १९२
समस्त जीवसमासों के शरीर की अवगाहना के स्थापन से होनेवाली मत्स्य रचना को सूचित करने के लिए अवगाहनास्थानों का कथन १९३
कुलों की संख्या २०४
अलौकिक गणित २०७
अलौकिक मान के चार भेद २०७
द्रव्यमान के दो भेद २०७
संख्यामान के तीन भेद २०७
संख्यात के तीन भेद २०७
असंख्यात के नौ भेद २०७
अनन्त के नौ भेद २०७
जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण लाने की विधि २०८
जघन्य परीतानन्त का कथन २११
जघन्य युक्तानन्त का कथन २१४
जघन्य अनन्तानन्त का कथन २१४
उत्कृष्ट अनन्तानन्त का प्रमाण २१५
द्विरूपवर्गधारा आदि का कथन २१५
आवली २१६
प्रतरावली २१६
पल्य २१६
सूच्यंगुल २१६
प्रतरांगुल २१६
अभव्यराशि का प्रमाण २१७
सर्व जीवराशि का प्रमाण २१७
सर्व पुद्गलराशि का प्रमाण २१७
सर्व कालराशि का प्रमाण २१७
श्रेणिरूप आकाश के प्रदेश का प्रमाण २१७

द्विरूपघनधारा २२१
द्विरूपघनाघन धारा २२३
उपमान के आठ भेद २३०
अंगुल के तीन भेद २३२
व्यवहारपल्य के रोम २३६
सागरोपम का स्वरूप २४१
उपमाप्रमाण के अर्धच्छेदों और वर्गशलाकाओं का कथन २४१

३. पर्याप्तिप्ररूपणा अधिकार

पर्याप्ति प्ररूपणाधिकार २५१
पर्याप्ति के भेद और स्वामी २५१
पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त का कालविभाग २५५
लब्ध्यपर्याप्तक का स्वरूप २५६
लब्धपर्याप्तक के क्षुद्रभव २५७
क्षुद्रभवों की संख्या का स्वामिभेद से विभाजन २५८
समुद्घातगत केवली के अपर्याप्तपना २६०
लब्ध्यपर्याप्तक आदि के गुणस्थान २६१
जहाँ अपर्याप्तकाल में सासादन और असंयत गुणस्थान नहीं होते २६२

४. प्राणप्ररूपणा अधिकार

प्राणों की प्ररूपणा २६४
पर्याप्ति और प्राण में भेद २६४
प्राणों के भेद २६६
प्राणों के स्वामी २६७
एकेन्द्रिय आदि में प्राणों की संख्या २६७

५. संज्ञाप्ररूपणा अधिकार

संज्ञा-प्ररूपणा २६९
संज्ञाओं की उत्पत्ति में कारण २६९
संज्ञाओं के स्वामी २७१

६. गतिमार्गणा अधिकार

मार्गणा महाधिकार को कहने की प्रतिज्ञा २७३
मार्गणा शब्द का निरुक्तिसिद्ध लक्षण २७४
चौदह मार्गणाओं के नाम २७५
आठ सान्तर मार्गणा २७६
गति मार्गणा का स्वरूप २७८
नारकगति का स्वरूप २७८
तिर्यंचगति का स्वरूप २७९
मनुष्यगति का स्वरूप २८०
तिर्यंचगति और मनुष्यगति में जीवों के भेद २८१
देवगति का स्वरूप २८१
सिद्धगति का स्वरूप २८२
नरकगति में जीवों की संख्या २८२
तिर्यंचगति में जीवों की संख्या २८४
मनुष्यगति में जीव संख्या २८६
देवगति में जीव संख्या २९०

७. इन्द्रियमार्गणा अधिकार

इन्द्रिय शब्द का निरुक्तिपूर्वक अर्थ २९३
इन्द्रिय के भेद और उनका स्वरूप २९४
इन्द्रियों से युक्त जीव २९७
एकेन्द्रिय आदि के सम्भाव्य इन्द्रियाँ २९७
स्पर्शन आदि इन्द्रियों के विषयभूत क्षेत्र का परिमाण २९८
इन्द्रियों का आकार ३००
इन्द्रियों के प्रदेशों का अवगाह ३०१
स्पर्शन इन्द्रिय के प्रदेशों की अवगाहना ३०२
अतीन्द्रिय ज्ञानवाले जीव ३०३
एकेन्द्रिय आदि जीवों की सामान्य संख्या ३०३
एकेन्द्रियों की संख्या ३०४
त्रसजीवों की संख्या ३०५
त्रसजीवों की संख्या में विभाग का क्रम ३०६

८. कायमार्गणा अधिकार

कायमार्गणा ३११
स्थावरकाय के पाँच भेद ३१२
बादर और सूक्ष्म का लक्षण ३१३
वनस्पतिकाय के भेद ३१६
प्रत्येक और अनन्तकाय की पहचान ३१७
साधारण वनस्पति का स्वरूप ३२१
बादर निगोद शरीरों का आधार ३२५
एक निगोद शरीर में जीवों का प्रमाण ३२६
सिद्धराशि के सम्बन्ध में शंका-समाधान ३२७

नित्यनिगोद का लक्षण ३३०
त्रसकाय का वर्णन ३३१
त्रसों का निवासस्थान ३३१
वनस्पति की तरह अन्य जीवों में भी प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेद ३३३
स्थावरकायिक और त्रसकायिकों के शरीर का आकार ३३४
कायमार्गणा से रहित जीव ३३५
पृथ्वीकायिक आदि जीवों की संख्या ३३६
प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित वनस्पति जीवों की संख्या ३३६
साधारण जीवों का परिमाण ३४०
बादरकाय और सूक्ष्मकाय का विभाग ३४१
बादर-तैजस्कायिक और बादर-वायुकायिक पर्याप्त जीवों की संख्या ३४५
साधारण बादरों में पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का परिमाण ३४६
सामान्य त्रसराशि, पर्याप्त त्रसराशि और अपर्याप्त त्रसराशि का परिमाण ३४७
अर्द्धच्छेदों के आधार पर प्रकृत राशि लाने का विधान ३५१

९. योगमार्गणा अधिकार

योग का साधारण लक्षण ३५४
योग के भेदों का लक्षण ३५५
सत्य मनोयोग आदि का लक्षण ३५६
अनुभय वचन योग का लक्षण ३५८
दस प्रकार के सत्यवचन तथा उनके उदाहरण ३५९
अनुभय वचन के भेद ३६२
सत्यादि वचन और मनोयोग के कारण ३६४
सयोगकेवली की दिव्यध्वनि ३६५
सयोगकेवली में मनोयोग ३६६
औदारिक काययोग ३६८
औदारिक मिश्रकाययोग ३६९
वैक्रियिक काययोग ३७०
वैक्रियिक मिश्रकाययोग ३७१
आहारक काययोग ३७२
आहारक शरीर का स्वरूप ३७३
आहारक की निरुक्ति ३७४
आहारक मिश्रकाययोग ३७५
कार्मण काययोग ३७५
योगों की प्रवृत्ति का प्रकार ३७७
योगरहित आत्मा का स्वरूप ३७८
शरीरों में कर्म-नोकर्म विभाग ३७९
औदारिक आदि शरीरों में समयप्रबद्ध आदि की संख्या ३७९
शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणा की अवगाहना में भेद ३८२
विस्रसोपचय का स्वरूप ३८४
कर्म, नोकर्म के उत्कृष्ट संचय का स्वरूपादि ३८६
उत्कृष्ट संचय की सामग्री ३८६
शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति ३८७
उत्कृष्ट स्थिति में गुणहानि आयाम का प्रमाण ३८७
औदारिक आदि समयप्रबद्धों के बन्ध, उदय, सत्त्वद्रव्य का प्रमाण ४०६
औदारिक और वैक्रियिक शरीरों के स्थिति-बन्ध में विशेषता ४०७
औदारिक का उत्कृष्ट संचय ४०९
वैक्रियिक का उत्कृष्ट संचय ४१०
तैजस और कार्मण का उत्कृष्ट संचय ४११
प्रतिसमय, एक-एक समय-प्रबद्ध का उदय कैसे होता है? ४१३
त्रिकोण रचना में स्थित सत्त्वद्रव्य को जोड़ने की तीन विधियाँ ४१८
आयुकर्म के बन्ध, उदय, सत्त्व की विशेषता ४४१
योगमार्गणा में जीवों की संख्या ४४७
त्रियोगी जीवों की राशि ४४८
काययोगी जीवों की राशि ४४९
सत्य मनोयोग आदि से युक्त जीवराशि ४५१
दो योगवालों में वचनयोगवालों का प्रमाण ४५३
दो योगवालों में काययोगियों का प्रमाण ४५३
कार्मणकाययोगियों का प्रमाण ४५३
औदारिक-मिश्र-काययोगियों का प्रमाण ४५३
औदारिककाययोगियों का प्रमाण ४५३
वैक्रियिककाययोगियों का प्रमाण ४५६
आहारक तथा आहारक मिश्रयोगियों का प्रमाण ४६१

१०. वेदमार्गणा अधिकार

भाववेद और द्रव्यवेद का लक्षण ४६२
वेदवैषम्य ४६३
पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति ४६४
स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति ४६५
नपुंसक का स्वरूप ४६६
वेदरहित जीव ४६७
वेदमार्गणा में जीवसंख्या ४६८
देवों में स्त्री और पुरुषों की संख्या ४६९
समस्त पुरुषवेदी, स्त्रीवेदी और नपुंसक वेदी जीवों का प्रमाण ४७०

११. कषायमार्गणा अधिकार

कषाय शब्द की व्युत्पत्ति ४७३
अनन्तानुबन्धी आदि की व्युत्पत्ति ४७४
क्रोध के चार प्रकार ४७६
मानकषाय के चार प्रकार ४७७
माया कषाय के चार प्रकार ४७८
लोभकषाय के चार प्रकार ४७९
प्रत्येक गति में जन्म लेने के समय उत्पन्न कषाय ४८०
कषायरहित जीव ४८१
शक्ति की अपेक्षा कषाय के भेद ४८२
लेश्या की अपेक्षा भेद ४८३
आयु के बन्ध-अबन्ध की अपेक्षा बीस भेद ४८७
चौदह लेश्यास्थान सम्बन्धी उदयस्थान ४९१
आयुस्थान सम्बन्धी उदयस्थान ४९३
कषायमार्गणा में जीव-राशि का प्रमाण ५००

आचार्यप्रवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिरचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

श्रीमत्केशवण्णविरचित कर्नाटकवृत्ति तदनुसारी संस्कृतटीका
जीवतत्त्वप्रदीपिका तथा हिन्दी भाषाटीका सहित

यः सर्वकालविषयार्थयथार्थवेदी, देवेन्द्रवृन्दमनुजेन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यः ।
निर्दग्धसंसृतिनिबन्धनकर्मकक्षस्तं वर्धमानजिननाथमहं नमामि ॥१॥
अतिविशदबोधनिधि-र्निजितघातिचतुष्टयं प्रजाजीवितनु-
व्रतवृषभनाथवदनो-दितमादुदु धर्मतीर्थमाद्यं धरेयोळ् ॥२॥
अजितजिनं जितवृजिनं सुजनविनेयोपकारिदिव्यनिनादं ।
भजनीयनेंदु रुचियिं भजियिसे भवदहनमवर्गळं दहिसुगुमे ॥३॥
शंभवनिं मुक्तिश्रीसंभविसुगुमेंब रुचि मनोंबुजदोळि रळ् ।
स्तंभिसुगुं भवतापमनंभोददवोलतदागमामृतवर्षं ॥४॥
अभिनंदनं गुणावळियभिनंदितनादनदरिनातन
वचनक्कभिमुखमादोडे साग्गुं त्रिभुवनपरमेश्वरत्वमा क्षणदिदं ॥५॥

जो त्रिकालवर्ती पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जानते हैं, देवोंके इन्द्रोंके समूह, चक्रवर्ती तथा गणधरोंके द्वारा वन्दनीय हैं और जिन्होंने संसारके कारण कर्मसमूहको नष्ट कर दिया है, उन वर्धमान जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अत्यन्त स्पष्ट निर्मल ज्ञान जिनकी निधि है, जिन्होंने चार घातिकर्मोंको जीता है, प्रजाजनोंको जीवनका मार्ग दिखलानेसे जो प्रजाजीवित कहे जाते हैं, ऐसे श्रेष्ठ भगवान् वृषभनाथके मुखसे इस धरातलपर प्रथम धर्मतीर्थका उद्गम हुआ था ॥२॥

जिनने पापकर्मको जीत लिया है, जिनकी दिव्यध्वनि शिष्यजनोंके लिए उपकारी है, ऐसे अजितनाथ जिनेन्द्रको जो आराधना करने योग्य मानकर श्रद्धापूर्वक उनकी आराधना करते हैं, उनको क्या संसाररूपी आग जला सकती है ? ॥३॥

सम्भवनाथ जिनसे मुक्तिश्री प्राप्त होती है, इस प्रकारकी श्रद्धा मनरूपी कमलमें निवास करनेपर उन भगवान्की आगमरूप अमृतवर्षा मेघके समान संसार-सन्तापको शान्त कर देती है ॥४॥

जिनके जन्म लेते ही सब प्राणियोंके ज्ञानादिगुण और सर्वसम्पत्ति वृद्धिको प्राप्त

सुमतिजिनं सुमतिकरं कुमतविनाशक शशांकविनुत भुजौढयं ।
नमगे गुरुवेंदु सततं सुमनस्कतेयिंदे केळगे तत्सूक्तिगळं ॥६॥
पद्मप्रभजिनपतियं पद्मदलप्रतिमलेश्यनं निजसुमनः ।
पद्मदोळु निलिसि तद्वाक्पद्मगे वरनागे मुक्तिवनितिगे वश्यं ॥७॥
व्यपगतदोषसमूहं सुपार्श्वजिननाथनक्षयश्रीरमणं ।
विपदपनोदनकारणनुपदिष्टागममे संततं श्रवणीयं ॥८॥
चंद्रप्रभं जिनाधिपनिंद्रशतार्चितपदांबुजं रविशशिसत्- ।
सांद्रतनुकांति पेळ्दुदतींद्रियसुखदायियागमं श्रवणीयं ॥९॥
सुविधिवदनाब्जदिदं प्रवादिमतदीपिकाप्रभंजनरूपं ।
प्रवचनमोगेदुदधृष्यं भवविषमहुताशनोपशमनासारं ॥१०॥
शीतलनाथन वचनं शीतलमेंतंते हारनीहारंगळ् ।
शीतळमे संसृतिश्रममाततमुळ्ळंगे लोकदोळ्पेरविनुं ॥११॥

होनेसे जो अभिनन्दन कहलाये। उन अभिनन्दन भगवान्के वचनोंके सम्मुख होते ही त्रिभुवनको परमेश्वर पद प्राप्त होता है ॥५॥

सुमतिको देनेवाले भगवान् सुमतिनाथ कुमतरूपी अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा हैं। जिनको अनेकों भुजाओंने नमन किया है वे हमारे परम गुरु हैं। उनकी सूक्तियोंको सबलोग निर्मल चित्त होकर सुनें ॥६॥

कमलके पत्रके समान लेश्यावाले पद्मप्रभ जिनेन्द्र भगवान्को अपने मनरूपी कमलमें स्थापित करके जो उनके वचनरूपी लक्ष्मीका पति होता है, वह मुक्तिरूपी नारीके वशमें होता है ॥७॥

जिनसे सब दोष दूर हो गये हैं, जो अक्षय मोक्षलक्ष्मीके पति हैं, तथा भव्य जीवोंके संकटोंको दूर करनेमें कारण हैं, ऐसे सुपार्श्वनाथ भगवान्के द्वारा उपदिष्ट आगम ही निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥८॥

जिनके चरणकमल सौ इन्द्रोंके द्वारा पूजे गये हैं, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रशस्त तथा घनी जिनकी शरीरकान्ति है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान्के द्वारा प्रतिपादित तथा अतीन्द्रिय सुखको देनेवाला आगम सुनने योग्य है ॥९॥

सुविधिनाथके मुखकमलसे निकला हुआ प्रवचन अखण्डनीय है, वह प्रवादियोंके मतरूपी दीपिकाओंके लिए प्रभंजनरूप—वेगशील वायु है। जैसे जोरकी वायुसे दीपक बुझ जाते हैं,वैसे ही उनके प्रवचनसे प्रवादियोंके मत खण्डित हो जाते हैं। तथा वह प्रवचन संसाररूपी विषम अग्निको शान्त करनेके लिए मूसलधार वर्षा है ॥१०॥

शीतलनाथ भगवान्के वचन संसारके सन्तापको दूर करनेसे हार और हिम (बर्फ) से भी शीतल हैं। इसलिए विस्तृत संसारके श्रममें पड़े हुए जीवोंको इस लोकमें भगवान्

---

१. क वितनुतभूं । २. म भुजाढ्यं । ३. क नागि । ४. म °वनिति । ५. क °मोगिदुददुष्टयं । ६. क °शमनाऽऽसा ।

श्रेयांसं जिननाथं श्रेयोर्थिजनप्रपुण्यसामर्थ्यदिना ।
श्रेयोमार्गमनखिलविनेयावेळिगरिपि भव्यबांधवनादं ॥१२॥
श्रीवासुपूज्यनं नुतदेवासुरमनुजसत्सभावेष्टितनं ।
भाविपोडे तत्प्रणीतं भावयितव्यं भविष्णुमुनिजनदिदं ॥१३॥
विमलजिनं कमलांबकनेमालांबरभानुकोटिभामंडलना ।
समवसरणस्थितं पेळ्द मानुषागमसुधारसं नीरसमे ॥१४॥
अनघननंतजिनेंद्राननवनजविनोदवे विश्वभाषामयदिव्य ।
निनादं केवलं लोचनावलंबं विनेयजनतालंबं ॥१५॥
अनवद्यधर्मतीर्थमननुप्रवर्त्तिसिदनखिललोकंगळोळं- ।
अनिमिषपतिपति धर्मं विनेयजननिवहृदभिमतार्थप्रदमं ॥१६॥
शांतिं जिनं दुरितव्रजशांतियुतं विगतधातुमलनैतिह्यं ।
भ्रांतिसदे तिळिदु नंबुव शांतात्मंगतुळसौख्यमं दयेगेय्गुं ॥१७॥

शीतलनाथके वचनोंको छोड़कर दूसरा कौन शीतल है ? अर्थात् उनके वचन ही जीवोंको शीतलता प्रदान करते हैं ॥११॥

कल्याणके इच्छुक जनोंके प्रबल पुण्यके प्रतापसे सब भव्य जीवोंको मोक्ष-मार्गका उपदेश करके भगवान् श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र भव्यजीवोंके बन्धु बन गये हैं ॥१२॥

श्री वासुपूज्य जिन नम्रीभूत देव, असुर और मनुष्योंकी श्रेष्ठ सभासे वेष्टित हैं अर्थात् समवसरणमें विराजमान हैं। उनके द्वारा प्रणीत उपदेश भव्य मुनिजनोंके द्वारा भावना करनेके योग्य है ॥१३॥

जिनके नेत्र कमलके समान हैं, निर्मल आकाशमें करोड़ों सूर्योंके समान जिनका प्रभामण्डल फैला हुआ है, ऐसे विमलनाथ जिन समवसरणमें विराजमान हैं। मनुष्योंके लिए प्रतिपादित उनका आगमरूप सुधारस क्या कभी नीरस हो सकता है ? ॥१४॥

निर्दोष श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रके मुखकमलसे विश्वभाषामय दिव्यध्वनि निकलती है, केवलज्ञान और केवलदर्शन उसका अवलम्बन है। वे भगवान् भव्य जीवोंके आलम्बन हैं अर्थात् भव्यजीव उनके आश्रयसे अपना कल्याण करते हैं ॥१५॥

इन्द्रोंके स्वामी धर्मनाथ तीर्थंकरने सब लोकके भव्य जीवोंको अभिमत अर्थको देनेवाले निर्दोष धर्मतीर्थका प्रवर्तन किया ॥१६॥

पापसमूहकी शान्तिसे युक्त तथा धातु और मलसे रहित शान्तिनाथके इतिवृत्तको निर्भ्रान्त रूपसे जानकर श्रद्धान करनेवाले शान्तात्माको शान्तिनाथ भगवान् अतुल सुख प्रदान करते हैं ॥१७॥

---

१. क °वयरिं । २. म नमलां । ३. क °लरोचं । ४. क °जिननु । म °जिनन । ५. क °युतनु । म °युतन । ६. म दयेगे ° ।

परमदयोपेततयिं परिरक्षितकुंथु[1] कुंथुजिननाथमुखां-
बुरुहदिनुदितैतिह्यं परिग्रहाग्रहरोळारोळं रुचिसुगुमे ॥१८॥
अनुपम[2]मनंतमरगुणमनितुं स्तुतिविषयमल्तु दृग्बोधनिजा-
ननजनितसकलभाषासनाथदिव्यध्वनिस्तुतिगळिवे साल्गुं ॥१९॥
मल्लिजिनन मुक्तिश्रीवल्लभन दयामयं वचःसुधेयदु ता-
निल्लदोडे जगज्जीवनमेल्लियदपवर्ग[3]मार्गमेल्लियदु दिटं ॥२०॥
परिणतशिखिकंठच्छविपरिमंडितदेहदीप्तिधर सुव्रतनें-
बुरु नीलगिरियोळोगेदु[4]दु सरित्तेनळ्सावंमतुलदिव्यनिनादं ॥२१॥
नमिनाथन घातितमं सुमनःप्रणिधानभानुविं क्रोडे बोध-[6]।
द्युमणियुदयिसिदोडुदयिसे समस्तभाषात्मकं रवं तन्मुखदिं ॥२२॥
गणिसदे नेमि धरित्रियनेणिसदे राजीमतिविवाहमनघदोळ्[7]।
सेणर्सि[8] गेलिदागि केवलि तणिपिदनागमसुधांबुविं सत्सभेयं ॥२३॥

परम दयाभावसे युक्त होनेसे जिन्होंने कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा की है, ऐसे कुन्थुनाथ तीर्थंकरके मुख-कमलसे निकला हुआ वचन सुनकर ऐतिह्य परिग्रहका आग्रह रखनेवालोंमें परिग्रह किनको रुचेगा? अर्थात् परिग्रहका वर्णन सुनकर परिग्रह में उनकी आसक्ति नहीं होती ॥१८॥

अरनाथ भगवान्के गुण अनुपम और अनन्त हैं, इसलिए उनके गुणोंकी स्तुति करना शक्य नहीं है। अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान तथा उनके मुखसे निर्गत सर्वभाषामय दिव्यध्वनिकी स्तुति ही पर्याप्त है ॥१९॥

मोक्षलक्ष्मीके पति मल्लिनाथ जिनके वचनामृत दयामय हैं। उसके अभावमें निश्चय ही जगत्के प्राणियोंका जीवन कैसे चल सकता है और कैसे मोक्षमार्ग चल सकता है? अर्थात् भगवान् मल्लिनाथके दयामय वचनोंसे ही जगत्का जीवन और मोक्षमार्ग प्रवर्तता है ॥२०॥

तरुण अवस्थाको प्राप्त मयूरके कण्ठकी छविके समान प्रभामण्डलसे अलंकृत शरीर-कान्तिको धारण करनेवाले मुनिसुव्रत भगवान् हैं। उनसे, नील पर्वतसे निकले हुए नदीके प्रवाहके समान सब जीवोंको कल्याणकारी अनुपम दिव्यध्वनि निकली है ॥२१॥

नमिनाथके प्रशस्त अन्तःकरणके एकाग्ररूप सूर्यसे घातिकर्मरूपी अन्धकारके नष्ट होनेपर ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हुआ। उसका उदय होनेपर उनके मुखसे सर्वभाषामय दिव्य ध्वनिका उदय हुआ ॥२२॥

संसारकी चिन्ता न करके और राजीमतीके साथ होनेवाले विवाहको ठुकराकर तथा कर्मोंसे लड़कर नेमिनाथ भगवान् केवलज्ञानी बने और आगमरूपी अमृत जलसे प्रशस्त समवसरण सभाको सन्तृप्त किया ॥२३॥

---

१. क कुंथ कुं°। २. म °पमानं°। ३. क °र्ग मेल्लि°। ४. क लोगिदु°। ५. म पूततमं। ६. म किडे। ७. क दोदु°. ८. क सेणसे°। ९. °वि ग स°।

कमठकठिणोपसर्गं क्षमयिंदं पिंगे पार्श्वनाथं पडेदं ।
क्रमकरणरहितबोधमनमृतोपमम प्रवचनमं दयेगेय्दं ॥२४॥
वीरन दुरितजयोत्थित भेरीनिनदंबोलमृंतदिव्यरवं दु-
र्वारकलिदहनशमनं बोरेंदोगेंदत्तु तन्मुखांभोरुहदिं ॥२५॥
इंताप्तनुमार्गममुं संतानक्रमदनादिमध्यांतंगळ् ।
चिंतिसलु पडुवविवु निश्चिततेयिं चिंतितार्थवितरन्मणिगळ् ॥
लौकिक सम्यन वचनं लोकोत्तरमेंदु नंबुवर्जनॅरनघर् ।
लोकालोकज्ञरवर्लोकॅशरण्यमवर्गळ वचनं ॥
श्रीवृषभसेनगणधर देवर्मोदलागि चतुरशीतिप्रमितर् ।
श्रीवृषभाननपद्मज पावनवचनांगपूर्वकृद्गणभृद्गळ् ॥१॥८४
नानागुणनिधिकेसरिसेनं मोदलागि पत्तुगुंदिद नूर्वज्ञानिगळु
गणधरर्कळु जैनीवाग्धेनुमंतरजितेश्वरनोळ् ॥२॥९०
श्रीचॅारुषेणनामाद्याचारांगादि शास्त्रकर्तृगळु जगॅल्लो-
चित शंभवनाथंगाचारोदारगणधरर्नूरय्वर् ॥३॥१०५

कमठके कठिन उपसर्गको क्षमागुणसे जीतकर श्री पार्श्वनाथ भगवान्ने क्रम तथा इन्द्रियोंके सहयोगसे रहित अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करके भव्यजीवोंको अमृतोपम उपदेश दिया ॥२४॥

वीरजिनेन्द्रके मुख-कमलसे कर्मकी विजयसे उत्पन्न तथा दुर्वार पापरूपी आगको शान्त करनेवाली, भेरीकी ध्वनिके समान गम्भीर अमृतोपम दिव्यध्वनिकी गर्जना हुई ॥२५॥

इस प्रकार आप्त और उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्गको; जिसका आदि, मध्य, अन्त नहीं है, परम्पराके क्रमसे चिन्तन करना चाहिए। ये सचमुच चिन्तित अर्थको देनेवाले चिन्तामणि रत्न हैं ॥

सामान्यजन जो व्यवहारमें सभ्य होता है, उसके वचनोंको लोकोत्तर समझकर विश्वास करते हैं। परन्तु वे तीर्थंकर तो निर्दोष और लोकालोकको जानते हैं। इसलिए उनके वचन लोगोंके लिए शरणभूत होते हैं ॥

भगवान् ऋषभदेवके मुख-कमलसे प्रकट हुए पावन वचनोंको बारह अंग और चौदह पूर्वोंके रूपमें ग्रथित करनेवाले श्री वृषभसेन गणधर देव आदि चौरासी गणधर थे। अर्थात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके चौरासी गणधर थे, जिनमें प्रमुख श्री वृषभसेन थे ॥१॥

जिनेश्वरके वचनरूपी धेनुको धारण करनेवाले, नाना गुणोंके निधि, ज्ञानी केसरिसेन आदि दसकम सौ अर्थात् नब्बे गणधर अजितनाथ तीर्थंकरके थे ॥२॥

जगत्के नेत्र समान तीर्थंकर सम्भवनाथके आचारांग आदि शास्त्रोंको रचनेवाले चारुषेण आदि एक सौ पाँच गणधर थे जो आचारमें निपुण थे ॥३॥

---

१. क पिंगि । २. क °मृतदिदिं । ३. क °दोगिदं । ४. क °जन° । म °जिन° । ५. म °क शरण्य शरण्यम° । २. म °चारुदत्त° । ७. क °ल्लोचेतशंभवनादगा° ।

श्रीवज्रचमरगणधरदेवर्म्मोदलागि नूरमूवर्गणभृ-
द्देवरभिनंदनंगेनलावं बण्णिपनु महिमेयं केवलिया ॥४॥१०३
श्रीवज्रनामगणधरदेवं मोदलागि नूरपदिनारप्पर् ।
केवलि सुमतिगे गणधररावगमंगादिविविधशास्त्रकृतिज्ञर् ॥५॥११६
श्रीचमरं मोदलादब्भूंचक्रविनुतगणधरर्पद्मप्रभवाचाम-
गोचरगुच्चाचारर्न्नूर्व्वरधिकरेकादशादि ॥६॥१११
अपवर्गमार्गनिरतर्सुपार्श्वजिननाथनल्लि तो बत्तप्वर्लपि-
तर्बलदेवादिगळुपमातीतप्रभावगणधरदेवर् ॥७॥९५
दत्तर्मोदलागिर्द सुवृत्तगणधररु चंद्रनायगे जगद्-
वृत्तविषयावबोधंगुत्तमरेळ्गुंदिद नूर्वरप्पर्ल्यातर् ॥८॥९३
सुविधिगे वैदर्भमोदिल वरागिरे गणधरर्कळे भत्तेण्बर् ।
सुविधिमुखविधुविनिर्गतभुवनस्तुतदिव्यवाक्सुधारसपात्रर् ॥९॥८८
शीतलजिनंगे नागं ख्यातं मोदलागि गणधरर्चतुरमल-
ज्योतिर्मयरे बत्तेळ्भूतळपतिपूजितांघ्रियुगसरसिरुहर् ॥१०॥८७
श्रेयोजिनंगे कुंथु ज्यांयं मोदलागि गणधरर्हेयोपा- ।
देयमनेरिपुवरखिलविनेयगे प्पत्तुमधिकमेळरिनप्पर् ॥११॥७७

श्री वज्रचमर गणधरदेव आदि एक सौ तीन गणधर अभिनन्दन स्वामीके थे। उन भगवान् केवलीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है?॥४॥

केवलज्ञानी सुमतिनाथ भगवान्के श्री वज्र नामक गणधर देव आदि एक सौ सोलह गणधर थे। वे अंग आदि विविध शास्त्रोंकी कृतिके ज्ञाता थे ॥५॥

वचनोंके अगोचर भगवान् पद्मप्रभके श्री चमर आदि एक सौ ग्यारह गणधर थे, जिनकी स्तुति समस्त पृथ्वीमण्डल करता है और जो श्रेष्ठ आचारके धारक थे ॥६॥

भगवान् सुपार्श्वनाथके बलदेव आदि पंचानवे गणधर थे जो मोक्षमार्गमें तत्पर तथा अनुपम प्रभावशाली थे ॥७॥

जगत्के वृत्त विषयको जाननेवाले भगवान् चन्द्रनाथके, श्रेष्ठ चारित्रके धारक दत्त आदि उत्तम गणधर सौमें सात कम अर्थात् तिरानवे प्रसिद्ध थे ॥८॥

भगवान् सुविधिनाथके वैदर्भ आदि अठासी गणधर थे जो भगवान् सुविधिनाथके मुखचन्द्रसे झरते हुए तथा त्रिलोकके द्वारा स्तुत दिव्यवाणी रूप अमृत रसके पात्र थे ॥९॥

शीतलनाथ जिनेन्द्रके चार निर्मल ज्ञानज्योतिके धारी प्रसिद्ध नाग आदि सत्तासी गणधर थे। उनके चरण भूमण्डलके स्वामियोंके द्वारा पूजे जाते थे ॥१०॥

भगवान् श्रेयांसनाथके कुन्थुज्याय आदि सात अधिक सत्तर अर्थात् ७७ गणधर थे।

१. म °विनूतं। २. म वाचामं। ३. क °रतत्सुं। म °रतस्सुं। ४. °नाथगे। ५. म °वृत्तिं। ६. म °पात्रं°। ७. क °जार्यं। ८. हेयापादेय। ९. म °यनरिं।

श्रीवसुपूज्यतनूजनोळावगमररुवत्तु[1] मारुसंख्येयिनप्पर् ।
भूविनुत धर्मादिगळेवेळ्वें द्वादशांगकृतियोळ् कुशलर् ॥१२॥६६
विमलजिनपतिगे गणधररमळिनगुणनिळयमंदरं मोदलादर् ।
तमगैवत्तव्वर्गासंमश्रुतस्कंधविरचना[3] कुशलिकेयोळ् ॥१३॥५५
श्रीमदनंतस्वामिगे तामंतरुवत्तु सासिरप्रश्नेगळं[4] ।
नेमदोळु माडिदर्जयनाममोदलादगणधरर्शतदर्द्धं ॥१४॥५०
ओर्मेदिलोळे[5] पर्यनुयोगोर्मिगे दत्तोत्तरंगे गणधरदेवर् ।
धर्मंगरिष्टसेनाद्यर्मुनिपुंगवरु नाल्वत्तु[6] मूवरुगळ् ॥१५॥४३
शांतिगे चक्रायुधमुनिपांतकषायाद्य[7] गणधरर् षट्त्रिंशर् ।
दांतर् पेररारडेयोळ् शांतपरमप्रवचनकरणसमर्थर् ॥१६॥३६
श्रीकुंथुगे मूवत्तैंदाकालदोळा स्वयंभुगळ्मोदलादर् ।
लोकोत्तमगणधररुगळेकैकरुमंगपूर्वकृतियोळु कुशलर् ॥१७॥३५
अरजिनवरंगे कुंभाद्यरुमार्गित्रिंशद्गणीशरनितुं भुवनो-[8]-
दरमं[9] धवळिसि कीर्त्यमृतरसदिनखिळांगपूर्वकारकरेसेदर् ॥१८॥३०
मल्लिजिनंगे विशाखाद्युल्लसितगुणाब्जषंडगणधरदेवर् ।
जल्लमल ऋद्धिमोदला गेल्लवरिं नेरेदे[10] मुनिगळिप्पत्तेंटर् ॥१९॥२८

जो शिष्यजनोंको हेय-उपादेयका बोध कराते थे ॥११॥

श्री वासुपूज्य तीर्थंकरके ज्ञानी साठ और छह अर्थात् छियासठ ६६ संख्यावाले पृथ्वीपर स्तुत्य धर्मादिक गणधर थे जो द्वादशांगमें कुशल थे ॥१२॥

विमल जिन भगवान्के निर्मल गुणोंके आवास मन्दर आदि पचपन गणधर थे। श्रुतस्कन्धके रचना-कौशलमें उनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कौन है ? ॥१३॥

अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मीसे सम्पन्न अनन्तनाथ भगवान्से साठ हजार प्रश्न नियमसे करनेवाले जयनाम आदि पचास गणधर थे ॥१४॥

प्रश्नरूपी उर्मीका प्रथम ही उत्तर देनेवाले अरिष्टसेन मुनिवर आदि तैंतालीस गणधर धर्मनाथ भगवान्के थे ॥१५॥

शान्तिनाथके कषायको नष्ट करनेवाले छत्तीस गणधर थे। वे इन्द्रियोंका दमन करनेवाले शान्त थे। उनके समान दूसरा कौन उत्तम प्रवचन करनेमें कुशल है ? ॥१६॥

श्री कुन्थुनाथके उस समय स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे। जो लोकमें उत्तम थे और जिनमें-से प्रत्येक गणधर अंग और पूर्वकी रचनामें कुशल था ॥१७॥

और जिनवरके सम्पूर्ण अंगों और पूर्वोंकी रचना करनेवाले कुम्भ आदि तीस गणधर थे। उन्होंने अपनी कीर्तिरूपी अमृतरससे भुवनके मध्य भागको धवल कर दिया था ॥१८॥

जिनमें गुणरूपी कमल-वन विकसित हुआ है और जो जल्ल,मल आदि सब ऋद्धियोंसे

---

१. म °वत्तमं । २. क °गलिवेळिं । ३. म °र्सममश्रुतं । ४. °प्रश्निनं । ५. म वोमर्गे ° । ६. क °ल्वत्तुं । ७. म चित्रायुं । ८. क °निवान्तं । ९. म गणेशं । १०. क °दवं । ११. क नोदं ।

मुनिसुव्रतंगे गणधरमुनिमुख्यमल्लिमुंबिगर्पदिनेटंर् ।
मुनिसुव्रतवद्रनोदितमनुपमवचनामृताब्धिवर्धनचंद्रर् ॥२०॥१८
नमिजिनन दिव्यवाक्सोमनाश्रिसोमांनतनन्नेर्पदिनेळ् ।
समुदितमतिविस्तरमागमानुषागममनंगपूर्व्वं गेय्दर् ॥२१॥१७
नेमिजिनपतिगे वरदत्तामरपतिपूज्यनादियागिरे पंनो- ।
दी महियोळ्गणनाथर्तामनितुं नेमिजिनवचः श्रीकांतर् ॥२२॥११
व्यग्रोत्पत्तिनिमित्तपरिग्रहरहितस्वयंभुगळ्मोदलागि सु- ।
विग्रहरुं दशमितरु समग्रतपःश्रुतरु गणधरर् पार्श्वरोळं ॥२३॥१०
श्रीवर्धमानजिनपतिकेवलिगळिंद्रभूतिगळ्मोदलादर्ग्या ।
तर्प्पन्नो दप्प ज्योतिर्म्मयरी युगादितीर्थोपज्ञर् ॥२४॥११
इंताप्तागमधारिगळ्तं शास्त्रादियल्लि पेळ्लेवेळ्कुं ।
अंतर्गतमलगलनात्यंतिकसुखकारि नाममंगलमर्दरि ॥२५॥
मूलोत्तरकर्तृगळी कालदोळवसर्पणदोळुत्तर्यदोळित्तळ् ।
कालानुवर्त्तिगळ्गुणशालिगळाचार्यरिल्लिवरमुं तंदर् ॥२६॥

शोभित हैं, ऐसे विशाख आदि अट्ठाईस गणधर मल्लिनाथ भगवान्के थे ॥१९॥

मुनिसुव्रतनाथके अठारह गणधर थे, जिनमें प्रमुख गणधर मल्लि थे। वे मुनिसुव्रतनाथके मुखसे उत्पन्न हुए अनुपम वचनरूप अमृतसमुद्रको बढ़ानेमें चन्द्रमाके समान थे ॥२०॥

दिव्य वाणीको चन्द्रके समान नमिजिनेन्द्रके श्रीसोम आदि सतरह गणधर थे। उन्होंने आगमको अंग और पूर्वके रूपमें प्रतिपादन करके ज्ञानका विस्तार किया ॥२१॥

इस पृथ्वीतल पर नेमिनाथ भगवान्की वचनरूपी लक्ष्मीके पतिस्वरूप वरदत्त आदि ग्यारह गणधर भगवान् नेमिनाथके थे, जो देवोंसे पूजित थे ॥२२॥

पार्श्वनाथ भगवान्के दस गणधर थे। उनमें प्रथम स्वयम्भू थे। वे चंचलता उत्पन्न करनेमें निमित्त परिग्रहसे रहित थे। उत्तम शरीरके धारी थे। तथा समग्र तप और श्रुतसे शोभित थे ॥२३॥

श्री वर्धमान जिनेन्द्र केवलीके इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर प्रसिद्ध थे। जो इस युगके आदिमें अर्थात् पंचमकालके प्रारम्भमें धर्मतीर्थके आद्य ज्ञाता थे ॥२४॥

इस प्रकार शास्त्रके प्रारम्भमें आप्त तीर्थंकरोंका और आगमधारी गणधरोंका कथन करना चाहिए। इससे आन्तरिक मलके गल जानेसे आत्यन्तिक सुखकारी अर्थात् मोक्षसुखको देनेवाला नाम मंगल होता है ॥२५॥

इस अवसर्पिणी कालमें मूलकर्ता तीर्थंकर हैं और उत्तरकर्ता गणधर हैं। कालानुवर्ती अर्थात् कालक्रमसे होनेवाले गुणशाली आचार्योंने उनका कथन किया है ॥२६॥

---

१. म °गंपदिं। २. म °नन्नरु। ३. म °नां धर्ता°। ४. क °गम्मो°। ५. म °ग्रहम°। ६. म °यरी°। ७. म °गलेंतु। ८. क पोलिति°। ९. म °चार्य प्रभतरि°।

श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यन्तरनिवासिप्रवादिमदान्धसिन्धुरसिंहायमानसिंह-नन्दिमुनीन्द्राभिनन्दित-गंगवंशललाम-राजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेयश्रीमदराचमल्लदेवमही-वल्लभमहामात्यपदविराजमान-रणरंगमल्लासहायपराक्रम-गुणरत्नभूषण-सम्यक्त्वरत्ननिलयादि-विविधगुणनामसमासादितकीर्तिकान्त-श्रीमत्-चामुंडरायभव्यपुंडरीकप्रश्नावतीर्णैकचत्वारिंशत्पदनामसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेषविनेयजननिकुरंबसंबोधनार्थं श्रीमत्-नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती समस्त-सैद्धान्तिकजनप्रख्यातविशदयशोविशालमतिरसौ भगवान् शास्त्रकारो महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथम-सिद्धान्त-जीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समुद्धृत्य गृहीत्वा गोम्मटसार-पञ्चसंग्रहप्रपञ्चमारचयन् तच्छास्त्रादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं नास्तिकतापरिहारार्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थम् उपकार-स्मरणार्थं चेष्टविशिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन् सिद्धं इत्यादि गाथासूत्रमाह। ५ १०

अथ जीवतत्त्वप्रदीपिका (संस्कृत) टीका।

नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥१॥

श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यन्तरनिवासिप्रवादिसिंधुरसिंहायमानसिंहनन्दिमुनीन्द्राभिनन्दित-गङ्गवंशललामराजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेयश्रीमद्राजमल्लदेवमहीवल्लभमहामात्यपदविराजमानरणरंग-मल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषणसम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणनामसमासादितकीर्तिकान्तश्रीमच्चामुण्डराय-प्रश्नावतीर्णैकचत्वारिंशत्पदनामसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेषविनेयजननिकुरम्बसंबोधनार्थं श्रीमन्नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती समस्तसैद्धान्तिकजनप्रख्यातविशदयशोविशालमतिरसौ भगवान् शास्त्रकारो महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्त-जीवस्थान-क्षुद्रबंध-बंधस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समुद्धृत्य गोम्मटसारपञ्चसंग्रहप्रपञ्चमारचयंस्तदादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं नास्तिकतापरिहारार्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थमुपकारस्मरणार्थं चेष्टविशिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति— १५ २० २५ ३०

श्रीमत् स्याद्वादशासनरूपी गुफामें निवास करनेवाले सिंहनन्दि मुनीन्द्र प्रवादि रूपी हस्तियोंके लिए सिंहके समान थे। गंग राजवंशके मुकुटमणि राजसर्वज्ञ आदि अनेक सार्थक नामवाले श्रीमद् राजमल्लदेव महाराजको उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त था। उनके महामात्यपद पर श्रीमच्चामुण्डराय विराजमान थे। रणरंगमल्ल, असहाय पराक्रम, गुणरत्न भूषण, सम्यक्त्व रत्ननिलय आदि विविध सार्थक नामोंसे उनकी सुख्याति थी। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें इकतालीस पदोंसे जीवके सत्त्वका कथन करनेके द्वारा समस्त शिष्यजनोंके समूहको सम्बोधन करनेके लिए श्रीमत् नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, जिनकी विशाल मतिका निर्मल यश समस्त सैद्धान्तिकजनोंमें प्रख्यात है, वे शास्त्रकार भगवान् महाकर्मप्रकृतिप्राभृतसे उद्धृत प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थके जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड, महाबन्ध, इन छह खण्डोंमें-से जीवादिविषयक समस्त प्रमेयांशका उद्धार करके गोम्मटसार अपरनाम पंचसंग्रहकी विस्तार पूर्वक रचना करते हुए उसके प्रारम्भमें निर्विघ्नतापूर्वक

१. म °सिंहाय°। २. म °नन्दिनंदित। ३. म राचम°। ४. म °रायप्रश्ना°। ५. म महाकषायकर्म°। ६. म °षमु°। ७. बन्धकं बध्यमानं यो बन्धेशं बन्धकारणम्। भाषते बन्धभेदं च तं स्तुवे भाव (पंच) संग्रहम् ॥२॥–अमि. पंचसंग्रह। जो बन्धक, बध्यमान, बन्धेश, बन्धकारण और बन्धके भेद इन पाँचका कथन करता है उसे पंचसंग्रह कहते हैं।

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणेन निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिः किं भवतीति नाशङ्कनीयम्।

'विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥'

इति वचनात्।

प्रायश्चित्ताचरणेन दोषवदौषधसेवनेन रोगवन्मंगलकरणेनापि विघ्नकर्मविलयस्याविप्रतिपत्तेश्च॥

ननु—

'सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः॥' [ ]

इति न्यायेन प्रारब्धशास्त्रमेवारचयतु किं नास्तिक्यपरिहारेणेत्यपि न वाच्यं, प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्दर्शनमित्याप्तादिविषयास्तिक्यस्य सम्यक्त्वसंपत्तिहेतुत्वात्।

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणेन निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिः किं भवतीति नाशङ्कनीयं "विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥" इति वचनात्। प्रायश्चित्ताचरणेन दोषवदौषधसेवनेन रोगवन्मंगलकरणेनापि विघ्नकर्मविलयस्याऽविप्रतिपत्तेश्च। ननु "सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः। विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः॥" इति न्यायेन प्रारब्धमेवारचयतु किं नास्तिक्यपरिहारेणेत्यपि न वाच्यं, प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्दर्शन-

---

शास्त्रकी समाप्तिके लिए तथा नास्तिकताके परिहारके लिए, शिष्टाचारके पालनके लिए और उपकारके स्मरणके लिए इष्ट देवता विशेषको नमस्कार करते हैं।

शंका—क्या इष्टदेवताको नमस्कार करनेसे निर्विघ्नतापूर्वक शास्त्रकी समाप्ति होती है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए। 'जिनेश्वरका स्तवन करनेपर विघ्नोंका समूह, शाकिनी, भूत, सर्प भाग जाते हैं और विष निर्विष हो जाता है।' ऐसा शास्त्रका वचन है। तथा जैसे प्रायश्चित्त करनेसे दोष और औषध सेवनसे रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार मंगल करनेसे विघ्नकारक कर्म विलय हो जाता है, इसमें कोई विवाद नहीं है।

शंका—'मनुष्यको सब प्रकारसे अपना हित करना चाहिए। बकनेवाले बका करें। उनके बकनेसे क्या होता है? ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे सबको सन्तोष हो, इस न्यायके अनुसार जिसको प्रारम्भ करना है उसे प्रारम्भ करो। नास्तिकताके परिहारसे क्या प्रयोजन है?

समाधान—ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणका प्रकट होना सम्यक्त्वका लक्षण है। अतः आप्त आदिके विषयमें आस्तिक्य सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण है। तथा प्रसिद्ध है—'यद्यपि योगी निर्मल हैं, तथापि संसार उनके छिद्रोंको देखता है। इसलिए लोकाचारको उल्लंघन करनेकी बात मनमें भी नहीं लाना

---

१. °क श्च श्लोकः सर्व। २. क °त्यापादि°।

[1]श्लोकः—

'यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी ।
तथापि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत्' ॥ इति प्रसिद्धत्वाच्च ।

न च शिष्टाचारप्रतिपालनं किमर्थं क्रियत इति पर्यनुयोगो[2] युक्तः । प्रायेण गुरुजनशील-मनुचरन्ति शिष्या इति वाक्यस्य रूढत्वात् ।

'मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणं णाम तह[3] य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरिया ॥१॥

इति न्यायस्याचार्यपरम्परागतस्यातिक्रमे चोत्पथप्रवर्तनप्रसंगस्य दुःपरिहारत्वाच्च ।

मंगलनिमित्तहेतून् परिमाणं नाम तथा कर्तारं व्याकृ[4]त्य षडपि पश्चात् व्याख्यान्तु शास्त्र-माचार्याः । इति न्यायेन प्रथमोपदिष्टमंगलमाह ।

'पुण्णं पूदपवित्ता पसत्थसिव भद्द-खेम[5]कल्लाणा ।
सुहसोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्य पज्जाया[6] ॥२॥'

पुण्यं पूतपवित्रे प्रशस्तशिवभद्रक्षेमकल्याणानि । शुभसौख्यादीनि सर्वाणि निर्दिष्टा मंगलस्य पर्यायाः ॥

'गालयदि[7] विणासयदि[8] घादेदि दहेदि हंति सोधे[9]यदि ।
विद्धंसेदि मलाइं जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं ॥३॥'

मित्यासादिविषयास्तिक्यस्य सम्यक्त्वसंपत्तिहेतुत्वात् । "यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी । तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥" इति प्रसिद्धत्वाच्च । न च शिष्टाचारपरिपालनं किमर्थं क्रियत इति पर्यनुयोगो युक्तः । प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरन्ति शिष्या इति वाक्यस्य रूढत्वात् । "मंगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्त्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वन्तु" इति न्यायस्याचार्यपरंपरागतस्यातिक्रमे चोत्पथ-प्रवर्त्तनप्रसंगाच्च । तत्र तावत् पुण्यं पूतं पवित्रं प्रशस्तं शिवं भद्रं क्षेमं कल्याणं शुभं सौख्यमित्यादिमंगलस्य पर्यायः । तत्र मलो नाम द्रव्यभावभेदाद्द्विविधः । तत्र तावत् द्रव्यमलो बाह्यः आन्तरश्च । तत्र बाह्यमलः स्वेदमलरेणुकर्दमादिः, अन्तर्मलः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैरात्मप्रदेशेषु घननिबिडज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म ।

चाहिए ।' शिष्टाचारका पालन क्यों किया जाता है ? ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि 'प्रायः शिष्य गुरुजनोंके शीलका अनुसरण करते हैं,' यह वाक्य प्रसिद्ध है । तथा 'मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता, इन छहका व्याख्यान करके पश्चात् आचार्य शास्त्रका व्याख्यान करे ।'

आचार्य परम्परासे आये इस न्यायका उल्लंघन करनेपर कुमार्गके प्रवर्तनका प्रसंग नहीं टाला जा सकता । अतः प्रथम मंगलका कथन करते हैं ॥१॥

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ,सौख्य आदि सब मंगलके पर्यायवाचक कहे हैं ॥२॥

यतः मलका गालन करता है, विनाश करता है, घात करता है, जलाता है, मारता है, शोधन करता है, विध्वंस करता है,अतः मंगल कहा जाता है ॥३॥

---

१. म नास्ति । २. म °गोऽयु° । ३. क तहा । ४. म व्याप्रत्य । ५. क °चार्य्यात् । ६. ति. प. १।८ । ७. क °भत्थ । ८. म °बेमं° । ९. ति. प. १।९-१ । १०. म °यदे । ११. म यदे । १२. म °यदे ।

गालयति विनाशयति घातयति दहति हन्ति शोधयति। विध्वंसयति मलानि यस्मात्तस्माच्च मंगलं भणितमिति मंगलशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं प्रतिपाद्य मलस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह।

[1]'दोण्णि वियप्पा होंति हु मलस्स इह दव्वभावभेदेहिं।
दव्वमलं दुवियप्पं बाहिरमब्भंतरं चेइ' ॥४॥

इह मलस्य द्वौ विकल्पौ भवतो द्रव्यभावभेदाभ्यां, तत्र द्रव्यमलं द्विविकल्पं बाह्यमभ्यन्तरमिति॥

[4]'सेदजलरेणुकद्दमपहुडी बाहिरमलं समुद्दिट्ठं।
घणविढ जीवपदेसे णिबद्धरूवाइ पयडिठिदियाइं ॥५॥
अणुभागपदेसेहिं चउहिं पत्तेक्कमिज्जमाणं तु।
णाणावरणप्पहुडी अट्ठविहं कम्ममखिलपावयरं' ॥६॥

स्वेदजलरेणुकर्दमप्रभृतयो बाह्यमलं समुद्दिष्टं घनदृढजीवप्रदेशेषु निबद्धम्। प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैश्चतुर्भिः प्रत्येकं भिद्यमानं ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म अखिलपापकरम्॥

'अब्भंतरदव्वमळं जीवपदेसे णिबद्धमिदि हेदो।
भावमलं णादव्वं अण्णाणादंसणादिपरिणामो ॥७॥'

अभ्यंतरं द्रव्यमलं भवति जीवप्रदेशे निबद्धमिति हेतोः। भावमलं ज्ञातव्यमज्ञानादर्शनादिपरिणामः॥

'अहवा बहुभेदगयं णाणावरणादिदव्वभावमलं।
ताइं गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणियं ॥८॥'

अथवा बहुभेदगता ज्ञानावरणादयो द्रव्यभावमलास्तान् स्फुटं गालयति यतस्ततो मंगलं भणितं॥

भावमलो अज्ञानादर्शनादिपरिणामो नामस्थापनाद्रव्यभावभेदो वा। उपचारमलो जीवपापं। तं सर्वमलं गालयति विनाशयति घातयति दहति हन्ति शोधयति विध्वंसयतीति मंगलं। अथवा मंगं सौख्यं पुण्यं वा लात्यादत्ते इति; मंगलं।

तच्च मंगलं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदादानन्दजनकं षोढा। तत्र नाममंगलमर्हत्सिद्धाचार्योपा-

---

इस प्रकार मंगल शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहकर मलका स्वरूप कहते हैं—मलके दो भेद हैं—द्रव्यमल और भावमल। उनमें-से द्रव्यमलके दो भेद हैं—बाह्य और अभ्यन्तर। उनमें-से पसीना, मल, धूल, कीचड़ आदि बाह्य मल हैं। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धके भेदसे चार भेदरूप ज्ञानावरण आदि आठ कर्म, जो आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूपसे दृढ़ बद्ध हैं, अभ्यन्तर द्रव्यमल हैं। ये सब पापोंके कारण हैं ॥४-६॥

ये ज्ञानावरण आदि कर्म जीवके प्रदेशोंमें निबद्ध होनेसे अभ्यन्तर द्रव्यमल कहे जाते हैं। और अज्ञान अदर्शन आदि रूप जीवके परिणाम भावमल हैं ॥७॥

अथवा बहुत भेद रूप ज्ञानावरण आदि द्रव्यमल और भावमलको स्पष्टरूपसे नष्ट करता है, इसलिये उसे मंगल कहते हैं ॥८॥

---

१. क थोण्णि। १ ति. प. १।१०। २. म° रं भेयं। ३. म भगवतो। ४. ति. प. १।११-१२। ५. म भेज्ज°। ६. ति. प. १।१३। ७. ति. प. १।१४। ८. म बहुभेदनामस्थापनाद्रव्यभावमलभेदास्तान्।

'अहवा मंगं[1] सोक्खं लादि हु[2] गेण्हेदि[3] मंगलं तम्हा ।
एदेण कज्जसिद्धिं[4] मंगदि गच्छेदि गंथकत्तारो ॥९॥

अथवा मंगं सौख्यं लाति गृह्णाति यस्मात्तस्मात् मंगलं । एतेन मंगलेन ग्रन्थकर्त्ता कार्यसिद्धिं[5] मंगति [= मार्गयति] गच्छतीत्यर्थः ॥

'पुव्विल्लाइरियेहिं[6] मंगं पुण्णत्थवाचयं भणियं[7] । ५
तल्लादि हु आदत्ते[8] जदो तदो मंगलं पवरं ॥१०॥

पूर्वाचार्यैर्मंगं पुण्यार्थवाचकं भणितं । तल्लाति हु [-खलु] आदत्ते यतस्ततो मंगलं प्रवरम् ॥

पावं मलेत्ति[9] भण्णइ उवचारसमस्सएण जीवाणं ।
तग्गालेदि विणासं णेदि त्ति भणंति मंगलं केई ॥११॥'

जीवानां पापमुपचारसमाश्रयेण मलमिति भण्यते । तद्गालयति विनाशं[10] नयतीति केचि- १०
दाचार्या मंगलं भणंति ॥

तेषां मंगलानां भेदमाह—

'णामाणि[11] ठावणाओ दव्वक्खेत्ताणि कालभावा य ।
इय छब्भेयं भणिदं मंगलमाणंदसंजणणं ॥१२॥'

नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदादिदमानन्दसंजननं[12] मंगलं षड्भेदं भणितम् ॥ १५

'अरिहाणं[13] सिद्धाणं आइरियाणं[14] उवज्झयाण साहूणं ।
णामाणि णाममंगलमुद्दिट्ठं वीयरागेहिं ॥१३॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां नामानि नाममंगलं भणितं वीतरागैः ॥

[15]ठावणमंगलमेदं अकट्टिमा[16] कट्टिमाण जिणबिंबा ।
सूरि-उवज्झय-साहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं ॥१४॥ २०

ध्यायसाधूनां नाम, स्थापनामंगलं कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिबिम्बं, द्रव्यमंगलं जिनसूर्युपाध्यायसाधुशरीरं, क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निःक्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानमर्द्धचतुर्थहस्तादिपञ्चविंशत्यग्रपञ्चशतध-

---

अथवा मंग अर्थात् सुखको लाता है,इसलिए मंगल कहते हैं। ग्रन्थकार इस मंगलके द्वारा कार्यकी सिद्धि करता है ॥९॥

पूर्वाचार्योंने मंगका अर्थ पुण्य कहा है। यह उसे लाता है,इससे मंगल कहाता है॥१०॥ २५

उपचारका आश्रय लेकर जीवके पापको मल कहते हैं। उसको यह नष्ट करता है, इससे कुछ आचार्य इसे मंगल कहते हैं ॥११॥

उन मंगलोंके भेद कहते हैं—

इस आनन्दके जनक मंगलके नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके भेदसे छह भेद कहे हैं। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुके नामोंको नाममंगल कहते हैं। ३० कृत्रिम,अकृत्रिम जिनबिम्ब आदि स्थापना मंगल हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधुके शरीर द्रव्यमंगल हैं ॥१२-१४॥

---

१. ति. प. १।१८। २. क मंगलसोक्खं। ३. क गेण्हिदि मंगलं तम्मा। ४. क मग्गछेदि। ५. क मंगलति। ६. ति. प. १।१६। ७. म भणितं। ८. क अदत्ते। ९. ति. प. १।१७। १०. क °नाशनं। ११. ति. प. १।१८। १२. म °नमं°। १३. ति. प. १।१९। १४. क -रिय उव-। १५. ति. प. १।२०। ३५
१६. क अकट्टिमाण जि°।

स्थापनामंगलमेतत् कृत्रिमाकृत्रिमा[1] जिनबिंबा। पुनः सूर्युपाध्यायसाधूनां देहाः खलु द्रव्यमंगलं स्यात् ॥

[2]'गुणपरिणदासणं परिणिक्कमणं केवलस्स णाणस्स।
उप्पत्ती इय पहुडी बहुभेयं खेत्तमंगलयं' ॥१५॥

गुणपरिणतासनं गुणपरिणतस्थानं परिनिःक्रमणं केवलज्ञानोत्पत्तिस्थानमिति प्रभृति क्षेत्रमंगलं बहुभेदं ॥

[3]'एदस्स उदाहरणं पावाणयरुज्जयंतचंपादी।
[4]आउट्ठहत्थ पहुडि प्पेणवीसब्भहि य पणसय धणूणि ॥१६॥

एतस्य क्षेत्रमंगलस्योदाहरणं पावानगर्यूर्जयंतचम्पादीन्यर्द्धचतुर्थहस्तप्रभृति पञ्चविंश-[5]त्युत्तरपञ्चशतधनुःपर्यन्तान्याकाशप्रदेशस्थानानि। तेषां शरीरावष्टब्धाकाशप्रदेशप्रमाणानीत्यर्थः ॥

'देहावट्ठिदकेवलणाणावट्ठगयणदेसो वा।
सेढीघणमेत्तअप्पपएसजुदा लोगपूरणा पुण्णा' ॥१७॥

देहावस्थितकेवलज्ञानावष्टब्धगगनप्रदेशो वा जगच्छ्रेणिघनमात्रात्मप्रदेशयुताः[6] लोकपूरणा पूर्णा वा ॥

'विस्साणं[7] लोगाणं होदि पदेसा वि मंगलं खेत्तं।
जस्सि[8] केवलणाणादि [9]मंगलाणि परिणमंति' ॥१८॥

अतो विश्वेषां[10] लोकानां प्रदेशा अपि मंगलं क्षेत्रं भवति। यस्मिन्काले केवलज्ञानादि-मंगलानि परिणमंति ॥

परिणिक्कमणं केवलणाणुब्भवणिव्वुदिप्पवेसादि।
पावमलगालणादो पण्णत्तं कालमंगलं एदं ॥१९॥

नुःपर्यन्तकेवलिशरीरावष्टब्धाकाशः केवलिसमुद्घातावष्टब्धाकाशो वा, कालमंगलं यदा परिनिःक्रमणादिकल्याणान्याष्टाह्निकादिजिनादिमहोत्सवा वर्तन्ते स कालः। भावमंगलं मंगलपर्यायोपलक्षितजीवद्रव्यमात्रं। तदिदमुक्त-

---

जिन स्थानोंमें तपस्या आदिके द्वारा गुण प्राप्त किये हों ऐसे तपकल्याणकके स्थान केवलज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान आदि क्षेत्रमंगल हैं। इसके बहुत भेद हैं ॥१५॥

इस क्षेत्र मंगलके उदाहरण पावानगरी, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत), चम्पापुर आदि हैं, तथा साढ़े तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण आकाश प्रदेशके स्थान हैं अर्थात् उन स्थानोंसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले जीवोंके शरीरकी अवगाहनासे जितना आकाश प्रदेश रोका गया हो, उतना स्थान क्षेत्र मंगल है। अथवा केवलज्ञानसे व्याप्त आकाश प्रदेश क्षेत्रमंगल है। अथवा लोकपूरण समुद्घातके द्वारा पूरित जगत् श्रेणिके घन प्रमाण आत्माके प्रदेशोंसे व्याप्त समस्त लोक क्षेत्रमंगल है। इस प्रकार सब लोकोंके प्रदेश भी क्षेत्रमंगल होते हैं। और जिस कालमें केवलज्ञान आदि मंगलरूप जीव परिणमन करता है, दीक्षा लेता है, मोक्ष गमन करता है, उसे काल मंगल कहा है, क्योंकि वह पापरूपी मलको नष्ट करता है ॥१६-१९॥

---

१. म °मजिन°। २. ति. प. १।२१। ३. ति. प. १।२२। ४. क अउट्ठ पुत्थ°। ५. क °प्पहुवीसब्भहिय°। ६. म °युत्तर°। ७. क °वट्ठद°। ८. म °प्रदेशा। ९. म °युता पूर्णा लो°। १०. ति. प. १।२४। ११. म सि काले के°। १२. म मगला प°। १३. म विश्वानां।

परिनिःष्क्रमणकेवलज्ञानोद्भवनिर्वृतिप्रवेशादयः कालाः पापमलगालनात् प्रज्ञप्तं[1] काल-मंगलमेतत् ।

'एवं अणेयभेदं भवेइ[2] तं कालमंगलं पवरं[3] ।
जिणमहिमासंबंधं णंदीसरदिवसपहुडीओ[4]' ॥२०॥

एवं नंदीश्वरदिवसप्रभृतयः प्रवरं जिनमहिमासंबंध तत्कालमंगलमनेकभेदं भवेत् ॥ ५

[5]'मंगलपज्जाएहिं उवलक्खिय[6] जीवदव्वमेत्तं च ।
भावं मंगलमेदं तं चेय गंथादिमज्झ अंतेसु' ॥२१॥

मंगलपर्य्यायैरुपलक्षितजीवद्रव्यमात्रं च भाव-मंगलमेतत्स्यात् । तदेव मंगलं ग्रन्थादि-मध्यान्तेषु ॥

'पुव्विल्लाइरिएहिं[7] उत्तो सत्थाण[8] मंगलुग्घोसो । १०
आइम्मि [9]मज्झ अवसाणेसु वि णियमेण कायव्वो' ॥२२॥

शास्त्राणामादौ मध्येऽवसाने च मंगलोद्घोषो नियमेन कर्त्तव्य इति पूर्व्वाचार्य्यैरुक्तः ॥

[10]'पढमे मंगलकरणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।
मज्झिल्ले णिव्विग्घं विज्जा विज्जा फलंचरिमे' ॥२३॥

शास्त्रस्य प्रथमे मंगलकरणे शिष्याः शास्त्रस्य पारगा भवन्ति । शास्त्रस्य मध्यमे १५
मंगलकरणे विद्या निर्विघ्नं[12] चरमे विद्याफलं भवति ।

'णासदि[13] विग्घं भीदी ण होदि दुट्ठा सुरा ण लंघंति ।
इट्ठो अत्थो लब्भइ जिणणामग्गहणमेत्तेण' ॥२४॥

मंगलं जिनादिपरिकीर्तनादिरूपं शास्त्रादौ कृतं शिष्यान् लघु पारगान् करोति, मध्ये कृतं विद्याया अव्युच्छित्तिं करोति, चरमे कृतं विद्याया निर्विघ्नं करोति "नेष्टं विहन्तुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः । तत्कामचारेण २०
गुणानुरागान्तुत्यादिरिष्टार्थकृतर्हदादेः ॥" इति परमागमप्रसिद्धेः । ततस्तदवश्यं कर्तव्यमेव ।

इसी प्रकार जिन महिमासे सम्बद्ध नन्दीश्वर दिवस (अष्टाह्निका) वगैरह भी काल मंगल है । इस तरह काल मंगलके अनेक भेद हैं ॥२०॥

मंगल पर्यायरूपसे परिणत जीवद्रव्य भावमंगल है । ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें वही भावमंगल करना चाहिए ॥२१॥ २५

शास्त्रके आदि,मध्य और अन्तमें मंगलका उद्घोष अवश्य करना चाहिए,ऐसा पूर्वाचार्योंने कहा है ॥२२॥

शास्त्रके आदिमें मंगल करनेसे शिष्य शास्त्रके पारगामी होते हैं । मध्यमें मंगल करनेसे विद्यामें विघ्न नहीं आता है । अन्तिम मंगलसे विद्याका फल प्राप्त होता है ॥२३॥

जिन भगवान्का नाम लेने मात्रसे विघ्न नष्ट होता है, भय नहीं होता, दुष्ट देव ३०
उपद्रव नहीं करते और इष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ॥२४॥

---

१. क प्रज्ञाप्तं । २. क हवेइ । ३. क पदरं । ४. म बहु° । ति. प. १।२७ । ५. क °रद्वीपप्र° । ६. ति. प. १।२८ । ७. म उवलंभिय । ८. ति. पं. १।२८ । ९. क सद्दाण । १०. क वज्झ । ११. ति. प. १।२९ । १२. म °घ्नं स्यात् चरमे मंगलकरणे वि म–। १३. ति. प. १।३० ।

नश्यति विघ्नं भीतिर्नं भवति दुष्टास्सुरा न लङ्घयन्ति । इष्टोऽर्थो लभते जिननामग्रहणमात्रेण ॥

[1]'सत्थादिमज्झ अवसाणएसु जिणेंथोत्तमंगलुग्घोसो ।
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाइ रवि व्व तिमिराइं' ॥२५॥

शास्त्रादिमध्यावसानेषु जिनस्तोत्रमंगलोद्घोषः निःशेषान्विघ्नौघान् नाशयति तिमिराणि रविवत् ॥

एवं मंगलं निरूपितं ॥

[3]'विविहवियप्पं दव्वं बहुभेयणयप्पमाणदो भव्वा ।
जाणंति त्ति णिमित्तं कहिदं गंथावतारस्स' ॥२६॥

विविधकल्पं द्रव्यं बहुभेदनयप्रमाणतो भव्याः । जानंत्विति ग्रन्थावतारस्य निमित्तं कथितं ॥

'केवलणाणदिवायर किरण कलावावु अत्थअवहारो ।
गणधरदेवेंहितो [5]गंथुप्पत्ती सुसंजादा' ॥२७॥

'केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापावर्त्यावहारो भवति । गणधरदेवेभ्यो ग्रन्थोत्पत्तिः सुसंजाता' ॥

'छद्दव्व णवपदत्थे सुदणाणदुमणिकिरणसत्तीए ।
देक्खंतु [7] भव्वजीवा अण्णाण-तमेण संछण्णा' ॥२८॥

षड्द्रव्यनवपदार्थान् श्रुतज्ञानद्युमणिकिरणशक्त्या । अज्ञानतमसा संछन्ना भव्यजीवाः पश्यन्तु ॥

निमित्तं गतं ॥

[8]'दुविहो हवेइ हेदू सिरिगोम्मटसारगंथअज्झयणे ।
जिणवरवयणुद्दिट्ठो पच्चक्खपरोक्खभेदेहिं ॥२९॥

निमित्तमस्य शास्त्रावतारस्य भव्या बहुनयप्रमाणैर्विविधविकल्पं द्रव्यं जानन्त्विति ।

शास्त्रके आदि,मध्य और अन्तमें किया गया जिनस्तोत्र रूप मंगलका उच्चारण समस्त विघ्नोंको उसी प्रकार नष्ट करता है,जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥२५॥

इस प्रकार मंगलका कथन किया ।

नाना भेदरूप द्रव्यको भव्य जीव नानाभेदरूप नय और प्रमाणके द्वारा जानें, यह इस ग्रन्थके अवतारका निमित्त कहा है ॥२६॥

केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे अर्थका अवतार हुआ और गणधर देवसे ग्रन्थ (अंगप्रविष्ट) उत्पत्ति हुई ॥२७॥

अज्ञान रूपी अन्धकारमें पड़े हुए भव्य जीव श्रुत ज्ञान रूपी सूर्यकी किरणोंके द्वारा छह द्रव्यों और नौ पदार्थोंको देखें । यह इस ग्रन्थका निमित्त है ॥२८॥

श्री गोम्मटसार ग्रन्थके अध्ययनमें जिन भगवान्ने प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारका हेतु कहा है ॥२९॥

---

१. ति. प. १।३१ । २. म जिणतोत्थं । ३. ति. प. १।३२ । ४. ति. प. १।३३ । ५. क गन्थपरुप्पं । ६. ति. प. १।३४। ७. म दिक्खन्तु । ८. दुविहो हवेदि हेदू तिलोयपण्णत्ति गन्थयज्झयणे ।–ति. प. १।३५।

श्रीगोम्मटसारग्रन्थाध्ययने द्विविधो भवेद्धेतुः। प्रत्यक्षपरोक्षभेदाभ्यां जिनवरवचनोद्दिष्टो ज्ञातव्यः ॥

'सक्खापच्चक्खपरंपरपच्चक्खा दोण्णि होंति पच्चक्खा।
अण्णाणस्स विणासो सण्णाणदिवायरस्स उप्पत्ती ॥३०॥

तत्र प्रथमोदिष्टप्रत्यक्षं साक्षात्प्रत्यक्षं परम्पराप्रत्यक्षमिति द्वे भवतः। अज्ञानस्य विनाशः सत् ज्ञानदिवाकरस्योत्पत्तिश्च।

'देवमणुस्सादीहिं संततमब्भच्चणप्पयाराणि।
पडिसमयमसंखेज्जय-गुणसेढीकम्मणिज्जरणं ॥३१॥

देवमनुष्यादिभिरभ्यर्च्चनप्रकाराः प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणं ॥

'इयं सक्खापच्चक्खं पच्चक्खपरम्परं पि णादव्वं।
सिस्स-पडिसिस्सपहुडीहिं सददमब्भच्चणपयारं ॥३२॥

इदं साक्षात्प्रत्यक्षं परम्पराप्रत्यक्षमपि ज्ञातव्यं। शिष्यप्रतिशिष्यप्रभृतिभिः सततमभ्यर्चनप्रकारः ॥

'दो भेदं च परोक्खं अब्भुदयसोक्खाइं मोक्खसोक्खाइं।
सादादिविविहसुपसत्थ-कम्मतित्थाणुभागउदएहिं ॥३३॥

परोक्षं च द्विभेदं भवति अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात्। सातादिविविधसुप्रशस्तकर्मतीव्रानुभागोदयैः ॥

'जणिदं इंदपडिंददिगिंदतित्तीसामरसमाणपहुडिसुहं।
राजाहिराजमहराजअद्धमण्डलियमण्डलियाणं ॥३४॥

हेतुरस्याध्ययने प्रत्यक्षः परोक्षश्च। तत्र प्रत्यक्षः—साक्षात्प्रत्यक्षः, परंपराप्रत्यक्षश्च। तत्र साक्षात्प्रत्यक्षः—अज्ञानविनाशः, सम्यग्ज्ञानोत्पत्तिर्देवमनुष्यादिभिः सततपूजाकरणं, प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा च। परंपराप्रत्यक्षः—शिष्यप्रशिष्यैः सततपूजाकरणं।

इनमें-से प्रत्यक्षके दो भेद हैं—साक्षात् प्रत्यक्ष और परम्परा प्रत्यक्ष। अज्ञानका विनाश, सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्यकी उत्पत्ति, देव-मनुष्य आदिके द्वारा निरन्तर की जानेवाली विविध पूजा और प्रतिसमय कर्मोंकी असंख्यात गुणश्रेणी रूपसे निर्जरा, ये साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु हैं। और शिष्य-प्रशिष्योंकी परम्पराके द्वारा निरन्तर विविध रूपसे पूजित होना, यह परम्परा प्रत्यक्ष हेतु है ॥३०-३१॥

परोक्ष हेतुके दो भेद हैं—एक अभ्युदय सुख और दूसरा मोक्ष सुख। साता वेदनीय आदि अनेक प्रशस्त प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र (लोकपाल), त्रायस्त्रिंश और सामानिक जातिके देवोंका सुख, तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्द्धमण्डलीक, महामण्डलीक, अर्द्धचक्री, चक्री और तीर्थंकरका सुख अभ्युदय सुख है ॥

भक्तियुक्त अठारह श्रेणियोंका स्वामी, उत्कृष्ट रत्नजटित मुकुटका धारी, सेवा करनेवालों

---

१. ति. प. १।३६। क सक्खापक्खक्ख। २. क सज्ञान°। ३. ति. प. १।३७। ४. ति. प. १।३८। ५. °भ्यच्छंन°। ६. ति. प. १।३९। ७. क °तिच्चाणु°। ८. ति. प. १।४०। ९. क म°पडिदिसतित्तीसामर°।

जनितमिन्द्रप्रतीन्द्रदिगिन्द्रत्रायस्त्रिंशामरसामानिकप्रभृतिसुखं। राजाधिराजमहाराजार्द्ध-मण्डलीकमण्डलीकानां ॥

'महमण्डलियाणं अद्धचक्कि चक्कहरतित्थयरसोक्खं।
अट्ठारसमेत्ताणं सामी सेणीण भत्तिजुत्ताणं ॥३५॥

महामण्डलीकानामर्द्धचक्रि-चक्रधर-तीर्थंकराणां सौख्यं। अष्टदशप्रमितानां भक्तियुक्तानां श्रेणिनां स्वामी ॥

'वररयणमउडधारी सेवयमाणाण वंछिदं अत्थं।
दिंता हवेइ राजा जिदसत्तू समरसंघट्टे ॥३६॥

वररत्नमकुटधारी सेवमानानां वांछितार्थं दाता। समरसंघट्टे जितशत्रुः राजा भवेत् ॥

अष्टादश श्रेणीः प्रतिपादयति-

'करितुरगरहाहिवई सेणाहिवमंति-सेट्ठिदण्डवई।
सुद्दक्खत्तियबम्हण-वइसा तह महयरापवरा ॥३७॥

गणरायमंतितलवरपुरोहिया दप्पिया महामत्ता।
बहुविहपइण्णया इय अट्ठारस होंति सेणीओ ॥३८॥

करितुरगरथाधिपतयः सेनाधिपमन्त्रिश्रेष्ठिदण्डपतयः। शूद्रक्षत्रियब्राह्मणवैश्यास्तथा महत्तराः प्रवराः। गणमन्त्रि-राजमन्त्री-तलवर-पुरोहिता दर्पिका महामात्याः। बहुविधप्रकीर्णका इत्यष्टादशश्रेणयो भवन्ति ॥

'पंचसयराजसामी अहिराजो होदि कित्ति-भरिददिसो।
रायाण जो सहस्सं पालइ सो होदि महराजो ॥३९॥
दुसहस्समउडबद्धाणहिवइ तत्थ अद्धमंडलिओ।
चउराजसहस्साणां अहिणाधो होदि मंडलिओ ॥४०॥

परोक्षोऽप्यभ्युदयरूपो निःश्रेयसरूपश्च। तत्राभ्युदयरूपः—सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां तीव्रानुभागोदयजनितं

को इच्छित पदार्थ देनेवाला और युद्ध भूमिमें शत्रुको जीतनेवाला राजा होता है ॥३२-३६॥

अठारह श्रेणि कहते हैं—

हाथी, घोड़े और रथोंके अधिपति, सेनापति, मन्त्री, श्रेष्ठि, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, महत्तर, गणमन्त्री, राजमन्त्री, कोतवाल, पुरोहित, महामात्य और बहुत प्रकारके प्रकीर्णक ये अठारह श्रेणियाँ होती हैं ॥३७-३८॥

पाँचसौ राजाओंका स्वामी अधिराजा होता है। उसकी कीर्ति दसों दिशाओंमें व्याप्त होती है। जो एक हजार राजाओंका पालन करता है, वह महाराजा होता है ॥३९॥

दो हजार मुकुटबद्ध राजाओंका अधिपति अर्द्धमण्डलीक होता है। चार हजार राजाओंका स्वामी मण्डलीक होता है ॥४०॥

---

१. म °र्द्धमंडलिका°। २. ति. प. १।४१। ३. ति. प. १।४२। ४. क °संघट्टी। ५. ति. प. १।४३। ६. क बह्माण। ७. —[ति. प. १।४५-४८]। ८. म °णाहो।

महमंडलीयणमो अट्ठसहस्साण अहिवई ताणं ।
रायाण अद्धचक्की सामि सोलससहस्समेत्ताणं ॥४१॥
छक्खंडभरहणाहो बत्तीससहस्समउडबद्धपहू ।
सो होदि सयलचक्की तित्थयरो सयलभुवणवई ॥४२॥

पञ्चशतराजस्वामी अधिराजो भवति । कीर्त्तिभरितदिग्भागः । यो राज्ञां सहस्रं पालयति स भवति महाराजः ॥ द्विसहस्रमकुटबद्धानामधिपतिस्तत्रार्द्धमण्डलीकश्चतुर्णां राजसहस्राणामधिनाथो भवति मण्डलीकः । महामण्डलीकनामा तेषां राज्ञामष्टसहस्राणामधिपतिः । राज्ञां षोडशसहस्रप्रमाणानां स्वाम्यर्द्धचक्री स्यात् । षट्खण्डभरतनाथो द्वात्रिंशत्सहस्रमकुम्बद्धप्रभुः यः स भवति सकलचक्री तीर्थंकरः सकलभुवनपतिः स्यात् ॥

अभ्युदयसुखं निरूपितं । निश्रेयससुखं प्रतिपादयति–

सोक्खं तित्थयराणं सिद्धाणं तह य इंदियातीदं ।
अदिसयमादसमुत्थं णिस्सेयसमणुवमं पवरं ॥४३॥

अतिशयमात्मसमुत्थं निःश्रेयसमनुपमं प्रवरं । सौख्यं तीर्थंकराणां सिद्धानां तथा चेन्द्रियातीतं सौख्यं ॥

सुदणाणभावणाए णाणं मत्तंडकिरणसुपयासं ।
चंदुज्जलं चरित्तं णियवसचित्तं हवेदि भव्वाणं ॥४४॥

श्रुतज्ञानभावनया ज्ञानं मार्त्तण्डकिरणसुप्रकाशं भवति । चन्द्रोज्ज्वलं चरित्रं निजवशचित्तं भव्यानां भवेत् ॥

कणयधराधरधीरं मूढत्तयविरहिदं हदट्ठमलं ।
जायदि पवयणपढणे समद्दंसणमणुवमाणं ॥४५॥

तीर्थंकरसुरेन्द्रनरेन्द्रादिसुखं । निःश्रेयसरूपः–सातिशयमात्मसमुत्थमनुपमं प्रवरं तीर्थंकरसुखं पञ्चेन्द्रियातीतं सिद्धसुखं च ।

आठ हजार राजाओंका स्वामी महामण्डलीक होता है । सोलह हजार राजाओंका स्वामी अर्द्धचक्री होता है ॥४१॥

भरतके छह खण्डोंका स्वामी और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंका प्रभु सकलचक्री होता है । वह सकल भुवनका स्वामी और तीर्थंकर होता है ॥४२॥

इस प्रकार अभ्युदय सुखका कथन किया। अब निश्रेयस सुखको कहते हैं । तीर्थंकरोंके और सिद्धोंके जो अतीन्द्रिय और आत्मासे उत्पन्न सातिशय अनुपम उत्कृष्ट सुख होता है, उसे निश्रेयस सुख कहते हैं ॥४३॥

श्रुतज्ञानकी भावनासे भव्य जीवोंके सूर्यकी किरणोंकी तरह प्रकाशमान ज्ञान होता है, चन्द्रमाकी तरह निर्मल चारित्र होता है और उनका चित्त अपने वशमें होता है ॥४४॥

प्रवचनका अभ्यास करने पर सुमेरु पर्वतकी तरह निश्चल तथा तीन मूढ़ताओंसे और आठ मलोंसे रहित अनुपम सम्यग्दर्शन होता है ॥४५॥

---

१. म पंचदसरा° । २. म द्विसह° । ३. ति. प. १।४९ । ४. क सवरं । ५. ति. प. १।५० । ६. क मत्तंद° । ७. म °नायां ज्ञानमति° । ८. ति. प. १।५१ ।

कनकधराधरधीरं मूढत्रयविरहितं हताष्टमलं । प्रवचनपलनेऽनुपमानं सम्यग्दर्शनं जायते ॥

[1]सुरखेयरमणुवाणं लब्भंति सुहाइ ओरिसब्भासा ।
तत्तो णिव्वाणसुहं णिण्णासिद दारुणट्ठमलं ॥४६॥

सुरखेचरमानवानां सुखान्यार्षाभ्यासाल्लभ्यन्ते । ततो निर्वाणसुखं निर्नाशितदारुणाष्टमलं लभ्यते ॥

हेतु प्ररूपितः । ग्रन्थप्रमाणमाह–

[3]विविहत्थेहि अणंतं संखेज्जा अक्खराण गणणाए ।
एदप्पमाणमुदिदं सिस्साणं मइवियासयरं ॥४७॥

विविधार्थैरनन्तमक्षरगणनया संख्यातानि । एतत्प्रमाणमुदितं शिष्याणां मतिविकाशकरं भवति ॥

प्रमाणं प्ररूपितम् । ग्रन्थनाम निरूपयति–

[4]भव्वाण जेण एसा जीवादीणं पयासणे [परम] दीवं ।
तेण गुणणाममुदिदं णामेणं जीवतच्चदीवं [5] ति [इदि] ॥४८॥

यतो भव्यानां जीवादीनां प्रकाशने एष ग्रन्थः परमदीपस्तेन गुणनामोदितं नाम्ना जीवतत्त्वप्रदीपिकेति । ग्रन्थनाम प्ररूपितं । अथ ग्रन्थकर्त्तारं प्ररूपयति–

[6]कत्तारो दुवियप्पो णादव्वो अत्थगंथभेदेहिं ।
दव्वादि चउपयारेहिं पभासेमो [य] अत्थकत्तारं ॥४९॥

कर्त्ता द्विविकल्पो ज्ञातव्योऽर्थग्रन्थभेदाभ्यां । तत्रार्थकर्तारं द्रव्यादि चतुःप्रकारैः प्रभाष्यामहे ॥

प्रमाणं तु विविधार्थैरनन्तमक्षरगणनया संख्यातमिति । नामजीवादिवस्तुप्रकाशनप्रदीपकत्वाज्जीवतत्त्वप्रदीपिकेति । कर्तास्यार्थकर्ता, ग्रंथकर्त्ता, उत्तरकर्ता च । तत्रार्थकर्ता निःशेषनिर्दग्धघातिचतुष्टयतया समुत्पन्नानन्तज्ञानादिचतुष्टयत्वेन ज्ञातत्रिकालगोचरसमस्तद्रव्यगुणपर्याययाथात्म्यो विनष्टाष्टादशदोषश्चतुस्त्रिंशदतिशयाष्ट-

---

आगमके अभ्याससे देव विद्याधर और मनुष्योंका सुख प्राप्त होता है । उसके अनन्तर भयानक आठ कर्म रूपी मलका नाश होनेपर मोक्ष सुख प्राप्त होता है ॥४६॥

इस प्रकार हेतुका कथन किया । अब ग्रन्थका प्रमाण कहते हैं—

विविध अर्थोंकी अपेक्षा अनन्त और अक्षरोंकी गणनासे संख्यात प्रमाण जानना । यह ग्रन्थका परिमाण शिष्योंकी बुद्धिको विकसित करता है ॥४७॥

इस प्रकार ग्रन्थका प्रमाण कहा । आगे ग्रन्थका नाम कहते हैं—भव्य जीवोंको जीवादि तत्त्वोंका प्रकाशन करनेके लिए यह टीका ग्रन्थ उत्कृष्ट दीपकके तुल्य है, इसलिए इसका सार्थक नाम जीवतत्त्व प्रदीपिका कहा है ॥४८॥

ग्रन्थका नाम कहा । अब ग्रन्थकर्ताका कथन करते हैं—

अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ताके भेदसे कर्ताके दो भेद हैं । उनमेंसे अर्थकर्ताका कथन द्रव्य आदि चार प्रकारोंसे करते हैं ॥४९॥

---

१. ति. प. १।५२ । २. क आशरीस° । ३. ति. प. १।५३ । क विविहद्धेहि । ४. भव्वाण जेण एसा तेलोक्क पयासणे परमदीवा ।—ति. प. १।५४ । ५. क दीव इदि ॥४८॥ ग्रंथनाम । ६. ति. प. १।५५ । ७. क प्रभाशिष्या° ।

[1]सेदरजादिमलेणं रत्तच्छिकडक्खबाणमोक्खेहिं ।
इयपहुडि देहदोसेण संततमदूसिदसरीरो ॥५०॥

स्वेदरजःप्रभृतिमलेन च रक्ताक्षिकटाक्षबाणमोक्षैरेतत्प्रभृतिदेहदोषैः संततमदूषितशरीरः ॥

आदिम संघणणजुदो समचउरस्संगचारुसंठाणो ।
दिव्ववरगंधधारी पमाणठिद रोमणहरूवो ॥५१॥

आद्यसंहननयुतः समचतुरस्राङ्गचारुसंस्थानः । दिव्यवरगन्धधारी प्रमाणस्थितरोमनखरूपः ॥

[6]णिब्भूसणाउहंबर [9]भीदो सोम्माणणादिदिव्वतणू ।
अट्ठब्भहियसहस्सप्पमाणवरलक्खणोपेवो ॥५२॥

निर्भूषणायुधाम्बरभीतिः सौम्याननादिदिव्यतनुः । अष्टा[10]भ्यधिकसहस्रप्रमाणवरलक्षणोपेतः ॥

[11]चउविहउवसग्गेहिं णिच्चविमुक्को कसायपरिहीणो ।
[12]छुहपहुडिपरीसहोहिं [13]परिचत्तो रायदोसेहिं ॥५३॥

देवमनुष्यातिर्यगचेतन-चतुर्विधोपसर्गैर्नित्यं [14]विमुक्तः । कषायपरिहीणः क्षुत्प्रभृतिपरीषहैः रागद्वेषैश्च परित्यक्तः ॥

[15]जोयणपमाणसंठिद तिरियामरमणुवणिवह पडिबोहो ।
मिदुमहुरगभीरतरा विसदइसयसयलभासाहिं ॥५४॥

मृदुमधुरगम्भीरतरविशदातिशयसकलभाषाभिर्योजनप्रमाणसंस्थिततिर्यगमरमनुजनिवह-प्रतिबोधः ॥

[16]अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासाइ सत्तसयसंखा ।
अक्खर अणक्खरप्पयसण्णीजीवाण सयलभासाओ ॥५५॥

अष्टादशमहाभाषाः क्षुल्लकभाषाः सप्तशतसंख्याः । अक्षरानक्षरात्मकसंज्ञिजीवानां सकल भाषाः ॥

प्रातिहार्योपेतः समस्तसुरनरेन्द्रादिभिः समर्चितचरणसरोजस्त्रिभुवनैकनाथोऽष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषा-

---

जिनका शरीर पसीना, धूल आदि मलसे तथा लाल नयन, कटाक्ष रूपी बाणोंको मारना, आदि शारीरिक दोषोंसे सदा अदूषित है, वज्रर्षभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान रूप सुन्दर आकारसे युक्त है, उत्कृष्ट दिव्य गन्धका धारी है, रोम और नख बढ़ते नहीं हैं, भूषण, आयुध, वस्त्र और भयसे रहित है, सौम्य मुख आदिसे युक्त दिव्य रूप है, एक हजार आठ उत्कृष्ट लक्षणोंसे शोभित है। देव मनुष्य तिर्यञ्च और अचेतन कृत चार प्रकारके उपसर्गोंसे सदा रहित है। कषाय रहित है। भूख-प्यास आदि परीषहोंसे तथा राग-द्वेषसे रहित है। अति कोमल मधुर गम्भीर और स्पष्ट अतिशयोंसे युक्त सकल भाषात्मक दिव्य ध्वनिके द्वारा एक योजन प्रमाण क्षेत्रमें स्थित तिर्यंच देव और मनुष्योंके समूहको प्रति-

---

१. ति. प. १।५६। २. क रत्तेच्छेकषक्ख°। ३. क रक्ताक्षे कटाक्षेबाण। ४. ति. प. १।५७। ५. क संघछण°। म सघडण°। ६. क °माणछिद°। ७. म संघन°। ८. ति. प. १।५८। ९. म भेदो। १०. म °ष्टव्यधि°। ११. ति. प. १।५९। १२. क क्षुदु°। १३. क सरि°। १४. म नित्यवि°। १५. ति. प. १।६०। १६. ति. प. १।६१।

एदासिं[1] भासाणं तालुवदंतोट्ठकंठ वावारं ।
परिहरिय एककालं भव्वजणाणंदकरभासो ॥५६॥

एतासां भाषाणां तालुदन्तोष्ठकण्ठव्यापारं परिहृत्यैककालं यथा भवति तथा भव्यजनानन्दकरभाषः ॥

भावणवेंतरजोइसियकप्पवासीहि केसवबलेहिं ।
विज्जाहरेहि चक्कीपमुहेहिं णरेहिं तिरिएहिं ॥५७॥

भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिभिः केशवबलैर्विद्याधरैश्चक्रिप्रमुखैर्नरैस्तिर्यग्भिः ॥

एदेहिं[3] अण्णेहि विरचिदचरणारविंदजुगपूजो ।
दिट्ठसयलत्थसारो महवीरो अत्थकत्तारो ॥५८॥

एतैरन्यैर्विरचितचरणारविन्दयुगपूजो । दृष्टसकलार्थसारो महावीरोऽर्थकर्त्ता स्यात् ॥

द्रव्यविशेषार्थकर्ता ।

सुरखेयरमणहरणे[6] गुणणामे पंचसेलणयरम्मि ।
विउलम्मि पव्वदवरे वीरजिणो अत्थकत्तारो ॥५९॥

सुरखेचरमनोहरे गुणनाम्नि पञ्चशैलनगरे विपुले पर्वतवरे स्थित्वा वीरजिनोऽर्थकर्त्ता ॥

क्षेत्रविशेषार्थकर्त्ता ।

एत्थावसप्पिणीए[8] चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि ।
तेत्तीसवास अडमासं पण्णरसदिवससेसम्मि ॥६०॥

अत्र भरतक्षेत्रेऽवसर्पिण्यां चतुर्थकालस्य चरमभागे त्रयस्त्रिंशद्वर्षाष्टमास-पञ्चदशदिवसशेषे ॥

वासस्स[10] पढममासे[11] सावणणामम्मि बहुलपडिवाए[12] ।
अभिजिदणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥६१॥

संज्ञ्यक्षरानक्षरभाषात्मकस्यक्ततालुदन्तोष्ठकण्ठव्यापारभव्यजनानन्दक - युगपत्सर्वोत्तरप्रतिपादकदिव्यध्वन्युपेतो

बोधित करता है । अठारह महाभाषा, सातसौ क्षुद्र भाषा और संज्ञी जीवोंकी अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक समस्त भाषा इन भाषाओंको तालु, दन्त, ओष्ठ और कण्ठके व्यापारके विना एक ही समयमें भव्य जीवोंको आनन्द करते हुए प्रयोग करता है ॥५०-५६॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी देवोंके द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि मनुष्यों, तिर्यंचों तथा दूसरे जीवोंके द्वारा जिनके चरण कमल पूजे जाते हैं और जिन्होंने समस्त पदार्थोंके रहस्यको देखा है, वे भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं ॥५७-५८॥

यह द्रव्य रूपसे अर्थकर्ताका कथन हुआ ।

देवों और विद्याधरोंसे शोभित सार्थक नामवाले पंचशैल नगरमें विपुलाचल पर स्थित होकर वीरजिनने उपदेश दिया ॥५९॥

यह क्षेत्रकी अपेक्षा अर्थकर्ताका कथन हुआ ।

इस भरत क्षेत्रमें अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमें तेंतीस वर्ष आठ मास

---

१. ति. प. १।६२ । २. ति. प. १।६३ । ३. ति. प. १।६४ । ४. म °वुगं । ५. म °लट्ठसं । ६. म °पकर्ता । ७. ति. प. १।६५ । ८. म °नाम । ९. ति. प. १।६८ । १०. ति. प. १।६९ । ११. क °मदुमा° । १२. क पदेवाए ।

वर्षस्य प्रथममासे श्रावणनामधेये बहुलप्रतिपद्दिनेऽभिजितनक्षत्रे धर्मतीर्थस्योत्पत्तिश्च । कालविशेषेण वर्द्धमानस्वामिनोऽर्थकर्तृत्वं निरूपितम् ।

णाणावरणप्पहुडियणिच्छयववहारपाय अदिसयए ।
संजादेण अणंतेणाणेण दंसणेण सोक्खेणं ॥६२॥
विरिएण तहा खाइय सम्मत्तेणं[3] पि दाणलाहेहिं । ५
भोगोपभोगणिच्छयववहारेहिं च परिपुण्णो ॥६३॥

ज्ञानावरणप्रभृतीनां निश्चयव्यवहारापायातिशयेन संजातानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्तथा क्षायिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगनिश्चयव्यवहारैश्च परिपूर्णः ॥

[4]दंसणमोहे णट्ठे घादित्तिदये चरित्तमोहम्मि ।
सम्मत्तणाणदंसणवीरियचरिया य होंति खइयाइं ॥६४॥ १०

दर्शनमोहे घातित्रितये चारित्रमोहे नष्टे यथासंख्यं सम्यक्त्वं ज्ञानदर्शनवीर्याणि चारित्रं च क्षायिकाणि भवन्ति ॥

[5]जादे अणंतणाणे णट्ठे छदुमट्ठिदम्हि णाणम्मि ।
णवविधपदत्थसारा दिव्वझुणी कहइ सुत्तत्थं ॥६५॥

अनन्तज्ञाने जाते सति छद्मस्थिते ज्ञाने नष्टे सति नवविधपदार्थसारो दिव्यध्वनिः कथयति १५ सूत्रार्थम् ॥

[6]अण्णेहि अणंतेहिं[7] गुणेहि जुत्तो विसुद्धचारित्तो ।
भवभयभंजण[8]दच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥६६॥

अन्यैरनन्तैर्गुणैर्युक्तो विशुद्धचारित्रो भवभयभञ्जनदक्षो महावीरोऽर्थकर्ता ॥

द्वादशसभासेवितो भगवान् श्रीवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेवः, ग्रन्थकर्ता तदर्थज्ञानविज्ञानसमृद्धिसमृद्धगौतमस्वामी, २०

पन्द्रह दिन शेष रहने पर वर्षके प्रथम मास श्रावणके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित नक्षत्रमें धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥६०-६१॥

यह कालकी अपेक्षा वर्धमान स्वामीके अर्थकर्ता होनेका कथन किया ।

ज्ञानावरण आदि निश्चय और व्यवहार रूप पापकर्मोंका अत्यन्त विनाश होनेसे प्रकट हुए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, और अनन्तवीर्य तथा क्षायिक सम्यक्त्व, २५ दान, लाभ, भोग, उपभोग इन निश्चय और व्यवहाररूप लब्धियोंसे परिपूर्ण ॥६२-६३॥

दर्शनमोह, चारित्रमोह, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन और क्षायिक चारित्र होते हैं ॥६४॥

अनन्त ज्ञानके प्रकट होनेपर और छद्मस्थ ज्ञानके नष्ट होनेपर नौ प्रकारके पदार्थोंके सारको लिये हुए दिव्यध्वनि सूत्रार्थको कहती है ॥६५॥ ३०

अन्य भी अनन्त गुणोंसे युक्त, विशुद्ध चारित्रसे सम्पन्न तथा संसारके भयका विनाश करनेमें प्रवीण भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं ॥६६॥

---

१. ति. प. १।७१-७२ । क णाणवरण° । २. म °तं णाणाणं । ३. म °त्तेणापि । ४. म °वीर्यस्तथा । ५. ति. प. १।७३ । ६. क क्षायीणि । ७. ति. प. १।७४ । ८. क °सारो । ९. ति. प. १।७५ । १०. क °दत्थो, म °दत्तो । ११. क °रनन्तगु° । ३५

भावविषे[विशेषे]णार्थकर्ता प्रतिपादितः ॥

महवीर भासिदत्थो तीस्से खेत्तम्मितत्थ काले य ।
खाओवसमविवड्ढिदचउरमलमईहिं पुण्णेण ॥६७॥
लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविहविसएसु ।
संदेहणासणत्थं उवगदसिरिवीरचलणमूलेण ॥६८॥
विवुले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेण ।
चउवेदपारगेणं विप्पेण विसुद्धसीलेण ॥६९॥
भावसुदपज्जएणं परिणदमदिणा य बारसंगाणं ।
चोद्दसपुव्वाण तहा एक्कमुहुत्तेण विरचणा विहिदा ॥७०॥

गाथाचतुष्टयं ॥

महावीरभाषितार्थस्तस्मिन्काले तत्रैव क्षेत्रे च क्षयोपशमविवर्द्धितचतुरमलमतिभिः पूर्णेन ॥ लोकालोकानां तथा जीवाजीवानां विविधविषयेषु सन्देहनाशनार्थमुपगतश्रीवीरचलनमूलेन ॥ विपुले गौतमगोत्रे जातेनेन्द्रभूतिनाम्ना चतुर्वेदपारगेण विप्रेण विशुद्धशीलेन ॥ भावश्रुतपर्यायेण परिणतमतिना द्वादशाङ्गानां चतुर्दशपूर्वाणां रचना मुहूर्तेनैकेनैव विहिता ॥

इय मूलतन्तकत्ता सिरिवीरो इंदभूविविप्पवरो ।
उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस आइरिया ॥७१॥

अयं मूलतन्त्रकर्त्ता श्रीवीरस्वामी । उपतन्त्रे कर्त्ता इन्द्रभूतिविप्रवरोऽनुतन्त्रे शेषाचार्य्याः कर्त्तारः ॥

णिण्णट्ठरायदोसा महेसिणो दिव्वतंतकत्तारा ।
किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स पामण्णं ॥७२॥

निर्नष्टरागद्वेषा महर्षयः दिव्यतन्त्रकर्त्तारः । किमर्थं प्रभणिताः कथयितुं सूत्रस्य प्रामाण्यं ॥

उत्तरग्रन्थकर्ता तदनुक्रमधराविनष्टसूत्रार्थरागादिदोषरहितमहामुनिगणः ।

इस प्रकार भावकी अपेक्षा अर्थकर्ताका कथन किया ।

उसी कालमें, उसी क्षेत्रमें क्षयोपशमसे वृद्धिको प्राप्त चार निर्मल ज्ञानसे परिपूर्ण, तथा लोक अलोक और जीव-अजीव सम्बन्धी विविध विषयोंमें सन्देहको दूर करनेके लिए भगवान् महावीरके पादमूलमें आये हुए, महान् गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए, चारों वेदोंमें पारंगत विशुद्ध शीलवान् इन्द्रभूति नामक ब्राह्मणने, जिन्हें भाव श्रुत ज्ञान प्राप्त हुआ था, भगवान् महावीरके द्वारा कहे गये अर्थको लेकर एक ही मुहूर्तमें बारह अंगों और चौदह पूर्वोकी रचना की ॥६७-७०॥

इस प्रकार मूल तन्त्रकर्ता श्री महावीर स्वामी हुए। इन्द्रभूति ब्राह्मण श्रेष्ठ उपतन्त्रकर्ता हुए और शेष आचार्य अनुतन्त्रकर्ता हुए। तथा राग-द्वेषसे रहित महर्षिगण दिव्य तन्त्रकर्ता हुए ॥७१॥

शंका—सूत्रका प्रामाण्य किसलिए कहा है ?

---

१. ति. प. १।७६-७९ । २. क तास्सि । ३. क °विवत्थिद° । ४. क °णम्मिप्पेण । ५. ति. प. १।८० । ६. ति. प. १।८१ । ७. म °दोषा महर्षिणो ।

[1]जो ण पमाणणएहिं णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अट्ठं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ॥७३॥
यः प्रमाणनयनिक्षेपैरर्थान्नाभिसमीक्षते । तस्यायुक्तं युक्तं युक्तमयुक्तं च प्रतिभाति ॥
[3]णाणं होदि पमाणं णयो वि णादुस्स हिदयभावत्थो ।
णिक्खेओ वि उवाओ जुत्तीए अत्थपडिगहणं ॥७४॥

प्रमाणं सम्यग्ज्ञानं भवति नयोऽपि ज्ञातुर्हृदयभावार्थः निक्षेपोऽप्युपायो युक्त्यार्थप्रतिग्रहणमिति ॥

अथ शास्त्रादौ उपकारस्मरणं किं कारणमिति न मन्यध्वम् ।
'श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः ।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥' इति कथनात् । अथवा ।
'अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः
प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्सुबुद्धे-
र्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥' इति वचनाच्च ।

किं चास्तां तावद्विशिष्टविवेकवतां पुंसामुपकारस्मरणं चैतन्यमात्रवतामेकेन्द्रियाणामपि दृश्यते ह्युपकारस्मरणमित्युत्प्रेक्षा च ।

ननु शास्त्रादावुपकारस्मरणं किमर्थमिति न वाच्यं । "श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥" इति कथनात् । "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् । इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥" इति वचनाच्च ।

समाधान—

जो प्रमाण, नय-निक्षेपके द्वारा अर्थका विचार नहीं करता, उसे अयुक्त बात युक्त और युक्त बात अयुक्त प्रतीत होती है ॥७३॥

सम्यग्ज्ञान प्रमाण होता है । ज्ञाताके हृदयके अभिप्रायको नय कहते हैं । निक्षेप जाननेका उपाय है । इस प्रकार युक्तिसे अर्थको ग्रहण करना चाहिए ॥७४॥

शंका—शास्त्रके आदिमें उपकारका स्मरण किस कारण किया जाता है ?

समाधान—ऐसा तर्क नहीं करना चाहिए । क्योंकि आगममें कहा है—

'परमेष्ठीके प्रसादसे श्रेयोमार्गकी सम्यक् सिद्धि होती है । इसलिए मुनिश्रेष्ठ शास्त्रके आदिमें उनके गुणोंका स्तवन करते हैं ॥

और भी कहा है—

'इष्ट फलकी सिद्धिका उपाय सम्यग्ज्ञान है । वह सम्यग्ज्ञान शास्त्रसे प्राप्त होता है । शास्त्रकी उत्पत्ति आप्त पुरुषसे होती है । इसलिए परमेष्ठीके प्रसादसे अथवा शास्त्रके प्रसादसे सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पुरुषोंके द्वारा वह आप्त पूज्य होते हैं ; क्योंकि साधु पुरुष किये गये उपकारको नहीं भूलते ॥'

---

१. ति. प. १।८२ । २. क णिरक्ख° । ३. ति. प. १।८३ । ४. आ. प. २ । ५. प्रबुद्धैर्न–त. श्लो. पृ. २ । ६. म°णां दृश्यते ।

'प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।
उदकममृतकल्पं दद्युराजीवितान्तं,
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥' उक्तं च तदेतत्सर्वम् ।
'विघ्नं नाशयितुं सदाचरितमन्वाचेष्टितुं चाथवा,
नास्तिक्यं परिहर्तुमभ्युदयसंप्राप्तेः परं कारणम् ।
पुण्यं चार्जयितुं विशुद्धमतिभिः पूर्वोपकाराय वा,
शास्त्रादौ क्रियते जिनेन्द्रनमनं मुख्यं वरं[२] मंगलम्' ॥ इति

सिद्धं सुद्धं पणमिय[3] जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं ।
गुणरयणभूषणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥

सिद्धं शुद्धं प्रणम्य जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रमकलंकं । गुणरत्नभूषणोदयं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि ॥

अथास्याः मंगलगाथाया अर्थः कथ्यते । वक्ष्यामि करिष्यामि । किम् । प्ररूपणं निरूपणं व्याख्यानम् । अथवा प्ररूपयतीति प्ररूप्यतेऽनेनेति वा प्ररूपणो ग्रन्थस्तम् । कस्य प्ररूपणम् । जीवस्य । चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यत्यजीवदिति जीव आत्मा । तस्य जीवस्य भेदप्रतिपादकं शास्त्रमहं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञा । अनया शास्त्रस्य संबन्धाभिधेयशक्त्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवत्त्वात् प्रेक्षावद्भिरादः

अतएव विघ्नं विनाशयितुं शिष्टाचारं परिपालयितुं नास्तिक्यं परिहर्त्तुमभ्युदयकारणपरमपुण्यमुपार्जयितुं कृतोपकारस्मरणार्थं च शास्त्रादौ जिनेन्द्रादिनमस्कारादिरूपमुख्यमंगलमाचरयन्नभिधेयप्रतिज्ञां प्रकाशयन् सिद्धमित्यादिगाथासूत्रमाह—

वक्ष्यामि—करिष्यामि, किं ? प्ररूपणं—निरूपणं व्याख्यानं, अथवा प्ररूपयतीति प्ररूप्यतेऽनेनेति वा प्ररूपणो ग्रन्थस्तं, कस्य प्ररूपणं ? जीवस्य । चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यत्यजीवदिति जीवः—आत्मा, तस्य

तथा विशिष्ट विवेकशाली पुरुषोंके द्वारा उपकारका स्मरण तो दूर रहो, चैतन्यमात्र वाले एकेन्द्रिय जीवोंके भी उपकारका स्मरण देखा जाता है । कहा है—'प्रथम अंकुर अवस्थामें पिये गये थोड़ेसे जलका स्मरण रखते हुए नारियलके वृक्ष अपने मस्तक पर नारियलोंका बोझा लादकर मनुष्योंको जीवन पर्यन्त अमृतके तुल्य जल प्रदान करते हैं । ठीक ही है साधुजन किये हुए उपकारको नहीं भूलते ।'

विघ्नोंका नाश करनेके लिए, अथवा सदाचरणका अनुपालन करनेके लिए अथवा नास्तिकताके परिहारके लिए और अभ्युदयकी प्राप्तिका उत्कृष्ट कारण पुण्यका उपार्जन करनेके लिए अथवा किये हुए पूर्व उपकारके लिये विशुद्ध बुद्धिसे सम्पन्न पुरुष शास्त्रके आदिमें जिनेन्द्रको नमस्कार करते हैं जो मुख्य उत्कृष्ट मंगल है । उसके लिए गाथा-सूत्र कहते हैं—

मैं प्ररूपण अर्थात् व्याख्यानको कहूँगा । अथवा, जो अर्थका प्ररूपण करता है, या जिसके द्वारा अर्थका प्ररूपण किया जाता है, उसे प्ररूपण कहते हैं । इस व्युत्पत्तिके अनुसार प्ररूपणका अर्थ होता है ग्रन्थ । अतः मैं ग्रन्थको कहूँगा । किसका प्ररूपण करोगे उसमें ? जो चार प्राणोंसे जीता है, जियेगा और भूतकालमें जिया था, वह जीव अर्थात् आत्मा है । उस

---

१. म विनतं । २. म परं । ३. म पणमिय । ४. क °जोविदि° ।

रणीयत्वमावेदितम्। किं कृत्वा। प्रणम्य नमस्कृत्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। नेमिचन्द्रं जिनेन्द्रम्। कथंभूतम्। सिद्धं समस्तभुवनविख्यातम्। पुनरपि कथंभूतम्। शुद्धं द्रव्यभावात्मकघातिकर्मरहितम्। तथापि क्षुधादिदोषसंभवं वदन्तं प्रत्याह—अकलङ्कमिति। न विद्यन्ते कलङ्काः क्षुधादयोऽष्टादशदोषा यस्यासावकलङ्कस्तम्। भूयः कथंभूतम्। गुणरत्नभूषणोदयं गुणा अनन्तज्ञानादयो गुणा एव रत्नभूषणानि तेषामुदयः प्रकर्षः परमकाष्ठा यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। इत्यसाधारणविशेषणैरशेषातिशयप्रकाशिभिरमीभिरन्येषामाप्ततावार्तामप्यसहमानैरस्यैव भगवतः परमाप्तता परमकृतकृत्यताऽस्मदादीनामकृतकृतकृत्यानां परमशरण्यता च नेमिचन्द्रेण प्रतिपादितेत्यवसेयम्॥

अथवा प्रणम्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। सकलात्मप्रदेशनिबिडनिबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनवकेवललब्धित्वाज्जिनः, निरुपमानपरमैश्वर्यसंपन्नत्वादिन्द्रः, जिन-

---

जीवस्य भेदप्रतिपादकं शास्त्रमहं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञा। अनया शास्त्रस्य संबन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवत्त्वात् प्रेक्षावद्भिरादरणीयत्वमावेदितम्। किं कृत्वा? प्रणम्य नमस्कृत्य। कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं नेमिचन्द्रं जिनेन्द्रं, कथंभूतं सिद्धं—समस्तभुवनविख्यातं, पुनरपि कथंभूतं? शुद्धं—द्रव्यभावात्मकघातिकर्मरहितं, तथापि क्षुधादिदोषसंभवं वदन्तं प्रत्याह—अकलङ्कमिति। न विद्यन्ते कलङ्काः—क्षुधादयोऽष्टादशदोषा यस्यासावकलङ्कः तं। भूयः कथंभूतं गुणरत्नभूषणोदयं—गुणाः—अनन्तज्ञानादयस्त एव रत्नभूषणानि गुणरत्नभूषणानि तेषां उदयः—प्रकर्षः परमकाष्ठा यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं, इत्यसाधारणविशेषणैरशेषातिशयप्रकाशिभिः अमीभिः अन्येषामाप्ततावार्तामप्यसहमानैः अस्यैव भगवतः परमात्मता परमकृतकृत्यता अस्मदादीनां अकृतकृत्यानां परमशरणता च प्रतिपादिता चेत्यवसेयं। अथवा—

प्रणम्य, कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं सकलात्मप्रदेशनिबिडनिबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्त-

---

जीवके भेदके प्रतिपादक शास्त्रको मैं कहूँगा। यह प्रतिज्ञा है। इसके द्वारा शास्त्रमें सम्बन्ध अभिधेय, शक्यानुष्ठान और इष्ट प्रयोजनको सूचित करके इस शास्त्रको बुद्धिमानोंके द्वारा आदरणीय बतलाया है। आशय यह है कि जिस शास्त्रमें ये होते हैं, वे ही शास्त्र बुद्धिमानोंके द्वारा मान्य होते हैं। जहाँ जैसा सम्बन्ध हो वैसा ही अर्थ हो, इसे सम्बन्धाभिधेय कहते हैं। जिसमें कही हुई बातका आचरण किया जा सकता हो, उसे शक्यानुष्ठान कहते हैं। और जो हितकारी प्रयोजनको लिये हो, उसे इष्ट प्रयोजन कहते हैं। जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्रको नमस्कार करके कहूँगा। वे जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र सिद्ध अर्थात् समस्त भुवनमें विख्यात हैं। शुद्ध अर्थात् द्रव्य और भावरूप घातिकर्मसे रहित हैं। फिर भी जो यह सम्भावना करते हैं कि उनमें क्षुधा आदि दोष होते हैं; उनके लिए कहते हैं कि वे अकलंक हैं अर्थात् क्षुधा आदि अठारह दोषरूप कलंक उनमें नहीं हैं। तथा अनन्त ज्ञानादि गुणरूप रत्नभूषणोंकी उनमें पराकाष्ठा होनेसे वे 'गुणरत्नभूषणोदय' हैं। समस्त अतिशयोंका प्रकाश करनेवाले इन असाधारण विशेषणोंसे, जो कि दूसरोंके आप्त होनेकी चर्चाको भी सहन नहीं करते, इन्हीं भगवान् जिनेन्द्रकी परमात्मता, परमकृतकृत्यता, और हमारे-जैसे अकृतकृत्योंकी परमशरणताका प्रतिपादन आचार्य नेमिचन्द्रने किया है, ऐसा जानना।

इसके ही अन्य अर्थ करते हैं—समस्त आत्माके प्रदेशोंमें निविडरूपसे बँधे जो

---

१. क प्रमण्य। २. क °वरनेमिचंद्रं। जिनेन्द्रं। ३. क गुणा एव। ४. म °ता च प्रतिपादितमित्य°। ५. क 'लघटन'।

श्चासाविन्द्रश्च जिनेन्द्रः, स्वकीयावबोधप्रभावाभिव्याप्तत्रिकालत्रिभुवनविस्तार इति यावत्। वश्च रश्च वरौ चतुर्विंशतिरित्यर्थः। निजाद्भुतपुण्यमाहात्म्येन नागेन्द्रनरेन्द्रदेवेन्द्रवृन्दं निजपादारविन्द-द्वन्द्वे[1] नमयतीति नेमिर्यदि[2] वा तीर्थरथप्रवर्त्तनपरत्वान्नेमिरिव नेमिस्तीर्थकरसमुदायश्चन्द्रयत्याह्लादयति लोकत्रयनेत्रकैरववनानीति चन्द्रस्तथाविधरूपसौन्दर्यसंपन्नोऽयं[3] यथाविधेन तुलाया-
५ मिन्द्रादिसौन्दर्यसारसर्वस्वमपि परमाणूयते। नेमिश्चासौ चन्द्रश्च नेमिचन्द्रः। वरसंख्याविशिष्टो नेमिचन्द्रो वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तं वृषभादिवीरा-वसानतीर्थंकरनिकुरंबमित्यभिप्रायः। शेषविशेषणानां[4] पूर्ववत्संबन्धः॥

अथवा प्रणम्य नमस्कृत्य। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। जयति भिनत्ति विदारयति कर्मभूभृन्नि-वहमिति जिनः। 'नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्त्तते' इति न्यायेनेन्द्रभूतेर्देवेन्द्रस्य वा। वरो गुरुरिन्द्रवरः

---

१० ज्ञानादिनवकेवललब्धित्वात् जिनः, निरुपमानपरमैश्वर्यसंपन्नत्वादिन्द्रः, जिनश्चासौ इन्द्रश्च जिनेन्द्रः स्वकीयाव-बोधप्रभावाभिव्याप्तत्रिकालत्रिभुवनविस्तार इति यावत्। वश्च रश्च वरौ चतुर्विंशतिरित्यर्थः। निजाद्भुतपुण्य-माहात्म्येन नागेन्द्रनरेन्द्रदेवेन्द्रवृन्दं निजपादारविन्दद्वन्द्वे नमयति इति नेमिः। यदि वा तीर्थरथप्रवर्तनपरत्वात् नेमिरिव नेमिः तीर्थकरसमुदायः। चन्द्रयति—आह्लादयति लोकत्रयनेत्रकैरववनानीति चन्द्रस्तथाविधरूपसौन्दर्य-संपन्नोदयः यद्रूपसंपदातुलायां इन्द्रादिसौन्दर्यसारसर्वस्वमपि परमाणूयते। नेमिश्चासौ चन्द्रश्च नेमिचन्द्रः वरसंख्या-
१५ विशिष्टो नेमिचन्द्रो वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं। वृषभादिवीराव-सानतीर्थकरनिकुरम्बमित्यभिप्रायः। शेषविशेषणानां पूर्ववत्संबन्धः। अथवा—

प्रणम्य—नमस्कृत्य, कं ? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं, जयति—भिनत्ति विदारयति कर्मभूभृन्निवहमिति जिनः "नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते" इति न्यायेन इन्द्रस्य—इन्द्रभूतेः देवेन्द्रस्य वा वरः—गुरुः इन्द्रवरः

घातिकर्मरूप मेघपटल, उसके विघटनसे प्रकट हुए अनन्तज्ञान आदि नौ केवललब्धियोंसे
२० सम्पन्न होनेसे जिन और जिसकी कोई उपमा नहीं,ऐसे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेसे इन्द्र होनेसे जिनेन्द्र हैं। अर्थात् जिन्होंने अपने ज्ञानकी प्रभासे तीनों कालों और तीनों लोकोंके विस्तारको व्याप्त किया है। 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि गणनाके अनुसार 'व' से चार और 'र' से दो लिया जाता है क्योंकि 'य' से 'र' दूसरा और 'व' चतुर्थ अक्षर है। 'अंकानां वामतो गतिः' नियमके अनुसार इसे पलट देनेसे वरसे चौबीस संख्याका बोध होता है।
२५ अपने अद्भुत पुण्य माहात्म्यसे नागेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके समूहको अपने चरणकमल युगलमें नमन करानेसे नेमि हैं। अथवा तीर्थरूपी रथका प्रवर्तन करनेमें तत्पर होनेसे जो नेमिके समान है,वह नेमि है अर्थात् तीर्थंकर समुदाय। तीनों लोकोंके नेत्ररूप श्वेतकमलोंके वनको आह्लादयुक्त करनेसे चन्द्र हैं अर्थात् जिनके इस प्रकारके रूपसौन्दर्य सम्पन्नताका उदय है कि जिस रूपसम्पदाकी तुलनामें इन्द्र आदिके सौन्दर्यके सारका सर्वस्व भी परमाणु-
३० के तुल्य प्रतीत होता है। नेमि, वही हुए चन्द्र, वर संख्या विशिष्ट नेमिचन्द्र वरनेमिचन्द्र। जिनेन्द्र ही हुए वरनेमिचन्द्र। अर्थात् वृषभजिनसे लेकर महावीरपर्यन्त तीर्थंकरोंके समुदायको नमस्कार करके। शेष विशेषणोंका सम्बन्ध पूर्ववत् जानना।

जो कर्मरूपी पर्वतोंका भेदन करता है, वह जिन है। 'नामके एकदेशसे नामका ग्रहण होता है' इस न्यायसे इन्द्र अर्थात् इन्द्रभूति अथवा देवेन्द्र, उनका वर अर्थात् गुरु, इन्द्रवर

---

३५ १. म °द्वंद्वं। २. क नेमिर्यदेवा। ३. म °न्नोदयतुलया°। ४. म °द्रस्यासौ। ५. म °विसेषाणां। ६. म वर्तत। ७. म °येन जिनेन्द्र°।

श्रीवर्द्धमानस्वामीत्यर्थः। नयत्यनश्वरपदं विनेयनिवहम् इति नेमिः। विश्वतत्त्वप्रकाशकत्वाच्चन्द्रवच्चन्द्रः। जिनश्चासाविन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। पूर्ववदन्यत्॥ अथवा। प्रणम्य। कम्। सिद्धं सिद्धो निष्ठितो निष्पन्नः कृतकृत्यः सिद्धसाध्य इति यावत्। तं सिद्धं सिद्धपरमेष्ठिनम्। जात्यपेक्षयाऽत्रैकवचनं तेन सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारेण सिद्धानामविशेषेण ग्रहणम्। कथंभूतम्। शुद्धं ज्ञानावरणाद्यष्टविधद्रव्यभावात्मककर्मरहितम्। भूयः कथंभूतम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं, अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः। इन्दनात् परमैश्वर्ययोगाद्राजते शोभत इतीन्द्रः। यथावस्थितमर्थं नयति परिच्छिनत्तीति नेमिर्बोधः। वरः परमानन्तरूपो नेमिर्यस्यासौ वरनेमिश्चन्दयते आह्लादते परमसुखमनुभवतीति चन्द्रः। सर्वत्र जात्यपेक्षयैकवचनम्। जिनश्चासाविन्द्रश्चासौ वरनेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। पुनरपि कथंभूतम्। अकलङ्कम्। न विद्यन्ते कलङ्का: परवादिपरिकल्पितदोषा यस्यासावकलङ्कस्तम्। पुनरपि कीदृशम्। गुणरत्नभूषणोदयम्। गुणाः परमावगाढसम्यक्त्वादयोऽष्टसंख्याविशिष्टास्त एव रत्नभूषणानि तेषामुदयोऽनुभवनं प्रकृष्टा वा प्राप्तिर्यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्।

श्रीवर्धमानस्वामीत्यर्थः। नयति अनश्वरपदं विनेयनिवहमिति नेमिः। विश्वतत्त्वप्रकाशकत्वाच्चन्द्रवच्चन्द्रः, जिनश्चासाविन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्चासौ जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं पूर्ववदन्यत्। अथवा—

प्रणम्य, कं? सिद्धं—सिद्धः निष्ठितः निष्पन्नः कृतकृत्यः सिद्धसाध्य इति यावत्, तं सिद्धं—सिद्धपरमेष्ठिनं जात्यपेक्षयात्रैकवचनं तेन सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारेण सिद्धानां अविशेषेण ग्रहणं। कथंभूतं? शुद्धं—ज्ञानावरणाद्यष्टविधद्रव्यभावात्मककर्मरहितं। भूयः कथंभूतं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं—अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः, इन्दनात्—परमैश्वर्ययोगाद्, राजते—शोभत इति इन्द्रः, यथावस्थितमर्थं नयति—परिच्छिनत्ति इति नेमिः—बोधः, वरः—परमोऽनन्तरूपो नेमिर्यस्यासौ वरनेमिः, चन्द्रयति—आह्लादते परमसुखमनुभवतीति चन्द्रः, सर्वत्र जात्यपेक्षयैकवचनं। जिनश्चासौ इन्द्रश्चासौ वरनेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः,

---

अर्थात् श्रीवर्धमान स्वामी। शिष्यसमूहको अविनाशी पदपर ले जानेसे वे नेमि हैं तथा चन्द्रकी तरह विश्वके तत्त्वोंका प्रकाश करनेसे चन्द्र हैं; अतः जिन ही हुए इन्द्रवर, वही हुए नेमि और वही हुए चन्द्र। ऐसे जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र अर्थात् वर्धमान स्वामीको, इत्यादि पूर्ववत् लगाना।

अथवा सिद्धोंको नमस्कार करके। सिद्ध अर्थात् निष्ठित, सम्पन्न, कृतकृत्य, जिसने साध्यको सिद्ध कर लिया। उस सिद्ध अर्थात् सिद्धपरमेष्ठीको। यहाँ जातिकी अपेक्षा एकवचनका प्रयोग किया है। उससे सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारसे सिद्धोंका सामान्यरूपसे ग्रहण करना। वे सिद्ध शुद्ध हैं अर्थात् ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके द्रव्यभावरूप कर्मोंसे रहित हैं। तथा जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र हैं। अनेक भवरूपी वनमें विषम संकटोंको प्राप्त करानेके कारण कर्मरूपी शत्रुओंको जो जीतता है, वह जिन है। इन्दन अर्थात् परम ऐश्वर्यके योगसे जो शोभित हो, वह इन्द्र है। जो पदार्थ जैसा है, उसको उसी रूपसे जो जानता है, वह नेमि अर्थात् ज्ञान है। वर अर्थात् उत्कृष्ट अनन्तरूप नेमि जिसके है, वह वरनेमि है। जो आह्लादयुक्त है अर्थात् परमसुखका अनुभव करता है, वह चन्द्र है। सर्वत्र जातिकी अपेक्षा, एकवचनका प्रयोग किया है। जिन ही हुआ इन्द्र, वही हुआ 'वर नेमि' और वही हुआ चन्द्र

---

१. क सर्वत्र प्रकारेण सिद्धा सर्वदा। २. म जयन्तीति जिनाः। ३. क शोभवत। ४. क आल्हादयते। ५. म °दयस्थं।

अथवा प्रणम्य । कम्[1] । तं आत्मानम् । तथा चाहुः—

'कः प्रजापतिरुद्दिष्टः को वायुरिति चोच्यते ।
कशब्दः स्वर्गमाख्याति क आत्मा च निगद्यते' ॥ इति ।

कथंभूतमात्मानम् । अकलं न विद्यते कला शरीरं यस्यासौ अकलस्तम् । पुनरपि कथंभूतम् । सिद्धं नित्यमनाद्यनिधनम् । भूयः कथंभूतम् । शुद्धं शुद्धनिश्चयनयविषयम् । पुनरपि कीदृशम् । जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम् । जिनानामसंयतसम्यग्दृष्टिप्रमुखानां इन्द्रः स्वामी परमाराध्यो जिनेन्द्रः । वरः सर्ववस्तुषु सारीभूतः । 'सारं यः सर्ववस्तूनां नमस्तस्मै चिदात्मने ।' इति वचनात् ।

नेमिचन्द्रो ज्ञानसुखस्वभावः रविबिम्बस्य प्रकाशोष्णस्वभाववत्तस्य तत्स्वभाववत्त्वात् । जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ नेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम् । पुनरपि कथंभूतम् । गुणरत्नभूषणोदयं गुणानां रत्नभूषणस्य[3] रत्नवत्पूज्यस्य सम्यक्त्वस्योदय-उत्पत्तिर्यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम् ।

तथा चोक्तं—

'शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः ।
पूज्यं महामणिरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥' इति ।

न ह्यात्मतत्त्वोपलब्धिमन्तरेण सम्यक्त्वसिद्धिः ॥

तं । पुनरपि कथंभूतं ? अकलङ्कं-न विद्यन्ते कलङ्काः-परवादिपरिकल्पितदोषा यस्यासावकलङ्कः, तं । पुनरपि कीदृशं ? गुणरत्नभूषणोदयं-गुणाः-परमावगाढसम्यक्त्वादयोऽष्टसंख्याविशिष्टाः, त एव रत्नभूषणानि, तेषां उदयः अनुभवनं प्रकृष्टा वा प्राप्तिर्यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं । अथवा—

प्रणम्य, कं-आत्मानं, कथंभूतं ? अकलं न विद्यते कला-शरीरं यस्यासौ अकलः, तं । पुनरपि कथंभूतं ? सिद्धं-नित्यमनादिनिधनं । भूयः कथंभूतं ? शुद्धं-शुद्धनिश्चयनयविषयं । पुनरपि कीदृशं ? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनानां-असंयतसम्यग्दृष्टिप्रमुखानां, इन्द्रः-स्वामी परमाराध्यो जिनेन्द्रः, वरः-सर्ववस्तुषु सारीभूतः, नेमिचन्द्रो ज्ञानसुखस्वभावः, जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ नेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं । पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं-गुणानां रत्नभूषणस्य-रत्नवत्पूज्यस्य सम्यक्त्वस्य उदयः-उत्पत्तिः, यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं । अथवा—

अर्थात् जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्र। परवादियोंके द्वारा कल्पित दोष नहीं हैं,अतः अकलंक है। तथा परमावगाढ सम्यक्त्व आदि आठ गुणरूपी रत्नभूषणोंका उदय अर्थात् अनुभवन या प्राप्ति होनेसे गुणरत्नभूषणोदय हैं। ऐसे सिद्धोंको इत्यादि लगा लेना।

अथवा आत्माको नमस्कार करके। जो अकल अर्थात् शरीरसे रहित है। सिद्ध अर्थात् नित्य अनादि निधन है। शुद्ध अर्थात् शुद्ध निश्चयनयका विषय है। जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र है—जिन अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टी प्रमुखोंका इन्द्र अर्थात् स्वामी परमाराध्य जिनेन्द्र है। वर अर्थात् सब वस्तुओंमें सारभूत है, नेमिचन्द्र अर्थात् ज्ञान और सुख स्वभाव है। जिनेन्द्र ही हुआ वर, वही हुआ नेमिचन्द्र। तथा गुणरत्न भूषणोदय है—गुणोंका रत्नभूषण अर्थात् रत्नकी तरह पूज्य जो सम्यक्त्व उसकी जिससे उत्पत्ति होती है उस आत्माको

---

१. क कं आत्मा° । २. म शरीरं यस्यासौ न कलस्तं । ३. म रत्नभूषणो यस्य रत्नवत्पूज्यस्य उदय° ।
४. आत्मानु० १५ श्लो. ।

अथवा प्रणम्य। कम्। सिद्धं सिद्धपरमेष्ठिसमूहम्। कथंभूतम्। शुद्धं दग्धाष्टकर्ममलं[1] न केवलं सिद्धसमूहम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। जिनेन्द्रोऽर्हत्समूहो वरा गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतयो भव्यपुण्डरीका[2] एव नेमयो नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। अर्हत्परमेश्वरनिवहमित्यर्थः। कथंभूतम्। अकलङ्कं दूरीकृतत्रिषष्टिकर्ममलकलङ्कम्[3]। न केवलं तम्। गुणरत्नभूषणोदयं च गुणरूपाणि रत्नानि गुणरत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, तान्येव भूषणान्याभरणानि तेषामुदयः समुदयो यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। आचार्योपाध्यायसाधुवर्गमित्यर्थः।

अथवा प्रणम्य। कम् जीवस्य प्ररूपणम्। किंविशिष्टम्। सिद्धं सम्यग्गुरूपदेशपूर्वकत्वेनाखण्डप्रवाहरूपेणायातम्। पुनरपि कथंभूतम्। शुद्धं प्रमाणाविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन पूर्वापरप्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिविरोधैरबाधितम्। भूयः कथंभूतम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रः सर्वज्ञो वरः कर्ता यस्यासौ जिनेन्द्रवरः सर्वज्ञप्रणीत इति यावत्। एतेन वक्तुः प्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमुपदर्शितम्।

'यथा च पितृशुद्धयापत्यशुद्धिरिह दृश्यते।
तथाप्तस्य विशुद्धत्वे भवेदागमशुद्धता॥' इति

प्रणम्य, कं? सिद्धं–सिद्धपरमेष्ठिसमूहं, कथंभूतं? शुद्धं–दग्धाष्टकर्ममलं, पुनः कथंभूतं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं–जिनेन्द्रः–अर्हत्समूहः, वराः–गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतयो भव्यपुण्डरीकाः, त एव नेमयः–नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तं–अर्हत्परमेश्वरनिवहमित्यर्थः। कथंभूतं? अकलङ्कं–दूरीकृतत्रिषष्टिकर्ममलकलङ्कं। न केवलं तं, गुणरत्नभूषणोदयं च गुणरूपाणि रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तान्येव भूषणानि–आभरणानि, तेषां उदयः–समुदयः, यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं, आचार्योपाध्यायसाधुवर्गमित्यर्थः। अथवा—

प्रणम्य, कं? जीवस्य प्ररूपणं, किंविशिष्टं? सिद्धं–सम्यग्गुरूपदेशपूर्वकत्वेन अखण्डप्रवाहरूपेण आयातं। पुनरपि कथंभूतं? शुद्धं–प्रमाणाविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन पूर्वापरप्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिविरोधैः अबाधितं। भूयः कथंभूतं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं–जिनेन्द्रः–सर्वज्ञः, वरः–कर्ता यस्यासौ जिनेन्द्रवरः–

नमस्कार करके इत्यादि। अथवा सिद्ध अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी समूहको नमस्कार करके। जो शुद्ध अर्थात् अष्टकर्मरूपी मलसे रहित हैं। तथा जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्रको नमस्कार करके—जिनेन्द्र अर्थात् अर्हत्समूह। वर अर्थात् गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्यजीव, वही हुए नेमि अर्थात् नक्षत्र उनमें चन्द्रमाके समान जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्र अर्थात् अर्हत्परमेश्वरोंका समूह। जो अकलंक है—अर्थात् जिसने त्रेसठ कर्मप्रकृतिरूप मलकलंकको दूर किया है। उसको नमस्कार करके। तथा गुणरत्न भूषणोदयको नमस्कार करके अर्थात् गुणरूपी रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वे ही हुए भूषण उनका जिनके उदय अर्थात् समुदाय है ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु। इस तरह सिद्ध, अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करके जीवके प्ररूपणको कहूँगा।

अथवा, जीवके प्ररूपणको नमस्कार करके। जो सिद्ध है अर्थात् सम्यक् गुरुओंके उपदेशपूर्वकपनेसे अखण्ड प्रवाहरूपसे चला आया है। शुद्ध है अर्थात् प्रमाणसे अविरुद्ध अर्थका प्रतिपादक होनेसे पूर्वापरविरोध, प्रत्यक्ष विरोध, अनुमान विरोध, आगम विरोध,

---

१. क °मलं केवलं। २. क °कस्तु एव। ३. म कर्मकलंकं।

यथावस्थितमर्थं नयति प्रतिपादयति द्योतयतीति नेमिः। चन्द्रयत्याह्लादयति विकाशयति शब्दार्थालंकाराभ्यां श्रोतुर्मनःकुमुदकुट्मलानीति चन्द्रः जिनेन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। एवमेवागमलक्षणं च।

'पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहृतेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृति[3] रागमः'॥ इति

पुनरपि किंविशिष्टम्। अकलङ्कं दूरोत्सारितशब्दार्थविषयदोषकलङ्कम्। पुनरपि कथंभूतम्। गुणरत्नभूषणोदयम्। गुणरत्नानां रत्नत्रयरूपाणां भूषणानामुदय उत्पत्तिः संपत्तिर्वा यस्मादस्मदादीनामसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। तथा चैतिह्यम्।

'भावियसिद्धंताणं[5] दिणयरकरणिम्मलं हवइ णाणं।
सिसिरकरकरसरिच्छं हवइ चरित्तं[4] सवसचित्तं॥७५॥

भावितसिद्धान्तानां दिनकरकरनिर्मलं भवति ज्ञानम्। शिशिरकरकरसदृक्षं भवति चरित्रं स्ववशचित्तम्॥

[6]मेरुव्व णिप्पकंपं णट्ठट्ठमलं तिमूढउम्मुक्कं।
सम्मद्दंसणमणुवममुप्पज्जइ पवयणब्भासा॥७६॥

मेरुवन्निष्प्रकम्पं नष्टाष्टमलं त्रिमूढोन्मुक्तम्। सम्यग्दर्शनमनुपममुत्पद्यते प्रवचनाभ्यासात्। इति।

अथवा प्रणम्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्राचार्यम्। कथंभूतम्। सिद्धं प्रसिद्धं तात्कालिकविश्वशास्त्रनिष्पन्नं वा। पुनरपि किंविशिष्टम्। शुद्धं पञ्चविंशतिमलरहित-

---

सर्वज्ञप्रणीत इति यावत्। एतेन वक्तुः प्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमुपदर्शितं। यथावस्थितमर्थं नयति—प्रतिपादयति द्योतयतीति नेमिः, चन्द्रयति आह्लादयति विकासयति शब्दार्थालंकाराभ्यां श्रोतुर्मनःकुमुदकुड्मलानीति चन्द्रः, जिनेन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं। पुनरपि किंविशिष्टं? अकलङ्कं—दूरोत्सारितशब्दार्थविषयदोषकलङ्कं। पुनरपि कथंभूतं? गुणरत्नभूषणोदयं गुणरत्नानां—रत्नत्रयरूपाणां भूषणानां उदयः—उत्पत्तिः—संपत्तिर्वा यस्मादस्मदादीनां असौ गुणरत्नभूषणोदयः तं। अथवा—

प्रणम्य, कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्राचार्यं, कथंभूतं? सिद्धं—प्रसिद्धं तात्कालिकविश्वशास्त्रनिष्पन्नं वा। पुनरपि किंविशिष्टं? शुद्धं—पञ्चविंशतिमलरहितसम्यक्त्वं निरतिचारचारित्रं देशकुलजाति-

---

लोक विरोध और स्ववचन विरोधसे अबाधित है। तथा जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र है—जिनेन्द्र अर्थात् सर्वज्ञ जिसका वर अर्थात् कर्ता है, अर्थात् जीवका प्ररूपण सर्वज्ञ प्रणीत है। इससे वक्ताके प्रमाणपनेसे वचनका प्रमाणपना दिखलाया। जो यथावस्थित अर्थको 'नयति' अर्थात् प्रतिपादन करता है, प्रकाशित करता है, वह नेमि है। तथा 'चन्द्रयति' अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालंकारसे श्रोताओंके मनको सफेद कमलकी तरह आह्लादित या विकसित करता है वह चन्द्र है। जिनेन्द्रवर ही हुआ नेमि, वही हुआ चन्द्र इस तरह प्ररूपण जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र है। तथा अकलंक है—शब्द और अर्थविषयक कलंकसे रहित है। तथा गुणरत्न अर्थात् रत्नत्रय रूप भूषणोंका उदय उससे हमारे जैसे लोगोंको होता है इसलिए प्ररूपण गुणरत्नभूषणोदय है।

अथवा, जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र अर्थात् जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्राचार्यको नमस्कार करके।

---

१. म जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ। २. क विरोधादिभ्य। ३. म रूपव्याहृतिरागम। ४. म भरित्तं। ५. म सिद्धांतां। ६. क मेरुव्व°। ७. म °मणुपम°।

सम्यक्त्वम् । निरतिचारचारुचरित्रम् । देशकुलजातिशुद्धम् । भूयः किंभूतम् । अकलंकं विशुद्धमनोवाक्कायसंयुक्तम् । पुनः कथंभूतम् । गुणरत्नभूषणोदयम् । गुणरत्नभूषणश्चामुंडरायस्तस्योदयोऽभिवृद्धिर्यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तमिति ॥

इति इष्टविशिष्टदेवतानमस्कारलक्षणपरममंगलमनंगीकरिसि तदनंतरं पेळ्वेनेंब जीवप्ररूपणाधिकारनिर्देशार्थमागि मुंदण सूत्रावतारमादुदु—

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा ॥२॥

गुणजीवाः पर्याप्तिः प्राणाः संज्ञा च मार्गणाश्चोपयोगोऽपि च क्रमशो विंशतिस्तु प्ररूपणाः भणिताः ॥ इंति चतुर्दशगुणस्थानंगळुं, अष्टानवति (९८) जीवसमासेगळुं, षट्पर्याप्तिगळुं, दशप्राणंगळुं, चतुःसंज्ञेगळुं, नाल्कु गतिमार्गणेगळुं, अर्इंद्रियमार्गणेगळुं, षट्कायमार्गणेगळुं, पदिनैदु योगमार्गणेगळुं, मूरु वेदमार्गणेगळुं, नाल्कु कषायमार्गणेगळुं, एंटुज्ञानमार्गणेगळुं, एळु संयममार्गणेगळुं, नाल्कु दर्शनमार्गणेगळुं, आरु लेश्यामार्गणेगळुं, एरडु भव्यमार्गणेगळुं, आरु सम्यक्त्वमार्गणेगळुं, एरडु संज्ञिमार्गणेगळुं, एरडाहारमार्गणेगळेरडुपयोगंगळेंदितु जीवप्ररूपणंगळिप्पत्तु पेळल्पट्टुवु ।

शुद्धं वा । भूयः किंभूतं ? अकलंकं विशुद्धमनोवाक्कायसंयुक्तं । पुनः कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं गुणरत्नभूषणश्चामुण्डरायः—तस्य उदयः-अभिवृद्धिः, यस्मात् असौ गुणरत्नभूषणोदयस्तमिति । एवं इष्टविशिष्टदेवतानमस्कारकरणलक्षणं परममंगलमंगीकृत्य अनन्तरं प्रकृतजीवप्ररूपणस्य अधिकारान् निर्दिशति—

अत्र चतुर्दश गुणस्थानानि, अष्टानवतिर्जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतिमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, पञ्चदश योगमार्गणाः, तिस्रः वेदमार्गणाः, चतस्रः कषायमार्गणाः, अष्टौ ज्ञानमार्गणाः, सप्त संयममार्गणाः, चतस्रः दर्शनमार्गणाः, षट् लेश्यामार्गणाः, द्वे भव्यमार्गणे, षट् सम्यक्त्वमार्गणाः, द्वे संज्ञिमार्गणे, द्वे आहारकमार्गणे, द्वे उपयोगमार्गणे इत्येताः जीवप्ररूपणा विंशतिर्भणिताः । अत्र

जो सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध हैं, अथवा वर्तमान कालके सब शास्त्रोंमें निष्णात हैं। शुद्ध हैं अर्थात् पच्चीस दोष रहित सम्यक्त्व, निरतिचार चारित्र और देश कुल जातिसे शुद्ध हैं। अकलंक अर्थात् विशुद्ध मन, वचन, काय संयुक्त हैं। और गुणरत्नभूषण अर्थात् चामुण्डराय, उसकी अभिवृद्धि उनसे हुई, इसलिये वे गुणरत्नभूषणोदय हैं ॥१॥

इस प्रकार इष्ट विशेष देवताको नमस्कार करनेरूप परम मंगलको करके प्रकृत जीव प्ररूपणके अधिकारोंका निर्देश करते हैं—

यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीवसमास, छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा, चार गतिमार्गणा, पाँच इन्द्रियमार्गणा, छह कायमार्गणा, पन्द्रह योगमार्गणा, तीन वेदमार्गणा, चार कषायमार्गणा, आठ ज्ञानमार्गणा, सात संयममार्गणा, चार दर्शनमार्गणा, छह लेश्यामार्गणा, दो भव्यमार्गणा, छह सम्यक्त्वमार्गणा, दो संज्ञी मार्गणा, दो आहारमार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही हैं। प्रत्येक प्ररूपणाकी निरुक्ति कहते हैं—'गुण्यते अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्यसे द्रव्यान्तरको जाना जाता है, वह गुण है। कर्मकी उपाधिकी अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन, उपयोगरूप चैतन्य प्राणोंसे जो जीता है, वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक्रूपसे 'आसते' रहते हैं, वे जीवसमास हैं। 'परि' अर्थात्

---

१. म च विंश° । २. म इल्लि च° । ३. क षट्कषाय° ।

इल्लि गुण्यते [1]परिच्छिद्यते द्रव्यात् द्रव्यांतरमनेनेति[2] गुणः। कर्मोपाधिसापेक्षज्ञानदर्शनोपयोगचैतन्यप्राणेन जीवन्तीति जीवाः। (ते जीवाः) सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। परि–समंतादाप्तिः पर्याप्तिः। शक्तेर्निष्पत्तिरित्यर्थः। प्राणन्ति जीवन्ति जीवितव्यवहारयोग्या भवन्ति जीवा यैस्ते प्राणाः। आगमप्रसिद्धा वाञ्छा संज्ञा अभिलाष इति यावत्। यकाभिर्यासु वा जीवा मृग्यन्ते ता मार्गणाः। मृगयिता भव्यवरपुंडरीकस्तत्त्वार्थश्रद्धालुरित्यर्थः। मृग्याश्चतुर्दशमार्गणाविशिष्टात्मानः, मृग्यस्य करणतामधिकरणतां वा प्राप्ता गत्यादयो मार्गणाः स्युः। (मार्गणोपायो) ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः॥

इंतु प्ररूपणंगळ्गे[4] साधारणार्थप्रतिपादनमाय्तु। तदनन्तरं संग्रहनयापेक्षेयिं प्ररूपणाद्वित्रिधतमं मनदोळिटटु गुणस्थानमार्गणास्थानमेंदितेरडक्कं संज्ञान्तरनिर्देशार्थमी सूत्रमं पेळ्दपरु—

संखेओ ओघो त्ति य गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसो त्ति य मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥३॥

संक्षेप ओघ इति च गुणसंज्ञा सा च मोहयोगभवा। विस्तार आदेश इति च मार्गणसंज्ञा स्वकर्मभवा॥ संक्षेपमेंदुं ओघमेंदुं गुणस्थानक्कनादिनिधनआर्षदोळु रूढसंज्ञेयक्कुमासंज्ञेयुं

गुण्यते परिच्छिद्यते द्रव्याद् द्रव्यान्तरमनेनेति गुणः। कर्मोपाधिसापेक्षज्ञानदर्शनोपयोगचैतन्यप्राणेन जीवन्तीति जीवाः। ते जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। परि–समन्तात्, आप्तिः पर्याप्तिः शक्तिनिष्पत्तिरित्यर्थः। जीवन्ति प्राणन्ति जीवितव्यव्यवहारयोग्या भवन्ति जीवा यैस्ते प्राणाः। आगमप्रसिद्धा वांछा संज्ञा अभिलाषा इति यावत्। यकाभिः यासु वा जीवा मृग्यन्ते ता मार्गणाः, मृगयिता भव्यवरपुण्डरीकस्तत्त्वार्थश्रद्धालुरित्यर्थः, मृग्याः चतुर्दशमार्गणाविशिष्टात्मानः। मृग्यस्य करणतां अधिकरणतां वा प्राप्ता गत्यादयः मार्गणाः। मार्गणोपायो ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः। एतासां प्ररूपणानां साधारणार्थप्रतिपादनमुक्तं ॥२॥ अथ संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वैविध्यं मनसि धृत्वा गुणस्थानप्ररूपणयोः संज्ञान्तरमाह—

संक्षेप इति ओघ इति च गुणस्थानस्य संज्ञा अनादिनिधनार्षे रूढा प्रसिद्धा, सा च संज्ञा मोहयोगभवा–मोहयोगाभ्यां संजाता भवति। संज्ञावतां गुणस्थानानां मोहयोगप्रभवत्वात् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वमुपचारेण

समंतरूपसे आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है, जिसका अर्थ है—शक्तिकी निष्पत्ति। जिनसे जीव 'प्राणन्ति' जीते हैं अर्थात् जीवित व्यवहारके योग्य होते हैं, वे प्राण हैं। आगम प्रसिद्ध वांछा या अभिलाषाको संज्ञा कहते हैं। जिनके द्वारा या जिनमें जीव 'मृग्यन्ते' खोजे जाते हैं, वे मार्गणा हैं। मार्गयिता–खोजनेवाला तत्त्वार्थका श्रद्धालु भव्यजीव है। 'मृग्य' अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणावाले जीव हैं। मृग्यपनेके कारणपने या अधिकरणपनेको प्राप्त गति आदि मार्गणा हैं अर्थात् गति आदि मार्गणाओंमें उन उन मार्गणावाले जीवोंको खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्यरूप उपयोग मार्गणाका उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओंके सामान्य अर्थका कथन किया ॥२॥

आगे संग्रहनयकी अपेक्षा प्ररूपणाके दो प्रकारोंको मनमें रखकर गुणस्थान और मार्गणास्थान इन दो प्ररूपणाओंके नामान्तर कहते हैं—

संक्षेप और ओघ ये गुणस्थानकी संज्ञा अनादिनिधन आगममें रूढ़ है—प्रसिद्ध है।

---

१. क पच्छेद्यते। २. म °नेनितु गुणः। ३. म °क्तिनि°। ४. क गल्गे साधारणंगलग्गे साधा°। °धत्वमं। ६. क ओघमेयेंदु।

मोहोदयदिंदमुं योगदिंदमुमादुदु । संज्ञावंतंगळप्प गुणस्थानंगळ्गे मोहोदययोगप्रभवत्वदिंदं [3]तत्संज्ञिगं तत्प्रभवत्वमुपचरदत्तणिन्दं पेळल्पट्टुदु । च शब्ददिंदं सामान्यमेंदुं गुणास्थानक्के संज्ञेयक्कुमेंदितनुक्तमुमरियल्पडुगुं । विस्तारमुमादेशमुमेंदितु मार्गणास्थानक्के संज्ञेयक्कुमा संज्ञेयुं स्वाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिमित्तकर्मोदयदिंदमक्कुमिल्लियुं मुंनिनंते तत्संज्ञेगं तत्प्रभवत्वोपचार- मरियल्पडुगुं । च-शब्ददिंदं विशेषमेंदितं मार्गणेगनुक्तसंज्ञेयुमक्कुं ॥ तदनन्तरं प्ररूपणाद्वैविध्य- दोळु शेषप्ररूपणंगळन्तर्भावप्रदर्शनार्थमी सूत्रमं पेळ्दपरु ।

आदेसे संलीणा जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ ।
उवजोगो वि य भेदे वीसं तु परूवणा भणिदा ॥४॥

आदेसे संलीना जीवाः पर्याप्तिप्राणसंज्ञाश्च । उपयोगोऽपि च भेदे विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ।

मार्गणास्थानप्ररूपणेयोळु जीवसमासेयुं पर्याप्तियुं प्राणमुं संज्ञेयुं उपयोगमेंबी पंचप्ररूपणेगळु संल्लीनंगळादुवुमंतेंबुदेदोडे अंतर्भूतंगळादुवेंबुदर्थं ॥ अंतागुत्तिरलु गुणस्थान- प्ररूपणमुं मार्गणास्थानप्ररूपणमेंदितु संग्रहनयापेक्षेयिं प्ररूपणाद्वयमेव प्ररूपितमाय्तु ॥

उक्तं । चशब्दात् सामान्यमित्यपि गुणस्थानस्य संज्ञा भवतीति ज्ञातव्यं । तथा विस्तार आदेशश्चेति मार्गणा- स्थानस्य संज्ञा भवति । सा च स्वाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिमित्तकर्मोदयाद्भवति । अत्रापि प्राग्वत् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वोपचारो ज्ञातव्यः । चशब्दाद्विशेष इत्यपि मार्गणाया अनुक्तसंज्ञा भवति ॥३॥ अथ प्ररूपणाद्वैविध्ये शेषप्ररूपणानामन्तर्भावं प्ररूपयति—

मार्गणास्थानप्ररूपणायां जीवसमासाः, पर्याप्तयः, प्राणाः, संज्ञा, उपयोगश्च इति पञ्च प्ररूपणाः संलीनाः— सम्यगन्तर्भूता इत्यर्थः । तथा सति गुणस्थानप्ररूपणं मार्गणास्थानप्ररूपणमिति संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वयमेव प्ररूपितं जातं । अथ कस्यां मार्गणायां का प्ररूपणा अन्तर्भूतेति चेद्गाथात्रयेणाह—

वह संज्ञा 'मोहयोगभवा' अर्थात् मोह और योगसे उत्पन्न होती है । यतः जिनकी यह संज्ञा है,वे गुणस्थान मोह और योगसे उत्पन्न होते हैं,इसलिए उपचारसे उनकी संज्ञाको मोह और योगसे उत्पन्न हुई कहा है । 'च' शब्दसे 'सामान्य' यह भी गुणस्थानकी संज्ञा है, यह जानना चाहिए । तथा विस्तार और आदेश ये मार्गणास्थानकी संज्ञा है । वह संज्ञा अपनी-अपनी मार्गणाके नाममूलक व्यवहारमें निमित्त कर्मके उदयसे होती है । जैसे गतिनाम कर्मके उदयसे गति संज्ञा व्यवहारमें आती है । यहाँ भी पहलेकी तरह संज्ञाको भी उपचारसे कर्मोदय जन्य जानना चाहिए । 'च' शब्दसे विशेष भी बिना कहे ही मार्गणाकी संज्ञा है ॥३॥

आगे इन दो प्ररूपणाओंमें शेष प्ररूपणाओंका अन्तर्भाव कहते हैं—मार्गणास्थान प्ररूपणामें जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोग ये पाँच प्ररूपणाएँ सम्यक् रीतिसे अन्तर्भूत हैं । ऐसा होनेपर संग्रहनयकी अपेक्षासे गुणस्थान प्ररूपणा और मार्गणा स्थान प्ररूपणा ये दो प्ररूपणा ही प्ररूपित कहलायीं ॥४॥

आगे किस मार्गणामें कौन प्ररूपणा अन्तर्भूत है, यह तीन गाथाओंसे कहते हैं— इन्द्रियमार्गणामें और कायमार्गणामें जीवसमास, पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनोबल प्राण अन्तर्भूत हैं । किस प्रकार अन्तर्भूत हैं,यह बतलाते हैं—जीवसमास और

---

१. क °दिमुं । २. म °गप्प । ३. म °संज्ञेगं । ४. म °मेंदितु । ५. क साभि° । ६. क °देडो, म °देनेदोडे ।

तदनंतरमाव मार्गणेयोळाव प्ररूपणमंतर्भूतमादुदें दोडे गाथासूत्रत्रयदिदं पेळ्दपरुं ।

इंदियकाये लीणा जीवा पज्जत्तिआणभासमणो ।
जोगे काओ णाणे अक्खा गदिमग्गणे आऊ ॥५॥

इंद्रियकाये लीना जीवाः पर्याप्तिरानभाषामनांसि । योगे कायः ज्ञानेऽक्षाणि गतिमार्गणायामायुः ॥

इंद्रियकायमार्गणेगळें बेरडु मार्गणेगळोळु जीवसमासेगळु पर्याप्तिगळु मानभाषामनोबलप्राणंगळुमंतर्भविसल्पट्टुवुमदें तेंदोडे । जीवसमासेगळु पर्याप्तिगळुगमिंद्रियकायंगळोडने तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदमेणु सामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदं परियाप्तिगळुगे धर्मधर्मीकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदमुं, उच्छासवाङ्मनोबलप्राणंगळ्गेयुं । स्वकारणतत्पर्याप्त्यंतर्भावविषयदोळमवक्कमंतर्भावमुं न्यायमक्कुमदु कारणदिंदमल्लिये अंतर्भविसल्पट्टुवु ।

योगमार्गणेयोळु कायबलप्राणांतर्भावमुं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे जीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षणकाययोगमप्प कार्यदोळु तद्बलाधानलक्षणकायबलप्राणस्वरूपमप्प कारणक्के सामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिविशेषमुंटप्पुदरिं कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तियक्कुं । ज्ञानमार्गणेयोळु इंद्रियंगळुगंतर्भावमक्कुं । एकेंदोडे इंद्रियावरणक्षयोपशमोद्भूतलब्धिरूपंगळप्प इन्द्रियंगळ्गे ज्ञानदोडने तादात्म्य-

---

इन्द्रियमार्गणायां कायमार्गणायां च जीवसमासाः पर्याप्तयः आनपानभाषामनोबलप्राणाश्चान्तर्भूताः । कथं ? इति चेत् जीवसमासानां पर्याप्तीनां च इन्द्रियकायाभ्यां तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसंभवात् सामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिसंभवाद्वा पर्याप्तीनां धर्मधर्मिकृतप्रत्यासत्तिसंभवाच्च । उच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणानां च स्वकारणतत्तत्पर्याप्त्यन्तर्भावविषयेऽपि तेषामपि अन्तर्भावस्यापि न्याय्यत्वात् अत्रैवान्तर्भाव्यन्ते । योगमार्गणायां कायबल प्राणोऽन्तर्भूतः । जीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणकाययोगरूपकार्ये तद्बलाधानलक्षणकायबलप्राणस्वरूपकारणस्य स्वरूपसामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिविशेषसद्भावात् कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिर्भवति । ज्ञानमार्गणायां इन्द्रियाणि

पर्याप्तियोंका इन्द्रिय और कायके साथ तादात्म्यकृत प्रत्यासत्ति अथवा सामान्य विशेषकृत प्रत्यासत्ति सम्भव है । अर्थात् जीवसमास और पर्याप्ति इन्द्रिय कायरूप ही हैं । इन्द्रिय और काय स्वरूप है, जीवसमास स्वरूपवाला है, अथवा इन्द्रिय और काय विशेष हैं, जीवसमास सामान्य हैं । इन्द्रिय और कायके साथ पर्याप्तियोंकी धर्मधर्मिकृत प्रत्यासत्ति सम्भव है । इन्द्रिय और काय धर्मी हैं,पर्याप्ति धर्म हैं और धर्मीमें धर्मोंका अन्तर्भाव होता है । उच्छ्वास-निश्वास, वचनबल और मनोबल प्राणोंका कारण उच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्ति हैं । अतः जहाँ पर्याप्तिका अन्तर्भाव हुआ,वहीं उसके कार्य प्राणोंका अन्तर्भाव होना उचित ही है । इसलिए इनका भी अन्तर्भाव इन्द्रिय और कायमार्गणामें होता है । योगमार्गणामें कायबल प्राण अन्तर्भूत है ; क्योंकि जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्द लक्षणवाले काययोगरूप कार्यमें उसको बलाधान करनेवाले कायबल प्राणस्वरूप कारणकी सामान्य विशेषकृत प्रत्यासत्ति होनेसे कार्यकारणकृत प्रत्यासत्ति होती है । अर्थात् कायबल विशेष है,योग सामान्य है।इस प्रकार सामान्य विशेषभाव प्रत्यासत्तिसे योगमें कायबलका अन्तर्भाव युक्त है । ज्ञानमार्गणामें इन्द्रियाँ अन्तर्भूत हैं,क्योंकि इन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे प्रकट हुई लब्धिरूप इन्द्रियोंकी ज्ञानके साथ तादात्म्यकृत प्रत्यासत्ति है । अर्थात् लब्धिरूप इन्द्रियाँ ज्ञानरूप ही हैं । गति

---

१. म °गल्गं । २. म °क्के प्रत्या° ।

कृतप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं गतिमार्गणेयोळायुप्राणक्कंतर्भावमक्कुमेकेंदोडे गतिमायुष्यक्कमन्योन्याजहद्वृत्तिलक्षणप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं ॥

मायालोहे रदिपुव्वाहारं कोहमाणगम्मि भयं ।
वेदे मेहुणसण्णा लोहम्मि परिग्गहे सण्णा ॥६॥

मायालोभे रतिपूर्वाहारः क्रोधमानके भयं, वेदे मैथुनसंज्ञा लोभे परिग्रहसंज्ञा ॥ ५

मायाकषायमुं लोभकषायमुमेंबी येरडरोळाहारसंज्ञे अंतर्भविसल्पट्टुदेकेंदोडाहारकांक्षेगे रतिकर्मोदयपूर्वकत्वमुंटप्पुदरिंदं । रतिकर्ममुमा येरडुं रागहेतुकषायांतःप्रविष्टमदु कारणदिंदं ।

क्रोधकषायमुं मानकषायमुमेंबी येरडुरोळुं भयसंज्ञेयंतर्भविसळ्पट्टुदेकेंदोडे भयहेतुगळोळु द्वेषहेतुत्वदिंदं द्वेषरूपंगळप्प क्रोधमानंगळोळु कार्यकारणप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदं ।

वेदमार्गणेयोळु मैथुनसंज्ञेयंतर्भविसल्पट्टुदेकेंदोडे कामोद्रेकवशीकृतमप्प मिथुनकृत्यं साभिलाषसंभोगरूपमदु वेदोदयजनितपुरुषाद्यभिलाषकार्यमेंदितु कार्यकारणभावप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं । लोभकषायदोळु परिग्रहसंज्ञेयंतर्भविसळ्पट्टुदेकेंदोडे लोभकषायमुंटागुत्तिरले मूर्च्छास्वभावमप्प परिग्रहाभिलाषक्के संभवमुंटप्पुदरिंदिल्लि कार्यकारणप्रत्यासत्तियेंदरिगे ॥

अन्तर्भूतानि इन्द्रियावरणक्षयोपशमोद्भूतलब्धिरूपेन्द्रियाणां ज्ञानेन सह तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसद्भावात् । गतिमार्गणायां आयुःप्राणोऽन्तर्भूतः गत्यायुषोरन्योन्याजहद्वृत्तिलक्षणप्रत्यासत्तिसद्भावात् ॥५॥

मायाकषाये लोभकषाये च आहारसंज्ञान्तर्भूता आहाराकांक्षाया रतिकर्मोदयपूर्वकत्वसद्भावात्, रतिकर्म मायालोभकषाययोश्च रागहेतुकषायान्तःप्रविष्टत्वात् । क्रोधकषाये मानकषाये च भयसंज्ञान्तर्भूता भयहेतुषु द्वेषहेतुत्वेन द्वेषरूपक्रोधमानयोः कार्यकारणप्रत्यासत्तिसम्भवात् । वेदमार्गणायां मैथुनसंज्ञान्तर्भूता कामोद्रेकवशीकृतमिथुनकृत्यं साभिलाषसंभोगरूपं तत् वेदोदयजनितपुरुषाद्यभिलाषकार्यमिति कार्यकारणभावप्रत्यासत्तिसद्भावात् । लोभकषाये परिग्रहसंज्ञान्तर्भूता लोभकषाये सत्येव मूर्छास्वभावस्य परिग्रहाभिलाषस्य संभवात् अत्र कार्यकारणप्रत्यासत्तिरेवेति जानीहि ॥६॥

मार्गणामें आयुप्राण अन्तर्भूत है, क्योंकि गति और आयुमें परस्पर अजहद्वृत्तिरूप प्रत्यासत्ति है; क्योंकि गतिके बिना आयु नहीं और आयुके बिना गति नहीं ॥५॥

मायाकषाय और लोभकषायमें आहार संज्ञा अन्तर्भूत है। आहारकी इच्छा रतिनाम कर्मके उदयपूर्वक होती है और रतिकर्म तथा मायाकषाय और लोभकषाय रागहेतुक कषायोंमें गर्भित हैं। क्रोधकषाय और मानकषायमें भयसंज्ञा अन्तर्भूत है, क्योंकि भयके कारणोंमें द्वेष कारण है। अतः भयमें और द्वेषरूप क्रोध, मानमें कार्यकारण प्रत्यासत्ति है। वेदमार्गणामें मैथुन संज्ञा अन्तर्भूत है; क्योंकि कामकी तीव्रताके वशमें होकर स्त्री-पुरुष युगल अभिलाषापूर्वक संभोगरूप जो कृत्य करते हैं, वह वेदकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पुरुष आदिकी अभिलाषाका कार्य है। इसलिए मैथुन संज्ञा और वेदकर्ममें कार्यकारणभाव प्रत्यासत्ति है। लोभकषायमें परिग्रह संज्ञा अन्तर्भूत है, क्योंकि लोभकषायके होनेपर ही ममत्वभावरूप परिग्रहकी अभिलाषा होती है। यहाँ कार्यकारण प्रत्यासत्ति ही जानना ॥६॥

१. म गतिगमायुष्यक्कमजहद्° । २. म °ष्टमक्कुमद्°।

सागारो उवजोगो णाणे मग्गम्मि दंसणे मग्गे।
अणगारो उवजोगो लीणोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो ॥७॥

साकार उपयोगो ज्ञानमार्गणायां दर्शनमार्गणायामनाकार उपयोगो लीन इति जिनैर्निर्दिष्टः॥

ज्ञानमार्गणेयोळु साकारोपयोगमंतर्भविसल्पट्टुदेकेंदोडे ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशम-
५ समुद्भूतज्ञातृव्यापारसन्निधियोळे विशेषग्रहणलक्षणमप्प ज्ञानक्के समुत्पत्तियत्तणिदं कार्यकारण-कृतप्रत्यासत्तियक्कुं। दर्शनमार्गणेयोळदनाकारोपयोगमंतर्भविसल्पट्टुदेकेंदोडे इल्लियुं दर्शनावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितार्थसामान्यग्रहणव्यापारमुंटागुत्तिरले अर्थसामान्यग्रहण-लक्षणमप्प दर्शनक्के समुत्पत्तियत्तणिदं तदंतर्भावहेतुवं कार्यकारणमुमेंबुदु सुघटमेयक्कुं॥

इंतु। जीवसमासादिगळ्गं मार्गणास्थानदोळंतर्भावसमर्थनदिंदं गुणस्थानमार्गणास्थान-
१० प्ररूपणाद्वयम् प्रतिपादिसि मत्तं भेदविवक्षेयिंदमिप्पत्तु प्ररूपणेगळुं पेळ्गे पेळल्पट्टुवेयक्कुं। आचार्यनेंदपं भणिता एंदीपदप्रयोगदिंदं विंशतिप्ररूपणेगळ्गे परमागमप्रसिद्धत्वप्रकाशनदिंदं तद्विशेषकथनदोळु स्वातन्त्र्यं परिहृतमादुदु। इंतु न्यायं मुंतेयुं योजिसल्पडुगुं॥ तदनंतरं प्रतिपादितविंशतिप्ररूपणेगळिगे प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपणप्रतिपादनार्थं मोदलोळु गुणशब्दक्के निरुक्तिपूर्वकमागत्थं पेळ्वंदुंदुत्तरसूत्रं—

---

१५ ज्ञानमार्गणायां साकारोपयोगोऽन्तर्भूतः ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमसमुद्भूतज्ञातृव्यापारसंनिधाने एव विशेषग्रहणलक्षणस्य ज्ञानस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिसंभवात्। दर्शनमार्गणायां च अनाकारोपयोगोऽन्तर्भूतः दर्शनावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविजृम्भितार्थसामान्यग्रहणव्यापारे सत्येव अर्थसामान्यग्रहण-लक्षणस्य दर्शनस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणभावघटनात्। अयमन्तर्भावः इति प्रागुक्तरीत्या जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टः—कथितः न पुनः स्वरुचिविरचित इत्यर्थः। एवं जीवसमासादीनां मार्गणास्थानेऽन्तर्भावसमर्थनेन
२० गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणाद्वयं प्रतिपाद्य पुनर्भेदविवक्षया विंशतिः प्ररूपणाः प्रागुक्ता एव उच्यन्ते। भणिता इति पदेन विंशतिप्ररूपणानां परमागमप्रसिद्धानां प्रकाशनेन तद्विशेषकथनेन स्वातन्त्र्यपरिहृतं जातं इत्ययं न्यायस्तथैव योज्यते। अथ तासां विंशतिप्ररूपणानां मध्ये प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपणाप्रतिपादनार्थं प्रथमं गुणस्थानशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति—

ज्ञानमार्गणामें साकार उपयोग अन्तर्भूत है; क्योंकि ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके
२५ क्षयोपशमसे उत्पन्न ज्ञाताके व्यापारके होनेपर ही विशेष ग्रहणरूप ज्ञानकी उत्पत्ति होती है; अतः दोनोंमें कार्यकारण प्रत्यासत्ति है। और दर्शनमार्गणामें अनाकार उपयोग अन्तर्भूत है, क्योंकि दर्शनावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न अर्थ सामान्यके ग्रहणरूप व्यापारके होनेपर ही अर्थ सामान्यके ग्रहणरूप दर्शनकी उत्पत्ति होनेसे दोनोंमें कार्यकारण भाव घटित होता है। इससे यह अन्तर्भाव पूर्वोक्त रीतिसे जिनदेव अर्हन्त आदिने कहा
३० है, स्वरुचिविरचित नहीं है। इस प्रकार जीवसमास आदिका मार्गणास्थानमें अन्तर्भावका समर्थन करनेसे गुणस्थान और मार्गणास्थान इन दो प्ररूपणाओंको कहकर पुनः भेद विवक्षासे पहले कही बीस प्ररूपणाओंको ही कहते हैं। गाथा नं. २ में जो 'भणिता' कहा है, इस पदसे परमागममें प्रसिद्ध बीस प्ररूपणाओंके प्रकाशनसे उनके विशेष कथनमें स्वातन्त्र्यका परिहार

---

१. म °कारोप° । २. म °णभावमें° । ३. म °मादुदेंदु । यिंती न्या° । ४. म °गलोलगे ।

जेहि दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहि भावेहि ।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥८॥

यैस्तु लक्ष्यन्ते उदयादिषु संभवैर्भावैर्जीवाः, ते गुणसंज्ञा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥

मोहनीयादिकर्मगळ उदयोपशमक्षयोपशमक्षयपरिणामरूपंगळोळवस्थाविशेषंगळागुत्तं विरलु संजायमानंगळप्पावु केलवु भावंगळिंदं मिथ्यात्वादिपरिणामंगळिंदं गुण्यन्ते लक्ष्यन्ते दृश्यंते लांच्छ्यंते वा जीवास्ते जीवपरिणामा गुणस्थानसंज्ञाक्रान्तः एंदितु सर्व्वदर्शिगळप्प सर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुदु । ई गुणशब्दनिरुक्तिप्रधानमप्प सूत्रदिंदं मिथ्यात्वादियादुवुमयोगकेवलित्वपर्यंतमप्प जीवपरिणामविशेषंगळो गुणस्थानंगळेंदितु प्रतिपादितमादरियल्पडुगुं ॥

स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कंधानां फलदानपरिणतिरुदयः । उदये भवः औदयिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदयाभाव उपशमः । उपशमे भव औपशमिकः । प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः । क्षये भवः क्षायिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदये विद्यमाने यो जीवगुणांशो दृश्यते स क्षयोपशमः । क्षयोपशमे भवः क्षायोपशमिकः । उदयादिनिरपेक्षः परिणामः परिणामे भवः पारिणामिकः ।

मोहनीयादिकर्मणां उदयोपशमक्षयोपशमक्षयपरिणामरूपेषु अवस्थाविशेषेषु सत्सु संजायमानैर्यैर्भावैः–जीवस्य मिथ्यात्वादिपरिणामैः, गुण्यन्ते–लक्ष्यन्ते दृश्यन्ते लांछ्यन्ते वा जीवास्ते जीवपरिणामाः गुणस्थानसंज्ञा भवन्तीति सर्वदर्शिभिः–सर्वज्ञैः, निर्दिष्टाः–कथिताः । अनेन गुणशब्दनिरुक्तिप्रधानसूत्रेण मिथ्यात्वादयोऽयोगिकेवलित्वपर्यन्ता ये जीवपरिणामविशेषाः त एव गुणस्थानानीति प्रतिपादितं भवति । स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कन्धानां फलदानपरिणतिः–उदयः, तस्मिन् भव औदयिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदयाभावः–उपशमः तस्मिन् भव औपशमिकः । प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः तस्मिन् भवः क्षायिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदये विद्यमाने यो जीवगुणांशो दृश्यते स क्षयोपशमः तस्मिन् भवः क्षायोपशमिकः ।

किया है अर्थात् बीस प्ररूपणाओंके कथनमें ग्रन्थकारकी स्वेच्छाचारिता नहीं है । इस प्रकार यह न्याय उसी रूपमें योजित किया जाता है ॥७॥

उन बीस प्ररूपणाओंमें-से पहले कही गुणस्थान प्ररूपणाका कथन करनेके लिए पहले गुणस्थान शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहते हैं—मोहनीय आदि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम परिणामरूप अवस्था विशेषोंके होते हुए उत्पन्न होनेवाले जिन भावोंसे अर्थात् जीवके मिथ्यात्व आदि परिणामोंसे जीव 'गुण्यन्ते' अर्थात् देखे जाते हैं, पहचाने जाते हैं, जीवके उन परिणामोंकी गुणस्थान संज्ञा होती है, ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है । इस 'गुण' शब्दकी निरुक्तिकी प्रधानताको लिये हुए सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त जो जीवके परिणाम विशेष हैं, वे ही गुणस्थान हैं, यह प्रतिपादित होता है । उन पाँच भावोंकी निरुक्ति कहते हैं—अपनी स्थितिका क्षय होनेसे उदयागत निषेकमें गलनेवाले कार्मणस्कन्धोंका फल देनेरूप परिणमन उदय है । उसके होनेपर होनेवाला परिणाम औदयिक है । प्रतिपक्षी कर्मोंके उदयका अभाव उपशम है । उपशमके होनेपर होनेवाला भाव औपशमिक है । प्रतिपक्षी कर्मका पुनः उत्पत्तिका अभावरूप जो नाश है, उसे क्षय कहते हैं । उसके होनेपर होनेवाला भाव क्षायिक है । प्रतिपक्षी कर्मका उदय रहते हुए जो

---

१. म °गळ । २. म °प्यावुवु केलवु भावंगळिदं जीवक्के मि. । ३. म °ज्ञावन्तं गलेंदिगु ।

एंदितौदयिकादिपंचभावंगळ्गे सामान्यार्थप्रतिपादनमं माडि मुंदे विस्तरमागि महाधिकार दोळ्पेळ्दपरु ॥

तदनंतरमा गुणस्थानंगळं गाथाद्वयदिंदमुद्दे शिसिपदपरु—

मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदा पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्टि सुहमो य ॥९॥
उवसंत खीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चोद्दस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥१०॥

नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते एंबी न्यायदिं धोये यरिल्पडुगुं । मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रोऽविरतसम्यग्दृष्टिश्च देशविरतश्च, विरताः प्रमत्त इतरोऽपूर्वोऽनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च । उपशान्त क्षीणमोहौ सयोगकेवलिजिनोऽयोगी च चतुर्दशजीवसमासाः क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्याः ॥

उदयादिनिरपेक्षः परिणामः तस्मिन् भवः पारिणामिकः । एवमौदयिकादीनां पञ्च भावानां सामान्यार्थं प्रतिपाद्य विस्तरतः अग्रे तन्महाधिकारे प्रतिपादयिष्यति ॥८॥ अथ तानि गुणस्थानानि गाथाद्वयेन उद्दिशति—

मिथ्या—अतत्त्वविषया दृष्टिः—श्रद्धा यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः । नाम्नि उत्तरपदश्चेति दृष्टिपदस्य लोपात् मिच्छो इत्युक्तं । अयं भेदः अग्रेऽपि ज्ञातव्यः । सह आसादनेन विराधनेन वर्तत इति सासादना । सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः । अथवा आसादनेन सम्यक्त्वविराधनेन सह वर्तमानः सासादनः । सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिः । इदं भूतपूर्वन्यायेन सम्यग्दृष्टित्वं ज्ञातव्यं । सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रो मिश्रः । सम्यक्—समीचीना दृष्टिः—तत्त्वार्थश्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । स चासौ अविरतश्च अविरतसम्यग्दृष्टिः । देशतः—एकदेशतः, विरतो देशविरतः संयतासंयत इत्यर्थः । अत्र विरतपदं उपरितनसर्वगुणस्थानवर्तिनां संयमित्वमेव ज्ञापयति । प्रमाद्यतीति प्रमत्तः । इतरः—अप्रमत्तः । अपूर्वाः करणाः—

जीवके गुणका अंश देखा जाता है, वह क्षयोपशम है। उसके होनेपर होनेवाला भाव क्षायोपशमिक है। जिसमें उदय आदिकी अपेक्षा नहीं है, उसे परिणाम कहते हैं। उसके होते हुए होनेवाला भाव पारिणामिक है। अर्थात् उदयादि निरपेक्ष परिणाम ही पारिणामिक भाव है। इस प्रकार औदयिक आदि पाँच भावोंका सामान्य अर्थ कहा। विस्तारसे आगे उनके महाधिकारमें कहेंगे ॥८॥

आगे उन गुणस्थानोंका निर्देश दो गाथाओंसे करते हैं—मिथ्या अर्थात् अतत्त्वको विषय करनेवाली, दृष्टि अर्थात् श्रद्धा जिसके है, वह मिथ्यादृष्टि है। 'नाम्नि उत्तरपदश्च' इस सूत्रके अनुसार दृष्टिपदका लोप होनेसे 'मिच्छो' कहा है। यह भेद आगे भी जानना। जो आसादना अर्थात् विराधनाके साथ रहे, वह सासादना है। जिसकी सम्यग्दृष्टि सासादना है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है। अथवा आसादन अर्थात् सम्यक्त्वकी विराधनाके साथ जो वर्तमान है, वह सासादन है। सासादन सम्यग्दृष्टिको सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। भूतपूर्व न्याससे अर्थात् पहले वह सम्यग्दृष्टि था, इस अपेक्षासे यहाँ सम्यग्दृष्टिपना जानना। सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके मेलका नाम मिश्र है। सम्यक् अर्थात् समीचीन, दृष्टि अर्थात् तत्त्वार्थ श्रद्धान जिसका है, वह सम्यग्दृष्टि है। तथा जो अविरत होनेके साथ

---

१. म छाये ।

मिथ्यातत्त्वविषया दृष्टिः श्रद्धा यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः। नाम्न्युत्तरपदस्य चशब्लुग्वा एंदु दृष्टिपदक्के लोपमागि मिच्छो एंदु पेळ्दत्तु। ई परियलु मुंदेयुमरियल्पडुगुं। सह आसादनेन विराधनेन वर्तत इति सासादना। सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः। अथवा आ-सादनेन सम्यक्त्वविराधनेन सह वर्तमानः सासादनः। सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादन-सम्यग्दृष्टिः। एंदितु भूतपूर्वन्यायदिंदं सम्यग्दृष्टित्वमनरिवुदु। ५

सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रो मिश्रः। (सम्यक्) समीचीना दृष्टिस्तत्त्वार्थश्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः। स चासावविरतश्चाविरतसम्यग्दृष्टिः। देशत एकदेशतो विरतो देशविरतः संयता-संयत इत्यर्थः। इल्लिदं मेले पेळल्पडुव गुणस्थानवर्त्तिगळेल्लं विरताः। एंदो पददिंदं संयमिगळे-यप्परेंदरिगे। प्रमाद्यतीति प्रमत्तः। इतरोऽप्रमत्तः। अपूर्वाः करणाः परिणामा यस्यासावपूर्व-करणः। निवृत्तिः परिणामविशेषः। न विद्यते निवृत्तिरूपः करणो यस्यासावनिवृत्तिकरणः। सूक्ष्मः १० सांपरायः कषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपरायः। उपशान्तो मोहो यस्यासावुपशान्तमोहः। क्षीणो मोहो यस्यासौ क्षीणमोहः। घातिकर्माणि जयति स्मेति जिनः। केवलज्ञानमस्यातीति केवली। स चासौ जिनश्च केवलिजिनः। योगेन सह वर्तत इति सयोगः। स चासौ केवलिजिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगोऽस्यास्तीति योगी। न योगी अयोगी। [अयोगी-] केवलिजिन इत्यनुवर्तनादयोगो चासौ

परिणामा यस्यासौ अपूर्वकरणः। निवृत्तिः-परिणामविशेषः, न विद्यते निवृत्तिरूपः करणो यस्यासावनिवृत्ति- १५
करणः। सूक्ष्मः साम्परायः-कषायः, यस्यासौ सूक्ष्मसाम्परायः। उपशान्तो मोहो यस्यासौ उपशान्तमोहः। क्षीणो मोहो यस्यासौ क्षीणमोहः। घातिकर्माणि जयति स्मेति जिनः, केवलज्ञानमस्यास्तीति केवली, स चासौ जिनश्च केवलिजिनः। योगेन सह वर्तते इति सयोगः, स चासौ केवलिजिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगः अस्यास्तीति योगी, न योगी अयोगी, अयोगी केवलिजिनः इत्यनुवर्तनात् अयोगी चासौ केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः।

सम्यक्दृष्टि है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है। देश अर्थात् एकदेशसे जो विरत है, वह देश २०
विरत अर्थात् संयतासंयत है। यहाँ जो विरत पद है, वह ऊपरके सब गुणस्थानवर्तियोंके संयमी होनेको सूचित करता है। जो प्रमादयुक्त है, वह प्रमत्त है; जो प्रमादयुक्त नहीं है, वह अप्रमत्त है। अपूर्व करण अर्थात् परिणाम जिसके अपूर्व हैं, वह अपूर्वकरण है। निवृत्ति परिणाम विशेषको कहते हैं। जिसके करण निवृत्ति रूप नहीं हैं, वह अनिवृत्तिकरण है। सूक्ष्म साम्पराय अर्थात् कषाय जिसकी है, वह सूक्ष्मसाम्पराय है। जिसका मोह उपशान्त है, वह उपशान्त- २५
मोह है। जिसका मोह क्षीण है, वह क्षीणमोह है। जिसने घातिकर्मोंको जीत लिया है, वह जिन है और जिसके केवलज्ञान है, वह केवली है। जो केवली वही जिन होनेसे केवलीजिन है। जो योगसहित है, वह सयोग है। जो सयोग होनेके साथ केवलीजिन है, वह सयोग केवलीजिन है। जिसके योग है वह योगी है। जो योगी नहीं, वह अयोगी है। 'केवली जिन' पदकी अनुवृत्तिसे अयोगी वह हुआ केवलिजिन, इस तरह अयोगिकेवलिजिन है। ३०
ये मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलिजिनपर्यन्त चौदह जीवसमास अर्थात् गुणस्थान जानना चाहिए।

शंका—गुणस्थानकी संज्ञा जीवसमास कैसे हुई ?

समाधान—जीव इनमें 'समस्यन्ते' अर्थात् संक्षेप रूप किये जाते हैं * अथवा जीव इनमें 'सम्यक् आसते' अच्छी रीतिसे रहते हैं, इसलिए गुणस्थानोंको जीवसमास कहते हैं। ३५

---

१. क °रादनेन। २. म सम्यंची।

केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः।

[1]एंदितु मिथ्यादृष्टयादियागि अयोगिकेवलिजिनावसानमप्प चतुर्दशजीवसमासेगळु गुणस्थानंगळे दरियल्पडुवुवु। इल्लि जीवसमासे एंब संज्ञे गुणस्थानक्के तादुदे दोडे—जीवाः समस्यन्ते संक्षिप्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। एंदिल्लि प्रकरणसामर्थ्यदिदं गुणस्थानंगळे जीवसमासशब्ददिदं पेळल्पडुवुवु। ई सकर्मरप्प जीवंगळितु लोकदोळोळरंते विनष्टकृत्स्नकर्मरुगळप्प सिद्धपरमेष्ठिगळुमोळरिंदितु ज्ञातव्यरुमप्परु। क्रमेण सिद्धाः एंदितु क्रमशब्ददिदं मुन्नं घातिकर्मंगळं क्षपियिसि सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळोलु यथायोग्यं कालमंकरिसि अयोगिकेवलिचरमसमयदोळु शेषाघातिकर्मंगळं निरवशेषमागि क्षपियिसि सिद्धरप्परेंबी क्रमं ज्ञापिसल्पट्टुदु। ई ज्ञापकदिदं युगपत्सकलकर्मक्षयमुं सर्वदा कर्माभावदत्तणिदं सदा मुक्तत्वमुं परमात्मंगे निराकृतमादुदु॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु औदयिकादि भावंगळ्गे संभवमं तोरिदपरु।

मिच्छे खलु ओदइओ बिदिए पुण पारिणामिओ भाओ।
मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव॥११॥

एते मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगिकेवलिजिनावसानाः चतुर्दशजीवसमासाः गुणस्थानानीति ज्ञातव्याः। कथमियं जीवसमास इति संज्ञा गुणस्थानस्य जाता? इति चेत्, जीवाः समस्यन्ते—संक्षिप्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। इत्यत्र प्रकरणसामर्थ्येन गुणस्थानान्येव जीवसमासशब्देन उच्यन्ते। एते सकर्माणो जीवा यथा लोके सन्ति तथा विनष्टकृत्स्नकर्माणः सिद्धपरमेष्ठिनोऽपि सन्तीति ज्ञातव्याः भवन्ति। क्रमेण सिद्धाश्चेति क्रमशब्देन पूर्वं घातिकर्माणि क्षपयित्वा सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानयोर्यथायोग्यकालं स्थित्वा अयोगिकेवलिचरमसमये शेषाघातिकर्माणि निरवशेषाणि क्षपयित्वा सिद्धा भवन्तीत्ययं क्रमो ज्ञाप्यते। अनेन ज्ञापकेन युगपत्सकलकर्मक्षयत्वं सर्वदा कर्माभावात् सदामुक्तत्वं च परमात्मनो निराकृतं जातं ॥९-१०॥

अथ गुणस्थानेषु औदयिकादिभावानां संभवं दर्शयति—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने दर्शनमोहोदयजनितौदयिकभावः अतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणो भवति खलु स्फुटं। द्वितीये—सासादनगुणस्थाने पुनः पारिणामिकभावो भवति, अत्र दर्शनमोहोदयादिनिरपेक्षासद्भावात्। मिश्रगुण-

---

यहाँ प्रकरणवश गुणस्थान ही जीवसमास शब्दसे कहे जाते हैं। जैसे ये सकर्मा जीव लोकमें हैं, वैसे ही जिनके सब कर्म नष्ट हो गये हैं, वे सिद्धपरमेष्ठी भी हैं, ऐसा जानना। गाथामें कहे 'क्रमेण सिद्धाश्च'के क्रम शब्दसे यह बतलाया है कि पहले घातिकर्मोंको क्षय करके सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानमें यथायोग्य काल तक रहकर अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमें शेष अघाति कर्मोंको पूरी तरहसे नष्ट करके सिद्ध होते हैं। इससे एक साथ सब कर्मोंका क्षय होना और सर्वदा कर्मोंका अभाव होनेसे परमात्माके सदा मुक्त होनेका निराकरण किया है ॥९-१०॥

आगे गुणस्थानोंमें औदयिक आदि भावोंको दर्शाते हैं—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहके उदयसे उत्पन्न औदयिक भाव होता है जिसका लक्षण अतत्त्वश्रद्धान है यह स्पष्ट है। दूसरे सासादन गुणस्थानमें पारिणामिक भाव होता है। यहाँ दर्शनमोहके उदय आदिकी अपेक्षा न होनेसे पारिणामिक भाव कहा है। मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव

---

१. म एंदिता। २. क °नंगली।

मिथ्यादृष्टौ खल्वौदयिको भावः। द्वितीये पुनः पारिणामिको भावः। मिश्रे क्षायोपशमिकोऽविरतसम्यग्दृष्टौ त्रय एव॥ मिथ्यादृष्टियोळ्दर्शनमोहोदयजनितौदयिकभावमतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणमक्कुं स्फुटमागि। द्वितीयगुणस्थानदोळु मत्ते पारिणामिकभावमक्कुमेल्लि दर्शनमोहोदयादि निरपेक्षमुंटप्पुदर्त्तणिदं। मिश्रगुणस्थानदोळु क्षायोपशमिकभावमक्कुमदे तेंदोडे— मिथ्यात्वप्रकृतिय सर्व्वघातिस्पर्धकंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमुंटागुत्तिरलु मनुदयप्राप्तनिषेकंगळुपशमदोळं समुद्भूतमप्पुदी कारणमागि॥

अविरतसम्यग्दृष्टियोळौपशमिकमुं क्षायोपशमिकमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमेंदितु भावत्रितयमक्कु मल्लिदर्शनमोहदुपशमदर्त्तणिदं औपशमिकसम्यक्त्वमुं, दर्शनमोहक्षयोपशमदर्त्तणिदं क्षायोपशमिकमप्प वेदकसम्यक्त्वमुं, दर्शनमोहक्षयदर्त्तणिदं क्षायिकसम्यक्त्वमुमक्कु।

ई पेळल्पट्ट भावंगले संभवनियमनिमित्तमं प्रतिपादिसल्वेडि मुंदण सूत्रावतारं।

एदे भावा णियमा दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो अविरद अंतेसु ठाणेसु॥१२॥

एते भावा नियमाद्दर्शनमोहं प्रतीत्य भणिता खलु। चारित्रं नास्ति यतोऽविरतान्तेषु स्थानेषु॥ इंतु पेरिगे पेळल्पट्टौदयिकादिभावंगळु नियमदिदं दर्शनमोहमनुद्देशिसि स्फुटमागि पेळल्पट्टुवु। आवुदो दु कारणदिंदमविरतांतमप्प गुणस्थानंगळोळु चारित्रमिल्लदु कारणमागि चारित्रमोहमनुद्देशिसि पेळल्पट्टुदिल्ल। अदरिदं सासादनगुणस्थानदोळनंतानुबंधिकषायमुंटा-

---

स्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति। कुतः? मिथ्यात्वप्रकृतेः सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणां उपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात्। अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने औपशमिकसम्यक्त्व–क्षायोपशमिकरूपवेदकसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वनामानस्त्रयो भावा भवन्ति। तत्र दर्शनमोहोपशमस्य क्षयोपशमस्य क्षयस्य च संभवात्॥११॥ एषामुक्तभावानां संभवनियमस्य निमित्तमाह—

एते प्रागुक्तौदयिकादयो भावाः नियमाद् दर्शनमोहं प्रतीत्य–आश्रित्यैव, भणिताः–कथिताः भवन्ति खलु–स्फुटं, यतः कारणादविरतान्तेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चारित्रं नास्तीति कारणात् ते चारित्रमोहं प्रतीत्य न भणिताः। तेन सासादनगुणस्थाने अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये विद्यमानेऽपि तद्विवक्षया पारिणामिकभावः आर्षे प्रतिपादित इति जानीहि। अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयविवक्षया तु औदयिकभावोऽपि भवेत्॥१२॥

होता है, क्योंकि मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदयके अभावरूप क्षय होनेपर तथा सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय रहते हुए और अनुदय प्राप्त निषेकोंका उपशम होनेपर मिश्रगुणस्थान होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक रूपवेदक, तथा क्षायिक सम्यक्त्व नामके तीन भाव होते हैं; क्योंकि इस गुणस्थानमें दर्शनमोहका उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय होता है॥११॥

आगे इन भावोंके होनेका कारण कहते हैं—ये जो ऊपर औदयिक आदि भाव कहे हैं, वे नियमसे दर्शनमोहकी अपेक्षासे ही कहे हैं। क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टिपर्यन्त चार गुणस्थानोंमें चारित्र नहीं होता। इस कारणसे वे भाव चारित्रमोहका आश्रय लेकर नहीं कहे हैं। इससे सासादन गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी-क्रोध-माया लोभमें-से किसी एक कषायका

---

१. क. °भामतत°। २. म °क्कुमिल्लि। ३. म °दर्त्तणि°। ४. म °भावमदेते°। ५. म °यमुगुंटा°। ६. म °मप्पुदे। ७. म °पशमिक°। ८. क °मनिमिमं। ९. म °कषायोदयमु°।

गुप्तिर्दोडंदविवक्षेयिदं पारिणामिकभावमार्षदोळ्प्रतिपादितमेंदरिगे । अनंतानुबंध्यन्यतरोदयविवक्षेयिंदौदयिकभावमप्पुदु ॥

देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळु भावनियमप्रदर्शनार्थमागि गाथासूत्रद्वयमं पेळ्दपरु—

देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमिय भावो दु ।
सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं ॥१३॥

देशविरते प्रमत्ते इतरस्मिंश्च क्षयोपशमिको भावस्तु स खलु चारित्रमोहं प्रतीत्य भणितं तथोपरि ॥

देशविरतनोळं प्रमत्तसंयतनोळं इतरनप्प अप्रमत्तसंयतनोळं क्षायोपशमिकसंयममक्कुं ।

देशसंयतापेक्षेयिंदं प्रत्याख्यानकषायंगळुदयिसल्पट्ट देशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागोदयदोडने उदयमनैय्ददे क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्धकंगळनंतबहुभागंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्पुपशममुंटागुत्तिरलु समुद्भूतमप्पुदरिंदं चारित्रमोहमं कुरुत्तु देशसंयममदु क्षायोपशमिकभावमेंदु पेळल्पट्टुदु । अंते प्रमत्ताप्रमत्तगं संज्वलनकषायंगळ उदितदेशघातिस्पर्धकानंतैकभागानुभागदोडने उदयमनैय्ददे

देशसंयतादिषु गुणस्थानेषु भावनियमं गाथाद्वयेन दर्शयति—

देशविरते प्रमत्तसंयते तु पुनः इतरस्मिन् अप्रमत्तसंयते च क्षायोपशमिकसंयमो भवति । देशसंयतापेक्षया प्रत्याख्यानकषायाणां उदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागोदयेन सहानुदयागतक्षीयमाणविवक्षितनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानामुदयाभावलक्षणक्षये तेषामुपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुद्भूतत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्य देशसंयमः क्षायोपशमिकभाव इत्युक्तं । तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोरपि संज्वलनकषायाणामुदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागेन सह अनुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेक-

---

उदय होते हुए भी उसकी विवक्षा न होनेसे आगममें पारिणामिक भाव कहा है, ऐसा जानो । अनन्तानुबन्धीमें-से किसी एक कषायके उदयकी विवक्षासे तो औदयिकभाव भी सम्भव है ॥१२॥

आगे देश संयत आदि गुणस्थानोंमें भावका नियम दो गाथाओंसे कहते हैं—देशविरतमें, प्रमत्त संयतमें और इतर अर्थात् अप्रमत्त संयत्तमें क्षायोपशमिक संयमरूप भाव होता है । देशसंयतकी अपेक्षा प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयको प्राप्त हुए देशघाति स्पर्द्धकोंके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धकोंके अनुभागका उदय रहते हुए, उदयमें आये बिना ही क्षयको प्राप्त हुए जो विवक्षित उदयरूप निषेक सर्वघाति स्पर्द्धक उनके अनन्त बहुभागोंका उदयाभावरूप क्षय होनेपर तथा उनके ऊपरवाले अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम होनेपर उत्पन्न होनेसे चारित्र मोहकी अपेक्षा देशसंयम क्षायोपशमिक भाव है, ऐसा कहा है । तथा प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें भी संज्वलन कषायोंके उदयको प्राप्त देशघाति स्पर्द्धकोंके अनन्तवें भागके उदयके साथ उदयमें आये बिना क्षयको प्राप्त होनेवाले विवक्षित उदय रूप निषेक सर्वघाति स्पर्द्धकोंके अनन्त बहुभागोंका उदयाभावरूप क्षय होनेपर तथा उनसे ऊपरके अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम होनेपर उत्पन्न होनेसे चारित्र

---

१. म °ोंडंतदवि° । २. म इतरे च । ३. म °गलउदयिस° । ४. म क्षयमाण° । ५. क °लक्षय° ।
६. म °तियप्पु° ।

क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितोदयनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्धकानंतबहुभागंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्प उपशममुं टागुत्तिरलु समुत्पन्नमप्पुदरिदं चारित्रमोहमं कुरुतिल्लियुं सकलसंयममुं क्षायोपशमिकभावमें दु पेळल्पडुवुदें बुदु श्रीअभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळभिप्रायं ।

अहंगेमेयुं अपूर्वकरणादिगुणस्थानंगळोळं चारित्रमोहनीयमने कुरुत्तु तत्तद्गुणस्थानंगळोळु भावंगळरियल्पडुवुवु—

तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य ॥१४॥

तत उर्पर्युपशमभाव उपशामकेषु क्षपकेषु । क्षायिको भावो नियमादयोगिचरम इति सिद्धे च ॥

इल्लिदं मेले अपूर्वकरणादिगुणस्थानंगळ्नाल्करुपशमकरोळुपशमिकभावमक्कुं । चारित्रमोहनीयोपशमदत्तणिंदं तत्संयमक्के प्रादुर्भावमुंटप्पुदरिदं । अंते अपूर्वकरणादि नाल्कुं गुणस्थानंगळ क्षपकरोळं सयोगायोगिकेवलिगळ्गं क्षायिकभावमक्कुं नियमदिंदं तच्चारित्रक्के चारित्रमोहनीयक्षयदत्तणिंदं समुद्भूतत्वमुंटप्पुदी कारणमागि । अंते सिद्धपरमेष्ठिगळोळं क्षायिकभावमक्कुमदुवुं सकलकर्मक्षयोद्भूतमप्पुदरिदं ॥

तदनंतरं प्रागुद्दिष्टंगळप्प चतुर्दशगुणस्थानंगळोळगे प्रथमोद्दिष्टमिथ्यादृष्टिगुणस्थान-

---

सर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानां उदयाभावलक्षणक्षये तेषां उपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्यापि सकलसंयमोऽपि क्षायोपशमिको भाव इति भणितं इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्यभिप्रायः । तथा उपर्यपि अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु चारित्रमोहनीयं प्रतीत्य तत्तद्गुणस्थानेषु भावा ज्ञातव्याः ॥१३॥

तत उपरि अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानोपशमकेषु औपशमिक भावो भवति तत्संयमस्य चारित्रमोहोपशमादेव संभवात् । तथा अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानक्षपकेषु सयोगायोगिकेवलिनोश्च क्षायिकभावो भवति नियमेन तच्चारित्रस्य चारित्रमोहक्षयोत्पन्नत्वात् । तथा सिद्धपरमेष्ठिष्वपि क्षायिकभावः स्यात् तस्य सकलकर्मक्षयोद्भूतत्वात् ॥१४॥ अथ प्रागुद्दिष्टचतुर्दशगुणस्थानेषु प्रथमोद्दिष्टस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्य स्वरूपं

मोहकी अपेक्षा सकल संयम भी क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कहा है। यह श्रीमान् अभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीका अभिप्राय है। तथा आगे भी अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें चारित्र मोहनीयकी अपेक्षासे भाव जानना ॥१३॥

अप्रमत्तगुणस्थानसे ऊपर उपशम श्रेणि सम्बन्धी अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें औपशमिक भाव होता है। क्योंकि उनमें होनेवाला संयम चारित्रमोहके उपशमसे ही होता है। तथा क्षपक श्रेणि सम्बन्धी अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें और सयोगकेवली अयोगिकेवलीमें क्षायिक भाव होता है; क्योंकि नियमसे उनमें होनेवाला चारित्र चारित्रमोहके क्षयसे उत्पन्न होता है। तथा सिद्ध परमेष्ठीमें भी क्षायिक भाव होता है, क्योंकि सिद्ध पद समस्त कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है ॥१४॥

---

१. म °बहुभागंगल अनन्तबहुभागंगलुद° । २. म °मेलेयुं । ३. क उपर्य्यपर्य्यप° । ४. म °रोलमोप° । ५. म मोहक्षय° । ६. म °प्पुदे ।

स्वरूपमं प्रदर्शिदपरु—

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च अट्ठाणं ।
एयंतं विवरीयं विणयं संसइदमण्णाणं ॥१५॥

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानाम् । एकान्तं विपरीतं विनयं संशयितमज्ञानम् ॥

दर्शनमोहनीयभेदमप्प मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिंदं जीवक्के तत्वार्थंगळ अश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वमक्कुं मिथ्यात्वमुमेकांत-विनय-विपरीत-संशयाज्ञानभेददिं पंचप्रकारमक्कुमल्लि जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव सर्वथाऽसदेव सर्वथैकमेव सर्वथानेकमेव एंदितिवु मोदलाद प्रतिपक्षनिरपेक्षैकांताभिप्रायमेकांतमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ।

अहिंसादिलक्षणसद्धर्मफलमप्प स्वर्गादिसुखक्के हिंसादिरूपयागादिफलत्वदिंदं जीवक्के प्रमाणसिद्धमप्प मोक्षक्के निराकरणत्वदिंदं प्रमाणबाधितमप्पस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनदिंदमितिवु मोदलादमेकांतालंबनदिंदं विपरीताभिनिवेशं विपरीतमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षेयिंदं गुरुपादपूजादिरूपमप्प विनयदिंदमे मुक्ति एंदितु श्रद्धानं वैनयिकमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ।

प्रत्यक्षादिप्रमाणगृहीतमप्पर्थक्के देशकालांतरंगळोळु व्यभिचारसंभवदर्त्तिंदं परस्पर-

---

प्ररूपयति—

दर्शनमोहनीयभेदमिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य अतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं स्यात् । तच्च मिथ्यात्वं—एकान्तं विपरीतं विनयं संशयितं अज्ञानं चेति पञ्चविधं । तत्र जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव सर्वथाऽसदेव सर्वथा एकमेव सर्वथा अनेकमेवेत्यादिप्रतिपक्षनिरपेक्षैकान्ताभिप्रायः एकान्तमिथ्यात्वं । अहिंसादिलक्षणसद्धर्मफलस्य स्वर्गादिसुखस्य हिंसादिरूपयागादिफलत्वेन, जीवस्य प्रमाणसिद्धस्य मोक्षस्य निराकरणत्वेन, प्रमाणबाधितस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनेन इत्याद्येकान्तावलम्बनेन विपरीताभिनिवेशो विपरीतमिथ्यात्वं । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षतया गुरुपादपूजादिरूपविनयेनैव मुक्तिरेतच्छ्रद्धानं वैनयिकमिथ्यात्वं । प्रत्यक्षादिप्रमाणगृहीतार्थस्य देशान्तरे

आगे पहले कहे चौदह गुणस्थानोंमें-से प्रथम निर्दिष्ट मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—दर्शनमोहनीयके भेद मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके मिथ्यात्व होता है, जिसका लक्षण अतत्त्वश्रद्धान है । वह मिथ्यात्व एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञानके भेदसे पाँच प्रकारका है। उनमें-से जीवादि वस्तु सर्वथा सत् ही हैं या सर्वथा असत् ही हैं, या सर्वथा एक ही हैं या सर्वथा अनेक ही हैं, इत्यादि प्रतिपक्षसे निरपेक्ष एकान्त अभिप्रायको एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं । अहिंसा आदि लक्षणवाले समीचीन धर्मका फल स्वर्ग आदिका सुख है, उसको हिंसा आदि रूप यज्ञका फल मानना, जीवके प्रमाण सिद्ध मोक्षका निराकरण करना, प्रमाणसे बाधित स्त्री मुक्तिका अस्तित्व बतलाना, इत्यादि एकान्तका अवलम्बन करते हुए जो विपरीत अभिनिवेश है, वह विपरीत मिथ्यात्व है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी अपेक्षा न करके गुरुके चरणोंकी पूजा आदि रूप विनयके द्वारा ही मुक्ति होती है, इस प्रकारका श्रद्धान वैनयिक मिथ्यात्व है । प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे गृहीत अर्थका

---

१. म °मक्कुमेकांत° । २. क °वस्तुसर्वथाऽसदेव सर्वथैकमेव । ३. म °नेकमेदित्यादि प्रति° । ४ म °दिदमित्यनेकांत°, क °मोदलादनेकांत° ।

विरोधिगाप्तवचनक्कें प्रामाण्यानुपपत्तियत्तणिदमिदमेव तत्त्वमें दितु निर्णयिसल्कशक्यमप्पुदरिंदं सर्वत्र संशयमे एंबी अभिप्रायं संशयमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ।

ज्ञानदर्शनावरणतीव्रोदयाक्रांतंगळप्पेकेंद्रियजीवंगळ्गेयुमनेकांतात्मकं वस्तुवें दितु वस्तुसामान्यदोळमुपयोगलक्षणो जीव एंदेंबवस्तुविशेषदोलमज्ञानजनितमप्प श्रद्धानमज्ञानमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ॥ ५

अनंतरमवरुदाहरणोपलक्षणप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

एयंत बुद्धदरिसी विवरीओ बम्ह तावसो विणओ ।
इंदो विय संसइयो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥१६॥

बुद्धदर्शी एकांतः ब्राह्मणो विपरीतः तापसो वैनयिकः । इंद्रोऽपि च संशयमिथ्यारुचिः मस्कर्य्येवाज्ञानी ॥ क्षणिकैकांतवादिगळप्प बुद्धदर्शीप्रभृतिगळेकांतमिथ्यादृष्टिगळु । याज्ञिकब्राह्मणादिगळु विपरीतमिथ्यादृष्टिगळु । तापसादिगळु वैनयिकमिथ्यारुचिगळु । इंद्रमतानुसारिप्रभृतिगळु संशयमिथ्यादृष्टिगळु । मस्कर्यादिगळु अज्ञानमिथ्याभिनिवेशरप्परु ।

अनंतरमतत्त्वश्रद्धानलक्षणमप्प मिथ्यात्वमं निरूपिसलिदं पेळ्दपरु ।—

कालान्तरे च व्यभिचारसंभवात् परस्परविरोधिन आप्तवचनस्याऽपि प्रामाण्यानुपपत्तेरिदमेव तत्त्वमिति निर्णयितुमशक्तेः सर्वत्र संशय एव इत्यभिप्रायः संशयमिथ्यात्वं । ज्ञानदर्शनावरणतीव्रोदयाक्रान्तानामेकेन्द्रियजीवानां अनेकान्तात्मकं वस्त्विति वस्तुसामान्ये, उपयोगलक्षणो जीव इति वस्तुविशेषेपि अज्ञानजनितं श्रद्धानं अज्ञानमिथ्यात्वं भवति ॥१५॥ अथैषां पञ्चानामुदाहरणान्युद्दिशति—

एतानि उपलक्षणत्वेन उक्तत्वात् एवं व्याख्येयानि—बुद्धदर्श्यादयः एकान्तमिथ्यादृष्टयः । याज्ञिकब्राह्मणादयः विपरीतमिथ्यादृष्टयः । तापसादयः विनयमिथ्यादृष्टयः । इन्द्रो नाम श्वेताम्बरगुरुः, तदादयः संशयमिथ्यादृष्टयः । मस्कर्यादयः अज्ञानमिथ्यादृष्टयो भवन्ति ॥१६॥ अथातत्त्वश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं निरूपयति—

देशान्तर और कालान्तरमें व्यभिचार सम्भव होनेसे परस्परमें विरोधी आप्तके वचन भी प्रमाण नहीं होते, इसलिए 'यही तत्त्व है' इस प्रकारका निर्णय करना शक्य न होनेसे सर्वत्र संशय ही है, इस प्रकारका अभिप्राय संशय मिथ्यात्व है। ज्ञानावरण और दर्शनावरणके तीव्र उदयसे आक्रान्त एकेन्द्रिय आदि जीवोंका 'वस्तु अनेकान्तात्मक है' इस प्रकार वस्तु सामान्यमें और 'जीवका लक्षण उपयोग है' इस प्रकार वस्तु विशेषमें भी जो अज्ञान मूलक श्रद्धान है, वह अज्ञान मिथ्यात्व है। इस प्रकार स्थूल अंशके आश्रयसे मिथ्यात्वके पाँच भेद कहे। सूक्ष्म अंशके आश्रयसे असंख्यात लोक मात्र भेद हो सकते हैं, किन्तु उनका व्यवहार सम्भव नहीं है ॥१५॥

आगे मिथ्यात्वके इन पाँच प्रकारोंके उदाहरण देते हैं—ये उदाहरण उपलक्षणरूपसे कहे हैं अर्थात् एकका नाम लेनेसे अन्यका भी ग्रहण होता है। इसलिए इस प्रकार अर्थ करना चाहिए—बुद्धदर्शी अर्थात् बुद्धके अनुयायी आदि मत एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। यज्ञके कर्ता ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। तापसी आदि विनय मिथ्यादृष्टि हैं। इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु आदि संशय मिथ्यादृष्टि हैं। मस्करी आदि अज्ञान मिथ्यादृष्टि हैं। वर्तमान कालकी अपेक्षा इस भरत क्षेत्रमें होनेवाले बुद्धदर्शी आदिको यहाँ उदाहरणके रूपमें उपस्थित किया है ॥१६॥

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥१७॥

मिथ्यात्वं वेदयमानो जीवो विपरीतदर्शनो भवति । न च धर्मं रोचते मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥

मिथ्यात्वकर्मोदयानुभागमननुभविसुव जीवं विपरीतदर्शननक्कु मंते बुदेनें दोडे—विपरीतमप्प तत्त्वमं नंबुतं मिथ्यादृष्टियक्कुमें बुदर्थं । केवलमतत्त्ववने नंबुवातनातनल्लं मत्तमनेकांतात्मकमप्प धर्ममं वस्तुस्वभावमं रत्नत्रयात्मकमप्प मोक्षकारणभूतमुमं न रोचते नंबुवनल्लं येंतिगळु ज्वरितनप्पवंगे मधुरमप्प क्षीरादिरसं न रोचते सोगसदंते ॥

तदनंतरं वस्तुस्वभावश्रद्धानमनेयभिव्यंजसल्किदं पेळ्दपरु—

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१८॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति । श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वानुपदिष्टम् ॥

मिथ्यादृष्टिजीवनर्हदागळिदमुपदिष्टमं प्रवचनमनाप्तागमपदार्थंगळं न श्रद्धधाति नंबुवनल्लं ।

मिथ्यात्वं उदयागतं वेदयन्–अनुभवन् जीवः विपरीतदर्शनः अतत्त्वश्रद्धायुक्तो भवति न केवलं अतत्त्वमेव श्रद्धत्ते अनेकान्तात्मकं धर्मं वस्तुस्वभावं रत्नत्रयात्मकमोक्षकारणभूतधर्मं न रोचते (नाभ्युपगच्छति) । अत्र दृष्टान्तमाह–यथा ज्वरितः–पित्तज्वराक्रान्तो, मधुरं–क्षीरादिरसं, न रोचते तथा मिथ्यादृष्टिर्धर्मं न रोचते इत्यर्थः ॥१७॥ इदमेव वस्तुस्वभावाश्रद्धानं स्पष्टयति–

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं–अर्हदादिभिर्व्याख्यातं, प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं न श्रद्दधाति–नाभ्युपगच्छति । प्रकृष्टं वचनं यस्यासौ प्रवचनः–आप्तः, प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनं–परमागमः, प्रकृष्टमुच्यते–प्रमाणेन अभिधीयते इति प्रवचनं पदार्थः, इति निरुक्त्या प्रवचनशब्देन तत्त्रयस्याभिधानात् । पुनः स मिथ्यादृष्टिः असद्भावं–मिथ्यारूपं प्रवचनं आप्तागमपदार्थं, उपदिष्टं–आप्ताभासैः प्रकथितं अथवा अनुपदिष्टं–अकथितमपि श्रद्दधाति । ननु–,घडपडत्थंभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी न जहावगमं । सद्दहतोवि अण्णाणी उच्चदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो ॥' इति सिद्धान्तवाक्योद्दिष्टमिथ्यादृष्टिलक्षणं ज्ञात्वा स मिथ्याभावः परिहर्त्तव्यः । तद्भेदोऽप्यनेनैव

आगे अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्वका कथन करते हैं—उदयमें आये मिथ्यात्वका वेदन अर्थात् अनुभवन करनेवाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धासे युक्त होता है । वह न केवल अतत्त्वकी ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभावको अथवा मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्मको भी पसन्द नहीं करता । इसमें दृष्टान्त देते हैं—जैसे पित्त ज्वरसे ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रसको पसन्द नहीं करता । उसी तरह मिथ्यादृष्टिको धर्म नहीं रुचता ॥१७॥

इसी वस्तुस्वभावके अश्रद्धानको स्पष्ट करते हैं—मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हन्त आदिके द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है । प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्टका वचन प्रवचन अर्थात् परमागम, प्रकृष्टरूपसे जो कहा जाता है अर्थात् प्रमाणके द्वारा कहा जाता है,वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ । इन निरुक्तियोंसे प्रवचन शब्दसे आप्त, आगम और पदार्थ

---

१. म °तमप्प° । २. म °ष्टियप्पजीव° ।

असद्भावमप्प प्रवचनाभासमनुपदिष्टमुमं मेणु श्रद्दधाति नंबुगुमिल्लि प्रवचनशब्दक्काप्तागम-पदार्थंगळोळु वाच्यंगळादुवं दोडे प्रकृष्टं वचनं यस्यासौ प्रवचनः आप्तः, प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनं परमागमः, प्रकृष्टं प्रमाणेनोच्यते अभिधीयत इति प्रवचनं पदार्थः एंदितु विशेषमरियल्पडुगुं ॥

ननु घडपडत्थंभादिसु मिच्छाइट्ठीणं जहावगमसद्दहणमुवलब्भदे चेण्ण। तत्थ वि तस्स अणज्झवसायदंसणादो। ण चेदमसिद्धं। इदमेवं चेवेत्ति णिच्छयाभावादो, अहवा जहाविसा मूढो वण्णगंधरसपासेहि जहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदि। जहावगमेदि सा सद्दहणा-भावादो। एवं थंभादि पयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदि जिणवयणे सद्दहणाभावादो।

एंदितु सिद्धांतवाक्योद्दिष्ट मिथ्यादृष्टिलक्षणमुमं तिळिदु तन्मिथ्याभावमं भव्यर्प्परिहरिसुगे।

मत्तमा मिथ्यादर्शनपरिणामभेदमनोवाक्यदिंदमुमरियल्पडुगुं। कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति। तत्र कारणविपर्यासस्तावत् रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति कल्पयति। अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारंभका इति वर्णयति। भेदाभेदविपर्यासः कार्यात्कारणं भिन्नमेवाभिन्नमेवेति परिकल्पना स्यात्। स्वरूप-विपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः संति न संत्येव वा, तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव न तदालंबनं वस्तु बाह्यमिति।—[सर्वार्थसि. १]

वाक्ये न ज्ञातव्यः। कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणामः आत्मन्यवस्थितो रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति। तत्र कारणविपर्यासस्तावत् रूपादीनामेकं कारणममूर्तं नित्यमिति कल्पयति। अपरः पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति वर्णयति। भेदाभेदविपर्यासः—कार्यात् कारणं भिन्नमेवाभिन्नमेवेति परिकल्पना स्यात्। स्वरूपविपर्यासः—रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सत्येव वा तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव न तदालम्बनं बाह्यं वस्त्विति। एवं कुमतिज्ञान-बलाधानेन कुश्रुतविकल्पा भवन्ति। एतेषां सर्वं मूलकारणं मिथ्यात्वकर्मोदय एवेति निश्चेतव्यम् ॥१८॥ अथ सासादनगुणस्थानस्वरूपं सूत्रद्वयेन आह—

तीनों कहे जाते हैं। तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थका 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासोंके द्वारा कथित अथवा अकथितका भी श्रद्धान करता है।

सिद्धान्तमें कहा है—'घट, पट, स्तम्भ आदि पदार्थोंमें मिथ्यादृष्टि जाननेके अनुसार श्रद्धान करते हुए भी अज्ञानी कहा जाता है, क्योंकि उसको जिनवचनमें श्रद्धान नहीं है।' इस सिद्धान्त वाक्यमें कहे मिथ्यादृष्टिके लक्षणको जानकर उस मिथ्यात्वको छोड़ना चाहिए। उस मिथ्यादर्शन परिणामके भेद भी इसी सिद्धान्तवाक्यसे जानने चाहिए। जो इस प्रकार है—आत्मामें अवस्थित कोई मिथ्यादर्शनरूप परिणाम रूपादिकी उपलब्धि होनेपर भी कारण-विपर्यास, भेदाभेद विपर्यास और स्वरूपविपर्यासको पैदा करता है। उनमें-से कारण विप-र्यास इस प्रकार है—कोई मानते हैं कि रूपादिका कारण एक अमूर्त नित्य तत्त्व है। दूसरे (नैयायिक आदि) कहते हैं कि परमाणु पृथिवी आदि जातिके भेदसे भेदवाले हैं। पृथिवी जातिके परमाणुओंमें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श चारों गुण होते हैं। जल जातिके परमाणुओंमें रस रूप. स्पर्श तीन गुण होते हैं। तेजो जातिके परमाणुओंमें रूप और स्पर्श दो गुण होते

इंतु कुमतिज्ञानबलाधानदिं कुश्रुतविकल्पंगळप्पवुमिवक्केल्लं मूलकारणं मिथ्यात्वकर्मोदयमे यक्कुमेंदु निश्चयिसुगे ॥

तदनंतरं सासादनगुणस्थानस्वरूपमं पेळ्दुमेंदी सूत्रद्वयमं बंदुदु ।

आदिमसम्मत्तद्धासमयादो छावलित्ति वा सेसे ।
अणअण्णदरुदयादो णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो ॥१९॥

आद्यसम्यक्त्वाद्धासमयात् षडावलिपर्य्यंतं वा शेषे । अनंतानुबंध्यन्यतरोदयान्नाशित सम्यक्त्व-इति सासादनाख्योऽसौ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालदोळु जघन्यदिंदमोंदु समयमुत्कर्षदिंदमावलिकाषट्कमवशिष्टमागुत्तिरलं अनंतानुबंधिकषाय चतुष्कदोळगन्यतरमप्प कषायक्कुदयमागुत्तिरलुं आवनोर्व विनाशितसम्यक्त्वनक्कुं आतं सासादननेंदितु पेळल्पट्टं न् । वा शब्ददिंदं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालदोळं सासादनगुणस्थानप्राप्तियप्पुदिंतितु कषायप्राभृताभिप्रायमक्कुं ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वकाले जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन आवलिषट्के च अवशिष्टे सति अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्के अन्यतमकषायस्योदये जाते यो विनाशितसम्यक्त्वो जायते स सासादन इत्युच्यते । वाशब्देन द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालेऽपि सासादनगुणस्थानप्राप्तिर्भवति इति कषायप्राभृताभिप्रायो भवति ॥१९॥

हैं । वायु जातिके परमाणुओंमें केवल एक स्पर्श गुण होता है । तथा पृथ्वी जातिके परमाणुओंसे पृथ्वी ही बनती है, जलजातिके परमाणुओंसे जल ही बनता है । इस तरह वे परमाणु समान जातीय कार्योंको ही उत्पन्न करते हैं । दूसरा भेदाभेदविपर्यास इस प्रकार है—कारणसे कार्य भिन्न ही या अभिन्न ही होता है,ऐसी कल्पना भेदाभेदविपर्यास है । स्वरूप विपर्यास इस प्रकार है—रूप आदि निर्विकल्प हैं अथवा नहीं हैं अथवा उनके आकार रूपसे परिणत ज्ञान ही है, उसका आलम्बन बाह्य वस्तु नहीं है । इस प्रकार कुमतिज्ञानके साहाय्यसे कुश्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं । इन सबका मूल कारण मिथ्यात्व कर्मका उदय ही है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥१८॥

आगे दो गाथाओंसे सासादन गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वके कालमें जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छह आवली शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभमें से किसी एक कषायका उदय होनेपर जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है,वह सासादन कहा जाता है । 'वा' शब्दसे द्वितीय उपशमसम्यक्त्वके कालमें भी सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति होती है, ऐसा कषाय प्राभृतका अभिप्राय है ॥१९॥

---

१. म सूत्रं बं° । २. म °त्तिरलनंतानु° । ३. म °रलु । ४. म पेलल्पट्टं । ५. म °प्पुर्दोदितु । ६. मन्दप्रबोधिनी टीकामें सासादन गुणस्थानके सम्बन्धमें कुछ विशेष चर्चा है, उसे यहां दिया जाता है—'अनन्तानुबन्धी कषायोंके चारित्रमोहका भेद होते हुए भी सम्यक्त्व और चारित्रको घातनेका स्वभाव है और स्वभावमें कोई तर्क नहीं किया जा सकता । शंका—जब सासादन अनन्तानुबन्धीके उदयसे होता है,तो वह पारिणामिक कैसे हुआ ? समाधान—विवक्षित दर्शनमोहके उदयका अभाव होनेसे । अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहमें नहीं है,उसका पाठ चारित्रमोहमें है । शंका—जब अनन्तानुबन्धी सम्यग्दर्शनकी घातक है, तो वह दर्शनमोहमें क्यों नहीं है ? समाधान—नहीं, क्योंकि चारित्रके घातक तीव्रतम अनुभागकी महिमासे उसका चारित्रमोहपना ही उचित है । शंका—तब उससे सम्यक्त्वका विनाश कैसे होता है ? समाधान—अनन्तानु-

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमहिमुहो ।
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥२०॥

सम्यक्त्वरत्नपर्वतशिखरान्मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः । नाशितसम्यक्त्वः स सासादननामा मन्तव्यः ॥

सम्यक्त्वपरिणाममेंब रत्नपर्वतद शिखरदत्तणिंदं मिथ्यात्वपरिणाममेंब भूम्यभिमुखनें- ५
नेवरमंतराळकालदोळु एकसमयमादियागि षडावलिकालपर्यंतं वर्त्तिसुगुमावुदो दु जीवमा जीवं विनाशितसम्यक्त्वनप्प सासादननामाभिधेयनें दरियल्पडुगुं ॥

तदनंतरं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थमागि गाथाचतुष्टयमं पेळ्दपरु ।

सम्मामिच्छुदएण य जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण ।
ण य सम्मं मिच्छं पि य सम्मिस्सो होदि परिणामो ॥२१॥ १०

सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन च जात्यन्तरसर्वघातिकार्येण । न च सम्यक्त्वं मिथ्यात्वमपि च संमिश्रो भवति परिणामः ॥ जात्यंतरसर्वघातिकार्यमप्प सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिदं जीवक्के

यो जीवः सम्यक्त्वपरिणामरूपरत्नशिखरात् मिथ्यात्वपरिणामरूपभूम्यभिमुखः सन् यावदन्तरालकाले एकसमयात् षडावलिकालपर्यन्ते वर्तते स जीवो विनाशितसम्यक्त्वः सासादननामा ज्ञातव्यः ॥२०॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह— १५

जात्यन्तरसर्वघातिकार्यरूपसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य युगपत्सम्यक्त्वमिथ्यात्वशबलितरूपपरिणामो भवति तेन सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन मिथ्यात्वकर्मोदयवन्न केवलं मिथ्यात्वपरिणामो भवति, नापि सम्यक्त्व-

---

जो जीव सम्यक्त्व परिणामरूप रत्नपर्वतके शिखरसे मिथ्यात्व परिणामरूपी भूमिके सम्मुख होता हुआ मध्यके कालमें जो एक समयसे छह आवलि पर्यन्त है, रहता है, वह जीव सम्यक्त्वके नष्ट हो जानेसे सासादन होता है। अर्थात् पर्वतसे गिरा व्यक्ति भूमिमें आनेसे २० पहले गिरता हुआ कुछ समय अन्तरालमें रहता है। वैसे ही जो सम्यक्त्वके नष्ट होनेपर मिथ्यात्व रूप भूमिको प्राप्त न करके छह आवलिमात्र अन्तराल कालमें रहता है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है ॥२०॥

जात्यन्तर सर्वघातिके कार्यरूप सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके एक साथ सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिला-जुला परिणाम होता है, अतः सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके २५ उदयसे मिथ्यात्व कर्मके उदयकी तरह न केवल मिथ्यात्व परिणाम होता है और न सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयकी तरह सम्यक्त्व-परिणाम होता है। इस कारणसे उस सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका कार्य जुदी ही जातिरूप सम्यग्मिथ्यात्व रूप मिला हुआ परिणाम होता है ॥२१॥

बन्धीका उदय होनेपर छह आवलिरूप थोड़ेसे कालका व्यवधान होनेपर भी मिथ्यात्वकर्मके उदयाभिमुख होनेपर ही सम्यग्दर्शनका विनाश होता है। शंका—यदि ऐसा है तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे सम्यक्त्वका नाश ३० क्यों कहा है? समाधान—मिथ्यात्वके उदयाभिमुख होनेके निकटवर्ती अनन्तानुबन्धीके उदयसे सम्यग्दर्शनके विनाशकी सम्भावना होनेसे ऐसा कहा है। अधिक क्या अनन्तानुबन्धीमें सम्यग्दर्शनके विनाशकी शक्ति होनेपर भी मिथ्यात्वके उदयाभिमुख होनेपर ही उस शक्तिकी व्यक्ति होती है। सासादनमें अतत्त्व श्रद्धान अव्यक्त होता है और मिथ्यात्व में व्यक्त होता है।

१. म समभिमुहो। २. म °वलिकेका°। ३. म °दनाभि°। ४. म जच्चंतर। ३५

युगपत्सम्यक्त्वमिथ्यात्वशबलितमप्प परिणाममक्कुमा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिंदं मिथ्यात्वकर्मोदयदिनें तु केवलमिथ्यात्वपरिणाममक्कुमंतुमल्तु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदितु सम्यक्त्वपरिणाममु मेणक्कुमंतुमल्तु अदुकारणदिंदं तत्कार्यं जात्यंतरमप्पसम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामशबलितमक्कुमेंदरियल्पडुवुदु ॥

दहिगुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥२२॥

दधिगुडमिव व्यामिश्रं पृथग्भावं नैव कर्त्तुं शक्यं । एवं मिश्रकभावः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ इंतु व्यामिश्रमप्प दधिगुडं पृथग्भावमं माडुवडे शक्यमल्तु अंते सम्यग्मिथ्यात्वसंमिश्रपरिणाममुमं केवलसम्यक्त्वभावमुमं केवलमिथ्यात्वभावमुमं मेणु पृथग्भावदिदं व्यवस्थापिसे शक्यमल्तु । इदु कारणदिंदमातं सम्यग्मिथ्यादृष्टि एंदितु ज्ञातनक्कुं । समीचीनासौ मिथ्या च सम्यग्मिथ्या सा दृष्टिः श्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । इंदितु व्युत्पत्तियुंटप्पुदरत्तणिंदमुं । मुन्नं परिगृहीतातत्त्वश्रद्धानापरित्यागदोडने तत्त्वश्रद्धानक्कसंभवमुंटप्पुदु कारणमागि ।

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं ।
सम्मं वा मिच्छं वा परिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२३॥

स संयमं न गृह्णाति देशसंयमं वा न बध्नात्यायूंषि सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य

प्रकृत्युदयवत् सम्यक्त्वपरिणामो भवति । ततः कारणात् तत्कार्यं जात्यन्तररूपसम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामशबलितं भवतीति ज्ञातव्यं ॥२१॥

इव–यथा, व्यामिश्रं–संमिश्रं दधिगुडं पृथग्भावं कर्तुं नैव शक्यं भवति एवं तथा सम्यग्मिथ्यात्वसंमिश्रपरिणामोऽपि केवलसम्यक्त्वभावेन वा केवलमिथ्यात्वभावेन वा पृथग्भावेन व्यवस्थापयितुं नैव शक्यो भवति । अतः कारणात् स सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यो भवति । समीचीनासौ मिथ्या च सम्यग्मिथ्या, सा दृष्टिः–श्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति व्युत्पत्तेरपि पूर्वपरिगृहीतातत्त्वश्रद्धानापरित्यागेन सह तत्त्वश्रद्धानं भवति तथासंभवकारणसद्भावात् ॥२२॥

सः–सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्जीवः सकलसंयमं देशसंयमं वा न गृह्णाति तद्ग्रहणयोग्यकरणपरिणामानां तस्मिन्नसंभवात् । तथा स चतुर्गतिनिबन्धनानि आयूंष्यपि न बध्नाति मरणकाले नियमेन सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामं

जैसे मिले हुए दही, गुड़को अलग-अलग करना शक्य नहीं है उसी प्रकार मिला हुआ सम्यग्मिथ्यात्व परिणाम भी केवल सम्यक्त्वरूपसे या केवल मिथ्यात्वभावरूपसे अलग-अलग व्यवस्थापित करना शक्य नहीं है । इस कारण उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए । समीचीन और मिथ्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जिसके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है । इस व्युत्पत्तिसे भी पहले ग्रहण किये हुए अतत्त्वश्रद्धानको त्यागे बिना उसके साथ तत्त्वश्रद्धान भी होता है क्योंकि उस प्रकारके कारणका सद्भाव है ॥२२॥

वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सकल संयम अथवा देशसंयमको ग्रहण नहीं करता; क्योंकि उनको ग्रहण करने योग्य परिणाम उसमें नहीं होते । तथा वह चारों गतियोंमें ले जानेका कारण जो चार आयुकर्म हैं, उनका भी बन्ध नहीं करता है । तथा मरणकाल आनेपर

---

१. म °ध्यात्वकर्मोदयदिं मिं° । २. म °दिंदमेंतु । ३. म °ल्पडुगु । ४. म °मल्तु । ५. क मेणु । ६. म °स्थापिप्पडे शं° । ७. म °तम्मन° । ८. म °गदिंदमे । ९. म °क्कुमुं सं. । १०. म गेण्हं° ।

म्रियते नियमेन ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवं सकलसंयममुमं देशसंयममुमं मेणु कैकोळ्दनल्लं। तद्ग्रहणयोग्यकरणपरिणामंगळातनोळ्संभविसवप्पुदरिदं अंते आतं चतुर्गतिनिबंधनमप्पायुष्यमुमं कट्टुवनल्लं। मरणकालदोळु नियमदिदं सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामम पत्तुविट्टु असंयतसम्यग्दृष्टित्वमुमं मेणु मिथ्यादृष्टित्वमुमं पोदि बळिक्कं परभवायुष्यमं कट्टि सागुं ॥

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं ।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥२४॥

सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामेषु यस्मिन्नायुः पुरा बद्धं । तस्मिन्मरणं मारणान्तिकसमुद्घातोऽपि च न मिश्रे ॥ एत्तलानुं बद्धपरभवायुष्यनप्पजीवं सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामम पोदुगुमागळु सम्यक्त्वपरिणामनिमित्तकमप्प मेणु मिथ्यात्वपरिणामनिमित्तकमप्पावुदो वु गतिसंबंधायुष्यमुनं कट्टल्पट्टुदु। बळिकं सम्यग्मिथ्यादृष्टियागि मरणकालदोळु तद्गतियोग्यपरिणामदोळे मरणमनेय्दुगुमंबुदितल्लदे मत्ते सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामदोळायुर्बंधकालदोळितप्प परिणामक्कुं। मरणकालदोळंतप्पुदेयक्कुमेंदितु नियमविल्ल ॥

त्यक्त्वा, असंयतसम्यग्दृष्टित्वं वा मिथ्यादृष्टित्वं वा नियमेन प्राप्यैव पश्चान्म्रियते ॥२३॥

सम्यक्त्वपरिणाममिथ्यात्वपरिणामयोर्मध्ये यस्मिन् परिणामे, पुरा-सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वप्राप्तेः पूर्वं परभवायुष्कर्म बद्धं तस्मिन्नेव परिणामे सम्यक्त्वरूपे वा मिथ्यात्वरूपे वा गतस्यैव जीवस्य मरणं भवतीति नियमः कथितः, अन्येषामाचार्याणामभिप्रायेण नियमो नास्ति । तद्यथा—सम्यक्त्वपरिणामे वर्तमानः कश्चिज्जीवः तद्योग्यं परभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते । कश्चिज्जीवः मिथ्यात्वे वर्तमानः तद्योग्यमुत्तरभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं प्रतिपद्य म्रियते । (इदं बद्धायुष्कं प्रत्युक्तं) तथा मारणांतिकसमुद्घातोऽपि मिश्रगुणस्थाने नास्ति ॥२४॥ अथासंयतगुणस्थानस्वरूपं निरूपयति—

अनन्तानुबन्धिकषायाणां प्रशस्तोपशमो नास्ति इति तेषामप्रशस्तोपशमे विसंयोजने वा जाते दर्शन-

---

नियमसे सम्यग्मिथ्यारूप परिणामको त्यागकर असंयत सम्यग्दृष्टिपने अथवा मिथ्यादृष्टिपनेको नियमसे प्राप्त करनेके पश्चात् ही मरता है ॥२३॥

सम्यक्त्व परिणाम और मिथ्यात्व परिणाममें-से जिस परिणाममें सम्यग्मिथ्यादृष्टिपनेकी प्राप्तिसे पहले परभवसम्बन्धी आयुकर्मका बन्ध किया था, उसी सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्व रूप परिणाममें जानेपर ही जीवका मरण होता है—यह नियम है। अन्य आचार्योंके अभिप्रायसे नियम नहीं है। उनके मतसे सम्यक्त्व परिणाममें वर्तमान कोई जीव उसके योग्य परभवकी आयुका बन्ध करके पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर पीछे सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है। मिथ्यात्वमें वर्तमान कोई जीव उसके योग्य उत्तर भवकी आयुका बन्ध करके पुनः सम्यग्दृष्टि होकर पीछे सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है। यह कथन बद्धायुष्कके लिये है। तथा मिश्र गुणस्थानमें मारणान्तिक समुद्घात भी नहीं होता है ॥२४॥

आगे असंयत गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—अनन्तानुबन्धी कषायोंका प्रशस्त उपशम नहीं होता। इसलिए उनका अप्रशस्तोपशम अथवा विसंयोजन होने पर तथा दर्शनमोहनीय-

---

१. म °यमुमं देशसंयमुमं। २. म बलिकल्पर°। ३. क °मकनि°। ४. म °दोलमंतप्पु°।

अहंगे मारणांतिकसमुद्घातमुं मिश्रगुणस्थानदोलिल्ल ।
अनंतरमसंयतगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थमो सूत्रमं पेळ्दपरु ।

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिणमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ॥२५॥

सम्यक्त्वदेशघातिन उदयाद्वेदकं भवेत्सम्यक्त्वं । चलमलिनमगाढं तन्नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥

अनंतानुबंधिकषायंगळ्गे प्रशस्तोपशमनमल्लिप्पुदरिंदमवक्के प्रशस्तोपशमनं मेणु विसंयोजनेमागुत्तिरलु दर्शनमोहंगळप्प मिथ्यात्वकर्ममुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमेंबिवेरडक्कं प्रशस्तोपशममक्के अप्रशस्तोपशममक्के क्षपणीयक्के मेणागुत्तं विरलु सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्द्धकंगळुदयमुंटागुत्तिर्दोडे तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणमप्प सम्यक्त्वं वेदकमक्कुं । तत्सम्यक्त्वप्रकृत्युदय देशघातिस्पर्धकोदयदिंदं तत्त्वार्थश्रद्धानविनाशनसामर्थ्य शून्यमप्पुदरिंदं तत्सम्यक्त्वं चलमुं मलिनमुमगाढमुमक्कुं । एकेंदोडे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयक्के तत्त्वार्थश्रद्धानक्के मलजननमात्रमे व्यापारप्पुदरिंदं । अदु कारणादिनदक्के देशघातित्वमक्कुं । इंतु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमननुभविसुतिर्दं जीवक्के जायमानमप्प तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमेंदितु पेळल्पट्टुदु ।

इदुवे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमेंदु पेळल्पडुगुमेकेंदोडे दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकंगळ्गुदयाभावलक्षणक्षयदोळं देशघातिस्पर्धकरूपमप्प सम्यक्त्वप्रकृत्युदमागुत्तिर्दोडमवक्कय उपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकंगळ्गे सदवस्थानलक्षणोपशमदोळं समुद्भूतमप्पुदरिंदं नित्यमेंदो विशेषणदिदं षट्षष्टि

मोहमिथ्यात्वकर्मसम्यग्मिथ्यात्वकर्मणोः प्रशस्तोपशान्तयोः क्षपणीययोर्वा जातयोः सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्धकानामुदये सत्येव यत्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वं भवेत् तद्वेदकनाम भवति । तत् सम्यक्त्वप्रकृत्युदये देशघातिस्पर्धकोदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानविनाशनसामर्थ्यशून्यत्वात् तत्सम्यक्त्वं चलं मलिनं अगाढं भवति सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानस्य मलजननमात्र एव व्यापारात् ततः कारणात् तस्य देशघातित्वं भवति । एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते । इदमेव क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं नाम, दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्वप्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् । नित्यमिति विशेषणेन (जघन्येनान्तर्मुहूर्तत्वेऽपि

के भेद मिथ्यात्व कर्म और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका प्रशस्त उपशम अथवा अप्रशस्त उपशम अथवा क्षय होनेके सम्मुख होते और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय रहते हुए ही जो तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व होता है, उसका नाम वेदक है। उस सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयमें देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय तत्त्वार्थके श्रद्धानको विनष्ट करनेकी शक्तिसे शून्य होनेसे वह सम्यक्त्व चल, मलिन और अगाढ़ होता है। क्योंकि सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय तत्त्वार्थ श्रद्धानमें मल उत्पन्न करने मात्रमें व्यापार करता है। इसी कारणसे वह देशघाति है। इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयको अनुभवन करनेवाले जीवके होनेवाला तत्त्वार्थ श्रद्धान वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है। इसीका नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, क्योंकि दर्शन मोहके सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदयाभाव रूप क्षय होनेपर तथा देशघाती स्पर्द्धक रूप सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर और उसीके ऊपरके अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्था रूप

---

१. क प्रतौ 'अहंगे' इत्यादि नास्ति । २. म °न मुमागु° । ३. क °प्रकृतिघाति° । ४. क °नमप्पा° । ५. क °कृतिय दे° । ६. क °र्घ्यं शू । ७. म °नमु वे° । ८. म क्त्वमुं मे° ।

सागरोपमकालावस्थायि येदुत्कृष्टविवक्षेयिं पेळल्पट्टुदु। कर्मक्षपणहेतुवेंबुदरिंदं मोक्षकारणंगळप्प सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामंगळोळु सम्यक्त्वमे मुख्यकारणमेंदितु सूचिसल्पट्टुदु।

वेदकसम्यक्त्वक्के शंकादिमलंगळु यथासंभवमागि सम्यक्त्वनिर्मूलनोच्छेदना कारणंगळ्-सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंद पुट्टुववु। औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वंगळ्गे मलजननकारणतदुदया-भावदिंदं निर्मलत्वं सिद्धमादुदेंदरिगे। चलमलिनागाढमुमेंतेने पेळ्दपें प्रथमोद्दिष्टचलमेंबुदु। ५

श्लोक—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं।
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमिव स्थितं॥

यॆंदितु पेळल्पट्टदिंदितें दोडे आप्तागमपदार्थश्रद्धानविकल्पगळोळु चलिसुगुमेंदितु चलमेंबुदें तें दोडे—"स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते। अन्यस्यायमिति भ्राम्यन्मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते॥" एंदितु स्वकारितार्हच्चैत्यादिगळोळु ममत्वदिंदं ममायं देवः एंदितु अन्यकारितार्हच्चैत्यादिगळोळन्यस्यायं देवः एंदु परकीयत्वदिंदं बेवर्कॆय्दु भजनदत्तणिदं चलमेंदु पेळल्पट्टुदु। इल्लि दृष्टांतमं पेळ्दपरु। नानाकल्लोलमालेगळोळॆंतु जलमो दॆयादोडं नानारूपदिं चलिसुगुमें तें

उत्कर्षेण) षट्षष्टिसागरोपमकालावस्थायीत्युत्कृष्टविवक्षयोक्तं (न तु सार्वकालिकं)। कर्मक्षपणहेतु इत्यनेन मोक्षकारणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेषु सम्यक्त्वमेव मुख्यकारणमिति सूच्यते। वेदकसम्यक्त्वस्य शंकादिमला अपि यथासंभवं सम्यक्त्वनिर्मूलनोच्छेदनाकारणसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादुत्पद्यन्ते। औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोर्मल-जननकारणतदुदयाभावान्निर्मलत्वं सिद्धमिति जानीहि। चलादीनि लक्षयति। तत्र चलत्वं यथा—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतम्। लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमिव स्थितं॥

नानात्मीयविशेषेषु आप्तागमपदार्थश्रद्धानविकल्पेषु चलतीति चलं स्मृतं। तद्यथा—

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते। अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते॥

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ ममायं देव इति मदीयत्वेन, अन्यकारितेऽर्हच्चैत्यादौ परकीयत्वेन च भजनाच्चल-मित्युक्तं। अत्र दृष्टान्तमाह—नानाकल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं तथापि नानारूपेण चलति तथा मोहात्

उपशम होनेपर वेदक सम्यक्त्व होता है। 'नित्य' विशेषणसे यद्यपि वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, तथापि छियासठ सागर प्रमाण स्थितिमात्र दीर्घकाल तक स्थायी होनेसे उत्कृष्ट विवक्षासे नित्य कहा है। नित्यसे वह सदाकाल रहता है, ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिए। 'कर्मक्षपणहेतु' अर्थात् वह सम्यक्त्व कर्मोंके क्षपणका कारण है, इस विशेषणसे यह सूचित किया है कि मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप परिणामोंमें सम्यक्त्व ही मुख्य कारण है। वेदक सम्यक्त्वके शंका आदि मल भी यथासम्भव सम्यक्त्वको मूलसे नष्ट करनेमें असमर्थ सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होते हैं। औप-शमिक और क्षायिक सम्यक्त्वमें मलको उत्पन्न करनेमें कारण सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अभाव होनेसे निर्मलता सिद्ध है, ऐसा जानो।

चल आदिका लक्षण कहते हैं—अपने ही नाना विशेषोंमें अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ विषयक श्रद्धानके विकल्पोंमें जो चलित होता है, उसे चल कहते हैं। जैसे, अपने द्वारा कराये गये जिनबिम्ब आदिमें 'यह मेरे देव हैं', इस प्रकार अपनेपनेसे और दूसरेके द्वारा कराये गये जिनबिम्ब आदिमें 'यह पराया है', इस प्रकार भेद करनेसे चल दोष कहा है।

---

१. क तदुभयभाव°।

मोहात्सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिदं श्रद्धानुं भ्रमिसुत्तं चेष्टिसुगुं ॥

मलिनमं बुदं तने । "तदप्यलब्धमाहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥" तदपि सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदत्तणिदं पडेयल्पडदमाहात्म्यमनुळुवक्कु-मदक्के मलसंगदिं मलिनत्वमुद्भविसुगुं शुद्धमप्प स्वर्णमं तंते ॥

अगाढमं तने । "स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवाऽत्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥" अंते आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थानदोळे इरुतिद्दं कंप्रमेंगाढमें बुदं तं दोडः—

"समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥"

एंदितु तीव्ररुचिरहितमक्कुमदं तं दोडे एल्लाऽर्हत्परमेष्ठिगळ्गनंतशक्तित्वं समानमागुत्तिरलु ई शांतिकक्रियेगे शांतिनाथदेवनु प्रभुवक्कुमी विघ्नविनाशनादिक्रियेगे पार्श्वनाथने प्रभुवेंदित्यादि प्रकारदिं रुचिशैथिल्यसंभवदत्तणिदं । एंतीगळ्वृद्धकरतलगतयष्टि शिथिलसंबंधतेयिंदमगाढमंते-वेदकसम्यक्त्वमुमेंदरिवुदु ॥

अनंतरमौपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वंगळुत्पत्तिकारणस्वरूपप्रतिपादनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् श्रद्धानमपि भ्रमणं चेष्टते । अथ मलिनत्वं यथा—

तदप्यलब्धमाहात्म्यं स्वकात् सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

तदपि सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयादलब्धमाहात्म्यं भवति । तच्च मलसंगेन मलिनं जायते यथा शुद्धं स्वर्णं तथा । अथागाढत्वं यथा—

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥

स्थाने एव—आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थितं कंप्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते । तद्यथा—

समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयम् । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

इति तीव्ररुचिरहितं भवति । तद्यथा—सर्वेषां अर्हत्परमेष्ठिनां अनन्तशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शान्तिकर्मणे शान्तिक्रियायै शान्तिनाथदेवः प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनाशनादिकर्मणे विघ्नविनाशनादिक्रियायै पार्श्वनाथदेवः प्रभुरित्यादिप्रकारेण रुचिशैथिल्यसंभवात् । यथा वृद्धकरतलगतयष्टिः शिथिलसंबन्धतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यं ॥ अथ औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोरुत्पत्तिकारणं स्वरूपं च प्रतिपादयति ।

इसमें दृष्टान्त देते हैं कि नाना जलकी तरंगोंमें जल एक ही अवस्थित है, तथापि नाना रूपसे चल है। उसी तरह मोहसे अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे श्रद्धान भ्रमण रूप चेष्टा करता है। अब मलिन दोषको कहते हैं—जैसे मलके योगसे शुद्ध स्वर्ण मलिन हो जाता है, वैसे ही सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे अपने माहात्म्यको न पाकर मलके संगसे मलिन होता है। अब अगाढ दोषको कहते हैं—स्थान अर्थात् आप्त आगम और पदार्थकी श्रद्धान रूप अवस्थामें ही रहते हुए भी जो काँपता है, स्थिर नहीं रहता, उसे अगाढ़ कहते हैं। जैसे, सब अर्हन्त परमेष्ठियोंमें अनन्त शक्तिपना समान रूपसे स्थित होते हुए भी 'इस शान्तिक्रियामें शान्तिनाथ भगवान् समर्थ हैं', इस विघ्न विनाश आदि क्रियामें पार्श्वनाथ भगवान् समर्थ हैं', इत्यादि प्रकारसे रुचिमें शिथिलता होनेसे तीव्र रुचिसे रहित होता है। जैसे वृद्ध पुरुषके हाथकी लकड़ी शिथिल होनेसे अगाढ होती है, वैसे ही वेदक सम्यक्त्व भी अगाढ़ होता है ॥२५॥

आगे औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण और स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °नमुं । २. म भ्रमियुसु° । ३. क कंप्रमगाढ° । ४. म °त्वदोल्समामभिरुत्तिरलु । ५. क °गाढक स° । ६. प्रभुरेवोस्या ।

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य ।
विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो हु ॥२६॥

सप्तानामुपशमतः उपशमसम्यक्त्वं क्षयात् क्षायिकं च। द्वितीयकषायोदयात् असंयतो भवति सम्यग्दृष्टिः ॥ स्फुटं । न विद्यते अंतः अवसानं यस्य तदनन्तरं मिथ्यात्वं तदनुबध्नातीत्येवं शीलमनंतानुबंधि । इंतप्पनंतानुबंधि कषायचतुष्कमुं मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतियेंब दर्शनमोहत्रयमुमेंदितु सप्तप्रकृतिगळ सर्वोपशमदिनौपशमिकसम्यक्त्वं पुट्टुगुमंत्तेया सप्तप्रकृतिगळ क्षयदत्तणिंदं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुमीयुभयसम्यक्त्वमुं निर्मलमक्कुमेकेंदोडे शंकादिमलंगळ लेशक्कमप्पडमसंभवमप्पुदरिंदं । अंते निश्चलमुमक्कुमेकेंदोडाप्तागमपदार्थविषयश्रद्धानविकल्पं गेळोल्लियुमस्खलनमुंटप्पुदरिंदमंते गाढमुमक्कुमेकेंदोडाप्तादिगळोळु तीव्ररुचिसंभवमुंटप्पुदरिंदं । मलासंभवादित्रयमुमावप्रकारदिंदमक्कुमेकेंदोडे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाक्किल्लियत्यंताभावदत्तणिंदमेंदरिवुदु । इंतुक्तंगळप्प मूरुं सम्यक्त्वंगळिंदं परिणतनप्प सम्यग्दृष्टिद्वितीयकषायंगलप्प अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभंगळन्यतमोदयदिंदमसंयतनक्कुं ॥

अनंतरं तत्त्वार्थश्रद्धानक्के ग्रहणत्यागावसरप्रदर्शनार्थमी गाथाद्वयमं पेळ्दपं ।

न विद्यते अन्तः अवसानं यस्य तदनन्तं मिथ्यात्वं, तदनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिनामदर्शनमोहत्रयं चेति सप्तप्रकृतीनां सर्वोपशमेनौपशमिकसम्यक्त्वमुत्पद्यते । तथा तासामेव सप्तप्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं सम्यक्त्वं भवति । इदमुभयसम्यक्त्वमपि निर्मलं भवति शङ्कादिमललेशस्याप्यनुत्पत्तिसंभवात् । तथा निश्चलं भवति आप्तागमपदार्थविषयश्रद्धानविकल्पेषु क्वचिदपि स्खलनाभावात् । तथा गाढं भवति आप्तादिषु तीव्ररुचिसंभवात् । इदं मलासंभवादित्रयं तु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्याभावादिति ज्ञातव्यं । एवमुक्तत्रिविधसम्यक्त्वैः परिणतसम्यग्दृष्टिः द्वितीयकषायाणां अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानामन्यतमोदयेन असंयतो भवति ॥२६॥ अथ तत्त्वार्थश्रद्धानस्य ग्रहणत्यागावसरं गाथाद्वयेन प्ररूपयति —

जिसका अन्त नहीं है, उसे अनन्त कहते हैं। अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, उसका आश्रय पाकर जो बँधती है, वह अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति नामक तीन दर्शनमोह, इन सात प्रकृतियोंके सर्वोपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। तथा उन्हीं सात प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है। ये दोनों भी सम्यक्त्व निर्मल होते हैं। इनमें शंकादि मलका लेश भी उत्पन्न नहीं होता। तथा निश्चल होते हैं; क्योंकि आप्त, आगम और पदार्थ विषयक श्रद्धानके विकल्पोंमें कहीं भी स्खलन नहीं होता। तथा गाढ़ होते हैं; क्योंकि आप्त आदिमें तीव्र रुचि होती है। इन तीनों मलोंके न होनेका हेतु यह है कि इन दोनों सम्यक्त्वोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अत्यन्ताभाव है। इस प्रकार ऊपर कहे गये तीन प्रकारके सम्यक्त्वोंसे परिणत सम्यग्दृष्टि दूसरी कषाय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया लोभमें-से किसी एक कषायका उदय होनेसे असंयत होता है ॥२६॥

आगे दो गाथाओंसे तत्त्वार्थ श्रद्धानके ग्रहण और त्यागका अवसर कहते हैं—

---

१. म °गलोलेल्लियु° । २. म °क्कुमदेंतेंदो° । ३. म °क्कुमेंदोडे° । ४. क °दृष्टि अप्र° ।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

सम्यग्दृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति । श्रद्दधात्यसद्भावमजानानो गुरुनियोगात् ॥

आवनोर्व्वनर्हदादिगुरुगळिंदमुपदिष्टमप्प प्रवचनमनाप्तागमपदार्थगळं श्रद्दधाति नंबुगुमल्
५ रोळसद्भूतमप्प अतत्त्वमुमं तनगे विशेषज्ञानशून्यत्वदिंदं केवलं गुरुगळप्पर्हदादिगळ नियोगमेंदितु तदाज्ञेयनलंबिसि नंबुगुमातं सम्यग्दृष्टियेयक्कुमेकें[3] दोडिदाज्ञानतिक्रममप्पुदरिंदं ।

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुडि ॥२८॥

सूत्रात्तं सम्यग्दर्शयमानं यदा न श्रद्दधाति स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवस्ततः प्रभृति ॥

१० अन्तसदर्थश्रद्धाननप्पाज्ञासम्यग्दृष्टियप्प जीवनार्वागळोम्मे कुशलरप्पाचार्यांतरंगळिंदं परगे तां गृहीतासदर्थमप्प विपरीततत्त्वमं गणधरादिकथितसूत्रमं तोरि सम्यक्प्ररूप्यमानमुमं दुराग्रहावेशदिंदं नंबुवनल्लनागळ्मोदल्गोंडु मुंदाजीवं मिथ्यादृष्टियक्कुमेकें दोडे सूत्राश्रद्धानदिंदमाज्ञातिक्रमं सुप्रसिद्धमप्पुदे कारणमागि ॥

अनंतरमसंयतत्वसम्यग्दृष्टित्वंगळ्गे सामानाधिकरण्यप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

---

१५ यः अर्हदाद्युपदिष्टं प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं श्रद्दधाति–रोचते, तेषु असद्भावं–अतत्त्वमपि तस्य विशेषज्ञानशून्यत्वेन केवलगुरुनियोगात् अर्हदाद्याज्ञातः श्रद्दधाति सोऽपि सम्यग्दृष्टिरेव भवति तदाज्ञाया अनतिक्रमात् ॥२७॥

तथा असदर्थश्रद्धानः आज्ञासम्यग्दृष्टिर्जीवो यदा कुशलाचार्यान्तरैः प्राक्तनतद्गृहीतासदर्थरूपविपरीततत्त्वं गणधरादिकथितसूत्रं दर्शयित्वा सम्यक्प्ररूप्यमाणं तत् दुराग्रहादेशेन न श्रद्दधाति तदा प्रभृति स जीवो
२० मिथ्यादृष्टिर्भवति । सूत्राश्रद्धानेन आज्ञातिक्रमस्य सुप्रसिद्धत्वादेव कारणात् ॥२८॥ अथासंयतत्वसम्यग्दृष्टित्वयोः सामानाधिकरण्यं प्रदर्शयति —

जो जीव अर्हन्त आदिके द्वारा उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ इनकी श्रद्धा रखता है, साथ ही उनके विषयमें असद्भाव अर्थात् अतत्त्व भी स्वयंके विशेष ज्ञानसे शून्य होनेसे, केवल गुरुके नियोगसे कि जो गुरुने कहा, वही अर्हन्त भगवान्की
२५ आज्ञा है, श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दृष्टि ही है । अर्थात् अपनेको विशेष ज्ञान न होनेसे और गुरु भी अल्पज्ञानी होनेसे वस्तुस्वरूप अन्यथा कहे और यह सम्यग्दृष्टि उसे ही जिनाज्ञा मानकर अतत्त्वका श्रद्धान कर ले, तब भी वह सम्यग्दृष्टि ही है; क्योंकि उसने जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं किया ॥२७॥

उक्त प्रकारसे असत् अर्थका श्रद्धान करता हुआ आज्ञासम्यग्दृष्टि जीव जब अन्य
३० कुशल आचार्योंके द्वारा पूर्वमें उसके द्वारा गृहीत असत्यार्थसे विपरीत तत्त्व गणधर आदिके द्वारा कथित सूत्रोंको दिखाकर सम्यक् रूपसे बतलाया जावे और फिर भी वह दुराग्रहवश उस सत्यार्थका श्रद्धान न करे, तो उस समयसे वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है; क्योंकि गणधर आदिके द्वारा कथित सूत्रका श्रद्धान न करनेसे जिनआज्ञाका उल्लंघन सुप्रसिद्ध है । इसी कारण वह मिथ्यादृष्टि है ॥२८॥

---

३५ १. म सद्भावम° । २. म °गमिदेदितु तदाज्ञेयुमवलं° । ३. क °दोडिवऽज्ञातिक्र° । ४. म °नागलोम्मे ।

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि ।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥२९॥

नो इंद्रियेषु विरतो नो जीवे स्थावरे त्रसे वापि । यः श्रद्दधाति जिनोक्तं सम्यग्दृष्टिरसंयतः सः ॥

आवनोर्व्वनिंद्रियविषयंगळोळु विरतिरहितनुं। स्थावरत्रसजीववधेयोळु मेणु विरतिरहितनुं। जिनोक्तमं नंबुगुमातनविरतसम्यग्दृष्टियक्कुमिदरिंदमसंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च एंदितु समानाधिकरणत्वं समर्थितमाय्तु । अपि शब्ददिंदं संवेगादिसम्यक्त्वगुणंगळ्सूचिसल्पट्टुवु । अत्रेत्यमप्पविरतत्वविशेषणमन्त्यदीपकमप्पुर्दारिंद अधस्तनगुणस्थानंगळनितरोळं संबंधिसल्पडुगुं । अपिशब्ददिंदमनुकंपेयुमुंदु ॥

अनंतरं देशसंयतगुणस्थाननिर्देशार्थमी गाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो ण होदि णवरिं तु ।
थोववदो होदि तदो देसवदो होदि पंचमओ ॥३०॥

प्रत्याख्यानोदयात्संयमभावो न भवति । विशेषोऽस्ति तु । स्तोकव्रतं भवति ततो देशव्रतो भवति पञ्चमकः ॥

यः इन्द्रियविषयेषु नो विरतः विरतिरहितः, तथा स्थावरत्रसजीववधेऽपि नो विरतः, जिनोक्तं प्रवचनं श्रद्दधाति स जीवः अविरतसम्यग्दृष्टिर्भवति । अनेन असंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति समानाधिकरणत्वं समर्थितं जातम् । अपिशब्देन संवेगादिसम्यक्त्वगुणाः सूच्यन्ते । अत्रत्यं अविरतत्वविशेषणं अन्त्यदीपकत्वादधस्तनगुणस्थानेष्वपि संबन्धनीयं अपिशब्देन अनुकम्पापि स्यात् ॥२९॥ अथ देशसंयतगुणस्थानं गाथाद्वयेन निर्दिशति—

अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकोपशमात् प्रत्याख्यानावरणकषायाणां देशघातिस्पर्धकोदये जाते सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षयेन सकलसंयमभावो न भवति । (णवरि) विशेषोऽस्ति तु पुनः (स एव

आगे असंयतत्व और सम्यग्दृष्टित्वका सामानाधिकरण्य—अर्थात् दोनोंका एक ही व्यक्तिमें एक साथ होना दिखलाते हैं—

जो इन्द्रियोंके विषयोंमें 'नोविरत' अर्थात् विरतिरहित है, तथा स्थावर और त्रस जीवकी हिंसामें भी नोविरत अर्थात् त्रस-स्थावर जीवकी हिंसाका त्यागी नहीं है; केवल जिन भगवान्के द्वारा कहे हुए प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह जीव अविरत सम्यग्दृष्टि होता है। इससे जो असंयत है, वही सम्यग्दृष्टि है इस प्रकार सामानाधिकरण्यका समर्थन किया है। 'अपि' शब्दसे संवेग आदि सम्यक्त्वके गुणोंको सूचित किया है। उससे अनुकम्पा भी सूचित होती है। यहाँ जो अविरत विशेषण है, वह अन्त्यदीपक होनेसे नीचेके गुणस्थानोंमें भी लगाना चाहिए। यहाँ तक सब अविरत होते हैं ॥२९॥

आगे दो गाथाओंसे देशसंयत गुणस्थानको कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप आठ कषायोंके उपशमसे, और प्रत्याख्यानावरण कषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय होते हुए सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे सकल संयमरूप भाव नहीं होता। किन्तु इतना विशेष है कि स्तोकव्रतरूप देशसंयम होता है अर्थात् प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयमें सकल चारित्ररूप परिणाम नहीं

---

१. म °नोर्व्व इंद्रि° । २. म अप्रत्यमप्प अवि° ।

अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकोपशमदत्तणिंदं प्रत्याख्यानावरणकषायंगळ देशघातिस्पर्धकोदयमुमुंटागुत्तिरलु सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणमप्प क्षयदिंदं सकलसंयमभावमागदु। विशेषमुंटु मत्तं देशसंयममक्कुं। तद्वंतं देशसंयतनामपंचमगुणस्थानवर्त्तिजीवनेंदितरियल्पडुगुं॥

जो तसवहाओ विरदो अविरदओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्मि जीओ विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥३१॥

यस्त्रसवधाद्विरतोऽविरतस्तथा च स्थावरवधात्। एकस्मिन् समये जीवो विरताविरतो जिनैकमतिः।

आतने विरताविरतनेंदितु व्यपदेशिसल्पट्टं एककालदोळे यावनोर्व त्रसवधेयत्तणिंदं विरतनुं स्थावर[वधे]यत्तणिंदं अविरतनुमा जीवं विरतश्चासावविरतश्च। एंदितु विषयभेदापेक्षेयिंदं अविरोधदिंदं विरताविरतनेंदितु व्यपदेशक्कर्हनक्कुं। तथा च शब्ददिंदं प्रयोजनमिल्लदे स्थावरवधमुमं माळ्पनल्लेंदितु व्याख्येयनक्कुं। जिनेष्वाप्तादिष्वेका केवला मतिरिच्छारुचिर्यस्यासौ जिनैकमतिः। एंदितिवरिंदं देशसंयतंगे सम्यग्दृष्टित्वविशेषणं निरूपितमादुदु। इदेयादिदीपकत्वदिंदमत्रत्यमुमुत्तरत्रमुं गुणस्थानंगळोळु विशेषणत्वदिंदं संबंधनीयमक्कुं॥

तदनंतरं प्रमत्तगुणस्थाननिरूपणमं माडलवेडि गाथाद्वयमं पेळ्दपरु।

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥३२॥

संज्वलननोकषायाणामुदयात्संयमो भवेद्यस्मान्मलजननप्रमादोऽपि च तस्मात्खलु प्रमत्तविरतः सः॥

विशेषो दर्श्यते—स्तोकव्रतं) देशसंयमो भवति। तद्वान् देशसंयतनामा पञ्चमगुणस्थानवर्ती जीवो ज्ञातव्यः ॥३०॥

स एव विरताविरत इति व्यपदिश्यते एककाले एव यस्त्रसवधाद्विरतः स्थावरवधादविरतः स जीवः। विरताश्चासावविरतश्चेति विषयभेदापेक्षया अविरोधेन विरताविरत इति व्यपदेशार्हो भवति। तथा चशब्देन प्रयोजनं विना स्थावरवधमपि न करोतीति व्याख्येयो भवति। जिनेषु—आप्तादिषु, एका—केवला, मतिः—इच्छा, रुचिः, यस्यासौ जिनैकमतिः। इत्यनेन देशसंयतस्य सम्यग्दृष्टित्वविशेषणं निरूपितं जातं। इदं आदिदीपकत्वेन उत्तरत्रापि गुणस्थानेषु विशेषणत्वेन संबन्धनीयं भवति ॥३१॥ प्रमत्तगुणस्थानं गाथाद्वयेनाह—

होता है क्योंकि प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयमको जो आवरण करती है, उस कषायको प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। देशसंयमसे युक्त जीव पंचम गुणस्थानवर्ती होता है ॥३ ॥

वही देशसंयत विरताविरत भी कहा जाता है; क्योंकि एक ही कालमें जो जीव त्रसहिंसासे विरत है, वही जीव स्थावरहिंसासे अविरत है। इस तरह जो विरत है, वही अविरत है। विषयभेदकी अपेक्षा कोई विरोध न होनेसे 'विरताविरत' व्यपदेशके योग्य होता है। तथा 'च' शब्दसे प्रयोजनके बिना स्थावर हिंसा भी नहीं करता है, ऐसा व्याख्यान करना योग्य है। उसकी रुचि एकमात्र जिन भगवान्में होनेसे वह जिनैकमति होता है। इससे देशसंयतके सम्यग्दृष्टित्व विशेषणका कथन किया है। यह विशेषण आदि दीपक है अतः आगेके भी गुणस्थानोंमें विशेष रूपसे इसका सम्बन्ध करना चाहिए ॥३१॥

आगे दो गाथाओंसे प्रमत्तगुणस्थानको कहते हैं—

---

१. म °जल्लमेंदितु।

संज्वलनसर्वघातिस्पर्धकंगळुदयाभावलक्षणमप्प क्षयदोळं द्वादशकषायंगळ्गेयुमनुदयप्राप्त-संज्वलननोकषायनिषेकंगळ्गमं सदवस्थालक्षणमप्पुपशमदोळं संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकंगळ्गमुदयविवक्षेयिंदं क्षायोपशमिकमप्प सकलसंयममप्पुदु ।

संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयवर्त्तिंदं संयममलजननप्रमादमुं पुट्टुगुमावुदो दु कारणदिंदमदु कारणदिंद प्रमत्तश्चासौ विरतश्च एंबितातं षष्ठगुणस्थानवर्ति प्रमत्तसंयतनं दु पेळल्पट्टं ।

[एवं विवक्षितस्य संयमस्य खलोद्भवसमि[यं]त्युत्पादनमेतत्फलत्वादो कथं संज्वलन-नोकसायाणं चरित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं । (ण) देसघादित्तेण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलण-सत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणो वि ण सकज्जकारओ त्ति संजमहेदुत्तेण विवक्खियत्तादो । वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि । मळजणणपमादो वि य, अवि य इत्यवधारणे । मळजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा हु पमत्तविरदो सो । तमुवलक्खदि] ।

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि ।
सयलगुणसीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥३२॥

यस्मात्कारणात् संज्वलनसर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षये द्वादशकषायाणामनुदयप्राप्तसंज्वलननोक-षायनिषेकाणां च सदवस्थालक्षणोपशमे च संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयात् संयमो मलजननप्रमादश्च उत्पद्यते तस्मात्कारणात् प्रमत्तश्चासौ विरतश्चेति स षष्ठगुणस्थानवर्ती जीवः प्रमत्तसंयत इत्युच्यते । विवक्षितस्य संजमस्य खओवसमित्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कथं संजलणणोकसायाणं चारित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं ? देशघादित्तेण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणोवि ण सकज्जकारओत्ति संजमहेदुत्तेण विवक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादो वि य, अवि य इत्यवधारणे । मलजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा हु पमत्तविरदो सो । तमुवलक्खदि—

जिस कारणसे संज्वलनकषायके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभाव लक्षणरूप क्षय होनेपर और बारह कषायोंका तथा उदयको न प्राप्त संज्वलनकषाय और नोकषायके निषेकों-का सदवस्थारूप उपशम होनेपर तथा संज्वलन और नोकषायके देशघाती स्पर्द्धकोंका तीव्र उदय होनेपर संयमके साथ मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद भी उत्पन्न होता है, तिस कारणसे छठे गुणस्थानवर्ती जीवको प्रमत्त और विरत अर्थात् प्रमत्तसंयत कहते हैं ।

शंका—संज्वलन और नोकषायोंका प्रयोजन तो विवक्षित संयमको क्षायोपशमिक रूपसे उत्पन्न करना है अर्थात् उनके क्षयोपशमसे विवक्षित संयम उत्पन्न होता है; क्योंकि वे चारित्रकी विरोधी हैं । यहाँ गाथामें उन कषायोंको चारित्रका उत्पादक कैसे कहा है ?

समाधान—संज्वलन और नोकषाय देशघाती हैं । अतः उनमें अपने प्रतिपक्षी संयम गुणको निर्मूलन करनेकी शक्ति नहीं है । इससे उनका उदय रहते हुए भी अपना कार्य करनेमें असमर्थ हैं । अतः गाथामें उन्हें संयमका हेतु उपचारसे कह दिया है । वास्तवमें तो वे अपना कार्य ही करते हैं । वह कार्य है—मलको उत्पन्न करना । 'अपि' अवधारण अर्थमें आया है, अतः इनसे संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही उत्पन्न होता है, इससे उसे प्रमत्त-विरत कहते हैं ॥३२॥

आगे उसीको कहते हैं—

---

१. म °गलगुद° । २. [ ] एतत्कोष्ठान्तर्गतो पाठो मप्रतौ नास्ति ।

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति, सकलगुणशीलकलितो महाव्रती चित्रलाचरणश्चित्तलाचरणो वा ॥ व्यक्तमप्प स्वसंवेद्यमुं परानुमेयमुमप्पुदरोळं अव्यक्तमप्पुदरोळं प्रत्यक्षज्ञानिगळ्गमे संवेद्यमप्प प्रमाददोळमावनोव्वं संयतं वर्त्तिसुत्तिर्कुमंतप्पातं चारित्रमोहनीयक्षयोपशममाहात्म्यदिंदं सकलगुणशीलकलितनुं महाव्रतियुमक्कुमिल्लि साकल्यमुं महत्त्वमुं देशसंयतापेक्षयिंदमे दरिवुदु । अदु कारणदिंदमे प्रमत्तसंयत संतं चित्रलाचरणमेंदितु हेळल्पट्टं । चित्रं प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं, चित्रलमाचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्रलः सारंगस्तद्वत् शबलितमाचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्तं लातीति चित्तलं चित्तलम् आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः एंबो विशेषव्युत्पत्तियुमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरमा प्रमादंगळ्गे नाम संख्याप्रदर्शनार्थमागि पेळ्दपरु ।

विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥३४॥

विकथास्तथा कषाया इन्द्रिय निद्रास्तथैव प्रणयश्च । चतस्रश्चत्वारः पञ्च एकैको भवन्ति प्रमादाः पञ्चदश ॥

संयमविरुद्धमप्प कथेगळं विकथेगळेंबुदु । कषन्ति हिंसंति संयमगुणमेंदितु कषायंगळेंबुदु । संयमविरोधिगळप्प इन्द्रियव्यापारंगळुं निद्रियगळेंबुदु । स्त्यानगृद्धयादिकर्म्मत्रितयोदयदिंदमं

व्यक्ते स्वसंवेद्ये, अव्यक्ते—प्रत्यक्षज्ञानिनामेव संवेद्ये च प्रमादे यः संयतो वर्तते स चारित्रमोहनीयक्षयोपशममाहात्म्येन सकलगुणशीलकलितो महाव्रती (अपि) भवति । अत्र साकल्यं महत्त्वं च देशसंयतापेक्षया ज्ञातव्यम् । ततः कारणादेव प्रमत्तसंयतः चित्रलाचरण इत्युक्तं । चित्रं-प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं, चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथ वा चित्रलः—सारंगः, तद्वत् शबलितं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरण. । अथवा चित्तं लातीति चित्तलं आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः इति विशेषव्युत्पत्तिरपि ज्ञातव्या ॥३३॥ अथ तेषां प्रमादानां नामसंख्याप्रदर्शनार्थमाह—

संयमविरुद्धाः कथाः विकथाः, कषन्ति-हिंसन्ति संयमगुणमिति कषायाः, संयमविरोधीन्द्रियव्यापाराः इन्द्रियाणि, स्त्यानगृद्ध्यादिकर्मत्रितयोदयेन निद्रा, प्रचलातीव्रोदयेन वा समुद्भूता जीवस्य स्वार्थसामान्यग्रहण-

---

व्यक्त अर्थात् जो स्वयंके द्वारा जाननेमें आवे, और अव्यक्त अर्थात् जो प्रत्यक्षज्ञानियोंके द्वारा ही जानने योग्य है, ऐसे प्रमादमें जो संयत रहता है, वह चारित्र मोहनीयके क्षयोपशमके माहात्म्यसे समस्त गुण और शीलसे युक्त महाव्रती भी होता है । यहाँ जो सकल संयमीपना और महाव्रतीपना है, वह देशसंयतकी अपेक्षा जानना । इसीसे प्रमत्तसंयतको चित्रलाचरण कहा । चित्र अर्थात् प्रमादसे मिले हुए रूपको जो लाता है, वह चित्रल है । और जिसका आचरण चित्रल है वह चित्रलाचरण है । अथवा जो चित्तको लाता है, वह चित्तल है । और जिसका आचरण चित्तल है, वह चित्तलाचरण है । यह विशेष निरुक्ति भी जानना ॥३३॥

आगे उन प्रमादोंके नाम और संख्या कहते हैं—

संयमविरुद्ध कथाओंको विकथा कहते हैं । जो संयम गुणको 'कषन्ति' अर्थात् घातती हैं, वे कषाय हैं । संयमविरोधी इन्द्रियोंके व्यापार अर्थात् विषयोंमें प्रवृत्तिका नाम

---

१. म स्वसंवेद्यमप्पुदरोलं परानुमेयाऽव्यक्तमप्पुदरोलं । २. म °संयतं चि° । ३. म विकथेमेंबुद ।

निद्राप्रचलातीव्रोदयदिदमुं समुद्भूतमप्पुदं जीवक्के स्वार्थसामान्यग्रहणप्रतिबंधिकेयप्प जाड्यावस्थितियं निद्रेयेंबुदु। बाह्यार्थंगळोळ्ममत्वरूपमं प्रणयमेंबुदु। इवुं यथासंख्यमागि नाल्कुं नाल्कुमेदुमेकमुमेकमें दितिवेल्लं कूडि प्रमादंगळु पदिनैदप्पुवु। इल्लि प्रथमोद्दिष्ट तथाशब्दमल्ला प्रमादसाधारण्यज्ञापनार्थं द्वितीयतथाशब्दं समुच्चयार्थमक्कुं ॥

अनंतरमी प्रमादंगळ्गी प्रकारदिदं संख्यादिपञ्चप्रत्ययप्ररूपणार्थमिदं पेळ्दपरु। ५

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं।
एदे पंच पयारा पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥३५॥

संख्या तथा प्रस्तारः परिवर्त्तनं नष्टं तथा समुद्दिष्टं एते पञ्च प्रकाराः प्रमाद समुत्कीर्त्तने ज्ञेयाः ॥

प्रमादालापोत्पत्तिनिमित्ताक्षसंचारहेतुविशेषमं संख्येयेंबुदु। अवर न्यासमं प्रस्तारमेंबुदु। १० अक्षसंचारमं परिवर्त्तनमेंबुदु। संख्यां धृत्वाऽक्षानयनं नष्टमेंदिदं नष्टमेमेंबुदु। अक्षं धृत्वा संख्यानयनं समुद्दिष्टमेंदिदं समुद्दिष्टमेंबुदु। ई पंचप्रकारंगळ् प्रमादसमुत्कीर्त्तनदोळु ज्ञेयंगळक्कुं ॥

प्र १
नि १
स्प. र. द्रा. च. स्नो. ५ १५
क्रो. मा. माया. लो. ४
स्त्री. भ. रा. अ. ४

प्रतिबन्धिका जाड्यावस्था निद्रा। बाह्यार्थेषु ममत्वरूपः प्रणयः, एते यथासंख्यं चतस्रः, चत्वारः, पञ्च, एका, एकः सर्वे मिलित्वा प्रमादाः पञ्चदश भवन्ति। अथ प्रथमोद्दिष्टस्तथाशब्दः सर्वप्रमादसाधारण्यज्ञापनार्थः, द्वितीयस्तथाशब्दः समुच्चयार्थः ॥३४॥ अथैषां प्रमादानां प्रकारान्तरेण संख्यादिपञ्चप्रत्ययान् (गाथानवकेन) २० प्ररूपयति—

प्रमादालापोत्पत्तिनिमित्ताक्षसंचारहेतुविशेषः संख्या, एषां न्यासः प्रस्तारः, अक्षसंचारः परिवर्तनं, संख्यां धृत्वा अक्षानयनं नष्टं, अक्षं धृत्वा संख्यानयनं समुद्दिष्टं। एते पञ्चप्रकाराः प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेया

इन्द्रियाँ हैं। स्त्यानगृद्धि आदि तीन कर्मोंके उदयसे निद्रा होती है। अथवा प्रचलाके तीव्र उदयसे उत्पन्न जीवकी स्व और अर्थके सामान्य ग्रहणको रोकनेवाली जड़तारूप अवस्थाको २५ निद्रा कहते हैं। बाह्य पदार्थोंमें ममत्वरूप भाव प्रणय है। ये क्रमसे विकथा चार, कषाय चार, इन्द्रियाँ पाँच, निद्रा एक, स्नेह एक सब मिलकर प्रमाद पन्द्रह होते हैं। गाथामें आया पहला 'तथा' शब्द 'ये सब प्रमाद हैं', ऐसा साधारण ज्ञान करानेके लिए है और दूसरा 'तथा' शब्द समुच्चयके लिए है ॥३४॥

आगे इन प्रमादोंके प्रकारान्तरसे संख्या आदि पाँच प्रत्ययोंको नौ गाथाओंसे कहते हैं- ३०

प्रमादके आलापकी उत्पत्तिमें निमित्त अक्षसंचारके विशेष हेतुको संख्या कहते हैं। इनके स्थापनका नाम प्रस्तार है। अक्षसंचारका नाम परिवर्तन है। संख्या रखकर अक्ष लाना नष्ट है। अक्ष रखकर संख्या निकालना उद्दिष्ट है। इस तरह संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट तथा उद्दिष्ट ये पाँच प्रकार प्रमादके व्याख्यानमें जानना चाहिए ॥३५॥

---

१. म °मप्पुर्दु। २. म °वस्थेयं। ३. म इवे।

तदनंतरं विशेषसंख्योत्पत्तिक्रमप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु ।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

सर्वेऽपि पूर्वभंगा उपरिमभंगेष्वेकैकेषु मिलंतीति च क्रमशो गुणिते उत्पद्यते संख्या ॥ एल्ला पूर्वपूर्वभंगंगळुपरिमोपरिमभंगंगळोळुमों दों दरोळु संभविसुगुमेंदितु क्रमदिनेडिरि गुणिसुत्तिरलु विशेषसंख्योत्पत्तियक्कुमदे ते दोडे-पूर्वभंगगळप्प विकथाप्रमादंगळु नाल्कुमुपरितनकषाय मों दों दरोळु संभविसुत्तिरलु नाल्कुं कषायंगळ्गं पदिनारुं प्रमादंगळप्पुवु । मिल्लियनुपातत्रैराशिकं माडल्पडुगुमोंदु कषायक्के नाल्कुं विकथा प्रमादंगळागुत्तं विरलु नाल्कुं कषायंगळ्गनितु विकथा प्रमादंगळप्पुवेंदितु । प्र । क १ । ध । वि ४ । इ । क ४ । आद्यंतसदृशं त्रैराशिकं मध्यनामफलं भवेदेंब न्यायदिदं प्रमाणं फलं इच्छा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेदेंबी गणितन्यायविंद मिच्छाराशियुमं फलराशियुमं गुणियिसि प्रमाणराशियं भागिसुत्तिरलु पदिनारुं विकयारूपंगळप्प मध्यनामफलमक्कुमप्पुदरिंदं ।

मत्तमीयधस्तनभंगंगळु पदिनारुमुपरिमभंगगळप्पेंद्रियमों दों दक्के संभविसुत्तिरलुमैंदिंद्रियंगळ्गे में भत्तुप्रमादविकल्पंगळक्कुमंते निद्रा सामान्यमों दे यप्पुदरिंदमधस्तनभंगंगळ भत्तुं संभविसुत्तिरलु प्रमाणराशियुमिच्छाराशियुं निद्रेयों देयप्पुदरिंदं फलराशियप्पं भत्तनु मा इच्छाराशियों दुरिंदं गुणियिसि प्रमाणराशियप्पों दरिंदमे भागिसुत्तिरलु लब्धमेंभत्ते प्रमादंगळक्कुमंते प्रणयदोळुमेंभत्ते प्रमादंगळुद्भविसुगुमितु विशेषसंख्यासमुत्पत्तिनिरूपितमाय्तु ।

अनंतरं प्रस्तारक्रमप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

भवन्ति ॥३५॥ अथ विशेषसंख्योत्पत्तिक्रममाह—

सर्वेऽपि पूर्वभङ्गाः उपरिमोपरिमभङ्गेषु एकैकस्मिन्मिलन्ति संभवन्तीति क्रमेण गुणिते सति विशेषसंख्या समुत्पद्यते (तद्यथा) पूर्वभङ्गाः विकथाप्रमादाश्चत्वारोऽपि उपरितनकषायेष्वेकैकस्मिन् संभवन्तीति चतुःकषायाणां षोडश प्रमादा भवन्ति । पुनः एतेऽधस्तनभङ्गाः षोडशापि उपरितनेन्द्रियेष्वेकैकस्मिन् संभवन्तीति पञ्चेन्द्रियाणामशीतिप्रमादा भवन्ति । तथा निद्रायां प्रणये च एकैकत्वाद् अशीतिरशीतिरेव । एवं विशेषसंख्योत्पत्तिः कथिता ज्ञाता ॥३६॥ अथ प्रस्तारक्रमं प्रदर्शयति—

आगे विशेष संख्याकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं—

सभी पहलेके भंग ऊपर-ऊपरके भंगोंमें से एक-एकमें मिलते हैं। इस प्रकार क्रमसे गुणा करनेपर विशेष संख्या उत्पन्न होती है। जैसे, पूर्वभंग विकथा प्रमाद चारों भी ऊपरके कषाय प्रमादमें-से एक-एकमें होते हैं। इस तरह चारों कषायोंके सोलह प्रमाद होते हैं। फिर ये नीचेके सोलह भी भंग ऊपरके इन्द्रिय प्रमादोंमें-से एक-एकमें होते हैं। इस तरह पाँच इन्द्रियोंके अस्सी प्रमाद होते हैं। तथा निद्रा और प्रणय एक-एक होनेसे अस्सी-अस्सी ही होते हैं। अर्थात् चार विकथाको चार कषायोंसे गुणनेपर सोलह प्रमाद होते हैं, इन सोलहको पाँच इन्द्रियोंसे गुणा करनेपर अस्सी होते हैं; अस्सीको एक-एकसे गुणा करनेपर भी अस्सी ही होते हैं, इस प्रकार विशेष संख्याकी उत्पत्ति कही ॥३६॥

आगे प्रस्तारका क्रम दिखाते हैं—

---

३५ १. म °नडरे ।

पढमं पमदपमाणं कमेण णिक्खविय उवरिमाणं च ।
पिंडं पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥

प्रथमं प्रमादप्रमाणं क्रमेण निक्षिप्य उपरितनानां च पिण्डं । प्रत्येकैकं निक्षिप्ते भवति प्रस्तारः ॥

विकथात्मकमप्प प्रथमप्रमादादिगळ प्रमाणमं विरलिसि क्रमदिंद निक्षेपिसि उपरितनोपरितनपिंडमधस्तनाधस्तनविरलितनिक्षिप्तरूपं प्रत्येकैकमं निक्षेपिसि यदं कूडुत्तं बरळ प्रस्तारमक्कु मदेंतेनेविकथाप्रमादप्रमाणमिदु ४ इदं विरलिसि क्रमदिंद सिरिसि १।१।१।१। उपरितन द्वितीयकषायप्रमादपिंडम ४, विरलिताधस्तनप्रमादंगळ रूपं प्रत्येकैकपिंडमनिरिसि ४ ४ ४ ४ १।१।१।१। — यिवं कूडुत्तिरलु षोडशप्रमादंगळप्पु १६ ॥ मत्तमुपरितनापेक्षेयिंदमी प्रथमप्रमादपिंडमिदं १६ विरलिसि क्रमदिं निरिसि उपरितनद्वितीयेंद्रियप्रमादपिंडमनिदं ५ मुन्नविरलिताधस्तनप्रमादरूपंगळरूपं प्रत्येकैकपिंडमनिरिसियवं कूडुत्तविरलुमेण्भत्तु भंगमक्कुमिदं प्रस्तारमेंबुदु ।—

५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री	भ	भ	भ	भ	रा	रा	रा	रा	अ	अ	अ	अ

प्रथमं विकथात्मकप्रमादानां प्रमाणं विरलयित्वा क्रमेण निक्षिप्य, उपरितनपिण्डे अधोविरलितस्य रूपं रूपं प्रति एकैकं निक्षेप्तव्यं तेषु मिलितेषु प्रस्तारो भवति । तद्यथा–विकथाप्रमादप्रमाणमिदं ४, विरलयित्वा क्रमेण संस्थाप्य १ १ १ १, उपरितनं द्वितीयं कषायाख्यप्रमादपिण्डमिदं ४ विरलितनिक्षिप्ताधस्तनप्रमादानां रूपं रूपं प्रति एकैकं दत्त्वा (४ ४ ४ ४ १ १ १ १) एतेषु मिलितेषु षोडश प्रमादा भवन्ति १६ । पुनः उपरितनापेक्षया इमं प्रथमं प्रमादपिण्डं १६ विरलयित्वा क्रमेण निक्षिप्य उपरितनद्वितीयमिन्द्रियप्रमादपिण्डं ५ प्राग्वद्विरलितनिक्षिप्ताऽधस्तनप्रमादानां रूपं (रूपं) प्रत्येकैकं निक्षिप्य— ८०

२०				२०				२०				२०			
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,
क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री,	भ	भ	भ	भ,	रा	रा	रा	रा,	अ	अ	अ	अ,

प्रथम विकथारूप प्रमादके प्रमाणका विरलन करके क्रमसे रखो । फिर नीचे विरलन किये हुए इस एक-एकके प्रति ऊपरके प्रमादको पिण्डरूपसे स्थापित करो । उनके मिलनेपर प्रस्तार होता है । जैसे, विकथा प्रमाण ४ है । इसका विरलन करके क्रमसे स्थापित करो १ १ १ १ । ऊपरका दूसरा कषाय नामक प्रमाद पिण्ड ४ है । विरलन करके स्थापित किये गये नीचेके प्रमादोंके एक-एकके प्रति ऊपरके उक्त पिण्डको देनेपर (४ ४ ४ ४ १ १ १ १) उनके मिलनेपर सोलह प्रमाद होते हैं–१६ । फिर ऊपरके प्रमादकी अपेक्षा इस प्रथम प्रमाद पिण्ड १६ का विरलन करके क्रमसे रखो । फिर ऊपरके दूसरे इन्द्रिय प्रमादके पिण्ड ५ को पहलेकी तरह विरलन करके रखे गये नीचेके प्रमादोंके एक-एकपर स्थापित करो

१. म मुं वि ।

ई प्रस्तारमं मुंदे पेळ्वक्षसंचारहेतुवक्कुमंतु प्रस्तारित मेण्भत्तु भंगंगळ नालापिसुव प्रकारमें तेने । स्नेहवान्निद्रालुः स्पर्शनेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु प्रथमभंगमक्कु । स्नेहवान्निद्रालुः रसनेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु द्वितीयभंगमक्कु । स्नेहवान्निद्रालुः घ्राणेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीयेंबुदु तृतीयभंगमक्कुं । स्नेहवान्निद्रालुः चक्षुरिंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु चतुर्थभंगमक्कुं । स्नेहवान्निद्रालुः श्रोत्रेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीयेंबुदु पंचमभंगमक्कुं ।

इंतुळिद मानमायालोभमें बितों दोदक्कमैदैदु भंगमागलुमों दु स्त्रीकथाप्रमादालापविकल्पत्तु (२०) अक्कुमंते, भक्त (२०) राष्ट्रा- (२०) वनिपालकथा (२०) प्रमादंगळ्गं प्रत्येकमिप्पत्तिप्पत्तु भंगंगळागुत्तिरलेल्ला भंगंगळुमेंभत्तु (८०) प्रकारंगळक्कुमेंदरिवुदु ॥

अनंतरं प्रस्तारांतर प्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

एतेषु मिलितेषु अशीतिभङ्गा भवन्ति । अयं प्रस्तारः, अग्रे वक्ष्यमाणाक्षसंचारहेतुर्भवति । एवं प्रस्तारितानामशीतिभङ्गानामालापप्रकारः कथ्यते-स्नेहवान् निद्रालुः स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति प्रथमः ॥१॥ स्नेहवान् निद्रालू रसनेन्द्रियवशंगतः स्त्रीकथालापीति द्वितीयः ॥२॥ स्नेहवान् निद्रालुः घ्राणेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति तृतीयः ॥३॥ स्नेहवान् निद्रालुः चक्षुरिन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति चतुर्थः ॥४॥ स्नेहवान् निद्रालुः श्रोत्रेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति पञ्चमः ॥५॥ एवं शेषमानमायालोभानामपि एकैकस्य पञ्च पञ्च भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्त्रीकथाप्रमादे विंशतिरालापा भवन्ति २० । तथा भक्तराष्ट्रावनिपालकथाप्रमादानामपि प्रत्येकं विंशतिर्विंशतिर्भूत्वा मिलित्वा सर्वेऽशीतिरालापा भवन्तीति ज्ञातव्यं ॥३७॥ अथ प्रस्तारान्तरं प्रदर्शयति—

२०	२०	२०	२०
५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५
१ १ १ १,	१ १ १ १,	१ १ १ १,	१ १ १ १,
क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,
स्त्री स्त्री स्त्री स्त्री,	भ भ भ भ,	रा रा रा रा,	अ अ अ अ,

इन सबके मिलनेपर अस्सी भंग होते हैं। यह प्रस्तार है। यह आगे कहे जानेवाले अक्ष संचारका हेतु होता है। इस प्रकार प्रस्तारित अस्सी भंगोंके आलापका प्रकार कहते हैं। स्नेहवान्, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह पहला भंग है।१। स्नेहवान्, निद्रालु, रसना इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह दूसरा भंग है।२। स्नेहवान्, निद्रालु, घ्राण इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह तीसरा भंग है।३। स्नेहवान्, निद्रालु, चक्षु इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह चतुर्थ भंग है।४। स्नेहवान्, निद्रालु, श्रोत्रेन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह पाँचवाँ भंग है।५। इस प्रकार शेष मान, माया और लोभमें भी एक-एकके पाँच-पाँच होकर चार कषायोंके एक स्त्रीकथाप्रमादमें बीस आलाप होते हैं।२०। तथा भक्तकथा, राष्ट्रकथा, अवनिपालकथा प्रमादमें-से भी प्रत्येकके बीस-बीस होकर सब मिलकर अस्सी आलाप होते हैं ॥३७॥

आगे प्रस्तारका दूसरा प्रकार कहते हैं—

---

१. म °प्रमादालापंगलिप्पत्तक्कुमंते भक्तराष्ट्रावनिपालकथा प्रमादं° ।

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेवो एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥३८॥

निक्षिप्य द्वितीयमात्रं प्रथमं तस्योपरि द्वितीयमेकैकं । पिंडं प्रति निक्षेपः एवं सर्वत्र कर्त्तव्यः ॥

कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानंगळोळु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिंडमं प्रत्येकं स्थापिसि मत्तं पिंडं प्रति द्वितीयप्रमादप्रमाणमेकैकरूपंगळा पिंडंगळं मेले निक्षेपिसल्पडुववु । ४ ४ ४ ४ इंतु निक्षेपिसिदोडममवर युतियुं षोडशप्रमितपिंडमक्कुमी पिंडमुमं बळिक्कमेवं सर्वत्र कर्त्तव्यः एंबुदरिंदं इंद्रियाभिधानतृतीयपिंडप्रमादप्रमाणस्थानंगळोळु षोडशप्रमादप्रमाणपिंडमं स्थापिसि मत्तं पिंडं प्रति तृतीयप्रमादप्रमाणरूपुगळमोंदोंदना पिंडंगळ मेळे मुन्निनंते निक्षेपिसल्पडुगु १६ १६ १६ १६ १६ मितु निक्षेपमागुत्तिरळु मधस्तादक्षसंचारहेतुवप्प द्वितीयप्रस्तारं पुटगुमदं तंने—स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् एंबुदु प्रथमप्रमादालापमक्कुं । भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबिदु द्वितीयप्रमादालापमक्कुं । राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंदु तृतीयप्रमादालापमक्कुं । अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंदु चतुर्थप्रमादालापमक्कु

कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानेषु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिण्डं प्रत्येकं संस्थाप्य ४ ४ ४ ४ पुनः पिण्डं प्रति द्वितीयप्रमादानां प्रमाणस्य एकैकरूपमुपरि निक्षेप्तव्यं, एवं (४ ४ ४ ४) निक्षिप्ते तेषां युतिः षोडशप्रमितपिण्डो भवति । अयं पिण्डः पुनः "एवं सर्वत्र कर्तव्यः" इति वचनात् इन्द्रियाभिधानतृतीयप्रमादपिण्डप्रमाणस्थानेषु संस्थाप्य । १६।१६।१६।१६।१६ । एतेषामुपरि तृतीयप्रमादप्रमाणं एकैकरूपेण निक्षेप्तव्यं । (१६ १६ १६ १६ १६) एवं निक्षिप्ते अधस्तनाक्षसंचारहेतुर्द्वितीयप्रस्तारो जायते । तद्यथा—स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवानिति प्रथमप्रमादालापः ।१। भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवान् इति द्वितीयप्रमादालापः ।२। राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः

कषाय नामक दूसरे प्रमादका जितना प्रमाण है, उतने स्थानोंमें विकथारूप प्रथम प्रमादका जितना प्रमाण है, उसे पिण्डरूपसे स्थापित करो ४ ४ ४ ४। फिर एक-एक पिण्डके प्रति दूसरे प्रमादके प्रमाणका एक-एक रूप ऊपर स्थापित करो। (४ ४ ४ ४) इस प्रकार रखनेपर उनका जोड़ सोलह प्रमाण पिण्डरूप होता है। इसी प्रकार सर्वत्र करना चाहिए। इस वचनके अनुसार इस पिण्डको इन्द्रिय नामक तीसरे प्रमादके पिण्डका जितना प्रमाण है, उतने स्थानोंमें स्थापित करो १६।१६।१६।१६।१६। इनके ऊपर तीसरे प्रमादके प्रमाणको एक-एक रूपसे स्थापित करना चाहिए—(१६ १६ १६ १६ १६); ऐसे स्थापित करनेपर नीचेकी अपेक्षा अक्षसंचारका कारण दूसरा प्रस्तार होता है। नीचेसे अक्षसंचारका आलाप इस प्रकार होता है—स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह प्रथम प्रमाद आलाप है ।१। भक्तकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह दूसरा प्रमाद आलाप है ।२। राष्ट्रकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु,

मितियुमुळिद मानमायालोभंगळ्गं नाल्कुं नाल्कालापंगळागुत्तमिरलु नाल्कुं कषायंगळ्गं पदिनारुप्रमादालापंगळप्पुवु। मत्तं योंदु स्पर्शनेंद्रियक्कं पदिनारु प्रमादालापंगळागुत्तमिरलु मुळिद रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रंगळ्नाल्कुरोळुमों दोंदक्कं पदिनारु पदिनारु प्रमादालापंगळागुत्तमिरलुमष्टेंद्रियंगळ्गमेंभत्तु प्रमादालापंगळक्कुमदेल्लमनरिदु नडसुवुदु। मत्तमिंती प्रस्तारक्रमं सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादिप्रस्तारंगळोळं कर्त्तव्यमक्कुं। अनंतरमक्षपरिवर्त्तनक्रमप्रदर्शनार्थमागि पेळ्दपरु।

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥३९॥

(३९ तमगाथा न विद्यते मूलप्रतौ)

स्नेहवान् इति तृतीयप्रमादालापः ।३। अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवान् चतुर्थप्रमादालापः ।४। एवं शेषमानमायालोभानामपि चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्पर्शनेन्द्रियप्रमादे षोडशप्रमादालापा भवन्ति। तथा शेषरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां चतुर्णामपि एकैकस्य षोडश षोडश भूत्वा पञ्चानामिन्द्रियाणामशीतिप्रमादालापा भवन्ति; तान् सर्वान् ज्ञात्वा वर्तितव्यं यतिभिः। अयं क्रमः सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादीनामपि प्रस्तारेऽपि कर्तव्यः ॥३८॥ अथ प्रथमप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

तृतीयप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा पुनरावृत्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेवागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वद्वितीयस्थानं गच्छति। पुनः तृतीयप्रमादाक्षः क्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा व्यावृत्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयस्थानं गच्छति। एवं द्वितीयप्रमादाक्षो यदा एकवारं स्वपर्यन्तं

स्नेहवान्, यह तीसरा प्रमाद आलाप है।३। अवनिपालकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह चतुर्थ प्रमाद आलाप है।४। इसी प्रकार शेष मान-माया-लोभके भी चार-चार होकर चारों कषायोंके एक स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी प्रमादमें सोलह प्रमाद आलाप होते हैं। तथा शेष रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र चारों भी इन्द्रियोंमें एक-एकके सोलह-सोलह होकर पाँचों इन्द्रियोंके अस्सी आलाप होते हैं। उन सबको जानकर व्रतियोंको प्रवृत्ति करना योग्य है। यह क्रम सर्वत्र चौरासी लाख गुण, अठारह हजार शील आदिके भी प्रस्तारमें करना चाहिए ॥३८॥

आगे प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहते हैं—

तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय आलापके क्रमसे अपने अन्त तक जाकर पुनः लौटकर अपने प्रथम स्थानको एक साथ प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने दूसरे स्थानको प्राप्त होता है अर्थात् क्रोधकषायका स्थान मानकषाय लेता है। पुनः तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय क्रमसे अपने अन्त पर्यन्त जाकर लौटकर एक साथ ही अपने प्रथम स्थानपर आती है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने तीसरे स्थानको प्राप्त होता है। अर्थात् मायाकषाय मानकषायका स्थान ले लेता है। इस तरह दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय जब एक बार अपने अन्त तक जाता है, तब तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय भी क्रमसे संचार करता हुआ अपने अन्त तक जाता है। इस प्रकार ये दोनों ही अर्थात् इन्द्रिय और कषाय पुनः लौटकर अपने-अपने प्रथम स्थानको एक साथ प्राप्त होते हैं, तब प्रथम प्रमाद अक्ष विकथा अपने

---

१. म °गुत्तिरलु।

गच्छति तदा तृतीयप्रमादाक्षोऽपि क्रमेण संचरन् स्वपर्यन्तं गच्छति। एवं तौ द्वावप्यक्षौ पुनः व्यावृत्य स्वस्व-प्रथमस्थानं यदा युगपदेव आगच्छतः तदा प्रथमप्रमादाक्षः स्वप्रथमस्थानं मुक्त्वा स्वद्वितीयस्थानं गच्छति।अनेन क्रमेण तृतीयद्वितीयाक्षयोः स्वपर्यन्तप्राप्तिनिवृत्तिभ्यां प्रथमप्रमादाक्षस्य स्वतृतीयादिस्थानेषु संचारो ज्ञातव्यः। अयमक्षसंचारक्रमः उपरितोऽवस्तनं विचार्य वर्तयितव्यः॥३९॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

प्रथम स्थानको छोड़कर अपने द्वितीय स्थानको प्राप्त होता है अर्थात् स्त्रीकथाका स्थान भक्तकथा लेती है। इस क्रमसे तीसरे और दूसरे अक्षके अपने अन्त तक जाने और लौटनेसे प्रथम प्रमाद अक्षका अपने तृतीय आदि स्थानोंमें संचार जानना चाहिए। इस उक्त कथनका खुलासा इस प्रकार है—

विकथा, कषाय, इन्द्रिय, निद्रा, स्नेहके आदिमें स्त्रीकथा, क्रोध, स्पर्शन प्रमादको स्थापित करके तृतीय अक्ष इन्द्रिय स्पर्शनको छोड़कर रसनामें, रसनाको छोड़कर घ्राणमें, घ्राणको छोड़कर चक्षुमें और चक्षुको छोड़कर श्रोत्रमें संचार करता है। अन्य अक्ष उसी प्रकार स्थिर रहते हैं। इस प्रकार संचार करता हुआ तीसरा अक्ष श्रोत्रेन्द्रिय तक जाकर पुनः लौटकर जब प्रथम स्पर्शनपर आता है,तब दूसरा अक्ष कषाय क्रोधको छोड़कर मानपर आता है। पुनः दूसरे अक्षके मानकषाय पर ही स्थित रहते हुए तीसरा अक्ष इन्द्रिय पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाकर लौटकर जब प्रथम स्थानको प्राप्त होता है,तब दूसरा अक्ष मानको छोड़कर मायामें संचार करता है। उस अक्ष मायाके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा अक्ष इन्द्रिय पुनः पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाकर लौट-कर जब पुनः प्रथम स्थानको प्राप्त होता है,तब दूसरा अक्ष मायाको छोड़कर लोभमें संचार करता है। उस अक्षके उसी प्रकार स्थिर रहनेपर पुनः तीसरा अक्ष इन्द्रिय पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाता है,तब तीसरा और दूसरा दोनों ही अक्ष अन्त तक जाकर लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष विकथा स्त्रीकथाको छोड़कर भक्तकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा और दूसरा अक्ष पूर्वोक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाकर पुनः लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष भक्तकथाको छोड़कर राष्ट्रकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा और दूसरा अक्ष उक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाकर पुनः लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष राष्ट्रकथाको छोड़कर राजकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहनेपर तीसरा और दूसरा अक्ष उक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाते हैं और इस तरह अक्ष संचार समाप्त होता है। निद्रा और स्नेह एक-एक ही हैं। इसलिए उनका अक्ष संचार नहीं होता। इस प्रकार अक्ष संचारका आश्रय लेकर प्रमादोंके आलाप बतलाते हैं—

स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।१। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, रसना इन्द्रिय-के आधीन।२। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, घ्राण इन्द्रियके आधीन।३। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, चक्षु इन्द्रियके आधीन।४। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, श्रोत्र इन्द्रियके आधीन।५। पुनः लौटनेपर स्त्रीकथालापी, मानी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।६। इत्यादि क्रमसे आगेके आलाप लाना चाहिए। इस प्रकार स्त्रीकथाके बीस प्रमादालाप होते हैं। इसी प्रकार शेष विकथाओंके भी बीस-बीस आलाप होनेसे चारों कथाओंके मिलकर अस्सी आलाप होते हैं॥३९॥

आगे द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तनका क्रम कहते हैं—

पढमक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगते संकमेदि तदियक्खो ॥४०॥

प्रथमाक्षोंतगत आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः । द्वयमपि गत्वान्तं आदिगते संक्रामति तृतीयाक्षः ॥

प्रथमप्रमादाक्षमालापक्रमदिदं स्वपर्य्यंतमं [1]पोद्दिमत्तावृत्तिगेय्दु तन्न प्रथमप्रमादस्थानम नागळोम्मे पोद्दुगुमागळु द्वितीय प्रमादाक्षं स्वद्वितीयस्थानमं पोद्दुगुमंत्तयुं प्रथमप्रमादाक्षं क्रमदिदं स्वपर्य्यंतमं पोद्दियावृत्तियिनागळोम्मं तन्न प्रथमप्रमादस्थानमं पोद्दुगुमागळु द्वितीय-प्रमादाक्षं स्व[2]तृतीयस्थानमं पोद्दुगुमितु द्वितीयप्रमादाक्षमागळोम्मं स्वपर्य्यंतमं पोद्दुगुमागळु प्रथमप्रमादाक्षमुं स्वपर्य्यंतमनेय्दिक्कुमितेरडुमक्षंगळुमावृत्तियिं तं तम्म प्रथमस्थान[3]मनागळोम्मं

प्रथमप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा पुनर्व्याघुट्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेव आगच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षो द्वितीयं स्वस्थानं गच्छति । पुनः प्रथमप्रमादाक्षः उक्तक्रमेण संचरन् स्वपर्यन्तं गत्वा व्याघुट्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयं स्थानं गच्छति एवं संचरन् द्वितीयप्रमादाक्षो यदा स्वपर्यन्तं गच्छति तदा प्रथमाक्षोऽपि स्वपर्यन्तं गत्वा तिष्ठति । एवं द्वावप्यक्षौ व्याघुट्य स्वस्वप्रथमं स्थानं गतौ तदा तृतीयप्रमादाक्षाः स्वप्रथमस्थानं मुक्त्वा स्वद्वितीयस्थानं गच्छति । अनेन क्रमेण प्रथमद्वितीयाक्षयोः

पहला प्रमाद अक्ष विकथा आलापके क्रमसे अपने अन्त तक जाकर पुनः लौटकर अपने प्रथम स्थानको युगपत् ही प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष अपने दूसरे स्थानको प्राप्त होता है । पुनः प्रथम प्रमाद अक्ष विकथा उक्त क्रमसे संचार करते हुए अपने अन्त तक जाकर लौटकर एक साथ ही अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने तीसरे स्थानको प्राप्त होता है । इस प्रकार संचार करते हुए दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय जब अपने अन्त तक जाता है, तब प्रथम अक्ष विकथा भी अपने अन्त तक जाकर ठहर जाता है । इस प्रकार दोनों ही अक्ष अर्थात् विकथा और कषाय लौटकर जब अपने-अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होते हैं, तब तीसरा प्रमाद अक्ष अर्थात् इन्द्रिय अपने प्रथम स्थानको छोड़कर अपने द्वितीय स्थानको प्राप्त होता है । इस क्रमसे पहले और दूसरे अक्षके अपने-अपने अन्त तक प्राप्त होकर लौटनेपर तीसरा प्रमाद अक्ष अपने तीसरे आदि स्थानको प्राप्त होता है, ऐसा जानना । इस कथनका खुलासा इस प्रकार जानना । विकथा, कषाय, इन्द्रिय, निद्रा, स्नेह इनमें अक्षकी स्थापना करो । पहला अक्ष विकथा संचरण करता है अन्य अक्ष वैसे ही स्थिर रहते हैं । इस प्रकार संचार करते हुए प्रथमाक्ष विकथा राजकथा तक जाकर लौटकर जब प्रारम्भमें आता है, तब दूसरा अक्ष कषाय क्रोधका स्थान मान ले लेता है । उस दूसरे अक्ष मानके स्थिर रहते हुए प्रथम अक्ष विकथा पूर्ववत् संचार करता हुआ राजकथा तक जाकर लौटकर जब प्रारम्भमें आता है, तब दूसरे अक्ष मानका स्थान माया ले लेता है । उस माया कषायके तदवस्थ रहते हुए प्रथम अक्ष विकथा पूर्ववत् संचार करता हुआ राजकथा तक जाकर लौटकर पुनः प्रारम्भमें आता है, तब दूसरे अक्ष मायाका स्थान लोभ लेता है । उस कषाय लोभके स्थिर रहते हुए पहला अक्ष विकथा उसी प्रकार संचार करते हुए अन्तको प्राप्त होता है । तब पहला और दूसरा दोनों ही अक्ष अर्थात् विकथा

१. क °द्दिमभत्ता° । २. क स्ववृत्तिय स्था° । ३. म °माग्लो° ।

पोद्दुंवचागळु वृत्तितृतीयप्रमादाक्षं स्वद्वितीयस्थानदोळु [1]संचरि सुगु मी क्रमदिंदं प्रथमद्वितीयाक्षंगळ तंतम्म पर्य्यंत प्राप्तिनिवृत्तिगळिंदं तृतीयप्रमादाक्षक्के स्वतृतीयादिस्थानंगळोलु संचारमरियल्पडुगु। मी यक्षसंचारक्रमं मेगणिंदं केळगण्णं विचारिसि प्रवर्त्तनीयमक्कुं। इल्लियक्षमें बुदक्के हंसपदं संदृष्टियक्कुं।

अनंतरं नष्टाक्षानयनप्रदर्शनार्थं पेळ्दपरु। ५

सगमाणेहि विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं।
लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंत्ते ण रूवपक्खेवो ॥४१॥

स्वकमानेन विभक्ते शेषं लक्षयित्वा जानीह्यक्षपदं। लब्धे रूपं प्रक्षिप शुद्धेंते न रूपप्रक्षेपः॥

आवुदोंदु विवक्षितमप्प प्रमादसंख्येयं प्रथमप्रमादप्रमाणादिंद भागिसि निंद शेषमक्षस्थान-

---

स्वस्वपर्यन्तप्राप्तिनिवृत्तिभ्यां तृतीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयादिस्थानं गच्छतीति ज्ञातव्यं। अयमक्षसंचारक्रमोऽस्ता- १०
दुपरितनं विचार्य प्रवर्तनीयः। अक्षस्य संदृष्टिः हंसपदं ॥४०॥ अथ नष्टानयनं प्रदर्शयति—

या विवक्षितप्रमादसंख्या तां प्रथमप्रमादपिण्डप्रमाणेन भक्त्वा शेषमक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूपं प्रक्षिप्य तत्प्रक्षिप्तयुतं उपरितनद्वितीयप्रमादप्रमाणपिण्डेन भक्त्वा तच्छेषमक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूपं प्रक्षिप्य तृतीयप्रमादप्रमाणपिण्डेन भक्त्वा लब्धं शून्यं तदा तत्र तत्र प्रमादानां अवसानस्थाने एव अक्षस्तिष्ठति। तल्लब्धे एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। अत्रोदाहरणमुच्यते—यद्विवक्षितनष्टप्रमादसंख्यामिमां १५ प्रथमप्रमादप्रमाण- १५

और कषाय अन्तको प्राप्त होकर जब पुनः लौटकर आदिमें आते हैं, तब तीसरा अक्ष इन्द्रिय स्पर्शनके स्थानमें रसना हो जाता है। उस अक्ष रसना इन्द्रियके तदवस्थ रहते हुए पहला और दूसरा अक्ष पूर्वोक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्तको प्राप्त होकर लौटकर जब आदिमें आते हैं, तब तीसरे अक्ष रसनाका स्थान घ्राण ले लेती है। इस प्रकार, श्रोत्र इन्द्रिय पर्यन्त अक्ष संचारका क्रम जानकर करना चाहिए। निद्रा और स्नेह एक-एक ही होनेसे उनका अक्ष- २०
संचार नहीं होता। इस प्रकार अक्षसंचारका आश्रय लेकर प्रमादोंका आलाप इस प्रकार होता है—स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन पहला आलाप है।१। भक्तकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन दूसरा आलाप है।२। राष्ट्रकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।३। राजकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।४। पुनः लौटनेपर स्त्रीकथालापी, मानी, स्पर्शनेन्द्रियके आधीन।५। इत्यादि क्रमसे अक्षसंचार करना चाहिए। इस प्रकार करने- २५
पर स्पर्शन इन्द्रियमें सोलह प्रमादालाप होते हैं। इसी तरह प्रत्येक इन्द्रियके सोलह-सोलह आलाप होनेसे सब मिलकर अस्सी प्रमादालाप होते हैं ॥४०॥

आगे नष्टको लानेकी विधि कहते हैं—

संख्या रखकर उस संख्यावाले आलापको लानेकी विधिका नाम नष्ट है। उसकी विधि इस प्रकार है—विवक्षित प्रमादकी संख्याको प्रथम प्रमादके पिण्डरूप प्रमाणसे भाग देकर ३०
जो शेष रहे, वह अक्षस्थान होता है। उसके लब्धमें एक जोड़कर उसमें ऊपरके दूसरे प्रमाद-के प्रमाण पिण्डसे भाग देकर जो शेष बचे, उतना अक्षस्थान होता है। उसके लब्धमें एक जोड़कर तीसरे प्रमादके प्रमाणरूप पिण्डसे भाग देनेपर जो शेष बचे, उतना अक्षपद जानना। यदि भाग देनेपर कुछ भी शेष नहीं बचता, तो उस-उस प्रमादका अन्त स्थानका अक्ष ग्राह्य

---

१. म संभवि सु.। २. म मेगलिदं।

मक्कुं। तल्लब्धदोळु रूपं प्रक्षेपिसुवुदंतु प्रक्षेपिसियुपरितनद्वितीयप्रमादप्रमाणपिंडदिंदं भागिसलुळ-दडे भागिसिद शेषमल्लियक्षस्थानमक्कुं।

तल्लब्धदोळु रूपं कूडे तृतीयप्रमादप्रमाणपिंडदिं भागिसुत्तिरलु लब्धं शून्यमादोडे शेषमेय-क्षस्थानमक्कुमेत्तलानुमल्लल्लि भागिसि शेषं शून्यमादोडल्लल्लिय प्रमादंगळवसानस्थानदोळा यक्षं निल्कुमा लब्धदोळेकरूपक्षेपमं माडलागदु। लब्धमं शून्यमादोडल्लिय शेषमेयक्षस्थानमक्कु-मल्लियुं रूपक्षेपं माडलागदु। इल्लियुदाहरणमं तोने :—

आवुदोंदु विवक्षितनष्टप्रमादसंख्येयनिद १५ प्रथमप्रमादप्रमाणपिंडदिंदं ४ भागिसिद लब्धं ३ तच्छेषमुं ३ इदा मूरनेय राष्ट्रकथालापियें बिल्लिगक्षमक्कुमें बरिदल्लियक्षमनिट्टदंतोडदु कळवु तल्लब्धमप्प मूररोळेकरूपमं प्रक्षेपं माडल्पडुवुदंतु मोडुत्तिरलदु नाल्कुक्कुमदं मेलण द्वितीयकषाय प्रमादपिंडदिंदं ४ भागिसुत्तिरलु शेषं शून्यमक्कुमा शून्यमे तत्कषायप्रमादंगळंत्यमप्प लोभि एंबाला-पस्थानदोळक्षसूचकमक्कुमें दा शून्यमं बिट्टकळवुदु। तल्लब्धमेकरूपमक्कुमदरोळेकरूप क्षेपमं माडलागदु बळिक्क अदं मेलेणिंद्रियप्रमादपिंडमिदरिंदं ५ भागिसुवुदंतु भागिसुत्तिरलुं लब्धं शून्य-मक्कुमदरोळेकरूपक्षेपकमं माडलागदाशेषमप्पेकरूपमा स्पर्शनेंद्रियवशगतनें ब प्रमादवल्लियक्षमं सूचिसुगुमितु पदिनैदिनेय प्रमादराष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानें ब प्रमादालापमक्कुमें बुदर्थमिती नष्टालापमं साधिसुवुदु ॥

तदनंतरमालापमं पिडिदु संख्येयं साधिसल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु।

पिण्डेन ४ भक्त्वा लब्धं त्रयं ३, शेषमपि त्रयं, इतिराष्ट्रकथायामक्षोऽस्ति इति तत्राक्षं दत्त्वा दर्शयेत्। तल्लब्धत्रये एकं रूपं प्रक्षिप्य तच्चतुष्के तदुपरितनद्वितीयकषायप्रमादपिण्डेन ४ भक्ते शेषं शून्यमिति तत्कषाय-प्रमादानामन्त्ये लोभालापस्थाने अक्षं सूचयतीति तत्र लिखेत्। तल्लब्धमेकरूपं तस्योपरि एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। पुनस्तल्लब्धैकरूपे उपरितनेन्द्रियप्रमादपिण्डेन ५ भक्ते लब्धं शून्यं, शेषमेकरूपमिति तत्स्पर्शनेन्द्रिय-वशगत इति प्रमादोऽक्षं सूचयति। एवं पञ्चदश प्रमादो राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवानित्यालापो भवतीत्यर्थः। एवमेव नष्टालापं साधयेत् ॥४१॥ अथालापं धृत्वा संख्यां साधयितुमग्रतन-सूत्रमाह—

होता है तथा उसके लब्धमें एक नहीं जोड़ना चाहिए। यहाँ उदाहरण कहते हैं—जैसे विवक्षित नष्ट प्रमादकी संख्या १५ है। प्रथम विकथा प्रमादके प्रमाणरूप पिण्ड ४ से उसमें भाग देनेपर लब्ध तीन आया, शेष भी तीन ही रहा। तीसरी विकथा राष्ट्रकथामें अक्ष है अतः उसमें अक्ष देकर दिखलाना चाहिए। उसके लब्ध तीनमें एक जोड़कर चारमें उससे ऊपरके दूसरे प्रमाद कषायके पिण्डके प्रमाण चारसे भाग देनेपर शून्य शेष रहता है। इसलिए कषाय प्रमादके अन्तिम लोभके आलाप स्थानमें अक्ष सूचित होता है,उसे लिख लेवे। उसका लब्ध एक है,उसमें एक नहीं जोड़ना चाहिए। उसमें ऊपरके इन्द्रिय प्रमादके पिण्डप्रमाण पाँचसे भाग देनेपर लब्ध तो शून्य है। शेष रहता है एक। अतः स्पर्शन इन्द्रियके आधीन यह प्रमाद अक्षको सूचित करता है। इस प्रकार पन्द्रहवाँ प्रमाद आलाप राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान् होता है। इसी प्रकार नष्ट आलापको साधना चाहिए ॥४१॥

आगे आलापको रखकर उसकी संख्या लानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१. मागुत्ति ।

संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणिज्ज अणंकिदयं कुज्जा एमेव सव्वत्थ ॥४२॥

संस्थाप्यरूपमुपरितः संगुण्य स्वकमाने । अपनीयानंकितकं कुर्य्यादेवमेव सर्व्वत्र ॥ मोदलोळनेवरमोंदु रूपमं संस्थापिसि उपरितनेंद्रियप्रमादसंख्येयिंदं गुणियिसियल्लियनंकितस्थानंगळ संख्येयं कळेदु मत्ते शेषमं तदनंतराधस्तनकषायप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसि मेल्लियुमनंकितस्थानंगळं कळेदु शेषमं मत्ते तदनंतराधस्तन विकथाप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसियल्लियुमनंकितस्थानंगळं कळेदुळिद शेषमक्षांकितप्रमादालापसंख्येयक्कुमितु सर्व्वत्र गुणशीलादिगळोळमुद्दिष्टानयनक्रममरियल्पडुगु मिल्लियुमुदाहरणमं तोने ।

मोदलोळोंदु रूपमं संस्थापिसियुपरितनेंद्रियप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसि या लब्धराशियेदरोळु ५ पदिनैदनेयुद्दिष्टमं विवक्षिसिददक्के रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रंगळनंकितंगळप्पुदरिंदं नानाल्कं कळेदुळिदोंदु रूपमं १ तदनंतराधस्तनकषायप्रमादपिंडसंख्येयिंदं ४ नाल्करिंदं गुणियिसि लब्धराशियोळु ४ नाल्करोळु अनंकितंगळल्लि शून्यमप्पुदरिंदं तच्छून्यमं कळेदोडराशिगे विकृतिसंभविसदप्पुदरिंदा नाल्केयक्कुमाराशियं तदनंतराधस्तनविकथाप्रमादपिंडसंख्येयिं ४ नाल्करिंदं गुणियिसिदोडे १६ पदिनारप्पवुमल्लियुमनंकितमोंदोंदं कळेदुळिद संख्येयदक्षांकित-

---

प्रथमं तावदेकरूपं संस्थाप्य उपरितनेन्द्रियप्रमादसंख्यया गुणयित्वा अत्रानङ्कितस्थानानां संख्यामपनीय पुनः शेषं तदनन्तराधस्तनकषायप्रमादपिण्डसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनङ्कितस्थानान्यपनीय शेषं पुनस्तदनन्तराधस्तनविकथाप्रमादपिण्डसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनङ्कितस्थानान्यपनीय शेषमक्षाङ्कितप्रमादालापसंख्या भवति । एवं सर्वत्र गुणशीलादिष्वपि उद्दिष्टानयनक्रमो ज्ञातव्यः । अत्राप्युदाहरणं प्रदर्श्यते—प्रथममेकरूपं संस्थाप्य उपरितनेन्द्रियप्रमादसंख्यया पञ्चकेन गुणयित्वा तल्लब्धराशौ पञ्चात्मके ५ पञ्चदशोद्दिष्टस्य विवक्षया, रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राण्यनङ्कितस्थानानीति चतुरोऽपनीय शेषमेकरूपं १ तदनन्तराधस्तनकषायसंख्यया ४ चतुर्भिर्गुणयित्वा तल्लब्धराशौ ४ चतुरात्मके अनङ्कितस्थानमत्र किमपि नास्ति इति शून्येऽपनीते राशेरविकृतिसंभवाच्चत्वार एव तस्मिन् राशौ पुनस्तदनन्तराधस्तनविकथासंख्यया ४ चतुर्भिर्गुणिते १६ षोडश । अत्राप्यनङ्कितस्थाने

पहले एकका अंक स्थापित करके ऊपरके इन्द्रिय प्रमादकी संख्यासे गुणा करके उसमें अनंकित स्थानोंकी संख्याको घटाकर जो शेष रहे, उसमें पुनः उसके नीचेके कषाय प्रमादके पिण्डकी संख्यासे गुणा करके उसमें-से भी अनंकित स्थानोंको घटाकर जो शेष रहे, उसमें पुनः उससे नीचेके विकथा प्रमादकी पिण्ड संख्यासे गुणा करके उसमें-से भी अनंकित स्थानोंको घटाकर जो शेष रहे, उतनी प्रमादके आलापकी संख्या होती है। इसी तरह सर्वत्र गुणशील आदिमें भी उद्दिष्ट लानेका क्रम जानना। यहाँ भी उदाहरण देते हैं—पहले एक अंक स्थापित करके ऊपरके इन्द्रिय प्रमादकी संख्या पाँचसे गुणा करके लब्ध राशि पाँचमें अनंकित घटा देना चाहिए। तो ऊपरके पन्द्रहवें प्रमादालापमें केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय अंकित है। अतः रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र अनंकित होनेसे चार घटानेपर शेष एक रहता है। उस एकको उससे नीचेके प्रमाद कषायकी संख्या चारसे गुणा करके लब्ध राशि चारमें; क्योंकि आलापमें लोभकषाय गृहीत है, इसलिए अनंकित स्थान कुछ भी न होनेसे शून्य घटानेपर अर्थात् कुछ भी न घटानेपर राशिमें कमी न होनेसे चार ही रहे। उस राशिमें पुनः उससे नीचेके प्रमाद

---

१. म °यल्लि°।

प्रमादालापमी राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबीयालापद संख्या-प्रमाणमक्कु १५ मितल्लेडेयोळमिपांगिनिंद मक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्टमेंबक्षसंख्येयं साधिसुवुदु ॥ तदनंतरं नष्टोद्दिष्टंगळ्गे गूढयंत्रस्वरूपमं तोरिदपरु—

इगिवितिचपणखपणदसपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य ।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४२॥
(४२ तमगाथा न विद्यते मूलप्रतौ)

एकस्मिन्नपनीते शेषं पञ्चदश राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवान् इत्यक्षाङ्कितप्रमादालापस्य संख्या भवति । एवं सर्वत्रापि अक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्टं सर्वत्र साधयेत् ॥४२॥ अथ प्रथमप्रस्तारास्क्षसंचारमाश्रित्य नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयन्त्रस्वरूपमाह—

नष्टोद्दिष्टयोर्यन्त्रमिदं—स्प १, र २, घ्रा ३, च ४, श्रो ५,
क्रोध० मा ५, मा १०, लो १५,
स्त्री०, भ २०, रा ४०, अ ६०,

प्रमादस्थानेषु इन्द्रियाणां पञ्चसु कोष्ठेषु यथासंख्यं एकद्वित्रिचतुःपञ्चाङ्कान् संस्थाप्य तथा कषायाणां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यपञ्चदशपञ्चदशाङ्कान् संस्थाप्य तथा विकथानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यविंशतिचत्वारिंशत्षष्टयङ्कान् संस्थाप्य निद्रास्नेहयोर्द्वित्वत्रित्वाद्यभावेन [न] तद्धेतुकं आलापानां संख्याबहुत्वं संभवतीति तेषु त्रिस्थानेष्वेव स्थापिताङ्केषु नष्टमुद्दिष्टं च जानीहि । तत्र नष्टं यथा—पञ्चत्रिंशत्तमः आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने इन्द्रियकषायविकथानां यद्यत्कोष्ठगताङ्कशून्येषु मिलितेषु सा संख्या स्यात्

विकथाकी संख्या चारसे गुणा करनेपर सोलह (१६) होते हैं। यहाँ भी अनंकित स्थान एक है, क्योंकि पन्द्रहवें आलापमें राष्ट्रकथा अंकित है। अतः एक घटा देनेपर शेष पन्द्रह रहते हैं। यही 'राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्', इस इष्ट प्रमादके आलापकी संख्याका प्रमाण है। इसी प्रकार सर्वत्र अक्ष रखकर संख्या निकालनेको उद्दिष्ट कहते हैं। उसकी साधना करनी चाहिए ॥४२॥

आगे प्रथम प्रस्तारके अक्षसंचारको लेकर नष्ट-उद्दिष्टके गूढ़ यन्त्रका स्वरूप कहते हैं—

प्रमादके स्थानोंमें इन्द्रियोंके पाँच कोठोंमें क्रमसे एक, दो, तीन, चार और पाँचके अंक स्थापित करके, तथा कषायके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, पाँच, दस, पन्द्रहके अंकोंको स्थापित करके तथा विकथाके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, बीस, चालीस और साठके अंक स्थापित करो। निद्रा और स्नेहके दो-तीन आदि भेद न होनेसे उनके कारण आलापोंकी संख्यामें वृद्धि नहीं होती। इसलिए तीन ही स्थानोंमें अंक स्थापित करके नष्ट और उद्दिष्ट जाना जाता है। उक्त क्रमसे अंक स्थापित करनेपर नष्ट और उद्दिष्टका यन्त्र इस प्रकार होता है—

स्प. १	र २	घ्रा ३	च० ४	श्रो ५
क्रोध०	मा ५	मा १०	लो० १५	
स्त्री०	भ० २०	रा ४०	अ ६०	

पहले नष्टको लीजिए—पैंतीसवाँ आलाप कौन-सा है ? ऐसा प्रश्न होनेपर इन्द्रिय कषाय और विकथाके जिस-जिस कोठेमें स्थित अंक और शून्यको जोड़नेपर वह संख्या आती है, उस-उस कोठेमें स्थित प्रमादोंमें स्नेह और निद्राको प्रारम्भमें रखनेपर स्नेही, निद्रालु, श्रोत्रेन्द्रियके अधीन, मायावी, भक्तकथालापी ये पूछा हुआ आलाप होता है। तथा इकसठवाँ

इगिवितिचखचडबारं खसोलरागट्ठदाल चउसट्ठिं ।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं जाण तिट्ठाणे ॥४४॥

एकद्वित्रिचतुःखचतुरष्टद्वादशखषोडशरागाष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्टि संस्थाप्य च प्रमादस्थाने नष्टोद्दिष्टे च विद्धि त्रिस्थाने ॥

स्प. , र १६, घ्रा ३२, च ४८, श्रो. ६४
क्रो. . मा ४, मा ८, लो १२
स्त्री १, भ २, रा ३, अ ४,

तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु स्नेहनिद्राभ्यामग्रे उच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः श्रोत्रेन्द्रियवशगतो मायावी भक्तकथालापीति पृष्टालापः स्यात् ॥ तथा एकषष्टितम आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने अत्रापीन्द्रियकषायविकथानां यद्यत्कोष्ठगतांकशून्येषु मिलितेषु सा संख्या [स्यात्] तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु प्राग्वदुच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः, स्पर्शनेन्द्रियवशगतः क्रोधी अवनिपालकथालापीति तत्पृष्टालापः स्यात् । एवमन्यालापप्रश्नेऽपि विधेयं । उद्दिष्टं तु स्नेही निद्रालुः स्पर्शनेन्द्रियवशगतो मानी राष्ट्रकथालापीत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने स्नेहनिद्रावर्जिततत्तत्कोष्ठगतैकपञ्चचत्वारिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या षट्चत्वारिंशज्जायते स पृष्टालापस्ततिथो भवति । तथा स्नेही निद्रालुः चक्षुरिन्द्रियवशगतो लोभी भक्तकथालापीत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने तत्तत्कोष्ठगतचतुःपञ्चदशविंशत्यङ्केषु मिलितेषु या संख्या एकान्नचत्वारिंशत् संपद्यते स पृष्टालापस्ततिथो भवति । एवमन्यालापेऽपि पृष्टे कर्तव्यं ॥४३॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयन्त्रमाह—

स्त्री १, भ २, रा ३, अ ४,
क्रो० , मा ४, मा ८, लो १२,
स्प० , र १६, घ्रा ३२, च ४८, श्रो० ६४

आलाप कौन-सा है ? ऐसा पूछनेपर, यहाँ भी इन्द्रिय, कषाय और विकथाके जिस-जिस कोठेमें स्थापित अंकों और शून्योंको जोड़नेपर वह संख्या आती है उस-उस कोठेके प्रमादोंको पहलेकी तरह उच्चारित करनेपर स्नेही, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, क्रोधी, अवनिपालकथालापी,यह पूछा हुआ आलाप है । अर्थात् इकसठवाँ आलाप है । इसी तरह अन्य आलाप सम्बन्धी प्रश्नमें भी करना चाहिए । अब उद्दिष्टको लीजिए—स्नेही, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, मानी, राष्ट्रकथालापी इस आलापकी संख्या कितनी है ? ऐसा प्रश्न होनेपर स्नेह और निद्राको छोड़कर उस-उस प्रमादके कोठोंमें स्थापित एक, पाँच और चालीस अंकोंको जोड़नेपर जो छियालीस संख्या होती है, पूछा गया आलाप उतनी ही संख्यावाला होता है । तथा स्नेही, निद्रालु, चक्षु इन्द्रियके अधीन, लोभी, भक्तकथालापी यह आलाप किस संख्याका है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमादके कोठेमें स्थापित चार, पन्द्रह, बीस अंकोंको जोड़नेपर जो संख्या उनतालीस आती है, पूछा हुआ आलाप उतनी ही संख्याका है । इसी प्रकार अन्य आलापोंके पूछनेपर भी करना चाहिए ॥४३॥

आगे दूसरे प्रस्तारकी अपेक्षा नष्ट-उद्दिष्टका गूढ़ यन्त्र बतलाते हैं—

प्रमादके स्थानोंमें विकथा प्रमादके चार कोठोंमें क्रमसे एक, दो, तीन, चार अंकोंको स्थापित करो । तथा कषाय प्रमादके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, चार, आठ, बारहका अंक स्थापित करो । तथा इन्द्रिय प्रमादके पाँच कोठोंमें क्रमसे शून्य, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस,

विकथाप्रमादंगळ नाल्कुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदमोंदुमेरडुं मूरुं नाल्कु मंकंगळप्पुवु। कषायप्रमादंगळ नाल्कुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदं शून्यमुं नाल्कुमं दु पन्नेरडुमंकंगळक्कुं। इंद्रिय प्रमादंगळैदुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदं शून्यमुं पदिनारुं मूवत्तेरडुं नाल्वत्तं दुमरुवत्तनाल्कुमंकंगळप्पु विल्लि पदिनैदनेय प्रमादालापमेंतप्पुदक्कुमेंदोडे राष्ट्रकथाविकथालापपल्लिय मूरंकमुमं लोभकषायकोष्ठगतांकंगळप्प पन्नेरडुमं कूडिदोडे पदिनैय्दनेय नष्टप्रमादालापं राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबुदक्कुं ॥

मत्तं मूवत्तनेय विवक्षितप्रमादमेंतप्पुदक्कुमेंदडे भक्तकथाप्रमादकोष्ठगतमप्पेरडंकमुमं लोभकषायप्रमादकोष्ठगतमप्प पन्नेरडंकंगळुमं कूडुत्तिरलु पदिनाल्कुमं रसनेंद्रियप्रमादकोष्ठगतमप्प पदिनारुमंकंगळं कूडुत्तिरलु ३० मूवत्तनेय प्रमादालापं। भक्तकथालापी लोभी रसनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबदक्कुमिंति अय्दनेयदुमं विवक्षिसिकोंडु विकथालापपल्लिय ओंदुमं कषायालापपल्लिय नाल्कुमं कूडोडय्दक्कुमेय्दनेय प्रमादालापं स्त्रीकथालापी मानी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबुदक्कुमितु नष्टप्रमादसंख्येयं मूरुं स्थानंगळोळगण कोष्ठगतसंख्येयं समानमप्पंतु मोंडि तत्कोष्ठगतालापमे नष्टप्रमादमक्कुमेंदु निश्चैसुवुदु। मत्तमुद्दिष्टर्कमिते तत्तत्प्रमादकोष्ठस्थितां-

---

प्रमादस्थानेषु विकथाप्रमादानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं एकद्वित्रिचतुरङ्कान् संस्थाप्य, तथा कषायप्रमादानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यचतुरष्टद्वादशाङ्कान् संस्थाप्य तथा इन्द्रियप्रमादानां पञ्चसु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यषोडशद्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्ट्यङ्कान् संस्थाप्य पूर्वोक्ताढेतोस्तेषु त्रिस्थानेष्वेवं स्थापिताङ्केषु नष्टमुद्दिष्टं च जानीहि। तत्र नष्टं यथा—पञ्चदश आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने विकथाकषायेन्द्रियाणां यद्यत्कोष्ठगताङ्कशून्येषु मिलितेषु तत्संख्या (स्यात्) तत्तत्कोष्ठगतप्रमादसंधाने राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानिति तमालापं वदेत्। तथा त्रिंशत्तमः कीदृग् ? इति प्रश्ने विकथाकषायेन्द्रियाणां यद्यत्कोष्ठगताङ्केषु मिलितेषु तत्संख्या स्यात् तत्तत्कोष्ठगतप्रमादसंधाने भक्तकथालापी लोभी रसनेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानिति तमालापं वदेत्। अथोद्दिष्टं तु स्त्रीकथालापी मानी घ्राणेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने तत्तत्प्रमादकोष्ठगतेष्वेकचतुर्द्वात्रिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या सप्तत्रिंशज्जायते

और चौसठके अंक स्थापित करो। पूर्वोक्त हेतुसे इन तीन ही स्थानोंमें अंक स्थापित करके नष्ट और उद्दिष्ट जानना चाहिए।

स्त्री १,	भ. २,	रा. ३,	अ. ४,	
क्रो०,	मा. ४,	मा. ८,	लो. १२,	
स्प०,	र. १६,	घ्रा ३२,	च. ४८,	श्रो. ६४

नष्टका उदाहरण इस प्रकार है—पन्द्रहवाँ आलाप कौन है? ऐसा प्रश्न होनेपर विकथा, कषाय, इन्द्रियोंके जिस-जिस कोठोंमें स्थित अंकों और शून्योंको जोड़ने पर वह संख्या आती है, उस-उस कोष्ठगत प्रमादका अनुसंधान करने पर राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान् यह पन्द्रहवाँ आलाप बोलना चाहिए। तथा तीसवाँ आलाप कौन है ? ऐसा प्रश्न होनेपर विकथा, कषाय और इन्द्रियके जिस-जिस कोठोंमें स्थित अंकों और शून्योंको जोड़नेपर वह संख्या आती है, उन कोष्ठगत प्रमादोंको मिलाने पर भक्तकथालापी, लोभी, रसना इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान, यह आलाप कहना चाहिए। अब उद्दिष्टको लीजिए—स्त्रीकथालापी, मानी, घ्राण इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह आलाप कितनी

---

१. म कूडिदोडैय्दक्कुं। २. म कूडि।

कंगळं कूडि ईयक्षरमनितनेयदेंदु पेळ्वुददंतेने—भक्तकथालापी लोभी रसनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानें बुदिं[2] दिनितनेयालापमं दोडे तत्तत्कोष्ठगतांकंगळरडुं[3] पदिनारुमं कूडलु ३० [4]मूवत्तनयदें दु पेळ्वुदु मत्तमवनिपालकथालापी लोभी चक्षुरिंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबिदिनितनेयालापमं दोडे तत्तत्कोष्ठगतांकंगळु नाल्कुं पन्नेरडुं नाल्वत्तें टुमं कूडि इदरुवत्तनाल्कनेयदेंदु पेळ्वुदी प्रकारमं सर्व्वत्र व्यापकमागरिवुदु ॥ ५

इंतु मूलोत्तरोत्तरप्रमादंगळ्गे यथासंभवमागि संख्यादि पंचप्रकारनिरूपणं माडि प्रमादसंख्याविशेषमनरियल्पडुवुदुमदंतेने विकथेगळिप्पत्तय्दु २५, कषायंगळिप्पत्तय्दु २५, इंद्रियंगळु ६, निद्रेगळु ५, स्नेहमोहंगळेरडुमिदेल्लमनडरि गुणियिसिदोडे ३७५०० प्रमादंगळप्पुवुमिल्लियु

तमालापं तत्तिथं ब्रूयात् । तथा अवनिपालकथालापी लोभी चक्षुरिन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने तत्तत्प्रमादकोष्ठगतचतुर्द्वादशाष्टचत्वारिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या चतुःषष्टिः स्यात् तमालापं तत्तिथं ब्रूयात्, एवमन्यालापे पृष्टेऽपि कुर्यात् । एवं मूलोत्तरोत्तरप्रमादानां यथासंभवं संख्यादिपञ्चप्रकारान् निरूप्य इदानीमपरं प्रमादसंख्याविशेषं ज्ञापयति । तद्यथा—स्त्रीकथा अर्थकथा भोजनकथा राजकथा चोरकथा वैरकथा परपाखण्डकथा देशकथा भाषाकथा गुणबन्धकथा देवीकथा निष्ठुरकथा परपैशुन्यकथा कन्दर्पकथा देशकालानुचितकथा भण्डकथा मूर्खकथा आत्मप्रशंसाकथा परपरिवादकथा परजुगुप्साकथा परपीडाकथा कलहकथा परिग्रहकथा कृष्याद्यारम्भकथा संगीतवाद्यकथा चेति विकथा पञ्चविंशतिः २५ । षोडशकषायनवनोकषायभेदेन कषायाः पञ्चविंशतिः २५ । स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोनामानि इन्द्रियाणि षट् ६ । स्त्यानगृद्धिः निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चेति निद्राः पञ्च ५ । स्नेहो मोहश्चेति द्वौ २ । एतेषु उपरितनभङ्गेषु एकैकस्मिन् अधस्तनभङ्गाः, अधस्तनभङ्गेषु एकैकस्मिन्नुपरितनभङ्गाश्च सर्वे मिलन्तीति

संख्यावाला है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमाद कोठोंमें स्थित एक, चार और बत्तीस अंकोंको जोड़नेपर जो सैंतीस संख्या होती है, उस आलापको उसी संख्यावाला कहना चाहिए । तथा अवनिपालकथालापी, लोभी, चक्षु इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह आलाप कितनी संख्यावाला है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमादके कोठोंके अंक चार, बारह, अड़तालीसको जोड़ने पर जो चौसठ संख्या आती है, उस आलापको उतनी ही संख्यावाला कहना चाहिए । इसी प्रकार अन्य आलापोंके विषयमें पूछने पर भी करना चाहिए ।

इस प्रकार मूल और उत्तर प्रमादोंके यथासम्भव संख्या आदि पाँच प्रकारोंको कहकर अब प्रमादोंकी अन्य विशेष संख्या बतलाते हैं । जो इस प्रकार है—स्त्रीकथा, अर्थकथा, भोजनकथा, राजकथा, चोरकथा, वैरकथा, परपाखण्डकथा, देशकथा, भाषाकथा, गुणबन्धकथा, देवीकथा, निष्ठुरकथा, परपैशुन्यकथा, कन्दर्पकथा, देशकालानुचितकथा, भण्डकथा, मूर्खकथा, आत्मप्रशंसाकथा, परपरिवाद कथा, परजुगुप्साकथा, परपीडाकथा, परिग्रहकथा, कृष्यादि आरम्भकथा, संगीतवाद्यकथा ये २५ विकथा हैं । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भेदसे पच्चीस कषाय हैं । स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये छह इन्द्रियाँ हैं । स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला ये पाँच निद्रा हैं । स्नेह और मोह ये दो हैं । इन ऊपरके भंगोंमें-से एक-एकमें नीचेके भंग और नीचेके भंगोंमें-से एक-एकमें ऊपरके

---

१. म °क्षमितितेनय° । २. म °दिदेनितेनेवा° । ३. म °डुं पन्नेरडुं प° । ४. म ३० नेयदेंदु । ५. म °मिवेल्ल° ।

मिथ्यादृष्ट्यादि प्रमत्तावसानमाद गुणस्थानादि विंशतिप्ररूपणेगळोळं बंधहेतुत्वदिंदमे यथासंभवमागि संख्याप्रस्तारादि पंचप्रकारप्ररूपणमनागमाविरोधमागियोजिसुवविशेषविधानमुमुंटेंदरिवुदु ॥

अनंतरमप्रमत्तगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थं मागि पेळ्दपरु ।

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि ।
अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि ॥४५॥

संज्वलननोकषायाणामुदयो मंदो यदा तदा भवति । अप्रमत्तगुणस्तेन चाप्रमत्तः संयतो भवति ॥

संज्वलनकषायनोकषायंगळुदयं मंदमागि प्रमादजननशक्तिरहितमप्पुदावागळोम्मे यक्कुमागळु प्रमत्तसंयमपरिणाममप्प गुणस्थानमक्कुमदु कारणदिंदमा गुणदोळ्कूडिद जीवमप्रमत्त संयतनक्कुं ।

तदनंतरं स्वस्थानाप्रमत्तस्वरूपनिर्द्देशार्थमागिदं पेळ्दपरु—

णट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडियो णाणी ।
अणुवसमओ अखवगो झाणणिलीणो हु अपमत्तो ॥४६॥

नष्टाशेषप्रमादो व्रतगुणशीलावलिमंडितो ज्ञानी । अनुपशमकोऽक्षपको ध्याननिलीनः खल्वऽप्रमत्तः ॥

परस्परं गुणितेषु पञ्चशताधिकसप्तत्रिंशत्सहस्रप्रमिताः तत्प्रमादा भवन्ति ३७५००। एतेऽपि मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तसंयतगुणस्थानावसानवर्तिविंशतिप्ररूपणासु यथासंभवं बन्धहेतुत्वेन संभवन्तः संख्यादिपञ्चप्रकारैः आगमाविरोधेन योजनीयाः ॥४४॥ अथाप्रमत्तगुणस्थानस्वरूपं प्ररूपयति—

यदा—यस्मिन् काले संज्वलनानां क्रोधमानमायालोभानां चतुर्णां, नोकषायाणां हास्यादीनां नवानां च यथासंभवं उदयः—फलदानपरिणामः, मन्दः—प्रमादजननशक्तिरहितो भवति, तदा—तस्मिन् काले अन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं जीवस्य अप्रमत्तगुणः—अप्रमत्तगुणस्थानं भवेत् । तेन कारणेन तद्गुणयुतः संयतः सकलसंयमी अप्रमत्तः—अप्रमत्तसंयतो भवति । च शब्दः वक्ष्यमाणगुणयुक्तश्च भवतीति समुच्चयार्थः पूर्णार्थो वा ॥४५॥ स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयाप्रमत्तश्चेति द्वौ भेदौ । तत्र स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्वरूपं निरूपयति—

भंग मिलते हैं । सबको परस्परमें गुणा करने पर सैंतीस हजार पाँचसौ ३७५०० प्रमादके भेद होते हैं । ये भी मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यन्त रहनेवाली बीस प्ररूपणाओंमें यथायोग्य बन्धके कारण होते हैं, अतः संख्या आदि पाँच प्रकारोंसे आगमका विरोध न हो; इस प्रकारसे उनकी योजना करनी चाहिए ॥४४॥

आगे अप्रमत्त गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

यदा अर्थात् जिस कालमें संज्वलन क्रोध मान माया लोभ चार कषायोंका और हास्य आदि नौ नोकषायोंका यथासम्भव उदय अर्थात् फल देने रूप परिणाम मन्द अर्थात् प्रमादको उत्पन्न करनेकी शक्तिसे रहित होता है, तदा अर्थात् उस कालमें एक अन्तमुहूर्तके लिए जीवके अप्रमत्त गुणस्थान होता है । इस कारणसे अप्रमत्त गुणसे युक्त संयत अर्थात् सकलसंयमी अप्रमत्त संयत होता है । 'च' शब्दसे आगे कहे जानेवाले गुणोंसे भी संयुक्त होता है ॥४५॥

अप्रमत्त संयतके दो भेद हैं—स्वस्थानाप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त । उनमेंसे स्वस्थानाप्रमत्तका स्वरूप कहते हैं—

नष्टाशेषप्रमादनुं व्रतगुणशीलावलिमंडितनुं सम्यज्ञानोपयुक्तनुं धर्म्मध्याननिलीनमानसनुमप्रमत्तसंयतनुमं नेवरमुपशमश्रेण्यारोहणाभिमुखनुमागियुं क्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखनुमागियुं वर्त्तिसनातनं नेवरं स्वस्थानाप्रमत्तनें दु निर्द्देशिसल्पट्टं । इल्लि ज्ञानियें बी विशेषणदिंदं सम्यग्दर्शनचारित्रंगळंते सम्यज्ञानक्कुमुं मोक्षहेतुत्वं सूचितमादुदु ॥

तदनन्तरं सातिशयाप्रमत्तस्वरूपनिरूपणार्त्थमिदं पेळ्दपरु । ५

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापमत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥४७॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तेषु । प्रथममधःप्रवृत्तकरणं तु करोत्यप्रमत्तः ॥

एंदिल्लि विशेषकथनमुंटुदें ते दोडे प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंदं वर्द्धमाननुं वेदकसम्यग्दृष्टियुमप्पप्रमत्तसंयतं मोदलोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमं करणत्रयपूर्व्वकं द्वादशकषायनवनोकषायस्वरूपमप्पंतु संक्रमविधानदिं विसंयोजिसि बळिक्कमंतर्म्मुहूर्त्तकालं विश्रमिसि मत्तेयुं (येन परिणामेन दर्शनचारित्रमोहोपशमनादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निःपाद्यते साधकतमत्वेन स परिणामः करणः) इंतप्प करणत्रयमं माडि दर्शनमोहनीयमुमनुपशमियिसि द्वितीयोपशम

यो नष्टाशेषप्रमादः व्रतगुणशीलावलीभिर्मण्डितः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तः धर्म्यध्याननिलीनमनाः अप्रमत्तसंयतो यावदुपशमश्रेण्यभिमुखः क्षपकश्रेण्यभिमुखो वा चटितुं न वर्तते तावत् स खलु स्वस्थानाप्रमत्त इत्युच्यते । अत्र ज्ञानीति विशेषणं सम्यग्दर्शनचारित्रवत् सम्यग्ज्ञानस्यापि मोक्षहेतुत्वं सूचयति ॥४६॥ अथ सातिशयाप्रमत्तसंयतस्वरूपमाह—

यः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानो वेदकसम्यग्दृष्टिः अप्रमत्तसंयतः सः प्रथमं अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं करणत्रयपूर्वकं संक्रमणविधानेन द्वादशकषायनवनोकषायस्वरूपेण विसंयोजयति—परिणामयति तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं विश्राम्य पुनरपि करणत्रयेण दर्शनमोहत्रयमुपशमय्य द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति ।

जिस जीवके समस्त प्रमाद नष्ट हो गये हैं, और व्रत, गुण, शीलकी पंक्तिसे भूषित है, सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे युक्त है, तथा जिसका मन धर्मध्यानमें लीन है, ऐसा अप्रमत्त संयत जबतक उपशम श्रेणि या क्षपक श्रेणिके सन्मुख चढ़नेके लिए प्रवृत्त नहीं होता, तब तक उसे स्वस्थानाप्रमत्त कहते हैं। यहाँ ज्ञानी विशेषण यह सूचित करता है कि सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी तरह सम्यग्ज्ञान भी मोक्षका कारण है। अर्थात् चतुर्थ गुण स्थानमें सम्यक्त्व और उसके पश्चात् चारित्रका कथन करनेसे कोई यह न समझे कि ये दोनों ही मोक्षके कारण हैं, इसलिए यहाँ ज्ञानी विशेषण दिया है ॥४६॥

आगे सातिशय अप्रमत्तका स्वरूप कहते हैं—

जिसकी विशुद्धि—कषायोंकी मन्दता प्रतिसमय अनन्तगुणी बढ़ती हुई होती है अर्थात् प्रथम समयकी विशुद्धतासे दूसरे समयकी विशुद्धता अनन्तगुणी, उससे तीसरे समयकी विशुद्धता अनन्त गुणी, इस तरह प्रतिसमय जिसकी विशुद्धता बढ़ती हुई हो, वह वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती जीव पहले अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्टयको अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण पूर्वक संक्रमण विधानके द्वारा बारह कषाय और नौ नोकषायरूपसे परिणमाता है। इसीका नाम विसंयोजन है। इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल तक विश्राम करके पुनः तीन करणोंके द्वारा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका उपशम करके

सम्यग्दृष्टियागि अथवा दर्शनमोहत्रयमं करणत्रयपूर्व्वकं क्षपियिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टियागि मत्तमंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानंगळ परावृत्तिसहस्रंगळं माडि मत्तं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिदं वर्द्धमाननुमेकविंशतिप्रकृतिभेदभिन्नचारित्रमोहनीयमनुपशमिसल्कें[1] उद्युक्तनुमा प्रकृतिगळं मेणु क्षपियिसल्कें[1] दु क्षायिकसम्यग्दृष्टियें उद्युक्तनक्कुमितप्प सातिशयाप्रमत्तं चारित्रमोहोपशमनक्षपणनिमित्तकरणत्रयपरिणामंगळोळमे मोदलोळधःप्रवृत्तकरणमं माळकुमेंबुदर्त्थं ॥

तदनन्तरमीयधःप्रवृत्तकरणकके निरुक्तिसिद्धमप्प लक्षणमं तोरलेदिदं पेळ्दपरु—

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

यस्मादुपरिमभावा अधस्तनभावैः सदृशा भवन्ति । तस्मात्तत्प्रथमं करणमधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टं ॥

अथवा तत्करणत्रयेण तद्दर्शनमोहत्रयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः परावृत्तिसहस्राणि करोति । तदनन्तरं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानः एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीरुपशमयितुमुद्युक्तो भवति । अथवा ताः एकविंशतिचारित्रमोहप्रकृतीः क्षपयितुं क्षायिकसम्यग्दृष्टिरेवोद्युक्तो भवति । स एवंविधः सातिशयाप्रमत्त एव चारित्रमोहोपशमनक्षपणनिमित्तकरणत्रयपरिणामेषु मध्ये प्रथमं अधःप्रवृत्तकरणं करोतीत्यर्थः ॥४७॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणस्य निरुक्तिसिद्धं लक्षणं कथयति—

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होता है। अथवा उन तीन करणोंके द्वारा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों बार आता-जाता है अर्थात् अप्रमत्तसे प्रमत्त और प्रमत्तसे अप्रमत्त होता है। उसके पश्चात् प्रति समय अनन्त गुण विशुद्धिसे बढ़ता हुआ चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम करनेमें तत्पर होता है। अथवा चारित्र मोहनीयकी उन इक्कीस प्रकृतियोंका क्षय करनेके लिए तत्पर होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उनका क्षय करनेमें समर्थ होता है। आशय यह है कि उपशम श्रेणी पर आरोहण तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों ही कर सकते हैं, किन्तु क्षपक श्रेणि पर केवल क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही आरोहण कर सकता है। इस प्रकारका वह सातिशय अप्रमत्त ही चारित्र मोहके उपशम और क्षपणमें निमित्त तीन करण रूप परिणामोंमें से प्रथम अधःप्रवृत्तकरणको करता है ॥४७॥

आगे अधःकरणका निरुक्तिसे सिद्ध लक्षण कहते हैं—

जिस कारणसे ऊपर-ऊपरके समय सम्बन्धी परिणामोंके साथ अन्य जीवके नीचेके समय सम्बन्धी परिणाम समान होते हैं, तिस कारणसे उस प्रथम करणको परमागममें अधःकरण कहा है।

---

१. क तोरलिदं ।

आवुदोंदु कारणदिंदमावुदोंदु जीवक्के उपरितनोपरितनसमयस्थितपरिणामंगळोडनन्यनप्प जीवन अधस्तनाधस्तनपरिणामंगळोडने सदृशंगळागि संभविसल्पडुवुदु कारणमागि प्रथममप्प करणमधःप्रवृत्तकरणमेंदितनादिसंसिद्धमप्प परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु । अधःप्रवृत्ता इवाधःप्रवृत्ता एंदितु गौणवृत्तियिंदमुपरितनसमयपरिणामंगळधस्तनसमयपरिणामसदृशंगळागि संभविसल्पडुवुवु ॥ तदनंतरमधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणप्ररूपणार्थमिदं पेळ्दपरु— ५

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखमिदा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥४९॥

अन्तर्मुहूर्त्तमात्रसत्कालो भवति तत्र परिणामाः । लोकानामसंख्यमिता उपर्य्युपरि सदृशवृद्धिंगताः ॥

तदधःप्रवृत्तकरणकालमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमक्कुमेंतेदोडे—सर्व्वतः स्तोकांतर्म्मुहूर्त्तमनिवृत्तिकरणकालं २ १ इदं नोडलपूर्व्वकरणकालं संख्यातगुणितमप्पंतर्म्मुहूर्त्तमक्कु २ १ १ मिदं नोडलधःप्रवृत्तकरणकालं संख्यातगुणितमप्पंतर्म्मुहूर्त्तकालमक्कु २ १ १ १ मितप्पधःप्रवृत्तकरणांतर्म्मुहूर्त्तकालदोळु विशुद्धिपरिणामंगळु त्रिकालवर्त्तिनानाजीवसंबंधिगळसर्व्वमुं कूडियसंख्येयलोकमात्रंगळक्कु ॐ ठ मिल्लियेनितोळवु प्रथमसमयवर्त्ति जीव त्रिकालविषयंगळप्प परिणामंगळवं १०

यस्मात्कारणात् यस्य जीवस्य उपरितनोपरिसमयस्थितपरिणामैः सह अन्यजीवस्य अधस्तनसमयपरिणामाः सदृशा भवन्ति तस्मात्कारणात् तत्प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तकरणमिति निर्दिष्टं—परमागमे प्रतिपादितं भवति ॥४८॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणं (प्रचयनिर्देशार्थं) कथयति— १५

स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रात् २ १ अनिवृत्तिकरणकालात् संख्यातगुणः २ १ १ अपूर्वकरणकालः, अतः संख्यातगुणः २ १ १ १ अधःप्रवृत्तकरणकालः सोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव, तस्मिन्नधःप्रवृत्तकरणकाले त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनो विशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि असंख्याललोकमात्राः सन्ति ॐ ठ तेषु प्रथमसमयसंबन्धिनो यावन्तः २०

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणका अर्थ है—नीचेके समय-सम्बन्धी परिणामोंकी समानताको लिये हुए होनेवाले परिणाम । इस करणमें ऊपरके और नीचेके जीवोंके परिणामोंमें समानता पायी जाती है । उदाहरणके लिए, एक जीवने अधःप्रवृत्तकरण किया । दूसरे समयमें पहुँचने पर उसके जैसे परिणाम होते हैं, वैसे परिणाम अधःप्रवृत्त प्रारम्भ करनेवाला कोई दूसरा जीव पहले समयमें ही प्राप्त करता है । इस प्रकार आगे वाले और पीछे वाले जीवोंके २५ परिणामोंमें समानता पाये जानेसे इस करणको अधःप्रवृत्त कहते हैं ॥४८॥

आगे प्रचयके निर्देशके लिए अधःप्रवृत्त करणके कालका प्रमाण कहते हैं—

तीनों करणोंमें अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होनेपर भी स्तोक (अल्प) अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । उससे संख्यात गुणा अपूर्वकरणका काल है । उससे संख्यात गुणा अधःप्रवृत्तकरणका काल है । वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है । उस अधःप्रवृत्तकरणके कालमें ३० त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी विशुद्धि परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं अर्थात् तीनों कालोंमें अधःप्रवृत्तकरण करनेवाले जीवोंके परिणामोंकी संख्या असंख्यात लोक है । अर्थात् लोकके प्रदेशोंकी जितनी संख्या है, उससे असंख्यात गुणी उन विशुद्धि परिणामोंकी संख्या है । उनमेंसे प्रथम समयमें जितने परिणाम हैं, उनसे द्वितीय आदि समयोंमें ऊपर-ऊपर

१. क जीवन उ° । २. म °मंगलुपदेशंगलागि । ३५

नोडलंते द्वितीयादिसमयंगळोळु तदधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयपर्य्यंतं मेले-मेळे सदृशवृद्धि-वर्द्धितंगळागिनडेववर्देतेंदोडे केळि पेळ्दपें।

इल्लियव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थमागि मोदलोळंकसंदृष्टियिंदमधप्रवृत्तकरणन्यास तोरिसल्प-

---

सन्ति तेभ्यो द्वितीयादिसमयेषु उपर्युपरि चरमसमयपर्यन्तं सदृशवृद्धया वर्धिताः सन्ति ते च तावदङ्कसंदृष्ट्या
५ प्रदर्श्यन्ते—तत्र परिणामाः द्वासप्तत्युत्तरत्रिसहस्री ३०७२। अधःप्रवृत्तकरणकालः षोडशसमयाः १६। प्रतिसमय-

---

अन्तिम समय पर्यन्त समान वृद्धिको लिये हुए वर्धमान परिणाम हैं। अर्थात् प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीय समय सम्बन्धी परिणाम जितनी वृद्धिको लिये हुए हैं, द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंसे तृतीय समय सम्बन्धी परिणाम भी उतनी ही वृद्धिको लिये हुए हैं। इसी तरह अन्तिम समय पर्यन्त जानना। यहाँ श्रेणि व्यवहार गणित सम्भव है। अतः
१० यहाँ श्रेणि व्यवहार गणितके द्वारा वर्णन करते हैं। प्रथम संज्ञाओंको कहते हैं। विवक्षित सर्वस्थान सम्बन्धी सर्व द्रव्यको जोड़ने पर जो प्रमाण हो, उसे सर्वधन या पदधन कहते हैं। स्थानोंके प्रमाणको पद कहते हैं या गच्छ कहते हैं। प्रत्येक स्थानमें जितनी वृद्धि होती है, उसे चय या उत्तर या विशेष कहते हैं। आदि स्थानमें जो प्रमाण होता है, उसे मुख कहते हैं अथवा आदि या प्रथम कहते हैं। अन्तिम स्थानमें जो द्रव्यका प्रमाण होता है, उसे अन्तधन
१५ या भूमि कहते हैं। सब स्थानोंके बीचके स्थानमें जो द्रव्यका प्रमाण होता है, उसको मध्यधन कहते हैं। जहाँ स्थानोंका प्रमाण सम होता है, वहाँ बीचके दो स्थानोंके द्रव्यको जोड़कर आधा करनेपर जो प्रमाण होता है, उसे मध्य धन कहते हैं। जितना मुखका प्रमाण हो उतना-उतना सब स्थानोंका ग्रहण करके जोड़ने पर जो प्रमाण हो, उसे आदिधन कहते हैं। सब स्थानोंमें जो-जो चय बढ़े, उन सब चयोंको जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उसे उत्तरधन
२० या चयधन कहते हैं। इस प्रकार आदिधन और उत्तरधनको मिलाने पर सर्वधन होता है। अब इनका प्रमाण जाननेके लिए करणसूत्र कहते हैं—'मुख आदि स्थान और भूमि अन्त-स्थानको जोड़कर उसका आधा करके उसे गच्छसे गुणा करनेपर पदधन अर्थात् सर्वधन होता है। और आदिधनको अन्तधन में से घटानेपर जो शेष रहे, उसको चयसे भाग देनेपर जो आवे, उसमें एक मिलानेपर स्थानोंका प्रमाणरूप पद वा गच्छका प्रमाण आता है। तथा
२५ पद या गच्छके वर्गका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आये उसे संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उसे चय जानना। सर्वत्र सर्वधनको गच्छसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे, उसमेंसे मुखको घटाकर जो शेष रहे, उसमें से एक घटाकर गच्छके आधे प्रमाणसे भाग देनेपर, चयका प्रमाण होता है' अथवा 'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभाजितः प्रचयः।' इस वचनके अनुसार सब स्थानसम्बन्धी आदि धनको सर्वधनमें-से घटाकर शेषको-
३० गच्छके प्रमाणके वर्गमें-से गच्छका प्रमाण घटाकर जो शेष रहे, उसके आधेका भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है। तथा उत्तर धनको सर्वधनमें-से घटाने पर जो शेष रहे, उसको गच्छ-से भाग देने पर मुखका प्रमाण आता है। तथा 'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं' इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छको चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसमें मुखका प्रमाण जोड़ने पर अन्तधन होता है। मुख और अन्तधनको मिलाकर उसका आधा करने पर
३५ मध्यधन होता है। पदसे मुखको गुणा करने पर आदिधन होता है। यह श्रेणिव्यवहार गणितका कुछ स्वरूप दिया है।

डुगुं त्रिकालवर्त्तिनानाजीवाधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ संख्यातलोकप्रमितंगळ्गे संदृष्टिद्वासप्तत्युत्तर-त्रिसहस्रमक्कुं ३०७२ ॥ अधःप्रवृत्तकरणकालं गच्छेयक्कु मदक्के संदृष्टि पदिनारु १६ प्रति-समयपरिणामवृद्धियुमबुदोंदक्के संदृष्टि ४ मत्ते संख्येयरूपंगळु मूरु ३ इल्लियूर्द्धरचनेयोळादि प्रमाणंतरल्पडुगुमाव प्रकारदिदमेंदोडे पदकृदि संखेण भाजिदे पचय बेंदिदरिदं समस्तधनमनिदं ३०७२॥ पदमं वुदिद १६ र कृतियिंदं २५६ ॥ संख्येयरूपंगळ्मूररिंदमुं ३ भागिसुत्तिरलावुदो दु लब्धमदु चयप्रमाणमक्कुं ४ व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छमेंदिदरिंदं रूपोनपद १५ मर्द्धिसि $\frac{15}{2}$ चयदिदं गुणियिसि $\frac{15}{2}$।४ मत्ते गच्छेयिंदं १६ गुणियिसुवुदु $\frac{15}{2}$।४।१६ इदनपवर्त्तिसि गुणियिसिद लब्धमशीत्युत्तरचतुश्शतप्रमाणचयधनमक्कुं ४८० ॥ चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदि परिमाण मेंदी सूत्राभिप्रायदिदं समस्तधनदोळु ३०७२ चयधनमनिदं ४८० ॥ कळेदुळिद शेष २५९२ मिदं पददिदं १६ भागिसुत्तिरलु लब्धमादि प्रमाणमक्कुं १६२ ॥ 'आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणेमेंदी सूत्रदिदं मोडि प्रमाणं १६२ ॥ चयदि ४ नभ्यधिकमागुत्तिरलु द्वितीय-समयपरिणामधनप्रमाणमक्कुं १६६ ॥ मिदरोळु पूर्व्वोक्तचयदि ४ नभ्यधिकमागुत्तिरलु तृतीय-

परिणामवृद्धिप्रमाणं चत्वारः ४, संख्येयरूपाणि त्रीणि ३, ऊर्ध्वरचनायां धनमानीयते—सर्वपरिणामधने ३०७२ पद १६ कृत्या २५६ संख्यातरूपैश्च ३ भक्ते $\frac{३०७२}{२५६ \times ३}$ सति प्रतिसमयपरिणामप्रचयप्रमाणं भवति ४, तथा व्येकपदार्धं ($\frac{१५}{२}$) धनचय $\frac{१५}{२} \times ४$ गुणो गच्छः ($\frac{१५}{२} \times ४ \times १६$) प्रचयधनप्रमाणं भवति ४८०, अनेन प्रचयधनेन सर्वधनं ३०७२ हीनयित्वा २५९२ पदेन १६ भक्ते लब्धं प्रथमसमयपरिणामसंख्या भवति। १६२ अस्यामेकैकस्मिन् प्रचये ४ वर्धिते सति द्वितीयतृतीयादिसमयवर्तिपरिणामानां संख्या भवन्ति ताः इमाः—

अब अधःकरण सम्बन्धी सर्वधन आदिका वर्णन संदृष्टिके द्वारा दिखाते हैं—

विशेषार्थ—वास्तविक अर्थको समझानेके लिए जो अंक कल्पित करके दिखाये जाते हैं, उन्हें अंक संदृष्टि कहते हैं। जैसे आगे अधःप्रवृत्तकरण काल अन्तर्मुहूर्तके लिए १६, अधः-प्रवृत्तकरणमें होनेवाले परिणामोंकी संख्या असंख्यात लोक प्रमाणके लिए ३०७२ आदि संख्या कल्पित की है, उसके द्वारा उक्त कथनको आगे स्पष्ट करते हैं। कल्पना कीजिए कि अधः-प्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणाम तीन हजार बहत्तर ३०७२ हैं। अधःप्रवृत्तकरणका काल १६ सोलह समय है। प्रतिसमय परिणामोंकी वृद्धिका प्रमाण ४ चार है। संख्यातका प्रमाण तीन ३ है। अब ऊर्ध्व रचनाके लिए धन लाते हैं। प्रति समय सम्बन्धी ऊपर-ऊपर ऊर्ध्वरूप रचना करनेको ऊर्ध्वरचना कहते हैं। उसके लिए धन आदिका प्रमाण लाते हैं। 'पदके वर्गसे और संख्यातसे सर्वधनमें भाग देनेपर प्रचयका प्रमाण आता है', इस गणित सूत्रके अनुसार सर्वपरिणाम धन ३०७२ में पद १६ के वर्ग २५६ तथा संख्यात रूप तीनसे भाग देने पर $\frac{३०७२}{२५६ \times ३}$ चार ४ आता है जो समय-समयमें परिणामोंमें जितनी वृद्धि होती है, उसका प्रमाण है। इसे प्रचय कहते हैं। तथा 'एक हीन पदको चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर चय धनका प्रमाण आता है'। इस सूत्रके अनुसार एक हीन पद १५, उसका आधा $\frac{१५}{२}$ को चयसे गुणा करो $\frac{१५}{२} \times ४$ तथा गच्छसे गुणा करो $\frac{१५}{२} \times ४ \times १६$। ऐसा करनेपर ४८० चय धनका प्रमाण होता है। इस चयधनको सर्वधन ३०७२ में-से कम करने पर २५९२ शेष रहता है। इसे पद १६ से भाग देने पर लब्ध १६२ प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंकी संख्या होती

१. म भागिसल्पडुत्ति°। २. म मादि प्रमाण दोलु। ३. म °मवनप्रभाणवनप्रमाण°।

समयपरिणामधनप्रमाणमक्कु १७० इल्लिमत्तं चयदिं ४ दम्यधिकमागुत्तिरलु चतुर्थसमय-परिणामधनप्रमाणमक्कु १७४ मितु प्रतिसमयमी ४ विशेषाधिक क्रमदिंदं परिणामंगळु प्रवृद्धंगळक्कु मन्नेवरं चरमसमयपरिणामधनप्रमाणं पुट्टदुमन्नेवरमिदरुत्पत्तिक्रममंतेने व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साध्यं तद्धनं भवेदेंदिदरिंदं रूपोनपदमं १५ चयदिदं ४ गुणिसुत्तिरलु १५।४। लब्ध ६० मरु-वत्तुमदु सहितमप्पादि १६२ यंत धनप्रमाणमक्कु २२२ मिदनो दुबारि चयदिदं ४ हीनं माडुत्ति-रलु द्विचरमसमयधनप्रमाणमक्कु २१८ मितूर्ध्वरचनेयोळधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमय-मादियागि चरमसमयपर्य्यंतं प्रतिसमय धनंगळनु स्थापिसियल्लि प्रथमसमय परिणामंगळ त्रिकालवर्त्तिनानाजीवसंबंधिगळप्प जघन्यमध्यमोत्कृष्टंगळ समूहमधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैक-भागमात्रनिर्वर्गणकांडकसमयमात्रंगळप्प खंडंगळु माडल्पडुवुवु विशेषाधिकंगळु। 'अणुकट्टि-पदेण हिदे पचये पचयं तु होदि तेरिच्छे' एंदीसूत्रविदमूर्ध्वरचनाचयम ४ निदननुकृष्टिपदंदिदं ४ भागिसुत्तिरलु लब्धमो १ दिदऽननुकृष्टिचयप्रमाणमक्कुमिल्लियनुकृष्टि येंबुदनेंदोडे—"अधस्तन-समयपरिणामखंडानामुपरितनसमयपरिणामखंडैस्साद्धं सादृश्यमनुकृष्टिः" एंदी लक्षणदिंदमनु-कृष्टियं निश्चैसुवुदु। इल्लियुं व्येकपदार्द्धघनचयगुणोगच्छ ३।१।४। मुत्तरधनमेंदिदरिंदमनुकृष्टिचय-धनमनिदं ६ तंदु ऊर्ध्वरचनासंबंधिप्रथमसमयसमस्तपरिणामधन १६२ मिदरोळु "चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाण" मेंबी सूत्रदिंदमा चयधनमं कळेद शेष १५६ मिदं पददिदं

१६६। १७०। १७४। १७८। १८२। १८६। १९१। १९४। १९८। २०२। २०६। २१०। २१४। २१८। २२२॥ अस्यामन्त्यधनस्यानयनन्तु व्येकपदं १५ चया (४) भ्यस्तं ६० तदादि १६२ सहितं इति भवति २२२। अत्र चैकचये ४ अपनीते द्विचरमसमयधनं भवति २१८। एतान्युक्तधनानि अधःप्रवृत्तकरण-प्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तमुपर्युपरि स्थापयितव्यानि। अथानुकृष्टिरचनोच्यते—तत्र अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमय-परिणामखण्डानां उपरितनसमयपरिणामखण्डैः सादृश्यं भवति। अनुकृष्टिगच्छः ऊर्ध्वगच्छे संख्यातेन भक्ते (१६/४) लब्धमात्रः (४), अनुकृष्टिचयः ऊर्ध्वचये अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते (४/४) लब्धमात्रो भवति १। प्रथमसमय-समस्तपरिणामधने १६२ व्येकपदार्द्धघनचयगुणो गच्छः—(३/२×१×४) अनुकृष्ट्युत्तरधनं ६ तदपनीय शेषे १५६ अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति (१५६/४) लब्धं ३९ प्रथमसमयपरिणामानां प्रथमखण्डप्रमाणं भवति। इदमेव

है। इसमें एक-एक चय ४ बढ़ाने पर दूसरे-तीसरे आदि समयवर्ती परिणामोंकी संख्या होती है—जो इस प्रकार है—१६०।१७०।१७४।१७८।१८२।१८६।१९०।१९४।१९८।२०२।२०६।२१०।२१४। २१८।२२२॥ अन्त्यधन लानेके लिए सूत्र इस प्रकार है—'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादि सहितं धनम्।' एक हीन पद १५ को चय ४ से गुणा करने पर ६० होते हैं। उसमें आदि धन १६२ को जोड़नेसे २२२ अन्त्यधन होता है इसमें एक चय ४ को घटाने पर द्विचरम समयवर्ती परिणामोंका प्रमाण २१८ होता है। इन उक्त धनोंको अर्थात् प्रतिसमयमें होनेवाले परिणामों-को अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त ऊपर-ऊपर स्थापित करना चाहिए। आगे अनुकृष्टि रचना कहते हैं—

नीचेके समयमें होनेवाले परिणामोंके खण्डका ऊपरके समयमें होनेवाले परिणामोंके साथ जो समानता होती है, उसका नाम अनुकृष्टि है। अर्थात् ऊपरके और नीचेके समय सम्बन्धी परिणामोंके जो खण्ड परस्परमें समान जैसे हों, तैसे एक समयके परिणामोंके खण्ड

१. स्यांत-।

भागिसुत्तिरलु लब्ध ३९। मिदु प्रथमसमयपरिणामप्रथमखंडप्रमाणमक्कुमिदी खंडमे सव्वजघन्यपरिणामपुंजमक्कुमी खंडपरिणामव्यक्तिगळगेल्ल मेल्लियुं सादृश्याभावमप्पुदरर्त्तणिदंमीखंडपरिणामविशुद्धिगळिदं हीनविशुद्धिपरिणाममावसमयदनुकृष्टिखंडंगळोळमभावमप्पुदरिंदमेंदरिगु। ई प्रथमखंडदोळु आदिम्मि चये उड्ढे एंदिदरिंदं अनुकृष्टचयमं कूडुत्तिरलु द्वितीयं प्रथमसमयपरिणामखंडमक्कुं ४० मितु तृतीयादिखंडंगळुं तिर्य्यक्चयदिनभ्यधिकंगळु स्वचरमखंडपर्य्यंतं ४२ तिर्य्यक्कागि स्थापयितव्यं गळक्कुमल्लि बळिक्कं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथमखंडमदु प्रथमसमयखंडमं नोड ३९ ल्लि [1]शेषाधिकमक्कु ४० मिदुवं द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुंजदो १६६ ळनुकृष्टिचयधनमनारं हीनं माडिशेषमनिद १६० ननुकृष्टिपदंदिदं ४ भागिसि बंद लब्धमा नाल्वत्तक्कुत्पत्ति सिद्धमप्पुदरिंद मल्लि बळिक्कमा द्वितीयसमयद द्वितीयादिखंडंगळुं विशेषाधिकंगळु ४१।४२।४३। इल्लि द्वितीयसमयप्रथमखंडमं ४० [2]प्रथमसमयद्वितीयखंडदोडने समानमक्कुं मितु

सर्वजघन्यखण्डं अन्येषां खण्डानां परिणामसंख्याविशुद्धिभ्यां ततोऽधिकत्वसंभवात्। तत्प्रथमखण्डे चैकस्मिन्ननुकृष्टिचये युते तद्द्वितीयखण्डं भवति।४०। एवं तृतीयादीनि चरमखण्डपर्यन्तानि तिर्यगेकैकचयाधिकानि स्थाप्यानि ४१, ४२। ततः परं द्वितीयसमयप्रथमखण्डं प्रथमसमयप्रथमखण्डात् ३९ एकविशेषाधिकं भवति ४०। द्वितीयसमयसमस्तपरिणामेषु १६६ अनुकृष्टिचयधनेन ६ न्यूनयित्वा १६० अनुकृष्टिपदेन

करनेका नाम अनुकृष्टि है। सो ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवें भाग अनुकृष्टिका गच्छ है। सो अंक संदृष्टिकी अपेक्षा ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह १६ है। उसमें संख्यातके प्रमाण चारसे भाग देनेपर चार अनुकृष्टिके गच्छका प्रमाण है। अर्थात् अनुकृष्टिके खण्डोंका प्रमाण चार जानना। तथा ऊर्ध्व रचनाके चयमें अनुकृष्टिके गच्छका भाग देनेपर अनुकृष्टिका चय आता है। सो ऊर्ध्वचय चारमें अनुकृष्टिके गच्छ चारसे भाग देनेपर एक आया। वही अनुकृष्टिका चय है अर्थात् प्रत्येक खण्डमें होनेवाली वृद्धिका प्रमाण एक है। प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणाम १६२ हैं। वही यहाँ प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टि रचनाका सर्वधन है। 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्', इस सूत्रके अनुसार गच्छ चारमें-से एक कम करके उसका आधा करके तथा उस आधेको चय और गच्छसे गुणा करनेपर (३ × १ × ४) अनुकृष्टिका उत्तर धन ६ होता है। इस उत्तर धन छहको सर्वधन १६२ में से घटानेपर शेष १५६ एकसौ छप्पन रहे। उसमें अनुकृष्टिके गच्छ चारका भाग देनेपर ३९ आये। वही प्रथम समय सम्बन्धी परिमाणोंके प्रथम खण्डका प्रमाण है। यही सबसे जघन्य खण्ड है, क्योंकि इस खण्डसे अन्य सब खण्डोंके परिणाम संख्या और विशुद्धिमें अधिक होते हैं। उस प्रथम खण्डमें अनुकृष्टिका चय एक जोड़नेपर उसीके दूसरे खण्डका प्रमाण चालीस ४० होता है। इस तरह तीसरेको आदि लेकर अन्तिम खण्ड पर्यन्त तिर्यक् रूपसे एक-एक चय अधिक करके स्थापित करना चाहिए ४१।४२। अर्थात् तीसरे खण्डके परिणामोंकी संख्या ४१ और अन्तिमकी ४२ है। ऊर्ध्व रचनामें जहाँ प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम स्थापित किये, उनके आगे-आगे बराबरमें इनकी स्थापना करनी चाहिए। ये खण्ड परिणाम एक समयमें वर्तमान अनेक जीवोंके एक साथ पाये जाते हैं, इसलिए इनको बराबरमें स्थापन किया है। उससे ऊपर द्वितीय समयका प्रथम खण्ड प्रथम समयके प्रथम खण्ड ३९ से एक विशेष अधिक होता है, इससे उसका प्रमाण चालीस ४० है। क्योंकि द्वितीय समयके समस्त परिणाम १६६ में अनुकृष्टिका चयधन

१. म द्विशेषा°। २. म ४० नाल्वत्तु प्र°।

द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडंगळु प्रथमसमयतृतीयादिखंडंगळोडने सदृशंगळरियल्पडुगुं। द्वितीयसमयचरमखंडमदुमत्ते प्रथमसमयखंडंगळोळोंदरोळमप्पुदं सदृशमल्तु। बळिक्कमल्लिदं तृतीयादिसमयंगळोळ प्रथमादिखंडपरिणामंगळु ४१।४२।४३।४४। मनंतराधस्तनखंडपरिणामंगळं नोडल्विशेषाधिकंगळ्वेकें दोडे ऊर्ध्वचयदिदं मधिकंगळप्पुदरिंवमित्तधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयखंडपरिणामपुंजपर्य्यंतमरियल्पडुवुवु। ५४। ५५। ५६। ५७। इवरोळु सर्व्वजघन्यखंडपरिणामंगळगं ३९ सर्वोत्कृष्टखंडपरिणामंगळग ५७। मेल्लियुं सादृश्यमिल्ल मुळिदंतुपरितनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळाधस्तनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळोडने मेणुपरितनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळोडनधस्तनपरिणामपुंजंगळगे यथासंभवमागि सदृशत्वमुंटिलि मुख १६२। भूमि २२२। जोग ३८४। दळे १९२। पदगुणिदे १९२। १६। पदधणं होदि ३०७२। एंदी सर्व्वधनंतरल्पडुगुं।

---

४ भक्तेषु तदुपपत्तिसंभवात्। तदग्रे द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डान्येकैकचयाधिकानि सन्ति ४१। ४२। ४३। अत्र द्वितीयसमयप्रथमखण्डं ४० प्रथमसमयद्वितीयखण्डेन समानं। एवं द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डानि प्रथमसमयस्य तृतीयादिखण्डैः सदृशानि। किन्तु द्वितीयसमयचरमखण्डं प्रथमसमयसर्वखण्डेषु केनापि न सदृशं। पुनस्तृतीयादिसमयेषु प्रथमादिखण्डादि ४१। ४२। ४३। ४४। अनन्तराधस्तनखण्डेभ्यो विशेषाधिकानि ऊर्ध्वचयेन अधिकत्वात्। एवमधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयचरमखण्डपर्यन्तं ज्ञातव्यं ५४। ५५। ५६। ५७। अत्र सर्वजघन्यखण्डपरिणामानां ३९ सर्वोत्कृष्टखण्डपरिणामानां ५७ च कैरपि सादृश्यं नास्ति शेषाणामेवोपर्यधस्तनसमयवर्तिपरिणामपुञ्जानां यथासंभवं तत्संभवात्। अत्र मुख १६२ भूमि २२२ योग ३८४ दले १९२ पदगुणिदे १९२ × १६ पदधनं ३०७२ होदीति सर्वधनमानेतव्यं।

छह ६ घटानेसे शेष रहे १६० में अनुकृष्टिके गच्छ ४ का भाग देनेसे चालीस उत्पन्न होते हैं। उसके आगे द्वितीय समयके द्वितीय आदि खण्ड एक-एक चय अधिक होते हैं ४१।४२।४३। यहाँ द्वितीय समयका प्रथम खण्ड ४० प्रथम समयके द्वितीय खण्डके समान है। इसी तरह द्वितीय समयके द्वितीय आदि खण्ड प्रथम समयके तृतीय आदि खण्डोंके समान हैं। किन्तु द्वितीय समयका अन्तिम खण्ड प्रथम समयके सब खण्डोंमें किसीसे भी समान नहीं है। पुनः तृतीय आदि समयोंके प्रथम आदि खण्ड द्वितीय आदि समयोंके प्रथम आदि खण्डोंसे एक अधिक हैं। अतः तृतीय समयके ४१।४२।४३।४४। चतुर्थ समयके ४२।४३।४४।४५। पंचम समयके ४३।४४।४५।४६। षष्ठ समयके ४४।४५।४६।४७। सप्तम समयके ४५।४६।४७।४८। अष्टम समयके ४६।४७।४८।४९। नवम समयके ४७।४८।४९।५०। दसवें समयके ४८।४९।५०।५१। ग्यारहवें समयके ४९।५०।५१।५२। बारहवें समयके ५०।५१।५२।५३। तेरहवें समयके ५१।५२।५३।५४। चौदहवें समयके ५२।५३।५४।५५। पन्द्रहवें समयके ५३।५४।५५।५६। सोलहवें समयके ५४।५५।५६।५७ खण्ड जानना। यहाँ सबसे जघन्य खण्ड परिणाम ३९ और सबसे उत्कृष्ट खण्ड परिणाम ५७ की किसीसे भी समानता नहीं है। शेष समस्त ऊपर और निचले समय सम्बन्धी परिणाम पुंजोंकी यथा सम्भव समानता सम्भव है। यहाँ 'मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि' इस सूत्रके अनुसार सर्वधन निकालना चाहिए। सो मुख १६२, भूमि २२२, इनका जोड़ ३८४, इसको आधा करने पर १९२, इसको पदसे गुणा करनेपर १९२ × १६ = ३०७२ सर्वधन आता है।

---

१. म नोडि-। २. ब °यतु°।

अनंतरमो अधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळर्थसंदृष्टियिंदं विन्यासं तोरल्पडुगुं अदेंतेने :—
त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिगळप्पधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळतत्कालसमस्तसमयसंभविगळप्प
परिणामंगळनितुमसंख्यातलोकमात्रमक्कु ≡ अ । मिल्लियधःप्रवृत्तकरणकालमे गच्छमक्कुं
२१११ मत्तं पदकदिसंखेण भाजिदे पचयमेंदी सूत्रेष्टदिंदमी समस्तधनमं ≡ अ पदकृतियिंदमुं
≡ अ
संख्येयरूपुगळिंदमुं भागिसुत्तिरलिदू २१११।२१११।१ ध्वंचयमक्कुं । व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो
गच्छ उत्तरधनमेंदी सूत्राविधानदिदं रूपोनगच्छार्द्धदिंदं २१११।२ प्रचयमं गुणियिसि

≡ अ २१११ ≡ अ २१११।२१११
२१११।२१११।१।२ मत्तं गच्छदिंदं गुणियिसि २१११।२१११।१।२ बळिक्किदं

≡ अ २१११
२१११।१।२ चरयण (चयधण) होणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाण मेंवी सूत्रेष्ट-

---

अथ अर्थसंदृष्ट्या विन्यासो दर्श्यते—तद्यथा त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनः[3] अधःप्रवृत्तकरणकाल-
समस्तसमयसंभविनः सर्वपरिणामा असंख्यातलोकमात्राः संति ≡ अ । अधःप्रवृत्तकरणकालो गच्छ. २१११
समस्तधने ≡ अ पदकृत्या २१११×२१११ संख्यातेन च १ भक्ते[5] सति ऊर्ध्वप्रचयो भवति
≡ अ ≡ अ
२१११।२१११।१। रूपोनगच्छार्धेन २१११ प्रचयं गुणित्वा २१११, २१११।१
२
° ≡ अ °
×२१११ गच्छेन गुणिते २१११, २१११, १, २१११ ×२१११ अपवर्तितं चयधन-
२ २

विशेषार्थ—केशववर्णीकी इस टीकामें यह तो सर्वधन आदिका प्रमाण कल्पना करके समझानेके लिए किया है, उसीमें अर्थ संदृष्टिके द्वारा विस्तारसे यथार्थ वर्णन भी है; किन्तु उसका अर्थ एक तो कठिन है, दूसरे बहुत विस्तार होनेसे ग्रन्थका विस्तार होनेके साथ पाठकोंको भी कठिनाई हो सकती है। अतः जैसे पं. टोडरमलजी साहबने अर्थ संदृष्टिअधिकार अलग लिखा है, तदनुसार सम्भव हुआ तो अलगसे लिखेंगे। यहाँ हम पं. जी साहबके अनुसार मूल टीकाका आशय मात्र दे रहे हैं। आगे भी अर्थसंदृष्टियोंके सम्बन्धमें हम ऐसा ही करेंगे। त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी समस्त अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोक मात्र हैं सो यहाँ सर्वधन जानना। इसीके स्थानमें अंक संदृष्टिमें ३०७२ कल्पना किया है। अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र, उसके जितने समय हों सो यहाँ गच्छ जानना। इसीके स्थानमें १६ संख्या कल्पित की है। सर्वधनमें गच्छके वर्गसे भाग देवें। फिर यथासम्भव संख्यातका भाग देवें। जो प्रमाण आवे सो ऊर्ध्वचय जानना। एक कम गच्छको आधा करके उसे चयसे तथा गच्छके प्रमाणसे गुणा करने पर जो प्रमाण आवे सो उत्तर धन जानना। इस उत्तर धनको सर्वधनमें-से घटाकर जो शेष रहे, उसे ऊर्ध्व-

१. म सूत्रेंदिदमी। २. म अपवर्तितसुतविरलुबदचयधनमिदुबलि। ३. ब °नः समस्ता अधःप्रवृत्तकरणपरिणामा अस°। ४. ब तेषु च अधः प्रवृत्तकरणकालस्य २१११ कृत्या। ५. ब भक्तेषु सत्सु। ६. ब गुणयित्वा।

≡ २ १ १ १ । १ । २

दिदं समच्छेदमं विचारिसि माडिदो समस्त धनदोळु २ १ १ १ । १ २ चय धनदोळिर्द्द ऋणरूपं

≡ a १

तेगेदु बेरिरिसि २ १ १ १ । १ । २ मत्तमसंख्यातलोकाऽऽवलिसंख्यातत्रयांकंगळप्प गुण्यंगळगे सादृश्यमं तोरि तोरलिल्लद मुंदण द्विगुणसंख्यातांकदोळि १ २ दरोळु चयघनदात्मप्रमाणमोंदु

≡ २ १ १ १ । १ १

रूपुं कळेयल्पडुगुं २ १ १ १ । १ । २ मुन्नं बेरे तेगेदिरिसिद चय धनद ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशेर्द्धनं भवति एंबी न्यायदिंदमसंख्यातलोकक्कसंख्यातलोकमं तोरि समच्छेदमप्पुदें तोरलिल्लद गुणकारंगळेल्लवर मेलधिकमं माडि....यूर्ध्वपदविदं २ १ १ १ । भागिसुत्तिरलु त्रिकालगोचर समस्तजीवंगळगे अधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमयसंभवपरिणामंगळ पुंजप्रमाणमक्कुं

≡ a ≡ a २ १ १ १ । १ २ ।

मिदं तच्च २ १ १ १, १, २ १ १ १ समच्छेदीकृतसमस्तधनमध्ये २ १ १ १ । १ । २ ।

२

≡ a । १

चयघनस्थं ऋणरूपं पृथक् संस्थाप्य २ १ १ १ । १ । २ असंख्यातलोकावलित्रिसंख्यातात्मकगुणस्य सादृश्यं

≡a २ १ १ १ । १ । २ ।

प्रदर्श्य अग्रस्थद्विगुणसंख्याते १ । २ । चयघनस्य आत्मप्रमाणमेकरूपमपनीय २ १ १ १ । १ । २ पृथक् स्थापितचयधनस्य ऋणरूपं 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति न्यायेनासंख्यातलोकस्यासंख्यातलोकं प्रदर्श्य शेष-

≡ a । २ १ १ १ । १ । २ ।

गुणकारस्योपर्यधिकं कृत्वा २ १ १ १ । १ । २ ऊर्ध्वपदेन २ १ १ १ भक्ते सति त्रिकालगोचरस-

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

मस्तजीवानामधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमयसंभविपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २

गच्छका भाग देनेपर त्रिकालवर्ती समस्त जीवोंके अधःप्रवृत्तकरण कालके प्रथम समयमें होनेवाले परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इसीके स्थानमें १६२ का अंक कल्पित किया है। उस परिणामपुंजमें एक ऊर्ध्वचय जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी नाना जीवोंके समस्त परिणामोंके पुंजका प्रमाण जानना। ऐसे ही ऊपर भी समय-समय प्रति एक-एक चय जोड़नेसे परिणामोंके पुंजका प्रमाण आता है। इनमें-से प्रथम समय सम्बन्धी परिणामपुंजमें एक कम गच्छ प्रमाण चयको जोड़नेपर अन्त समय सम्बन्धी नाना जीवोंके समस्त परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। उसमें-से एक चय घटानेपर द्विचरम समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी समस्त विशुद्ध परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इस तरह ऊपर-ऊपर जो ऊर्ध्वरचना है, उसमें समय-समय सम्बन्धी अधःप्रवृत्तके परिणामपुंजका प्रमाण कहा है।

१. म घण्यंगल। २. म मंगल।

≡ ठ २ १ । १ १ । १ २

२ १ १ १ । २ १ । २ १ १ १ इल्लि आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयघणं भावाणं मेंबी सूत्राभिप्राय-

≡ ठ

दिंदमी २ १११२ । १ १ १ । १ प्रचयमं रूपद्वयदिंदं समच्छेदमं माडि गुणकारभूतरूपद्वयमनसंख्यात-लोकक्कसंख्यातलोकमं तोरि समच्छेदमुंटप्पुदरिंदं कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयदोळु नानाजीवसमस्त-

≡ २ १ १ १ १ २

परिणामपुंजप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ मितु प्रतिसमयमुं रूपोन गच्छ प्रमितचयंगळु प्रथमसमयपरिणामपुंजदोळु प्रक्षिप्तंगळागुत्तं विरलु मल्लल्लिय नानाजीवसंबंधिपरिणामपुंज प्रमाणमक्कुमदु कारणमागि चरमसमयदोळु 'व्येकंपदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंत धनं भवे' दें बी

≡ ठ २ १ १ १

न्यायमादुवेदरियल्पडुगुं अदरिंदं रूपोनोर्ध्वगच्छहृतचयंगळु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ मेरडुरूपु

≡ ठ २ १ १ १ २

गळिंदं समच्छेदमं माडि २ १ १ १ । १ १ १ । १ । २ रुणरूपद्वयम बेरे तेगेदिरिसि

≡≡≡≡≡≡≡≡ठ

अस्योपर्यूर्ध्वप्रचये २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ द्वाभ्यां समच्छेदेन गुणकारभूतद्वये असंख्यातलोकस्यासंख्यात-

३

≡≡≡≡ठ । २ १ १ १ । १ । २

लोकं प्रदर्श्य युते द्वितीयसमयनानाजीवसमस्तपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ एवमुपर्यपि प्रतिसमयं कुर्यात् । रूपोनगच्छप्रमितचयेषु प्रथमसमयपरिणामपुञ्जे युतेषु चरमसमयनानाजीवसंबन्धि परिणामपुञ्जप्रमाणं स्यात् । तद्यथा—व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यन्तधनं भवेत् इति रूपोनोर्ध्वगच्छहृतचयेषु

≡≡≡≡≡ठ २ १ १ १ ≡ ठ २ १ १ १ २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ द्वाभ्यां समच्छेदेन २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऋणरूपद्वयं पृथक्

विशेषार्थ—आगे कषायाधिकारमें विशुद्धि परिणामोंकी संख्या कहेंगे। उनमें-से अधःकरणमें होनेवाले शुभलेश्या और संज्वलन कषायके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयुक्त विशुद्धि परिणामोंकी संख्या त्रिकालवर्ती नाना जीवोंके असंख्यात लोकमात्र है। उनमें-से जिन जीवोंको अधःप्रवृत्तकरण माड़े हुए पहला समय है, उन त्रिकाल सम्बन्धी अनेक जीवोंके जो परिणाम सम्भव हैं, उनके समूहको प्रथम समय परिणाम पुंज कहते हैं। जिन जीवोंको अधःकरण प्रारम्भ किये हुए दूसरा समय है, उन त्रिकाल सम्बन्धी अनेक जीवोंके जो परिणाम होते हैं, उनके समूहको द्वितीय समय परिणामपुंज कहते हैं। इसी तरह क्रमसे अन्त समय पर्यन्त जानना। सर्व समय सम्बन्धी परिणामोंके पुंजको जोड़नेपर असंख्यात लोक मात्र प्रमाण होता है।

इन अधःप्रवृत्तकरण कालके प्रथम आदि समय सम्बन्धी परिणामोंके विषयमें त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी प्रथम समयके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदवाला जो परिणाम

≡ a ०२
२१११।२११।१२ प्रथमसमयपरिणामपुंजदोळंकसादृश्यमं तोरि तोरलिल्लद मुंदण-
गुणकारदोळु १ २ तत्रत्य ऋणमं शोधिसि शेषैकरूपमं माडि १ २ मुन्न तेगेदु वेरिरिसिद
ऋणरूपद्वयमं धनस्य ऋणं राशिऋणं भवति एंबी न्यायदिंदमसंख्यातलोकमुंदण गुणाकारंगळो-
५ ळिर्द्द धनरूपं शोधिसि कळदुळिद रूपनोंदना स्थानदोळु होनं माडुवुदंतु माडुत्तिरलु चरमसमय-

≡a २१११११२
समस्त परिणाम पुंजमक्कु २१११।२१११।२ मिल्लियोंदु चयमं समच्छेदमं माडि
कळियुत्तिरलु द्विचरमसमयवर्त्तिनानाजीवसंबंधि समस्तविशुद्धिपरिणामपुंजप्रमाणमक्कुं

≡ २१११११२
१० २१११।२१११।१।२ ई यधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमादिसमयपरिणाममंगळोळगे

≡ a।२
संस्थाप्य २१११।२१११।१।२ प्रथमसमयपरिणामपुञ्जे सादृश्यरहिताग्रतनगुणकारे १ २
स्थितऋणं शोधयित्वा शेषैकरूपं प्रक्षिप्य १ २ पृथक् [२]संस्थाप्य तत् ऋणरूपद्वयं' धनस्य ऋणं राशेः ऋणं
भवतीति न्यायेन असंख्यातलोकस्याग्रतनगुणकारस्य धनरूपं शोधयित्वा शेषरूपं तत्रोनयेत्। एवंकृते

≡ a।२१११।१।२
१५ चरमसमयसमस्तपरिणामपुञ्जो भवति २१११।२१११।१। २ अत्रैकचये समच्छेदेन अपनीते

≡a।२११।१।२
द्विचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबन्धिसमस्तविशुद्धिपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २१११।२१११।१। २

पुंज कहा, उसके अधःप्रवृत्त करण कालके जितने समय हैं उनको संख्यातका भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे, उतने खण्ड करो। वे खण्ड निर्वर्गणाकाण्डकके जितने समय हैं, उतने
२० होते हैं। वर्गणा अर्थात् समयोंकी समानता। उससे रहित जो ऊपर-ऊपर समयवर्ती परिणाम खण्ड हैं, उनका काण्डक अर्थात् सर्वप्रमाण, उसीको निर्वर्गणाकाण्डक कहते हैं। उसके समयोंका प्रमाण अधःप्रवृत्तकरण कालरूप ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवें भाग मात्र है। सो यही प्रमाण अनुकृष्टिके गच्छका है। एक-एक समय सम्बन्धी परिणामोंमें अनुकृष्टिके गच्छ-प्रमाण खण्ड होते हैं। वे खण्ड एक-एक अनुकृष्टिचयप्रमाण अधिक हैं। ऊर्ध्वरचनामें जो
२५ चयका प्रमाण कहा है, उसको अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेसे जो लब्ध आता है, वही अनुकृष्टिचयका प्रमाण है। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्।' इस सूत्रके अनुसार एक कम अनुकृष्टिके गच्छके आधे प्रमाणमें अनुकृष्टिचयसे गुणा करनेपर तथा अनुकृष्टि गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही अनुकृष्टिका चयधन होता है। इसको, ऊर्ध्वरचनामें जो प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामपुंजका प्रमाणरूप सर्वधनका

३० १. क लोकद्वयमुं। २. संस्थापित—प.।

त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिगळप्प प्रथमसमय जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामंगळ समूहमनधः-
प्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्र निर्व्वर्गणकांडकसमयसमानंगळागि २ १ १ खंडंगळ्माडल्प-
डुववु चयाधिकरणगळक्कु। मणुकड्डि पदेण हिदे पचये पचयंतु होदि तरिच्छे एंदी सूत्रेष्टदिंद-
मूर्ध्वरचना चयमननुकृष्टिपददिंदं भागिसुत्तिरलु बंदलब्धमनुकृष्टि चयप्रमाणमक्कु

≡ a १ ५

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ मल्लि शयेकपदार्द्धघ्न चयगुणो गच्छ उत्तरधन में[1]बी सूत्राभि-

≡a २ १ १

प्रायदिंदमनुकृष्टिचयधनमं तंदपवर्त्तिसि २ १ १ १ । २ १ १ १ । २ ऊर्ध्वरचनाप्रथमसमय

≡a २ १ १ १ । १ २ १०

संबंधिसमस्तपरिणामपुंजदोळ् २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ २ 'चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे

≡ a २ १ १ १ १ १

होदि आदिपरिमाणमेंबी सूत्रेष्टदिंद होनमं माडिदो राशियं २ १ १ १ २ १ १ १ १ २

एषामधःप्रवृत्तकरणकालस्य प्रथमादिसमयपरिणामानां मध्ये त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिप्रथमसमयजघन्यमध्य-
मोत्कृष्टपरिणामसमूहस्याधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्रनिर्वर्गणकाण्डकसमयसमानानि २ १ १ खण्डानि
क्रियन्ते तानि चयाधिकानि भवन्ति। ऊर्ध्वरचनाचये अनुकृष्टिपदेन भक्ते लब्धमनुकृष्टिचयप्रमाणं भवति १५

≡≡≡≡≡≡≡≡≡a ।

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छोऽनुकृष्टिचयधनं भवति

≡≡≡≡≡≡≡≡a २ १ १ । २ १ १ ≡a । २ १ १

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ तच्चापवर्त्य २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऊर्ध्वरचना-

≡a । २ १ १ १ । १ । २ २०

प्रथमसमयसंबंधिसमस्तपरिणामपुंजे २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऊनयित्वा शेषे

प्रमाण है, उसमें-से घटानेपर जो शेष रहे, उसको अनुकृष्टिके गच्छसे भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, वही प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डका प्रमाण है। उसमें एक अनुकृष्टि चयको जोड़नेपर प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामोंके द्वितीय खण्डका प्रमाण होता २५
है। इसी तरह तृतीय आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय अधिक अपने-अपने अन्तिम खण्ड पर्यन्त स्थापना करना। अनुकृष्टिके प्रथम खण्डमें एक कम अनुकृष्टिगच्छका प्रमाण तथा अनुकृष्टिचय जोड़नेसे जो प्रमाण होता है, वही अन्तिम खण्डका प्रमाण जानना। उसमें एक अनुकृष्टि चय घटाने पर प्रथम समय सम्बन्धी द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। इस तरह प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम पुंज रूप खण्ड संख्यात आवली प्रमाण हैं। तथा द्वितीय ३०
समय सम्बन्धी परिणामपुंजका जो प्रथम खण्ड है, वह प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डसे

---

१. म मेंदी।

अनुकृष्टिपदविंदं भागिसुत्तिरलु बंधलब्धं प्रथमसमयपरिणामप्रथमखंडप्रमाणमक्कु

≡ ∂ २ १ १ १ १ २ ≡ ∂ २

२ १ १ १ । १ १ १ । १ २ । २ १ १ इदरोळों दनुकृष्टिचयमं २ १ १ १ । १ । २ १ १ १ । २ १ १

≡ ∂ २ १ १ १ १ २

कूडुत्तिरलु प्रथमसमयसमस्तपरिणामंगळ द्वितीयखंडप्रमाणमक्कुं २ १ १ १ २ १ १ १ । २ । २ १ १

मितु तृतीयादिखंडगळुमनुकृष्टिचयदिंदं अभ्यधिकंगळु स्वचरमसमयखंडपर्य्यंतं तिर्य्यग्रूपदिंदं स्थापिसल्पडुवुवु मत्तमिल्लि व्येकपदं चयाभ्यस्त तत्साध्यंत (साद्यंत) धनं भवेत् एंबी सूत्रदिंदं

≡ ∂ २ १ १ २

रूपोनपदमात्रानुकृष्टिचयंगळनेरदिरिंदं समच्छेदमं माडि २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १

यनुकृष्टिप्रथमखंडदोळु कूडुत्तं विरलु चयधनदोळिद्दर्देरडु ऋणरूपिगं प्रथमखंडदोळिद्दर्देरडुं

≡ १ । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ अनुकृष्टिपदेन भक्ते लब्धं प्रथमसमयप्रथमखण्डप्रमाणं भवति

≡ ∂ २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अत्रैकानुकृष्टिचये समच्छेदेन

≡ ∂ २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ युते प्रथमसमयसमस्तपरिणामानां द्वितीयखण्डप्रमाणं भवति

≡ ∂ । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ एवं तृतीयादिखण्डानि अनुकृष्टिचयेन अधिकानि स्वचरमखण्ड-पर्यन्तं स्थापयितव्यानि । तत्र चरमखण्डं तु अनुकृष्टिप्रथमखण्डे रूपोनपदमात्रानुकृष्टिचयान् द्राभ्यां समुच्छिद्य

अनुकृष्टि चय अधिक है; क्योंकि द्वितीय समय सम्बन्धी समस्त परिणामपुंज रूप जो सर्वधन है, उसमें पूर्वोक्त प्रमाण अनुकृष्टिका चयधन घटानेपर जो शेष रहे उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर प्रथम खण्ड सिद्ध होता है। इस द्वितीय समयके प्रथम खण्डमें एक अनुकृष्टि चयको जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंके द्वितीय खण्डका प्रमाण होता है। इस तरह तीसरे आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय अधिक स्थापित करना। एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चयको द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी

१. म परिमाणमक्कु ।

धनरूपिगं सरियें दु शोधिसि बळिक्कं द्विसंख्यातगुणितावलिप्रमितासंख्यातलोकक्कमनिते गुण्यगुणाकारंगळ तोरि तोरलिल्लद रूपोनद्विगुणसंख्यातद्वयरूपिनोळु एरडु रूपं कूडुत्तिरलु

≡ə २ १ १ १ १ २

तत्रत्य ऋणरूपनोंदं शोधिसि शेषैकरूपमल्लि धनमक्कुमिदु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ प्रथमसमयानुकृष्टिचरखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कुमिल्लियोंदनुकृष्टिचयमं कळिवुत्तिरलु द्विचरम- ५

≡ə । २ १ १ १ १ २

खंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १ इंतु प्रथमसमयपरिणाम-पुंजंगळु संख्यातावलि २ १ १ प्रमितंगळें दरियल्पडुवुवु । मत्तं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथम-खंडमुं प्रथमसमयप्रथमखंडमं नोडल्विशेषाधिकमक्कुमें तेने :—

≡ə २ १ १ १ १

२ १ १ १ । १ १ १ । १ । २ १ १ २ इदुवुं द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुंजदोळु १०

≡ə २ १ १ १ १ २ ≡ə २ १ १ १ २ १ १

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ अनुकृष्टिचयधनमिद २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १

≡ə । २ १ १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ ऋणरूपद्वयेन प्रथमखण्डस्थितधनद्वयं समानमिति दत्वा द्विसंख्यात- १५
गुणितावलिप्रमितासंख्यातलोकगुण्यं उभयत्र समानं प्रदर्श्य शेषरूपोनद्विगुणसंख्यातद्वयगतऋणार्थैकं दत्वा

≡ə । २ १ १ १ । १ । २ ॥

शेषैकस्मिन् युते २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ प्रथमसमयानुकृष्टिचरमखण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति । एवं प्रथमसमयपरिणामपुञ्जाः संख्यातावलि २ १ १ प्रमिता ज्ञातव्याः । पुनः द्वितीयसमयपरिणाम-

≡ə २ १ १ १ । १ । २ २०

प्रथमखण्डं प्रथमसमयप्रथमखण्डाद्विशेषाधिकं तदिदं २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ कुतः ?

≡ə २ १ १ १ । १ । २

द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुञ्जे २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ अनुकृष्टिचयधनं

अन्तिम खण्डका प्रमाण होता है। उसमें एक अनुकृष्टिचय घटानेपर द्वितीय समय सम्बन्धी २५
द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। यहाँ द्वितीय समयका प्रथम खण्ड और प्रथम समयका द्वितीय खण्ड दोनों समान हैं। इसी तरह द्वितीय समयका द्वितीयादि खण्ड और प्रथम समयका तृतीयादि खण्ड समान हैं। इतना विशेष है कि द्वितीय समयका अन्तिम खण्ड प्रथम समयके खण्डोंमें किसीके भी समान नहीं है। इसके आगे ऊपर तृतीय आदि समयोंमें

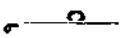

≡ a २ १ १

नवर्वत्तिसि २ १ १ १ २ १ १ १ २ । १ २ कळेदु अनुकृष्टिपदंदिदं भागिसुत्तिरलु सिद्धमप्पुदरिंदं ॥

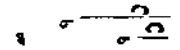

≡ २ १ १ १ १ २

तत्द्वितीयखंडविशेषाधिकं २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ २ १ १ इंदु तृतीयादिखंडंगळु विशेषाधिकंगळागि स्थापिसल्पडुगुं रूपोनानुकृष्टि पदमात्रानुकृष्टिचयंगळं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथम-

≡a २ १ १ १ १ २

खंडदोळु २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ १ १ २ कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयचरमखंडप्रमाणमक्कुं

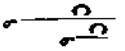

≡a २ १ १ १ १ २

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ २ १ १ इदरोळेकानुकृष्टिचयमं कळेयुत्तिरलु द्वितीयसमय द्विचरम-

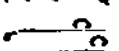

≡a २ १ १ १ १ २

खंडप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ २ १ । १ १ द्वितीयसमयप्रथमखंडमुं प्रथमसमय-

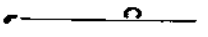

≡a । २ १ १ । २ १ १

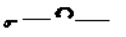

≡a । २ १ १

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अपवर्त्य २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ अपनीय अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति सिद्धत्वात् । अत्र द्वितीयसमयप्रथमखण्डे एकानुकृष्टिचये समच्छेदेन युते द्वितीयसमय-

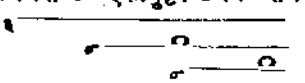

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

परिणामानां द्वितीयखण्डप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ एवं तृतीयादिखण्डानि विशेषाधिकानि स्थाप्यानि । रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखण्डे

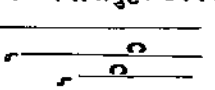

≡a । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ युतेषु द्वितीयसमयचरमखण्डप्रमाणं भवति

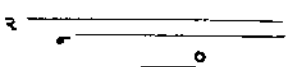

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अत्र चैकानुकृष्टिचयेऽपनीते द्वितीयसमयद्विचरमखण्डप्रमाणं

अनुकृष्टिके प्रथमादि खण्ड नीचेके समयसम्बन्धी प्रथम आदि अनुकृष्टि खण्डोंसे एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक होते हैं। ऐसा अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय पर्यन्त जानना। उसमेंसे अन्त समयके समस्त परिणामरूप सर्वधनमें अनुकृष्टिके चयधनको घटानेपर जो शेष रहे

---

१. म कलेदु कलेदु अ ।

द्वितीयखंडमुं सदृशमक्कुमितो द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडंगळु प्रथमसमयतृतीयादिखंडंगळोडने सदृशंगळक्कुमेंदरियल्पडुवुवु । इल्लि विशेषकथनमावुदेंदोडे द्वितीयसमयचरमखंडं प्रथमसमयखंडंगळोळावुदरोळं समानमल्तु । अल्लि बळिक्कं तृतीयादिसमयंगळोळनुकृष्टि-प्रथमादिखंडंगळुमनंतराधस्तनानुकृष्टिखंडंगळं नोडल्विशेषाधिकंगळुमेंदितु अधःप्रवृत्तकरण-कालचरमसमयपर्यंतं नडसल्पडुववु । अल्लि चरमसमयसमस्तपरिणामधनदोळ ५

≡a २१११२ ≡a २११२११

२१११२११११२ नुकृष्टि चयधनम २११११२१११ २११२ नपर्वर्त्तिसिदंदं शोधिसि कळदनुकृष्टि गच्छदिंदं २११ भागिसुत्तिरलु चरमसमयपरिणामंगळ

≡a २११११२

प्रथमानुकृष्टिखंडमक्कु २११११२११११।१।२११२ मिदरोळेकानुकृष्टिप्रचयमं १०

≡a १

२११११२११११।१।२११ समच्छेदमं माडि कूडुत्तिरलु चरमसमय द्वितीयानुकृष्टि-

२

≡a २११११२

खंडमक्कु २११११२११११२११२ मितु तृतीयादिखंडंगळुमनुकृष्टिचयाधिकंग

≡a २१११।१।२

भवति २१११।२१११।१।२१११।२ द्वितीयसमयप्रथमखण्डं प्रथमसमयद्वितीयखण्डं च द्वे १५
सदृशे तथा द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डानि प्रथमसमयतृतीयादिखण्डैः सह सदृशानि किन्तु द्वितीयसमयचरमखण्डं प्रथमसमयखण्डेषु केनापि सह सदृशं नास्ति । अतोऽग्रे तृतीयादिसमयेषु अनुकृष्टिप्रथमादिखण्डानि अनन्तराधस्त-नानुकृष्टिखण्डेभ्यो विशेषाधिकानीत्यधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयपर्यन्तं नेतव्यानि । तत्र चरमसमयसमस्त-

≡a।२१११।१।२ ≡a।२१११।२११

परिणामधने २१११।२१११।१।२ अनुकृष्टिचयधनं २१११।२१११।१।२११२ २०
अपवर्त्य शोधयित्वानुकृष्टिगच्छेन २११ भक्ते चरमसमयपरिणामप्रथमानुकृष्टिखण्डं भवति

≡a।२१११।१।२ ≡a।१

२१११।२१११।१।२११।२ अत्र चैकानुकृष्टिचये २१११।२१११।१।२११

उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर अन्त समय सम्बन्धी परिणामका प्रथम अनुकृष्टि खण्ड होता है । उसमें एक अनुकृष्टिचय जोड़नेपर अन्त समयका द्वितीय अनुकृष्टि खण्ड २५
होता है । इस प्रकार तृतीय आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक होते हैं । एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टिचय अन्त समय सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़ने-

१. म सि शो ।

ळरियल्पडुववल्लि रूपोनानुकृष्टिगच्छमात्रानुकृष्टिचयंगळं २१११।२१११११२१११

समच्छेदिसि चरमसमय परिणामंगळं प्रथमखंडदोळु २११११२११११२१११

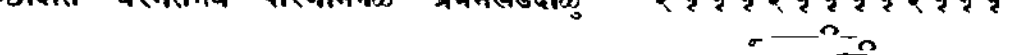

कूडुत्तमिरलु चरमसमय चरमानुवृकृष्टिखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २११।२१११।१।२११३

मिल्लियेकानुकृष्टिचयमं २११११२११११२११२ समच्छेदिसि कळेयुत्तिरलु द्विचरम-

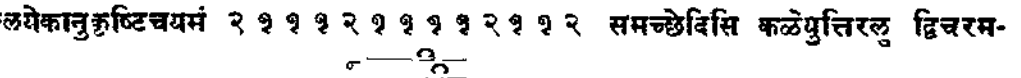

खंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २११११२११११।११ मितु चरमसमयानुकृष्टिपरिणामखंड-

समच्छेदेन युते चरमसमयद्वितीयानुकृष्टिखण्डं भवति २११११।११११।१।२११।२ एवं तृतीयादिखण्डानि अनुकृष्टिचयाधिकानि ज्ञातव्यानि। तत्र रूपोनानुकृष्टिगच्छमात्रानुकृष्टिचयेषु समच्छेदेन

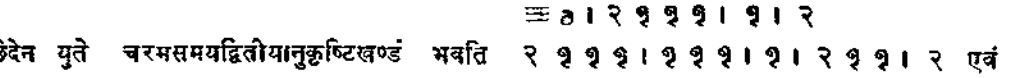

चरमसमयपरिणामप्रथमखण्डे २११११।२११११।१।२११।२ युतेषु चरमसमयचरमानुकृष्टि-

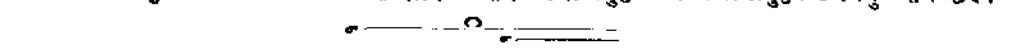

खण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २११११।२११११।१।२११।२ अत्र चैकानुकृष्टिचये

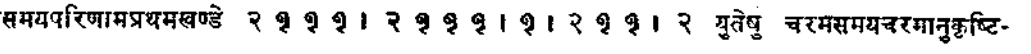

२११११।२११११।१।२११ समच्छेदेन अपनीते द्विचरमखण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति

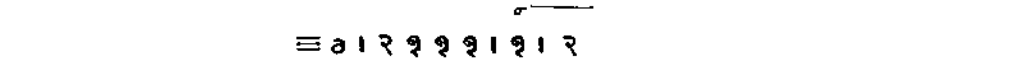

२११११।२११११।१।२११।२ एवं चरमसमयानुकृष्टिखण्डानि तिर्यगनुकृष्टिगच्छमात्राणि

पर अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम अनुकृष्टि खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। उसमेंसे एक अनुकृष्टिचय घटानेपर अन्त समय सम्बन्धी द्विचरमखण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इस प्रकार अन्त समय सम्बन्धी अनुकृष्टि खण्ड अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण हैं, उन्हें बराबर आगे-आगे क्रमसे स्थापित करना चाहिए। अन्त समय सम्बन्धी अनुकृष्टि-के प्रथम खण्डमें एक अनुकृष्टिचय घटानेपर अवशेष द्विचरम समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड-

ळितय्वक्कागियनुकृष्टिगच्छमात्रंगळ्स्थापिसल्पडुवु मत्तं चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखंडदोळु रचने

≡ a २ १ १ १ १ २ ≡ a १

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ १ २ एकानुकृष्टिचयमनिदं २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ १

समच्छेदिसि कळेयलोडने शेषं द्विचरमसमय परिणामंगळनुकृष्टि प्रथमखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु

≡ a २ १ १ १ १ २ ५

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ १ २ मिदरोळेकानुकृष्टिचयसमसमयद्वितीयखंडपरिणामपुंजप्रथमं

≡ a २ १ १ १ १ २

कूडुत्तिरलु द्विचरमप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ २ १ १ । २ मितु तृतीयादिखंडंगळु चयाधिकंगळरियल्पडुवु । मतमल्लि रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयंगळनेरडरिं समच्छेदिसि

२

≡ a २ १ १ १ १ २ १०

द्विचरमसमयपरिणामंगळ प्रथमखंडदोळु २ १ १ १ २ १ १ १ १ । २ १ १ । २ कूडुत्तिरलु द्विचरम-

---

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

स्थापयितव्यानि । पुनः चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डे २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ एकानु-

≡ a । १

कृष्टिचये २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ समच्छेदेन अपनीते शेषं द्विचरमसमयपरिणामानुकृष्टिप्रथम- १५

२

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

खण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अत्रैकानुकृष्टिचये युते द्विचरम-

≡ a २ १ १ १ । १ । २

समयद्वितीयखण्डपरिणामपुञ्जो भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ एवं तृतीयादिखण्डानि चयाधिकानि ज्ञातव्यानि । पुनस्तत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु द्वाभ्यां समच्छेदेन द्विचरमसमयपरिणाम- २०

के परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। उसमें एक अनुकृष्टि चय जोड़नेपर द्विचरिम समय-सम्बन्धी द्वितीय खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इसी तरह तृतीय आदि खण्ड एक-एक चय अधिक होते हैं। एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टिचय द्विचरम सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़नेपर द्विचरम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके अन्तिम खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इसमें एक अनुकृष्टि चय घटानेपर उस ही २५ द्विचरम समयका द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। इस प्रकार अधःप्रवृत्त करणके कालके

---

१. म खडंगलोलु। २. म चयमं कूड। ३. म मसमयद्वितीयखंडपरिणामप्रमाण।

समयसमयानुकृष्टिचरमखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २१११।२१११११।२११।२ मिल्लि-

येकानुकृष्टिचयमं सोधिसुत्तिरलु तद्विचरमखंडपरिणामपुंजमक्कु २१११२११११२११२ मितधःप्रवृत्तकरणकालद्विचरमसमयानुकृष्टिगळु अनुकृष्टिपदमात्रंगळ्चयाधिकंगळरियल्पडुवु।

इंतधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ प्रथमसमयानुकृष्टि प्रथमखंड सर्व्वजघन्यमक्कु ३९ चरम-समयपरिणामंगळनुकृष्टि चरमखंडं ५७ ("भ१") सर्व्वोत्कृष्टमक्कु इवेरडक्कमेल्लियुं सादृश्यमिल्ल। शेषोपरितनसमयवर्त्तिखंडगळधस्तनसमयवर्त्तिखंडंगळोडनेयु मेणुपरितनसमय-वर्त्तिखंडंगळोडनेयुं यथासंभवमप्प सदृशतेयुंटदु। द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु ४० द्विचरमसमय

प्रथमखण्डे २१११।२१११।१।२१११।२ युतेषु द्विचरमसमयानुकृष्टिचरमखण्डपरिणामपुञ्ज-

प्रमाणं भवति २१११।२१११।१।२११।२ अत्रैकानुकृष्टिचये शोधिते तद्द्विचरमखण्ड-

परिणामपुञ्जो भवति २१११।२१११।१।२११।२ एवमधःप्रवृत्तकरणकालद्विचरमसम-यानुकृष्टयोऽनुकृष्टिपदमात्र्यश्चयाधिका ज्ञातव्याः।

एवमधःप्रवृत्तकरणपरिणामानां प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमसर्वजघन्यखण्डस्य ३९ चरमसमयपरिणामानां चरमानुकृष्टिसर्वोत्कृष्टखण्डस्य ५७ च कुत्रापि सादृश्यं नास्ति शेषोपरितनसमयवर्तिखण्डानामधस्तनसमय-वर्तिखण्डैः अथवा अधस्तनसमयवर्तिखण्डानां उपरितनसमयवर्तिखण्डैः सह यथासंभवं सादृश्यमस्ति। द्वितीय-

द्विचरम समय सम्बन्धी अनुकृष्टि खण्ड अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण होते हैं। उन्हें क्रमसे एक-एक चय अधिक करके स्थापित करना चाहिए। इस तरह तिर्यक् रचनामें एक-एक समय सम्बन्धी खण्डोंमें परिणामोंका प्रमाण कहा।

उक्त कथनका सारांश यह है कि पहले अधःकरणके एक-एक समयमें होनेवाले नाना जीवोंके परिणामोंका प्रमाण कहा था। अब उसमें होनेवाले एक-एक समय सम्बन्धी खण्डोंमें परिणामोंका प्रमाण कहा है। सो ऊपरके और नीचेके समय सम्बन्धी खण्डोंमें परस्परमें

१. मंगल सर्वोत्कृष्टानुकृष्टि खंडं ५७ मिवेरडक्क।

२. ब °ष्टिखण्डान्यान्यनुकृष्टिपदमात्रचयाधिकानि ज्ञातव्यानि।

पर्य्यंतं ५३ प्रथमखंडंगळ्गं चरमसमयदोळु द्विचरमखंडपर्य्यंतं खंडगळ्गु ५४ । ५५ । ५६ । तंतं-मुपरितनसमयपरिणामंगळोडने सादृश्याभावमप्पुदरिंदं असदृशंगळु इदंकुशरचनेयक्कुं ।

अहंगे द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु ४३ द्विचरमसमय ५६ पर्य्यंतमावुकेलवु चरमखंडंगळुं प्रथमसमय प्रथमखंड ३९ वर्ज्जितंगळु मावु केलवु खं—

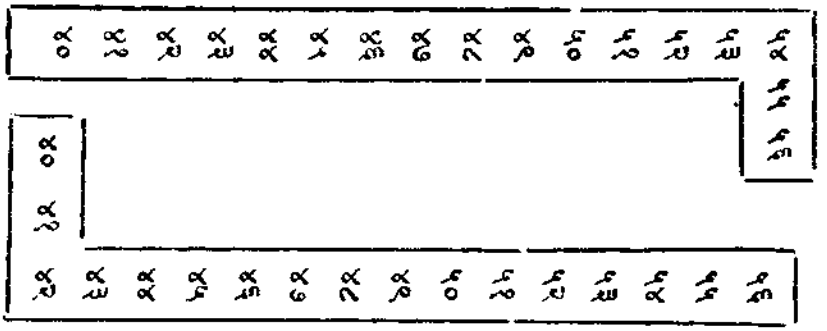

समयात् ४० द्विचरमसमयपर्यन्तं ५३ प्रथमप्रथमखण्डानि चरमसमयप्रथमखण्डात् द्विचरमसमयपर्यन्तखण्डानि च ५४ । ५५ । ५६ । स्वस्वोपरितनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावात् असदृशानि । इयमङ्कुशरचनेत्युच्यते । तथा द्वितीयसमयात् ४३ द्विचरमसमय ५६ पर्यन्तं चरमचरमखण्डानि प्रथमसमयप्रथमखण्ड ३९ वर्जितशेष-खण्डानि च स्वस्वाधस्तनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावाद्

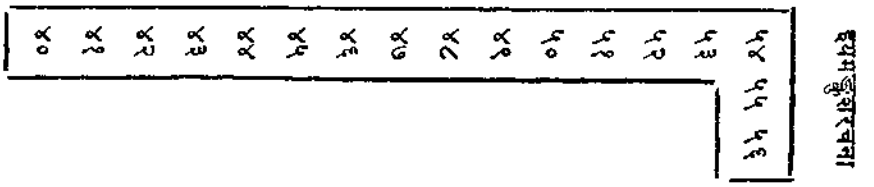

समानता पायी जाती है। इसलिए अनुकृष्टि नाम दिया है। जितनी संख्याको लिये ऊपरके समयोंमें परिणाम खण्ड होते हैं, उतनी ही संख्याको लिये नीचेके समयोंमें भी परिणाम खण्ड होते हैं। इस तरह नीचेके समय सम्बन्धी परिणाम खण्डसे ऊपरके समय-सम्बन्धी परिणाम खण्डमें समानता देखकर इसका नाम अधःप्रवृत्तकरण कहा है।

विशेष बात यह है कि प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथम खण्ड सबसे जघन्य खण्ड है। क्योंकि अन्य सब खण्डोंसे इसकी संख्या कम है। और अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम अनुकृष्टि खण्ड सबसे उत्कृष्ट है; क्योंकि इसकी संख्या सबसे अधिक है। सो इन दोनोंकी अन्य खण्डोंसे कहीं भी समानता नहीं है। इन दोनोंके सिवाय शेष ऊपर समय सम्बन्धी खण्डोंकी नीचेके समय सम्बन्धी खण्डोंके साथ अथवा नीचेके समय-सम्बन्धी खण्डोंकी ऊपर समय सम्बन्धी खण्डोंके साथ समानता है। उनमें द्वितीय समयसे लेकर द्विचरम समय पर्यन्त समयोंका पहला-पहला खण्ड और अन्तिम समयका प्रथम खण्डसे लेकर द्विचरम पर्यन्त खण्ड अपने-अपने ऊपरके समय सम्बन्धी खण्डोंके समान नहीं हैं अर्थात् उनमें समानता नहीं है। सो द्वितीयादि द्विचरम समय पर्यन्त सम्बन्धी खण्डोंकी ऊर्ध्वरचना करनेपर और ऊपर अन्त समयके प्रथमादि द्विचरम पर्यन्त खण्डोंकी तिर्यक् रचना करनेपर अंकुशके आकार रचना होती है—

डंगळ मवेल्लवं तंतंमधस्तनसमयपरिणामंगळोडने सादृश्याभावदत्तणिदं विसदृशंगळु । इदु लांगल-रचनेयल्लियधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळोळु प्रथमसमयपरिणामखंडंगळोळगे प्रथमखंडपरिणा-

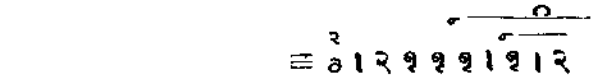

मंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । १ । २ १ १ । २ इवनपवर्त्तिसिदोडे

संख्यातप्रतरावलिभाजितासंख्यातलोकमात्रमक्कु । ४ । १ मिवु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळ-

---

विसदृशानि इयं लांगलरचनेत्युच्यते । तत्राधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु प्रथमसमयपरिणामखण्डानां मध्ये प्रथमखण्ड-परिणामा असंख्यातलोकमात्राः—

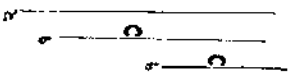

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अपवर्तितास्तदा संख्यातप्रतरावलिभक्ताऽसंख्यातलोकमात्रा

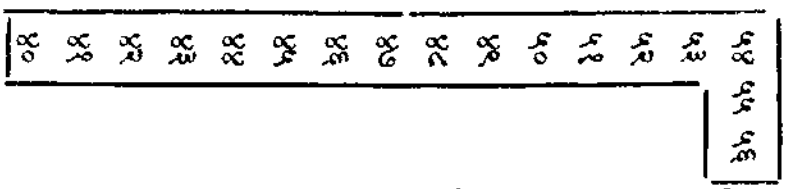

इसलिए इसको अंकुश रचना कहते हैं। तथा दूसरे समयसे लेकर द्विचरम समय पर्यन्त सम्बन्धी अन्तिम-अन्तिम खण्ड और प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके बिना अन्य सर्व खण्ड अपने-अपने नीचेके समय सम्बन्धी किसी भी खण्डसे समानता नहीं रखते। सो यहाँ द्वितीयादि द्विचरम पर्यन्त समय सम्बन्धी अन्त-अन्त खण्डोंकी ऊर्ध्व रचना करनेपर और नीचे प्रथम समयके द्वितीयादि अन्त पर्यन्त खण्डोंकी तिर्यक् रचना करनेपर हलके आकार रचना होती है।

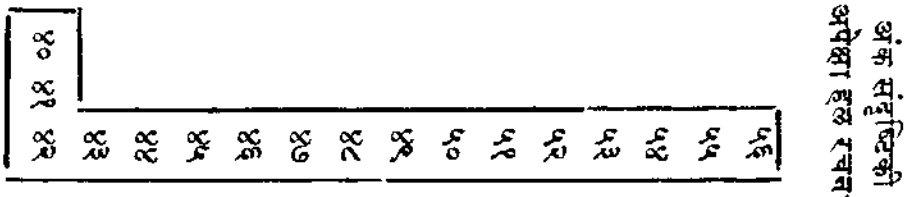

इसलिए इसको लांगल रचना कहते हैं।

अब विशुद्धताके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा वर्णन करते हैं। जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसे शक्तिके अंशका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है। उनकी अपेक्षा गणना करके पूर्वोक्त अधःकरणके खण्डोंमें अल्पबहुत्वका वर्णन करते हैं। अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंमें प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंके खण्डोंमें प्रथम खण्डके परिणाम सामान्यसे असंख्यात लोक मात्र हैं, तथापि पूर्वोक्त विधानके अनुसार स्थापित भाज्य भाग हारका अपवर्तन करने-पर संख्यात प्रतरावलीसे भाजित असंख्यात लोक मात्र हैं। ये परिणाम अविभाग प्रतिच्छेदों-

प्पिनितु परिणामंगळ रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागघनराशियं[1] रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैक-
भागवर्गराशियिं गुणिसिदिनितु परिणामव्यक्तिगळप्पुवे १-१-१-१-१ यो[2]दु षट्स्थानवारं पडेयल्प-
२।२।२।२।२
ə ə ə ə ə

= ə ५

डुत्तिरलु मागलिनितु परिणामंगळप्पुवे ४।१ इनितु षट्स्थानवारंगळक्कुमेंदितनुपातत्रैराशिक-
विधानदिंदं बंद लब्ध षट्स्थानवारंगळक्कु = ə मितप्पसंख्यातलोकवारषट्स्थानपतित वृद्धि-
४।१ १ १ १ १ १
२।२।२।२।२
ə ə ə ə ə १०

यिदं वर्द्धमानंगळु[3] प्रथमसमयप्रथमखंडपरिणामंगळ संख्यातलोकमात्रंगळवे द्वितीयसमयदोळु

भवन्ति = ə अमी च परिणामा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानां[4] रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागस्य घनगुणित-
४।१
२।२।२।२।२। = ə
तद्वर्गमात्रपरिणामव्यक्तीनां ə ə ə ə यद्येकषट्स्थानवारो लभ्यते तदैतावतां परिणामानां ४।१ १५
कियन्तः षट्स्थानवारा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकलब्ध = ə असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगतवृद्धया
४।१।२।२।२।२।२
ə ə ə ə ə

की अपेक्षा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदको लिये हुए हैं। एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका घन करके उसके ही वर्गका गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है, उतने परिणामोंमें यदि २०
एक बार षट्स्थान होता है तो संख्यात प्रतरावलीसे भक्त असंख्यात लोकप्रमाण प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके परिणामोंमें कितनी बार षट्स्थान होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्राप्त हुए असंख्यात लोकवार षट्स्थानोंको प्राप्त विशुद्धताकी वृद्धिसे वर्धमान हैं।

इस कथनका आशय ऐसा है कि आगे ज्ञानमार्गणामें पर्याय समास श्रुतज्ञानका वर्णन करते हुए जैसे अनन्त भागवृद्धि आदि षट्स्थान पतित वृद्धिका कथन करेंगे, उसी प्रकार यहाँ २५
अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी विशुद्धतारूप कषाय परिणामोंमें भी क्रमसे अनन्त भाग, असंख्यात भाग, संख्यातभाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण, अनन्त गुण वृद्धिरूप षट्स्थान पतित वृद्धि होती है। उस अनुक्रमके अनुसार एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके घनको उसीके वर्गसे गुणा करो अर्थात् एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको पाँच जगह रखकर परस्परमें गुणा करो, जो प्रमाण आवे उतने विशुद्धि परिणामोंमें एक बार षट्स्थान ३०
पतित वृद्धि होती है। इस तरह क्रमसे प्रथम परिणामसे लेकर इतने-इतने परिणाम होनेके पश्चात् एक एक बार षट्स्थान वृद्धि पूर्ण होते असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थान पतित वृद्धि होनेपर उस प्रथम खण्डके सब परिणामोंकी संख्या पूर्ण होती है। अतः असंख्यात

---

१. म राशियं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्ररूपाधिक-सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितपरिणाम। २. म गलचयाधिकंगलु प्र.। ३. ब °भिन्ना। ४. ब °मात्रास्य यँ। ३५

यथासंभवविशुद्धिवृद्धियिंदं वर्द्धमानंगळ्चयाधिकंगळु = ∂ जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पंगळ्पेरगे
४।१
पेळ्दंत संख्यातलोकवार षट्स्थानपतित वृद्धिकंगळ् द्वितीयसमयप्रथमखंड परिणामंगळ्प्पवु ।

[1]इंतो प्रकारदिंदं प्रथमादिसमयंगळोळु द्वितीयादिखंड परिणामंगळु चयाधिकंगळु मोळवर विशुध्यल्पबहुत्वमितु पेळल्पडुगुमदें तेनें :—

प्रथमसमयदोळु प्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धि सर्व्वतः स्तोकमागियुं जीवराश्यनंतगुणाविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मिकेयक्कु १६ । ख । मदं नोडल्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियुमनंतगुणमदं नोडळ्द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडल्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितु तृतीयादिखंडंगळोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळु मनंतगुणितक्रमदिंदं चरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं प्रवर्त्तिसुवु । मत्तं प्रथमसमयप्रथमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियं नोडलु द्वितीयसमयप्रथमखंडमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणं तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियदं नोडल-

---

वर्धिताः संति । तथा-द्वितीयसमयप्रथमखण्डपरिणामाश्चयाधिका जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाः प्राग्वदसंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिवर्धिताः संति । एवं तृतीयसमयादिचरमसमयपर्यन्तं चयाधिकाः प्रथमखण्डपरिणामाः संति तथा प्रथमादिसमयेषु द्वितीयादिखण्डपरिणामाः अपि चयाधिकाः संति ।

अथ तेषां विशुद्धयल्पबहुत्वमुच्यते तद्यथा—प्रथमसमयप्रथमखण्ड ३९ जघन्यपरिणामविशुद्धिः सर्वतः स्तोकापि जीवराशितोऽनन्तगुणाविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मिका भवति १६ ख । अत ३९ स्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । एवं तृतीयादिखण्डेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणाः अनन्तगुणाश्चरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं वर्तन्ते । पुनः प्रथमसमयप्रथमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धितो द्वितीयसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धि-

---

लोकमात्र षट्स्थान पतित वृद्धिसे वर्धमान प्रथमखण्डके परिणाम हैं। इसी तरह द्वितीय समयके प्रथम खण्डके परिणाम अनुकृष्टिचय अधिक हैं। वे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदको लिये हुए हैं। सो ये भी पूर्वोक्त प्रकार असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित-वृद्धिसे वर्धमान हैं।

उक्त कथनका आशय यह है कि एक अधिक सूच्यंगुलके घनको एक अधिक सूच्यंगुलके वर्गसे गुणा करनेपर जो संख्या आवे, उतने परिणामोंमें यदि एक बार षट्स्थान वृद्धि होती है, तो अनुकृष्टि चय प्रमाण परिणामोंमें कितनी बार षट्स्थान वृद्धि होगी; ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना प्राप्त हो, उतनी बार अधिक षट्स्थान पतित वृद्धि प्रथम समयके प्रथम खण्डसे द्वितीय समयके प्रथम खण्डमें होती है। इसी प्रकार तृतीयसे लेकर अन्त पर्यन्त समयोंके प्रथम खण्डके परिणाम एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक हैं। इसी तरह प्रथमादि समयोंके अपने-अपने प्रथम खण्डसे द्वितीय आदि खण्डोंके परिणाम भी क्रमसे एक-एक चय अधिक हैं। उनमें यथासम्भव षट्स्थान पतित वृद्धि जितनी बार हो, उसका प्रमाण जानना।

अब उन खण्डोंमें विशुद्धताके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा अल्प-बहुत्व कहते हैं—प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके जघन्य परिणामकी विशुद्धता अन्य सबसे अल्प है; तथापि जीवराशिका जो प्रमाण है, उससे अनन्त गुणे अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको लिये हुए है। इससे उसी प्रथम समयके प्रथम खण्डके उत्कृष्ट परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे द्वितीय खण्डके जघन्य परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे उसीके

---

१. म °वु। इंतु चरमपर्यंत चयाधिकंगलु प्रथमखंड परिणाममंगलप्पुवु यिंतो । २. ब °मयद्दिं ।

नंतगुणमदं नोडला द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलदरुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितु तृतीयादिखंडंगळोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळुमनंतगुणितक्रमदिंदं द्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं नडेवंतिनो मार्गदिंदं तृतीयादिसमयंगळोळं निर्व्वर्गणकांडक द्विचरमसमयपर्य्यंतं जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणक्रमदिंदं नडसल्पडुवुदु। निर्व्वर्गणाकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियं नोडलु प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्ट परिणामविशुद्धियनंतगुणमल्लिदत्तलु द्वितीयनिर्व्वर्गणाकांडक प्रथमसमय प्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलत्तत्प्रथमनिर्व्वर्गणाकांडकद्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु द्वितीयनिर्व्वर्गणाकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु प्रथमनिर्वर्गणकांडकतृतीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितहितगतियिंदं जघन्यदिंदमुत्कृष्टमुत्कृष्टदिंदं जघन्यमितनंतगुणितक्रमदिंदं परिणामविशुद्धिगळनडेदु चरमनिर्व्वर्गणाकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतानंतगुणमेकंदोडे पूर्व्वपूर्व्वविशुद्धिगळत्तणिदमनंतानंतगुणितत्वसिद्धमप्पुदरिंदमदं नोडलु चरमनिर्व्वर्गणकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलल्लि मेले चरमनिर्व्वर्गणकांडकद्वितीयसमय-

---

रनन्तगुणा। ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततो द्वितीयखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा ततस्तदुत्कृष्ट ४१ परिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। एवं तृतीयादिखण्डेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणितक्रमेण द्वितीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं गच्छन्ति। अनेन मार्गेण तृतीयादिसमयेष्वपि निर्वर्गणकाण्डकद्विचरमसमयपर्यन्तं जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणितक्रमेण नेतव्याः। निर्वर्गणकाण्डकचरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धितः प्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततो द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डकप्रथमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततस्तत्प्रथमनिर्वर्गणकाण्डकद्वितीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततो द्वितीयनिर्वर्गणकाण्डकद्वितीयसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततः प्रथमनिर्वर्गणकाण्डकतृतीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा

उत्कृष्ट परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुनी है। इसी तरह क्रमसे तृतीय आदि खण्डोंमें भी जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंकी विशुद्धता अनन्तगुणी अनन्तगुणी अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त होती है। तथा प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतासे द्वितीय समयके प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे उसीकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे द्वितीय खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उसकी ही उत्कृष्ट विशुद्धता अनन्तगुनी है। इस प्रकार तृतीय आदि खण्डोंमें भी जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतापर्यन्त अनन्तगुणी प्राप्त होती है। इसी तरहसे तृतीय आदि समयके खण्डोंमें भी निर्वर्गणकाण्डके द्विचरम समय पर्यन्त जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे अनन्तगुणी लाना चाहिए। तथा निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धतासे प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे दूसरे निर्वर्गणकाण्डकके प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उस प्रथम निर्वर्गणकाण्डकके द्वितीय समय सम्बन्धी अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे द्वितीय निर्वर्गण काण्डकके द्वितीय समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे प्रथम निर्वर्गणकाण्डकके तृतीय समय सम्बन्धी उत्कृष्ट

चरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिमोदल्गोंडु तत्कांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धि - पर्य्यंतमोदुत्कृष्टखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळनंतानंतगुणितंगळागि नडेववर मध्यदोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळनंतानंतगुणितंगळ विवक्षितंगळेदरिवुदु। इंतप्प विशुद्धि विशुद्धि-विशिष्टाधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळोळु गुणश्रेणिनिर्ज्जरेयुं गुणसंक्रमणमं स्थितिकांडकोत्करणमुं अनुभागकांडकोत्करणमुमेंबी नाल्कावश्यकंगळसंभविसदेकें दोडे तत्परिणामंगळिगतप्प कार्य्यकरण-सामर्थ्यसंभवाऽभावमप्पुदरिंदं केवलं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियु स्थितिबंधापसरणमुं साता-दिप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणानुभागवृद्धियिदं चतुस्थानबंधमुमसाताद्यप्रशस्तप्रकृति-गळगे प्रतिसमयमनंतगुणहानियिदं निंबकांजीरसदृशद्विस्थानानुभागबंधमुमेंबी नाल्कावश्यकंग-ळोळवु इदुक्तार्थोपसंहारोपयोगीरचने मत्तमिल्लि

एक जी. एक काल परिणाम	एक जी. नाना का. परिणाम	ना। जी एक का.	ना। जी ना। का
१	२१११	१०८	≡a

ई रचनाभिप्रायमुं सुगममदें तेनें एकजीवमेकालमें बिदु विवक्षिताधःप्रवृत्तकरणपरिणामपरिणतैक-जीवक्के परमार्थवृत्तियिदं कालमेकसमयमेयक्कुं। एकजीव नानाकालमें बुदु अधःप्रवृत्तकरण-कालांतर्म्मुहूर्त्ताऽसंख्यातसमयंगळनुक्रमदिंदमेकजीवनिंदं पोदर्दल्पडुववप्पुदरिंदमिंते समयं-

एवमहिगत्या जघन्यादुत्कृष्टं उत्कृष्टाज्जघन्यमित्यनन्तगुणितक्रमेण परिणामविशुद्धीर्नीत्वा चरमनिर्वर्गणकाण्डक-चरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तानन्तगुणा। कुतः ? पूर्वपूर्वविशुद्धितोऽनन्तानन्तगुणत्वस्य सिद्धत्वात्। ततश्चरमनिर्वर्गणकाण्डकप्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततस्तदुपरि चरम-निर्वर्गणकाण्डकचरमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्ता उत्कृष्टखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तानन्त-गुणितक्रमेण गच्छन्ति। तन्मध्ये या जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तानन्तगुणिताः सन्ति ता न विवक्षिता इति ज्ञातव्यम्। एवंविधविशुद्धिविशिष्टाधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु गुणश्रेणिनिर्जरा गुणसंक्रमणं स्थितिकाण्डकोत्करण-मनुभागकाण्डकोत्कीर्णनमिति चत्वारि आवश्यकानि न संभवन्ति तत्परिणामानां तादृशकार्यकरणसामर्थ्याभावात्।

खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धता अनन्तगुणी है। इस तरह जैसे सर्पकी चाल इधरसे उधर, उधरसे इधर पलटती हुई होती है, वैसे ही जघन्यसे उत्कृष्ट और उत्कृष्टसे जघन्य इस तरह अनन्त गुणी विशुद्धता क्रमसे प्राप्त करना। पीछे अन्तके निर्वर्गणाकाण्डकके अन्त समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तानन्तगुणी है। क्योंकि पूर्व-पूर्व विशुद्धतासे अनन्तानन्तगुणापना सिद्ध है। उससे अन्तके निर्वर्गणा काण्डकके प्रथम समय सम्बन्धी उत्कृष्ट खण्डकी परिणामविशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उसके ऊपर अन्तके निर्वर्गण-काण्डकके अन्त समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त उत्कृष्ट खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे अनन्तानन्तगुणी प्राप्त होती है। उनमें जो जघन्यसे उत्कृष्ट परिणामोंकी विशुद्धता अनन्तानन्त गुणी है, उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

इस प्रकार विशेष विशुद्धताको लिये हुए अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंमें गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकोत्करण, अनुभागकाण्डकोत्करण ये चार आवश्यक नहीं होते हैं, क्योंकि उन परिणामोंमें गुणश्रेणी निर्जरा आदि करनेकी शक्तिका अभाव है। उनमें केवल प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय अनन्तगुणी अनन्तगुणी विशुद्धताकी वृद्धि होती

गळप्पुवु २१११ नानाजीवमेककालमेंबुदु विवक्षितैकसमयदोळधःप्रवृत्तकरणकालासंख्यात-समयंगळोळे यथासंभवमागि नूरेंटुसमयस्थानकंगळोळु संग्रहमाद जीवंगळ विवक्षेयिंदमेककाल-मेंबुदु १०८ समयंगळरियल्पडुवुवु ।

नानाजीवं नानाकालमेंबुदु अधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ संख्यातलोकमात्रंगळु :—

अंकसंदृष्ट्यपेक्षयाऽधःकरणरचना ।

५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२
५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१
५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९
२२२	२१८	२१४	२१०	२०६	२०२	१९८	१९४	१९०	१८६	१८२	१७८	१७४	१७०	१६६	१६२

किन्तु केवलं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धिः स्थितिबन्धापसरणं सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुण-वृद्धया चतुःस्थानानुभागबन्ध-असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या निम्बकाञ्जीरसदृशद्विस्थानानु-भागबन्धश्चेति चत्वार्यावश्यकानि संभवन्ति । एतदुक्तार्थोपयोगिनी रचना लिख्यते—

है । स्थितिबन्धापसरण होता है अर्थात् पहले जिस परिमाणको लेकर कर्मोंका स्थितिबन्ध होता था, उससे घटता-घटता स्थितिबन्ध होता है । तथा सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका प्रतिसमय अनन्तगुणा अनन्तगुणा बढ़ता हुआ गुड़, खाँड़, शर्करा अमृतके समान चतुःस्थान लिये अनुभागबन्ध होता है । तथा असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका प्रतिसमय अनन्तगुणा अनन्तगुणा घटता हुआ नीम और कांजीर केवल द्विस्थान लिये अनुभागबन्ध होता है, विष और हालाहलरूप नहीं होता । अब उक्त कथनको अंक संदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—

अंक संदृष्टि अपेक्षा अधःकरण रचना

अनुकृष्टि रूप एक-एक समय सम्बन्धी चार-चार खण्डोंकी तिर्यक् रचना — चतुर्थ खण्ड	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२
तृतीय खण्ड	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१
द्वितीय खण्ड	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
प्रथम खण्ड	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९
सोलह समय की ऊर्ध्व रचना	२२२	२१८	२१४	२१०	२०६	२०२	१९८	१९४	१९०	१८६	१८२	१७८	१७४	१७०	१६६	१६२

[अर्थसंदृष्टचपेक्षयाऽधःकरणरचना संस्कृतटीकायां द्रष्टव्या]

अर्थसंदृष्ट्यपेक्षयाऽधःकरणरचना ।

चरमसमयपरिणामपुञ्जः

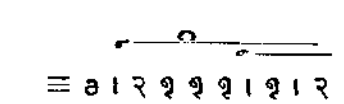

द्विचरमसमयपरिणामपुञ्जः

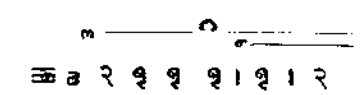

द्वितीयसमयपरिणामपुञ्जः

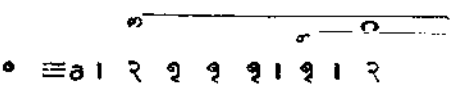

प्रथमसमयपरिणामपुञ्जः

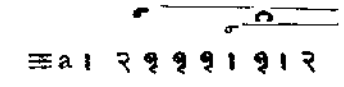

चरमसमयप्रथमखण्डं

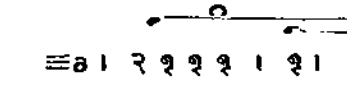

द्विचरमसमयप्रथमखण्डं

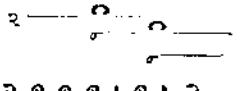

द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखण्डं

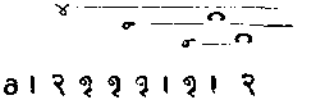

प्रथमसमयपरिणामप्रथमखण्डं

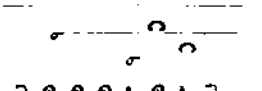

चरमसमयद्वितीयखण्डं।

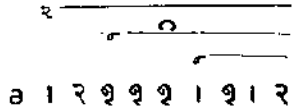

द्विचरमसमयद्विचरमखण्डं

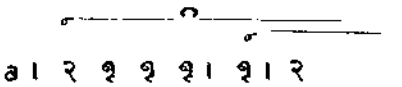

उपर टीकामें अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा जो रचना है उसके नीचे ए. जी. आदि संदृष्टि है। उसका यह अभिप्राय है—'एक जीव एक काल' ऐसा कहनेपर विवक्षित अधःप्रवृत्त-

त्रिकालगोचरंगळु नानाजीवसंबंधिगळु पुनरुक्तरूपंगळं वं नानाजीवंगळु नानाकालदोळु पोद्दुंगुमेंबी विवक्षेयिंदं नानाकालमसंख्यातलोकमात्रसमयंगळे अप्पुवेंदरिवुदु ।

प्रथमसमयद्वितीयखण्डं

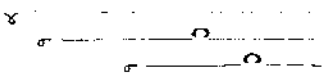

≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्विचरमसमयचरमखण्डं

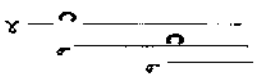

≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयचरमखण्डं

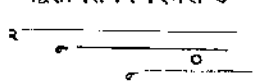

≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्विचरमसमयद्वितीयखण्डं

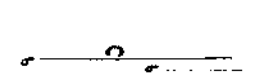

≡ə २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

चरमसमयद्विचरमखण्डं

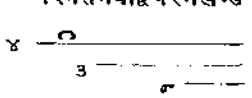

≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयद्विचरमखण्डं

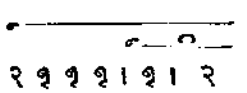

≡≡≡≡≡≡≡ə २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयद्वितीयखण्डं

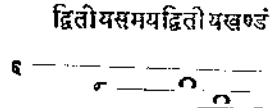

≡≡≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

चरमसमयचरमखण्डं

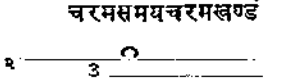

≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

प्रथमसमयद्विचरमखण्डं

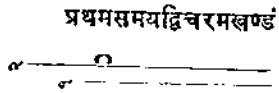

≡ə २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

प्रथमसमयचरमखण्डं

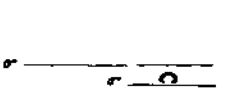

≡≡≡≡≡ə। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

करणके परिणामरूप परिणत एक जीवका परमार्थवृत्तिसे काल एक समय मात्र ही है। 'एक जीव नाना काल' ऐसा कहनेपर अधःप्रवृत्तकरणका नाना काल अन्तर्मुहूर्तके जितने समय उतना है। क्योंकि एक जीव उनपर क्रमसे आरोहण करता है, इसलिए एक जीवका नाना काल अन्तर्मुहूर्तके समय जितना है। 'नाना जीव एक काल' ऐसा कहनेपर विवक्षित एक

मत्तमधःप्रवृत्तकरणकालदोळु संभविसुवसमस्तपरिणामंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळि = अ वक्कंकसंदृष्टि ३०७२ इल्लि प्रथमादिसमयंगळोळु विन्यस्तविशुद्धिकषायपरिणामंगळे प्रमाणावधारणहेतुभूतसूत्रंगळगे गोपालिकेयिंदं बीजगणितविन्यासमुं पेळल्पडुगुमेकेंदोडे पूर्व्वोक्तार्थसंदेहाभावमक्कुमप्पुदरिंदं इल्लियधःप्रवृत्तकरणकालं संख्यातावलिसमयमात्रांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमदवुमनिवृत्यपूर्व्वकरणकालंगळं नोडलु संख्यातगुणितमक्कुं (२१११) मिदक्के अंकसंदृष्टि १६ अनुकृष्टिपदमिदं नोडलु संख्यातगुणहीनमप्पंतर्म्मुहूर्त्तसमयंगळ प्रमाणमेनिक्कु २१११ मिदक्के संदृष्टि ४ संख्यातक्कुं संदृष्टि ३ अंनेवरमंकसंदृष्टि = ५ इदर तात्पर्य्यमेनेंदोडे अधःप्रवृत्तकरण असंख्यातसमयंगळोळो दानो दु समयदोळु केलवु जीवंगळु वर्त्तिसुत्तिरला समयदोळे केलवु जीवंगळधःप्रवृत्तमं प्रारंभिसुवुदं कूर्त्ता समयं प्रथमं पितणसमयदोळप्रारंभिसिदवं कूर्त्तु द्वितीयंगळदरिं पितणसमयजीवंगळं कूर्तु तृतीयं। यितु पितण पितण विवक्षेयिं चतुर्त्थपंचमादिकवेनिकोंडु नूरेंटनेय पितण समयद जीवंगळ कूर्त्तु नूरेंटनेयदादोडं अधःप्रवृत्तमं कूर्त्तु नूरेंटुसमयंगळेनिसि कोडित्तु इंतु नूरेंटादोडं संग्रहनयदिंदिनककालमेंबुदु। मत्तें केलवु जीवंगळं कूर्त्तु ई विवक्षितसमयमे

ए, जी	ए, जी	ना, जी	ना, जी
ए, का	ना, का	ए, का	ना, का
१	२१११	१०८	=अ

तथास्यायमभिप्रायः—एकजीव एककाल इत्युक्ते विवक्षिताधःप्रवृत्तकरणपरिणामपरिणतैकजीवस्य परमार्थवृत्त्या कालः एकसमय एव भवति। एकजीवनानाकाल इत्युक्तेऽधःप्रवृत्तकरणनानाकालान्तर्मुहूर्तमात्रसमयाः क्रमेणैकजीवेनारुह्यन्ते इति तावन्त एव समयाः स्युः २१११। नानाजीवैककाल इत्युक्ते विवक्षितैकसमयेऽधःप्रवृत्तकरणकालासंख्यातसमयेष्वपि यथासंभवमष्टोत्तरशतसमयस्थाने संगृहीतजीवानां विवक्षयैककाल इत्यष्टोत्तरशतसमया ज्ञातव्याः। नानाजीवनानाकाल इत्युक्ते अधःप्रवृत्तकरणपरिणामा असंख्यातलोकमात्रास्त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनः अपुनरुक्तरूपाः तान् नानाजीवा नानाकाले समाश्रयन्तीति विवक्षया नानाकालोऽसंख्यातलोकमात्रसमया एव भवन्तीति ज्ञातव्यं। अथाधःप्रवृत्तकरणकाले प्रथमादिसमयविन्यस्तविशुद्धकषाय-

समयकी अपेक्षा यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणका काल असंख्यात समय है तथापि उनमें यथा सम्भव एक सौ आठ समय रूप स्थानोंमें संगृहीत जीवोंका विवक्षित एक काल होनेसे नाना जीवोंका एक काल एक सौ आठ समय जानना। क्योंकि वर्तमान किसी एक समयमें जो अनेक जीव हैं, वे अधःकरणके प्रथम, दूसरा, तीसरा आदि असंख्यात समयोंमें यथासम्भव एक सौ आठ समयमें ही होते हैं। 'नाना जीव नाना काल' ऐसा कहनेपर अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोक मात्र कहे हैं। वे त्रिकालवर्ती नाना जीवोंके होनेवाले अपुनरुक्त परिणाम हैं। वे परिणाम नाना जीवोंके नाना कालमें होते हैं। सो एक-एक परिणामका एक-एक समयकी विवक्षासे नाना जीवोंका नाना काल असंख्यात लोकमात्र समय प्रमाण ही होता है; ऐसा जानना।

अब अधःप्रवृत्तकरणके कालके प्रथम आदि समयोंमें स्थापित विशुद्धता रूप कषाय

१. ब शतमात्राणां सं°। २. विवक्षितै—मु.।

नूरेंभत्तनेयदु। नूरहत्तनेयदिंतु नानापरियादोडं इल्लि नूरेंटे विवक्षितंगळु। विवक्षितसमयं पिंतण समयद जीवंगळोळे केलकेलवं कूर्त्तु नूरेंटनेयदु अयिनूरनेयदु साविरदनेयदु संख्यातदद्दु। असंख्यातद्दु एनादरु नूरेंटेयाद कारणं यथासंभवविशेषणं = योलु पवर्कदि संखेण १६। १६। ३। भाजिदे पचयंनि ३०७२ भागिसि बंद लब्धं प्रचयं ४ चयधणहीणं दव्वं पद भजिदे होदि आदि परिमाण १६।१६।२

मेंदु चयधनमिदु ४८० इदरिंदं हीनद्रव्यमिदु २५९२। इदं पदविंदं १६। भागिसुत्तिरलु २५९२ ५ १६

लब्धराशियादिप्रमाणमिदु १६२। आदिम्मि चये ४ उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणमेंदु आदियिंदं मेलण द्वितीयादि समयंगळोळु चरमसमयपर्य्यंतं क्रमदिंदं चयं वर्द्धमानमागुत्तिरलु भावंगळगे प्रतिसमय धनप्रमाणमक्कुमेंबिल्लि चयधनानयनविधानसूत्रं व्येकपद १६ अर्द्ध १५ घ्नचय १५।४ २ २ गुणोगच्छ १५। ४। १६ उत्तरधनमेंदिल्लि गोपालिकेयिंदं बीजगणितमरियल्पडुगुं। एकेन विगतं व्येकंपदमेंदिल्लि प्रथमस्य वृद्धिर्हानिर्वा नास्ति येंदु प्रथमसमयदोळु वृद्धिरहितमप्पुदरिंदं १०

परिणामेषु प्रमाणावधारणहेतुभूतसूत्राणां गोपालिकया बीजगणितविन्यासः कथ्यते पूर्वोक्तेऽर्थे संशयाभावात्।

व्येकपद १६ अर्ध १५ घ्नचय (१५ ४) गुणो गच्छः (१५ ४ १६) उत्तरधनमित्यत्र व्येकपद इत्यनेन २ २ २
प्रथमस्य वृद्धिर्वा हानिर्वा नास्तीति चरमसमये रूपोनगच्छमात्रचयाः सन्तीति तत्संख्योक्ता। अर्ध इत्यनेन चरमसमयस्य सार्धसप्तचयेषु प्रथमसमयस्थाने रचितेषु तदधस्तनसार्धषट्चयेषु द्वितीयसमयस्थाने एकचयस्याग्रे रचितेषु तदधस्तनसार्धपञ्चचयेषु तृतीयसमयस्थाने द्विचयस्याग्रे रचितेषु उपरितनचतुर्थादिसमयगतसार्धचतुश्च- १५

परिणामोंके प्रमाणके अवधारणमें कारणभूत सूत्रोंका गोपालिका विधानके द्वारा बीजगणितकी स्थापना कर कहते हैं; क्योंकि पूर्वोक्त करण सूत्रोंके अर्थमें संशयका अभाव है। 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्।' अर्थात् एक हीन पद १६ का आधा १५/२ को चयसे और गच्छसे गुणा करनेपर [१५/२ × ४ × १६] उत्तर धन होता है। इस करणसूत्रकी वासना अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा कहते हैं। यहाँपर 'एक हीन पद'; इससे किया कि प्रथमकी हानि वृद्धि नहीं होती। २० तथा अन्त समयमें एक कम गच्छ प्रमाण चय है। इसलिए व्येक पद-एक हीन गच्छ शब्दसे एक कम गच्छ प्रमाण चयकी संख्या कही। तथा 'अर्ध' शब्दसे अन्त समयके पन्द्रह चयोंमें-से साढ़े सात चय प्रथम समयके स्थानमें रखे, तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े सात चय समान हुआ। इसी तरह उसके नीचे पन्द्रहवें समयके चौदह चयोंमें-से साढ़े छह चय द्वितीय समयके एक चयके आगे रचे। तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े-सात चय हुआ। उसके नीचे चौदहवें २५ समयके तेरह चयोंमें-से साढ़े पाँच चय तीसरे समयके स्थानमें दो चयके आगे रचे। तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े-सात चय हुआ। इसी तरह ऊपरकी ओरसे चतुर्थ स्थान तेरहवें समयको आदि लेकर समयोंमेंसे साढ़े चार आदि चय लेकर नीचेसे चौथे समय आदि स्थानोंके तीन चय आदि चयके आगे रचनेपर सोलह स्थानोंमें समपाटीरूपसे साढ़े सात साढ़े-सात चय होते हैं। इनकी संदृष्टि इस प्रकार होती है। ३०

१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	

यादिचयेषु चतुर्थादिसमयगतत्रिचयादीनामग्रे रचितेषु षोडशस्थानेषु समपट्टिकारूपेण सार्धसप्तसार्धसप्तचयाः कृता भवन्ति । संदृष्टिः—

सब स्थानों आदिका प्रमाण	सब स्थानोंमें समानरूप किये चयोंकी रचना। यहाँ चार-चार तो पूरे चयको और दो आधे चयको बतलाता है।	ऊपर समयवर्ती चयोंमें-से नीचेके समय सम्बन्धी स्थानोंमें स्थापित चयोंकी रचना
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	

द्वितीयसमयं मोदल्गों डु चरम समय पर्य्यंतमेकाद्येकोत्तरचयवृद्धिक्रमदिंद चयंगळप्पेच्चिदवप्पुदरिंद चरमसमयदोळु रूपोनगच्छमात्रचयंगळप्पुदिनितप्पुवदरर्द्ध चयंगळेल्लवरियक्कुवदक्के त्रिराशिकमिदु वों दक्के १ नाल्कुरूपगवागलु ४ पदिनैदरर्द्ध १५ क्कनितु रूपुगळों डु चयदि गुणियिसुत्तिरलु ३० क्कुमिदं समपट्टिका = रूपदि समीकरणनिमित्तं गुणोगच्छमेंदी त्रैराशिकमं प्र १ । प ३० । इ १६ मनदोळिट्टु गुणिसल्पेळ्दरप्पुदरिंद पदिनारु मूवत्तप्पुवदंतेने चरमसमयदेळुवरे चयंगळं प्रथम- ५
समयस्थानकदोळु रचियिसुवुदु तदधस्तनारुवरे चयंगळं तंदु द्वितीयसमयस्थानकदोळु रचियिसुवुदंतु रचियिसुत्तिरलु मुंनिनों दु चयमुमीगळिनारुवरे चयमं कूडियेळुवरे चयंगळक्कुं । तदधस्तन अय्दुवरे चयंगळं तंदु तृतीयसमयस्थानदोळु मुंनिनेरडु सहितमेळुवरे चयंगळक्कुमितुपरितन चतुर्त्थादिसमयगत नाल्कुवरे चयंगळमोदलाद चयंगळं तंदु चतुर्त्थादिसमयस्थानंगळोळु रचियिसुत्तिरल पदिनारेडेयोळं समपट्टिकारूपदिंद मेळुवरेयेळुवरे चयंगळप्पुदो कारणमागि । १०
इंता त्रैराशिकदिंदं बंदल्लिंदं मुंपेळ्दुत्तरधनमक्कुमेंदितनूकृष्टियोळमंकसंदृष्टियिंदं पेळ्दुकों डु बळिक्कर्त्थसंदृष्टियोळमव्यामोहदिंद तरल्पडुवुदु ।

इंतु प्रमत्तगुणस्थानव्याख्यानानंतरमपूर्व्वकरणगुणस्थानस्वरूपप्रतिपादनार्त्थमागि मुंदण-गाथासूत्रमं पेळ्दपरु ।

अत्रैतत्त्रैराशिकलब्धं प्रागुक्तमुत्तरधनं भवति तथानुकृष्टावप्यङ्कसंदृष्ट्या प्ररूप्य अर्थसंदृष्टावव्यामोहेना- १५
नयेत् ॥४९॥ एवमप्रमत्तगुणस्थानं व्याख्याय अनन्तरमपूर्वकरणगुणस्थानमाह—

विशेषार्थ—यह अंक संदृष्टि 'व्येक पद' इत्यादि करण सूत्रकी वासना सूचित करनेके लिए है कि क्यों पदमें-से एक हीन किया और उसका आधा किया। प्रत्येक समयमें एक सौ बासठ परिणाम तो होते ही हैं, उनमें आगे आगे चार-चारकी वृद्धि होती है। पहलेमें वृद्धि होती नहीं है। दूसरे समयमें एक चय बढ़ता है, तीसरेमें दो चय बढ़ते हैं। इस तरह २०
एक-एक चय बढ़ते-बढ़ते सोलहवेंमें पन्द्रह चयकी वृद्धि होती है। इस तरह प्रत्येक स्थानमें औसतन साढ़े सात चयकी वृद्धि होती है। यही औसत लानेके लिए ऊपरके जिन स्थानोंमें साढ़े सात चयसे जितने अधिक चयोंकी वृद्धि हुई है, उन्हें वहाँसे कम करके नीचेके स्थानोंमें दे देनेसे सर्वत्र साढ़े सात चय हो जाता है। जैसे अन्तके सोलहवें स्थानमें पन्द्रह चयोंकी वृद्धि होती है। अतः उनमें-से साढ़े सात चय उठाकर प्रथम समयके आगे रखना चाहिए, २५
क्योंकि प्रथम समयमें चयकी वृद्धि नहीं होती। पन्द्रहवें स्थानमें चौदह चयकी वृद्धि होती है, अतः उनमें-से साढ़े सात चय छोड़कर शेष साढ़े छह चय नीचे दूसरे स्थानके आगे रखना चाहिए। उसमें एक चयकी वृद्धि पहले होनेसे चयोंकी संख्या साढ़े सात हो जाती है।

इस तरह जब एक स्थानमें साढ़े सात चय तो सोलह स्थानोंमें कितने चय, इस प्रकार त्रैराशिक करने पर लब्धराशि ४८० सो पूर्वोक्त उत्तर धन है। इसी तरह अनुकृष्टिमें भी ३०
अंकसंदृष्टिके द्वारा कथन करके अर्थसंदृष्टिमें भी यथार्थ रूपसे लाना चाहिए ॥४९॥

---

१. म पदिनैदेयप्पुववरर्द्धचयगलेलु वरेयक्कुमदक्के । २. म °यममों° । ३. म °प्पदे । ४. म लब्धमुपेल्वुत्तं° । ५. म °ल्दुवं° ।

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं ।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥५०॥

अंतर्मुहूर्त्तकालं गमयित्वाऽधः प्रवृत्तकरणं तं प्रतिसमयं शुद्धयन्नपूर्व्वकरणं समाश्रयति ॥
इंतंतर्म्मुहूर्त्तंकालायाममप्प परगे पेळ्द लक्षणप्पधःप्रवृत्तकरणमं कळिपि विशुद्धसंयतनागि
५ प्रतिसमयनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंदं वर्द्धमाननप्पऽपूर्व्वकरणं गुणस्थानमनदं समाश्रयिसुगुं ॥

एदम्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठियेहि जीवेहि ।
पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥५१॥

एतस्मिन् गुणस्थाने विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः पूर्व्वमप्राप्ताः यस्माद्भवंत्यपूर्व्वाः खलु परिणामाः ॥ ई अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु विसदृशंगळप्पुत्तरोत्तरसमयंगळोळं स्थितजीवंगळिदं पूर्व-पूर्व
१० समयंगळोळु पोद्दिंद विशुद्धिपरिणामंगळे समाश्रयिसल्पडुवुदावुदो दु कारणादिमपूर्वाः करणाः परिणामा यस्मिंस्तदपूर्वकरणं गुणस्थानमेंदितु निरुक्तियिंदं लक्षणं पेळल्पट्टुदु ॥

भिण्णसमयट्ठिएहि दु जीवेहि ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहि एक्कसमयट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य ॥५२॥

भिन्नसमयस्थितैर्जीवैर्न भवति सर्व्वदा सदृशः । करणैरेकसमयस्थितैस्सदृशो विसदृशश्च ॥

---

१५ एवमन्तर्मुहूर्तकालायामं प्रागुक्तलक्षणमधःप्रवृत्तकरणे गमयित्वा विशुद्धसंयतो भूत्वा प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानः अपूर्वकरणगुणस्थानं समाश्रयति ॥५०॥

यस्मात् कारणात् एतस्मिन् अपूर्वकरणगुणस्थाने विसदृशेषु उत्तरोत्तरेषु समयेषु स्थितैर्जीवैः पूर्वपूर्वसमयेष्वप्राप्ता एव विशुद्धिपरिणामाः प्राप्यन्ते, तस्मात् कारणात् अपूर्वाः करणाः परिणामा यस्मिन् तदपूर्वकरणगुणस्थानमिति निरुक्त्या लक्षणमुक्तम् ॥५१॥

२० यथाधःप्रवृत्तकरणे भिन्नसमयस्थितानां जीवानां परिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यं संभवति तथाऽस्मिन्न-

---

इस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थानको कहकर अपूर्वकरण परिणाम पूर्वक अपूर्वकरण गुणस्थानको कहते हैं—इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण पूर्वोक्त लक्षणवाले अधःप्रवृत्तकरणको करके विशुद्ध संयमी होकर प्रतिसमय अनन्त गुणी विशुद्धिसे वर्धमान होता हुआ अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है ॥५०॥

२५ जिस कारणसे इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें विसदृश अर्थात् असमान उत्तरोत्तर समयोंमें स्थित जीवोंके द्वारा जो पूर्व-पूर्व समयोंमें नहीं प्राप्त हुए, ऐसे विशुद्ध परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। इस कारणसे जिसमें अपूर्व करण अर्थात् परिणाम हो, वह अपूर्वकरण गुणस्थान है। यह निरुक्ति द्वारा अपूर्वकरणका लक्षण कहा है ॥५१॥

जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न-भिन्न समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंकी संख्या और
३० विशुद्धिमें समानता पाई जाती है, उस प्रकार इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें सर्वदा किसी भी जीवके समानता नहीं पाई जाती। तथा एक समयमें स्थित करण अर्थात् परिणामोंके मध्यमें विवक्षित एक परिणामकी अपेक्षासे समानता और नाना परिणामोंकी अपेक्षा असमानता जीवोंके अधःप्रवृत्तकरणकी तरह यहाँ भी होती है। सो नियम नहीं है ऐसा जानना ॥५२॥

---

१. म °ननपू° ।

ऐंतधःप्रवृत्तकरणदोळु भिन्नसमयस्थितंगळप्प केलवु जीवंगळगे परिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यं संभविसुगु मंते ईयपूर्व्वकरण गुणस्थानदोळु सर्व्वकालदोळमोंदु जीवक्कमप्पडं तत्सादृश्यं संभविसूदे इल्ल। एकसमयस्थितंगळप्प करणपरिणामंगळिंदं सादृश्यमुं वैसादृश्यमुमधःप्रवृत्तकरणदंते इल्लियुं नियममिल्लदे संभवमुंटेंदरिवुदु ॥

अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढा पुव्वगुणे अणुकड्ढी णत्थि णियमेण ॥५२॥

अंतर्मुहूर्त्तमात्रे प्रतिसमयमसंख्यातलोकपरिणामाः । क्रमवृद्धा अपूर्व्वगुणे अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ॥ अंतर्मुहूर्त्तमात्रमप्प अपूर्वकरणकालदोळु प्रतिसमयं क्रमदिंदमल्लु चयदिंद पेच्चिदंवसंख्यातलोकमात्रपरिणामंगळप्पवु । अल्लि नियमदिंदमनुकृष्टिविधानमिल्लिल्लियंकसंदृष्टिपूर्वकमर्थसंदृष्टिविदं रचनाक्रममुं तोरल्पडुगुमदंतेंने त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधियपूर्वकरणविशुद्धिपरिणामंगळु सर्वमुमधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळं नोडलसंख्यातलोकगुणितंगळोळवदंतें दोडेयधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयविशुद्धिपरिणामंगळगेयपूर्व्वकरणकालप्रथमसमयदोळु प्रत्येकमोंदोंदु परिणामक्कसंख्यातलोकविकल्पोत्पत्तियुंटप्पुदरिंदं अपूर्व्वकरणसमस्तपरिणामधनं ≡ a ≡ a । यिदक्कंकसंदृष्टि ४-९६। यिल्लियपूर्व्वकरणकालमंतर्मुहूर्त्तमक्कु २ १ १ मिदक्कंक-

पूर्वकरणगुणस्थाने सर्वदा सर्वकालेऽपि कस्यापि जीवस्य तत्सादृश्यं न संभवति । एकसमयस्थितकरणपरिणामानां मध्ये विवक्षितैकपरिणामापेक्षया सादृश्यं नानापरिणामापेक्षया वैसादृश्यं च जीवानामधःप्रवृत्तकरणवदत्रापि नियमो नास्तीति ज्ञातव्यम् ॥५२॥

अन्तर्मुहूर्तमात्रे अपूर्वकरणकाले प्रतिसमयं क्रमशः चयवृद्धाः असंख्यातलोकमात्राः परिणामाः सन्ति, तत्र नियमेन अनुकृष्टिविधानं नास्ति । अत्रापि अंकसंदृष्टयर्थसंदृष्टिभ्यां रचनाक्रमो दर्श्यते; तद्यथा—त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणविशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्यः असंख्यातलोकगुणिताः सन्ति । कुतः ? अधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयविशुद्धिपरिणामानां अपूर्वकरणकालप्रथमसमये प्रत्येकमेकैकपरिणामस्य असंख्यातलोकविकल्पोत्पत्तिसंभवात् । अपूर्वकरणस्य समस्तपरिणामधनं ≡ a × ≡ a तत्संदृष्टिः

विशेषार्थ—इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें ऊपरके समय वाले जीवोंके और नीचेके समय वाले जीवोंके परिणाम कभी भी समान नहीं होते। किन्तु एक ही समयमें रहनेवाले जीवोंके परिणाम समान भी होते हैं और असमान भी होते हैं। अतः जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न-भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें समानता पायी जाती है, वैसी यहाँ नहीं है। तथा एकसमयवर्ती जीवोंमें जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें समानता और असमानता है, वैसे यहाँ भी है ॥५२॥

अन्तर्मुहूर्तमात्र अपूर्वकरणके कालमें प्रतिसमय क्रमसे एक-एक चय बढ़ते हुए असंख्यातलोक मात्र परिणाम होते हैं। इसमें नियमसे अनुकृष्टि विधान नहीं है। यहाँ भी अंकसंदृष्टि और अर्थसंदृष्टिसे रचना-क्रम दिखलाते हैं—त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण रूप विशुद्धिपरिणाम सभी अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंसे असंख्यात लोक गुणित हैं, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरण कालके चरम समयवर्ती विशुद्धिपरिणामोंके अपूर्वकरण

१. म °च्चितमसं० । २. म °युमंक° । ३. ब °करणत्वादत्रापि नियमोऽस्ती° । ४. ब °कालसमय° ।

संदृष्टि ८। संख्येयरूपुगळिनितक्के १। अंकसंदृष्टि ४। इल्लि पदकदे संखेण भाजिदे पचयमेंबी सूत्रेष्टदिंदं समस्तपरिणामधनमं ≡ ə ≡ ə । ४०९६ । पदकृतियिदमुं संखेयरूपुगळिदं भागिसुत्तिरलु

≡ ə ≡ ə ॥ ४०९६ ≡ ə ≡ ə

२१११२११।१।८।८।४ लब्धं प्रचयमक्कुं २११।२११।१।१६ व्येक पदार्धघ्नचयगुणो-

≡ ə ≡ ə २११ (?)

गच्छउत्तरधनमेंबी सूत्राभिप्रायदिंदं चयधनमं ते दोडे २११।१२ अंक संदृष्टि ४४८। चयधनहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदि परिमाणमेंबी सूत्रेष्टदिंदं चयधनमं समस्तधनदोळु शोधिसिकळदु पददिंदं भागिसुत्तिरलु प्रथमसमयवर्त्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबंध्यपूर्व्वकरणपरिणामप्रमाणं

≡ ə ≡ ə २११।१।२

बक्कुं २११।२११।१।२। ४५६। आदिम्मि चये उद्धे पडिसमयधणं तु भावाणमेंबी सूत्रदिंदं प्रथमसमयविशुद्धिपरिणामपुंजदोळो दु चयमं कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयवर्त्तिनानाजीवसंबंधियपूर्व्व-

४०९६। कालोऽन्तर्मुहूर्तः २११ तत्संदृष्टिः ८। संख्यातरूपाणि १ तत्संदृष्टिः ४। तद्धनं ≡ ə ≡ ə । ४०९६ ।

≡ ə । ≡ə ४०९६ ≡ ə । ≡ə

पदकदिसंखेण भाजिदे २११×२११, १।८।८।४ पचयो होदि २११।२११।१ १६

≡ ə ≡ ə २११।२११

व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छश्चयधनं भवति २ १ १। २ १ १। १। २। ४४८ तच्च समस्तधने शोधयित्वा शेषे पदेन भक्ते प्रथमसमयवर्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति

≡ ə । ≡ ə । २११।१।२

२११। २११। १। २ ४५६ अत्रैकचये युते द्वितीयसमयवर्तिनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणपरिणाम-

कालके प्रथम समयमें प्रत्येक एक-एक परिणामके असंख्यात लोक भेदोंकी उत्पत्ति सम्भव है। अतः अपूर्वकरण परिणामोंका सर्वधन अंकसंदृष्टिमें कल्पना किया ४०९६ है। अपूर्वकरणका काल अन्तमुहूर्त है सो यहाँ ८ कल्पना किया। संख्यातका प्रमाण चार है। 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयो होदि', इस सूत्रके अनुसार पद अर्थात् गच्छ ८ के वर्ग ६४ और संख्यातके प्रमाण चारका भाग सर्वधन ४०९६ में देनेसे चय होता है सो उसका प्रमाण १६ हुआ। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्', इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छ ७ उसका आधा ३ को चय १६ से गुणा करने पर ५६ प्रमाण आता है। उसको गच्छ ८ से गुणा करने पर चयधन चारसौ अड़तालीस ४४८ होता है। उसको सर्वधन ४०९६ में घटाने पर शेष ३६४८ को गच्छ ८ से भाग देने पर प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम ४५६ होते हैं। इसमें एक चय जोड़ने पर द्वितीय समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरणपरिणाम पुंजका प्रमाण ४७२ होता है। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमें एक-एक चयकी वृद्धिके क्रमसे परिणाम पुंजोंका प्रमाण लाने पर अन्तिम समय सम्बन्धी परिणामपुंजका प्रमाण प्रथम समय सम्बन्धी धन ४५६ में एक कम गच्छ प्रमाण चयो ८ − १ = ७ × १६ = ११२ एकसौ बारह जोड़ने पर ५६८

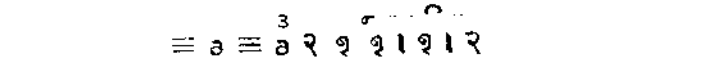

करण परिणामपुंजप्रमाणमक्कु २१११२१११।१।२ ४७२ इंतु तृतीयादि समयंगळोळु एकैकचयवृद्धि क्रमदिंदं परिणामपुंजप्रमाणं तरल्पडुवुदु । व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साध्यं तद्धनं भवेदें बो सूत्रोक्तक्रमदिंदं रूपोनगच्छमात्रं चयंगळं प्रथमसमयपरिणामपुंजदोळ्कूडुत्तिरल-पूर्वकरणकालसमयचरमवर्त्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिविशुद्धपरिणामपुंजप्रमाणमप्पुदु ५

२१११२१११।१।२ २१११२१११।१।२।५६८ इदरोळोंदु चयमं कळेयुत्तिरलु द्विचरमसमयवर्त्तिनानाजीव-

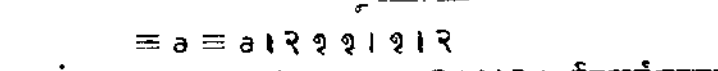

संबंधिविशुद्धिपरिणामपुंजमक्कु २१११२१११।१।२।५५२। ईयपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु पूर्व्वोत्तरसमयपरिणामंगळगे एल्ला कालदोळं सादृश्याभावमप्पुदरिंदं अनुकृष्टिरचने शून्यमेंदरि- १०

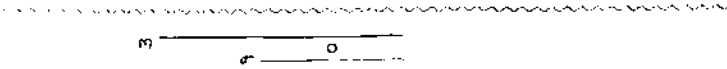

पुञ्जप्रमाणं भवति। २१११२१११।१।२ ४७२। एवं तृतीयादिसमयेषु एकैकचयवृद्धिक्रमेण परिणामपुञ्जप्रमाणेषु आनीतेषु चरमसमयधनं रूपोनगच्छमात्रचययुतप्रथमसमयधनमात्रं भवति

२१११२१११।१।२ २१११२१११।१।२।५६८ अत्रैकचये अपनीते तु द्विचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबधिविशुद्ध- १५

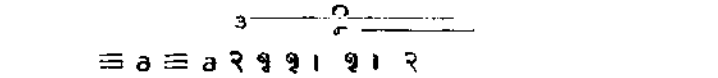

परिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २१११२१११।१।२ ५५२ अस्मिन्नपूर्वकरणगुणस्थाने पूर्वोत्तर-

होता है। इसमें एक चय घटाने पर द्विचरम समयवर्ती नाना जीवसम्बन्धी विशुद्ध परिणाम पुंज ५५२ होता है। इसी प्रकार एक-एक चय घटाने पर आठों गच्छोंका प्रमाण जानना। यथा—५६८, ५५२, ५३६, ५२०, ५०४, ४४८, ४७२, ४५६ = ४८६। अब यथार्थ कथन करते २० हैं—त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरणके सब ही परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंसे असंख्यात लोक गुने हैं; क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणके कालके अन्त समय सम्बन्धी जो विशुद्धता रूप परिणाम हैं, उनका अपूर्व करण कालके प्रथम समयमें प्रत्येक एक-एक परिणामके असंख्यात लोक प्रमाण भेदोंकी उत्पत्तिका सद्भाव है। अतः अपूर्वकरणके सर्वपरिणाम रूप सर्वधन असंख्यात लोकको असंख्यात लोकसे गुणा करने पर जितना प्रमाण होता है, उतना २५ है। उसे सर्वधन जानो। उसका काल अन्तर्मुहूर्त है, उसके जितने समय उतना गच्छ जानो। 'पदकदि संखेण भाजिदे पचयं', इस सूत्रके अनुसार गच्छके वर्ग और संख्यातका भाग

१. म सर्वोत्तर°।

वृद्धि । आपूर्वकरणद अर्थसंदृष्टिगळु :—

≡ ∂ ≡ ∂ । २ १ १ । १ । २	≡ ∂ ≡ ∂ २ १ १ १ २
२ १ १ । २ १ १ । १ । २	२ १ १ । २ १ १ । १ । २
≡ ∂ ≡ ∂ २ १ १ । १ । २	≡ ∂ ≡ ∂ २ १ १ । १ । २
२ १ १ । २ १ १ २ । १ । २	२ १ १ । २ १ १ । १ । २

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६

इदपूर्व्वकरणकालप्रथमादिसमयंगळोळपेळ्द परिणामविन्यासरचने ।
इल्लि प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतमवस्थितंगळप्पसंख्यातलोकवार ≡ ∂ ≡ ∂
१ १ १ १ १
२ २ २ २ २
∂ ∂ ∂ ∂ ∂
षट्स्थानपतितंगळप्प जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळप्प परिणामस्थानंगळ्गे प्रतिसमयं प्रति-

समयपरिणामानां सर्वकालेऽपि सादृश्याभावात् अनुकृष्टिरचना नास्ति । अत्र अपूर्वकरणकाले प्रथमादिचरम-
≡ ∂ ≡ ∂
२ । २ । २ । २ । २ ।
समयपर्यन्तस्थितानां असंख्यातलोकवार— ∂ ∂ ∂ ∂ ∂ षट्स्थानपतितजघन्यमध्यमोत्कृष्टभेद-

सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण हो, उसे चय जानो। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छके आधे प्रमाणसे चयको गुणा करके गच्छसे गुणा करने पर जो प्रमाण हो, उसे चयधन जानो। उसको सर्वधनमें-से घटाकर शेषको गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आये, वही प्रथम समयवर्ती त्रिकाल गोचर नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण परिणामोंका प्रमाण होता है। उसमें एक चय जोड़ने पर द्वितीय समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण परिणामोंका प्रमाण होता है। इसी प्रकार तीसरे आदि समयोंमें एक-एक चय क्रमसे बढ़ाने पर परिणामोंका प्रमाण होता है। ऐसा करने पर अन्तिम समय सम्बन्धी परिणाम धन एक कम गच्छ प्रमाण चयोंको प्रथम समय सम्बन्धी धनमें जोड़ने पर जितना प्रमाण हो, उतना है। उसमें एक घटाने पर द्विचरम समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी विशुद्ध परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इस प्रकार समय-समय सम्बन्धी परिणाम क्रमसे बढ़ते हुए जानना। इस अपूर्वकरणमें पूर्वोत्तर समय सम्बन्धी परिणामोंमें सदा ही समानताका अभाव है, इससे यहाँ खण्ड रूप अनुकृष्टि रचना नहीं है। इस अपूर्वकरणके कालमें प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परिणामस्थान पूर्वोक्त विधानके अनुसार असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धिको लिये हुए जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे युक्त हैं।

परिणामस्थानं विशुद्ध्यविभागप्रतिच्छेदप्रमाणावधारणार्थमीयल्पबहुत्वं पेळल्पडुगु मदें तेंदोडे ।

इल्लि प्रथमसमयवर्त्ति सर्वजघन्यपरिणामविशुद्धियधःप्रवृत्तकरणचरमसमयखंडोत्कृष्टविशुद्धियं नोडलनंतगुणविभागप्रतिच्छेदात्मकेयादोडमपूर्वकरणपरिणामविशुद्धिगळनितं नोडलिदु स्तोकं इदं नोडलु प्रथमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु द्वितीयसमयदोळु जघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळनंतरिसि यदक्कुत्पत्त्यभ्युपगममुंटप्पुदरिदं अदं नोडलतदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितुत्कृष्टमं नोडलु जघन्यं जघन्यमं नोडलुत्कृष्टविशुद्धिस्थानमनंतगुणितमितहिगतियिंदमपूर्वकरणकालचरमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं जघन्योत्कृष्टविशुध्यल्पबहुत्वमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरमितप्पपूर्वकरणपरिणामकार्य्यविशेषप्रतिपादनार्थमी गाथाद्वयमं पेळ्दपरु—

भिन्नपरिणामस्थानानां प्रतिसमयं प्रतिपरिणामस्थानं च विशुद्धयविभागप्रतिच्छेदप्रमाणावधारणार्थं अल्पबहुत्वमुच्यते । तद्यथा—प्रथमसमयवर्तिसर्वजघन्यपरिणामविशुद्धिः अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयचरमखण्डोत्कृष्टविशुद्धितोऽनन्तगुणाविभागप्रतिच्छेदात्मिकाप्यपूर्वकरणपरिणामविशुद्धितः स्तोका । ततः प्रथमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयसमयजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि अन्तरयित्वैव तस्योत्पत्त्यभ्युपगमात् । ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा एवमुत्कृष्टाज्जघन्यं जघन्यादुत्कृष्टं च विशुद्धिस्थानं अनन्तगुणं अनन्तगुणमित्यहिगत्या अपूर्वकरणकालचरमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं जघन्योत्कृष्टविशुद्धयल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं ॥५३॥ एवंविधस्यापूर्वकरणपरिणामस्य कार्यविशेषं गाथाद्वयेनाह—

उनका प्रतिसमय और प्रत्येक परिणाम स्थानके प्रति विशुद्धिके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण अवधारण करनेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं—जो इस प्रकार है—

प्रथम समयवर्ती सबसे जघन्य परिणाम विशुद्धि अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे यद्यपि अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेदोंको लिये हुए है; तथापि अपूर्वकरणके अन्य परिणामोंकी विशुद्धिसे स्तोक हैं। उससे प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे द्वितीय समयवर्ती जघन्य परिणाम विशुद्धि अनन्तगुणी है। क्योंकि प्रथम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धिसे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानोंका अन्तराल देकर वह द्वितीय समयवर्ती जघन्य विशुद्धि उत्पन्न होती है। उससे उसी द्वितीय समयकी उत्कृष्ट परिणामविशुद्धि अनन्तगुणी है। इस तरह उत्कृष्टसे जघन्य और जघन्यसे उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार सर्पकी गतिकी तरह अपूर्वकरणके चरम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणामविशुद्धि पर्यन्त जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका अल्पबहुत्व जानना ॥५३॥

आगे इस प्रकारके अपूर्वकरण परिणामोंका विशेष कार्य दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म°य चरम २ २ २ २ २१ खं० ।

तारिसपरिणामट्ठिय-जीवा हु जिणेहि गलिदतिमिरेहिं ।
मोहस्सपुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥५४॥

तादृशपरिणामस्थितजीवाः खलु जिनैर्गलिततिमिरैर्मोहस्यापूर्वकरणाः क्षपणोपशमनोद्यता भणिताः ॥ अंतर्प्प पूर्व्वोत्तरसमयविलक्षणंगळप्पऽपूर्वकरणपरिणामंगळोळु स्थितर्प्परिंतगळप्प जीवंगळु अपूर्वकरणरेंदितु गलितज्ञानावरणादिकर्म्मतिमिररप्प जिनरुगळिंदं पेळल्पट्टरु । आ अपूर्व्वकरणरनिवरु चारित्रमोहनीयकर्म्मद क्षपणोपशमनोद्युक्तरप्परु । अपूर्वकरणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु प्राक्तनावश्यकचतुष्टयं बेरसु गुणश्रेणिगुणसंक्रमस्थितिखंडनानुभागखंडनलक्षणावश्यकचतुष्टयमुं प्रवर्त्तिसुगुमेंबुदर्त्थं ॥

णिद्दापयले णट्ठे सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया णियमेण खवंति मोहं तु ॥५५॥

निद्राप्रचले नष्टे सत्यायुषि उपशमयंत्युपशमकाः । क्षपकां ढौकमानाः क्षपकाः नियमेन क्षपयन्ति मोहं पुनः ॥ इल्लियपूर्वकरणगुणस्थानदोळु विद्यमानायुष्यंगे प्रथमभागदोळु निद्रा-

---

तादृशेषु पूर्वोत्तरसमयविलक्षणेषु अपूर्वकरणपरिणामेषु स्थिताः परिणता जीवा अपूर्वकरणा इति गलितज्ञानावरणादिकर्मतिमिरैर्जिनैर्भणिताः । ते च अपूर्वकरणाः सर्वेऽपि प्रथमसमयमादिं कृत्वा चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षपणोपशमनोद्युक्ता भवन्ति गुणश्रेणिगुणसंक्रमणस्थितिखण्डानुभागखण्डनलक्षणानि चत्वार्यावश्यकानि कुर्वन्तीत्यर्थः ॥५४॥

अत्र अपूर्वकरणगुणस्थाने विद्यमानायुष्कस्य प्रथमभागे निद्राप्रचलाद्वये बन्धतो व्युच्छिन्ने सति उपशम-

---

पूर्व समय और उत्तर समयमें इस प्रकार विलक्षणताको लिये हुए अपूर्वकरण परिणामोंमें स्थित अर्थात् उन परिणाम रूप परिणत जीवोंको, जिनका ज्ञानावरणादि रूप अन्धकार दूर हो गया है उन जिन भगवान्ने अपूर्वकरण कहा है। वे सभी अपूर्वकरण जीव प्रथम समयसे ही चारित्र मोहनीय कर्मको क्षय करनेमें या उसका उपशम करने पर तत्पर होते हैं। अर्थात् गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखण्डन, अनुभागखण्डन रूप चार आवश्यकोंको करते हैं ॥५४॥

विशेषार्थ—पहले बाँधे हुए सत्ता रूप कर्म परमाणु द्रव्यमें-से जो द्रव्य गुणश्रेणिमें दिया, उसकी गुणश्रेणिके कालमें प्रति समय असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये जो पंक्तिबद्ध निर्जरा होती है, वह गुणश्रेणिनिर्जरा है। प्रतिसमय गुणकारके अनुक्रमसे विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करे, वह गुण संक्रमण है। पूर्वबद्ध सत्तारूप कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिको घटाना स्थितिखण्डन है। पूर्वबद्ध सत्तारूप अप्रशस्त कर्म प्रकृतियोंके अनुभागको घटाना सो अनुभाग खण्डन है। ये चार कार्य अपूर्वकरणमें अवश्य होते हैं ॥५४॥

इस अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति मनुष्य आयुके विद्यमान होते होती है। अर्थात् उपशम श्रेणि पर आरोहण करनेवाले अपूर्वकरण जीवका प्रथम भागमें मरण नहीं होता, ऐसा आगम है। इस तरह यदि वे अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मनुष्य उपशम श्रेणि पर आरोहण करते हैं, तब नियमसे

---

१. म °यनिलं । २. °तरप्पं । ३. म °मोहनीय° ।

प्रवलिगळरडु बंर्यादिदं व्युच्छिन्नंगळागुत्तिरलु अंतु बुदेनें दोडे उपशमश्रेण्यारोहणकाऽपूर्वकरणंगे प्रथमभागदोळु मरणमिल्लें बागममुंटे बुदत्थं। आ अपूर्वकरणगुणस्थानवर्त्तिगळु उपशमश्रेण्यारूढरुगळादोडे चारित्रमोहनीयमनियमदिदमुपशमिसुवरु । क्षपकश्रेण्यारूढरागुत्तिद्दं क्षपकरु तच्चारित्रमोहनीयमं नियमदिदं क्षपियिसुवरु । क्षपकश्रेणियोळेल्लियुं मरणं नियमदिदमिल्ल ॥

अनंतरमनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्वरूपप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु । ५

एक्कम्मि कालसमये संठाणादीहि जह णिवट्टंति ।
ण णिवट्टंति तहंचिय परिणामेहिं मिहो जे हु ॥५६॥

एकस्मिन् कालसमये संस्थानादिभिर्यथा निवर्तन्ते । न निवर्तन्ते तथैव च परिणामैर्मिथो ये खलु ॥ अनिवृत्तिकरणकालदोळु [3]बो[2]दु समयदोळु वर्त्तमानरप्प त्रिकालगोचरनानाजीवंगळु एंतु संस्थानवर्णवयोऽवगाहनज्ञानोपयोगादिगळिंदं परस्परं भेद्यरप्परंते विशुद्धिपरिणामंगळिंदं १० भेद्यरल्लरु । आर्केलंबरु स्फुटमागि—

श्रेण्यारोहकापूर्वकरणस्य प्रथमभागे मरणं नास्तीति आगमोऽस्तीत्यर्थः । ते अपूर्वकरणगुणस्थानवर्तिनः उपशमश्रेणिमारोहन्ति तदा चारित्रमोहनीयं नियमेन उपशमयन्ति । क्षपकश्रेणिमारुह्यमाणाः क्षपकाः तच्चारित्रमोहनीयं नियमेन क्षपयन्ति । क्षपकश्रेण्यां सर्वत्र मरणं नियमेन नास्ति ॥५५॥ अथानिवृत्तिकरणगुणस्थानस्वरूपं गाथाद्वयेन प्ररूपयति— १५

ये अनिवृत्तिकरणकाले एकस्मिन् समये वर्तमानास्त्रिकालगोचरा नानाजीवा यथा संस्थानवर्णवयोऽवगाहनज्ञानोपयोगादिभिः परस्परं भिद्यन्ते तथा विशुद्धिपरिणामैर्न भिद्यन्ते खलु-स्फुटं ॥५६॥

चारित्रमोहनीयका उपशम करते हैं। तथा क्षपक श्रेणि पर आरोहण करनेवाले क्षपक नियमसे चारित्र मोहनीयका क्षपण करते हैं। क्षपक श्रेणिमें तो सर्वत्र नियमसे मरण नहीं होता। उपशम श्रेणिमें अपूर्वकरणके प्रथम भागमें मरण नहीं है, किन्तु द्वितीयादि भागोंमें मरण २० सम्भव है ॥५५॥

आगे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्वरूप दो गाथाओंसे कहते हैं—

अनिवृत्तिकरणकालके एक समयमें वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीव जैसे शरीरका आकार वर्ण, वय, अवगाहना, ज्ञानोपयोग आदिसे परस्परमें भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार विशुद्ध परिणामोंके द्वारा भेदको प्राप्त नहीं होते। उन जीवोंको अनिवृत्तिकरण सम्यक् रूपसे २५ जानना। जिनके निवृत्ति अर्थात् विशुद्ध परिणामोंमें भेद नहीं है, वे अनिवृत्तिकरण हैं—इस निरुक्तिके आश्रयसे उक्त बात सिद्ध है। इसका खुलासा इस प्रकार जानना। जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये पहला दूसरा आदि समान समय हुआ है, उन त्रिकालवर्ती अनेक जीवोंके परिणाम समान ही होते हैं। जैसे अधःकरण अपूर्वकरणमें समान अथवा असमान होते हैं, वैसे यहाँ नहीं हैं। तथा अनिवृत्तिकरण कालके प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय ३० वर्तमान सर्व जीव हीन अधिक परिणामसे रहित समान विशुद्ध परिणाम वाले होते हैं। वहाँ जो प्रतिसमय अनन्तगुणे-अनन्तगुणे विशुद्धि परिणाम होते हैं, उनसे दूसरे समयमें होने वाले विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार पूर्व-पूर्व समयवर्ती विशुद्ध परिणामोंसे

---

१. म °देनेनें । २. म °गलाद रे । ३. म °वोंदोंदु ।

होंति यणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्सि एक्कपरिणामा ।
विमलयर-झाणहुतवहसिहाहि णिद्दड्ढ-कम्मवणा ॥५७॥

भवन्त्यनिवृत्तयस्ते प्रतिसमयं यस्मादेकपरिणामा । विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ॥ आ जीवंगळनिवृत्तिकरणरं दितु सम्यक्कागरियल्पडुवरु । अदं तने न विद्यते निवृत्तिविशुद्धिपरिणामभिन्नत्वं येषां तेऽनिवृत्तयः यें दितु निरुक्त्याश्रयदिंदमावुदो दु कारणदिंदमार्यल्ला जीवंगळनिवृत्तिकरणकालप्रथमसमयं मोदल्गोंडु समयं समयंप्रति वर्त्तमानरुगळुमन्योन्यमेकादृशपरिणामरे प्पर्। अदु कारणदिंदमनिवृत्तिगळें दितु तात्पर्यमरियल्पडुगुं ।

मत्तमपूर्वकरणकालचरमसमयवर्त्तिविशुद्धिपरिणामंगळु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळिरुतिर्क्कुमवेल्लमं नोडलसंख्यातलोकमात्रं षट्स्थानंगळनंतरिसि अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयदोळु हीनाधिकभावरहितंगळप्प विशुद्धिपरिणामंगळनंतगुणंगळ्पुट्टुववं नोडलु द्वितीयसमयदोळु विशुद्धिपरिणामंगळुमनंतगुणंगळप्पवु । इंतु पूर्व्वपूर्व्वसमयवर्त्तिविशुद्धिपरिणामंगळत्तणिदं जीवंगळुत्तरोत्तरसमयवर्त्तिगळु विशुद्धिपरिणामंगळुमनंतानंतगुणितक्रमदिंदं वर्द्धमानंगळागि नडेववु । एंदितिविशेषं प्रवचनदोळु प्रतिपादितमरियल्पडुगुं । आ अनिवृत्तिकरणपरिणामंगळनुळ्ळ जीवंगळु विमलतरध्यानहुतवह शिखिगळिदं निर्द्दग्धकर्म्मवनरें बिदरिंदं चारित्रमोहोपशमनक्षपणलक्षणमनिवृत्तिकरणपरिणामकार्य्यं सूचिसल्पट्टु ।

ते जीवा अनिवृत्तिकरणा इति सम्यग्ज्ञातव्याः । न विद्यते निवृत्तिः विशुद्धिपरिणामभेदो येषां ते अनिवृत्तय इति निरुक्त्याश्रयणात् । ते सर्वेऽपि अनिवृत्तिकरणा जीवाः तत्कालप्रथमसमयमादिं कृत्वा प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानेन हीनाधिकभावरहितेन विशुद्धिपरिणामेन प्रवर्तमानाः सन्ति यतः, ततः प्रथमसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामेभ्यो द्वितीयसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामा अनन्तगुणा भवन्ति । एवं पूर्वपूर्वसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामेभ्यो जीवानामुत्तरोत्तरसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामा अनन्तानन्तगुणितक्रमेण वर्धमाना भूत्वा गच्छन्ति इत्ययं विशेषः प्रवचने प्रतिपादितः प्रत्येतव्यः । तदनिवृत्तिकरणपरिणामयुतजीवाः विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवना भवन्ति । अनेन चारित्रमोहस्य उपशमनं क्षपणं च अनिवृत्तिकरण-

---

जीवोंके उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा क्रमसे अनन्तगुणे-अनन्तगुणे बढ़ते हुए होते हैं ।

सारांश यह है कि अनिवृत्तिकरणमें एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें समानता है । तथा ऊपर समयवर्तियोंके अनन्तगुणी विशुद्धता बढ़ती हुई है । उसका उदाहरण—जैसे जिनको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये पाँचवाँ समय हुआ, उन त्रिकालवर्ती अनेक जीवोंके विशुद्ध परिणाम समान ही होते हैं; हीन-अधिक कभी भी नहीं होते । वे विशुद्ध परिणाम जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये चौथा समय हुआ है, उनके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध हैं; इनसे जिनको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये छठा समय हुआ है, उनके अनन्तगुणे विशुद्ध परिणाम होते हैं । ऐसे ही आगे भी सर्वत्र जानना । वे अनिवृत्तिकरण परिणामवाले जीव विमलतर ध्यानरूपी अग्निकी ज्वालासे कर्मरूपी वनको जलानेवाले होते हैं । इससे यह सूचित किया है कि अनिवृत्तिकरण परिणामोंका कार्य चारित्र मोहका उपशमन और क्षपण करना है ॥५७॥

---

३५ १ म °णाममनुल्ल ।

अनंतरं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्वरूपप्ररूपणार्थमी सूत्रमं पेळदपरु—

धुवकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहुमरायसंजुत्तं ।
एवं सुहुमकसाओ सुहुमसरागोत्ति णादव्वो ॥५८॥

धौतकौसुंभवस्त्रं भवति यथा सूक्ष्मरागसंयुक्तं । एवं सूक्ष्मकषायः सूक्ष्मसराग इति ज्ञातव्यः ॥

एंतीगळ्धौतकौसुंभवस्त्रं सूक्ष्मरागसंयुक्तं अक्कुमंते मुंदणसूत्रदिं पेळ्व प्रकारदिंदं सूक्ष्म- ५
कृष्टिगतलोभकषायं सूक्ष्मसांपरायनेंदितरियल्पडुगुं ॥

अनंतरं सूक्ष्मकृष्टिगतत्वस्वरूपनिरूपणार्थं ई गाथाद्वयमं पेळदपरु—

पुव्वापुव्वप्फड्डयबादरसुहुमगयकिट्टियणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवरादु वरं च हेट्ठस्स ॥५९॥

पूर्वापूर्वस्पर्द्धकबादरसूक्ष्मगतकृष्टयनुभागाः हीनक्रमाः अनंतगुणेनावराद्वरश्चाधस्तनस्य ॥ १०

मुन्नमनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळ्संसारावस्थेयोळ्संभवमनुळ्ळ कर्म्मशक्तिसमूहरूप-
पूर्व्वस्पर्द्धकं गळगे (उ । व्वं । ना) अनिवृत्तिकरणपरिणामंगळिंद क्रियमाणंगळप्प तदनंतैक-
ज ः ८
ः
ः

परिणामकार्यमिति सूचितं ॥५७॥ अथ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्वरूपमाह—

यथा धौतकौसुम्भवस्त्रं सूक्ष्मरागसंयुक्तं भवति तथाग्रतनसूत्रोक्तप्रकारेण सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायः १५
सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥५८॥ अथ सूक्ष्मकृष्टिगतस्वरूपं गाथाद्वयेन निरूपयति—

पूर्वं अनिवृत्तिकरणस्थाने संसारावस्थायां संभवत्कर्मशक्तिसमूहरूपस्पर्धकानां (उ । व ९ । ना) अनि-
ज । व । १

आगे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जैसे कुसुम्भसे रंगा हुआ वस्त्र सम्यक् रूपसे धोनेपर भी सूक्ष्म लाल रंगसे युक्त होता २०
है, उसी प्रकार आगेके सूत्रमें कहे विधानके अनुसार सूक्ष्म कृष्टिको प्राप्त लोभकषायसे युक्त जीवको सूक्ष्म साम्पराय जानना ॥५८॥

विशेषार्थ—राग अर्थात् यथाख्यात चारित्रको रोकनेवाला कषाय रंग, उसके साथ जो हो, वह सराग अर्थात् विशुद्धि परिणाम। सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मकृष्टि अनुभागोदयसे सह- चरित सराग जिसका है, वह सूक्ष्म सराग अर्थात् सूक्ष्म साम्पराय है ॥५८॥ २५

पूर्व अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अथवा संसार अवस्थामें होनेवाले कर्मकी शक्ति समूह रूप पूर्वस्पर्धक, अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा किये उनके अनन्तवें भाग प्रमाण अपूर्व स्पर्धक, उन्हीं परिणामोंके द्वारा की गयी बादरकृष्टि और उन्हींके द्वारा की गयी कर्मशक्तिका सूक्ष्म खण्डरूप सूक्ष्मकृष्टि, इनका अनुभाग यथाक्रम अपने उत्कृष्टसे अपना जघन्य और ऊपरके जघन्यसे नीचेका उत्कृष्ट क्रमसे अनन्त गुणा हीन है ॥५९॥ ३०

विशेषार्थ—इन पूर्व स्पर्धक आदिका स्वरूप यहाँ कहते हैं; जैसा पं. टोडरमलजीने लिखा है—कर्मप्रकृतिरूप परिणत परमाणुओंमें जो फल देनेकी शक्ति है, उसको अनुभाग कहते हैं। उस अनुभागका ऐसा कोई केवलज्ञान गम्य अंश जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता,

---

१. म पेल्द । २. म °यमेंदितरि । ३. म °गलोडने ।

उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। एक परमाणुमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं उनके समूहका नाम वर्ग है। जिन परमाणुओंमें परस्पर समान गणनाको लिये अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं,उनके समूहका नाम वर्गणा है। अन्य परमाणुओंमें-सेजिनमें थोड़े अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं,उनके समूहका नाम जघन्य वर्ग है। उस परमाणुके समान जिन परमाणुओंमें अविभाग प्रतिच्छेद पाये जाएँ,उनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा है। जघन्य वर्गसे एक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें अधिक पाया जाये,ऐसे परमाणुओंके समूहका नाम दूसरी वर्गणा है। इस प्रकार जहाँ तक एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक लिये हुए वर्गणा पायी जाये,उन सबके समूहका नाम जघन्य स्पर्धक है। इससे ऊपर जघन्य वर्गणाके वर्गोंमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद थे,उनसे दूने जिस वर्गणाके वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेद हों,वहाँसे दूसरा स्पर्धक प्रारम्भ होता है। वहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़नेके क्रमको लिये वर्गोंके समूह रूप जितनी वर्गणा होती है,उनके समूहका नाम द्वितीय स्पर्धक है। प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद थे,उनसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेद जिस वर्गणाके वर्गोंमें पाये जायें,वहाँसे तीसरा स्पर्धक प्रारम्भ होता है। उसमें भी पूर्वोक्त क्रम जानना। सारांश यह है कि जहाँ तक वर्गणाओंके वर्गोंमें क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता है,वहाँ तक वही स्पर्धक कहा जाता है। और जहाँसे एक साथ अनेक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ते हैं,वहाँसे नवीन अन्य स्पर्धकका आरम्भ होता है। सो चतुर्थ आदि स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणाके वर्गमें अविभागी प्रतिच्छेद प्रथम स्पर्धकके प्रथम वर्गणाके वर्गमें जितने थे,उनसे चौगुणे, पाँचगुणे आदि क्रमसे जानना। तथा अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणाके वर्गमें अपनी-अपनी प्रथम वर्गणाके वर्गसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद क्रमसे बढ़ता जानना। ऐसे स्पर्धकोंके समूहका नाम प्रथम गुणहानि है। इस प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणामें जितने परमाणुरूप वर्ग होते हैं,उनसे एक-एक चय प्रमाण घटते हुए द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्ग जानने। इस क्रमसे जहाँ प्रथम गुण-हानिकी वर्गणाके वर्गोंसे आधे वर्ग जिस वर्गणामें होते हैं,वहाँसे दूसरी गुणहानि आरम्भ होती है। इस क्रमसे जितनी गुणहानियाँ सब कर्म परमाणुओंकी पायी जाती हैं,उनके समूहका नाम नाना गुणहानि है।

इन वर्गणादिमें परमाणुओंका प्रमाण लानेके लिए द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, दो गुणहानि, नानागुणहानि, अन्यान्याभ्यस्तराशि ये छह जानना। उसमें-से सर्व कर्म परमाणुओंका प्रमाण किंचित् ऊन द्वयर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण है। उसे सर्व द्रव्य जानो। तथा नाना गुणहानिसे गुणहानि आयामको गुणा करने पर जो सर्व द्रव्यमें वर्गणाओंका प्रमाण होता है,वह यहाँ स्थिति जानना। एक गुणहानिमें अनन्त गुणित अनन्त प्रमाण वर्गणा पायी जाती है सो गुणहानि आयाम जानना। उसको दूना करने पर जो प्रमाण हो, वह दो गुणहानि है। सर्व द्रव्यमें जो अनन्त गुणहानियाँ होती हैं,उनका नाम नाना गुणहानि है। क्योंकि दोके गुणाकार रूप घटता-घटता द्रव्य जिसमें पाया जाये,वह गुणहानि है और अनेक गुणहानि नाना गुणहानि है। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करने पर जो प्रमाण हो,वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है। एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर जो प्रमाण आवे,उतना ही अन्तकी गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण है। उससे दूना-दूना प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्यका प्रमाण है।

भागमात्रापूर्व्वस्पर्द्धकंगळगे उ ८ अवरिंदमे विधोयमानंगळप्प बादर कृष्टिगळगे उ ८
ख ख ९ ख
: ८ उ ०
ज ख ९ (ज ८) व
उ ० ख ९ ख ४ ५
उ ० ख

अवरिंदमे विधोयमानंगळप्प कर्म्मशक्ति सूक्ष्मखंडंगळप्प सूक्ष्मकृष्टिगळगे —उ ८ यथा-
ख ९ ख ४ ख
उ ० ख
ज ८ १०
ख ९ ख ४ ख ४
उ ० । ख । ख

वृत्तिकरणपरिणामैः क्रियमाणतदनन्तैकभागमात्रापूर्वस्पर्धकानां (उ । व) तेभ्य एव क्रियमाणबादरकृष्टीनां
ख
ज । व १५
ख ९
उ ०

(उ व) ताभ्य एव क्रियमाणकर्मशक्तिसूक्ष्मखण्डरूपसूक्ष्मकृष्टीनां च (उ । व) यथाक्रमं अनुभागः
ख ९ ख ख ९ ख ४ ख
उ ० उ ० ख २०
ज । व ज व
ख ९ ख ४ ख ख ९ ख ४ ख ४
उ ० ख उ ० ख ख

तथा 'दिवड्ढगुणभाजिदे पढमा', इस सूत्रके अनुसार साधिक डेढ़ गुणहानि आयामका भाग सर्व द्रव्यमें देनेपर जो प्रमाण हो, वही प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके परमाणुओंका २५
प्रमाण है। उसमें दो गुणहानिसे भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है। सो द्वितीयादि वर्गणाओंमें एक-एक चय घटता परमाणुओंका प्रमाण जानना। इस क्रमसे प्रथम गुणहानि-की प्रथम वर्गणासे जिस वर्गणामें परमाणुओंका प्रमाण आधा हो, वह द्वितीय गुणहानिकी प्रथम वर्गणा है। उससे पहले जितनी वर्गणा हुई, वे सब प्रथम गुणहानि सम्बन्धी जानना। द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी द्वितीयादि वर्गणाओंमें भी एक-एक चय घटता परमाणुओंका ३०
प्रमाण जानना। तथा यहाँ द्रव्य, चय आदिका प्रमाण प्रथम गुणहानिसे आधा-आधा जानना। इस तरह क्रमसे सर्व द्रव्यमें अनन्त नाना गुणहानियाँ हैं। उनमें प्रथम गुणहानि-की प्रथम वर्गणासे लेकर अनन्त गुणहानिकी अनन्त वर्गणा पर्यन्त जो वर्गणा है, उनके वर्गोंमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमसे बढ़ता-बढ़ता जानना। इसे अंक संदृष्टि द्वारा स्पष्ट करते हैं—सर्व द्रव्य ३१००, स्थिति ४०, गुणहानि आयाम ८, ३५
दो गुणहानि १६, नाना गुणहानि ५, अन्योन्याभ्यस्त राशि ३२। एक कम अन्योन्याभ्यस्त

राशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० को देने पर १०० प्राप्त हुए, वह अन्तिम गुणहानिका द्रव्य है। उससे दूना-दूना प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य जानना १६००,८००,४००,२००,१००। साधिक डेढ़ गुण हानिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर २५६ आये। सो प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणामें वर्गोंका प्रमाण है। इसको दो गुणहानि १६ से भाग देनेपर सोलह आये। सो चयका प्रमाण है। सो द्वितीयादि वर्गणाओंमें इतना-इतना घटता वर्ग जानना। इस तरह प्रथम गुणहानिमें आठ वर्गणा जानना। द्वितीय गुणहानिमें भी आठ वर्गणा है। उनमें द्रव्य और चयका प्रमाण पूर्वसे आधा-आधा जानना। इस प्रकार सर्व द्रव्यमें क्रमसे आधी-आधी पाँच गुणहानियाँ होती हैं। उनकी रचना—

प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
१४४	७२	३६	१८	९
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	४४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	१२०	६०	३०	१५
२५६	१२८	६४	३२	१६
१६००	८००	४००	२००	१००

चार-चार वर्गणाका समूह एक-एक स्पर्धक। एक-एक गुणहानिमें दो-दो स्पर्धक हैं। सो प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें आठ-आठ अविभाग प्रतिच्छेद पाये जाते हैं। दूसरी वर्गणाके वर्गोंमें नौ-नौ, तीसरीकीमें दस-दस और चौथीकीमें ग्यारह-ग्यारह जानना। तथा प्रथम गुणहानिके द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें सोलह-सोलह, दूसरीकीमें सतरह-सतरह, तीसरीकीमें अठारह-अठारह, चौथीकीमें उन्नीस-उन्नीस अविभाग प्रतिच्छेद हैं। तथा द्वितीय गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें चौबीस-चौबीस, आगे एक-एक अधिक है। इसी प्रकार अन्तिम गुणहानिके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा पर्यन्त जानना।

अंक संदृष्टि अपेक्षा अविभाग प्रतिच्छेदोंकी रचनाका यन्त्र

प्रथम गुणहानि		द्वितीय गुणहानि		तृतीय गुणहानि		चतुर्थ गुणहानि		पंचम गुणहानि	
प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.
११	१९	२७	३५	४३	५१	५९	६७	७५	८३
१०।१०	१८।१८	२६।२६	३४।३४	४२।४२	५०।५०	५८।५८	६६।६६	७४।७४	८२।८२
९।९।	१७।१७।	२५।२५।	३३।३३।	४१।४१।	४९।४९।	५७।५७।	६५।६५।	७३।७३।	८१।८१।
९	१७	२५	३३	४१	४९	५७	६५	७३	८१
८।८।	१६।१६।	२४।२४।	३२।३२।	४०।४०।	४८।४८।	५६।५६।	६४।६४।	७२।७२।	८०।८०।
८।८	१६।१६	२४।२४	३२।३२	४०।४०	४८।४८	५६।५६	६४।६४	७२।७२	८०।८०

क्रमदिननुभागंगळु स्वोत्कृष्टात्स्वजघन्यमुपरितनजघन्यादिदमधस्तनोत्कृष्टंगळुमनंतगुणहीनक्रमंगळप्पुवु ।

ई प्रकारदिंदमनिवृत्तिकरणपरिणामकृतसूक्ष्मकृष्टिगतलोभमनुळ्ळ जीवं ।

स्वोत्कृष्टात् स्वजघन्यः उपरितनजघन्यादधस्तनोत्कृष्टश्चेति अनन्तगुणहीनक्रमा भवन्ति ॥

इस प्रकार अंक संदृष्टिके द्वारा जैसा कहा, वैसा ही पूर्वोक्त यथार्थ कथन समझ लेना चाहिए ।

इस प्रकार कहे जो अनुभागके स्पर्धक पूर्व संसार अवस्थामें जीवोंके होते हैं, इससे इनको पूर्व स्पर्धक कहते हैं। इनमें जघन्य स्पर्धकसे लेकर लताभागादिरूप स्पर्धक होते हैं। उनमें लताभागादिरूप कुछ स्पर्धक देशघाती हैं। ऊपरके कुछ स्पर्धक सर्वघाती हैं। अनिवृत्तिकरण परिणामोंसे पहले कभी जो नहीं हुए, वे अपूर्व स्पर्धक हैं। उनमें जघन्य पूर्व स्पर्धकसे भी अनन्तवें भाग अनुभाग शक्ति उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धकमें पायी जाती है। अर्थात् विशुद्धताके द्वारा अनुभाग शक्ति घटाकर कर्म परमाणुओंको उस रूप परिणमाते हैं। यहाँ विशेष इतना ही हुआ कि पूर्व स्पर्धककी जघन्य वर्गणाके वर्गसे इस अपूर्व स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके वर्गमें अनुभाग अनन्तवें भाग है। उससे अन्य वर्गणाओंमें अनुभाग घटता हुआ है। उसका विधान पूर्वस्पर्धकवत् ही जानना। तथा वर्गणाओंमें परमाणुओंका प्रमाण पूर्व स्पर्धककी जघन्य वर्गणासे एक-एक चय बढ़ता हुआ पूर्व स्पर्धककी तरह क्रमसे जानना। यहाँ चयका प्रमाण पूर्व स्पर्धककी प्रथम गुणहानिके चयसे दूना है।

इसके पश्चात् अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा ही कृष्टि की जाती है। अनुभागका कृष करना अर्थात् घटानेको कृष्टि कहते हैं। सो संज्वलन क्रोध-मान-माया लोभका अनुभाग घटाकर स्थूल खण्ड करना बादर कृष्टि है। उत्कृष्ट बादरकृष्टिमें भी जघन्य अपूर्व स्पर्धकसे भी अनुभाग अनन्तगुणा घटता हुआ होता है। चारों कषायोंकी बारह संग्रह कृष्टि होती हैं। और एक-एक संग्रह कृष्टिमें अनन्त-अनन्त अन्तर कृष्टि होती हैं। उनमें लोभकी प्रथम संग्रहकी प्रथम कृष्टिसे लेकर क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अन्तकृष्टि पर्यन्त क्रमसे अनन्तगुना-अनन्तगुना अनुभाग है। उस क्रोधकी तृतीय कृष्टिकी अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अनन्तगुणा अनुभाग है। सो स्पर्धकोंमें तो पूर्वोक्त प्रकार अनुभागका क्रम था। यहाँ अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभागका अनुक्रम हुआ। यही स्पर्धक और कृष्टिमें विशेष जानना। किन्तु वहाँ परमाणुओंका प्रमाण लोभकी प्रथम संग्रहकी जघन्य कृष्टिमें यथासम्भव बहुत है। उससे क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अन्तिम कृष्टि पर्यन्त चय क्रमसे घटता हुआ है। यह अपूर्व स्पर्धक बादरकृष्टि क्षपक श्रेणीमें ही होती है, उपशम श्रेणीमें नहीं होती। तथा अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा ही कषायोंके सर्व परमाणु संक्रम आदि विधानपूर्वक एक लोभरूप परिणमा कर बादर कृष्टिगत लोभरूप करके पीछे उनको सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमाता है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें की गयी जो सत्तामें सूक्ष्म कृष्टि, सो जब उदयरूप होती है, तब सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान होता है ॥५९॥

१. म °गलोयुमनंत° ।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसांपराओ जहखाएणूणओ किंचि ॥६०॥

अणुलोभं वेदयमानो जीव उवशमकः क्षपको वा । स सूक्ष्मसांपरायो यथाख्यातेनोनकः किंचित् ॥ अनिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितजीवननंतरसमयदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमं पोद्दि सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायोदयमननुभविसुवुपशमकनुं क्षपकनुं मेणु सूक्ष्मसांपरायनेंदितु परमागमदोळ् प्रख्यातनाद नातने सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळ विशुद्धियं नोडलनंतगुणविशुद्धि सूक्ष्मसांपरायसंयमसंपन्ननु यथाख्यातचारित्रसंपन्ननं नोडल्किचिन्न्यूननक्कुं ।

सूक्ष्मः सूक्ष्मकृष्टिगतस्सांपरायो लोभकषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपरायः एंदितन्वर्थसंज्ञेयिदं व्यपदेशिसल्पट्टं ॥

अनंतरमुपशांतकषायगुणस्थानस्वरूपनिर्दर्देशार्थमी सूत्रावतारं—

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलए ।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि ॥६१॥

कतकफलयुतजलवत् शरदि सरः पानीयवन्निर्म्मले सकलोपशान्तमोहः उपशान्तकषायो भवति ॥

एंतु कतकफलचूर्णयुतं जलं प्रसन्नं मेणभ्रकलंकरहितमप्प शरत्कालदोळु सरःपानीयं प्रसन्नं अंते साकल्यदिंदमुपशांतमोहनीयमनुळ्ळमुपशांतकषायनक्कुं । उपशांताः साकल्येनोदयाऽयोग्याः कृताः कषायनोकषायाः येनासावुपशांतकषायः एंदितु माडिद निरुक्तियिंदमत्यंतप्रसन्नचित्तते सूचिसल्पट्टुदु ॥

अनिवृत्तिकरणचरमसमयानन्तरं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानं प्राप्य सूक्ष्मकृष्टिगतलोभं अनुभवन् उपशमकः क्षपको वा सूक्ष्मसांपराय इत्याख्यायते । स एव सामायिकछेदोपस्थापनसंयमविशुद्धितोऽतिविशुद्धिसूक्ष्मसांपरायसंयमसंपन्नः यथाख्यातचारित्रसंपन्नात् किंचिद्धीनो भवति । सूक्ष्मः कृष्टिगतः सांपरायो लोभकषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपराय इत्यन्वर्थनामत्वात् ॥६०॥ अथोपशान्तकषायगुणस्थानस्वरूपं निर्दिशति—

यथा कतकफलचूर्णयुतं जलं प्रसन्नं अथवा अभ्रकलंकरहितशरत्काले सरःपानीयं प्रसन्नं तथा साकल्येन उपशान्तमोहनीयः उपशान्तकषायो भवति । उपशान्ताः—साकल्येन उदयायोग्याः कृताः कषायनोकषाया येन

अनिवृत्तिकरणके अन्तिम- समयके अनन्तर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्त करके सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभके उदयको भोगनेवाला उपशमक अथवा क्षपक जीव सूक्ष्म साम्पराय कहा जाता है । वही जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयमकी विशुद्धिसे अतिविशुद्ध सूक्ष्म साम्पराय संयमसे सम्पन्न हुआ यथाख्यात चारित्रसे सम्पन्न जीवसे कुछ हीन होता है । जिसका साम्पराय अर्थात् लोभकषाय सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त है, वह सूक्ष्मसाम्पराय है । इस प्रकार यह नाम सार्थक है ॥६०॥

आगे उपशान्त कषाय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जैसे कतकफलके चूर्णसे युक्त जल निर्मल होता है अथवा मेघपटलसे रहित शरत् ऋतुमें जैसे सरोवरका जल ऊपरसे निर्मल होता है, वैसे ही पूर्णरीतिसे मोहको उपशान्त करनेवाला उपशान्त कषाय होता है । जिसने कषाय नोकषायोंको उपशान्त अर्थात् पूर्णरूपसे

अनंतरं क्षीणकषायगुणस्थान निर्द्देशार्थमिदं पेळ्दपरु—

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥६२॥

निःशेषक्षीणमोहः स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः । क्षीणकषायो भण्यते निर्ग्रंथो वीतरागैः ॥

निःशेषक्षीणाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वरहिता मोहप्रकृतयो यस्यासौ क्षीणकषायः एंबो निरुक्त्याश्रयदिंदं निरवशेषमोहप्रकृतिसत्त्वरहितनप्प क्षीणकषाय नदुकारणदिंदं स्फटिकभाजनोदकसदृशमप्प प्रसन्नचित्तनुं क्षीणकषायनेंदितु वीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टनातने परमार्त्थदिंदं निर्ग्रंथनक्कुं । उपशांतकषायनुं यथाख्यातचारित्रसाधारण्यदिंद निर्ग्रंथनेंदितु प्रवचनदोळु प्रथितनादं ॥

अनंतरं सयोगकेवलिगुणस्थानकथननिमित्तमो सूत्रमं पेळ्दपरु द्वितयमं—

असौ उपशान्तकषायः इति निरुक्त्या अत्यन्तप्रसन्नचित्तता सूचिता ॥६१॥ अथ क्षीणकषायगुणस्थानस्वरूपमाह—

निश्शेषक्षीणाः—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरहिता मोहप्रकृतयो यस्यासौ निःशेषक्षीणमोहः (कषायः) इति निरवशेषमोहप्रकृतिसत्त्वरहितः क्षीणकषायः । ततः कारणात् स्फटिकभाजनोदकसदृशप्रसन्नचित्तः क्षीणकषाय इति वीतरागसर्वज्ञैर्भण्यते स एव परमार्थेन निर्ग्रन्थो भवति । उपशान्तकषायोऽपि यथाख्यातचारित्रसाधारण्येन निर्ग्रन्थ इति प्रवचने प्रतिपाद्यते (प्रतिपादितो जातः) ॥६२॥ अथ सयोगकेवलिगुणस्थानं गाथाद्वयेन कथयति—

उदयके अयोग्य कर दिया है, वह उपशान्त कषाय है । इस निरुक्तिसे उसका अत्यन्त प्रसन्न चित्तपना सूचित किया है ॥६१॥

आगे क्षीणकषाय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जिसकी मोहनीय कर्मकी प्रकृतियाँ निश्शेष क्षीण अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसे रहित हो गयी हैं, वह निःशेष क्षीणमोह अर्थात् समस्त मोहनीय कर्मप्रकृतियोंसे रहित जीव क्षीणकषाय है । इसी कारणसे क्षीणकषाय स्फटिकके पात्रमें रखे हुए स्वच्छ जलके समान प्रसन्नचित्त होता है, ऐसा वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं । वही परमार्थसे निर्ग्रन्थ होता है । उपशान्तकषाय भी यथाख्यात चारित्रके होनेसे निर्ग्रन्थ है, ऐसा आगममें कहा है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायक्षपकके अन्तिम समयमें चारित्रमोहकी प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका बन्ध, उदय, उदीरणा तथा सत्ताके व्युच्छिन्न होनेपर उसके अनन्तर समय में चारित्र मोहका भी पूर्ण रूपसे विनाश होनेपर जीव क्षीणकषायी होता है। उसका चित्त अर्थात् भावमन विशुद्ध परिणाम अति निर्मल स्फटिक पात्रमें भरे निर्मल जलके समान होता है । अर्थात् जैसे वह जल कलुषित नहीं होता, उसी प्रकार यथाख्यात चारित्रसे पवित्र क्षीणकषायका विशुद्ध परिणाम भी किसी भी कारणसे कलुषित नहीं होता; वही परमार्थसे निर्ग्रन्थ है क्योंकि उसके कोई भी अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह नहीं होती ॥६२॥

आगे सयोग केवलि गुणस्थानको दो गाथाओंसे कहते हैं—

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥६३॥

केवलज्ञानदिवाकर-किरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । नवकेवललब्ध्युद्गम-सुजनितपरमात्मव्यपदेशः ॥

केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणकलापाः अर्थप्रकाशनपटवो दिव्यध्वनिविशेषास्तैः प्रणाशितं विनेयजनाज्ञानान्धकारं येनासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः एंदितिदरिंदं सयोगभट्टारकंगे भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीतमादुदु । नवानां केवललब्धीनां क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्य्यलक्षणानामुदयेन प्रादुर्भावेन सुजनितो वस्तुवृत्त्या विहितः परमात्मेति व्यपदेशो यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः । एंदितु भगवदर्हत्परमेष्ठिगलनंतज्ञानादिलक्षणस्वार्थसंपत् प्रदर्शितमाय्तु ॥

असहायणाणदंसणसहियो इति केवली हु जोगेण ।
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥६४॥

असहायज्ञानदर्शनसहितः इति केवली खलु योगेन युक्त इति सयोगो जिनोऽनादिनिधनार्षे उक्तः । योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहितः केवली । सयोगश्चासौ केवली च सयोगकेवली । घातिकर्म्मनिर्म्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासौ जिनश्च सयोगकेवलिजिनः एंदितु अनादिनिधनार्षागमदोळ् प्रतिपादितनादं ॥

तदनंतरमयोगकेवलिगुणस्थाननिरूपणार्थमिदं पेळ्दपरु—

केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणकलापाः—अर्थप्रकाशनपटवो दिव्यध्वनिविशेषाः तैः प्रणाशितं विनेयजनाज्ञानान्धकारं येनासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । अनेन सयोगभट्टारकस्य भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीता । नवानां केवललब्धीनां क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यलक्षणानां उदयेन प्रादुर्भावेन सुजनितः—वस्तुवृत्त्या विहितः परमात्मेति व्यपदेशो यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः इति भगवदर्हत्परमेष्ठिनोऽनन्तज्ञानादिलक्षणस्वार्थसंपत् प्रदर्शिता ॥६३॥

योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहित इति केवली सयोगश्चासौ केवली च सयोगकेवली । घातिकर्मनिर्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासौ जिनश्च सयोगकेवलिजिनः, इत्यनादिनिधनार्षागमे उक्तः प्रतिपादितः ॥६४॥ अथायोगकेवलिगुणस्थानं निरूपयति—

जिनने केवलज्ञानरूपी सूर्यके किरण समूह रूप जो पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें प्रवीण दिव्यध्वनिके विशेष, उनके द्वारा शिष्य जनोंका अज्ञानान्धकार नष्ट कर दिया है। इससे सयोग केवली भगवान्के भव्यजीवोंका उपकार करने रूप परार्थ सम्पदा कही है। तथा क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, केवलज्ञान, केवल दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य इन नौ केवललब्धियोंके प्रकट होनेसे जिन्होंने वास्तवमें परमात्मा नामको प्राप्त किया है। इससे भगवान् अर्हन्त परमेष्ठीके अनन्तज्ञानादिरूप स्वार्थ सम्पदा दिखाई है ॥६३॥

योगसे युक्त होनेसे सयोग और असहाय ज्ञानदर्शनसे सहित होनेसे केवली, इस तरह सयोग और केवली होनेसे सयोग केवली हैं और घातिकर्मोंको निर्मूल करनेसे जिन हैं। इस तरह अनादि निधन आगममें उन्हें सयोगकेवली जिन कहा है ॥६४॥

आगे अयोग केवलि गुणस्थान कहते हैं—

सीलेसिं संपत्तो निरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥६५॥

शैलेसिं संप्राप्तो निरुद्धनिःशेषास्रवो जीवः । कर्मरजो विप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ॥

अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्यमं प्राप्तनुं निरुद्धनिःशेषास्रवनुमप्पुदरिंदं नूतनबद्धचमानकर्म्मरजोविप्रमुक्तनुं मनोवाक्काययोगरहितनप्पुदरिंदं अयोगनुमेंदितु । न विद्यते योगो यस्यासौ अयोगः स चासौ केवली चायोगकेवली एंदितु भगवदर्हत्परमेष्ठिजीवं पेळल्पट्टं ॥

एवंविधमप्प पदिनाल्कुगुणस्थानंगळोळु स्वायुर्वर्ज्जितकर्म्मंगळगे गुणश्रेणिनिर्ज्जरातत्कालविशेषनिदर्देशार्थं गाथाद्वयावतारं ।

सम्मत्तुप्पत्तीए सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवगे कसायउवसामगे य उवसंते ॥६६॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ श्रावकविरतयोरनंतकर्म्मांशे । दर्शनमोहक्षपके कषायोपशमके चोपशान्ते ॥

खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा ।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति ॥६७॥

क्षपके च क्षीणमोहे जिनयोर्द्रव्याण्यसंख्यातगुणितक्रमाणि । तद्विपरीताः कालाः संख्येयगुणक्रमा भवन्ति ॥ प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तियोळ्करणत्रयपरिणामचरमसमयदोळ्वर्त्तमानविशुद्धिविशिष्टमिथ्यादृष्टिगायुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणादिकर्म्मंगळगावुदो दु गुणश्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यवदं

अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्यं संप्राप्तः, निरुद्धनिश्शेषास्रवत्वात् नूतनबध्यमानकर्मरजोविप्रमुक्तः, मनोवाक्काययोगरहितत्वादयोगः, न विद्यते योगो यस्यासौ अयोगः स चासौ केवली च अयोगकेवली इति भगवत्परमेष्ठिजीवः कथितः ॥६५॥ एवंविधचतुर्दशगुणस्थानेषु स्वायुर्वर्जितकर्मणां गुणश्रेणिनिर्जरा तत्कालविशेषं च गाथाद्वयेनाह—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ करणत्रयपरिणामचरमसमये वर्तमानविशुद्धिविशिष्टमिथ्यादृष्टेः आयुर्वर्जितज्ञानावरणादिकर्मणां यद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं ततः असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् ।

जो अठारह हजार शीलोंके स्वामीपनेको प्राप्त हैं, समस्त आस्रवोंके रुक जानेसे जो नवीन बध्यमान कर्मरजसे सर्वथा रहित हैं, तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोगसे रहित होनेसे अयोग हैं । इस तरह जिनके योग नहीं है तथा केवली भी हैं, वे अयोगकेवली भगवान् परमेष्ठी हैं ॥६५॥

इस प्रकारके चौदह गुणस्थानोंमें अपनी आयुके सिवाय शेष कर्मोंकी गुणश्रेणिनिर्जरा और उसका कालविशेष दो गाथाओंसे कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय होनेवाले तीन करणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें वर्तमान विशुद्धिसे विशिष्ट मिथ्यादृष्टिके, आयुको छोड़कर ज्ञानावरण आदि कर्मोंका जो गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है, उससे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है । उससे देशसंयतका गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है । उससे सकल संयमीके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है । उससे अनन्तानुबन्धीकषायके विसंयोजकका गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है ।

१. म °मदं नोडलु ।

नोडलसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु देशसंयतनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडल् सकलसंयतनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलनंतानुबंधिकषायविसंयोजकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलनंतानुबंधिकषायसंयोजकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडल् दर्शनमोहक्षपकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलकषायोपशमकत्रयद गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलुपशांतकषायन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु क्षपकत्रयद गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु क्षीणकषायन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु स्वस्थानकेवलिजिनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलसमुद्घातकेवलिजिनन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमितेकादशस्थानंगळोळु गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यक्के प्रतिस्थानमसंख्यातगुणितत्वं पेळल्पट्टुदिल्लि गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यप्रमाणमेंतुटेंदोडे—अनादिसंसारनिबंधनबंधानुबंधसंबंधदिं संबंधिसिद्दं जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशंगळोळु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिसत्वद्रव्यं त्रिकोणरचनाभिप्रायदिंद किंचिन्न्यूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणमक्कु स ० १२ मी द्रव्यमनायुर्वर्ज्जितज्ञानावरणादिकर्म्मंगळगेळवक्कं पसलों दु ज्ञानावरणीयकर्मद्रव्यमिनितक्कु स ० १२ ७ मिदं देशघाति-

---

ततः देशसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम् । ततः सकलसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम् । ततोऽनन्तानुबन्धिकषायविसंयोजकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम् । ततो दर्शनमोहक्षपकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । ततः कषायोपशमकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । तत उपशान्तकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । ततः क्षपकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । ततः क्षीणकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । ततः स्वस्थानकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् । ततः समुद्घातकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं इत्येकादशसु स्थानेषु गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यस्य प्रतिस्थानमसंख्यातगुणितत्वमुक्तम् । तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यप्रमाणं उच्यते । तद्यथा अनादिसंसारनिबन्धनबन्धानुबन्धसंबन्धेन संबद्धं जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशेषु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं त्रिकोणरचनाभिप्रायेण किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणं (स ० १२-) इदमायुर्वर्जितसप्तकर्मणां सप्तभिर्भक्त्वा दत्ते ज्ञानावरणीयस्यैतावत् (स ० । १२-) इदं देशघातिसर्वघातिविभागार्थं जिनदृष्टानन्तेन ७

उससे दर्शनमोहके क्षय करनेवालेके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे कषायोंका उपशम करनेवाले अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षपकश्रेणिवाले अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात न करते हुए स्वस्थान केवली जिनके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात करनेवाले केवली जिनके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। इस प्रकार ग्यारह स्थानोंमें गुणश्रेणिनिर्जरा द्रव्यको प्रत्येक स्थानमें असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कहा। अब उस गुणश्रेणिनिर्जरा द्रव्यका प्रमाण कहते हैं। वह इस प्रकार है—अनादि संसारका कारण जो बन्ध, उस बन्धकी परम्पराके सम्बन्धसे बन्धरूप हुआ जगत्श्रेणिके घनप्रमाण एक जीवके प्रदेशोंमें स्थित ज्ञानावरण आदि मूल और उत्तर प्रकृतियोंके सत्तारूप द्रव्य त्रिकोण रचनाके अभिप्रायसे,

सर्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यविभागनिमित्तमागि जिनदृष्टानंतभागहार । ख । मिदरिं भागिसि सर्व्व-
स अ १२–ख
घातिकेवलज्ञानावरणीयकर्मक्केकभागमं कोट्टु शेषबहुभागमनिदं ७ ख गुणकार
ऋणैकरू १ पमवज्ञे गेय्दु भाज्यभागहारानंतगळनपवर्त्तिसिदेशघातिगळप्प मतिज्ञानावरणीयं
श्रुतज्ञानावरणीयमवधिज्ञानावरणीयं मनःपर्य्ययज्ञानावरणीयमेंबी नाल्कक्कं पसुगे गेय्दोडो दु
स अ १२–
मतिज्ञानावरणीयद्रव्यमिनितक्कु ७ । ४ इदनपकर्षण भागहारदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ५
स अ १२– स अ १२–
७ । ४ ओ पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ७ । ४ ओ । प मत्तमसंख्यातलोक-
स अ १२– अ
भागहारदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ७ । ४ ओ । प≡अ अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिम-
अ

स अ । १२–१ स अ । १२– । ख
भक्तैकभागं ७ । ख सर्वघातिकेवलज्ञानावरणस्य दत्त्वा शेषबहुभागे ७ । ख गुणकारे
ऋणैकरूपमवज्ञाय भाज्यभागहारभूतावनन्तावपवर्त्य देशघातिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानां चतुर्णां
स अ । १२–
चतुर्भिर्भक्त्वा दत्ते मतिज्ञानावरणस्यैतावत् ७ । ४ । इदमपकर्षणभागहारेण भक्त्वा बहुभागमिदं— १०
स अ । १२–उ स अ । १२– । १
७ । ४ उ तथैव तिष्ठतीति मत्वा शेषैकभागमिदं ७ । ४ उ पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुभाग-

---

कुछ कम डेढ़ गुणहानि आयामसे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना है। इसमें आयुकर्मका भी थोड़ा-सा द्रव्य है। इसलिए उसमें कुछ कम करनेपर शेष सब द्रव्य सात कर्मोंका है। इसलिए उस द्रव्यमें सातका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण ज्ञानावरण कर्मका द्रव्य होता है। इसमें सर्वघाती और देशघातीका विभाग करनेके लिए जिन भगवान्‌के द्वारा देखे गये अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती केवलज्ञानावरणका द्रव्य है, अवशेष बहुभाग प्रमाण मतिज्ञानावरण आदि देश घाति प्रकृतियोंका द्रव्य है। इस देशघाति द्रव्यको मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानावरणरूप चार देशघाति प्रकृतियोंमें विभाग करनेके लिए चारसे भाग देनेपर एक भागप्रमाण मतिज्ञानावरणका द्रव्य होता है। इस मतिज्ञानावरण द्रव्यमें अपकर्षण भागहारका भाग देकर बहुभाग तो वैसे ही स्थित रहता है,ऐसा जानकर एक भागका ग्रहण किया।

विशेषार्थ—यहाँ मतिज्ञानावरणके द्रव्यको उदाहरणके रूपमें लिया है,इसलिए केवल उसीके द्रव्यका ग्रहण किया है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंका भी जानना। तथा जैसे अन्नकी राशिमें-से चार भाग करके किसी कार्यके लिए एक भाग ग्रहण करके शेष बहुभाग वैसे ही रख देते हैं,वैसे ही मतिज्ञानावरणके द्रव्यमें अपकर्षण भागहारका भाग देकर एक भागको अन्य रूप परिणमानेके लिए ग्रहण किया और शेष बहुभाग द्रव्य जैसे पहले अपनी स्थितिके समय सम्बन्धी निषेकोंमें स्थित था,वैसे ही रहा। विवक्षित भागहारका भाग देनेपर एक

धणमागच्छदि एंदुदयावलिसमयप्रमाणदिदं खंडिसिदोडे मध्यमधनमें बुदक्कुं $\frac{स\ अ\ १२-}{१\ ।\ ४}$ ओ । प $\equiv \frac{अ}{अ}$ । ४

तं रूऊण अद्धाण अद्धेण णिसेयभागहारेण मज्झिमधणमवहरिदेपचय'' में दु रूपोनावलियर्द्धदिदं

हीनमप्प निषेकहारदिदं मध्यमधनमं भागिसिदोडे प्रचयमक्कुमी $\frac{स\ अ\ १२-}{७\ ।\ ४\ ।}$ ओ । प $\equiv \frac{अ}{अ}$ । ४ । $\frac{१६-४}{२}$

प्रचयराशियं दोगुणगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयमें दु द्विगुणगुणहानियिंद गुणियिसिदोडे

५ उदयावलिप्रथमनिषेकमक्कु $\frac{स\ अ\ १२\ १६}{१\ ४\ ।}$ ओ प $\equiv \frac{अ}{अ}$ । ४ । $\frac{१६+४}{२}$ मिदरोळों दु चयमं कळेयुत्तिरलु-

दयावलिद्वितीयनिषेकद्रव्यमक्कु $\frac{स\ अ\ १२-१६-१}{१\ ।\ ४\ ।}$ ओ प $\equiv \frac{अ}{अ}$ ४ । $\frac{१६\ ४}{२}$ मितुदयावलिचरमसमय-

---

स अ । १२-प
मिदं ७ । ४ । उ । प अ उपरितनस्थितौ देयमित्येकत्र संस्थापयेत् । शेषैकभागमिदं ७ । ४ । उ । प
अ अ

स अ । १२—१
स अ । १२- $\equiv$ अ
पुनरसंख्यातलोकेन भक्त्वा बहुभागमिदं ७ । ४ । उ । प $\equiv$ अ गुणश्रेण्यायामे देयमित्येकत्र संस्थापयेत् ।
अ

स अ । १२-१
शेषैकभागमिदं ७ । ४ । उ । प $\equiv$ अ उदयावल्यां दीयते इत्युदयावल्या भक्ते मध्यधनमागच्छति
अ

स अ । १२-
१० ७ । ४ । उ प $\equiv$ अ । ४ । पुनः रूपन्यूनावल्यर्धेनानेन निषेकभागहारेण भक्ते प्रचयो भवति
अ

स । अ । १२-
७ । ४ । उ प $\equiv$ अ । ४ । १६ ४ अयं दोगुणहान्या गुणितः उदयावलिप्रथमनिषेकः
अ २

स । अ । १२-। १६ ।
स्यात् ७ । ४ । उ । प $\equiv$ अ । ४ । १६-४ अत्रैकचये अपनीते उदयावलिद्वितीयनिषेकः स्यात्
अ २

भागके बिना शेष सब भागको बहुभाग कहते हैं। सो अपकर्षण भागहारका भाग देकर बहुभागको वैसे ही रखकर एक भागको ग्रहण कर उसे किस-किस तरह परिणमाया, यह आगे कहते हैं।

१५ उस एक भागको पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभागको तो ऊपरकी स्थितिमें देना है, इसलिए एक जगह स्थापित करके शेष एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देकर उसका बहुभाग तो गुणश्रेणिआयाममें देना है सो एक जगह स्थापित करके शेष एक भागको उदयावलीमें दिया जाता है। उदयावलीमें दिया हुआ द्रव्य वर्तमान समयसे लेकर

पर्य्यंतमोंदोंदु चयमं कळेयुत्तं पोगलु रूपोनावळिमात्रचयंगळं उदयावलिप्रथमनिषेकदोळु

$$\text{स}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,\frac{१२-१६-४}{२}$$

कळेयुत्तिरल्तच्चरमनिषेकप्रमाणमक्कु ७।४ ओ प ≡ अ।४।१६ + ४ मिल्लि मेलण गुण-

$$\text{स}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,\frac{१२-≡\text{अ}}{\text{अ}}$$

श्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यमसंख्यातलोकबहुभागमं ७।४ ओ।प ≡ अ सम्यक्त्वोत्पत्तिय गुणश्रेण्या-

यामसंतर्मुहूर्त्तमात्रसमयंगळोळु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमदिंदं निषेकरचने माडल्पडुगुमदं तंने—

गुणश्रेणिप्रथमसमयदोळु यावत्तावत्प्रमाणमोंदु १ द्वितीयसमयदोळदं नोडलसंख्यातगुणित- ५

शलाकेगळु ४ नाल्कंतसंख्यातगुणशलाकाक्रमदिं गुणश्रेणिचरमसमयदोळतद्योग्यासंख्यातगुण-

शलाकेगळक्कु मवक्के संदृष्टि ६४ मी प्रथमादिसमयशलाकेगळेल्लमं कूडिदोडे संदृष्टि ८५।

$$\text{स}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,\frac{१२-१६}{\text{अ}}\,\frac{१}{\text{अ}}\,\frac{}{२}$$

७।४।उ।प ≡ अ ४ १६-४ एवमुदयावलिचरमनिषेकपर्यन्तमेकैकचये अपनीते रूपोनावलिमात्रचयेषु

$$\text{स}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,\frac{१२-१६-४}{२}$$

उदयावलि प्रथमनिषेकेषु अपनीतेषु तच्चरमनिषेकप्रमाणं भवति ७।४।उ।प ≡ अ।४।१६-४

$$\text{स}\,।\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,।\,\frac{१२-≡\text{अ}}{\text{अ}}$$

इतः परं गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातलोकबहुभागमात्रं ७।४।उ।प ≡ अ सम्यक्त्वोत्पत्ति- १०

गुणश्रेण्यायामान्तर्मुहूर्तमात्रसमयेषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण निषेकरचना क्रियते तद्यथा—गुणश्रेण्याय़ाम-

प्रथमसमये यावद् द्रव्यं निक्षिप्यते तत्प्रमाणं शलाका एका १, द्वितीयसमये ततोऽसंख्यातगुणितशलाकाश्चतस्रः ४।

एवमसंख्यातगुणितशलाकाक्रमेण गुणश्रेणिचरमसमये तद्योग्यासंख्यातगुणितशलाकाः स्युः, तत्संदृष्टिः ६४।

एक आवली प्रमाण कालमें पहले जो आवलीके निषेक थे, उनके साथ अपना फल देकर खिर जाता है। सो आवलीके प्रथम आदि समयमें कितना-कितना द्रव्य उदयमें आता है, यह आगे १५

कहते हैं—एक समय सम्बन्धी जितना द्रव्यका प्रमाण होता है, उसका नाम निषेक है। उदयावलीमें दिये गये द्रव्यको उदयावली कालके समयोंके प्रमाणसे भाग देनेपर मध्यके समय सम्बन्धी द्रव्यरूप मध्य धनका प्रमाण आता है। उसको एक कम आवलीके आधे प्रमाणसे हीन निषेक भागहार अर्थात् गुणहानि आयामके प्रमाणसे दूना जो दो गुणहानिका प्रमाण—उससे भाग देनेपर एक चयका प्रमाण होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा २०

करनेपर उदयावलीके प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम निषेकका प्रमाण आता है। उसमें एक चय घटानेपर उदयावलीके द्वितीय समय सम्बन्धी द्वितीय निषेकका प्रमाण आता है। इसी तरह क्रमसे उदयावलीके अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक चय घटानेपर एक कम आवली प्रमाण चय उदयावलीके प्रथम निषेकमें-से कम होनेपर उदयावलीके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। २५

"प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः" एंबी न्यायदिदं प्रक्षेपशलाकायोग-

स अ १२ ≡ २

राशियिदं ८५। मिश्रपिंडराशियं भागिसि ७।४ ओ प ≡ अ।८५ दो राशिप्रक्षेपकंगळगे

अ

गुणकमक्कुमेंदु तंतम्म प्रमाणक्के संदृष्टिगळप्प गुणकारंगळोंदु नाल्कु पदिनारुवत्त नाल्कुगळिं

स अ १२ ≡ अ १

गुणियिसिदोडे प्रथमनिषेक ७।४ ओ प ≡ अ।८५ मिदं नोडलु द्वितीयनिषेकमसंख्यातगुणं—

अ

स अ १२≡अ ४

५ ७।४।ओ प≡अ ८५ इंतसंख्यातगुणितक्रमदिंदं नडदु गुणश्रेणिचरमनिषेकसर्व्वोत्कृष्टमिदु

अ

स अ १२ ≡ अ ६४ स अ १२–प

७।४ ओ प ≡ अ ८५ ईल्लि मेलुपरितनस्थितिद्रव्यमिदु ७।४।ओ।प अ इदं नानागुणहानि-

अ

एताः प्रथमादिसमयसर्वशलाकाभिर्मिलितास्तदा संदृष्टिः ८५। अनेन शलाकायोगेन मिश्रपिण्डराशिं भक्त्वा

स अ।१२–।≡अ स अ।१२–।≡अ।१

७।४।उ।प ≡ अ।८५ संदृष्टिगुणकारेण एकेन गुणिते प्रथमनिषेकः ७।४।उ प ≡ अ।८५

अ अ

स अ।१२–।≡अ।४

चतुर्भिर्गुणिते द्वितीयनिषेकः ७।४।उ।प।≡अ।८५ षोडशभिर्गुणिते तृतीयनिषेकः

अ

स अ।१२–≡अ।१६ स अ।१२–।≡अ।६४

१० ७।४।उ।प।≡अ।८५ चतुःषष्ट्या गुणिते चरमनिषेकः ७।४।उ प।≡अ।८५ एवम-

अ अ

विशेषार्थ—उक्त कथनको अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—जैसे उदयावलीमें दिये हुए द्रव्यका प्रमाण दो सौ, गच्छ आवलीका प्रमाण आठ। एक-एक गुणहानिमें जो निषेकोंका प्रमाण सो गुणहानि आयाम। उसका प्रमाण आठ, उसको दूना करने पर दो गुणहानिका प्रमाण सोलह, सौ सर्वद्रव्य दो सौको आवली प्रमाण गच्छ आठका भाग देनेपर पचीस
१५ आये सो मध्यधनका प्रमाण हुआ। इसको एक कम आवलीका आधा साढ़े तीन, उसे निषेकहार सोलहमें घटानेपर साढ़े बारह रहे, उससे भाग देनेपर दो आये। वही चयका प्रमाण जानना। इसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर बत्तीस आये, यही प्रथम निषेकका प्रमाण है। इसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीय आदि निषेकोंका तीस आदि प्रमाण होता है। इस तरह एक कम आवली प्रमाण चयके हुए चौदह, उन्हें प्रथम निषेक

गळ प्रथमप्रथमनिषेकंगळोळर्द्धार्द्धक्रममागि मुंदे त्रिकोणरचनाविशेषमं माळ्पल्लि पेळदपेमिल्लि प्रयोजनमिल्लिप्पुदरिं गुणश्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यं पेळल्पट्टुदु। श्रावकादि पत्तु स्थानंगळुमसंख्यातगुणितक्रममादं प्रकारमं तं दोडे—

गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यनिमित्तमागि पुगुवपकर्षणभागहारंगळगे विशुद्धिनिबंधनत्वमुंटप्पुदरिंदं तत्तद्विशुद्धचनुगुणमागियपकर्षणभागहारंगळसंख्यातगुणहीनंगळागि पुगलसंख्यातगुणितक्रमसिद्धियक्कुमप्पुदरिंदं गुणश्रेण्यायामकालंगळु मत्तं तद्विपरीतंगळदं तं दोडे समुद्घातजिननं मोदलागि विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालपर्य्यंतं संख्यातगुणंगळक्रमदिंदं अप्पुवु। समुद्घातजिनगुणश्रेण्यायामकालमंतर्मुहूर्त्तमं २ १ नोडल् स्वस्थानजिनगुणश्रेण्यायामकालं संख्यातगुणमितु पश्चादनुपूर्व्वियिंदं संख्यातगुणितक्रमदिंदं अल्लल्लि गुणश्रेण्यायामकालंगळुयरियल्पडुवुवु।

स अ । १२–। प ।
संख्यातगुणितक्रमेण गुणश्रेणिद्रव्यं दत्तं भवति । इतोऽग्रे उपरितनस्थितद्रव्यमिदं ७ । ४ । ङ । प अ
अ

नानागुणहानिषु प्रथमप्रथमनिषेकेषु अर्धार्धक्रमेण अग्रे त्रिकोणरचनाविशेषः करिष्यते, अत्र प्रयोजनाभावान्न कृतः ।

तत्तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं श्रावकादिदशस्थानेष्वसंख्यातगुणितं कथं जातं ? इति चेत् तन्निमित्तप्रविष्टापकर्षणभागहाराणां विशुद्धिनिबन्धनत्वेन असंख्यातगुणहीनत्वात्तस्यासंख्यातगुणितक्रमप्रसिद्धेः । गुणश्रेण्यायामकालाः पुनस्तद्विपरीताः । तद्यथा—समुद्घातजिनमादिं कृत्वा विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालपर्यन्तं संख्यातगुणाः क्रमेण भवन्ति । समुद्घातजिनगुणश्रेण्यायामकालोऽन्तर्मुहूर्तः २ १, अतः स्वस्थानजिनगुणश्रेण्यायामकालः

---

३२ में घटाने पर शेष अठारह अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। इन सब ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८ को जोड़नेपर दो सौ सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है। इसी तरह अर्थसंदृष्टिसे भी पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूपको जानना।

गुणश्रेणी निर्जराका द्रव्य असंख्यात लोक बहु भाग मात्र है। सो सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय होनेवाले करणोंके काल सम्बन्धी गुणश्रेणी आयाम अन्तमुंहूर्तके समयोंमें प्रति समय असंख्यात गुणित क्रमसे निषेक रचना की जाती है। जो इस प्रकार है—उस गुणश्रेणी आयामके प्रथम समयमें जितना द्रव्य दिया, उसका प्रमाण एक शलाका है। दूसरे समयमें उससे असंख्यात गुणी शलाका ४ है। इस तरह असंख्यात गुणित शलाकाके क्रमसे गुणश्रेणीके अन्तिम समयमें उसके योग्य असंख्यात गुणित शलाका होती हैं। उनकी संदृष्टि ६४ है। इनमें प्रथम आदि समय सम्बन्धी सब शलाकाओंको मिलानेपर उसकी संदृष्टि ८५ है।

विशेषार्थ—इस कथनको अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—जैसे गुणश्रेणीमें दिये हुए द्रव्यका प्रमाण छह सौ अस्सी है। गुणश्रेणी आयामका प्रमाण चार, असंख्यातका प्रमाण चार। प्रथम समय सम्बन्धी द्रव्यकी शलाका एक, दूसरे समय सम्बन्धी द्रव्यकी शलाका उससे असंख्यात गुणी ४, तीसरे समय सम्बन्धी उससे असंख्यात गुणी शलाका १६, चौथे समय सम्बन्धी उससे असंख्यात गुणी शलाका चौसठ ६४। इनका जोड़ पचासी होता है। इससे सबके द्रव्य छह सौ अस्सीमें भाग देनेपर आठ आते हैं। इस आठको अपनी-अपनी शलाकासे गुणा करें। आठको एकसे गुणा करनेपर प्रथम समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण

१. म °पत्तु °शि४ ओ प = अ ८५ स्था ।
अ

पर्य्यवसानदोळ् बहुवारं संख्यातगुणितमादोडं विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेणि-आयामकालमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुमदरिंदधिकभागदेकेंदोडे जघन्यांतर्म्मुहूर्त्तमावलिप्रमाणं २ सर्व्वतः स्तोकं मेले समयोत्तरावलिगळेल्लं मध्यमांतर्म्मुहूर्त्तंगळागुत्तं पोगि समयोनमुहूर्त्तक्के उच्छ्वासंगळु ३७७३ अल्लियोंदुच्छासके संख्यातनिमेषंगळोंदु निमेषक्के संख्यातावलिगळु २१ इंतागुत्तं विरलु चरमांतर्म्मुहूर्त्तं संख्यातावलियक्कुं २११ मादियंते सुद्धे बड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदु जघन्यावलियंतर्मुहूर्तदात्मप्रमाणमं तंदु २।१। चरमांतर्म्मुहूर्तावलिय गुणकारदोळोंदु रूपं कळेदु २११ वृद्धियिंदं भागिसुवुदु वृद्धियोंदे समयप्रमाणमप्पुदरिंदं भागिसि बंदं लब्धमनितेयक्कुं

संख्यातगुणः। एवं पश्चादानुपूर्व्या गन्तव्यं। पर्यवसाने बहुवारं संख्यातगुणितत्वेऽपि विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव नाधिकः। कुतः? जघन्योऽन्तर्मुहूर्तः आवलिप्रमाणः सर्वतः स्तोकः, उपरिसमयोत्तरावलिप्रभृतयः सर्वेऽपि मध्यमान्तर्मुहूर्ता भूत्वा चरमस्य समयोनमुहूर्तस्योच्छ्वासाः ३७७३। एकोच्छ्वासस्य संख्यातावल्यः २१ तदा चरमान्तर्मुहूर्तस्य संख्यातावल्योऽमूः २१११ आवलिमात्रान्तर्मुहूर्तस्य आत्मप्रमाणमेकरूपं संस्थाप्य २।१, चरमान्तर्मुहूर्तावलेर्गुणकारस्योपर्यपनीय २१११ वृद्धया एकसमयेन

आठ ८ होता है। चारसे गुणा करनेपर द्वितीय समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण बत्तीस ३२ होता है। सोलहसे गुणा करनेपर तीसरे समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण एक सौ अट्ठाईस १२८ होता है। चौसठसे गुणा करनेपर अन्तिम समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण पाँच सौ बारह ५१२ होता है। इस तरह सब समयोंमें ८, ३२, १२८, ५१२ सब मिलकर ६८० छह सौ अस्सी द्रव्यकी निर्जरा होती है। इस प्रकार यहाँ सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप जो करण हैं, उनके गुणश्रेणी आयाममें उदाहरण देकर कथन किया; इसी तरह अन्यत्र भी जानना।

इससे आगे जो ऊपर की स्थितिमें दिया द्रव्य है वह विवक्षित मतिज्ञानावरणकी स्थितिके जो पहले निषेक थे, उनमें क्रमसे देना चाहिए। उन निषेकोंके पूर्व द्रव्यमें इसको भी क्रमसे मिला देना चाहिए। सो नाना गुणहानिमें पहले-पहले निषेकमें आधा-आधा देना, तथा द्वितीयादि निषेकोंमें क्रमसे एक-एक चय हीन देना। इसमें त्रिकोण रचना होती है, उसका विशेष कथन आगे करेंगे। यहाँ प्रयोजन नहीं होने से नहीं किया।

शंका—पहले कहा था कि वह गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य श्रावक आदि दस स्थानोंमें असंख्यात गुणा-असंख्यात गुणा होता है? सो कैसे होता है?

समाधान—उस गुणश्रेणी द्रव्य लानेमें कारणभूत जो अपकर्षण भागहार है, उत्तरोत्तर अधिक विशुद्धि होनेसे उस भागहारमें असंख्यात गुणा हीनपना है। इसलिए उस गुणश्रेणी-द्रव्यके क्रमसे असंख्यात गुणापना सिद्ध है। अर्थात् श्रावकादि दस स्थानोंमें विशुद्धता अधिक-अधिक है। इससे जो पूर्वस्थानमें अपकर्षण भागहारका प्रमाण था, उसके असंख्यातवें भाग अपकर्षण भागहारका प्रमाण आगेके स्थानमें होता है। सो जितना भागहार कम होता जाता है, उतना ही लब्धराशिका प्रमाण बढ़ता जाता है। इससे गुणश्रेणिका द्रव्य जो लब्धराशिरूप है, वह भी क्रमसे असंख्यात गुणा होता है। किन्तु गुणश्रेणी आयामका काल उससे विपरीत है अर्थात् समुद्घात गत केवलिजिनसे लेकर विशुद्धमिथ्यादृष्टि पर्यन्त गुणश्रेणी आयामका काल क्रमसे संख्यात गुणा-संख्यात गुणा है। वह इस प्रकार है—समुद्घात गत केवलिजिनका गुणश्रेणी आयामकाल अन्तर्मुहूर्त है। उनसे स्वस्थान केवलिजिनका

२ १ १ २ १ १

१ रूवसंजुदे ठाणा ओदुरूपं कूडुत्तिरलु १ स्थानविकल्पंगळक्कुमदरिंदमंतर्मुहूर्त्तंगळ संख्यातमागुत्तं संख्यातावलिप्रमाणंगळक्कुमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरमितु कर्मंगळनं जीवंगळनं गुणस्थानाश्रितमप्प स्वरूपमं तत्तत्कर्मनिर्जराकालप्रमाणमुमं पेळ्दु निर्ज्जीर्णकर्म्मरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळ स्वरूपमं मतांतरविप्रतिपत्तिनिराकरणपूर्वकं निरूपिसल्वेडि मुंदणगाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६८॥

अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरंजना नित्याः । अष्टगुणाः कृतकृत्याः लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥ केवलमुक्तगुणस्थानवर्त्तिगळे जीवंगळोळवेंबुदिल्ल । मत्तं सिद्धाश्च

भक्त्वा २ १ १ एकरूपे युते २ १ १ लब्धान्तर्मुहूर्तविकल्पानां संख्यातावलिप्रमाणत्वात् ॥ ६७ ॥
१ १

अथैवं सकर्मजीवानां गुणस्थानाश्रितस्वरूपं तत्तत्कर्मनिर्जराद्रव्यकालायामप्रमाणं च प्ररूप्य निर्जीर्णकर्मसिद्धपरमेष्ठिनां स्वरूपं मतान्तरविप्रतिपत्तिनिराकरणपूर्वकं गाथाद्वयेनाह—

न केवलं उक्तगुणस्थानवर्तिन एव जीवाः सन्ति सिद्धा अपि—स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिसंपन्नमुक्तजीवा

गुणश्रेणी आयामकाल संख्यात गुणा है । इसी प्रकार पश्चात् आनुपूर्वीसे संख्यात गुणा-संख्यात गुणा ले जाना चाहिए । इस तरह अन्त तक अनेक बार संख्यातगुणा-संख्यातगुणा होनेपर भी विशुद्ध मिथ्यादृष्टिके गुणश्रेणी आयामका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है; अधिक नहीं है । क्योंकि जघन्य अन्तर्मुहूर्त आवलिप्रमाण है वह सबसे छोटा है । इससे ऊपर एक समय अधिक आवलिसे लेकर सब मध्यम अन्तर्मुहूर्त एक समय कम मुहूर्त प्रमाण है । एक मुहूर्तमें तीन हजार सात सौ तिहत्तर ३७७३ उच्छ्वास होते हैं । तथा एक उच्छ्वासमें संख्यात आवली होती हैं । अतः दो बार संख्यात गुणित आवलि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । 'आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा', इस सूत्रके अनुसार आवलिमात्र जघन्य अन्तर्मुहूर्तको दो वार संख्यात गुणित आवलि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तमें-से घटाकर वृद्धिके प्रमाण एक समयसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो, उसमें एक जोड़नेपर जो प्रमाण आवे, उतने ही अन्तर्मुहूर्तके भेद होते हैं जो संख्यात आवलि प्रमाण हैं ॥६७॥

इस प्रकार कर्मसहित जीवोंके गुणस्थानोंके आश्रयसे होनेवाले स्वरूपका और उस उस कर्मकी निर्जराके द्रव्य तथा कालके आयामका प्रमाण कहकर अब सब कर्मोंको निर्जीर्ण कर देनेवाले सिद्ध परमेष्ठीके स्वरूपको अन्य मतोंके विवादका निराकरण करते हुए कहते हैं—

केवल उक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव नहीं हैं, किन्तु सिद्ध भी हैं अर्थात् स्वात्माकी

१. म संख्यातंगलागुत्तिरलु सं. ।

संति सिद्धरुमोळरु सिद्धियेंबुदु स्वात्मोपलब्धियक्कुमदरिंदं सिद्धिरस्त्येषामिति सिद्धाः एंदितु प्राप्तानंतज्ञानादिस्वरूपरेंबुदर्थं।

मत्तमवर्गळे तप्परेंदोडे अष्टविधकर्मविकलाः अंतेंबुदेनेंबुदेंदोडे अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भितंगळप्प ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिकर्मंगळे टु मे टु गुणंगळगे प्रतिपक्षंगळदेंतेने इल्लिगुपयोगिगाथासूत्रद्वयं।

मोहो खाइयसम्मं केवळणाणं च केवळालोयं।
हणदि हु आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घं तु॥
सुहुमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं।
अगुरुगलहुगं गोदं अव्वाबाहं हणेदि वेयणियं॥

एंदितष्टविधप्रतिपक्षकर्मप्रक्षयदिंद निष्प्रतिपक्षमागितोळगे बेळगुतिप सिद्धर्मुक्तरेंबुदर्थं। अंदरिंदं संसारिजीवक्के दप्पडं मुक्तियिल्लेंब याज्ञिकमतमुं, सर्व्वदा कर्ममलंगळिंदमस्पृष्टत्वदिंदं सदा मुक्तने सदैवेश्वरनें एंदितु पेळ्व सदाशिवमतमुमपास्तमाय्तु॥

मत्तं तत्परवर्गळे दोडे शीतीभूताः अंतेंबुदुमेनेंबुदेंदोडे सहजशारीरागंतुकमानसादिविविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयदिंदं सुनिर्वृत्तरेंबुदर्थं। इदरिंदं मुक्तियोळात्मंगे सुखाभावमेंदितु पेळ्व सांख्यमतमपाकृतमाय्तु॥

अपि सन्ति। ते कथंभूताः? अष्टविधकर्मविकला अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भाणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिकर्मणां—

इत्यष्टगुणप्रतिपक्षाणां प्रक्षयेण विकलाः निष्प्रतिपक्षा मुक्ता इत्यर्थः। अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतं, सर्वदा कर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्त एव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं च अपास्तं। पुनः कथंभूताः? शीतीभूताः सहजशरीरागन्तुकमानसादिविविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयेण सुनिर्वृत्ता इत्यर्थः। अनेन मुक्तौ आत्मनः सुखाभावं वदन् सांख्यमतमपाकृतं। पुनः कथंभूताः? निरंजनाः—अभिनवास्रवरूपकर्ममलरूपाञ्जनान्निष्क्रान्ताः इत्यर्थः। अनेन मुक्तात्मनः पुनः कर्माञ्जनसंसर्गेण संसारोऽस्तीति वदन्

उपलब्धिरूप सिद्धिसे सम्पन्न मुक्त जीव भी हैं। वे अनेक प्रकारकी उत्तर प्रकृतियोंको गर्भमें लिये ज्ञानावरण आदि आठ मूल प्रकृतियोंका, जो आठ गुणोंकी विरोधी हैं, क्षय हो जानेसे कर्मसे रहित हैं। कहा है—

'मोहनीय कर्म क्षायिक सम्यक्त्वको घातता है। ज्ञानावरण केवलज्ञानको और दर्शनावरण केवलदर्शनको घातता है। अन्तराय कर्म अनन्तवीर्यको घातता है। नामकर्म सूक्ष्मत्व गुणको घातता है। आयुकर्म अवगाहन गुणको घातता है। गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुणको घातता है। वेदनीय अव्याबाध गुणको घातता है।'

इससे 'संसारी जीवकी मुक्ति नहीं है', ऐसा माननेवाला याज्ञिकमत तथा 'सदा कर्ममलसे अछूता होनेसे सदा मुक्त ही ईश्वर है', यह सदाशिववादियोंका मत अपास्त किया। वे सिद्ध शीतीभूत हैं अर्थात् जन्ममरणरूप सहज दुःख, रोगादिरूप शारीरिक दुःख, सर्प आदिसे होनेवाला आगन्तुक दुःख, आकुलतारूप मानसिक दुःख इत्यादि अनेक सांसारिक दुःखोंकी वेदनाके सन्तापका सम्पूर्ण रूपसे विनाश होनेसे सुखस्वरूप हैं। इससे

---

१. म यिदरिं।

मत्तवर्गळेतप्परे दोडे निरंजनाः अंतेबुदेने बुदे दोडे अभिनवास्रवरूपमप्प कर्ममलरूपांजनदत्तणिदं निष्क्रांतरेबुदर्त्थमिदरिंदं मुक्तात्मगे पुनः कर्म्मांजनसंसर्ग्गदिदं संसारमुंटेंदितु पेळ्व मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातमाय्तु ॥

मत्तमवर्गळे तप्परे दोडे नित्याः अंतेबुदेने बुदे दोडे एत्तलानु प्रतिसमयविवर्त्तिगळप्पर्थपर्य्यायंगळिदं परिणतरप्प सिद्धरु उत्पादव्ययंगळं तम्मोळमाळ्परागियुं विशुद्धचैतन्यसामान्यरूपद्रव्याकारान्वयमाहात्म्यदत्तणिदं सर्व्वकालमुं ध्रौव्यमनवलंबिसिर्प्पवर्गळु नित्यतेयं बिडुवरल्लेबुदर्त्थमिदरिंदं प्रतिक्षणं विशरारुगळप्पचित्पर्य्यायंगळे एकसंतानवर्त्तिगळपरमार्त्थगळागि नित्यं द्रव्यमिल्लेदितु पेळ्व बौद्धप्रत्यवस्थे प्रतिव्यूढमाय्तु ॥

मत्तमेंतप्परवर्गळे दोडे अष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्य्यसौक्ष्म्यावगाहाऽगुरुलघुकत्व अव्याबाधत्वमे बे टुं गुणंगळोळ्कूडिदरु मिदुपलक्षणमदरिंदं तदनुसारिगलप्पनंतानंतगुणंगळवरोळेयंतर्ब्भावमक्कुमे बुदर्त्थमिदरिंदं ज्ञानादिगुणंगळत्यंतोच्छित्तियात्मंगे मुक्ति येंदितु पेळ्व नैयायिकवैशेषिकाभिप्रायं प्रत्युक्तमाय्तु ॥

मत्तमवर्गळे तप्परे दोडे कृतकृत्याः कृतं निष्ठापितं कृत्यं सकलकर्म्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः एंदितु पेळ्दुदरिंदमीश्वरं सदा मुक्तनादोडं जगन्निर्म्मापणदोळु कृतादरत्वदिंदमकृतकृत्यने यक्कुमेंदितु पेळ्वेश्वरसृष्टिवादाकूतमुं निराकृतमाय्तु ॥

मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं । पुनः कथंभूताः ? नित्याः । यद्यपि प्रतिसमयवर्त्यर्थपर्यायैः परिणतसिद्धा उत्पादव्ययौ स्वस्मिन् कुर्वन्तोऽपि विशुद्धचैतन्यसामान्यरूपद्रव्याकारान्वयमाहात्म्यात् सर्वकालाश्रिताव्ययत्वात् ते नित्यतां न जहन्तीत्यर्थः । अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्याया एव एकसंतानवर्तिनः परमार्थतो नित्यद्रव्यं नेति वदन्तीति बौद्धप्रत्यवस्था प्रतिव्यूढा । पुनः कथंभूताः ? अष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्यावगाहागुरुलघुकत्वाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपलक्षणं । तेन तदनुसार्यनन्तानन्तगुणानां तेष्वेवान्तर्भाव इत्यर्थः, अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यन्तोच्छित्तिरात्ममो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रायः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः ? कृतकृत्याः कृतं–निष्ठापितं, कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः । इत्यनेन ईश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्निर्मापणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टिवादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः ? लोकाग्रनिवासिनः–लोक्यन्ते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति लोकः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रान्ते

मुक्तिमें आत्माके सुखका अभाव कहनेवाले सांख्यमतका निराकरण किया। वे सिद्ध निरंजन हैं अर्थात् नवीन आस्रवरूप कर्ममल रूप अंजनसे रहित हैं। इससे मुक्तात्मा पुनः कर्ममलके संसर्गसे संसारमें लौट आते हैं,ऐसा माननेवाला मस्करी मत खण्डित किया। वे सिद्ध नित्य हैं अर्थात् यद्यपि प्रतिसमय होनेवाली अर्थपर्यायरूप परिणमन करनेवाले सिद्ध अपनेमें उत्पाद-व्ययशील हैं,फिर भी विशुद्ध चैतन्य सामान्यरूप द्रव्याकारके अन्वयके माहात्म्यसे सदा अविनाशी होनेसे वे नित्यताको नहीं छोड़ते हैं। इससे प्रतिक्षण विनश्वर एकसन्तानवर्ती चित्तक्षण ही परमार्थ सत् है; नित्य द्रव्य नहीं है, ऐसा कहनेवाले बौद्धोंका निराकरण किया। तथा वे सिद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सौक्ष्म्य, अवगाह, अगुरुलघु, अव्याबाध नामक आठ गुणोंसे सहित हैं। ये गुण तो उपलक्षण हैं, जिससे उनमें तदनुसारी अनन्तानन्त गुणोंका अन्तर्भाव होता है। इससे ज्ञानादि विशेष गुणोंका अत्यन्त नाश हो

---

१. म द्रव्य° ।

मत्तमवर्गळे तप्परे दोडे लोकाग्रनिवासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्थाः अस्मिन्निति लोकः एंदितप्प लोकत्रयसन्निवेशाग्रदोळ्तनुवातप्रांतदोळ् निवासिगळु स्थस्नुगळु एत्तलानुं कर्म्मक्षयक्षेत्रदत्तणिंदं मेगणि कर्मक्षयानंतरमंतप्प गमनस्वाभाव्यदत्तणिमवर्गळ्ऽदुवरंतेरिददोडं लोकाग्रदत्तणिंदमूर्ध्वगमनसहकारि धर्म्मास्तिकायाभावदत्तणिंदमल्लिदं मेगणिसल्वरल्लरु इंतो लोकाग्रनिवासित्वमे युक्तमवर्गळे दोडेऽन्यथा लोकालोकविभागाभावं प्रसंगिसुगुमिदरिंदमात्मंगे ऊर्ध्वगमनस्वाभाव्यदत्तणिंदं मुक्तावस्थे योळेल्लियुं विश्रमाभावदिंदं मेळे मेळे पोपनेंदि पेळ्व मंडलिमतं प्रत्यस्तमाय्तु ।

सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णइयाइयो य वैसेसी ।
ईसर-मंडलिदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं ॥६९॥

सदाशिवसांख्यमस्करीबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतद्विशेषणं ॥ ई गाथासूत्रदिंदं पूर्व्वोक्तविशेषणंगळ्गुदाहरणोल्लेखनं तोरल्पट्टुदु ।

सदाशिवः सदाऽकर्म्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम् ।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम् ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं त्यमीशानो मंडली चोर्ध्वगामिनम् ॥ एंदितु ॥

निवासिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्मक्षयानन्तरं तथागमनस्वाभाव्यात् ते गच्छन्ति तथापि लोकाग्रत ऊर्ध्वगमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावान्न तदुपरि इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां, अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अनेन आत्मनः ऊर्ध्वगमनस्वाभाव्यात् मुक्तावस्थायां क्वचिदपि विश्रामाभावात् उपर्युपरि गमनमिति वदन्माण्डलिकमतं प्रत्यस्तं ॥६८॥

सदाशिवसांख्यमस्करिबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमण्डलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतद्विशेषणं ।

इत्याचार्य नेमिचन्द्र विरचितायां गोम्मटसारापरनाम पञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानप्ररूपणा नाम प्रथमोऽधिकारः ॥१॥

जाना आत्माकी मुक्ति है, ऐसा कहनेवाले नैयायिक-वैशेषिकोंके अभिप्रायका निराकरण किया। तथा वे सिद्ध कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने सकल कर्मोंका क्षय और उनके कारणादिका अनुष्ठानरूप सब कृत्य पूर्ण कर लिया है। इससे ईश्वर सदा मुक्त होकर भी जगत्के बनानेमें लगा रहनेसे अकृतकृत्य है, ऐसा ईश्वर-सृष्टिवादियोंका अभिप्राय निराकृत किया। वे सिद्ध लोकाग्रनिवासी हैं। जिसमें जीवादि पदार्थ देखे जायें, वह लोक है। इस प्रकार तीनों लोकोंके अग्रभाग तनुवातवलयके अन्तमें वे निवास करते हैं। यद्यपि वे जिस स्थानमें कर्मोंका क्षय करते हैं; कर्मोंका क्षय करनेके बाद उस क्षेत्रके ऊपर ही जानेका उनका स्वभाव है, फिर भी लोकके अग्र भागसे आगे ऊर्ध्वगमनमें सहायक धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे उससे ऊपर नहीं जाते। इसलिए उनका लोकके अग्रभागमें निवास करना ही युक्त है; अन्यथा लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है। इससे 'आत्माका ऊर्ध्वगमनका स्वभाव होनेसे मुक्त होनेपर कहीं भी ठहरना सम्भव नहीं है। अतः सर्वदा ऊपर-ऊपर जाता है' ऐसा माननेवाले माण्डलिक मतका निराकरण किया ॥६८॥

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव 'अष्टविधकर्मविकला' इत्यादि सात विशेषणोंका प्रयोजन कहते हैं—

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित-पुण्यपुंजायमान-श्रीमद्रायराजगुरु-भूमंडलाचार्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्र-वर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचित गोम्मटसारकर्नाटकवृत्तिजीवतत्व प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळ्प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपण महाधिकारं निरू-पितमाय्तु ॥ ५

सदाशिवमत, सांख्यमत, मस्करी, बौद्धमत, नैयायिकमत, वैशेषिक मत, ईश्वरवादी, और माण्डलिकमतको दोषयुक्त बतलानेके लिए उक्त विशेषण कहते हैं। कहा है—

सदाशिव मतवादी ईश्वरको सदा कर्मसे रहित मानता है। सांख्य मुक्त जीवको सुखसे रहित मानता है। मस्करी मुक्तोंका पुनः संसारमें आगमन मानता है। बौद्ध क्षणिक और यौग मुक्तात्माको निर्गुण मानते हैं। ईश्वरवादी ईश्वरको कृतकृत्य नहीं मानते। और १०
मण्डलीक मत आत्माको सदा ऊर्ध्वगामी मानता है ॥६९॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी १५
अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से गुणस्थान प्ररूपणा नामक प्रथम महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

अथ जीवसमासप्ररूपणा ॥ २ ॥

नमः सिद्धेभ्यः । श्रीवीतरागाय नमः ॥

इंतु गुणस्थानलक्षणसंख्यादिप्ररूपणानंतरं जीवसमासप्ररूपणमं प्रारंभिसुत्तं निरुक्तिपूर्व्वकमागि सामान्यदिदं तल्लक्षणमं पेळदपं ।

जेहि अणेया जीवा जोयंते[1] बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासा त्ति विण्णेया ॥७०॥

यैरनेके जीवा ज्ञायंते बहुविधा अपि तज्जातयस्ते पुनः संगृहीतार्था जीवसमासा इति विज्ञेयाः ॥

आवुवु केलवु सदृशपरिणामस्वरूपंगळप्प धर्म्मंगळिंदं जीवंगळनेकंगळु पलवादोडं बहुविधंगळु बहुप्रकारंगळादोडं तज्जातिगळु विवक्षितसामान्यक्रोडीकरणदिंदमेकध्यमानीतंगळरियल्पडुवु वा धर्म्मंगळु संगृहीतार्थंगळंतर्भावितव्यक्तिगळ्जीवसमासे गळेंदरियल्पडुवुवु ।

जीवाः समस्यंते संगृह्यंते यैर्येषु वा ते जीवसमासा इति । एंदितु निर्व्वचनसद्भावमंटप्पुदरिंदमिदरिंद समस्तसंसारिजीवसंग्रहप्रयोजनमप्प जीवसमासप्ररूपणं प्रारंभिसल्पट्टुदेंदितरियल्पट्टुदु । अथवा यैर्धर्म्मैर्जीवा अणेया अज्ञेया अपि कुतो बहुविधत्वात् । न च नानात्मव्यक्तयः

जित्वा घातीनि कर्माणि लब्ध्वानन्तचतुष्टयम् ।
विश्वं येन समुद्दिष्टमजितं तं नमाम्यहं ॥ १ ॥

एवं गुणस्थानलक्षणसंख्यादिप्ररूपणानन्तरं जीवसमासप्ररूपणामारचयन् निरुक्तिपूर्वकं सामान्येन तल्लक्षणमाह—

यैः सदृशपरिणामधर्मैः जीवाः, अनेके—बहवोऽपि, बहुविधाः—बहुप्रकारा अपि तज्जातयः विवक्षितसामान्यक्रोडीकरणादेकत्रानीताः[2], ज्ञायन्ते ते धर्माः संगृहीतार्थाः अन्तर्भावितव्यक्तयः जीवसमासा इति विज्ञेयाः । जीवाः समस्यन्ते—संगृह्यन्ते यैः, येषु वा ते जीवसमासा इति निर्वचनात् । अनेन समस्तसंसारि-

---

इस प्रकार गुणस्थानका लक्षण, संख्या आदि कहनेके बाद जीव समासकी प्ररूपणाको रचते हुए निरुक्तिपूर्वक सामान्यसे उसका लक्षण कहते हैं—

समान पर्यायरूप जिन धर्मोंके द्वारा अनेक जीव और बहुत प्रकारकी भी उनकी जातियाँ अर्थात् विवक्षित सामान्य धर्मके द्वारा इकट्ठा करनेसे एकत्र किये गये जीव समूह जाने जाते हैं, व्यक्तियोंको अन्तर्भूत करनेवाले उन धर्मोंको जीव समास जानना । जिनमें या जिनके द्वारा जीव 'समस्यन्ते' अर्थात् संगृहीत किये जाते हैं, वे जीव समास हैं, ऐसी उसकी निरुक्ति है । इससे यह जानना कि समस्त संसारी जीवोंके संग्रहके प्रयोजनसे जीव समासका

---

१. णज्जंते मु. । २. ब °देकदेशनीता ।

सामस्त्येन केवलज्ञानव्यतिरेकेण गम्यन्तेऽतस्तथा ज्ञातुमशक्ता अपि तज्जातयः सैव जातिर्यैषां ते तज्जातयः। संगृहीतार्थाः सम्यक् सामस्त्येन गृहीता गर्भीकृताः क्रोडीकृताः अर्था व्यक्तयो यैस्ते संगृहीतार्थास्ते जीवसमासा इति ज्ञातव्याः। अथवा तज्जातयस्ताश्च ताः जातयश्च तज्जातयः। संगृहीतार्थाः सं सामस्त्येन गृहीता गर्भीकृताः क्रोडीकृताः अर्था व्यक्तयो यकाभिस्ताः संगृहीतार्था निर्विशेषा न भवंतीत्यर्थः। 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्'। इति संग्रहीतार्थाभिस्तज्जातिभिः करणभूताभिर्जीवाः प्राणिनोऽनेकेऽपि बहुविधा अपि ज्ञायन्ते ता जीवसमासा इति ज्ञातव्याः॥

अनंतरं जीवसमासोत्पत्तिनिबन्धनतल्लक्षणप्रणयनार्थमिदं पेळ्दपरु।

तसचदुजुगाणमज्झे अविरुद्धेहि जुदजादिणामकम्मुदए।
जीवसमासा होंति हु तब्भवसारिच्छसामण्णा॥७१॥

त्रसचतुर्युगलानां मध्येऽविरुद्धैर्युतजातिनामकर्मोदये जीवसमासा भवंति तद्भवसादृश्यसामान्याः॥ त्रसस्थावरंगळु बादरसूक्ष्मंगळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तगळु प्रत्येकसाधारणंगळ्‌ एंबी नाल्कुं युगलंगळनामकर्म्म प्रकृतिगळोळगे यथासंभवमविरुद्धप्रकृतिगळोडने कूडिदेकेंद्रियादि जातिनाम

जीवसंग्रहप्रयोजनं जीवसमासप्ररूपणं प्रारब्धमिति ज्ञातव्यं। अथवा यैर्धर्मैः जीवा अणेया अज्ञेया अपि कुतः? बहुविधत्वात् न च नानात्मव्यक्तयः सामस्त्येन केवलज्ञानव्यतिरेकेण गम्यन्ते अतस्तथा ज्ञातुमशक्या अपि तज्जातयः सैव जातिर्येषां ते तज्जातयः संगृहीतार्थाः—सम्यक्—सामस्त्येन, गृहीताः—गर्भीकृताः क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यैस्ते संगृहीतार्थास्ते जीवसमासा इति ज्ञातव्याः। अथवा तज्जातयः—ताश्च ताः जातयश्च तज्जातयः। संगृहीतार्थाः—सं सामस्त्येन गृहीताः—गर्भीकृताः क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यकाभिस्ताः संगृहीतार्था निर्विशेषा न भवन्तीत्यर्थः 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्' इति संगृहीतार्थाभिस्तज्जातिभिः करणभूताभिः जीवाः प्राणिनः, अनेकेऽपि बहुविधा अपि ज्ञायन्ते ता जीवसमासा इति ज्ञातव्याः॥७०॥ अथ जीवसमासोत्पत्तिनिबन्धनतल्लक्षणमाह—

त्रसस्थावरौ बादरसूक्ष्मौ पर्याप्तापर्याप्तौ प्रत्येकसाधारणाविति चत्वारि युगलानि नामकर्मप्रकृतीनां तन्मध्ये यथासंभवमविरुद्धप्रकृतिभिः सह मिलितस्य एकेन्द्रियादिजातिनामकर्मणः उदये सति प्रादुर्भूताः

कथन प्रारम्भ किया है। अथवा जीव 'अणेय' अर्थात् अज्ञेय हैं, उन्हें जानना सम्भव नहीं है; क्योंकि संसारी जीवोंके बहुत प्रकार हैं। तथा केवलज्ञानके विना नाना आत्मा रूप व्यक्तियोंको पूरी तरहसे नहीं जाना जा सकता। इसलिए यद्यपि समस्त पर्यायरूपसे जीवोंको जानना अशक्य है, फिर भी समस्त रूपसे व्यक्तियोंको अपनेमें समाविष्ट करनेवाली जो उनकी जातियाँ हैं, वे ही जीवसमास हैं। अथवा समस्त रूपसे व्यक्तियोंको अपनेमें गर्भित करनेवाली वे जातियाँ विशेषसे रहित नहीं है; क्योंकि कहा है—'विशेषसे शून्य सामान्य गधेकी सींगकी तरह असम्भव है।' इसलिए व्यक्तियोंको पूरी तरहसे अपनेमें गर्भित करनेवाली जातिके द्वारा बहुत प्रकारके भी जीव जाने जाते हैं। उन्हें जीवसमास जानना॥७०॥

आगे जीवसमासकी उत्पत्तिके कारणोंको लिये हुए उसका लक्षण कहते हैं—

त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण ये चार युगल हैं। इन नामकर्मकी प्रकृतियोंमें-से यथासम्भव अविरुद्ध प्रकृतियोंके साथ मिलित एकेन्द्रिय आदि

---

१. म °तार्थास्तेभिस्तं°।

कर्म्मोदयमुंटागुत्तिरलु प्रादुर्भूतंगळप्प तद्भवसादृश्यसामान्यरूप जीवधर्म्मंगळु जीवसमासंगळे बुवक्कुं। तद्भवसामान्यमें बुदुते विवक्षितद्रव्यगतपर्य्यायास्त्रिकालगोचरा भवंति। विद्यन्तेऽस्मिन्निति तद्भवं। सामान्यमूर्ध्वतासामान्यमित्यर्थः। ऊर्ध्वतासामान्यमें बुदु नानाकालदोळेकव्यक्तिगतान्वयमूर्ध्वतासामान्यमक्कुं। द्रव्याश्रितपर्य्यायमन्वयमें बुदु। स्थासकोशकुशूलघटकपालादि पर्य्यायंगळोळमण्णिनन्तान्विताकारमप्पुदु द्रव्यमदरिंदुपलक्षिसल्पट्टुवु।

सादृश्यसामान्यंगळितर्य्यक्सामान्यंगळेंबुदर्थं। एककालदोळु नानाव्यक्तिगतान्वयं तिर्य्यक्सामान्यं। सदृशपरिणामंगळप्प खंडमुंडशबलशाबलेयादिविविधव्यक्तिगळोळु गोत्वादियें तंते, पृथिवीकायिकादि विविध जीवंगळोळेकेंद्रियत्वादि धर्म्मंगळु सदृशपरिणामरूपगळ् जीवसमासंगळप्पुवें बुदु खलु तात्पर्य्यं।

मत्तमा चतुर्युगलंगळोळु एकेंद्रियजातिनामकर्म्मोदयनें त्रसनामकर्म्मोदयं विरुद्धं शेषकर्म्मोदयमविरुद्धं, द्वींद्रियादि जातिनाम कर्म्मचतुष्टयदोडनें स्थावरसूक्ष्मसाधारणनाम कर्म्मंगळुदयं विरुद्धमितर कर्म्मोदयमविरुद्धमन्ते त्रसनाम कर्म्मदोडनें स्थावरसूक्ष्मसाधारण नामकर्मोदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं स्थावरनामकर्मदोडने त्रसनामकर्मोदयमोदे विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं बादर-

---

तद्भवसादृश्यसामान्यरूपजीवधर्मा जीवसमासा भवन्ति। तद्भवसामान्यं नाम ते विवक्षितद्रव्यगतपर्यायास्त्रिकालगोचरा भवन्ति—विद्यन्ते अस्मिन्निति तद्भवं सामान्यं—ऊर्ध्वतासामान्यमित्यर्थः। तच्च नानाकाले एकव्यक्तिगतान्वयरूपं भवति। द्रव्याश्रितपर्यायोऽन्वयः। स्थासकोशकुशूलघटकपालिकादिषु मृदिव अन्विताकारद्रव्यं तेनोपलक्ष्यते। सादृश्यसामान्यानि तिर्यक्सामान्यानीत्यर्थः। एककाले नानाव्यक्तिगतोऽन्वयस्तिर्यक्सामान्यं सदृशपरिणामाः खण्डमुण्डशबलशाबलेयादिविविधव्यक्तिषु गोत्वादिवत्। तथा पृथिवीकायिकादिविविधजीवेषु एकेन्द्रियत्वादिधर्माः सदृशपरिणामरूपा जीवसमासा भवन्तीति खलु तात्पर्यं। पुनः तेषु चतुर्षु युगलेषु एकेन्द्रियजातिनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदयो विरुद्धः। द्वीन्द्रियादिजातिनामकर्मचतुष्टयेन सह स्थावरसूक्ष्मसाधारणनामकर्मोदयो विरुद्धः इतरकर्मोदयः अविरुद्धः। तथा त्रसनामकर्मणा सह स्थावरसूक्ष्मसाधारणनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः। स्थावरनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदय एव विरुद्धः

जातिनाम कर्मका उदय होनेपर प्रकट हुए तद्भव सादृश्य सामान्य रूप जीवधर्म जीव समास होते हैं। जिसमें विवक्षित द्रव्यगत त्रिकालवर्ती पर्याय होती हैं, उसे तद्भव सामान्य कहते हैं। उसीका नाम ऊर्ध्वता सामान्य है। वह नाना समयोंमें एक व्यक्तिमें विद्यमान अन्वय रूप होता है। एक द्रव्यके आश्रित पर्यायोंको अन्वय कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल, घट, कपाल आदि पर्यायोंमें मिट्टी अन्वित आकारको लिये हुए द्रव्य है। अर्थात् स्थास आदि सब पर्यायोंमें मिट्टी अनुस्यूत रहती है। सादृश्य सामान्य तिर्यक् सामान्यको कहते हैं। एक कालमें नाना व्यक्तियोंमें पाया जानेवाला अन्वय तिर्यक् सामान्य है अर्थात् नाना व्यक्तियोंमें जो सदृश परिणाम होता है, वह तिर्यक् सामान्य है। जैसे खण्डी, मुण्डी, चितकबरी, काली, धौली आदि गायोंमें गायपना समान धर्म है, उसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि विविध जीवोंमें एकेन्द्रियपना आदि सदृश परिणामरूप धर्म जीवसमास हैं। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उक्त चार युगलोंमें एकेन्द्रिय जाति नाम कर्मके साथ त्रस नाम कर्मका उदय विरुद्ध है। इसी तरह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म, तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म, चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म और पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्मके साथ स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम

---

१. म बुदक्कुं।

नामकर्मंवोडने सूक्ष्मनामकर्मोदयमो दे विरुद्धं शेषप्रकृतिगळुदयमविरुद्धं । सूक्ष्मनामकर्मंदोडने त्रसबादरप्रत्येकनामकर्मंगळुदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं । पर्याप्तनामकर्मंदोडनऽपर्य्याप्तनामकर्मोदयमो दे विरुद्धमुळिदेल्ला कर्मोदयमविरुद्धमपर्य्याप्तनामकर्मोदयदोडने पर्य्याप्तनामकर्मोदयमो दे विरुद्धमुळिदेल्ला कर्मोदयमविरुद्धं । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयदोडने साधारणशरीरनामकर्मोदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं । साधारणशरीरनामकर्मंदोडने प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयं विरुद्धं । त्रसनामकर्मोदयमुं विरुद्धमितविरुद्धप्रकृत्युदयजनितसदृशपरिणामधर्मंगळु जीवसमासंगळे दितु वेदितव्यंगळप्पुवु ॥

अनंतरं संक्षेपेदिदं जीवसमासस्थानप्ररूपणनिमित्तमी सूत्रावतारं ।

बादरसुहुमेइंदिय विदिचदुरिंदिय असण्णिसण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति ॥७२॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियाऽसंज्ञी संज्ञिनश्च । पर्याप्तापर्याप्ता एवं ते चतुर्दश भवन्ति ॥

एकेंद्रियक्के बादरसूक्ष्मभेदंदिदमेरडु भेदमप्पुवु । द्वींद्रिय-त्रींद्रिय-चतुरिंद्रियंगळे दु विकलत्रयक्के मूरु भेदमप्पुवु । पंचेंद्रियक्कसंज्ञिसंज्ञिगळे देरडु भेदमप्पुवु । इंतो येळुं जीवभेदक्कं प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्त भेदसंभवदिंदमा जीवसमासंगळु संक्षेपेदिदं पदिनाल्कप्पुवे दितु ज्ञातव्यमक्कु ॥

शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । बादरनामकर्मणा सह सूक्ष्मनामकर्मोदयो विरुद्धः, शेषप्रकृत्युदयः अविरुद्धः । सूक्ष्मनामकर्मणा सह त्रसबादरप्रत्येकनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । पर्याप्तनामकर्मणा सह अपर्याप्तनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सह पर्याप्तनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयेन सह साधारणशरीरनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । साधारणशरीरनामकर्मणा प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयः, त्रसनामकर्मोदयश्च विरुद्धः । एवमविरुद्धप्रकृत्युदयजनितसदृशपरिणामधर्माः जीवसमासा इति ज्ञातव्या भवन्ति ॥७१॥ अथ संक्षेपेण जीवसमासस्थानानि प्ररूपयति—

एकेन्द्रियस्य बादरसूक्ष्माविति द्वौ, विकलत्रयस्य द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया इति त्रयः, पञ्चेन्द्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिनाविति द्वौ । एवं सप्तजीवभेदाः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताभ्यां गुणिताः संक्षेपेण चतुर्दशजीवसमासा

कर्मका उदय विरुद्ध है । अन्य कर्मोंका उदय अर्थात् त्रस, बादर और प्रत्येक नाम कर्मका उदय अविरुद्ध है । तथा त्रसनाम कर्मके साथ स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मका उदय अविरुद्ध है । स्थावर नाम कर्मके साथ एक त्रस नाम कर्मका उदय ही विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । बादर नाम कर्मके साथ सूक्ष्म नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । सूक्ष्म नाम कर्मके साथ त्रस, बादर, और प्रत्येक नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । पर्याप्त नाम कर्मके साथ अपर्याप्त नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष सब कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । अपर्याप्त नाम कर्मके उदयके साथ पर्याप्त नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष सब कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । प्रत्येक शरीर नाम कर्मके उदयके साथ साधारण शरीर नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है । साधारण शरीर नाम कर्मके साथ प्रत्येक शरीर नाम कर्मका उदय और त्रसनाम कर्मका उदय विरुद्ध है । इस प्रकार अविरुद्ध प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुए सदृश परिणाम रूप धर्मको जीवसमास जानना चाहिए ॥७१॥

तदनंतरं विस्तरजीवसमासप्ररूपणार्थमी गाथासूत्रमं पेळ्दपरु ।

भू आउ तेउ वाऊ णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पत्तेयपदिट्ठिदरा तस पण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥७२॥

भू अप्तेजोवायवो नित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः । प्रत्येकप्रतिष्ठितेतरौ त्रसपञ्चपूर्णा-
५ पूर्णद्विकाः ॥

भूकायिकाप्कायिक-तेजस्कायिक-वायुकायिकंगळु वनस्पतिकायिकंगळोळु नित्यनिगोद-साधारणचतुर्गतिनिगोदसाधारणमेंदितिवरुं जीवभेदंगळ्गे प्रत्येकं बादरसूक्ष्मविकल्पदिदं द्वादश-भेदंगळप्पुवु । प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकक्के प्रतिष्ठिताऽप्रतिष्ठितभेददिं मेरडु भेदंगळप्पुवु । द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियमें बी विकलेंद्रियक्के मूरु भेदंगळ्, पंचेंद्रियक्कसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियभेददिद-
१० मेरडु भेदंगळप्पुवु । इंतु त्रसक्कैदु भेदंगळप्पुवितेल्लमुं कूडियो दुगुंदिदिप्पत्तु जीवसमासंगळप्पुवु । इवक्केल्लं प्रत्येकं पर्याप्तकं निर्वृत्यपर्याप्तकं लब्ध्यपर्याप्तकमेंदितु मूरुं विकल्पमक्कुमदरिंदं मूरिरदं गुणियिसिदोडे विस्तरदिंदं जीवसमासंगळ् सप्तपंचाशत्प्रभेदं(भेदं)गळप्पुवु ॥५७॥

तदनंतरमी सप्तपंचाशज्जीवभेदंगळगवांतरविशेषप्रदर्शनार्थं स्थानाद्यधिकारचतुष्टयमं पेळ्दपं ।

---

१५ भवन्ति ॥७२॥ अथ विस्तरजीवसमासान् प्ररूपयति—

भूकायिकाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकाः वनस्पतिकायिकेषु नित्यनिगोदसाधारणचतुर्गतिनिगोद-साधारणाविति षट्भेदाः । प्रत्येकं बादरसूक्ष्माविति द्वादश । प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकस्य प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताविति द्वौ । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया इति त्रयः । पञ्चेन्द्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाविति द्वौ एवं सर्वे मिलित्वा एकोनविंशतिजीवसमासा भवन्ति । एते सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तकाः निर्वृत्यपर्याप्तका लब्ध्यपर्याप्तकाश्च
२० भवन्तीति विस्तरतो जीवसमासा सप्तपञ्चाशद्भेदा भवन्ति ॥७३॥ अथैषां सप्तपञ्चाशज्जीवभेदानां अवान्तर-विशेषप्रदर्शनार्थं स्थानाद्यधिकारचतुष्टयमाह—

आगे संक्षेपसे जीवसमासोंके स्थान कहते हैं—

एकेन्द्रियके बादर और सूक्ष्म दो भेद, विकलत्रयके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये तीन भेद, पंचेन्द्रियके संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद, इस तरह ये सात जीवभेद हुए। प्रत्येक
२५ भेदको पर्याप्त और अपर्याप्तसे गुणा करने पर संक्षेपसे चौदह जीवसमास होते हैं ॥७२॥

आगे विस्तारसे जीवसमासोंको कहते हैं—

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकोंमें नित्य निगोद साधारण तथा चतुर्गति निगोद साधारण ये छह भेद हुए। प्रत्येकके बादर और सूक्ष्म भेद होनेसे बारह हुए। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिकके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ये दो भेद हैं।
३० दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलत्रय हैं। पंचेन्द्रियके असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दो भेद, ये सब मिलकर उन्नीस जीवसमास होते हैं। इन सबमें भी प्रत्येक पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। इस प्रकार विस्तारसे जीव-समासके सत्तावन भेद होते हैं ॥७३॥

आगे इन सत्तावन जीव भेदोंके अवान्तर भेद बतलानेके लिए चार अधिकार
३५ कहते हैं—

ठाणेहि वि जोणीहि वि देहोगाहणकुलाण भेदेहि ।
जीवसमासा सव्वे परूविदव्वा जहाकमसो ॥७४॥

स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनकुलानां भेदैर्जीवसमासा सर्वे प्ररूपयितव्याः यथाक्रमशः ॥

स्थानंगळिंदमुं योनिगळिंदमुं देहावगाहनंगळिंदमुं कुलंगळ भेदंगळिंदमुल्ला जीवसमासंगळु यथाक्रमदिंदं प्रवचनपरिपाटीयनतिक्रमदिंदं प्ररूपयितव्यंगळक्कुं ॥

अनंतरं यथोद्देशस्तथा निर्द्देशः एंबो न्यायदिंदं प्रथमोद्दिष्टजीवसमासस्थानाधिकारव प्ररूपणार्त्थमी गाथा चतुष्टयमं पेळ्दपं ।

सामण्ण जीव तसथावरेसु इगिवियलसयल चरिमदुगे ।
इंदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुपणगभेदजुदे ॥७५॥

सामान्यजीवस्त्रसस्थावरयोरेक[1] विकल[2] सकले[3] चरमद्विके[4] इंद्रिये[5] काये[6] चरमस्य च द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते ॥ एंदितल्लियुपयोगलक्षणमनुळ्ळ सामान्यजीवनोळु द्रव्यार्थिकनयविषयमागि माडल्पडुत्तिरलोंदु जीवसमासस्थानमक्कुं ।

संग्रहनयगृहीतार्थभेदकव्यवहारनयविवक्षेयोळु संसारिजीवक्के प्रथमभेदंगळप्प त्रसस्थावरंगळेंदंगी करिसल्पट्ट वेरडु जीवसमासस्थानंगळक्कुं । मत्तमन्यप्रकारदिंदं व्यवहारविवक्षेयोळेकेंद्रिय-विकलेंद्रिय-सकलेंद्रियस्वरूपंगळप्प मूरुजीवभेदंगळोळधिकृतंगळ् मूरुजीवसमासस्थानंगळप्पुविंतु मुंदेल्लेडेयोळं प्रकारांतरं गळिंदं व्यवहारनयविक्षेयरियल्पडुगु मदें तेंदोडे—एकेंद्रियविकळेंद्रियंगळ कडेय सकलेंद्रियक्कसंज्ञि संज्ञिभेदद्वयमागुत्तिरलु नाल्कु जीवसमासस्थानंगळप्पुव

स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनैरपि कुलानां भेदैरपि सर्वे ते जीवसमासाः, यथाक्रमं—प्रवचनपरिपाट्यनतिक्रमेण प्ररूपयितव्या भवन्ति ॥७४॥ अथ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायेन प्रथमोद्दिष्टजीवसमासस्थानाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

तत्रोपयोगलक्षणसामान्यजीवे द्रव्यार्थिकनयेन विषयीकृते जीवसमासस्थानमेकं, संग्रहनयगृहीतार्थभेदकव्यवहारनयविवक्षायां संसारिजीवस्य प्रथमभेदौ त्रसस्थावरावधिकृतौ इति जीवसमासस्थाने द्वे । पुनरन्यप्रकारेण व्यवहारनयविवक्षायां एकेन्द्रियविकलेन्द्रियजीवानधिकृत्य जीवसमासस्थानानि त्रीणि । एवमग्रेऽपि सर्वत्र

स्थानोंके द्वारा, योनियोंके द्वारा, शरीरकी अवगाहनाके द्वारा और कुलोंके भेदोंके द्वारा वे सब ही जीवसमास आगमकी परिपाटीका उल्लंघन न करके प्ररूपण करनेके योग्य हैं ॥७४॥

आगे 'उद्देशके अनुसार निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार प्रथम कहे जीवसमास स्थानाधिकारको चार गाथाओंसे कहते हैं—

द्रव्यार्थिक नयसे उपयोग लक्षणसे युक्त सामान्य जीवको ग्रहण करनेपर जीव समासका स्थान एक है । संग्रहनयसे गृहीत अर्थका भेद करनेवाले व्यवहारनयकी विवक्षासे संसारी जीवके प्रथम दो भेद त्रस और स्थावर अधिकृत होनेसे जीवसमासके स्थान दो हैं । पुनः अन्य प्रकारसे व्यवहारनयकी विवक्षा होनेपर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंको अधिकृत करके जीवसमासके स्थान तीन हैं । इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र प्रका-

१. म प्पु वुमहंगे ।

हांगे एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदर्दिदं पंचजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-त्रसकायिकभेदर्दिदं षड्जीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकंगळेंदितु पंचस्थावरकायंगळुं कडेय त्रसकायद विकलेंद्रियसकलेंद्रियंगळे दरडुमितु सप्तजीवसमास-स्थानंगळप्पुवंते पंचस्थावरकायंगळुं विकलेंद्रियमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियमेंबितु मूरुं त्रसकायमेदंगळुं कूडि येंटु जीवसमासस्थानंगळप्पुवु। बहंगे पंचस्थावरकायंगळुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियमेंदी नाल्कुं त्रसकायंगळुमेंमितो भत्तु जीवसमासस्थानंगळप्पुवहंगे पंचस्थावरकायंगळुं द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुं संज्ञिपंचेंद्रियमुमसंज्ञिपंचेंदियमु मेंदितु पंचत्रसकायंगळु मितु पत्तुं जीवसमासस्थानंगळप्पुवु ॥

पणजुगले तससहिए तसस्स दुतिचदुरपंचभेदजुदे ।
छद्दुगपत्तेयम्मि य तसस्स तियचदुरपणग-भेदजुदे ॥७६॥

पंचयुगले त्रससहिते त्रसस्य द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते। षड्द्विकप्रत्येके च त्रसस्य त्रिचतुः पंचकभेदयुते ॥ अंते पंचस्थावरकायंगळु प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदर्दिदं द्विप्रकारमप्पुदरिंद पत्तुं स्थावरकायंगळु त्रसकायमुमित एकादशजीवसमासस्थानंगळप्पुवहंगे पत्तुं स्थावरकायंगळं

प्रकारान्तरैर्व्यवहारनयविवक्षा ज्ञातव्या। तद्यथा—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियौ तथा अन्त्यस्य सकलेन्द्रियस्य असंज्ञि-संज्ञिभेदौ च मिलित्वा जीवसमासस्थानानि चत्वारि। तथा एकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदजीवसमासस्थानानि पञ्च। तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकभेदात् जीवसमासस्थानानि षट्। तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-कायिकाः पञ्च अन्त्यस्य च त्रसकायस्य विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियौ द्वाविति मिलित्वा जीवसमासस्थानानि सप्त। तथा स्थावरकायाः पञ्च विकलेन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च त्रयो मिलित्वा जीवसमासस्थानान्यष्टौ। तथा स्थावरकायाः पञ्च द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्च चत्वारः मिलित्वा जीवसमासस्थानानि नव। तथा स्थावरकायाः पञ्च द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च पञ्च मिलित्वा जीवसमासस्थानानि दश ॥७५॥

तथा स्थावरकायाः पञ्चापि बादरसूक्ष्माः त्रसकायश्चेति जीवसमासस्थानान्येकादश। तथा स्थावरकाया दश विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियौ चेति जीवसमासस्थानानि द्वादश। तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य विकला-

---

रान्तरसे नयविवक्षा जानना। वह इस प्रकार है—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तथा अन्तिम सकलेन्द्रियके असंज्ञी और संज्ञी भेद मिलकर जीवसमासके स्थान चार हैं। तथा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रियके भेदसे जीवसमासके स्थान पाँच हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिकके भेदसे जीवसमासके स्थान छह हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायु-कायिक, वनस्पतिकायिक पाँच और अन्तिम त्रसकायके विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय ये दो भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सात हैं। तथा स्थावरकाय पाँच और विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय भेद मिलकर जीवसमासके स्थान आठ हैं। तथा स्थावर काय पाँच, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार मिलकर जीवसमासके स्थान नौ हैं। तथा स्थावरकाय पाँच और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच मिलकर जीवसमासके स्थान दस होते हैं ॥७५॥

तथा स्थावर काय पाँचों भी बादर और सूक्ष्म तथा त्रसकाय मिलकर जीवसमासके स्थान ग्यारह होते हैं। तथा स्थावरकाय दस और विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय ये मिलकर जीव-

---

१. म °लुक्कमिं ।

विकलेंद्रियसकलेंद्रियभेदर्दिदमेरडुं त्रसकायमुमितु द्वादशजीवसमासस्थानंगळप्पुवुवंते पत्तु स्थावरकायंगळुं त्रसकायद विकलाऽसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियभेदंगळमूर्हिवितु त्रयोदशजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पत्तुं स्थावरकायंगळुं त्रसकायद द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळे ब नाल्कु मितु चतुर्दश जीवसमासस्थानंगळप्पुवहंगे पत्तुं स्थावरकायंगळं त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियमुमेंबय्दुमितु पंचदशजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळुं साधारणवनस्पतिय नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदंगळुमितारक्कं बादरसूक्ष्मभेदर्दिदं पन्नेरडुं भेदंगळुं प्रत्येकवनस्पतियुमितु स्थावरकायत्रयोदशभेदंगळुं त्रसकायद विकलासंज्ञिसंज्ञिभेदत्रयमुमितु षोडश जीवसमासस्थानंगळप्पुवी प्रकारदिंदं स्थावरकायंगळ्पदिमूरुं त्रसकायद द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदंगळोळनाल्कुमिन्तु सप्तदशजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते त्रयोदशस्थावरकायंगळु त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियंगळे बय्दु मितंष्टादश जीवसमासस्थानंगळप्पुवु ॥ १०

सगजुगलम्मि तसस्स य पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा ।
एयादुणवीसोत्ति य इगिवितिगुणिदे हवे ठाणा ॥७७॥

सप्तयुगले त्रसस्य च पंचकयुतेषु भवन्त्येकान्नविंशतिः । एकाद्येकान्नविंशतिपर्यंतं एकद्वित्रिभिर्गुणिते भवेयुः स्थानानि ॥ अहंगे पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदसाधारणवनस्पति-

संज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियास्त्रयः इति जीवसमासस्थानानि त्रयोदश । तथा स्थावरकाया दस त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि चतुर्दश । तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पञ्च चेति जीवसमासस्थानानि पञ्चदश । तथा पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः साधारणवनस्पतेर्नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदौ चेति षडपि बादराः सूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतिश्चेति स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य विकलासंज्ञिसंज्ञिनस्त्रयश्चेति जीवसमासस्थानानि षोडश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि सप्तदश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पञ्च चेति जीवसमासस्थानान्यष्टादश ॥७६॥

तथा पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदाः षडपि बादराः सूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतेः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्चेति जीवसमासस्थानान्येकान्नविंशतिः । एवमुक्तानि सामान्यजीवरूपैक-

---

समासके स्थान बारह हैं। तथा स्थावरकाय दस और त्रसकायके विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये तीन मिलकर जीवसमासके स्थान तेरह होते हैं। स्थावरकाय दस और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार भेद मिलकर जीवसमासके स्थान चौदह हैं। स्थावरकाय दस और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच भेद मिलकर जीवसमासके स्थान पन्द्रह हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, साधारण वनस्पतिके नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद ये छह भी बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पति ये स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी ये तीन भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सोलह हैं। स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सतरह होते हैं। तथा स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच भेद मिलकर जीवसमासके स्थान अठारह होते हैं ॥७६॥

तथा पृथिवीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद ये

कायंगळे दितारुं प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदंदिदं पन्नेरडु भेदंगळु प्रत्येकवनस्पतियप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदंगळेरडुमितु स्थावरकायिकचतुर्दशभेदंगळु त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियंगळु मेंबय्दुमितु एकान्नविंशतिजीवसमासस्थानंगळप्पुवितु पेळल्पट्ट सामान्यजीवरूपैकस्थानादिगळेकान्नविंशतिभेदस्थानपर्यंतंगळो दरिंद मेरडरिंद मूरिंदं गुणियिसल्पट्टंतप्पुवु । यथाक्रममेकान्नविंशतिभेदस्थानंगळुमष्टात्रिंशद्भेदस्थानंगळुं सप्तपंचाशत् भेदस्थानंगळुमप्पुवु ॥

सामण्णेण तिपंती पढमा बिदिया अपुण्णगे इदरे ।
पज्जत्ते लद्धियपज्जत्ते अपढमा हवे पंती ॥७८॥

सामान्येन त्रिपङ्क्तिः प्रथमा द्वितीयाऽपूर्णके इतरे । पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्तेऽप्रथमा भवेत्पङ्क्तिः ॥

इन्तु पेळल्पट्टेकाद्येकोत्तरमागेकान्नविंशतिविकल्पस्थानंगळमूरुं पंक्तिगळागि केळकेळगे तिर्य्यक्कागि स्थापिसल्पडुववंतु स्थापिसल्पट्ट मूरुं पंक्तिगळोळप्रथमपंक्ति पर्याप्तादिविवक्षेयं माडदे सामान्यालापदिंदं गुणियिसल्पट्टुदु । तदवस्थास्वरूपदिंदिरुतिर्क्कुं । द्वितीयपंक्ति पर्याप्तभेदमप्प पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तमेंबेरडु भेदंदिदं गुणियिसल्पडुवुदु । अप्रथमा तृतीयपंक्तिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदत्रयदिंदं गुणियिसल्पडुगुमिल्लि द्वितीयतृतीयपंक्तिद्वयक्कमप्रथमत्वं साधारण्यदिंदं प्रसंगिसल्पडुत्तिरलु द्वितीयपंक्तिगे कंठोक्तत्वदिंदमप्रथमा एंबिदरिंदं पारिशेष्यन्यायदिंदं तृतीयपंक्ति गृहीतमाप्तु । इल्लि सामान्यप्रथमपंक्तिय युति । मुख । १ । भूमि १९ । जोग २० । दले

स्थानादीनि एकोनविंशतिभेदस्थानपर्यन्तानि एकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितानि यथाक्रमं एकोनविंशतिभेदस्थानानि अष्टात्रिंशद्भेदस्थानानि सप्तपञ्चाशद्भेदस्थानानि च भवन्ति ॥७७॥ अथ एक-द्वित्रिगुणकारकारणं प्ररूपयति—

प्रागुक्तैकाद्येकोत्तरैकान्नविंशतिविकल्पस्थानानां तिस्रः पङ्क्तयोऽधोधः कर्तव्याः । तासु प्रथमा पङ्क्तिः पर्याप्तादिविवक्षामकृत्वा सामान्यालापेन गुणयितव्या । द्वितीया पङ्क्तिर्द्वाभ्यां पर्याप्तापर्याप्तभेदाभ्यां गुणयितव्या । अप्रथमा—तृतीया पङ्क्तिः त्रिभिः पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदैर्गुणयितव्या । द्वितीयतृतीयपङ्क्तयोरप्रथमत्वेऽपि द्वितीयायाः कण्ठोक्तत्वेन अप्रथमा इत्यनेन पारिशेष्यात्तृतीयैव गृहीता । तत्र सामान्यप्रथमपङ्क्तेः मुह १

छहों बादर और सूक्ष्म, प्रत्येक वनस्पतिके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेद, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, ये सब मिलकर जीवसमासके स्थान उन्नीस होते हैं। इस प्रकार सामान्य जीवरूप एक स्थानसे उन्नीस भेद पर्यन्त स्थानोंको एक, दो और तीनसे गुणा करनेपर यथाक्रम उन्नीस भेदस्थान, अड़तीस भेदस्थान और सत्तावन भेदस्थान होते हैं ॥७७॥

आगे एक दो और तीनसे गुणकार करनेका कारण कहते हैं—

पहले कहे एकसे लेकर उन्नीस भेदस्थानोंकी तीन पंक्तियाँ नीचे-नीचे करनी चाहिए। उनमें-से पहली पंक्तिको तो पर्याप्त-अपर्याप्त आदिकी विवक्षा न करके सामान्य आलापसे गुणा करना चाहिए। दूसरी पंक्तिको पर्याप्त और अपर्याप्त भेदसे गुणा करना चाहिए। और अप्रथमा अर्थात् तीसरी पंक्तिको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदोंसे गुणा करना चाहिए। यद्यपि दूसरी और तीसरी दोनों ही पंक्तियाँ अप्रथम हैं, फिर भी द्वितीयाका नाम लिया है, इसलिए अप्रथमासे पारिशेष्य न्यायसे तीसरी का ही ग्रहण किया है। इन तीनों पंक्तियोंके समस्त भेदोंका जोड़ लानेके लिए 'मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे

१. म प्रसक्तिसुत्तिरत्तु ।

१०। पद गुणिदं १०। १९। लब्धधनं १९०। द्वितीयपंक्ति युति। आदिमुख २। भूमि ३८। जोग ४०। दळे २०। पदगुणिदे २०। १९। पदधणं भवति ३८०॥ तृतीयपंक्तियुति मुख ३। भूमि ५७। जोग ६०। दळे ३०। पद गुणिदे ३०। १९। पदधणं होदि ५७०॥

तदनंतरमेकेंद्रियविकलत्रयजीवसमासस्थानंगळ्वेरसु पंचेंद्रियगतजीवसमासस्थानविशेषप्ररूपणार्थं गाथासूत्रद्वयमं पेळ्दपरु। ५

इगिवण्णं इगिविगले असण्णि-सण्णिगय-जलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगं भोगथलखचरगे दोद्दो ॥७९॥

एकपंचाशदेकविकले असंज्ञिसंज्ञिगतजलस्थलखगानां गर्भभवे सम्मूर्च्छिमे द्वौ त्रयो भोगस्थलखचरके द्वौ द्वौ। १०

अज्जवमलेच्छमणुए तिदु भोगकुभोगभूमिजे दोद्दो।
सुरणिरए दोद्दो इदि जीवसमासा हु अडणउदी ॥८०॥

आर्य्यम्लेच्छमनुष्ये त्रयो द्वौ भोगकुभोगभूमिजे द्वौ द्वौ। सुनारके द्वौ द्वौ इति जीवसमासाः खल्वष्टानवतिः॥

सप्तयुगलंगळप्पेकेंद्रियंगळ्गे चतुर्दश जीवसमासंगळ्। विकलेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियंगळ्मूरितु पदिनेळु जीवसमासस्थानंगळ्पर्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तलब्ध्यपर्य्याप्तमेंब मूरुं भेदंगळिंदं गुणियिसल्पद्वोडेकपंचाशत्संख्या समन्वितंगळ्सुगमंगळे दितु प्रपंचिसल्पट्टुविल्ल॥ १५

मत्तं कर्म्मभूमियोळु पंचेंद्रियतिर्य्यंचरप्पजलचरस्थलचरखगचरंगळ्गे प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञिविकल्पदिंदं षट्स्थानंगळप्पुवा षट्स्थानंगळ्गं प्रत्येकं गर्भंजरोळु पर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तमेंदि-

---

भूमि १९ जोग २० दले १० पदगुणिदे १०। १९। लब्धयुतिः १९०। द्वितीयपङ्क्तेः मुह २ भूमि ३८ जोग ४० दले २० पदगुणिदे २०। १९ युतिः ३८०। तृतीयपङ्क्तेः मुह ३ भूमौ ५७ जोग ६० दले ३० पदगुणिदे ३०×१९ युतिः ५७०॥ ७८। अथैकेन्द्रियविकलत्रयजीवसमासमिश्रितपञ्चेन्द्रियगतजीवसमासस्थान् विशेषान् गाथाद्वयेनाह—

एकेन्द्रियसप्तयुगलद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इत्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु एकपञ्चाशत्। तिर्यग्गतौ कर्मभूमिजजलस्थलखचरास्त्रयोऽपि प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञिनौ भूत्वा षट्, ते च गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमेषु च पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति त्रिंशत्। भोगभूमिसंज्ञिगर्भजस्थल-

---

पदधनं होदि' इस करण सूत्रके अनुसार प्रथम पंक्तिका मुख १, भूमि १९, दोनोंको जोड़नेपर २०, आधा करनेपर १०, और उसको पद १९ से गुणा करनेपर १९×१०=१९० भेद होते हैं। दूसरी पंक्तिका मुख २, भूमि ३८, जोड़नेपर ४०, आधा करनेपर २०, उसमें पदसे गुणा करनेपर २०×१९=३८० सर्वधन होता है। तीसरी पंक्तिका मुख ३, भूमि ५७, जोड़ ६०, आधा ३० को पदसे गुणा करनेपर १९×३०=५७० सर्वधन होता है॥७८॥ ३०

आगे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवसमासोंके साथ पंचेन्द्रियगत जीवसमासोंके भेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

एकेन्द्रियके सात युगल और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये सतरह पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं अतः एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंके इक्यावन जीवसमासोंके स्थान होते हैं। तिर्यंच गतिमें पंचेन्द्रिय कर्मभूमिया तिर्यंच जलचर, थलचर और नभ- ३५

तेरडेरडुं अलि संमूच्छिमरोळु पर्य्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तरें दितु मूरु मूरु भेदंगळुमेंदि-
न्तैदैदु संभविसुगुमेंदु गुणियिसल्कम्मभूमिजतिर्यंचर जीवसमासस्थानंगळमूवत्तप्पवु। भोग-
भूमिजतिर्य्यंचस्थलचररुं खचररुमप्प संज्ञिगळगर्भजरु गळगेपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तरें बेरडेरडु
भेदंगळिंतुं भोगभूमियोळु तिर्य्यंचर्गं नाल्कुजीवसमासस्थानंगळु इंतु तिर्य्यग्गतियोळ्पंचेंद्रिय-
जीवसमासस्थानंगळमूवत्त नाल्कु पेळल्पट्टुवु।

कर्म्मभूमिजमनुष्यरार्य्यखंडजरप्प गर्भजरुगळगे पर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तरें बेरडेयप्पुवु। संमू-
च्छिमर्गे लब्ध्यपर्य्याप्तमेयक्कुमन्यविकल्पमिल्लिदुकारणं मूरे जीवसमासस्थानंगळु। म्लेच्छखंड-
जरप्प गर्भजर्गे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तमेंबेरडे भेदमक्कुमितु कर्म्मभूमियोळ् पंचजीवसमासस्थानं-
गळु। भोगभूमिजरुं कुभोगभूमिजरुमेंबी मनुष्यगर्भजरुगळगे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तरें बेरडेरडे
भेदंगळिंतु भोगभूमिजमनुष्यर्गे नाल्के जीवसमासस्थानंगळु कूडि मनुष्यगतियोळो भत्तु जीव-
समासस्थानंगळु। देवरोळं नारकरोळं ई यौपपादिकर्गे पर्य्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तरें बेरडेरडे जीव-
समासस्थानंगळप्पुवितु चतुर्गतिगळोलु पंचेंद्रियंगळ जीवसमासस्थानंगळनितुं कूडि सप्तचत्वारिं-
शज्जीवसमासस्थानंगलुं केवलं तैर्य्यग्योनैकविकलेंद्रियजीवसंबंधिगळप्प एकपंचाशज्जीवसमासंग-
ळसहितमागि सर्व्वजीवसमासभेदंगळष्टानवति प्रमाणंगळप्पुवेंबिदु सूत्रतात्पर्यं॥

---

१५ खचरौ पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ भूत्वा चत्वारः, एवं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य चतुस्त्रिंशत्। कर्मभूमौ मनुष्याणां आर्यखण्डे गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रयः, म्लेच्छखण्डे गर्भजेषु पर्याप्त-निवृत्यपर्याप्तौ द्वौ, भोगकुभोगभूम्योर्गर्भजे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः, मिलित्वा मनुष्यगतौ नव। देवनारकौपपादिकयोः प्रत्येकं पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः। एवं चतुर्गतिषु पञ्चेन्द्रियजीवसमासस्थानानि सप्तचत्वारिंशत्। एतानि च एकविकलेन्द्रियाणामेकपञ्चाशता मिलित्वा अष्टानवतिर्भवन्तीति सूत्रतात्पर्यम्।

२० अत्र विवक्षया स्थावराणां द्वाचत्वारिंशत् ४२, विकलेन्द्रियाणां नव ९, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां चतुस्त्रिंशत् ३४,

---

चर होते हैं तथा तीनों भी असंज्ञी और संज्ञी होनेसे छह भेद हुए। उनमें जो गर्भज होते हैं वे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त होते हैं। जो सम्मूर्छन होते हैं,वे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं। इस तरह ६×२=१२ और ६×३=१८ सब तीस होते हैं। भोग-भूमिज तिर्यंच संज्ञी तथा गर्भज ही होते हैं। तथा थलचर और नभचर ही होते हैं और
२५ पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त ही होते हैं अतः चार भेद होनेसे तिर्यंच पंचेन्द्रियके चौंतीस भेद हुए। कर्मभूमिमें मनुष्योंके आर्यखण्डमें गर्भजोंमें पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और सम्मूर्च्छनोंमें केवल लब्ध्यपर्याप्तक ही होनेसे तीन ही भेद होते हैं। म्लेच्छखण्डमें गर्भज ही होते हैं और उनमें पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक दो भेद होते हैं। भोगभूमि और कुभोगभूमिमें गर्भजोंमें पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त होनेसे चार भेद होते हैं। सब मिलकर मनुष्यगतिमें नौ भेद होते हैं। देवों
३० और नारकोंमें उपपादजन्म ही होता है तथा उसमें पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक ही होनेसे चार भेद होते हैं। इस तरह चारों गति सम्बन्धी पंचेन्द्रियोंमें जीवसमासस्थान ३४+९+४=४७ होते हैं। इनमें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियके ५१ स्थान मिला देनेपर सब

इल्लि जीवविवक्षेयिं स्थावरंगळ जीवसमासंगळनाल्वत्तेरडु ४२। तिर्य्यंचज पंचेंद्रियंगळ जीवसमासंगळमूवत्तनाल्कु ३४। विकलत्रयंगळोळों भत्तु ९ जीवसमासंगळु। देवरोळु जीवसमासंगळेरडु २। नारकरोळु जीवसमासगळेरडु २। मनुष्यरोळु वोंभत्तु ९। जीवसमासंगलिवेल्लमुं कूडि तोंभत्तेंदु जीवसमासंगळप्पुवु। इंतु पेळल्पट्ट जीवसमासस्थानंगळु संसारिजीवसंबंधिगळेयप्पुवु। ५

मुक्तात्मसंबंधिगळल्लेकेंदोडे विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तरोळु त्रसस्थावरादिभेदगळिल्लेंतेंदोडे "संसारिणः त्रसस्थावराः" एंबो सूत्रप्रमाणदत्तणिदं। इंतु जोवसमासंगळगे स्थानाधिकारंतिर्दुदु॥

देवानां द्वौ २, नारकाणां द्वौ, २, मनुष्याणां नव ९। सर्वाणि मिलित्वा अष्टानवतिः ९८। अमूनि संसारिणामेव न मुक्तानां विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तत्वेन तेषां त्रसस्थावरभेदाभावात् संसारिणस्त्रसस्थावरा इति १०
सूत्रसद्भावात् ॥७९। ८०॥ अथोक्तेभ्यो विशेषजीवसमासकथकैरपराचार्योक्तं गाथासूत्रत्रयमाह—

सुद्धखरकुजलतेवा णिच्चचदुग्गदिणिगोदयूलिदरा।
पदिट्ठिदरपञ्जत्तियवियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा ॥१॥
इगिविगले इगिसीदी असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो ॥२॥ १५
अज्जसमुच्छिगिगब्भे मलेच्छभोगतियकुणरछपणत्तीससये।
सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु छहियचारिसयं ॥३॥

मृदादिरूपपृथ्वीकायिकः पाषाणादिरूपखरपृथ्वीकायिकः अप्कायिकः तेजस्कायिकः वायुकायिकः नित्यनिगोदः इतरनिगोदः परनामचतुर्गतिनिगोदश्चेति सप्तापि स्थूलसूक्ष्मभेदाच्चतुर्दश। तृणं वल्ली गुल्मः वृक्षः मूलं चेति पञ्चापि प्रत्येकवनस्पतयो निगोदशरीरैः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद्दश। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियश्चेति २०
विकलेन्द्रियास्त्रयः। एतेषु सप्तविंशत्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियभेदेषु पर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादेकाशीतिः। पञ्चेन्द्रियेषु कर्मभूम्यसंज्ञिसंज्ञिभेदजलचरस्थलचरखचरेषु षट्स्वपि गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तभेदाद् द्वादश।

स्थान ९८ होते हैं; यह गाथा सूत्रका तात्पर्य है। पृथक्-पृथक् विवक्षा करनेपर स्थावरोंके बयालीस ४२, विकलेन्द्रियोंके नौ ९, तिर्यंच पंचेन्द्रियोंके चौंतीस ३४, देवोंके दो २, नारकियोंके दो २ और मनुष्योंके नौ ९, सब मिलकर अट्ठानबे ९८ होते हैं। ये जीवसमासस्थान संसारी २५
जीवोंके ही होते हैं, मुक्त जीवोंके नहीं होते। क्योंकि मुक्त जीव विशुद्ध चैतन्यनिष्ठ ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगसे युक्त होते हैं। उनके त्रस-स्थावर भेद नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें संसारी जीवोंके ही त्रस-स्थावर भेद कहे हैं ॥७९-८०॥

आगे उक्त जीवसमासके भेदोंसे विशेष कथन करनेवाले अन्य आचार्योंके द्वारा कहे हुए तीन गाथासूत्रोंको कहते हैं— ३०

मिट्टी आदि रूप शुद्ध पृथ्वीकायिक, पाषाण आदि रूप खर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद, ये सातों भी स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे चौदह होते हैं। तृण, वल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल ये पाँचों ही प्रत्येक वनस्पति निगोद शरीरोंसे प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित होनेके भेदसे दस हैं।

---

१. अथ प्रकारान्तरेण जीवसमासस्थानानि वक्तुमुक्तं गाथात्रयम्। ३५

अनंतरं योनिप्ररूपणयोळमुन्नमाकारयोनिनिर्देशार्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

संखावत्तयजोणी कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य ।
तत्थ य संखावत्ते णियमाद् विवज्जदे गब्भो ॥८१॥

शंखावर्तकयोनिः कूर्म्मोन्नतयोनिर्वंशपत्रयोनिश्च । तत्र च शंखावर्ते नियमाद्विवर्ज्यते गर्भः ॥

शंखावर्त्तयोनियुं कूर्म्मोन्नतयोनियुं वंशपत्रयोनियुमेंदिताकारयोनि त्रिविधमक्कुं । यौति मिश्रीभवत्यौदारिकादिनोकर्म्मवर्गणापुद्गलैस्सह संबध्यते जीवो यस्यां सा योनिः येंदितु जीवोत्पत्तिस्थानक्के योनित्वं निरुक्तिसिद्धमन्ता त्रिप्रकारमप्प योनिगळोळगे शंखावर्त्तयोनियोळु गर्भं नियमदिदं विवर्ज्जिसल्पडुगुं विपद्यते विनश्यते येंदितु मेणन्वयं माडल्पडुवुदु ॥

तत्सम्मूर्छिमेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादष्टादश । उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमीनां संज्ञिस्थलचरखचराविति षट्सु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तभेदाद्द्वादश । मनुष्येषु आर्यखण्डजे संमूर्छिमे लब्ध्यपर्याप्त एकः । तद्गर्भजे म्लेच्छखण्डजे उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमिजेषु कुभोगभूमिजे एवं षट्सु, तथा दशविधभावनाष्टविधव्यन्तरपञ्चविधज्योतिष्कपटलापेक्षत्रिषष्टिविधवैमानिकभेदात् षडशीतिसुरेषु प्रस्तारापेक्षयैकान्नपञ्चाशद्विधनारकेषु च पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तभेदात् द्व्यशीत्यग्रद्विशतं मिलित्वा सर्वे षडधिकचतुःशतीं जीवसमासा भवन्ति ॥१॥२॥३॥

इति जीवसमासानां स्थानाधिकारः समाप्तः । अथ योनिप्ररूपणायाः प्रथममाकारयोनिभेदानाह—

शंखावर्तयोनिः कूर्मोन्नतयोनिः वंशपत्रयोनिश्चेति आकारयोनिस्त्रिविधा भवति । यौति मिश्रीभवति औदारिकादिनोकर्मवर्गणा पुद्गलैः सह संबद्धयते जीवो यस्यां सा योनिः—जीवोत्पत्तिस्थानं । तत्त्रिविधयोनिषु शंखावर्तयोनौ गर्भो नियमेन विवर्ज्यते विपद्यते विनश्यति वा ॥८१॥

दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलेन्द्रिय हैं। इन एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय सम्बन्धी २७ भेदों में पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे इक्यासी ८१ होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें कर्मभूमिज तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे युक्त जलचर, थलचर और नभचर ये छहों गर्भज पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे बारह होते हैं। और ये सम्मूर्छन पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तके भेदसे अठारह होते हैं। उत्कृष्टभोगभूमि, मध्यम भोगभूमि और जघन्य भोगभूमिके तिर्यंच संज्ञी ही होते हैं तथा थलचर और नभचर होते हैं। इन छहके पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे बारह होते हैं। मनुष्योंमें आर्यखण्डमें जन्मे सम्मूर्छन जन्मवालोंमें लब्ध्यपर्याप्तकरूप एक स्थान होता है। आर्यखण्डमें उत्पन्न गर्भज मनुष्योंमें तथा म्लेच्छ खण्डमें, उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमि तथा कुभोगभूमिमें जन्मे मनुष्य गर्भज ही होते हैं। इस तरह ये छह प्रकारके मनुष्य हुए। तथा दश प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके व्यन्तर, पाँच प्रकारके ज्योतिष्क, पटलोंकी अपेक्षा तेरसठ प्रकारके वैमानिक;इस तरह ये सब (१०+८+५+६३=८६) छियासी प्रकारके देव हुए। प्रस्तारोंकी अपेक्षा उनचास प्रकारके नारकी, ये सब मिलकर (६+८६+४९=१४१) एक सौ इकतालीस हुए। ये सब पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे दो सौ बारह होते हैं। इनमें पूर्वके सब भेद एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके इक्यासी, पंचेन्द्रिय तिर्यंचके बयालीस, सम्मूर्छन मनुष्यका एक, गर्भज मनुष्य देव नारकियोंके दो सौ बयासी मिलकर चार सौ छह जीवसमास होते हैं।

इस प्रकार जीवसमासोंका स्थानाधिकार समाप्त हुआ। आगे योनिप्ररूपणामें पहले आकारयोनिके भेद कहते हैं—

कुम्मुण्णयजोणीये तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामा वि य जायंते सेसाए सेसगजणो दु ॥८२॥

कूर्म्मोन्नतयोनौ तीर्त्थंकरा द्विविधचक्रवर्त्तिनश्च । रामा अपि च जायन्ते शेषे शेषकजनस्तु ॥

कूर्म्मोन्नतयोनियोळु तीर्त्थंकररुं सकलचक्रवर्त्तिगळुं अर्द्धचक्रवर्त्तिगळुं प्रतिवासुदेवर्क्कळुं बलदेवरुगळुं पुट्टुवरु । अपि शब्ददिंदमुमितरजनंगळुं पुट्टुवरु । शेषवंशपत्रयोनियोळु मिक्कजनंगळे पुट्टुवरु, तीर्त्थंकरादिगळ्पुट्टरु ॥ अनंतरं जन्मभेद निर्देशपूर्वकमागि गुणयोनिनिर्देशार्थं पेळ्दपरु ।

जम्मं खलु संमुच्छणगब्भुववादा दु होदि तज्जोणी ।
सच्चित्तसीदसंवुडसेदरमिस्सा य पत्तेयं ॥८३॥

जन्म खलु संमूर्च्छनगर्भोपपादास्तु भवन्ति तद्योनयः । सच्चित्तशीतसंवृतसेतरमिश्राश्च प्रत्येकम् ॥

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादंगळु संसारिजीवंगळ्गे जन्मभेदंगळप्पुवु । सं समन्तान्मूर्च्छनं जायमान-

---

कूर्मोन्नतयोनौ तीर्थङ्कराः सकलचक्रवर्तिनः अर्धचक्रवर्तिनः प्रतिवासुदेवा बलदेवाश्चोत्पद्यन्ते अपिशब्दात्तेतरजनाः । शेषवंशपत्रयोनौ शेषजना एवोत्पद्यन्ते न तीर्थङ्करादयः ॥८२॥ अथ जन्मभेदनिर्देशपूर्वकं गुणयोनीर्निर्दिशति—

सम्मूर्छनगर्भोपपादाः संसारिजीवानां जन्मभेदा भवन्ति । सं समन्तात्, मूर्छनं जायमानजीवानुग्राहकाणां जीवोपकारकाणां शरीराकारपरिणमनयोग्यपुद्गलस्कन्धानां समुच्छ्रयणं सम्मूर्छनं । जायमानजीवेन शुक्रशोणित-

---

शंखावर्तयोनि, कूर्मोन्नतयोनि, वंशपत्रयोनि इस प्रकार तीन आकारयोनियाँ होती हैं। योनि अर्थात् मिश्ररूप होना। जिसमें जीव औदारिक आदि नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलोंके साथ सम्बद्ध होता है, वह योनि अर्थात् जीवकी उत्पत्तिका स्थान है। इन तीन प्रकारकी योनियोंमें-से शंखावर्तयोनिमें गर्भ नियमसे नहीं ठहरता अथवा रहे, तो नष्ट हो जाता है। चक्रवर्तीकी महिषी स्त्रीरत्न आदि किन्हीं स्त्रियोंमें इस प्रकारकी योनि होती है ॥८१॥

कूर्मोन्नतयोनिमें तीर्थंकर, सकलचक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती, प्रतिवासुदेव, और बलदेव उत्पन्न होते हैं। अपि शब्दसे अन्य जन इसमें पैदा नहीं होते। शेष वंशपत्रयोनिमें शेष जन ही पैदा होते हैं, तीर्थंकर आदि पैदा नहीं होते ॥८२॥

आगे जन्मके भेद कहते हुए गुणयोनिका कथन करते हैं—

सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद ये संसारी जीवोंके जन्मके भेद हैं। 'सं' अर्थात् समस्त रूपसे 'मूर्छनं' अर्थात् उत्पन्न होनेवाले जीवके उपकारी शरीराकार रूपसे परिणमने योग्य पुद्गल स्कन्धोंके स्वयं एकत्र होनेको सम्मूर्छन कहते हैं। उत्पन्न होनेवाले जीवके द्वारा रज और वीर्यरूप पिण्डका 'गरण' अर्थात् शरीररूपसे ग्रहण करना गर्भ है। उपपादन अर्थात् संपुट शय्या, उष्ट्र आदि मुखके आकारवाले उत्पत्तिस्थानोंमें लघु अन्तर्मुहूर्त कालमें ही जीवका उत्पन्न होना उपपाद है।

विशेषार्थ—संसारी जीवोंके जन्मका अर्थ है—पूर्वभवके शरीरको छोड़कर उत्तरभवके शरीरको ग्रहण करना। यद्यपि परमार्थसे तो विग्रहगतिके प्रथम समयमें ही उत्तरभवकी

जीवानुग्राहकजीवोपकारकशरीराकारपरिणमनेन पुद्गलस्कंधानां समुच्छ्रयणं संमूर्च्छनं। जायमानजीवेन शुक्लशोणितरूपस्य पिंडस्य ग्रहणं शरीरतयोपादानं गर्भः। उपपादनं संपुटशय्योष्ट्रकादिषु लघुनांतर्म्मुहूर्तेनैव जीवस्य जननमुपपादः। एंदितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पवरयोनिगळमत्ते सच्चित्तशीतसंवृतंगळुं सेतरंगळुं मिश्रंगळुमेंदु नवविधमप्पुवु।

सन्मूर्च्छनादिगळगे प्रत्येकं यथासंभवमागि संभविसुवु। चित्तेन चेतनेन सह वर्त्तंत इति सचित्ताः। प्राण्यंतरप्रदेशपरिगृहीतपुद्गलस्कंधा इत्यर्थः। तद्विपरीता अचित्ताः। तदुभयात्मकाः पुद्गला मिश्राः। प्रादुर्भूतशीतस्पर्शाः पुद्गलाः शीताः। अभिव्यक्तोष्णस्पर्शाः पुद्गला उष्णाः। तदुभयात्मकाः पुद्गलाः मिश्राः। दुरुपलक्ष्यो गुप्राकारपुद्गलस्कंधः संवृतः। प्रकटाकार उपलक्षणीयः पुद्गलस्कंधो विवृतः। तदुभयात्मको मिश्रः॥

अनंतरं सन्मूर्च्छनादिगळगे स्वामिनिर्द्देशमं माडिदपरु।

रूपपिण्डस्य ग्रहणं—शरीरतया उपादानं गर्भः। उपपादनं संपुटशय्योष्ट्रमुखाकारादिषु लघुनान्तर्मुहूर्तेनैव जीवस्य जननं उपपादः। इति निरुक्तिसिद्धसंमूर्छिमादिभिस्तद्योनयः जीवशरीरग्रहणाधाराः यथासंभवं सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चेति नवविधा भवन्ति। तासु संमूर्छनादय एव प्रत्येकं यथासंभवं संभवन्ति। चित्तेन चेतनेन सह वर्तते इति सचित्ताः प्राण्यन्तःप्रदेशपरिगृहीतपुद्गलस्कन्धाः इत्यर्थः। तद्विपरीता अचित्ताः। तदुभयात्मका मिश्राः। प्रादुर्भूतशीतस्पर्शाः पुद्गलाः शीताः। अभिव्यक्तोष्णस्पर्शाः पुद्गलाः उष्णाः। तदुभयात्मकाः पुद्गला मिश्राः। दुरुपलक्ष्यो गुप्ताकारपुद्गलस्कन्धः संवृतः। प्रकटाकार उपलक्षणीयः पुद्गलस्कन्धो विवृतः। तदुभयात्मकः पुद्गलस्कन्धो मिश्रः ॥८३॥ अथ संमूर्छनादीनां स्वामिनिर्देशं करोति—

प्रथम पर्याय प्रकट होनेरूप जन्म हो जाता है। क्योंकि पूर्वपर्यायका विनाश और उत्तरपर्यायका उत्पाद एक ही कालमें होता है; तथापि सम्मूर्छन आदि रूपसे पुद्गल पिण्डका ग्रहण उस प्रथम पर्यायमें नहीं होता। इसलिए उसके समीप शरीरग्रहणके प्रथम समयमें पर्यायका उत्पाद ही जन्मके समीप होनेसे उपचारसे जन्म कहा जाता है। अथवा ऋजुगतिकी अपेक्षा उत्तरभवके प्रथम समयमें ही सम्मूर्छन आदि रूपसे शरीरग्रहणसे विशिष्ट उसकी प्रथम पर्यायका उत्पाद और पूर्वभवकी चरम पर्यायका विनाश एक साथ होता है, इसलिए जन्मका लक्षण मुख्य ही है।

इस प्रकार जीवके शरीरग्रहणके आधाररूप योनियाँ यथासम्भव सचित्त, शीत, संवृत, अचित्त, उष्ण, विवृत, और सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृतके भेदसे नौ प्रकारकी होती हैं। उनमें सम्मूर्छन आदि ही प्रत्येक यथायोग्य उत्पन्न होते हैं। चित्त अर्थात् चेतनके साथ जो रहें वे सचित्त हैं अर्थात् प्राणीके अन्तःप्रदेश द्वारा परिगृहीत पुद्गल-स्कन्ध उसका अर्थ है। उससे विपरीतको अचित्त कहते हैं। उभयात्मकको मिश्र कहते हैं। जिन पुद्गलोंमें शीतस्पर्श प्रकट है, वे शीत हैं। जिन पुद्गलोंमें उष्णस्पर्श प्रकट है, वे उष्ण हैं। उभयरूप पुद्गल मिश्र हैं। जो पुद्गल-स्कन्ध देखनेमें नहीं आता, जिसका आकार गुप्त है, वह संवृत है। जो पुद्गल-स्कन्ध प्रकट आकारको लिये है, देखनेमें आता है, वह विवृत्त है। उभयात्मक पुद्गलस्कन्ध मिश्र है ॥८३॥

आगे सम्मूर्छन आदि जन्मोंके स्वामी बतलाते हैं—

---

१. ब °ष्ट्रादिमुखाकारयोर्ल°।

पोतजरायुज अंडजजीवाणं गब्भदेवणिरयाणं ।
उववादं सेसाणं सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ॥८४॥

पोतजरायुजाण्डजजीवानां गर्भः । देवनारकाणामुपपादः शेषाणां संमूर्च्छनं तु निर्दिष्टं ॥ किंचित्परिवरणमंतरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गममात्रेणैव परिस्पंदादिसामर्थ्योपेतः पोतः । जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुस्तस्मिन् जरायौ जाता जरायुजाः । शुक्लशोणित- ५
परिवरणमुपात्तकाठिन्यं नखत्वक्सदृशं परिमंडलमंडं । तस्मिन् जाता अंडजाः । एंदिती पोतादि-
जीवंगळगे गर्भमे जन्ममक्कुं । चतुर्न्निकायदेवर्क्कळिगेयुं नारकर्गेयुं घर्म्मादिभवंगळगुपपादमे
जन्ममक्कुं । शेष जीवंगळगेकेंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियंगळगेयुं वो दो दु केलवु पंचेंद्रियंगळगेयुं
लब्ध्यपर्य्याप्तकमनुष्यर्गेयुं संमूर्च्छनमे जन्ममेंदितु प्रवचनदोळपेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरं सचित्तादियोनिभेदंगळगे संमूर्च्छनादिजन्मभेदंगळोळु संभवासंभवमं तोरल्वेडि १०
गाथासूत्रत्रयावतारं—

उववादे अच्चित्तं गब्भे मिस्सं तु होदि संमुच्छे ।
सच्चित्तं अच्चित्तं मिस्सं च य होदि जोणी हु ॥८५॥

उपपादेऽचित्तं गर्भे मिश्रस्तु भवति संमूर्च्छने । सचित्तोऽचित्तो मिश्रश्च भवति योनिः
खलु ॥ देवनारकसंबंधियप्पुपपाद जन्मभेददोळचित्तमे योनियक्कुं । गर्भजन्मदोळु सचित्तचित्त- १५

किंचित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गममात्रेणैव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेतः पोतः । जालव-
त्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुः, तस्मिन् जातो जरायुजः । शुक्रशोणितपरिवरणं उपात्तकाठिन्यं
नखत्वक्सदृशं परिमण्डलमण्डं तस्मिन् जातोऽण्डजः । एषां जीवानां गर्भ एव जन्म । चतुर्णिकायदेवानां नारकाणां
च घर्मादिभवानामुपपाद एव जन्म । उक्तजीवेभ्यः शेषाणां एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां केषांचित्पञ्चेन्द्रियाणां
लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां च संमूर्च्छनमेव जन्मेति प्रवचने निर्दिष्टं—कथितं ॥८४॥ अथ सचित्तादियोनिभेदानां २०
संमूर्च्छनादिजन्मभेदेषु संभवासंभवं गाथात्रयेण निर्दिशति—

शरीरपर किसी भी प्रकारका किंचित् भी आवरण न हो, शरीरके अवयव सम्पूर्ण हों, और योनिसे निकलते ही चलने-फिरने लगे, ऐसे जीवको पोत कहते हैं। रुधिर और मांसका विस्ताररूप जो प्राणीके शरीरके चारों ओर जालकी तरह आवरण होता है, वह जरायु है। उससे जो जीव पैदा होता है, वह जरायुज है। रज और वीर्यका जो आवरण २५
नखके चमड़ेकी तरह कठोरताको लिये हुए गोलाकार होता है उसे अण्डा कहते हैं, उससे जिसका जन्म हो, वह जीव अण्डज है। इन पोत, जरायुज और अण्डज जीवोंका गर्भजन्म ही होता है। चार निकायके देवोंका और घर्मा आदि नरकोंमें पैदा होनेवाले नारकियोंका उपपाद जन्म ही होता है। उक्त जीवोंसे शेष एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवोंका, किन्हीं पंचेन्द्रियोंका, और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका सम्मूर्छन ही जन्म होता है; ३०
ऐसा आगममें कहा है ॥८४॥

आगे सचित्त आदि योनिभेदोंका सम्मूर्छन आदि जन्मके भेदोंमें होना या न होना तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. क शेषंगळ्गे उक्त जीवंगळ्गेरगागि उलिदेल्लाजीवं ° ।

मिश्रमे पुद्गलस्कंधं योनियक्कुं । संमूर्च्छनजन्मदोळु तु मत्ते सचित्तमुमचित्तमुं तदुभयात्मकमुमेंदी त्रिविधयोनिगळक्कुं ॥

उववादे सीदुसणं सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि ।
उववादेयक्खेसु य संउडवियलेसु विउलं तु ॥८६॥

उपपादे शीतोष्णौ शेषे शीतोष्णमिश्रकं भवति । उपपादे एकाक्षे च संवृतो विकलेषु विवृतं तु ॥ उपपादजन्मदोळु शीतमुमुष्णमुमेरडुं योनिगळु । शेषगर्भजन्मदोळं संमूर्च्छनजन्मदोळं प्रत्येकं शीतमुमुष्णमुं मिश्रमुमेंबी मूरु मूरुं योनिगळक्कुं । तेजस्कायिकंगळोळुष्णयोनियक्कुमुपपादजन्मरोळमेकेंद्रियंगळोळं संवृतमे योनियक्कुं । विकलेंद्रियंगळोळु विवृतयोनियेयक्कुं ॥

गब्भजजीवाणं पुण मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु ।
सम्मुच्छणपंचक्खे वियलं वा विउडजोणी हु ॥८७॥

गर्भजजीवानां पुनर्मिश्रो नियमेन भवति योनिः खलु । संमूर्च्छनपंचाक्षे विकलवद्विवृतो योनिः खलु ॥ गर्भजजीवंगळगे मत्ते संवृतविवृतंगळिंदं मिश्रयोनियेयक्कुं । सम्मूर्च्छनजपंचेंद्रियंगळोळु विकलेंद्रियदोळेन्तन्ते विवृतयोनियक्कुं ॥

देवनारकसंबन्ध्युपपादजन्मभेदे अचित्तैव योनिः स्यात् । गर्भजन्मनि सचित्ताचित्तमिश्र एव पुद्गलस्कन्धो योनिः स्यात् । संमूर्छनजन्मनि तु पुनः सचित्ता अचित्ता उभया चेति त्रिविधा योनिर्भवति ॥८५॥

उपपादजन्मनि शीतोष्णे द्वे योनी स्यातां । शेषे गर्भजन्मनि संमूर्छनजन्मनि च प्रत्येकं शीता उष्णा मिश्रा चेति तिस्रो योनयः स्युः । (तेजस्कायिकेषु उष्णैव योनिः स्यात्) उपपादजेषु एकेन्द्रियेषु च संवृतैव योनिः स्यात् । विकलेन्द्रियेषु विवृतैव योनिः स्यात् ॥८६॥

गर्भजजीवानां पुनः संवृतविवृताभ्यां मिश्रा एव योनिः स्यात् । संमूर्छनजपञ्चेन्द्रियेषु विकलेन्द्रियव-

---

देव-नारकी सम्बन्धी उपपाद जन्मभेदमें अचित्त ही योनि होती है । गर्भजन्ममें सचित्त और अचित्तका मिश्र ही पुद्गल-स्कन्धरूप योनि होती है । अर्थात् माताके उदरमें रज और वीर्य अचित्त होता है और उसका मिश्रण सचित्त आत्माके साथ होनेसे मिश्ररूप सचित्ताचित्त योनि होती है । सम्मूर्छन जन्ममें सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त तीन प्रकारकी योनियाँ होती हैं । क्योंकि गर्भ और उपपादसे रहित प्रदेशोंमें कहीं सचित्त, कहीं अचित्त और कहीं सचित्ताचित्त पुद्गलस्कन्धमें जीवोंकी उत्पत्ति सम्भव है ॥८५॥

उपपाद जन्ममें शीत और उष्ण ये दो योनि होती हैं । क्योंकि रत्नप्रभासे लेकर धूमप्रभाके तीन चतुर्थ भाग पर्यन्त बिलोंमें उष्ण स्पर्श ही होता है । और धूमप्रभाके चतुर्थ भागसे लेकर महातमःप्रभा पर्यन्त बिलोंमें शीत स्पर्श ही होता है । शेष गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्ममें-से प्रत्येकमें शीत, उष्ण और मिश्र तीनों योनियाँ होती हैं । किन्तु तेजस्कायिक जीवोंमें उष्ण ही योनि होती है । उपपाद जन्मवालोंमें और एकेन्द्रियोंमें संवृत ही योनि होती है । तथा विकलेन्द्रियोंमें विवृत योनि ही होती है ॥८६॥

गर्भज जीवोंके संवृत और विवृतके मिश्ररूप योनि होती है, क्योंकि पुरुषके शरीरसे निकला वीर्य विवृतरूप और स्त्रीका रज संवृतरूप होनेसे दोनोंके मेलसे मिश्र योनि होती है । सम्मूर्छन पंचेन्द्रियोंमें विकलेन्द्रियोंकी तरह विवृत योनि ही होती है ॥८७॥

---

१. ब विकलत्रयेषु ।

तदनंतरं पूर्व्वोक्तगुणयोन्युपसंहारपुरस्सरमागि योनिप्रभेदसंख्योद्दिश्यमं पेळदपं।

सामण्णेण य एवं णव जोणीओ हवंति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी जोणीओ होंति णियमेण ॥८८॥

सामान्येनैवं नवयोनयो भवन्ति विस्तारे। लक्षाणां चतुरशीतियोनयो भवन्ति नियमेन॥

यितुक्तप्रकारदिंदं सामान्यदिं संक्षेपदिनों भत्तु योनिगळप्पुवु। विस्तरदोळु चतुरशीतिलक्ष- ५
योनिगळप्पुवु नियमदिंदं॥

अनंतरमा योनिगळ विस्तरसंख्याविषयमं तोरल्वेडि मुंदण सूत्रावतारं।

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुए सयसहस्सा ॥८९॥

नित्येतरधातुसप्तकं तरु दश विकलेंद्रियेषु षट् चैव। सुरनिरयतिर्य्यक्चत्वारि मनुष्ये १०
चतुर्दशशतसहस्राणि॥

द्विवृतैव योनिः स्यात् ॥८७॥ अथ योनिप्रभेदसंख्योद्देशपुरस्सरमुपसंहारमाह—

एवं—उक्तप्रकारेण, सामान्येन—संक्षेपेण, नव योनयो भवन्ति। विस्तरेण तु चतुरशीतिलक्षयोनयो भवन्ति नियमेन ॥८८॥ अथ तासां योनीनां विस्तरसंख्यां दर्शयति—

नित्यनिगोदेतरनिगोदपृथिवीकायिकाप्कायादिकतेजस्कायिकवायुकायिकेषु एतेषु षट्सु अपि स्थानेषु १५
प्रत्येकं सप्त-सप्त लक्ष योनयो भवन्ति। (मिलित्वा द्वाचत्वारिंशल्लक्षाणि भवन्ति)। तरुषु प्रत्येकवनस्पति-
कायिकेषु दशलक्ष योनयो भवन्ति। विकलेन्द्रियरूपद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं द्वे-द्वे लक्ष योनयो भवन्ति, (मिलित्वा
षट्)। सुरेषु नारकेषु तिर्यग्पञ्चेन्द्रियेषु च प्रत्येकं चतुश्चतुर्लक्ष योनयो भवन्ति। (मिलित्वा द्वादशलक्षाणि)।
मनुष्येषु चतुर्दशलक्षयोनयो भवन्ति। एवं समस्तसंसारिजीवानां योनयः सर्वा मिलित्वा चतुरशीतिलक्षसंख्या
प्रतिपत्तव्या ॥८९॥ अथ गत्याश्रयेण जन्म गाथाद्वयेनाह— २०

आगे योनिके प्रभेदोंकी संख्याका निर्देश करते हुए कथनका उपसंहार करते हैं—

उक्त प्रकारसे संक्षेपसे नौ योनियाँ होती हैं। विस्तारसे तो चौरासी लाख योनियाँ नियमसे होती हैं ॥८८॥

आगे उन योनियोंकी विस्तारसे संख्या कहते हैं—

नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक इन २५
छहों स्थानोंमें-से प्रत्येकमें सात-सात लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर बयालीस लाख
होती हैं। तरु अर्थात् प्रत्येक वनस्पतिकायिकोंमें दस लाख योनियाँ होती हैं। विकलेन्द्रिय
रूप दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रियोंमें प्रत्येकमें दो-दो लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर
विकलेन्द्रियोंमें छह लाख योनियाँ होती हैं। देवोंमें, नारकियोंमें और तिर्यंच पंचेन्द्रियोंमें-से
प्रत्येकमें चार-चार लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर बारह लाख योनि होती हैं। ३०
मनुष्योंमें चौदह लाख योनियाँ होती हैं। इस प्रकार समस्त संसारी जीवोंकी सब योनियाँ
मिलकर चौरासी लाख होती हैं ॥८९॥

आगे दो गाथाओंसे गतिके आश्रयसे जन्मका कथन करते हैं—

---

१. म तदनन्तरं योनिप्रभेदसंख्योद्देशपुरःसरमागियुपसंहारमं पेल्दपं।

नित्यनिगोदंगळोळं इतरनिगोदंगळोळं पृथ्वीकायिकंगळोळं अप्कायिकंगळोळं तेजस्कायिकंगळोळं वायुकायिकंगळोळमिन्तु आरेडेयोळं सप्त सप्त लक्ष योनिगळप्पुवु। तरुगळोळ् प्रत्येकवनस्पतिगळोळु दशलक्षयोनिगळप्पुवु। विकलेंद्रियंगळप्प द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळोळु प्रत्येकमरडरडु लक्षयोनिगळागलंतवरोळारु लक्षयोनिगळप्पुवु। सुररोळं नारकरोळं तिर्य्यंपंचेंद्रियंगळोळं प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु लक्षयोनिगळप्पुवु। मनुष्यरोळु चतुर्द्दशलक्षयोनिगळप्पुवु विन्तु समस्तसंसारिजीवंगळ योनिगळनितुं कूडि चतुरशीतिलक्षसंख्येगळु प्रतिपत्तव्यंगळप्पुवु ॥

अनंतरं गत्याद्याश्रयदिंदं जन्मावधारणनिमित्तमागि गाथाद्वयमं पेळदपरु।

उववादा सुरणिरया गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा ॥९०॥

उपपादजाः सुरनारकाः गर्भजसंमूर्च्छिमाः खलु नरतिर्यंञ्चः। संमूर्च्छिमा मनुष्या अपर्याप्ता एकविकलाक्षाः ॥ उपपादजरु सुररु नारकरप्परु। गब्भंजरुं संमूर्च्छिमरुं खलु स्फुटमागि यथासंभवं मनुष्यरुं तिरियंचरुगळेयप्परु। केवलं संमूर्च्छिमरे लब्ध्यपर्य्याप्तकमनुष्यरुमेकेंद्रियंगळु विकलेंद्रियंगळुमक्कुं ॥

पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसंमुच्छिमा तिरिक्खाणं।
भोगभुमा गब्भभवा णरपुण्णा गब्भजा चेव ॥९१॥

पंचेंद्रियतिर्यञ्चो गर्भजसंमूर्च्छिमास्तिरश्चां। भोगभौमा गर्भभवा नरपूर्णा गर्भजाश्चैव ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचरु गब्भंजरुं संमूर्च्छिमरुमप्परु। तिर्य्यंचरोळगे भोगभूमितिर्य्यंचरु गर्भभवरेयप्परु। नरपर्य्याप्तकरु गब्भंजरुगळेयप्परु ॥ अनंतरमौपपादिकादिगळोळु लब्ध्यपर्य्याप्तकत्वसंभवासंभवमं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं निरूपिसिदपरु।

उववादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण।
णरसंमुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥९२॥

उपपादगर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका न नियमेन। नरसंमूर्च्छिमजीवा लब्ध्यपर्याप्तका एव ॥

उपपादजाः सुरा नारकाश्च भवन्ति। गर्भजाः संमूर्छिमाश्च खलु स्फुटं यथासंभवं मनुष्याः तिर्यञ्च एव भवन्ति। केवलसंमूर्छिमा एव लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्या एकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाश्च भवन्ति ॥९०॥

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो गर्भजाः संमूर्छिमाश्च भवन्ति। तिर्यक्षु भोगभूमिजा गर्भभवा एव। नरपर्याप्तका गर्भजा एव भवन्ति ॥९१॥ अथौपपादिकादिषु लब्ध्यपर्याप्तकत्वस्य संभवासंभवं कथयति—

देव और नारकी उपपाद जन्मवाले होते हैं। गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्मवाले यथासम्भव मनुष्य और तिर्यंच ही होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय केवल सम्मूर्छन ही होते हैं ॥९०॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और सम्मूर्छन होते हैं। तिर्यंचोंमें भोगभूमि या तिर्यंच गर्भज ही होते हैं। तथा पर्याप्तक मनुष्य गर्भज ही होते हैं ॥९१॥

आगे औपपादिक आदिमें लब्ध्यपर्याप्तकपनेका होना और न होना बतलाते हैं—

उपपाद जन्मवालोंमें लब्ध्यपर्याप्तक नियमसे नहीं होते। तथा सम्मूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त ही होते हैं ॥९२॥

औपपादिकरोळं गर्भजरोळमुं लब्ध्यपर्य्याप्तकरिल्लमिंदमिल्ल। संमूर्च्छिममनुष्यरु लब्ध्यपर्य्याप्तकरेयप्परु ॥

अनंतरं नरकादिगतिगळोळु वेदावधारणनिमित्तं पेळ्दपं—

णेरइया खलु संढा णरतिरिए तिण्णि होंति संमुच्छा ।
संढा सुरभोगभुमा पुरिसित्थीवेदगा चेव ॥९३॥

नारकाः खलु षण्डा नरतिरश्चि त्रयो भवन्ति संमूर्च्छिमाः । षण्डाः सुरभोगभौमाः पुरुषस्त्रीवेदकाश्चैव ॥

नारकरनिबरुं षंडरु । मनुष्यतिर्य्यंचरुगळोळु स्त्रीपुन्नपुंसकवेदत्रयोदयमुमुंटु । संमूर्च्छिमतिर्य्यग्मनुष्यरेल्लरुं षंडरेयप्परु । आ संमूर्च्छिममनुष्यरु स्त्रीजनयोनिगळोळं तत्कक्षस्तनमूलद बेवर्गळोळं चक्रवर्तिय पडेबिट्टल्लिय-मूत्रपुरीषाद्यशुचिस्थानंगळोळं पुट्टुवरु । सुररुं भोगभूमिजरुं पुरुषस्त्रीवेदनियतोदयरे नियमदिंदप्परु । इंतु त्रिप्रकारमप्पयोन्यधिकारं जीवसमासंगळोळे पेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरं शरीरावगाहनाश्रयदिंदं जीवसमासंगळं पेळ्वातंमोदलोळनेवरं सर्व्वजघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनस्वामिनिर्देशार्थमिदं पेळ्दपं ।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्य जादस्स तदियसमयम्मि ।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥९४॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये । अङ्गुलाऽसंख्यभागं जघन्यमुत्कृष्टकं भत्स्ये ॥

औपपादिकेषु गर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका नियमेन न सन्ति । संमूर्छिममनुष्या लब्ध्यपर्याप्ता एव भवन्ति ॥९२॥ अथ नरकादिगतिषु वेदानवधारयति—

नारकाः सर्वेऽपि खलु नियमेन षण्ढाः—द्रव्यतो भावतश्च नपुंसकवेदा एव भवन्ति । मनुष्यतिर्यक्षु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयं स्यात् । संमूर्छिमतिर्यग्मनुष्या षण्ढवेदा एव भवन्ति । ते संमूर्छिममनुष्यास्तु स्त्रीयोनितत्कक्षास्तनमूलान्तरालेषु चक्रवर्तिनः पट्टमहिषीं विना मूत्रपुरीषाद्यशुचिस्थानेषु चोत्पद्यन्ते । सुरा भोगभूमिजाश्च पुरुषस्त्रीवेदनियतोदया एव नियमेन भवन्ति ॥९३॥ इति त्रिविधो योन्यधिकारो जीवसमासेषु कथितः । अथ शरीरावगाहनाश्रयेण जीवसमासान् वक्तुमनाः प्रथमं तत्सर्वजघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनस्वामिनो निर्दिशति—

आगे नरकादि गतियोंमें वेदोंका निर्णय करते हैं—

नारकी सब ही नियमसे—द्रव्यरूपसे और भावरूपसे भी नपुंसक वेदवाले ही होते हैं। मनुष्य और तिर्यंचोंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद तीनों होते हैं। सम्मूर्छन तिर्यंच और सम्मूर्छन मनुष्य नपुंसकवेदवाले ही होते हैं। वे सम्मूर्छन मनुष्य स्त्रीकी योनि, काँख, स्तनोंके मूलमें तथा चक्रवर्तीकी पट्टरानीके सिवाय मूत्र, विष्टा आदि अशुचि स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं। देव तथा भोगभूमिया नियमसे पुरुषवेद और स्त्रीवेदके नियत उदयवाले होते हैं ॥९३॥

इस प्रकार जीवसमासोंमें तीन प्रकारकी योनियोंका अधिकार कहा।

आगे शरीरकी अवगाहनाके आश्रयसे जीवसमासोंको कहनेका भाव मनमें रखकर प्रथम सबसे जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके स्वामियोंको कहते हैं—

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन तद्भवदोळु ऋजुगतियिंदं पुट्टिद तृतीयसमयदोळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशावगाहमनुळ्ळशरीरं सर्वावगाहविकल्पंगळं नोडल्जघन्यमक्कुं। स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्त्ति महामत्स्यदोळुत्कृष्टावगाहंगळेल्लमं नोडल्सर्वोत्कृष्टावगाहमनुळ्ळ शरीरमक्कुमुत्पन्नतृतीयसमयदोळे सर्व्वजघन्यावगाहनमनुळ्ळ शरीरमेंदितेकेंदोडे उत्पन्नप्रथमसमयदोळु निगोदजीवशरीरमायतचतुरस्रमक्कुं तद्द्वितीयसमयदोळु समचतुरस्रमक्कुं। तृतीयसमयदोळु मत्ते कोणापनयनदिंद वृत्तत्वदिंदमा प्रथमद्वितीयसमयंगळेरडु मवगाहंगळं नोडलल्पीयस्त्वं संभविसुगुमेंदितु तृतीयसमयदोळे सर्व्वजघन्यमप्प शरीरावगाहनमं पुट्टुगुं। विग्रहगतियोळु योगवृद्धियुळ्ळदरिंदं अवगाहवृद्धिसंभविसुगुमदरिंदं ऋजुगत्युत्पन्नं गळेंदितु पेळल्पट्टुदु। सर्व्वजघन्यशरीरावगाहदोळु घनांगुलक्के भागहारंगळ्पल्यासंख्यातैकभागंगळेकान्नविंशतिसंख्याप्रमितंगळ्क्कुमावल्यसंख्यातैकभागंगळोंभत्तु। रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागंगळ्द्वाविंशतिप्रमितंगळक्कुं। संख्यात-

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य तद्भवे ऋजुगत्योत्पन्नस्य तृतीयसमये घनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशावगाहविशिष्टशरीरं सर्वावगाहविकल्पेभ्यो जघन्यं भवति स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्तिमहामत्स्ये उत्कृष्टावगाहेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वोत्कृष्टावगाहविशिष्टं शरीरं भवति। ननूत्पन्नतृतीयसमये एव सर्वजघन्यावगाहनं कथं संभवेत् ? इति चेत् तत्प्रथमसमये निगोदजीवशरीरस्यायतचतुरस्रत्वात् द्वितीयसमये समचतुरस्रत्वात् तृतीयसमये कोणापनयनेन वृत्तत्वात् तदैव तदवगाहनस्याल्पत्वसंभवात्। तर्हि ऋजुगत्योत्पन्नस्यैव कथमुक्तं विग्रहगतौ योगवृद्धियुक्तत्वेन तदवगाहवृद्धिप्रसङ्गात्। तत्सर्वजघन्यावगाहे घनाङ्गुलस्य भागहाराः पल्यासंख्या-

जो सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव उस भवमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुआ है, उसका तीसरे समयमें घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र प्रदेशोंकी अवगाहनासे विशिष्ट शरीर समस्त अवगाहनाके विकल्पोंसे जघन्य होता है। स्वयम्भूरमण समुद्रके मध्यवर्ती महामत्स्यके समस्त उत्कृष्ट अवगाहनाओंसे सर्वोत्कृष्ट अवगाहनासे विशिष्ट शरीर होता है।

शंका—उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें ही सबसे जघन्य अवगाहना कैसे होती है ?

समाधान—जन्म लेनेके प्रथम समयमें निगोदिया जीवका शरीर आयतचतुरस्र अर्थात् लम्बा अधिक चौड़ा कम होता है। दूसरे समयमें समचतुरस्र अर्थात् समान लम्बा चौड़ा चौकोर होता है। तीसरे समयमें कोने दूर हो जानेसे गोल आकार होता है। उसी समय उसकी अवगाहनाका प्रमाण अल्प होता है।

शंका—तो ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवके ही जघन्य अवगाहना क्यों कही ?

समाधान—विग्रहगतिमें योगकी वृद्धिसे युक्त होनेसे उसकी अवगाहनामें वृद्धिका प्रसंग आता है।

जघन्य अवगाहनाका प्रमाण लानेके लिए घनांगुलके भागहार उन्नीस पल्यके असंख्यातवें भाग, नौ आवलीका असंख्यातवाँ भाग, बाईस एक अधिक आवलीका असंख्यातवाँ भाग, और नौसंख्यात है अर्थात् घनांगुलमें इतनी-इतनी बार इन राशियोंसे भाग देना है। और गुणकार बाईस आवलीके असंख्यातवें भाग हैं अर्थात् बाईस बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करना है।

१. म °कापल्यसं °।

रूपवारगळोंभत्तु । मत्तं गुणकारंगळावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळ्द्वाविंशतिप्रमितंगळक्कुमदके
६।८।२२
ə
संदृष्टि प १९।८।८।२२।१।१९ अनंतरमिंद्रियाश्रयदिंदमुत्कृष्टावगाहंगळ प्रमाण तत्स्वामिनिर्द्देश निमित्तमी
ə
सूत्रमं पेळ्दपरु—

साहिय सहस्समेक्कं बारं कोसूणमेक्कमेकं च ।
जोयणसहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे ॥९५॥

साधिकसहस्रमेकं द्वादशक्रोशोनमेकं च । यंजनसहस्रदैर्घ्यं पद्मे विकले महामत्स्ये ॥

एकेंद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपमध्यवर्त्तिस्वयंप्रभाचलापरभागस्थितक्षेत्रोत्पन्नपद्मदोळु साधिकसहस्रयोजनायाममुमेकयोजनव्यासमुमुत्कृष्टावगाहमक्कु मिदक्के "वासो तिगुणो परिही" एंदु व्याससुं १ । त्रिगुणं माडलु १।३ । परिधियक्कुं "व्यासचतुर्थाहतस्तु क्षेत्रफल" मेंदु
१ १।३।१
व्यासचतुर्थांशदिंदं ४ परिधियं गुणिसिदोडे क्षेत्रफलमक्कुं ४ क्षेत्रफलं वेदगुणं खातफलं

तैकभागा एकान्नविंशतिः । आवल्यसंख्यातैकभागा नव । रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागा द्वाविंशतिः संख्याता नव । गुणकारास्तु आवल्यसंख्यातैकभागा द्वाविंशतिः । संदृष्टिः ६।८।२२

ə
प।१९।८।९।८।२२।१।१९
ə ə ə ॥९४॥ अथेन्द्रियाश्रयेणोत्कृष्टावगाहानां प्रमाणं तत्स्वामिनश्च निर्दिशति—

एकेन्द्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपमध्यवर्तिस्वयंप्रभाचलापरभागस्थितक्षेत्रोत्पन्नपद्मे साधिकसहस्रयोजनायामैकयोजनव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति अस्य च व्यासः (यो०) १ । त्रिगुणः १ । ३ परिधिः । अयं च व्यास-

विशेषार्थ—इन सब भागहारोंको परस्परमें गुणा करनेसे तो सब भागहारोंका प्रमाण आ जायेगा। और बाईस जगह आवलीके असंख्यातवें भागोंको रखकर परस्पर गुणा करनेसे गुणकारका प्रमाण आ जायेगा। घनांगुलमें भागहारका भाग देकर और गुणकारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना ही जघन्य अवगाहनाके प्रदेशोंका परिमाण जानना ॥९४॥

आगे इन्द्रियोंके आश्रयसे उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण और उसके स्वामियोंका कथन करते हैं—

एकेन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण द्वीपके मध्यवर्ती स्वयंप्रभाचलके अपर भागमें जो कर्मभूमिरूप क्षेत्र है, उस क्षेत्रमें उत्पन्न हुए कमलमें कुछ अधिक एक हजार योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा उत्कृष्ट अवगाह है अर्थात् वह कमल इतना लम्बा-चौड़ा है। उसका क्षेत्रफल कहते हैं—

कमल गोलाकार है। और गोलाकारका क्षेत्रफल लानेके लिए व्याससे तीन गुनी परिधि होती है। परिधिको व्यासके चतुर्थांशसे गुणा करनेपर प्रतररूप क्षेत्रफल होता है। और उसे ऊँचाईसे गुणा करनेपर घनक्षेत्रफल या खातफल होता है। वही यहाँ इष्ट है। सो कमलका व्यास एक योजन, उसको तीनसे गुणा करनेपर परिधि तीन योजन होती है।

१. म °णसमुद्रम° ।

भवति सव्वत्रमेंदा क्षेत्रफलमं वेदिर्यिदं गुणियिसिदोडे खातफलमक्कुं १।३।१।१०००/४ इदनपर्वर्त्तिसि गुणियिसिदोडे घनफलमेनळु नूरैवत्तुयोजनप्रमाणक्कुं ७५०। द्वींद्रियंगळोळु तत्स्वयंभूरमणसमुद्रवर्त्ति शंखदोळु द्वादशयोजनाययमुं पंचचतुर्त्थांशप्रमितोत्सेधमुं ४/५ चतुर्योजनमुखव्याससमु ४। मुत्कृष्टावगाहमक्कुमिदक्के :—

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतं। द्विगुणं चतुर्विभक्तं पंचगुणं नाभिसहितफलं॥

एंदु व्यासमं १२। तावत्कृत्वा अनितने माडि १२।१२ वदन ४। दल २। ऊनं १४२ मु ४। अर्द्ध २। वर्ग।४। युतं १४६। द्विगुणं १४६।२। चतुर्व्विभक्तं १४६।२/४ पंचगुणं १४६।५।२/४ नाभिसहितफलमेंदु इदनपर्वर्त्तिसि गुणिसिद घनफलयोजनंगळु ३६५ अप्पुवु। त्रींद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपापरभाग-वर्त्तिकर्म्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रदोळुरक्तवृश्चिकजीवनोळुयोजनत्रिचतुर्भागंगळायाममुं ३/४ तदष्टमांश-

---

चतुर्थ्या १/४ हृतः १।३।१/४ क्षेत्रफलं। तच्च वेधेन १००० चतुर्भिरपवर्तितेन गुणितं योजनात्मकं खातफल-मेतावद्भवति ७५०। द्वीन्द्रियेषु तत्स्वयंभूरमणसमुद्रवर्तिशङ्खे द्वादशयोजनायामयोजनपञ्चचतुर्थांशोत्सेध ५/४ चतुर्यो-जनमुखव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति। अस्य च व्यासः १२ तावद्गुणितः १४४ वदन ४ दल २ ऊन १४२ मुखा-र्द्धवर्ग ४ युतः १४६ द्विगुणः २९२ चतुर्भिर्भक्तः ७३ पञ्चगुणः ३६५ शङ्खखातफलं। त्रीन्द्रियेषु स्वयंभूर-मणद्वीपापरभागवर्तिकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रे रक्तवृश्चिकजीवे योजनत्रिचतुर्भागायाम ३/४ तदष्टमांशव्यास ३/३२ तदर्द्धोत्सेध ३/६४ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च भुजकोटिवधात् प्रजायते क्षेत्रफलं ३/४ ३/३२ तच्च वेधगुणं

उसको व्यासके चौथे भाग एक योजनके चतुर्थांशसे गुणा करनेपर प्रतर क्षेत्रफल १×३×३/४ पौन योजन होता है। उसे कमलके वेध एक हजार योजनसे गुणा करनेपर साढ़े सात सौ (७५०) योजन खातफल होता है। दोइन्द्रियोंमें उस स्वयम्भूरमण समुद्रवर्ती शंखमें बारह योजन लम्बा, पाँच योजनके चार भाग प्रमाण ऊँचा, मुखमें चार योजनका व्यासवाला अवगाह है अर्थात् वह शंख इतना लम्बा-ऊँचा है। इसका खातफल लानेके लिए व्यासको व्याससे गुणा करके, उसमें मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, उसमें मुखके आधेका वर्ग जोड़कर उसको दोसे गुणा करो, चारका भाग दो फिर पाँचसे गुणा करो तो शंखका खातफल आता है। सो शंखके व्यास बारह योजनको बारहसे गुणा करनेपर १२×१२=१४४ (एक सौ चवालीस) होते हैं। उसमें मुखका आधा प्रमाण दो घटानेपर एक सौ बयालीस रहे। इसमें मुखके आधे प्रमाणका वर्ग चार जोड़नेपर एक सौ छियालीस हुए। इसको दूना करनेपर दो सौ बानवे हुए। इसमें चारका भाग देनेपर तिहत्तर रहे। तिहत्तरमें पाँचसे गुणा करनेपर तीन सौ पैंसठ योजन प्रमाण शंखका क्षेत्रफल होता है। तेइन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण-द्वीपके अपर भागमें कर्मभूमिसे सम्बन्धित क्षेत्रमें जो रक्त बिच्छू है, उसका अवगाह एक

३ ३
व्याससुं ४।८ तदर्द्धोत्सेधमुं ४।८।२ मुत्कृष्टावगाहमक्कुमिल्लि भुजकोटिवधात्प्रजायते क्षेत्रफलमें दितु
३।३ ३।३
४।३२ क्षेत्रफलमिदं वेदगुणं खादफलं होदि सव्वत्थ । एंदा क्षेत्रफलमुं ४।३२ वेदेयिंदं गुणियिसुत्ति-
३।३।३ २७
रलु ४।३२।६४ घनफलमक्कुं ८१९२ चतुरिंद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागकर्म्मभूमिप्रति-
३ १
बद्धक्षेत्रवर्त्तिभ्रमरनोळेकयोजनायाममुं १। तत्त्रिचतुर्भागव्याससु ४ मर्द्धयोजनोत्सेधमु २ मुत्कृ-
३
ष्टावगाहमक्कुमिल्लियुं भुजकोटीत्यादिसूत्रानीत घनफलं ८ व्यष्टमभागयोजन प्रमाणमक्कुं । पंचेंद्रि- ५
यंगळोळु स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्त्तिमहामत्स्यदोळु सहस्रयोजनायाममुं पंचशतयोजनव्याससुं
पंचाशद्द्विशतयोजनोत्सेधमुमुत्कृष्टावगाहमक्कुमिल्लि भुजकोटीत्यादि सूत्रानीतघनफलं ।
१२५०००००० । सासिरदिन्नूरैवत्तुलक्षयोजनंगळक्कुं । ई पद्मादिगळगे प्रदेशीकृतघनफलंगळु
यथाक्रमदिंदं संख्यातघनांगुलंगळगी प्रकारंगळिदिप्पुवु ।

३ ३ ३ घनफलं भवति २७ । चतुरिन्द्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्र- १०
४। ३२। ६४ ८१९२
वर्तिभ्रमरे एकयोजनायामतत्त्रिचतुर्भागव्यास ३ अर्धयोजनोत्सेध १ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति । अस्य च
४ २
भुजकोटीत्यादिनानीतघनफलं ३ योजनव्यष्टमभागो भवति । पञ्चेन्द्रियेषु स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्ति-
८
महामत्स्ये सहस्रयोजनायामपञ्चशतयोजनव्यासपञ्चाशदग्रद्विशतयोजनोत्सेधोत्कृष्टावगाहोऽस्ति । अस्य च भुज-
कोटीत्यादिनानीतघनफलं १२५००००००० सार्धद्वादशकोटियोजनमात्रं भवति । एतान्युक्तघनफलानि प्रदेशी- १५

योजनका तीन चौथा भाग $\frac{3}{4}$ प्रमाण लम्बा, लम्बाईके आठवें भाग $\frac{3}{32}$ चौड़ा और चौड़ाईसे आधा $\frac{3}{64}$ ऊँचा है। यह क्षेत्र आयत चतुरस्र अर्थात् लम्बाई लिये चौकोर है। इसलिए इसका प्रतर क्षेत्रफल भुजकोटिवध इत्यादि सूत्रके अनुसार लाया जाता है। लम्बाई-चौड़ाईमें-से एकका नाम भुज और एकका नाम कोटि है। इनका वध अर्थात् गुणा करनेसे प्रतर क्षेत्रफल होता है। सो यहाँ लम्बाई $\frac{3}{4}$, चौड़ाई $\frac{3}{32}$ इनको परस्परमें गुणा करने पर $\frac{3}{4} \times \frac{3}{32} = \frac{9}{128}$ २० हुआ। इसको ऊँचाई $\frac{3}{64}$ से गुणा करनेपर सत्ताईस योजनका इक्यासी सौ बानवेवाँ भाग प्रमाण $\frac{27}{8192}$ रक्तविच्छुका घनक्षेत्रफल होता है। चतुरिन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमणद्वीपके परले भागमें कर्मभूमि सम्बन्धी क्षेत्रमें भ्रमर होता है। उसका उत्कृष्ट अवगाह एक योजन लम्बा, पौन योजन चौड़ा और आधा योजन ऊँचा है। 'भुजकोटिवध' के अनुसार एक योजन, पौन योजन और आधा योजनको परस्परमें गुणा करनेपर $1 \times \frac{3}{4} \times \frac{1}{2} = \frac{3}{8}$ तीन योजनका २५ आठवाँ भाग घनक्षेत्रफल होता है। पंचेन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण समुद्रके मध्यवर्ती महामत्स्यका अवगाह एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा और दो सौ पचास योजन ऊँचा है। 'भुजकोटि' इत्यादिके अनुसार १०००×५००×२५० तीनोंको परस्परमें गुणा करनेपर साढ़े बारह करोड़ १२५००००००० योजन प्रमाण घनफल होता है। इन उक्त घनफलोंको

एकेंद्रियक्के चतुःसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१११। द्वींद्रियक्के त्रिसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६११। त्रींद्रियक्के एकसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१। चतुरिंद्रियक्के द्विसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६११। पंचेंद्रियक्के पंचसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१११११॥

अनंतरं पर्य्याप्तकद्वींद्रियादिगळ जघन्यावगाहप्रमाणमं तत्स्वामिनिर्देशमुमं माडल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु।

वितिचदुपण्णजहण्णं अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु।
सिच्छयमच्छे बिंदंगुलसंख संखगुणिदक्रमा ॥९६॥

द्वित्रिचतुःपञ्चपूर्णजघन्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासु। सिक्थकमत्स्ये वृंदाङ्गुलसंख्या संख्यगुणितक्रमाणि॥

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरोळु यथासंख्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिका सिक्थकमत्स्यमेंबी जीवंगळोळ जघन्यावगाहमनुळ्ळ शरीरावष्टब्धप्रदेशंगळु वृंदांगुलसंख्यातैकभागं मोदलागिसंख्यातगुणित क्रममक्कुं ६ ६ ६ ६ १११।१११।११।१ इवरायाम व्यासोत्सेधंगळेमगुपदेशमिल्लिल्लि सूत्रोपदिष्टघनफलमने पेळ्दँप॥

कृतानि तदैकेन्द्रियस्य चतुस्संख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६१११। द्वीन्द्रियस्य त्रिसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६११ त्रीन्द्रियस्य एकसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६१। चतुरिन्द्रियस्य द्विसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६११। पञ्चेन्द्रियस्य पञ्चसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं भवति ६१११११॥९५॥ अथ पर्याप्तकद्वीन्द्रियादीनां जघन्यावगाहप्रमाणं तत्स्वामिनिर्देशं चाह—

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकेषु यथासंख्यं अनुंधरीकुन्थुकाणमक्षिकासिक्थकमत्स्यजीवेषु जघन्यावगाहविशिष्टशरीरावष्टब्धप्रदेशप्रमाणं वृन्दाङ्गुलसंख्यातैकभागमादिं कृत्वा संख्यातगुणितक्रमेण भवति। ६ द्वि ६ त्रि ६ च ६ पं। एषामिदानीं व्यासायामोत्सेधानामुपदेशो नास्ति इति घनफल- १ १ १ १ १ १ १ १

प्रदेशरूप करनेपर एकेन्द्रियके चार बार संख्यात गुणित घनांगुलप्रमाण, दोइन्द्रियके तीन बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण, त्रीन्द्रियके एक बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण, चतुरिन्द्रियके दो बार संख्यातगुणित घनांगुल प्रमाण, पंचेन्द्रियके पाँच बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण प्रदेशोंका उत्कृष्ट अवगाह होता है ॥९५॥

आगे पर्याप्त दोइन्द्रिय आदिके जघन्य अवगाहना प्रमाण और उसके स्वामियोंका निर्देश करते हैं—

पर्याप्त दोइन्द्रियोंमें अनुन्धरी, तेइन्द्रियोंमें कुन्थु, चौइन्द्रियोंमें काणमक्षिका और पंचेन्द्रियोंमें तन्दुलमत्स्यकी जघन्य अवगाहनासे विशिष्ट शरीरके द्वारा रोके गये क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घनांगुलके संख्यातवें भागसे लेकर क्रमसे संख्यात गुणा जानना। सो दोइन्द्रियोंमें चार बार, तेइन्द्रियोंमें तीन बार, चौइन्द्रियोंमें दो बार और पंचेन्द्रियोंमें एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल मात्र जघन्य अवगाहनाके प्रदेशोंका प्रमाण होता है। इन

---

१. म °ल्दपं। २. म मिल्लि। ३. म पेल्देवु।

अनंतरं सर्व्वजघन्यशरीरावगाहं मोदल्गोंडुत्कृष्टशरीरावगाहपर्यंतमप्प शरीरावगाहन-विकल्पंगळ्गे स्वाम्यल्पबहुत्वगुणकारक्रमप्रदर्शनार्त्थमागि मुंदण गाथापंचकमं निरूपिसिदपरु।

सुहुमणिवाते आभूवाते आपुणि पदिट्ठिदं इदरं ।
बितिचपमाइल्लाणं एयाराणं तिसेढीय ॥९७॥

सूक्ष्मनिवाते आभूवाते आपुनिप्रतिष्ठितमितरं। द्वित्रिचतुःपञ्चाद्यानामेकादशानां त्रिश्रेणयः॥ इल्लि नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्त्तते एंबी लघुकरणन्यायमनाश्रयिसि नि। वा। ते। एंदित्यादि वर्ण्नगळिंदं निगोदवायुकायिकतेजस्कायिकादिजीवंगळ् पेळल्पट्टुवु।

निगोदवायुतेजोऽब्भूकायिकंगळेंबीवर्ग्दं सूक्ष्मंगळ् प्रथमकोष्ठदोळु मत्तं वायुतेजोऽप्पृथ्वी-कायिकंगळुं निगोदमुं प्रतिष्ठितप्रत्येकमुमेंदी बादरषड्जीवंगळु तिर्य्यक्कागि मुंनिनंते क्रमदिं द्वितीयकोष्ठदोळु पुनरुक्तता सामर्थ्यदिंदमिवु बादरंगळेंदरिवुदु॥ मत्तमप्रतिष्ठित प्रत्येकद्वित्रिचतुः-पंचेंद्रियमेंदी पंचजीवसमासंगळु बादरंगलेयप्पुविवु। तृतीयकोष्ठदोळु ई पेळल्पट्ट पदिनारुं जीव-

मेवोक्तं ॥९६॥ अथ सर्वजघन्यावगाहनादीनां उत्कृष्टावगाहनपर्यन्तानां शरीरावगाहनविकल्पानां स्वाम्य-ल्पबहुत्वगुणकारान् गाथापञ्चकेन प्रदर्शयति—

अत्र नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तत इति लघुकरणन्यायमाश्रित्य निवेत्यादिवर्णैर्निगोदवायुकायिकादयो जीवा गृह्यन्ते। निगोदवायुतेजोऽब्भूकायिकनामानः पञ्च सूक्ष्माः प्रथमकोष्ठे भवन्ति। पुनः वायुतेजोऽपृथ्वी-कायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकनामानः षट् बादरास्तिर्यक्प्रागवत् क्रमेण द्वितीयकोष्ठे भवन्ति। पुनरुक्ततासामर्थ्यात् एते बादरा एवेति ज्ञातव्यं। पुनरप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियनामानः पञ्चबादरास्तृतीयकोष्ठे भवन्ति। एतेषु षोडशसु आद्यानां सूक्ष्मनिगोदादीनां एकादशानामग्रे तिस्रः षट्कतयः कर्तव्याः। तत्रैकैकषट्कतेः कोष्ठद्वयं द्वयं ज्ञातव्यम्।

सबकी चौड़ाई, लम्बाई और ऊँचाईका कथन आजकल यहाँ प्राप्त नहीं है। इसलिए घनफल ही कहा है अर्थात् घनफल करनेपर जो प्रदेशोंका प्रमाण होता है,उसे कहा है ॥९६॥

आगे सबसे जघन्य अवगाहनासे लेकर उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त शरीरकी अवगाहना-के विकल्पोंको उनके स्वामी, अल्पबहुत्व तथा गुणकारोंको पाँच गाथाओंसे कहते हैं—

यहाँ 'नामका एकदेश सम्पूर्ण नाममें प्रवर्तित होता है', इस लघुकरणके न्यायको आश्रय करके 'नि' 'वा' इत्यादि वर्णोंके द्वारा निगोदिया, वायुकायिक आदि जीवोंका ग्रहण होता है। सो यहाँ अवगाहनाके भेद जाननेके लिए एक यन्त्र बनाओ। उसके प्रथम कोठेमें निगोद, वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथिवीकायिक पाँच जीवोंको स्थापित करो। पुनः दूसरे कोठेमें वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक नामक छह बादर जीवोंको पहलेकी तरह तिर्यक् रूपसे स्थापित करो। पहले कोठेमें जो नाम थे,वे ही नाम दूसरे कोठेमें होनेसे यह जान लेना चाहिए कि ये जीव जो दूसरे कोठेमें लिखे गये हैं, बादर ही हैं। पुनः तीसरे कोठेमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नामक पाँच बादर जीवोंको लिखो। इन सोलहमें-से आद्य सूक्ष्मनिगोद आदि ग्यारहकी आगे तीन पंक्तियाँ करनी चाहिए। उनमें-से एक-एक पंक्तिके दो-दो कोठे

१. म दिवु।

समासंगळोळगे मोदल सूक्ष्मनिगोदादि पंनों दुजीवसमासंगळ्मुंदे मूरुपंक्तियागि तिर्यग्रचियिसल्पडुववल्लि यो दो दु पंक्तिग कोष्ठद्वयमुमरियल्पडुगुं ॥

अपदिट्ठिदपत्तेयं बितिचपतिचवि अपदिट्ठिदं सयलं ।
तिचवि अपदिट्ठिदं च य सयलं बादालगुणिदकमा ॥९८॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येको द्वित्रिचतुःपञ्चत्रिचतुर्द्वचप्रतिष्ठिताः सकलः । त्रिचतुर्द्वचप्रतिष्ठिताश्च सकलो द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाः ॥

मत्तमा पंक्तित्रयद मुंदे दशमकोष्ठदोळऽप्रतिष्ठित प्रत्येकमुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवंगळें-बय्दुंजीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवल्लि बळिक्कं पन्नोंदनेय कोष्ठदोळु त्रिचतुर्द्वींद्रियंगळुमप्रतिष्ठित-प्रत्येकमुं सकलेंद्रियमुमेंबीयय्दु जीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवु । मुंदण पन्नेरडनेय कोष्ठदोळु त्रिचतुर्द्वचप्रतिष्ठितसकलेंद्रियगळेंबीयय्दु जीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवी चतुःषष्टिजीवसमासंग-ळवगाहनविकल्पंगळोळुपरितनपंक्तिगत द्वाचत्वारिंशज्जीवसमासंगळवगाहनविकल्पंगळु गुणित-क्रमंगळप्पुवी सामर्थ्यदिदमे केळगणपंक्ति द्वयगतद्वात्रिंशतिजीवसमासंगळवगाहनविकल्पंगळधिक क्रमंगळप्पुवंतल्लदेयुं सेढिगया अहिया तत्थेक्कपडिभागो एंदुं सूचितमाय्तु ॥

पुनस्तत्पङ्क्तित्रयस्याग्रे दशमकोष्ठे अप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियनामानः पञ्चबादरा भवन्ति । तदग्रे एकादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्वीन्द्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकसकलेन्द्रियनामानः पञ्च बादरा भवन्ति । तदग्रे द्वादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्वचप्रतिष्ठितसकलेन्द्रियनामानः पञ्चबादरा भवन्ति । एतेषु चतुष्षष्टिजीवसमासावगाहनविकल्पेषु उपरितन-पङ्क्तिगतद्वाचत्वारिंशज्जीवसमासावगाहनविकल्पा गुणितक्रमा भवन्ति । तदन्ये तु 'सेढिगया अहिया तत्थेक-पडिभागो' इति सूचितं जातम् ॥९८॥

जानने चाहिए । अर्थात् पहले कहे तीसरे कोठेके आगे दो कोठे करो । उनमें जैसे पहले और दूसरे कोठेमें क्रमसे पाँच सूक्ष्म और छह बादर लिखे थे, वैसे ही यहाँ भी लिखना । उन दोनों कोठोंके नीचे एक पंक्तिमें दो कोठे और बनाओ । उनमें भी उसी प्रकार पाँच सूक्ष्म और छह बादर लिखो । उनके भी नीचे दो कोठे और बनाओ । उनमें भी उसी तरह पाँच सूक्ष्म छह बादर लिखो । इस तरह सूक्ष्म निगोद आदि ग्यारह स्थानोंकी दो-दो कोठोंकी तीन पंक्तियाँ हुईं । इस प्रकार ऊपरकी पंक्तिमें पाँच कोठे, और उन पाँच कोठोंमें-से अन्तके दो कोठोंके नीचे दो कोठे और फिर उनके भी नीचे दो कोठे, इस तरह सब मिलकर नौ कोठे हुए ॥९७॥

पुनः उन तीन पंक्तियोंके आगे दसवें कोठेमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय नामक पाँच बादर होते हैं। उसके आगे ग्यारहवें कोठेमें त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पंचेन्द्रिय ये पाँच बादर लिखो । उसके आगे बारहवें कोठेमें त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पंचेन्द्रिय ये पाँच बादर लिखो । इन चौसठ जीवसमासकी अवगाहनाके विकल्पोंमें-से ऊपरकी पंक्तिके आठ कोठोंमें स्थापित बयालीस जीवसमास अवगाहनाके विकल्प गुणितक्रम हैं अर्थात् क्रमसे पूर्वस्थानको विवक्षित गुणकारसे गुणा करनेपर आगेका अवगाहना विकल्प आता है । इन बयालीस स्थानोंसे अतिरिक्त जो नीचेकी दो पंक्तियोंमें स्थापित बाईस स्थान हैं, वे एक प्रतिभाग अधिक हैं । अर्थात् पूर्वस्थानको सम्भावित भागहारका भाग देकर एक भागको उस पूर्वस्थानमें जोड़नेपर आगेका स्थान होता है ॥९८॥

अवरमप्पुण्णं पढमं सोलं पुण पढमबिदिय तदियोली ।
पुण्णिदरपुण्णयाणं जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं ॥९९॥

अवरमपूर्णं प्रथमं षोडश पुनः प्रथमद्वितीयतृतीयपंक्तयः पूर्णेतरपूर्णानां जघन्यमुत्कृष्ट-मुत्कृष्टम् ॥

मोदल मूरुं कोष्ठंगळा पदिनारुं जीवसमासंगळ्गे अपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनंगळे दरियल्प-डुवुवु । मत्तं मेगळिदं प्रथमद्वितीयतृतीयपंक्तिगळोळमो दोंदु पंक्तियोळमेरडेरडु कोष्ठंगळोळं यथाक्रमं पर्य्याप्तापर्य्याप्तलब्धिअपर्य्याप्तत्मकमे ब मूरेप्रकारमप्प जीवंगळ्गे जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टम-वगाहनमक्कुं । प्रथमपंक्तियोळु सूक्ष्मंगळ्गेयुं बादरंगळारुंवितु पन्नो दक्कुं । पर्याप्तजीवसमासंगळ्गे जघन्यावगाहस्थानंगळप्पुवंते द्वितीयपंक्तिगतपन्नो दुमपर्याप्तजीवसमासंगळुत्कृष्टावगाहस्थानंग-ळप्पुवल्लिंगे तृतीयपंक्तिगतपन्नो दुं पर्याप्तजीवसमासंगळुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवु एंदितीविभागं ज्ञातव्यमक्कुं ॥

पुण्णजहण्णं तत्तो वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं ।
बीपुण्णजहण्णोत्तियसंखं संखं गुणं तत्तो ॥१००॥

पूर्णजघन्यं ततो वरमपूर्णस्य पूर्णोत्कृष्टं । द्वींद्रियपूर्णं जघन्यपर्यंतमसंख्यं संख्यं गुणं ततः ॥

अल्लि बळिकं पत्तनेय कोष्ठगतपर्याप्तपंचजीवसमासंगळ्गे जघन्यावगाहस्थानंगळप्पुवल्लिंद-त्तल्पन्नो दनेय कोष्ठगतापर्य्याप्त पंचजीवसमासंगळ्गेयुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लिं मुंदणपंनेरड-नेय कोष्ठगतपर्य्याप्तपंचजीवसमासंगळगुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लि दशमकोष्ठगतबादरपर्य्या-

---

प्रथमकोष्ठत्रयगतषोडशजीवसमासानां अपर्याप्तजघन्यावगाहा इति ज्ञातव्याः । पुनरुपरि प्रथमद्वितीय-तृतीयपङ्क्तिषु एकैकस्यां पङ्क्तौ द्वौ द्वौ कोष्ठौ यथाक्रमं पर्याप्तापर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति त्रिविधजीवानां जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं चावगाहनं स्यात् । प्रथमपङ्क्तौ सूक्ष्माः पञ्च बादराः षडित्येकादशानां पर्याप्तजीवसमासानां जघन्यावगाहनानि सन्ति । तथा द्वितीयपङ्क्तिगतैतदेकादशापर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि सन्ति । तथा तृतीयपङ्क्तिगतैकादशपर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि सन्तीत्ययं विभागो ज्ञातव्यः ॥९९॥

तदग्रे दशमे कोष्ठे पर्याप्तकपञ्चजीवसमासानां जघन्यावगाहनस्थानानि भवन्ति । ततस्तदग्रे एकादशे कोष्ठे अपर्याप्तकपञ्चजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवन्ति । तदग्रे द्वादशे कोष्ठे पर्याप्तकपञ्चजीव-

---

पहले तीन कोठोंमें स्थापित सोलह जीवसमास अपर्याप्त जीवोंकी जघन्य-अवगाहना-रूप जानना । आगे ऊपरसे पहली, दूसरी, तीसरी पंक्तिमें एक-एक पंक्तिके दो-दो कोठे हैं । वे क्रमसे पर्याप्त, अपर्याप्त, और पर्याप्त जीवोंकी जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं । अर्थात् ऊपरसे प्रथम पंक्तिके दो कोठोंके ग्यारह स्थान पर्याप्त जीवोंकी जघन्य अवगाहनाके हैं । उससे नीचेकी दूसरी पंक्तिके दोनों कोठोंके ग्यारह स्थान अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं । उससे नीचेकी पंक्तिके दोनों कोठोंके ग्यारह स्थान अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं ॥९९॥

उससे आगे दसवें कोठेमें पर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके जघन्य अवगाहनास्थान हैं । उससे आगे ग्यारहवें कोठेमें अपर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके उत्कृष्ट अवगाहना स्थान हैं । उससे आगे बारहवें कोठेमें पर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके उत्कृष्ट अवगाहनास्थान हैं ।

१. म मेगणिदं ।

प्तद्वींद्रियजघन्यावगाहनस्थानपर्यंतमिप्पत्तो भत्तुं स्थानंगळोळसंख्यातगुणितक्रमावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लिदं मुंदे बादरपर्य्याप्त सकलेंद्रियपर्य्यंतमिई पदिमूरं जीवसमासंगळोळसंख्यातगुणितक्रममेंदितु निश्चयिसल्पडुवुवु ॥

सुहुमेदरगुणगारा आवलिपल्ला असंखभागो दु ।
सट्ठाणे सेडिगया अहिया तत्थेक्कु पडिभागो ॥१०१॥

सूक्ष्मेतरगुणकारा आवलिपल्यासंख्यभागास्तु । स्वस्थाने श्रेणिगताः अधिकास्तत्रैकः प्रतिभागहारः ॥ इल्लि सूक्ष्मजीवंगळवगाहस्थानंगळावल्यसंख्येयभागगुणितंगळु । मत्तं बादर जीवंगळवगाहनस्थानंगळु पल्यासंख्यातभागगुणितंगळु स्वस्थानदोळप्पुर्वेदितसंख्यातगुणकारविभागं काणल्पडुगु ॥

अनंतरं द्वितीय तृतीयपंक्तिगतंगळप्पवगाहनस्थानंगळधिक क्रमंगळप्पुवल्लि सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानादिगळुत्तरोत्तरंगळपूर्वपूर्वावगाहनस्थानंगळं नोडलावल्यसंख्यातैकभागखंडितैकभागमात्राधिकंगळप्पुवेंबुदर्त्थ । अधिकागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहार एंबी गणितो-

---

समासानां उत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवन्ति । तत्र दशमकोष्ठगतबादरपर्याप्तद्वीन्द्रियजघन्यावगाहनपर्यन्तानि एकान्नत्रिंशदवगाहनानि असंख्यातगुणितक्रमाणि । तदग्रे बादरपर्याप्तसकलेन्द्रियपर्यन्तानि त्रयोदश तु संख्यातगुणितक्रमानीति ज्ञातव्यानि ॥१००॥

अत्र सूक्ष्मजीवावगाहस्थानानि आवल्यसंख्येयभागगुणितानि । बादरजीवावगाहनस्थानानि पल्यासंख्यातभागगुणितानि च स्वस्थाने सन्तीत्यसंख्यातगुणाकारविभागो द्रष्टव्यः । अधस्तनद्वितीयतृतीयपङ्क्तिगतानि अवगाहनस्थानानि अधिकक्रमाणि स्युः । तत्र सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानादीनि उत्तरोत्तराणि पूर्वपूर्वावगाहनस्थानादावल्यसंख्यातैकभागखण्डितैकभागमात्राधिकानीत्यर्थः । अधिकागमननिमित्तं भागहारः

उनमें प्रथम कोठेके प्रथम स्थानसे लेकर दसवें कोठेके बादर पर्याप्तक दोइन्द्रियकी जघन्य अवगाहना पर्यन्त उनतीस अवगाहनाएँ क्रमसे असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी हैं। उससे आगे बादर पर्याप्तक पंचेन्द्रियकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त तेरह स्थान क्रमसे संख्यातगुणित-संख्यातगुणित जानना ॥१००॥

यहाँ ऊपर जो उनतीस स्थान असंख्यात गुणे कहे हैं, उनमें-से जो सूक्ष्म जीवोंके अवगाहना स्थान हैं, वे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं। अर्थात् पहले स्थानको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर आगेका स्थान होता है। तथा जो बादर जीवोंके अवगाहना स्थान हैं, वे पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं अर्थात् पूर्वस्थानको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उससे आगेका स्थान होता है। इस तरह स्वस्थानमें गुणाकार है। उनमें इस प्रकार असंख्यातके गुणाकारका विभाग देखना चाहिए। नीचेकी दूसरी और तीसरी पंक्तिके अवगाहना स्थान उत्तरोत्तर अधिक-अधिक हैं। अर्थात् सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थानसे लेकर उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व अवगाहनाके स्थानसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अधिक है। अर्थात् पूर्व अवगाहना स्थानको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उसे पूर्वस्थानमें जोड़नेपर उत्तरस्थानका प्रमाण होता है। यहाँ अधिकका प्रमाण लानेके लिए भागहार और भागहारका भागहार आवलीका असंख्यातवाँ भाग है जो परमगुरुके उपदेशसे आया हुआ जानना।

८
र्त्तियिदमावल्यसंख्येयभागमात्र अ मिदु परमगुरूपदेशगम्यं प्रतिभागहारं ज्ञातव्य मिल्लि पेळल्प-
ट्टवगाहनस्थानंगळ्गे गुणकारविधानमं पेळ्दपं मदे तेंनः—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन जघन्याव-
गाहनस्थानमेकान्नविंशतिवारपल्यासंख्यातैक भागंगळिदमुं ओंभत्तुवारावल्यसंख्यातभागंगळिदमुं
द्वाविंशतिवाररूपाधिकावल्यसंख्यात भागंगळिदमु मो भत्तुवारसंख्यातरूपंगळिदं भागिसल्पट्ट
द्वाविंशतिवारावल्यसंख्यातभागंगळिदं गुणिसल्पट्ट घनांगुलप्रमाणमादिभूतमागि स्थापिसि ५
६।८।२२

अ —
प १९।८।९।८।२२।१।९ दी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्य्याप्तवायुकायिकजीवनजघन्यमवगाहनस्थान-
अ अ अ ६।८।२२।८।

मावल्यसंख्येय भागगुणित प।१९।८।९।८।२२।१।९ मिदनपवर्त्तसिदोडे गुणकारभूतावल्यसंख्यात १०
अ अ अ

६।८ २२
अ —
भागहारभूतंगळागिर्द्दावल्यसंख्यात भागंगळोंभत्तरोळोंदं सरिवेंदपवर्त्तसि प १९।८।८।२२।१।९
अ अ अ
दी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकन जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणित

प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागः ८ परमगुरूपदेशागतो ज्ञातव्यः । अत्रोक्तावगाहनस्थानानां गुणकार-
अ
विधानमुच्यते तद्यथा—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनस्थानमेकान्नविंशतिवारपल्यासंख्येयभागनव- १५
वारावल्यसंख्येयभागद्वाविंशतिवाररूपाधिकावल्यसंख्येयभागनववारसंख्यातभक्तद्वाविंशतिवारावल्यसंख्येयभाग -
६ । ८ । २२
अ —
गुणितघनाङ्गुलप्रमाणमादिभूतं संस्थाप्य प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९ अतः सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिक-
अ अ अ
६ । ८ । २२ । ८
अ अ —
जीवस्य जघन्यमवगाहनस्थानमावल्यसंख्येयभागगुणितं प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९ अस्य २०
अ अ अ
गुणाकारभूतावल्यसंख्यातेन भागहारभूतावल्यसंख्यातभागेषु नवस्वेकः सदृश इत्यपवर्तितः ।

विशेषार्थ—नीचे दिया यन्त्र उक्त कथनके अनुसार जीवोंकी अवगाहनाका है। ऊपरकी पंक्तिमें लिखे बयालीस स्थान गुणाकार रूप हैं। इनमें पहले और चौथे कोठेमें सूक्ष्म जीव हैं, वे पूर्वस्थानसे उत्तरस्थान आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं। तथा दूसरे, तीसरे, सातवें कोठेमें बादर जीव हैं, वे दसवें कोठेके अप्रतिष्ठित प्रत्येक और बेन्द्री, ये २५
क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित हैं। दसवें कोठेके तेन्द्रीसे लेकर आगेके सब स्थान संख्यात गुणे हैं। नीचेकी दोनों पंक्तिके चार कोठोंके स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक हैं।

---

१. म °कपल्यसं. ।

६।८।२२।८ ६।८।२२
अ अ अ
प।१९।८।८।२२।३।९ मिदनपर्वत्तिसि प।१९।८।७।८।२२।३।९ दी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्याप्ता-

६।८।२२।
अ
प।१९।८।८।८।२२।१।९। अतः सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभाग-

१	२	३	४	७	१०	११	१२
सूक्ष्म निगोद १ वा २ ते ३ अप्४, पृथ्वी ५ अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना	अपर्याप्त जघन्य अवगाहना बादर वात ६, तेज ७ अप्८,पृथ्वी ९, नि. १०, प्रति प्रत्येक ११	अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना अप्रति. प्रत्येक १२, वेन्द्री १३, तेन्द्री १४, चौन्द्री १५ पंचेन्द्रिय १६	पर्याप्तकी ज. अव. सू निगो. १७,वात १८, तेज १९, अप् २०, पृथ्वी २१,	पर्याप्तकी जघ. अव. बादर वात २२, तेज २३ अप् २४, पृथ्वी २५, निगोद २६, प्रति. प्रत्येक २७	पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना अप्रतिष्ठि. प्रत्येक ५० वेन्द्री ५१ तेन्द्री ५२ चौइन्द्री५३, पंचे ५४	अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगा. तेन्द्री ५५, चौइन्द्री ५६ वेन्द्री ५७, अप्रति. ५८ पंचेन्द्री ५९	पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना तेन्द्री ६०, चौइन्द्री ६१, वेन्द्री ६२, अप्र.प्रत्येक ६३, पंचेन्द्री ६४
			सू. नि.२८, वात २९, तेज ३०, अप् ३१, पृथ्वी ३२, अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना	अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना बादर वात ३३, तेज३४ अप् ३५, पृथ्वी ३६, निगोद ३७ प्रति. प्रत्येक ३८			
			५	८			
			पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना सू. नि. ३९, वात ४० तेज ४१, अप् ४२ पृथ्वी ४३	पर्याप्तकी उत्कृ. अव. बादर वात ४४, तेज४५, अप् ४६, पृथ्वी ४७ निगोद ४८ प्रति. प्रत्येक ४९			
			६	९			

$$\text{प्कायिकजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित}\quad \text{प}^{\text{अ}}\ १९\cdot८\cdot६\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९$$

सिदं नोडे

$$\text{सूक्ष्मापर्य्याप्तभूकायिकजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमनपवर्त्तितमि}\quad \text{प}^{\text{अ}}\ १९\cdot८\cdot५\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९$$

दी राशियं नोडे सूक्ष्मात् सूक्ष्मस्य को गुणकार आवल्यसंख्येयभाग एंदितु स्वस्थानगुणकारंगळ्गे सूत्रो- ५
क्तक्रमदिदं नडेदु परस्थानमप्प बादरवातकायिक अपर्याप्तजघन्यावगाहनं सूक्ष्मबादरस्य को
गुणकारः पल्यासंख्यातभागः एंदितु कृतांतोपदिष्टवाक्यप्रमाणदिदं पल्यासंख्यातभागदिदं गुणिसि

$$\text{यपवर्त्तितमिदु}\quad \text{प}^{\text{अ}}\ १९\cdot८\cdot५\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९$$

मी राशियं नोडे बादरतेजस्कायिकापर्याप्तजघन्याव-
गाहं बादरादबादरस्य को गुणकारः पल्यासंख्येयभागः एंदितु स्वस्थानदोळु सूत्रोक्तक्रमदिदं १०

$$\text{गुणित-प}^{\text{अ}}\cdot १९\cdot८\cdot८\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९ \text{ मिदमपवर्तितं प}^{\text{अ}}\cdot १९\cdot८\cdot७\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९ \text{ अतः}$$

$$\text{सूक्ष्मापर्याप्तकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं । प}^{\text{अ}}\cdot १९\cdot८\cdot६\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९\cdot$$

अतः सूक्ष्मापर्याप्तभूकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं १५

$$\text{प}^{\text{अ}}\cdot १९\cdot८\cdot५\cdot८\cdot२२\cdot१\cdot९\cdot \text{अतः सूक्ष्मात्सूक्ष्मस्य गुणकारं स्वस्थानभूतमतीत्य परस्थानभूतबादरा-}$$

अब उक्त अवगाहना स्थानोंके गुणकारका विधान कहते हैं, जो इस प्रकार है—

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाका स्थान उन्नीस बार पल्यके असंख्यातवें भागसे, नौबार आवलीके असंख्यातवें भागसे, बाईस बार एक अधिक आवलीके २०
असंख्यातवें भागसे, और नौ बार संख्यातसे भाजित तथा बाईस बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित घनांगुल प्रमाण है। इस आदिभूत स्थानको स्थापित करके इससे सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक जीवका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। सो इसका गुणाकार आवलीका असंख्यातवाँ भाग और पहले जो आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार नौ बार कहा था, सो उसमें-से एक बार आवलीके असंख्यातवें भागको समान २५
होनेसे दोनोंका अपवर्तन करनेपर पहले जहाँ नौ बार कहा था, उसके स्थानमें एक कम करके आठ बार आवलीका असंख्यातवाँ भागका भागहार जानना। इसी तरह आगे भी

१. सिद्धान्तोपदिष्ट।

६।८।२२
ə
पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित प १९।८।५।८।२२।१।९ मिती क्रमदिदं स्वस्थान-
ə ə
दोळं परस्थानदोळं बादरादि बादरक्के पल्यासंख्येयभागगुणकारमक्कुमेंदु बादरपंचेंद्रियापर्याप्त-
जघन्यावगाहस्थानपर्य्यंतं पल्यासंख्येयभागगुणितक्रममागुत्तिरलु बादरपंचेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यावगाहं
६।८।२२
ə
गुणितापवर्त्तित— प ८।८।५।८।२२।१९ मिदं नोडे सुंदण सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तक जघन्याव-
ə ə ə

६।८।२२
ə
५ पर्याप्तवातकायिकस्य जघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प। १८।८।५।८।२२।१।९
ə ə ə
अतो बादरतेजस्कायिकापर्याप्तजघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—
६।८।२२
ə
प। १७।८।५।८।२२।१।९। एवं पल्यासंख्येयभागगुणितक्रमेण अग्रे नवस्थानानि नीत्वा नवमो
ə ə ə
६।८।२२
ə
बादरपञ्चेन्द्रियापर्याप्तजघन्यावगाहोऽयं। प। ८।८।५।८।२२।१।९। अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघ-
ə ə ə

गुणाकार और भागहारमें समानता देख दोनोंका अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्
१० कायिककी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करने पर आठबारकी जगह सात बार आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार होता है। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त पृथिवीकायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी
१५ पूर्ववत् अपवर्तन करना। इस तरह यहाँ आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार तो पाँच बार रहा;अन्य सब गुणाकार और भागहार जैसे पहले सूक्ष्मनिगोदियाकी अवगाहनामें बतलाये थे, वैसे ही रहे। यहाँ तक तो सूक्ष्मसे सूक्ष्मका गुणाकार हुआ,अतः इसे स्वस्थान गुणाकार कहते हैं। आगे सूक्ष्मसे बादरका गुणाकार कहते हैं सो परस्थान गुणाकार जानना।

इस सूक्ष्मसे सूक्ष्मका गुणाकाररूप स्वस्थानका उल्लंघन करके परस्थान भूत बादर
२० अपर्याप्त,वायुकायिककी जघन्य अवगाहना सूक्ष्म पृथिवीकायिककी जघन्य अवगाहनासे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। पहले उन्नीस बार पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार था,उसमें-से एक बार कम करना। इससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनाका स्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। यहाँ भी पूर्ववत् अपवर्तन करके एक कम करना। इसी तरह पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणितके क्रमसे आगेके नौ स्थानोंको ले जानेपर नवम
२५ स्थान बादर पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनामें ग्यारह स्थानोंमें ग्यारह पल्यके

गाहं परस्थानक्के बादरात्सूक्ष्मस्य को गुणकार आवल्यसंख्येयभाग : एंदी राद्धांतोपदिष्टवाक्योप-
६।८।२२
देशदिंदमादावल्यसंख्येयभागगुणित— प ८।८।४।८।२२।१।९ मिदं नोडे सूक्ष्मनिगोदा-
ə ə ə
पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिमक्कुं तद्विशेषप्रमाणमुं सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तजघन्यावगाहनमिदं
६।८।२२ ६।८।२२।१
ə ə
प ८।८।४।८।२२।१९ मावल्यसंख्यातभागदिदं खंडिसिदेकभाग प ८।८।४।८।२२।१।९।८
ə ə ə ə ə ə ə
६।८।२१
ə
मिदु विशेष प्रमाणमिदरिंदमभ्यधिकमें बुदर्त्थमिदं कूडियपवर्त्तितमिदु प ८।८।४।८।२१।१।९ ५
ə ə ə ə
इदं नोडे सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तकोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषमुं पूर्व्वोक्तसूक्ष्मनिगोदा-

६।८।२२
ə
न्यावगाहः परस्थानभूतावल्यसंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प।८।८।४।८।२२।१।९। अतः
ə ə ə
सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तोत्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः तद्विशेषप्रमाणं तु सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तजघन्यावगाहस्यावल्यसंख्येय-
६।८।२२।
ə
भागभक्तैकभागमात्रं प।८।८।४।८।२२।१।९।८ इदं प्रक्षिप्य राशिमपवर्तयेत्।
ə ə ə ə
६।८।२१।
ə
प।८।८।४।८।२१।१।९ अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः। विशेषप्रमाणं तु १०
ə ə ə

असंख्यातवें भागोंका अपवर्तन होनेसे आठ बार पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार रहता है। अन्य भागहार गुणाकार पूर्ववत् जानना। इससे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकका जघन्य अवगाहना स्थान परस्थानरूप है सो आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा है। पहले आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार पाँच बार रहा था। उसमें-से एक बारका अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाह विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण सूक्ष्म- १५
निगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहस्थानको आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भाग मात्र है। इसको उसी सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहस्थानमें समच्छेद विधानके द्वारा मिलाकर राशिका अपवर्तन करनेपर सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना होती है। सो पूर्व राशिमें बाईस बार एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार है और बाईस बार ही आवलीके असंख्यातवें भागका गुणाकार है सो इनमें एक बारका २०
अपवर्तन करनेपर बाईस बारकी जगह गुणाकार भागहार इक्कीस बार ही रहे। इसी तरह आगे भी जहाँ विशेष अधिक हो, वहाँ अपवतन करके आवलीके असंख्यातवें भागके गुणाकार और एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागके भागहारको एक बार कम कर देना। आगे

६।८।२१।१
ə
पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमनावल्यसंख्येय भागदिदं खंडितैकभागमक्कु प ८।८।४।८।२१।१९८
ə ə ə ə

६।८।२०
ə
मिनितरिदमभ्यधिकमेंबुदर्त्थं । इदं कूडियपर्वर्त्तितं प ८।८।३।८।१९।१९ इदं नोडे
ə ə ə

६।८।२०
सूक्ष्मवायुकायिकपर्य्याप्तजघन्यावगाहमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित प ८।८।३।८२०।१९
ə ə ə

मिदं नोडे सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमा विशेषमुं मुंनिनंतेयावल्यसंख्येय-
६।८।१९
ə
भागमं तंदु कूडियपर्वर्त्तिसि दो राशियं प ८।८।३।८।१९।१९ नोडे तदधस्तन सूक्ष्मवायु-
ə ə ə

६।८।२१
ə
पूर्वोक्तसू[illegible]गोदापर्याप्तकोत्कृष्टावगाहस्यावल्यसंख्येयभागभक्तैकभागमात्रं प।८।८।४।८।२१।१९।८
ə ə ə ə

६।८।२०
ə
इमं मेलयित्वापवर्तितः प।८।८।४।८।२०।१।९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तजघन्यावगाह-
ə ə ə

६।८।२०
ə
आवल्यसंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प।८।८।३।८।२०।१।९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तो-
ə ə ə

त्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं । विशेषोऽत्रावल्यसंख्येयभक्तपूर्वराशिमात्रः तं मेलयित्वा अपवर्तयेत्—
६।८।१९
ə
प।८।८।३।८।१९।१।९ अतस्तदधस्तनसूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं
ə ə ə

सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनासे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। यहाँ विशेषका प्रमाण पूर्वोक्त सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना के आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग मात्र है। इसको पूर्व अवगाहनामें जोड़ पूर्ववत् अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्तका जघन्य अवगाह आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा है। सो अपवर्तन करनेपर पहले चार बार आवलीके असंख्यातवें भागका भाग था। सो तीन बार ही रहा। इससे सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाह विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण पूर्व राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग मात्र है। उसे जोड़कर अपवर्तन करना। इससे नीचे सूक्ष्म वायुकायिक

कायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषमं मुंनिनंते यावल्यसंख्येयभागमं तंदु

६।८।१८

कूडिपर्वर्त्तितमिदं प।८।८।३।८।१८।१।९ नोडे सूक्ष्मतेजस्कायिकपर्य्याप्तजघन्यावगा-

६।८।१८

हनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तितमिदी प।८।८।२।८।१८।१।९ प्रकारदिंदं पोगि

६।८।१२

सूक्ष्मभूमिकायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिकमागियपवर्त्तित प।८।८।१२।१।९ मिदं

नोडे बादरवायुकायिकपर्य्याप्तजघन्यावगाहं सूक्ष्माद्बादरस्य को गुणकार : पल्यासंख्येयभाग : एंबी ५

६।८।१८

आवल्यसंख्येयभागभक्तपूर्वराशिनाधिकमित्यर्थः । प।८।८।३।८।१८।१।९ अतः सूक्ष्मतेजस्कायिक-

६।८।१८

पर्याप्तजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं प।८।८।२।८।१८।१।९ एवं द्वे द्वे

आवल्यसंख्येयभागभक्तस्वस्वपूर्वराश्यधिके एकैकं स्वस्वपूर्वराशितः आवल्यसंख्येयभागगुणितमित्यष्टावगाहनान्य-

---

पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। सो ही पूर्वराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भाग अधिक जानना। यहाँ भी अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ अपवर्तन करनेपर आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार तीन बारको जगह दो बार रहा। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इस तरह दो-दो तो आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित पूर्वराशि प्रमाण विशेष अधिक हैं और एक-एक अपनी-अपनी पूर्वराशिसे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा जानना। इस तरह आठ अवगाहनास्थानोंको उल्लंघ कर आठवाँ सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। सो पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करनेसे बारह बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित तथा आठ बार

सिद्धांतवाक्यप्रमाणदिदं पल्यासंख्यातभागगुणितमपवर्त्तितमिदं $\frac{६।८।१२}{प\ ८।८।८\ १२।१।९}$

नोडे तदधस्तनबादरवातकायापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमुं तदधस्तनबादरवायुकायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनादिगळ विशेषाधिकक्रममनुपरितनपल्यासंख्यातभागगुणितक्रमक्रमदिदं पोगि बादर प्रतिष्ठित पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमधिकमुं गुणितमुमेल्लमपवर्त्तिसि $\frac{६}{प।२।१।९}$ दी राशियं नोडे बादरा-

५ प्रतिष्ठितपर्य्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित $\frac{६}{प\ १।१।९}$ मिदं नोडे

तीत्य अष्टमं सूक्ष्मभूकायिकपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमपवर्तितमिदं $\frac{६।८।१२}{प\ ८।८।१२।१।९}$

अतः बादरवायुकायिकपर्याप्तजघन्यावगाहनं परस्थानत्वात्पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं—
$\frac{६।८।१२}{प।७।८।१२।१।९}$ इतोऽग्रे द्वे द्वे प्राग्वत्प्रतिभागभक्तैकैकभागाधिके एकैकं पल्यासंख्यातगुणितमिति

सप्तदशावगाहनान्यतीत्य सप्तदशं बादरपर्याप्तप्रतिष्ठितोत्कृष्टावगाहनमधिकमपवर्तितं $\frac{६}{प।२।१।९}$ अतः

१० बादराप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं $\frac{६}{प।१।१।९}$ अतः बादरद्वीन्द्रिय-

---

पल्यके असंख्यातवें भागसे, बारह बार एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। इससे बादर वायुकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना परस्थानरूप होनेसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। ऊपर पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार आठ बार था। उसमें-से एकका अपवर्तन करनेपर सात बार रहा। इससे आगे दो-दो स्थान तो विशेष अधिक और एक-एक स्थान पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित जानना। सो विशेषका प्रमाण अपनी-अपनी पूर्वराशिको आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जानना। सो यहाँ अधिक होता है। अपवर्तन करनेपर बारह बार आवलीके असंख्यातवें भागका गुणाकार और बारह बार एक अधिक आवलीके असंख्यात भागका भागहार थे। सो इनमें-से एक-एक कम करना। तथा जहाँ पल्यके असंख्यातवें भागका गुणाकार हो, वहाँ अपवर्तन करनेपर सात बार पल्यके असंख्यातवें भागके भागहारमें-से एक बार कम करना चाहिए।

सो बादर वायुकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे बादर वायुकायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर वायुकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके

बादरद्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्यातैकभागगुणित ६/१९ मिदं नोडे त्रिचतुःपंचेंद्रिय-
६।त्रि च।६ पं ६
पर्य्याप्तजघन्यावगाहनंगळु प्रत्येकं पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलु संख्यातगुणितंगळु १।८।७।१ १६ मिदं
६
नोडे बादरत्रींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १।५ मिदं नोडे बादर चतुरिंद्रियापर्य्याप्तो-
६ ६।
त्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १।४ मिदं नोडे द्वींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १।३
६
मिदं नोडलप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १२ मिदं नोडे सकलेंद्रियापर्य्याप्तो- ५
६ ६।१
त्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ १ मिदं नोडे त्रींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ १ मिदंनप
वर्त्तिसुत्तिरलु गुणकारबाहुल्यदिंद संख्यातघनांगुल प्रमाणमक्कु ६।१ मिदं नोडे चतुरिंद्रिय-

---

पर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं ६ अतः त्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजघन्यावगाहनानि प्रत्येकं
१९
पूर्वपूर्वतः संख्यातसंख्यातगुणितानि त्रि ६ । च ६ । प ६ अतः बादरत्रीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं
१८ १७ १६
संख्यातगुणं ६ अतः बादरचतुरिन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः द्वीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टा- १०
१५ १४
वगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः सकलेन्द्रिया-
१३ १।१२
पर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः त्रीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६१ इदमपवर्तितं
१।११ १।१
गुणकारबाहुल्यात्संख्यातघनाङ्गुलप्रमाणं भवति ६१, अतश्चतुरिन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं

असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे १५
बादर अप्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर अप्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर अप्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर पृथ्वी अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर पृथ्वीकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। २०
उससे बादर निगोद पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर निगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर निगोद पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी २५
उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इस तरह सतरह अवगाहना स्थानोंको लाँघकर पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करनेपर सतरहवाँ बादर पर्याप्त प्रत्येककी उत्कृष्ट

पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण । "६ १ १ १" मिदं नोडे द्वींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण । ६ । १ १ १ । मिदं नोडलप्रतिष्ठित - प्रत्येकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण ६ १ १ १ १ मिदं नोडल्सकलेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ १ १ १ १ १ । अनंतरं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनदिंदं मुंदण सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनद गुणकारभूतावल्यसंख्येयभागदुत्पत्तिक्रममुमं तन्मध्यावगाहनविकल्पप्रकारंगळुमं पेळलेंदु मुंदण गाथानवकमं पेळ्दपरु ।—

अवरुवरि इगिपदेसे जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए ।
आदी णिरंतरमदो एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥१०२॥

अवरोपर्य्येकप्रदेशयुतेऽसंख्येयभागवृद्धेरादिर्निरंतरमत एकैकप्रदेशपरिवृद्धिः ॥

६ १ १ अतः द्वीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ । १ । १ । १ । अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ । १ । १ । १ । १ । अतः सकलेन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं भवति ६ १ १ १ १ १, ॥१०१॥ अथ सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनतोऽग्रतनसूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्य गुणकारभूतावल्यसंख्येयभागस्योत्पत्तिक्रमं तन्मध्यावगाहविकल्पप्रकारांश्च गाथानवकेनाह—

अवगाहना दो बार पल्यके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। उससे बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित है। यहाँ भी अपवर्तन करना। इससे बादर दोइन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी अपवर्तन करनेपर पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार समाप्त होकर केवल नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण अवगाहना रहती है। आगे तेन्द्री, चौन्द्री, पंचेन्द्री पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना प्रत्येक पूर्व-पूर्वसे संख्यातगुणित-संख्यातगुणित हैं। इससे तेन्द्री अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चौन्द्री अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे दोइन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। उससे अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इस तरह एक-एक बार संख्यात गुणकारको नौ बार संख्यातके भागहारमें-से कम करनेपर पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। इससे तेइन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। सो अपवर्तन करनेपर यहाँ गुणकारके संख्यातका प्रमाण भागहारके संख्यातके प्रमाणसे बहुत है। अतः तेइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण होती है। उससे चौइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे दोइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। इस तरह क्रमसे अवगाहनास्थान जानना ॥१०१॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे सूक्ष्मवायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनाका गुणाकार आवलीका असंख्यातवाँ भाग कहा है। आगे उसकी उत्पत्तिका क्रम और उन दोनोंकी मध्य अवगाहनाके भेदोंके प्रकार नौ गाथाओंसे कहते हैं—

६।८।२२

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकनजघन्यावगाहनमनिदं प ३ । १९ । ८ । २२ । ३ । ९ लघुसंदृष्टि-निमित्तमागि । ज एंदितु स्थापिसि मत्तं द्वितीयावगाहनभेदनिमित्तमिदरोळु ओंदु प्रदेशमं प्रक्षेपिसुत्तिरलु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तन द्वितीयावगाहनविकल्पमक्कु । ज मितु प्रदेशोत्तरक्रमदिदं सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकन जघन्यावगाहनं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन जघन्यावगाहमं नोडलावल्यसंख्येयभागगुणितमक्कुमेन्नेवरं नडेववु । अल्लियसंख्यातभागवृद्धियुं संख्यातभागवृद्धियुं संख्यातगुणवृद्धियुमसंख्यातगुणवृद्धियुमेंदितु चतुःस्थानगतवृद्धिगळ नडुवे नडुवेयडवक्तव्य भागवृद्धिगळिदमुं वर्द्धमानावगाहनस्थानंगळ्पुट्टुव प्रकारमं तेंदोडे सर्व्वजघन्यावगाहनमिदु । ज । मत्तमी राशियनो राशियिदमे भागिसि बंद लब्धमोंदु रूपऽदना जघन्यदोळ्कूडि स्थापिसिदडे द्वितीय विकल्पस्थानमसंख्यातभागवृद्धिगे मोदलक्कुं । ज । ज । मत्तमाजघन्यावगाहनमने तंतर्द्धदिदं २

६।८।२२

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदं प ३ । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ३ । ९ लघुसंदृष्ट्या ज इति कृत्वा संस्थाप्य पुनर्द्वितीयावगाहनभेदनिमित्तमेकप्रदेशे युते सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य द्वितीयावगाहनविकल्पो भवति । ज । एवं प्रदेशोत्तरक्रमेण तावदवगन्तव्यं यावत्सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तकजघन्यावगाहनं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनाद् आवल्यसंख्येयभागगुणितं भवति । तत्र असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः इति चतुःस्थानगतवृद्धिभिर्मध्ये मध्ये अवक्तव्यभागवृद्धिश्च । वर्धमानावगाहनस्थानानां उत्पत्तिप्रकारः कथ्यते—सर्वजघन्यावगाहनमिदं (ज) अस्मिन् अनेनैव

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना पहले कही है। लघुसंदृष्टिके लिए उसके स्थानमें 'ज' अक्षर स्थापित किया; क्योंकि यह सबसे जघन्य है। अवगाहनाका दूसरा भेद लानेके लिए इस जघन्य अवगाहनामें एक प्रदेश जोड़नेपर सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तका दूसरा भेद होता है। इस तरह क्रमसे एक-एक प्रदेश बढ़ाते हुए तबतक जाना चाहिए, जबतक सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना आवे। सो सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित होती है। उसमें असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि इन चतुःस्थानगतवृद्धिके मध्य-मध्यमें अवक्तव्यभागवृद्धियोंसे वर्धमान अवगाहन स्थानोंकी उत्पत्तिका प्रकार कहते हैं।

विशेषार्थ—सबसे जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है। अतः उसके प्रदेश असंख्यात ही हैं; अनन्त नहीं हैं। इससे अनन्त भागवृद्धि यहाँ नहीं होती। तथा उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात घनांगुल मात्र है। उसके प्रदेश भी असंख्यात ही हैं, अनन्त नहीं हैं इसलिए जघन्यसे अनन्तगुणवृद्धि भी नहीं होती। अतः असंख्यातभागवृद्धि आदि चार ही वृद्धियाँ यहाँ कही हैं। जहाँ-जहाँ संख्यात और असंख्यातका भागहार या गुणाकार सम्भव नहीं है, ऐसे प्रदेशोंकी वृद्धिको अवक्तव्य वृद्धि कहा है। यह वृद्धि उक्त चतुःस्थान वृद्धिके बीच-बीचमें होती है। उसीका कथन करते हैं—

भागिसि ज ज बंद लब्धमेरडु रूपुगळना जघन्यदोळ्कूडि स्थापिसुत्तिरलु तृतीयावगाहनविकल्पमक्कु २

१ २
ज ज ज मितो जघन्यावगाहनमं यथायोग्य संख्यातासंख्यातराशिगळिंदं भागिसि बंद लब्धंगळ्कूडुतं नाल्कुं मय्दुं मोदलागि संख्यातासंख्यातरूपुगळु जघन्यावगाहनदोळधिकमागुत्तं निरंतरमेकैकप्रदेशवृद्धियुक्तावगाहनस्थानंगळसंख्यातंगळनडदु—

१ २ ३ ४ ५ १ १ ८
५ ज ज ज ज ज ज । ० ० ० ज । ज ० ० ० ज

अवरोगाहणमाणे जहण्णपरिमिद-असंखरासिहिदे ।
अवरस्सुवरिं उड्ढे जेट्ठमसंखेज्जभागस्स । १०३॥

जघन्यावगाहनमाने जघन्यपरिमिताऽसंख्यराशि हृते । अवरस्योपरि वृद्धे ज्येष्ठमसंख्येय भागस्य ॥

१० ओंदेडेयोळ्जघन्यावगाहनदोळ्कुं जघन्यावगाहनमं जघन्यपरिमितासंख्यातराशियिंदं भागिसि ज
१६ बंद लब्धमनपर्वाततमं कूडुत्तिरला राशिय संख्यातभागवृद्धिय अवगाहनस्थानंगळवसानस्थान-

---

भक्ते लब्धमेकरूपं । तज्जघन्यस्य उपरि युते द्वितीयविकल्पस्थानं असंख्यातभागवृद्धेरादिर्भवति । ज । ज । पुनस्तज्जघन्यावगाहने एव तदर्धेन ज भक्ते लब्धं रूपद्वयं तज्जघन्यस्य उपरि युते तृतीयोऽवगाहनविकल्पः २

स्यात् । ज । ज । ज । एवमेव जघन्यावगाहनं यथायोग्यासंख्यातैर्भक्त्वा लब्धेषु त्रिचतुःपञ्चप्रभृति संख्यातासंख्यातरूपेषु जघन्यावगाहनयुतेषु निरन्तरपैकैकप्रदेशप्रवृद्धियुक्तावगाहनस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्य—

१ १ १ ८
ज । ज । ज । ज । ज । ज । ० ० ० ज । ज । ० ० ० ज ॥१०२॥

एकत्र जघन्यावगाहने जघन्यपरिमितासंख्यातराशिना भक्ते ज लब्धं अपवर्त्य युते सति ज समच्छेदेन १६ १६

सबसे जघन्य अवगाहनाको इस जघन्य अवगाहना प्रमाण असंख्यातका भाग देनेपर लब्ध एक आया। उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर दूसरा अवगाहना भेद होता है। २० यह असंख्यातभागवृद्धिका आदि स्थान है। पुनः उस जघन्य अवगाहनामें उस जघन्य अवगाहनासे आधे प्रमाणवाले असंख्यातसे भाग देनेपर लब्ध दो आया। उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर तीसरा भेद होता है। यह असंख्यातभागवृद्धिका दूसरा स्थान है। इसी प्रकार क्रमसे जघन्य अवगाहनाको यथायोग्य असंख्यातसे भाग देकर लब्धरूपसे प्राप्त तीन, चार, पाँच आदि संख्यात-असंख्यातरूपोंको जघन्य अवगाहनमें जोड़नेपर निर- २५ न्तर एक-एक प्रदेशवृद्धिसे युक्त असंख्यात अवगाहन स्थान होते हैं ॥१०२॥

आगे जघन्य अवगाहनामें जघन्यपरीतासंख्यात राशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर असंख्यात भागवृद्धिरूप अवगाहना स्थानोंका

२ २ ३ ४ ५ ७ ७ ८
मक्कु ज । ज । ज । ज । ज । ज । ००० । ज । ज ००० ज ।—

८ ८ ज ज
ज ००० । ज १६ १६ सीयसंख्यातभागवृद्धिस्थानं गळेनितादुवें दोडे आदि ज अंते १६
ज ज

ज ज ज
सुद्धे १६ वड्ढिहिदे १६ । १ रूवसंजुदे ठाणा १६ । १ एंदिनितु स्थानविकल्पंगळप्पुवु ।

तस्सुवरि इगिपदेसे जुदे अवत्तव्वभागपारंभो ।
वरसंखमवहिदवरे रूऊणे अवर उवरि जुदे ॥१०४॥

तस्योपरि एकप्रदेशे युते अवक्तव्यभागप्रारंभः । वरसंख्यापहृतावरे रूपोनेवरोपरि युते ॥
मुन्निन असंख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानदोळोंदु प्रदेशमुं कूडुत्तिरलुमवक्तव्यभाग-

१
वृद्धिप्रारंभावगाहनस्थानमक्कु ज मिल्लिदं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिदिंदमवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळनडे-
१६
ज

ज १६ अस्य जघन्यस्योपरि युते सति ज अपवर्त्य ज स राशिः असंख्यातभागवृद्धयवगाहनस्थानानां
१६ १६ १६
ज

८ ८
अवसानस्थानं स्यात् एतानि । ज । ज । ज । ज । ज । ज । ००० ज ज । ००० ज असंख्यातभाग-
१६
ज

८ ८
वृद्धिस्थानानि । तु आदौ ज, अन्ते ज सुद्धे ज वड्ढिहिदे ज रूवसंजुदे ज ठाणेत्येतावंति भवन्ति ॥१०३॥
१६ १६ । १ १६ । १
ज

प्राक्तनासंख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने तु एकप्रदेशे युते सति अवक्तव्यभागवृद्धिप्रारम्भाव-

८
गाहनस्थानं स्यात् ज तदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्य एकत्र स्थाने
१६
ज

अन्तिम स्थान होता है। इन सब असंख्यात भागवृद्धिके स्थानोंकी संख्या 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा', इस करण सूत्रके अनुसार असंख्यात भागवृद्धिरूप अवगाहनाके आदिस्थानके प्रदेशोंके परिमाणको अन्तिम स्थानके प्रदेश परिमाणमें-से घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर उतने ही रहे, उनमें एक जोड़नेपर जितनी संख्या होती है, उतने ही असंख्यात भागवृद्धिके स्थान जानना ॥१०३॥

पूर्वोक्त असंख्यात भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रारम्भरूप अवगाहना स्थान होता है। उससे आगे क्रमसे एक-एक

दो दंडेयोळोम्मेयुत्कृष्ट संख्यातभक्तजघन्यावगाहनदोळो दु प्रदेशमं कुंदिसि $\frac{\text{ज}}{१५}$ दुदं जघन्याव-

गाहनदोळु कूडुत्तिरलु $\frac{\text{ज}}{१५}$

तव्वड्ढीए चरिमो तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा ।
संखेज्जभाग उड्ढी उवरिमदो रूवपरिवड्ढी ॥१०५॥

तद्वृद्धेश्चरमस्तस्योपरि रूपसंयुते प्रथमं । संख्यात भागवृद्धेरुपर्य्यंतो रूपपरिवृद्धिः ॥

तदवक्तव्यभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कु $\frac{१}{\text{ज}}$ $\frac{२}{\text{ज}}$ ० ० ० ० $\frac{\text{ज}}{१५}$ मी अवक्तव्यभाग-
$\frac{\text{ज}}{१६}$ $\frac{\text{ज}}{१६}$

वृद्धिस्थानविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे आदी $\frac{१}{\text{ज}}$ अंते $\frac{\text{ज}}{१५}$ सुद्धे $\frac{२^{०}}{\text{ज}}$ वड्ढिहिदे $\frac{२}{\text{ज}}$ रूवसंजुदे
$\frac{१६}{\text{ज}}$ $\frac{१६}{१५}$ १६।१५।१

एकवारमुत्कृष्टसंख्यातभक्तजघन्यावगाहने एकप्रदेशोने $\frac{\text{ज}}{१५}$ तज्जघन्यावगाहनस्योपरि युते सति $\frac{\text{ज}}{१५}$ ॥१०४॥

तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् $\frac{\text{ज}}{१६}$ $\frac{\text{ज}}{१६}$ ००० $\frac{\text{ज}}{१५}$ एते च अवक्तव्यभाग-

वृद्धिस्थानविकल्पाः कति ? इति चेत् आदौ $\frac{\text{ज}}{१६}$ अन्ते $\frac{\text{ज}}{१५}$ सुद्धे $\frac{\text{ज}}{१६।१५}$ वड्ढिहिदे $\frac{\text{ज}}{१६।१५।१}$

प्रदेश बढ़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थानोंको लाँघनेपर जघन्य अवगाहनामें एक बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उसमें-से एक घटाकर उसे जघन्य अवगाहना जोड़नेपर ॥१०४॥

उस अवक्तव्य भागवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है। ये अवक्तव्य भाग-वृद्धिके स्थानोंके भेद कितने हैं? यह जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार अवक्तव्य भागवृद्धिके आदिस्थानके प्रदेशप्रमाणको उसके अन्तिम स्थानके प्रदेशप्रमाणमें-से घटाकर शेषमें एकका भाग देकर और एक जोड़नेपर जो संख्या हो, उतने ही अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थान हैं। अब अवक्तव्य वृद्धिकी उत्पत्ति अंकसंदृष्टिके द्वारा स्पष्ट करते हैं—

जघन्य अवगाहना अड़तालीस सौ ४८००। इसके भागहारभूत परीतासंख्यातका प्रमाण सोलह १६। इससे जघन्य अवगाहनामें भाग देनेपर लब्ध तीन सौ ३००। इतनी

ज
ठाणा १६।१५ [1]एंदितिनवक्तव्य भागवृद्धिस्थानविकल्पंगळप्पुविन्नाऽवक्तव्य भागवृद्धिगळुत्पत्तिय-नंकसंदृष्टियिदं विशदं माळपेमदे तें दोडे—

जघन्यावगाहनक्कंकसंदृष्टि ४८०० इदक्के भागहारभूतपरिमितासंख्या जघन्यक्कंकसंदृष्टि १६ इदरिंदं जघन्यावगाहनमं भागिसि बंदलब्धमसंख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कुं ३०० मत्तमा जघन्यावगाहनमनुत्कृष्टसंख्यातदिंदं भागिसि बंद लब्धं संख्यातभागवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कु ३२० ॥ मी येरडरंतरालदोळु ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ । मी एकोनविंशतिस्थानविकल्पंगळाएरडु भागहारंगळिंदं १६।१५ । भागिसि पुट्टिदुवळळेकें दोडे मूनूरं मूनूरिप्पत्तुं तल्लब्धंगळं नोडलधिकमुं हीनमुमप्पुदरिंदं । अंतादोडं तप्प भागहारंगळिंदं भागिसि बंद लब्धंगळे दोडे अन्यभिन्नभागहारंगळिंदं भागिसि बंद लब्धंगळिंदरिवुदा भागहारंगळे तप्पुवें दोडे

रूवसंजुदे ज ठाणेत्येतावन्तो भवन्ति । इदानीमवक्तव्यवृद्धीनां उत्पत्तिं अङ्कसंदृष्ट्या विशदयति तद्यथा-
१६।१५
जघन्यावगाहनं ४८०० अस्य भागहारभूतपरिमितासंख्यातः १६ अनेन जघन्यावगाहने भक्ते लब्धमसंख्यात-भागवृद्धेश्चरमावगाहनं स्यात् ३०० । पुनस्तज्जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते लब्धं संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् । ३२० । एतद्द्वयान्तराले ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ । एते एकान्नविंशतिस्थानविकल्पा एतद्भागहारद्वया १६ । १५ । न्यतरभक्तलब्धा न भवन्ति । कुतः ? त्रिंशतत्रिंश-त्यग्रत्रिंशततल्लब्धाभ्यां तेषामधिकहीनत्वात् । तर्हि कीदृशभागहारभक्तलब्धाः ? इति चेत् उच्यते—एतज्जघन्ये

जघन्य अवगाहनामें बढ़नेपर असंख्यात भागवृद्धिकी अन्तिम अवगाहना होती है। पुनः उस जघन्य अवगाहनामें उत्कृष्ट संख्यात १५ से भाग देनेपर तीन सौ बीस ३२० प्राप्त हुए। इतनी वृद्धि होनेपर संख्यात भागवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान ५१२० होता है। इन दोनों तीन सौ और तीन सौ बीसके मध्यके ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ ये उन्नीस स्थानभेद १६ और १५ इन दोनों भागहारोंमें-से किसीसे भी जघन्य अवगाहनामें भाग देनेसे प्राप्त नहीं होते। क्योंकि ४८०० में १६ का भाग देनेपर ३०० और १५ से भाग देनेपर ३२० प्राप्त होते हैं। किन्तु उक्त उन्नीस स्थान या तो तीन सौ-से अधिक हैं या तीन सौ बीससे कम हैं। इसीलिए इन्हें अवक्तव्य भागवृद्धिरूप स्थान कहा गया है। ये स्थान किस प्रकारके भागहारसे भाग देनेपर प्राप्त होते हैं, यह बतलाते हैं—

जघन्य अवगाहनाके प्रमाण ४८०० में इस भागहार ३०१ से भाग देनेपर $\frac{४८००}{३०१}$ 'हारस्य हारो गुणकोंशराशेः' भागहारका भागहार भाज्य राशिका गुणाकार होता है, इस भिन्न गणितके आश्रयसे अड़तालीस सौ को तीन सौ एकसे गुणा करके उसमें अड़तालीस सौ-से भाग देनेपर तीन सौ एक ही आता है, सो वह अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रथम अवगा-

१. म एंदितनि° । २. म °गलेंदरिवुदु° ।

ई जघन्यराशिय ४८०० नी भागहारदिंदं ४८०० भागिसि बंद लब्धं ४८०० हारस्य हारो गुण-
३०१
४८००
३०१

कोंशराशे : एंदी भिन्नगणिताश्रयदिंदं अवक्तव्यभागवृद्धिय प्रथमावगाहनविकल्प ३०१ मत्तं-संदृष्टियोळमिंते योजिसिकोंतुटक्कु मी प्रकारदिंदं चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थानावसानं स्थानंगळुमं तंदुकोळ्वुदु[1] ।

मत्तमा अवक्तव्यभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानदोळोंदु रूपं निक्षेपिसुत्तिरल्संख्यात-भागवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कुं ज मेले अल्लिदत्तलेकैकप्रदेशपरिवृद्धिक्रमदिंदमवगाहन-
१५
स्थानंगळासंख्यातंगळ्नडदु[2] । ज

अवरद्धे अवरुवरिं उड्ढे तव्वड्ढि परिसमत्ती हु ।
रूवे तदुवरि उड्ढे होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥१०६॥

अवरार्द्धे अवरोपरि वृद्धे तद्वृद्धिपरिसमाप्तिः खलु । रूपे तदुपरि वृद्धे भवत्यवक्तव्यप्रथम-पदं ॥ जघन्यावगाहनार्द्धं ज जघन्यावगाहनद मेले पेच्चुत्तिरलु संख्यातभागवृद्धिचरमाव-
२
गाहनस्थानमक्कु ज ०००० ज मी संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळोळनितक्कुमें दडे आदी ज अंते ज सुद्धे
१५ २ १५ २
ज ज ज ज

४८०० अनेन भागहारेण ४८०० भक्ते सति लब्धं ४८०० हारस्य हारो गुणकोशराशेरितिभिन्नगणिताश्रयेण
३०१ ४८००
३०१

तदवक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनविकल्पः ३०१ स्यात् अर्थसंदृष्टावप्येवमेव योजयितव्यं । अनेन क्रमेण चरमा-
१५ वक्तव्यभागवृद्धिस्थानावसानस्थानान्यानेतव्यानि । पुनस्तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते सति संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात् । ज । तदग्रे एकैकप्रदेशपरिवृद्धिक्रमेणावगाहनस्थानान्यसंख्या-
१५
ज
तानि गच्छन्ति ॥१०५॥

जघन्यावगाहनार्धे ज जघन्यावगाहनस्योपरि वृद्धे सति संख्यातभागवृद्धिचरमावगाहनस्थानं स्यात्
२

ज ० ० ० ज एतानि संख्यातभागवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् आदी ज अन्ते ज सुद्धे ज १५-२
१५ २ १५ २ २ १५
ज ज ज ज

हना विकल्प होता है । अर्थ संदृष्टिमें भी इसी प्रकार लगाना चाहिए । इसी क्रमसे अन्तिम अवक्तव्य भागवृद्धिके अन्तिम स्थान पर्यन्त लाना चाहिए । पुनः उस अवक्तव्य भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहनास्थानमें एक जोड़नेपर संख्यात भागवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है। उससे आगे एक-एक प्रदेशवृद्धिके क्रमसे असंख्यात अवगाहना स्थान प्राप्त होते हैं ॥१०५॥

जघन्य अवगाहनाका आधा जघन्य अवगाहनाके ऊपर बढ़ानेपर संख्यात भाग-वृद्धिका अन्तिम अवगाहना स्थान होता है । ये संख्यात भागवृद्धिके स्थान कितने हैं ? यह

१. म कोंबुदु । २. म °तस्थानंगलु° ।

ज १५ । २ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ज १५ २ एंदितु तंद लब्ध प्रमाणंगळप्पुवु । मत्तमा
२ १५ २।१५।१
संख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानदोळोंदु रूपं पेच्चिसुत्तिरवक्तव्यभागवृद्धिय प्रथमावगाहन-
स्थानं पुट्टुगु ज मिल्लिदं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमदिंदं अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळसंख्यातंगळन-
२
उदोम्मे । ज

रूऊणवरे अवरस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं ।
तम्हि पदेसे उड्ढे पढमा संखेज्जगुणवड्ढी ॥१०७॥

रूपोनावरेऽवरस्योपरि संवर्द्धिते तदुत्कृष्टं । तस्मिन् प्रदेशे वृद्धे प्रथमा संख्यातगुणवृद्धिः ॥

रूपोनजघन्यावगाहनमिदु ज जघन्यावगाहनद मेले मेले संवर्द्धिसल्पडुत्तिरलुमवक्तव्य
भागवृद्धिय चरमोत्कृष्टावगाहनस्थानमक्कु ज मिल्लियवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळेनितप्पुवेंदोडे
ज
आदि अंते इत्यादि सूत्रोक्तक्रमदिंदं तंद लब्धमिनितप्पुदु ज मत्तमा चरमावक्तव्य भागवृद्धिस्थान-
२

वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेत्येतावन्ति स्युः ज १५—२ । संख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते
२।१५।१

सत्त्ववक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानमुत्पद्यते ज एतदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्य-
२
संख्यातान्यतीत्यैकत्र ॥१०६॥ ज

रूपोनजघन्यावगाहने ज जघन्यावगाहनस्योपरि वर्धिते सति अवक्तव्यभागवृद्धेः चरममुत्कृष्टावगाहन-
ज
स्थानं स्यात् ज । अत्रावक्तव्यभागवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् आदौ, अन्ते, सुद्धे इत्यादिना लब्धानि

जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार संख्यात भागवृद्धिके आदि स्थानके प्रदेश प्रमाणको अन्तिम स्थानके प्रदेश परिमाणमें घटाकर एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने ही संख्यात भागवृद्धिके स्थान हैं । संख्यात भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान उत्पन्न होता है । उसके आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धिके क्रमसे अवक्तव्य भागवृद्धिके असंख्यात स्थानको उलंघ कर ॥१०६॥

एक कम जघन्य अवगाहनाको जघन्य अवगाहनाके ऊपर बढ़ानेपर अवक्तव्य भाग-वृद्धिका अन्तिम उत्कृष्ट अवगाहनस्थान होता है । यहाँ अवक्तव्यभागवृद्धिके कितने सब स्थान हुए, यह जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें

दोळो दु प्रदेशमं कूडुत्तिरलु संख्यातगुणवृद्धप्रथमावगाहनस्थानमक्कु ज २ मतः परमेकैकप्रदेश-
वृद्धिक्रमदिदं संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळसंख्यातावगाहनविकल्पंगळनडेदो दे डेयोळु ।—

अवरे वरसंखगुणे तच्चरिमो तम्हि रूवसंजुत्ते ।
ओगाहणम्मि पढमा होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥१०८॥

अवरे वरसंख्यातगुणे तच्चरमं तस्मिन् रूपसंयुक्ते । अवगाहने प्रथमं भवत्यवक्तव्यगुणवृद्धिः ॥

जघन्यावगाहनमनुत्कृष्टसंख्यातदिंद गुणियिसुत्तिरलत्तसंख्यातगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थान-
मक्कु ज १५ मी संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळेनितक्कुमेंदोडे मुन्निनंते आदी अंते सुद्धे इत्यादि
१

सूत्रोक्तक्रमदिंदं लब्धदनितप्पुवु ज १५ २ मुंदेयुमा संख्यातगुणवृद्धि चरमावगाहनदोळो दु रूपं
१

कूडुत्तिरलवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कु ज १५ मिल्लिदं मुंदेयुमेकैकप्रदेशोत्तरवृद्धि-
क्रमदिदमवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळसंख्यातंगळनडेदो दे डेयोळु ।—

एतावन्ति स्युः ज । पुनः तच्चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थाने एकप्रदेशे युते सति संख्यातगुणवृद्धेः प्रथमाव-
२
गाहनस्थानं स्यात् ज तदग्रे एकैकप्रदेशवृद्ध्या संख्यातगुणवृद्धेरसंख्यातावगाहनस्थानानि नीत्वा एकत्र
२
स्थाने ॥१०७॥

जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन गुणिते संख्यातगुणवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् ज १५ । एतानि
संख्यातगुणवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदौ अन्ते सुद्धेत्यादिना लब्धानि एतावन्ति स्युः ।

ज १५–२ । अग्रे संख्यातगुणवृद्धिचरमावगाहने एकरूपयुते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात्

ज १५ । इतोऽग्रे एकैकप्रदेशवृद्ध्या अवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानि असंख्यातानि नीत्वा एकत्र ॥१०८॥

घटाकर शेषको एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने ही अवक्तव्यभागवृद्धिके स्थान होते हैं । उस अवक्तव्यभाग वृद्धिके अन्तिम स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर संख्यातगुण-
वृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है । उसके आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि होते संख्यात-
गुण वृद्धिके असंख्यात अवगाहन स्थानोंके जानेपर ॥१०७॥

जघन्य अवगाहनामें उत्कृष्ट संख्यातसे गुणा करनेपर संख्यातगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है । ये संख्यातगुणवृद्धिके स्थान कितने हैं, यह जाननेके लिए पूर्वमें कहे करणसूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमेंसे घटाकर उसमें एकसे भाग देकर
तथा एक जोड़कर जितना हो, उतने हैं । आगे संख्यातगुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक जोड़नेपर अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान होता है । इससे आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि करते हुए अवक्तव्यगुणवृद्धिके असंख्यात स्थान बिताकर ॥१०८॥

---

१. म °लेतक्कु° ।

अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे ।
तच्चरिमो रूवजुदे तम्मि असंखेज्जगुणपढमं ॥१०९॥

अवरपरीतासंख्येनावरं संगुण्य रूपपरिहीणे । तच्चरमं रूपयुते तस्मिन्नसंख्येयगुणप्रथमं ॥

जघन्यपरिमितासंख्यातदिदं जघन्यावगाहनराशियं गुणिसिदा राशि रूपपरिहीनमागलु तदवक्तव्यगुणवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कु ज १६ मोयवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानावगाहनंगळेनि- ५
तक्कुमेंदोडे मुन्निनंते आदी अंते इत्यादि सूत्रोक्तक्रमदिंद तदावगाहनविकल्पंगळिनितप्पुवु ।

ज इल्लियवक्तव्यगुणवृद्धियनंकसंदृष्टियिंदं तोरिदपेमदें तेंदोड—जघन्यावगाहनक्के संदृष्टि १६ इदं रूपोनपरिमितासंख्यातदिंदं ३ गुणिसिदोडे ४८ इदरोळोंदु रूपं कूडिदोडेयवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथम-स्थानमक्कु ४९ । मिदं जघन्यावगाहनदिंदं भागिसलु लब्ध ४९ मिदवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमस्थानगुण
१६
कारमक्कुमिदरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणिसलु १६ । ४९ इदवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कु १०
१६

मपवर्त्तसिदोडिदु ४९ । अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमस्थानमं १६ ४ जघन्यावगाहदिंदं भागिसि

जघन्यपरिमितासंख्यातेन जघन्यावगाहनं गुणयित्वा रूपे परिहीने तदवक्तव्यगुणवृद्धेश्चरमावगाहन-
स्थानं स्यात् ज १६ एतानि अवक्तव्यगुणवृद्धयवगाहस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदि-अन्तेत्यादिना
गतावगाहनस्थानानि एतावन्ति स्युः ज । अत्र अवक्तव्यगुणवृद्धिरङ्कसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते तद्यथा—जघन्यावगाहन-
मिदं १६ रूपोनपरिमितासंख्यातेन ३ गुणयित्वा ४८ रूपे युते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं स्यात् १५
४९ । एतस्मिन् जघन्यावगाहनेन भक्ते लब्धं ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानेगुणकारः स्यात् । अनेन
१६
जघन्यावगाहनं गुणयित्वा ४९ । १६ अपवर्तिते अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् ४९ । अथवा
१६

जघन्य परीतासंख्यातसे जघन्य अवगाहनाको गुणा करके उसमें-से एक घटानेपर अवक्तव्यगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहनस्थान होता है। ये अवक्तव्यगुणवृद्धिके अवगाह-स्थान कितने हैं? यह जाननेके लिए पहलेकी तरह आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें-से घटाकर उसमें एकका भाग दें, एक जोड़नेपर जितना हो, उतने हैं। यहाँ अवक्तव्य गुणवृद्धि अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखलाते हैं। जैसे, जघन्य अवगाहनाका प्रमाण १६, इसको एक कम परीतासंख्यात ३ से गुणा करके १६ × ३ = ४८ इसमें एक जोड़नेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम स्थान ४९ होता है। इसमें जघन्य अवगाहनासे भाग देनेपर $\frac{४९}{१६}$ अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रथम स्थान लानेके लिए गुणाकार होता है। इससे जघन्य अवगाहनाको गुणा करके $\frac{४९}{१६} \times १६$ अपवर्तन करनेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम अवगाहनस्थान ४९ होता है।

१. ब °नानयने गु° ।

१६ ४ बंद लब्धमिदु ३।१ इदरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणियिसि १६।३।१ इदनपवर्त्तिसि
१६ १६ १६
कूडिदोडे ४९ इदवक्तव्यगुणवृद्धिप्रथमावगाहनमक्कु मितुत्तरोत्तरतद्विकल्पंगळोळं गुणाकारक्रम-
मरियल्पडुगुमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानमुं मत्त जघन्यावगाहनमं १६ जघन्यपरिमिता-
संख्यातदिंदं ४ गुणिसि बंद लब्धं रूपोनक्कुमादोडे चरमावक्तव्यगुणवृद्धिस्थानमक्कु ६३ मिदं
५ जघन्यावगाहनदिंदं भागिसि ६३ बंद लब्ध मात्रवदवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानक्के गुणा-
१६
कारमक्कुमिदरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणिसलवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानदुत्पत्तिकाणल्पडुगुं
१६। ६३ अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धि चरमावगाहनमं ६३ जघन्यावगाहनदिंदं १६ भागिसि बंद लब्ध
१६
६३ मिदरिंद जघन्यावगाहनमं गुणिसि बंद लब्धमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानमक्कु।
१६

---

१ — १ — १ — ७
अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं १६, ४ जघन्यावगाहनेन भक्त्वा १६। ४। लब्धमिदं ३,१। अनेन
१६ १६
१० जघन्यावगाहनं गुणयित्वा १६ ३ १ युते ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात्। एवमुत्तरोत्तर-
विकल्पेष्वपि गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः। अवक्तव्यगुणवृद्धेः चरमावगाहनस्थानं तु जघन्यावगाहनं १६ जघन्य-
परिमितासंख्यातेन गुणयित्वा लब्धे रूपोने सति स्यात् ६३। इदं च जघन्यावगाहनेन भक्त्वा ६३ लब्धं
१६
अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानानयने गुणकारः स्यात्। अनेन जघन्यावगाहने गुणिते अवक्तव्यगुणवृद्धि-
चरमावगाहनस्थानमित्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या १६। ६३। अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनं ६३ जघन्यावगाहनेन
१६
१५ १६ भक्त्वा लब्धेन ६३ जघन्यावगाहने गुणिते लब्धमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानं भवति ६३ तत्सर्वा-
१६

अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम स्थान एक अधिक तिगुणा सोलह, उसमें जघन्य अवगाहना १६ से भाग देकर पाया एक सोलहवाँ भाग अधिक तीन। इसको जघन्य अवगाहनसे गुणा करके $\frac{1}{16} \times 3$ उसमें एक जोड़नेपर ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहनस्थान होता है। इसी प्रकार आगे-आगेके स्थानोंमें भी गुणाकारका क्रम जानना
२० चाहिए। अवक्तव्यगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहनस्थान तो जघन्य अवगाहना १६ को जघन्यपरीतासंख्यात चारसे गुणा करके लब्धमें-से एक कम करनेपर ६३ होता है। इसको जघन्य अवगाहनासे भाग देनेपर $\frac{63}{16}$ जो लब्ध आता है, वह अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहनस्थानके लानेमें गुणाकार होता है। इससे जघन्य अवगाहनाको गुणा करनेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहनस्थानकी उत्पत्ति होती है। $\frac{16 \times 63}{16}$। अथवा
२५ अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहन ६३ को जघन्य अवगाहन सोलहसे भाग देकर लब्ध

६३। मितु सर्व्वावक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळ न्यासमिदु। :—४९। ५०। ५१। ५२। ५३। ५४। ५५। ५६। ५७। ५८। ५९। ६०। ६१। ६२। ६३॥ ई क्रमदिंदमर्त्थसंदृष्टियोळु तत्स्थानोत्पत्तिक्रममरियल्पडुवु दिल्लियादीयंते सुद्धे इत्यादियिनवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळंकसंदृष्टियोळमिनितप्पुवु। १५।

इन्तु मुंपेळ्दवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानदो । ज १६। ळिल्लि रूपोंदं कूडुत्तिरलु मसंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानमक्कु। १६॥ ५

रूउत्तरेण तत्तो आवलियासंखभागगुणगारे।
तप्पाओग्गे जादे वाउस्सोग्गाहणं अवरं ॥११०॥

रूपोत्तरेण तत आवल्यसंख्येयभागगुणकारे। तत्प्रायोग्ये जाते वायोरवगाहनं अवरं॥

अल्लिदं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमदिंदमसंख्यातगुणावगाहनस्थानंगळनडेदोडेयोळु यथा योग्यावल्यसंख्येयभागगुणितमप्प सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्य्याप्तक जघन्यावगाहनस्थानोत्पत्तियप्पुदु १०

६।८ २२ ८
अ

प ८। १९। ८। ९। ८। २२। १। ९ मिल्लिगेनितवगाहनस्थानविकल्पंगळप्पुवेंदोडादी अंते
अ अ अ

वक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानां न्यासः ४९, ५० ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, अनेन क्रमेण अर्थसंदृष्ट्यापि एतावन्ति स्युः १५। इदानीं प्रागुक्तावक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानेऽत्र

ज १६। एकरूपे युते सति असंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानं स्यात्–१६॥१०९॥

ततः–तस्मादसंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानादग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धया असंख्यातानि असंख्यातगुणवृद्धयवगाहनस्थानान्यतीत्य एकत्र स्थाने यथायोग्यावल्यसंख्येयभागगुणकारे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकनिगोदजघन्यावगाहनस्य जाते सति सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानस्योत्पत्तिर्जायते।

६।८। २२। ८
अ अ
प १९। ८। ९। ८। २२। १। ९ अत्र कति अवगाहनस्थानानि ? इति चेत् आदौ, अन्ते, सुद्धेत्याद्यानी-
अ अ अ

$\frac{13}{14}$ से जघन्य अवगाहनमें गुणा करनेपर लब्ध ६३ अवक्तव्य गुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है। सो सब अवक्तव्य गुणवृद्धि स्थानोंका विस्तार उनचाससे तिरसठ पर्यन्त २०
४९,५०,५१,५२,५३,५४,५५,५६,५७,५८,५९,६०,६१,६२,६३ होता है। इसी क्रमसे अर्थसंदृष्टिसे भी इतने ही १५ स्थान होते हैं। अब पूर्वोक्त अवक्तव्यगुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक जोड़नेपर असंख्यातगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है॥१०९॥

उस असंख्यातगुणवृद्धिके प्रथम अवगाहनस्थानसे आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि होते असंख्यातगुणवृद्धिके अवगाहन स्थानोंको उल्लंघकर एक स्थानमें यथायोग्य आवलीके २५
असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणाकार सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनाका होनेपर अर्थात् उक्त प्रकारसे वृद्धि होते हुए जब गुणाकारका प्रमाण यथायोग्य आवलीके असंख्यातवें भाग हो जाता है तब उससे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनमें गुणा करनेपर

६ । ८ । २२ । ८

अ

सुद्धे इत्याद्यानीतंगळु प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ८ । ९ मिनितप्पुवु ॥

अ अ अ

अनंतरं सर्व्वावगाहनस्थानंगळ्गे गुणकारोत्पत्तिक्रममनतिदेशिसुत्तं पेळ्दं ।

एवमुवरि वि णेया पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कम्मि य जीवसमासाण विच्चाले ॥१११॥

एवमुपर्य्यपि ज्ञेयः प्रदेशवृद्धिक्रमो यथायोग्यं । सर्व्वत्रैकैकस्मिंश्च जीवसमासानामंतराले ॥

इंती प्रकारदिंदमे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनस्थानावसानमागि पेरगे पेळ्द चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमप्रकारदिंद मेले सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्ततेजस्कायिकजघन्यावगाहनमादियागि द्वींद्रियपर्य्याप्तकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्य्यंतमिद्दुं जीवसमासावगाहनस्थानंगळोळ्दोंदंतरालदोळु प्रत्येकं चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमदिंदमुं अल्लिदत्तणि त्रींद्रियपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु संज्ञि-

१ ६ । ८ । २२ । ८ ।

अ अ

तानि एतावन्ति स्युः— प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९ ॥

अ अ अ

अथ सर्वावगाहनस्थानानां गुणकारोत्पत्तिक्रममाह—

एवं—अनेन प्रकारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्यन्तं प्रागुक्तचतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमप्रकारेण उपर्यपि सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहनादारभ्य द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनपर्यन्तं जीवसमासावगाहस्थानानामन्तरालेषु प्रत्येकं चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमेण तथा तदग्रे त्रीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपञ्चे-

सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहनास्थानकी उत्पत्ति होती है। यहाँ कितने अवगाहन स्थान हुए? यह जाननेके लिए उक्त सूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें घटाकर एकका भाग देकर लब्धराशिमें एक जोड़नेपर स्थानोंका प्रमाण होता है ॥ ११० ॥

आगे सब अवगाहन स्थानोंके गुणकारकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं—

इस प्रकार सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहनस्थानको आदि देकर सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिक जीवके जघन्य अवगाहनस्थान पर्यन्त पूर्वोक्त चतुःस्थानपतित प्रदेशवृद्धिका क्रम विधान कहा। इसी तरह ऊपर भी सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक तेजस्कायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर दोइन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य अवगाहनस्थान पर्यन्त जीवसमासोंके अवगाहनस्थानोंके अन्तरालोंमें-से प्रत्येकके चतुःस्थानपतित प्रदेशवृद्धिके क्रमसे यथायोग्य

१. म °क्रमनतिदेशिसुत्तदं पेल्दपं ।

पंचेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानमवसानमागिर्द्दवगाहनस्थानंगळंतराळदोळु प्रत्येकमसंख्यातगुणवृद्धिरहितत्रिस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमंगळ्दडेदु तत्तद्योग्यगुणकारोत्पत्ति प्रकारमरियल्पडुगुमनंतरं तत्तज्जीवसमासावगाहनविकल्पप्रमाणानयनार्थमिदं पेळ्दपरू ।

हेट्ठा जेसिं जहण्णं उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ ।
तत्थंतरगा सव्वे तेसिं ओगाहणवियप्पा ॥११२॥ ५

अधो येषां जघन्यमुपर्य्युत्कृष्टकं भवेद्यत्र । तत्रान्तरङ्गाः सर्वे तेषामवगाहनविकल्पाः ॥

इल्लि महामत्स्यरचनेयं कट्टाक्षिसि पेळ्दपरं । हीनप्रमाणस्थानंगळनितुमधस्तनस्थानंगळुपरितनस्थानंगळधिकप्रमाणस्थानंगळु एंदितु परिभाषिसल्पडुवुवु । अवु केलवु जीवंगळ्गे एल्लि जघन्यावगाहनस्थानं केळगिरुतिक्कुं । एल्लियुत्कृष्टावगाहनं मेलिरुतिक्कुं । तदंतरालवर्त्तियवगाहनस्थानंगळेल्लमु माजीवंगळ मध्यमावगाहनस्थानविकल्पंगळेंदितु प्रवचनदोळ्प्रतिपादितंगळल्लि सूक्ष्म- १०

६।८।२२
निगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनमिदादियक्कु प ६।१९।८।९।८।२२।९ मिदरुत्कृष्टाव-
अ अ अ

न्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानावसानावगाहनस्थानानामन्तरालेषु प्रत्येकमसंख्यातगुणवृद्धिं विना त्रिस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमेण च गत्वा तत्तद्योग्यगुणकारोत्पत्तिप्रकारो ज्ञातव्यः ॥१११॥ अथ तत्तज्जीवसमासावगाहनविकल्पप्रमाणमानयति— १५

मत्स्यरचनामिमां मनसि कृत्वेदमुच्यते-हीनप्रमाणस्थानानि अधस्तनस्थानानि अधिकप्रमाणस्थानानि च उपरितनस्थानानीति परिभाष्यते । येषां जीवानां यत्र जघन्यावगाहनस्थानमधस्तिष्ठति यत्रोत्कृष्टावगाहनस्थानमुपरि तिष्ठति तदन्तरालवर्त्यवगाहनस्थानानि सर्वाण्यपि तेषां जीवानां मध्यमावगाहनस्थानविकल्पाः इति प्रवचने प्रतिपादितं । तत्र सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदमादिः—

६।८।२२।
अ
प।१९।८।९।८।२२।१।९। अस्योत्कृष्टावगाहनमिदमन्तः—
अ अ अ

गुणाकारकी उत्पत्तिका विधान जानना । तथा उससे आगे तेइन्द्रियके जघन्य स्थानको आदि २०
देकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट अवगाहनस्थानपर्यन्त अवगाहन स्थानोंके अन्तरालोंमें-से प्रत्येकके असंख्यातगुणवृद्धिके बिना त्रिस्थान पतित प्रदेशोंकी वृद्धिका अनुक्रम प्राप्त करके यथायोग्य गुणाकार की उत्पत्तिका विधान जानना ।

विशेषार्थ—तेइन्द्रियके जघन्य अवगाहस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब स्थान एक दूसरेसे संख्यातगुणे हैं । इससे यहाँ असंख्यातगुणवृद्धिके बिना २५
त्रिस्थानपतितवृद्धि ही होती है ॥१११॥

आगे समस्त जीव-समासोंके शरीरकी अवगाहनाके स्थापनसे होनेवाली मत्स्य रचनाको सूचित करनेके लिए जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना स्थानोंका कथन करते हैं—

यहाँ मत्स्य रचनाको मनमें रखकर यह कथन करते हैं । जिन अवगाहनस्थानोंके ३०

---

१. म पेल्दपं ।

गाहनस्थानमिदु ६।८।२२।८।४।प।११।८।८। अन्तमक्कु आदियंते सुद्धे इत्यादि-
ə ə ə ə ə

प।१९।८।९।८ २२।१।९।८
ə ə ə ə

६।८।२२।८
ə ə

यिंदमावल्यसंख्यातभागदिंदं समच्छेदिसल्पट्टादियंतंदु प १९।८।९।८।२२।१।९।८
ə ə ə ə

गुण्यगुणकारंगळ्गे समं भाज्यभागहारंगळ्गं समानमं तोरि तोरलिल्लद नाल्कावल्य-
संख्यातंगळ्मोदल्गोंडु गुंदुगुणकारंगळेल्लरोळमोंदु रूपं कळेयल्कादिंदु

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
ə ə ə ə ə

प।१९।८।९।८।२२।९।८ वड्ढे हिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन
ə ə ə ə

६।८।२२।८।४।प।११।८।८।१
ə ə ə ə ə

प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ आदौ अन्ते सुद्धेत्यादिना आवल्यसंख्येयभागेन समच्छिन्न-
ə ə ə ə

६।८।२२।८।
ə ə

मादिमानीय प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ गुण्यगुणकाराणां तथा भाज्यभागहाराणां
ə ə ə ə

च साम्यं दर्शयित्वा तेन चतुरावल्यसंख्याद्यग्रतनसर्वगुणकाराणामुपर्येकरूपमपनीय शेषे

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
ə ə ə ə ə

प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेति सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकस्य
ə ə ə ə

प्रदेशोंका परिमाण कम होता है, उन्हें अधस्तनस्थान कहा है। और जिन अवगाहनस्थानोंका प्रदेश परिमाण बहुत होता है, उन्हें उपरितनस्थान कहा है। जिन जीवोंका जघन्य अवगाहनस्थान नीचे स्थित होता है और उत्कृष्ट अवगाहनस्थान ऊपर स्थित है, उनके मध्यके सभी अवगाहनस्थान उन जीवोंके मध्य अवगाहनस्थानके विकल्प होते हैं, ऐसा आगममें कहा है। सो सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकका पूर्वोक्त प्रमाणरूप जघन्य स्थान आदि है और उसीका उत्कृष्ट अवगाहस्थान अन्तिम है। सो आदिके प्रमाणको अन्तके प्रमाणमें-से घटाकर

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।८।१
अ अ अ अ अ

सर्व्वावगाहनस्थानंगळु समस्तमिनितप्पुवु—प।१९।८।९।८।अ।२२।१।९।८ इवरो-
अ अ अ अ

ळिन्नेरडु रूपुगळं कळेयुत्तिरलुमा जीवन मध्यमावगाहनविकल्पंगळप्पुवु।

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।८।१
अ अ अ अ अ

प।१९।अ।८।९।अ।८।२२।१।९।८ ई प्रकारदिंदं सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तवायुकायिक- ५
अ अ अ

मादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकपर्य्यंतमप्प जीवंगळ स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादियागि स्वस्वो-
त्कृष्टस्थानपर्य्यंतमप्पवगाहनस्थानंगळेल्लं तन्मध्यमविकल्पंगळसूत्रानुसारदिंदं तरल्पडुवुवु॥

अनंतरं मत्स्यरचनांतःप्रविष्टसर्व्वागाहनंगळ न्यासक्रमं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
अ अ अ अ अ

सर्वावगाहनस्थानविकल्पा भवन्ति— प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ एतेषु मध्ये रूपद्वये १०
अ अ अ अ

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।
अ अ अ अ अ

अपनीते तज्जीवमध्यमावगाहनस्थानानि भवन्ति। प।१९।८।९।८।२२।१।९।८। अनेन
अ अ अ अ

प्रकारेण सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा
स्वस्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं सर्वावगाहनस्थानानि तन्मध्यविकल्पांश्च सूत्रानुसारेण आनयेत्।

अथ मत्स्यरचनान्तःप्रविष्टसर्वावगाहनविन्यासक्रमः कथ्यते तद्यथा—प्रथमं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक- १५

शेषको वृद्धिका भाग देकर और एक जोड़कर जो प्रमाण आता है, उतने सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकके सब अवगाहनस्थानोंके विकल्प होते हैं। उनमें-से आदि स्थान और अन्तस्थानको कम कर देनेपर उसी जीवके मध्यम अवगाहनस्थान होते हैं। इसी प्रकारसे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक वायुकायसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके अपने-अपने जघन्य अवगाहनस्थानसे लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब अवगाहन स्थान तथा उनमें-से २० आदिस्थान और अन्तस्थानको कम कर देनेपर मध्यम अवगाहनस्थान सूत्रके अनुसार लाना चाहिए।

अब मत्स्याकार रचनामें अन्तःप्रविष्ट सब अवगाहन स्थानोंके स्थापनका क्रम

मोदलोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टपर्य्यंतमाद पदिनारुं गुणितक्रमस्थानंगळ्गमुमोंदधिकक्रमस्थानक्कमुं प्रत्येकमेरडेरडु शून्यसंदृष्टिकरणदिंदं चतुस्त्रिंशच्छून्यंगळु तिर्य्यक्कागि स्थापिसल्पट्टु वा प्रकारदिंदमा पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानमादेकान्नविंशतिस्थानंगळ्गमष्टात्रिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्ततेजस्कायिकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनावसानमागेकविंशतिस्थानंगळ्गे द्वाचत्वारिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्ताप्कायिकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टपर्य्यंतमादवगाहनस्थानंगळ्त्रयोविंशतिगळ्गे षट्चत्वारिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तकभूकायिकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनपर्य्यंतं पंचविंशतिस्थानंगळ्गे पंचाशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते। तत्पंक्तियिंदं केळगे बादरलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुतेजोऽभूकायिकनिगोदप्रतिष्ठिताऽप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुः-

---

जघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टपर्यन्तं षोडशगुणितक्रमस्थानानामेकाधिकस्थानस्य च प्रत्येकं शून्यद्वयसंदृष्टिकरणेन चतुस्त्रिंशच्छून्यानि तिर्यग्लिखितव्यानि तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनादितदुत्कृष्टावगाहनावसानैकोनविंशतिस्थानानां अष्टात्रिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानैकविंशतिस्थानानां द्वाचत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्ताप्कायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानत्रयोविंशत्यवगाहस्थानानां षट्चत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकभूकायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं पञ्चविंशतिस्थानानां पञ्चाशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधो बादरलब्ध्यपर्याप्तकवायुतेजोऽभूकायिकनिगोद-

---

कहते हैं। प्रथम सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उसके उत्कृष्ट अवगाहनस्थानपर्यन्त सोलह स्थान तो गुणित क्रम हैं और एक स्थान साधिक है। एक-एक स्थानकी सूचक संदृष्टि दो शून्य है। सो चौंतीस शून्य दो-दो बिन्दीमें बराबर लिखते हुए सतरह जगह लिखना। यहाँ सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तका जघन्य स्थान पहला है और उत्कृष्ट अठारहवाँ है। किन्तु गुणकारपनेकी अधिकतारूप अन्तराल सतरह ही हैं। इसलिए सतरहका ही ग्रहण किया है। ऐसे ही आगे भी समझना। इसी तरह उक्त पंक्तिके नीचे दूसरी पंक्तिमें सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक वायुकायिक जीवके जघन्य अवगाहनस्थानसे लेकर उसीके उत्कृष्ट अवगाहनस्थान पर्यन्त उन्नीस स्थान हैं। उनकी अड़तीस बिन्दी लिखना। यह दूसरा स्थान होनेसे ऊपरकी पंक्तिमें प्रथम स्थानकी दो बिन्दी छोड़कर द्वितीय स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर आगे बराबर अड़तीस बिन्दी लिखना। तीसरी पंक्तिमें सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक तेजस्कायिककी जघन्य अवगाहनासे उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त इक्कीस स्थान हैं। उनकी बयालीस बिन्दी लिखना। सो यह तीसरा स्थान होनेसे इससे ऊपरकी दूसरी पंक्तिके दूसरे स्थानकी दो बिन्दीके नीचेके स्थानको छोड़कर तीसरे स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर बयालीस बिन्दी दो-दो करके इक्कीस स्थानोंमें लिखना। इसी तीसरी पंक्तिके नीचे चौथी पंक्तिमें सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त अप्कायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहन पर्यन्त तेईस स्थानोंकी छियालीस बिन्दी लिखना। यह चौथा स्थान होनेसे तीसरे स्थानकी दो बिन्दीके नीचेको

---

१. म °गल्कियंक्कागि।

पंचेंद्रियजीवंगळ्गे तं तम्मजघन्यावगाहनमादियागि तंतम्ममुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतं यथासंख्यमागि सप्तविंशत्येकान्नत्रिंशदेकत्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्पंचत्रिंशत्सप्तत्रिंशत्षट्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशदेकचत्वारिंशत् एकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्स्थानंगळ्गं

वा	ते	आ	भू	नि	प्र	अ	बि	ति	च	पं
२७	२९	३१	३३	३५	३७	४६	४४	४१	४१	४३

चतुःपंचाशदष्टपंचाशद्द्विषष्टिषट्षष्टिसप्ततिचतुःसप्ततिद्वानवत्यष्टाशीतिद्वचशीतिद्वचशीति षडशीति संख्याशून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवु ॥ ५

वा	ते	आ	भू	नि	प्र	अ	बि	ति	च	पं
५४	५८	६२	६६	७०	७४	९२	८८	८२	८२	८६

ई प्रकारदिंदमा पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन पंक्तिंयिदं केळगे सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टावगाहनपर्य्यंतमेरडे स्थानंगळ्गे नाल्कु शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टु १०
णि २

४ वी प्रकारदिंदं मुंदेयोंदे पंक्तियोळु सूक्ष्मपर्य्याप्तकवायुतेजोऽब्भूकायिकंगळ्गेयुं मत्तं बादरपर्य्याप्तवायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवंगळ्गेयुं स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादियागि

प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं यथासंख्यं सप्तविंशत्येकान्नत्रिंशदेकत्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्पञ्चत्रिंशत् सप्तत्रिंशत्षट्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशत्त्रयेकचत्वारिंशदेकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्स्थानानां चतुःपञ्चाशदष्टपञ्चाशद्द्विषष्टिषट्षष्टिसप्ततिचतुःसप्ततिद्वानवत्यष्टाशीतिद्वचशीतिद्वचशीतिषडशीतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि । अनेन प्रकारेण तत्पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकषड्वृत्तेरधः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं

छोड़कर चौथे स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर छियालीस बिन्दी लिखना। इसी तरह इस चतुर्थ पंक्तिके नीचे पाँचवीं पंक्तिमें सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त पृथ्वीकायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहनपर्यन्त पच्चीस स्थान हैं। उनकी पचास बिन्दी लिखना। सो यह पाँचवाँ स्थान होनेसे चौथे स्थानकी भी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर पाँचवें स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर पचास बिन्दी लिखना। इसी तरह उक्त पंक्तिके नीचे छठी, सातवीं, आठवीं, नवमी, दशमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं पंक्तिमें बादरलब्ध्यपर्याप्तक वायुकाय, तेजकाय, अप्काय, पृथ्वीकाय, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन ग्यारहका अपने-अपने जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थानपर्यन्त क्रमसे सत्ताईस, उनतीस, इकतीस, तैंतीस, पैंतीस, सैंतीस, छियालीस, चवालीस, इकतालीस, इकतालीस, तेतालीस स्थान हैं। इनके चौवन, अठावन, बासठ, छियासठ, सत्तर, चौहत्तर, बानबे, अठासी, बयासी, बयासी और छियासी बिन्दी लिखना। सो ये स्थान छठे-सातवें आदि होनेसे ऊपरकी पंक्तिके आदि स्थानकी दो-दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर छठे-सातवें आदि स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर पंक्तिमें लिखना।

इसी प्रकार उस पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तककी पंक्तिके नीचे सतरहवीं पंक्तिमें सूक्ष्म निगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उत्कृष्ट अवगाह पर्यन्त दो स्थान हैं।

स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमेरडेरडु स्थानंगळ्गे नाल्कु नाल्कु शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टु—

बा २	ते २	आ २	भू २	वा २	ते २	अ २	पु २	नि २	प्र २
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४

मिते प्रतिष्ठितप्रत्येकोत्कृष्टावगाहनस्थानदिंदं मुंदे तत्पंक्तियोळे अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तक-
५ जघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमिप्पत्तं त्रयोदशस्थानंगळ्गे षड्विंशति-
शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टु अ १३ वंते मत्तमा पंक्तियिदं केळगे पर्य्याप्तकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवं-
२६
गळ्गे तंतम्म जघन्यावगाहनस्थानमादियागि स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमेकादशाऽष्टाऽष्टदश-
स्थानंगळ्गे द्वि ११ त्रि च ८ पं १० यथासंख्यमागि द्वाविंशतिषोडशषोडशविंशति संख्या-
२२ ८ १६ २०
१६
१० शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टु वितु मत्स्यरचनेयोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थान-

---

स्थानद्वयस्य चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि। अनेन प्रकारेण अग्रे एकस्यामेव षड्क्तौ सूक्ष्मपर्याप्तकवायुतेजोऽब्भूकायिकानां पुनः बादरपर्याप्तवायुतेजोऽपृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवानां च स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं प्रत्येकं स्थानद्वयस्य चत्वारि चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि। एवमेव प्रतिष्ठितप्रत्येकोत्कृष्टावगाहनस्थानादग्रे तत्पङ्क्तावेव अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानादित-

---

१५ उनकी चार बिन्दी लिखना। इसी प्रकारसे आगे एक ही पंक्तिमें सूक्ष्म पर्याप्तक वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, पुनः बादर पर्याप्त वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंके अपने-अपने जघन्य अवगाह स्थानको लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहस्थान पर्यन्त प्रत्येकके दो-दो स्थान हैं। उनकी चार-चार बिन्दी लिखना। इसी प्रकार प्रतिष्ठित प्रत्येकके उत्कृष्ट अवगाहन स्थानसे आगे
२० उसी पंक्तिमें ही अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहनस्थान पर्यन्त तेरह स्थानोंकी छब्बीस बिन्दियाँ लिखना। सो पर्याप्त सूक्ष्म निगोदका आदि स्थान सतरहवाँ है। इसलिए सोलहवें स्थानकी दो बिन्दुके नीचेको छोड़कर सतरहवें, अठारहवें आदि स्थानकी चार बिन्दी लिखना। सूक्ष्म पर्याप्तकका आदि स्थान बीसवाँ है इसलिए उसी पंक्तिमें उन्नीसवें स्थानके दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर बीसवाँ-इक्कीसवाँ
२५ दो स्थानोंकी चार बिन्दी लिखना। इसी तरह बीच-बीचमें एक स्थानकी दो-दो बिन्दीके नीचेको छोड़-छोड़कर सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय आदिके दो-दो स्थानोंकी चार-चार बिन्दी लिखना। उसी पंक्तिमें अप्रतिष्ठित प्रत्येकके पचासवेंसे लेकर स्थान हैं। इसलिए पचासवें स्थानकी बिन्दीसे लेकर तेरह स्थानोंकी छब्बीस बिन्दी लिखना। ये सब एक पंक्तिमें कहा है। उस पंक्तिके नीचे-नीचे अठारहवीं, उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं, पंक्तिमें पर्याप्त
३० दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवोंका अपने-अपने जघन्य अवगाहनस्थानसे लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहस्थान पर्यन्त ग्यारह, आठ, आठ, दस स्थानोंकी क्रमसे

मादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमाद सर्व्वावगाहनस्थानंगळ्गे प्रत्येकं शून्यद्वयविवक्षेयिंदं तत्तत्स्थानगणनाश्रयदिं हीनाधिकभागशून्यविन्यासक्रममनादिनिधनार्षदोळ्पेळ्-ल्पट्टुदु। इंतु जीवसमासंगळ्गे देहावगाहनाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ॥

दुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तत्रयोदशस्थानानां षड्विंशतिशून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः पर्याप्तक- ५
द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तमेकादशाष्टाष्ट-दशस्थानानां यथासंख्यं द्वात्रिंशतिषोडशषोडशविंशतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि। एवं मत्स्यरचनायां सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं सर्वावि-गाहनस्थानानां प्रत्येकं शून्यद्वयविवक्षया तत्स्थानगणनाश्रयो हीनाधिकभावः शून्यविन्यासक्रमः अनादिनिधनार्षे

बाईस, सोलह, सोलह और बीस बिन्दी लिखना। सो पर्याप्त दोइन्द्रियके इक्यावनसे लेकर १०
स्थान हैं। इसलिए सतरहवीं पंक्तिमें अप्रतिष्ठित प्रत्येककी जो छब्बीस बिन्दी लिखी थीं, उनके नीचे आदिकी पचासवें स्थानकी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर आगे बाईस बिन्दी लिखना। इसी तरह नीचे-नीचे आदिकी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर बावनवें, तेरपनवें, चौवनवें स्थानोंकी बिन्दीसे लगाकर क्रमसे सोलह, सोलह, बीस बिन्दी लिखना। इस प्रकार मत्स्य रचनामें सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यअवगाहनस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय १५
पर्याप्तके उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यन्त सब अवगाहनस्थानोंमें-से प्रत्येकके दो-दो शून्योंकी विवक्षा होनेसे उन स्थानोंकी गणनाके आश्रयसे हीन अधिक भावको लिये हुए शून्य स्थापना-का क्रम अनादि निधन आगममें कहा है। इसके अनुसार रचना करनेपर समस्त अवगाहन-की रचना मत्स्याकार होती है।

विशेषार्थ—मत्स्य रचनाके उक्त विवरणका संक्षिप्तसार इस प्रकार है—सूक्ष्म २०
अपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनासे उसके उत्कृष्ट अवगाहपर्यन्त गुणाकार सोलह हैं, पुनः एक अधिक है। इस प्रकार सतरह स्थानोंके प्रत्येक स्थानके दो शून्यके हिसाबसे चौंतीस शून्य सबसे ऊपरकी पंक्तिमें लिखना चाहिए। उसके नीचे सूक्ष्म अपर्याप्तक वायुकायिकके जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त उन्नीस स्थानोंके अड़तीस शून्य लिखना चाहिए। इसी तरह सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायिकसे लेकर प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्यन्त प्रत्येकके दो स्थान अधिक होनेसे प्रत्येक २५
पंक्तिमें चार शून्य अधिक होते हैं। इस तरह बयालीस, छियालीस, पचास, चौवन, अठा-वन, बासठ, छियासठ, सत्तर और चौहत्तर शून्य होते हैं। आगे भी अपने जघन्यसे अपने उत्कृष्ट पर्यन्त स्थान गणनाके द्वारा शून्य गणना जानना चाहिए। ऊपरकी पंक्तिके जघन्यसे नीचेकी पंक्तिका जघन्य दो शून्य छोड़कर होता है। सतरहवीं पंक्तिमें एकमें ही बारह जीवों-के जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त अपने-अपने योग्य शून्य लिखकर उसके नीचे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, ३०
चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंके अपने-अपने जघन्य से अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यन्त चार पंक्तियोंमें अपनी-अपनी स्थान गणनासे शून्योंकी गणना जानना। इस प्रकार रचनेपर सब अवगाहोंकी रचना मत्स्यके आकार होती है ॥११२॥

सूआजोणि६।८।२२	सूआजावा६।८।२२	ते ६।८।२२	आ६।८।२२	भू ६।८।२२	बाआजावा ६।८।२२		
अ	अ	अ	अ	अ	अ		
प१९।८।९।८।२२।७९	प१९।८।८।८।२२।७९	प१९।८।७।८।२२।७९	प१९।८।६।८।२२।७९	प१९।८।५।८।२२।७९	प१८।८।५।८।२२।७९		
अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ		
ते ६।८।२२	आ ६।८।२२	पु ६।८।२२	णि ६।८।२२	प्र ६।८।२२	अप्र ८।२२		
अ	अ	अ	अ	अ	अ		
प१७।८।५।८।२२।७९	प१६।८।५।८।२२।७९	प१५।८।५।८।२२।७९	प१४।८।५।८।२२।७९	प१३।८।५।८।२२।७९	प१२।८।५।८।२२।७९		
अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ			
बि ६।८।२२	ते ६।८।२२	च ६।८।२२	पं ६।८।२२	सूपाजाण। ६।८।२२	सूआजाजाण ६।८।२१		
अ	अ	अ	अ	अ	अ		
प११।८।५।८।२२।७९	प१०।८।५।८।२२।७९	प९।८।५।८।२२।७९	प८।८।५।८।२२।७९	प८।८।५।८।२२।७९	प८।८।४।८।२१।७९		
अ अ अ	प अ अ	अ अ अ	अ अ	अ अ अ	अ अ अ		

सूपाज णि ६।८।२०	सूपाज बाध६।८।२०	सूआजाजा. ६।८।१९	सूपाज बाध६।८।१८	सूपाजातेध६।८।१८	सूआजाते ६।८।१७
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प८८४।८।२०७९	प८।८३।८।२०७९	प८।८।३८।८।१९७९	प८।८३।८।१८।७९	प८।८२।८।२।८।७९	प८।८२।८।२।८।७९
अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ अ
सूपाजाते ६।८।६	सूपाजाज ६।८।६	सूआजाजाध६।८।५	सूपाजाआध६।८।५	सूपाजाभू ६।८।४	सूआ । ज । भू ६।८।३
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प८।८२।८।२६।७९	प८।८२।८।२६।७९	प८।८।२।८।२५।७९	प८।८।२।८।२४७९	प८ । ८ । १ ।२।७९	प ८ । ८ । १ ३ । ७९
अ अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ अ	अ अ अ अ	अ अ	अ अ
सूपाजाभू६।८।२	बापाजाबा. ६।८।२	बाआजाबा ६।८।११	बापाजाबा ६।८।१०	बापाजाते ६।८।१०	बा । आ । ज । ते ६।८९
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प८।८।१२।७९	प७।८।१२।७९	प७।८।१९७९	प७।८।१०।७९	प६ । ८।१०।७९	प ६ । ८९ । ७९
अ अ	अ अ	अ अ	अ अ	अ अ	अ अ
बापाजाले६।८।८	बापाजाल ६।८।८	बाआजाआध६।८७	बा पाज आ ६।८७	बापाजाजु ६।८६	बाआ । ज । पु ६।८५
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प६।८।८।७९	प५।८।८।७९	प५।८७ । ७९	प५।८६७९	प५ । ८६ । ७९	प ५।८५ । ७९
अ अ	अ अ	अ अ	अ अ	अ अ	अ अ

बा । प । उ पु । ६८४ अ प ४८४७९ अ अ	बा । प । ज । णि । ६८४ अ प ३८४ । ७९ अ अ	बा । आ।उणि।६८।३ अ प ३ । ८ । ३७९ अ अ	बा । प । उ । णि। ६८२ अ प ३८२ । ७९ अ अ	बा । प । ज । प्र ६८२ अ प २ । ८ । २ । ७९ अ अ	बा । आ । उ प्र ६८१ अ प २८१ । ७९ अ	बा।पा।उप्रा।६ प २ । ७९ अ

बा।पा।जा।लप्र ६ १ । ७१९ अ	पा।जा।बि। ६ ७१९	पा।जा।ति ६ ७१८	प । ज । च । ६ ७१७	प ज पं । ६ ७१६	आ । उ।ति।६ ७१५	आ । उ।च।६ ७१४	आ।उ।बि। ६ ७१३	आ । उ ल प्र ७१२	आ ।उ।पं ६ ७११

पु । उ । ति । ६७	पु । उ । च । ६७७	प । उ । बि । ६७७७	प उ । आ प्र । ६७७७७	प उ पं । ६७७७७७

८ ८ ८ प प प प प प प प प प प प प प प अधिक अ
अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ

णि ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ३४

अ

वा ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ३८

अ

ते ज ०० उ ४२

अ

अ ज ०० उ ४६

अ

भू ज ०० उ ५०

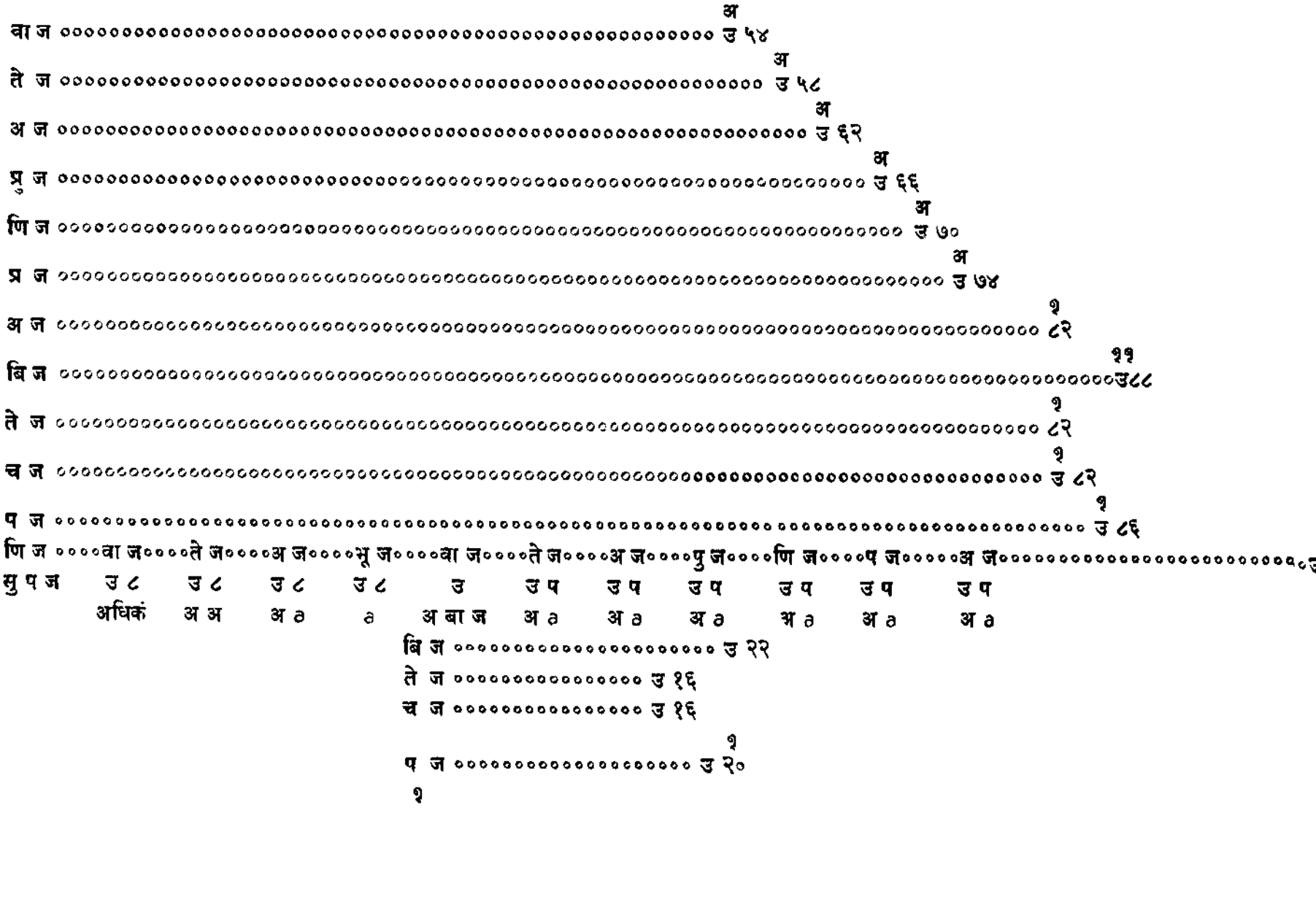
वा ज उ ५४
ते ज उ ५८
अ ज उ ६२
प्र ज उ ६६
णि ज उ ७०
प्र ज उ ७४
अ ज ८२
बि ज उ८८
ते ज ८२
च ज उ ८२
प ज उ ८६
णि ज वा ज ते ज अ ज भू ज वा ज ते ज अ ज पु ज णि ज प ज अ ज
सु प ज उ ८ उ ८ उ ८ उ ८ उ उ प उ प उ प उ प उ प उ प
अधिकं अ अ अ अ अ अ बा ज अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ
बि ज उ २२
ते ज उ १६
च ज उ १६
प ज उ २०

अनंतरं जीवसमासगळगे कुलसंख्याविशेषप्रदर्शनार्त्थमिदं पेळ्दपरु ।—

बावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोडि सयसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणिवाउक्कायाण परिसंखा ॥११३॥

द्वाविंशतिस्सप्त त्रयस्सप्त च कुलकोटिशतसहस्राणि । ज्ञेयानि पृथिव्युदकाग्निवायुकायानां परिसंख्या ॥

पृथिवीकायिकजीवंगळगे द्वाविंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । अप्कायिकंगळगे सप्तलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । तेजस्कायिकंगळगे त्रिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । वायुकायिकंगळगे सप्तलक्षकोटिकुलंगळप्पुवेंदितु ज्ञेयंगळप्पवु ।

कोडिसयसहस्साइं सत्तट्ठ णव य अट्ठवीसाइं ।
बीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय हरिदकायाणं ॥११४॥

कोटीनां शतसहस्राणि सप्ताष्ट नवाष्टाविंशति । द्वींद्रियत्रींद्रिय चतुरिंद्रिय हरितकायानां ॥

द्वींद्रियंगळगे सप्तलक्षकोटि कुलंगळप्पुवु । त्रींद्रियंगळगष्टलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । चतुरिंद्रियंगळगे नवलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । वनस्पतिकायिकंगळगष्टाविंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु ॥

अद्धं तेरस बारस दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचरपक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

अर्द्धत्रयोदश द्वादश दशकं कुलकोटिशतसहस्राणि । जलचरपक्षिचतुष्पदानामुरःपरिसर्प्पेषु नव भवन्ति ॥

कथितः ॥११२॥ एवं जीवसमासानामवगाहनान्युक्त्वा अधुना तेषां कुलसंख्याविशेषं गाथाचतुष्केण कथयति—

पृथ्वीकायिकानां कुलानि द्वाविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । अप्कायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति । तेजस्कायिकानां कुलानि त्रिलक्षकोट्यो भवन्ति । वायुकायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति इति ज्ञातव्यं ॥११३॥

द्वीन्द्रियाणां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति । त्रीन्द्रियाणां कुलानि अष्टलक्षकोट्यो भवन्ति । चतुरिन्द्रियाणां कुलानि नवलक्षकोट्यो भवन्ति । वनस्पतिकायिकानां कुलानि अष्टाविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति ॥११४॥

इस तरह जीव समासोंके अवगाहन स्थानोंको कहकर अब उनके कुलोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं—

पृथ्वीकायिकोंके कुल बाईस लाख कोटि होते हैं । अप्कायिकोंके कुल सात लाख कोटि हैं । तेजस्कायिकोंके कुल तीन लाख कोटि हैं । वायुकायिकोंके कुल सात लाख कोटि हैं । यह ज्ञातव्य है ॥११३॥

दो इन्द्रियोंके कुल सात लाख कोटि हैं । त्रीन्द्रियोंके कुल आठ लाख कोटि हैं । चतुरिन्द्रियोंके कुल नौ लाख कोटि हैं । वनस्पतिकायिकोंके कुल अट्ठाईस लाख कोटि हैं ॥११४॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जलचरोंके कुल साढ़े बारह लाख कोटि हैं । पक्षियोंके कुल बारह

पंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळु जलचरंगळगे अर्द्धत्रयोदशं । त्रयोदशानां पूरणं त्रयोदशं । अर्द्ध त्रयोदशमर्द्धत्रयोदशं । अर्द्धत्रयोदशलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । चतुष्पदंगलगे दशलक्षकोटि कुलंगलप्पुवु । उरपरिसर्प्पंगळप्पसरीसृपादिगळगे नवलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु ॥

छप्पंचाहियवीसं बारसकुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होंति णेयाणि ॥११६॥ ५

षट्पञ्चाधिकविंशतिर्द्वादशकुलकोटिशतसहस्राणि । सुरनैरयिकनराणां यथाक्रमं भवन्ति ज्ञेयानि ॥

सुरगळगे षड्विंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । नैरयिकगेपंचविंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । नरगळगे द्वादशलक्षकोटिकुलंगळु ज्ञेयंगळप्पुवु ॥

अनंतरं सर्व्वजीवसमासंगळ कुलयुतिनिर्द्देशार्त्थमिदं पेळ्दपरु ।— १०

एया य कोडकोडी सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणं तु ॥११७॥

एका च कोटिकोटी सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि । पंचाशत्कोटिसहस्राणि सर्व्वांगिनां कुलानां तु ॥

इंतु पेळल्पट्ट पृथ्वीकायिकादिमनुष्यपर्य्यंतमप्प सर्व्वदेहिगळ कुलंगळयुतियों दुकोटिकोटियुं १५ तों भत्तेळु लक्षमु मयिवत्तु सासिरकोटियुमक्कुं १९७५०००००००००० ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वरराय वादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांत-

---

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु जलचराणां कुलानि अर्धत्रयोदश-सार्धद्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । पक्षिणां कुलानि द्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । चतुष्पदानां कुलानि दशलक्षकोट्यो भवन्ति । उरःपरिसर्पाणां सरीसृपादीनां कुलानि २० नवलक्षकोट्यो भवन्ति ॥११५॥

सुराणां कुलानि षड्विंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । नैरयिकाणां कुलानि पञ्चविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । नराणां कुलानि द्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । एतानि सर्वकुलानि यथाक्रमं भव्यैर्ज्ञेयानि भवन्ति ॥११६॥ अथ सर्वजीवसमासानां कुलयुतिं निर्दिशति—

एवमुक्तानां पृथ्वीकायिकादिमनुष्यपर्यन्तसर्वदेहिकुलानां युतिः एका कोटाकोटिः सप्तनवतिलक्षपञ्चा- २५

लाख कोटि हैं । चौपायोंके कुल दस लाख कोटि हैं । और जो छातीके बल रेंगकर चलनेवाले सर्प आदि हैं उनके कुल नौ लाख कोटि हैं ॥११५॥

देवोंके कुल छब्बीस लाख कोटि हैं । नारकियोंके कुल पच्चीस लाख कोटि हैं । मनुष्योंके कुल बारह लाख कोटि हैं । ये सब कुल यथाक्रम भव्य जीवोंके द्वारा जानने योग्य हैं ॥११६॥ ३०

इस प्रकार कहे गये पृथिवीकायिकसे लेकर मनुष्य पर्यन्त सब प्राणियोंके कुलोंका जोड़ एक कोटाकोटि सत्तानवे लाख पचास हजार कोटि होता है ।

चक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटक-वृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु द्वितीय जीवसमास प्ररूपणमहाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ॥

शत्सहस्रकोट्यश्च भवति ॥११७॥

५ विशेषार्थ—जिन पुद्गल स्कन्धोंसे शरीर बनता है उनके भेदका नाम कुल है ॥ ११७ ॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले
१० श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से जीवसमास प्ररूपणा नामक द्वितीय महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

अथ पर्याप्तिप्ररूपणा

मत्तमिल्लि गुणयोगियप्प लोकोत्तरगणितपरिभाषेयं पेळ्वेमदे तेंदोडे :—लोकोत्तरगणितं संख्यातमसंख्यातमनंतमेंदितु मूरु भेदमप्पुदल्लि संख्यातं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदर्दिद मूरु भेदमक्कु मसंख्यातमुं परीतासंख्यातं युक्तासंख्यातं द्विकवारासंख्यातमुमेंदितु मूरु भेदमक्कुं। अल्लि परीतासंख्यातं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदर्दिद मूरु तेरनक्कुं। युक्तासंख्यातमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदर्दिद मूरु भेदमक्कुं द्विकवारासंख्यातं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदर्दिदं मूरु भेदमक्कुं मनंतमुं परीतानंतं युक्तानन्तद्विकवारानंतभेदर्दिदं त्रिविधमक्कुं। परीतानंतमु जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदर्दिद त्रिविधमक्कुं। युक्तानंतमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदर्दिदं त्रिविधमक्कुं। द्विकवारानंतमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदर्दिदं त्रिविधमक्कुं।

इंतेकविंशतिभेदभिन्नंगळोळु प्रथमोद्दिष्टसंख्यातजघन्यमेरडरूपुगळक्कुं। संख्यातं भेदग्राहियप्पुदरिंद मोंदक्क भेदत्वमप्पुदरिनदं बिट्टेरडक्के ग्रहणमक्कु मिदु संख्यातसर्व्वजघन्यमेंदु पेळल्पट्टुदु। मूरु मोदलागि परीतासंख्यातजघन्यराशियोळोंदं कुंदिसिदोडे संख्यातदुत्कृष्टमप्पुददरोळोंदु रूपुगुंदिदोडे संख्यातचरममध्यविकल्पमक्कुमा परीतासंख्यातजघन्यप्रमाणमावुदेंदोडे

प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानन्तचतुष्टयम्।
तृतीयं तीर्थकर्तारं संभवेशं नमाम्यहम् ॥१॥

अत्रोपयोगिलोकोत्तरगणितमुच्यते—तत् संख्यातमसंख्यातमनन्तमिति त्रिधा। तत्र संख्यातं जघन्यं मध्यममुत्कृष्टमिति त्रिधा। असंख्यातं तु परीतं युक्तं द्विकवारमिति त्रिधापि जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं सन्नवधा भवति। तथानन्तमपि नवधा। एतेषु तदेकविंशतिभेदेषु जघन्यसंख्यातं द्विसंख्यं। तस्य भेदग्राहकत्वेन एकस्यैतदभावात्। त्र्यादीनां तु तन्मध्यमभेदत्वेन द्विकस्यैव तद्भावात्। उत्कृष्टसंख्यातं रूपोनजघन्यपरिमितासंख्यात-

---

जिन्होंने घातिकर्मोंको नष्ट करके अनन्तचतुष्टयको प्राप्त कर लिया है, उन तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथको नमस्कार करता हूँ।

अब यहाँ उपयोगी अलौकिक गणित कहते हैं। अलौकिक मानके चार भेद हैं—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। उनमें-से द्रव्यमानके दो भेद हैं—संख्यामान और उपमामान। संख्यामानके तीन भेद हैं—संख्यात, असंख्यात, अनन्त। उनमें-से संख्यातके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। असंख्यात परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकारका होनेपर भी प्रत्येकके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद होनेसे नौ प्रकारका है। इसी तरह अनन्त भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तमें-से प्रत्येकके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद होनेसे नौ प्रकारका है। इन इक्कीस भेदोंमें-से जघन्य संख्यात दोकी संख्या है। क्योंकि एकसे गुणा करनेपर या एकका भाग देनेपर न वृद्धि होती है और न हानि होती है। अतः भेदका ग्राहक होनेसे दोकी संख्याको ही जघन्य संख्यात माना है। रही तीन आदि संख्या, सो वे मध्यम संख्यातके भेद होनेसे दोको ही जघन्य संख्यात कहा है। एक कम जघन्यपरीतासंख्यात उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण है।

चरमानवस्थितकुंडसर्षपप्रमितमक्कु मा चरमानवस्थितकुंडमं बुदे तेंदोडे :—पेळवें ।—अनवस्था-कुंडमें दु शलाकाकुंडमें दु प्रतिशलाकाकुंडमें दु महाशलाकाकुंडमें बितु नाल्कुकुंडंगळु जंबूद्वीपोपमानंगळप्रत्येकमेकैकलक्षप्रमाणयोजनव्यासंगळं सहस्रयोजनोत्सेधंगळ स्थापिसल्पडुवुवु ।

अवरोळ् प्रथमोद्दिष्टानवस्थाकुंडमं शिखाफलकसहितमागि सर्षपंगळ् तुंबल्पडुववुमंतु तुंबिद प्रथमानवस्थितकुंडसर्षपप्रमाणंगळगेनितक्कुमेंदोडे सासिरदो भैनूरतो भत्तेळु षड्वार-कोटिगळुं, पन्नों दुलक्षमुमिप्पत्तो भत्तु सासिरद मूनूरे भत्तनाल्कु पंचवारकोटिगळु, मयवत्तो दु लक्षमुं मूवत्तों दु सासिरदरु नूर मुवत्तारु चतुर्व्वारकोटिगळं, मुवत्तारु लक्षमुं मुवत्तारु सासिरद मूनूररुवत्तमूरु त्रिवारकोठिगळु, मरवत्तमूरु लक्षमुमरुवत्तमूरु सासिरदरुनूर मूवत्तारु कोटिकोटिगळुं, मूवत्तारुलक्षमुं मूवत्तारु सासिरद मूनूररुवत्तमूरु कोटिगलु मरुवत्तमूरुलक्षमुमरुवत्तमूरु सासिरदरुनूर मूवत्तारुसर्षपंगळु मों दु सर्षपद चतुरेकादश भागंगळप्पुवु । १९९७ ११२९३८४ ५१३१६३६ ३६३६३६३६३ ६३६३६३६३ ६३६३ ६३६३६३६ । ४/११ मितु सर्षपंगळं देवनागलु मेणुमनुष्यं बुद्धियिदं करतलदोळ्तुंबिकोंडु जंबूद्वीपं मोदल्गोंडु द्वीपदोळोंदुं समुद्रदोळोंदं कर्मदिदं कुडुत्तं पोगि यावडयोळा सर्षपंगळ् परिसमाप्तंगळप्पुवा द्वीपं मेणुमासमुद्रमागलदु गूडि परगण द्वीपसमुद्रं-

---

मात्रम् । कियत्तज्जघन्यपरिमितासंख्यातम् ? इति चेदुच्यते अनवस्था-शलाका-प्रतिशलाका-महाशलाकानामानि प्रमाणयोजनलक्षव्याससहस्रावगाधानि जम्बूद्वीपोपमानानि चत्वारि कुण्डानि कर्तव्यानि । तत्र अनवस्थाकुण्डं सर्षपैरेकसहस्रनवशतसप्तनवतिषड्वारकोट्येकादशलक्षैकान्नत्रिंशत्सहस्रत्रिंशतचतुरशीतिपञ्चवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षैकत्रिंशत्सहस्रषट्शतषड्त्रिंशच्चतुर्वारकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषड्त्रिंशत्सहस्रत्रिंशत्त्रिषष्टित्रिवारकोटित्रिषष्टिलक्ष-त्रिषष्टिसहस्रषट्शतषड्त्रिंशत्कोटीकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रत्रिंशत्त्रिषष्टिकोटित्रिषष्टिलक्षत्रिषष्टिसहस्रषट्-शतषड्त्रिंशत्संख्यैश्चतुरेकादशभागाधिकैः १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ ४/११ सशिखं भृत्वा अन्यमेकं सर्षपं शलाकाकुण्डे निक्षिप्य तदनवस्थाकुण्डसर्षपान्मर्त्या मनुष्यो

अतः जघन्यपरीतासंख्यातका प्रमाण कहते हैं—अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका नामके चार कुण्डोंकी कल्पना करें। प्रत्येक कुण्ड प्रमाण योजनसे एक लाख योजनका व्यास और एक हजार योजनकी गहराईको लिये हुए जम्बूद्वीपके प्रमाण हो। इस अनवस्था कुण्डको सरसोंसे मुख तक भरनेके बाद उसके ऊपर आकाशमें जितनी ऊँचाई तक वह भरा जा सकता हो, भरनेपर समस्त सरसोंका प्रमाण एक हजार नौ सौ सत्तानवे कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि, ग्यारह लाख उनतीस हजार तीन सौ चौरासी कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख इकतीस हजार छह सौ छत्तीस कोटि कोटि कोटि कोटि, छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सौ त्रेसठ कोटि कोटि कोटि, तरेसठ लाख तरेसठ हजार छ सौ छत्तीस कोटि कोटि, छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीनसौ तरेसठ कोटि, तरेसठ लाख तरेसठ हजार छ सौ छत्तीस तथा चारबटे ग्यारह १९९७, ११२९३८४, ५१३१६३६, ३६३६३६३, ६३ ६३ ६३६, ३६ ३६ ३६३, ६३ ६३ ६३६ $\frac{४}{११}$ होता है। इस प्रकार शिखा तक अनवस्थाकुण्ड-के एक बार भरनेपर शलाकाकुण्डमें एक सरसो डाल दे। उस अनवस्था कुण्डकी सरसोंको

---

१. अनवस्था। २. शलाका। ३. प्रतिशलाका। ४. महाशलाका इंतुनाल्कुकुंडंगलु। ५. क विनितुं। ६. ब °काख्यानि चत्वारि कुण्डानिवृत्तानि कर्तव्यानि। तानि प्रमा°।

गळनोळकोंड सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमनुळ्ळ द्वितीयानवस्थितकुंडमं शिखाफलसहितमागि तुंबि। तुंबित्तेंदु शलाकाकुंडदोळु बेरेरडु सर्षपंगळं कल्पिसि मोदलोंदु मनिगळिनोंदुमनितेरडुमं हाइक्कि मत्ता द्वितीयानवस्थितकुंडसर्षपंगळं मुंनिनंते मुंदण द्वीपक्कोंदं समुद्रक्कोंदं कुडुत्तं पोगि यावंडयोळा सर्षपंगळ्समाप्तमंगळक्कुं अदू गूडि पेरगण समस्तद्वीपसमुद्रंगळनोलकोंड सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमप्प तृतीयानवस्थितकुंडमं शिखाफलं बेरसुतुंबि तुंबित्तेंदु मुन्निन शलाकाकुंडदोळ्मत्तोंदु सर्षपमं बेरोंदं कल्पिसि हाइक्किकल्लिमूरु सर्षपंगळक्कुमल्लिदं बळिका तृतीयानवस्थाकुंडसर्षपंगळु मुन्निनंते मुंदण द्वीपसमुद्रंगळिगत्तुपरिसमाप्तमादुदु मोदल्गोंडु पेरगण द्वीपसमुद्रंगळनितुमनोळकोंडु सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमप्प चतुर्थानवास्थितकुंडमं सर्षपंगळिं शिखिबेरसु तुंबितुंबित्तेंदु मत्तोंदु सर्षपमं बेरोंदं कल्पिसि शलाकाकुंडदोळु हाइक्कलद् कूडि नाल्कु शलाकगळप्पुवितो क्रमदिंदनवस्थाकुंडगळं नडसि नडसि तुंबि तुंबितेंदोंदु सर्षपंगळं हाइक्कुत्तं बरला शलाकाकुंडमुमा अनवस्थाकुंडमु मोदले तुंबुगुमंतु तुंबुतिरलु शलाकाकुंडं तुंबिदुदेंदु प्रतिशलाकाकांडदोळु बेरोंदु सर्षपमं कल्पिसि हाकि शलाकाकुंडमं बळिकेय्दु मुन्निनंतेयनवस्थाकुंडंगळं नडसि तुंबि तुंबि शलाकाकुंडमुमं द्वितीयवारमुं तुंबि प्रतिशलाकाकुंडदोळ्मुन्निनंते बेरोंदु

देवो वा गृहीत्वा जम्बूद्वीपादिद्वीपसमुद्रेषु एकैकस्मिन् दत्ते यत्र द्वीपे समुद्रे वा परिसमाप्यन्ते तावद्द्वीपसमुद्रसूचीव्यासं पूर्वोक्तागाधं द्वितीयमनवस्थाकुण्डं कृत्वा सशिखं सर्षपैर्भृत्वा शलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत्। तत्कुण्डसर्षपान् तदग्रतनद्वीपसमुद्रेषु एकैकं दत्वा तत्सहितपूर्वद्वीपसमुद्रव्यासं प्रागुक्तागाधं तृतीयमनवस्थाकुण्डं कृत्वा सर्षपैः सशिखं भृत्वा प्राक्तनशलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत्। अनेन क्रमेण प्रागुक्तैकनवाद्यङ्ककृतसंख्यामात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु शलाकाकुण्डं सशिखं भ्रियते तदा प्रतिशलाकाकुण्डे एकं सर्षपं निक्षिपेत्। पुनः शलाकाकुण्डं रिक्तयित्वा पुनस्तावत्सु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु शलाकाकुण्डं भ्रियते तदा प्रतिशलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत्। अनेन क्रमेणैकनवाद्यङ्कवर्गमात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु प्रतिशलाकाकुण्डमपि भ्रियते

मनुष्य अपनी बुद्धिके द्वारा अथवा देव ग्रहण करके जम्बूद्वीपसे लेकर प्रत्येक द्वीप और समुद्रमें एक-एक सरसों क्षेपण करें। ऐसा करनेपर जिस द्वीप या समुद्रमें सरसों समाप्त हों, उतने द्वीप समुद्रोंके सूचीव्यास प्रमाण चौड़ा तथा एक हजार योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड करके उसे भी पूर्ववत् शिखा पर्यन्त सरसोंसे भरकर शलाका कुण्डमें दूसरी बार एक सरसों क्षेपण करें। उस कुण्डके सरसोंको उससे आगेके द्वीपसमुद्रोंमें एक-एक सरसों क्षेपण करनेपर जिस द्वीप या समुद्रमें वे सरसों समाप्त हों, वहाँ तकके समस्त पूर्व द्वीपसमुद्रोंके व्यास प्रमाण चौड़ा और एक हजार योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुण्ड करके उसे शिखा तक सरसोंसे भरकर पूर्वोक्त शलाका कुण्डमें तीसरी बार एक सरसों क्षेपण करें। पुनः उसी प्रकार करें। इस क्रमसे पूर्वोक्त एक नौ आदि अंकोंकी संख्यामात्र अनवस्था कुण्डोंके होनेपर शलाका कुण्ड शिखा पर्यन्त भरता है। शलाका कुण्डके भरनेपर प्रतिशलाकाकुण्डमें एक सरसों क्षेपण करें। पुनः शलाकाकुण्डको खाली करके उसी तरह अनवस्था कुण्डके द्वारा उसे भरना चाहिए। उक्त एक नौ आदि अंक प्रमाण अनवस्थाकुण्डोंके होनेपर शलाका कुण्ड भरता है। उसके भरनेपर प्रतिशलाका कुण्डमें पुनः एक सरसों क्षेपण करें। इस प्रकार क्रमसे एक नौ आदि अंकोंके वर्ग प्रमाण अनवस्था कुण्डोंके होनेपर प्रतिशलाका कुण्ड भी भर जाता है। प्रतिशलाका कुण्डके भरनेपर महाशलाका कुण्डमें अन्य सरसों क्षेपण करें। इस

---

१. क हाकि। २. म °बिदुदेंदु।

सर्षपमं कल्पिसि हाकिदोडदरोळेरडु सर्षपंगळप्पुंवंतु प्रतिशलाकाकुंडमुं तुंबिदागळा पिंदण शलाकाकुंडमुमनवस्थाकुंडमुमेरडुं तुंबिर्प्पुवंतु मूरुं कुंडंगळं तुंबिरला प्रतिशलाकाकुंड तुंबिदंदु महाशलाकाकुंडदोळोंदु सर्षपमं बेरोंदं मुन्निनंत कल्पिसि हाकि मत्ता अनवस्थाकुंडं नडदु शलाकाकुंड तुंबुगुमा शलाकाकुंडमं तुंबि तुंबि प्रतिशलाकाकुंडं तुंबुगुमा प्रतिशलाकुंडं तुंबि तुंबि महाशलाकाकुंडमुं तुंबिदागळ् पिंदण प्रतिशलाकाकुंडमुं शलाकाकुंडमुमनवस्थाकुंडमुं नाल्कुं तुंबिर्प्पुवंतु तुंबिदनवस्थाकुंडमदु चरमानवस्थितकुंडमें बुदक्कुमा कुंडसर्षपंगळु परीतासंख्यातजघन्यराशि प्रमाणमप्पुदु ॥

इल्लि त्रैराशिकमं माडल्पडुगु । शलाकाकुंडदोळोंदु सर्षपमं हाइक्कुत्तिरलु आनुमोंदनवस्थाकुंडमक्कु । मागळु शलाकाकुंडदोळेकनवादिमात्रमं हाकलिनितुमनवस्थाकुंडंगळप्पुवंतंदोडे प्र १ । फल १ । इ १९=। मत्तं प्रतिशलाकाकुंडदोळोंदु सर्षपनिक्कलेत्तलानुमनवस्थाकुंडं-
१९
गळिगे नवमात्रमागलागळा प्रतिशलाकाकुंडदोळेगे नवमात्रसर्षपंगळं प्रक्षेपिसुत्तिरलेनितुमनवस्थाकुंडमप्पुवंदोडे प्र=प्र १ । फल । आ १९=इ । प्रति १९=मत्तं महाशलाकयोळोंदु सर्षपक्क

तदा महाशलाकाकुण्डे एकं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेणैकनवादिघनमात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु महाशलाकाकुण्डमपि भ्रियते तदा प्राक्तनानि प्रतिशलाकाशलाकानवस्थाख्यान्यपि कुण्डानि भ्रियन्ते । तदात्र यच्चरममनवस्थाकुण्डं तत्र यावन्तः सर्षपास्तत्प्रमाणं रूपोनं चेत्तदोत्कृष्टसंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १५ संपूर्णं तदा जघन्यपरीतासंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १६ अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण सर्वेषु मध्यपरीतासंख्यातविकल्पेषु गतेषु यदा जघन्यपरीतासंख्यातं विरलयित्वा रूपं प्रति तदेव दत्त्वा परस्परगुणितलब्धमात्रं रूपोनं जायते तदा उत्कृष्ट-

परीतासंख्यातं भवति । तत्संदृष्टिः २ संपूर्णं तदा जघन्ययुक्तासंख्यातं भवति । २ । इदमावलिसदृशं । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् युक्तासंख्यातविकल्पान् नीत्वा जघन्ययुक्तासंख्यातवर्गमात्रं रूपोनं

तदा उत्कृष्टयुक्तासंख्यातं भवति ४ । सम्पूर्णं तदा जघन्यद्विकवारासंख्यातं भवति । ४ । अस्योपरि द्विरूपोन-

---

तरह एक नौ आदि अंकोंके घन प्रमाण अनवस्थाकुण्डोंके होनेपर महाशलाका कुण्ड भी भर जाता है। महाशलाकाकुण्डके भरनेपर पहलेके प्रतिशलाका, शलाका और अनवस्थाकुण्ड भी भर जाते हैं। उस समय अन्तिम अनवस्थाकुण्डमें जितनी सरसों समाती है, उनके प्रमाणमें एक कम करनेपर उत्कृष्ट संख्यात होता है। उसकी संदृष्टि १५ है। और अन्तिम अनवस्थाकुण्डकी सम्पूर्ण सरसोंका जितना प्रमाण है, उतना ही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है। उसकी संदृष्टि १६ है। जघन्य परीतासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए क्रमसे एक कम उत्कृष्ट परीतासंख्यात पर्यन्त मध्यम परीतासंख्यातके विकल्प (भेद) होते हैं। अब जघन्य परीतासंख्यातका विरलन करके अर्थात् जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण एक-एक स्थापित करके प्रत्येक एकके अंकके ऊपर जघन्य परीतासंख्यातको देकर सब परीतासंख्यातोंको परस्परमें गुणा करनेपर जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण आता है। उसमें-से एक कम करनेपर उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है। जघन्य युक्तासंख्यात और आवली समान हैं अर्थात् एक आवलीमें जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं। या इतने समयकी आवली है। जघन्य युक्तासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए एक कम उत्कृष्ट युक्तासंख्यात पर्यन्त मध्ययुक्तासंख्यातके भेद होते हैं। जघन्य युक्तासंख्यातका वर्ग करनेपर जघन्य असंख्याता-

---

१. म °गल्तुवि° । २. म °क्कलेत्तलानु° । ३. हायिक्कलेनितु° ।

अनवस्थाकुंडंगळेगे नववर्गमात्रंगळगलागळु महाशलाकाकुंडदोळेगे नवमात्रसर्षपंळ प्रक्षेपिसुत्तिरलेनितु मनवस्थाकुंडंगळप्पुवेनलु प्र १। फल १९=१९। इ। १९=समस्तानवस्थाकुंडंगळिनितु १९=१९=१९=नडदु कडेयदे बंदर्त्तमी जघन्यपरिमितासंख्यातराशिगे संदृष्टि १६। ई राशिय मेलेकाद्येकोत्तर क्रमदिंदं परिमितासंख्यातमध्यमविकल्पंगळनडेववा परीतासंख्यातजघन्यराशियं १६ विरळिसि रूपं प्रति तद्राशियने कोट्टु संगुणिसल्पडुत्तिरलु लब्धराशियुक्तासंख्यातजघन्यमक्कुमिदक्के संदृष्टि २। ई राशिये प्रसिद्धमप्पावळियें बदक्कुं। ई राशियोळोंदु रूपं कळेदोडे परिमितासंख्यातोत्कृष्टमक्कु। २। मत्तमावलिय मेलेकाद्येकोत्तरक्रमदिं पेच्चें नडेव राशिगळु युक्तासंख्यातमध्यमविकल्पंगळप्पुवा युक्तासंख्यातजघन्यराशियं वर्गगोंडडे द्विकवारासंख्यातजघन्यराशियक्कुमदक्के संदृष्टि ४। ई राशियोळोंदु रूपं कळेदोडे युक्तासंख्यातोत्कृष्टराशिप्रमाणमक्कु ४—१ मा द्विकवारासंख्यातजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तरक्रमदिदं पेच्चि नडेव राशिगळु द्विकवारासंख्यात मध्यमविकल्पंगळप्पुवंता द्विकवारासंख्यातजघन्यराशियं शलाका विरलन देयमेंदु मूरडेयोळक्रमदिदं स्थापिसि। श ४। वि ४। दे ४। द्वितीयविरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रतिदेय राशियं

जघन्यपरीतानन्तपर्यन्तं एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् द्विकवारासंख्यातविकल्पान् जानन् जघन्यद्विकवारासंख्यातं शलाकाविरलनदेयरूपेण संस्थाप्य श ४। वि ४। दे ४। विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा

संख्यात होता है। उसमें एक कम करनेपर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। जघन्य असंख्यातासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए एक कम उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात पर्यन्त मध्यम असंख्यातासंख्यातके भेद होते हैं। एक कम जघन्य परीतानन्त प्रमाण उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होता है।

अब जघन्य परीतानन्तको कहते हैं—जघन्य असंख्यातासंख्यात राशिको शलाका विरलन और देय राशिके रूपमें तीन जगह स्थापित करें। विरलन राशिका विरलन करके अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यातको अलग-अलग एक-एकके रूपमें फैलाकर लिखो और उनके ऊपर देय राशिको स्थापित करो। अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यातका जितना प्रमाण है, उतनी जगह जघन्य असंख्यातासंख्यातको रखकर परस्परमें एक दूसरेसे गुणा करो। और एक बार गुणा करनेपर जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी ही विरलन और देयराशि स्थापित करो। विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको एक-एकके ऊपर स्थापित करके परस्परमें गुणा करो। और शलाकाराशिमें-से एक और घटा दें। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, पुनः उस राशि प्रमाण विरलन और देयराशि स्थापित करके विरलन राशिको एक-एकके रूपमें विरलित करके प्रत्येकपर देयराशि देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से पुनः एक कम करो। ऐसा करते-करते जब प्रथम बार स्थापित जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण शलाका राशि सब समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हो, उतने ही परिमाणको लिये शलाका विरलन और देयराशि स्थापित करो। विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उतनी ही विरलन और देयराशि स्थापित करके विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको उसपर देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करते-करते

कोट्टु परस्परं गुणिसि बंद लब्धराशियं विरलन देयमं देरडेयोळु क्रमदिंदं स्थापिसि । वि अ दे अ बळिकोंडुरूपं शलाकाराशियोळ्कळदु श ४१ । वि अ । दे अ । मत्तमा विरलनराशियं वि अ । विरलिसि रूपं प्रति देयराशियुमनदने दे अ । कोट्टु परस्परं गुणिसि पूर्व्वशलाकाराशियोळ्मत्तों दु रूपं कळेदु ४–२ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि तद्राशियने कोट्टु संगुणं माडि पूर्व्वशलाकाराशियोळु मत्तों दु रूपं कळेर्वुदितु ४–३ प्रथमशलाकाराशियं निष्ठापिसि तत्रतनमहाराशियदुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पमप्पुदाराशियं शलाकाविरलन देयमेंदु त्रिप्रतिकं माडि श अ वि अ दे अ मुन्निनंतेविरलन राशियं विरलिसि प्रतिरूपं तद्राशियं कोट्टु परस्परं गुणिसि शलाकाराशियोळोंदु रूपं कळेदु श अ–१ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि रूपं प्रति तद्राशियनिंतु संगुणं माडि पूर्व्वशलाकाराशियोळ्मत्तों दं कळेवु । श अ । २ दितु द्वितीयशलाकाराशियं निष्ठापिसि तच्चरमोत्थमहाराशियदुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पमवकुमा राशियं मत्ते शलाकाविरलनदेयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श अ वि अ दे अ मुन्निनंते विरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रति तद्राशियने कोट्टु परस्परं गुणिसि तृतीयशलाकाराशियोळोंदु रूपं कळेदु अ १ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि तद्राशियं

परस्परं गुणिते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् । श ४–१ । पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । श ४–२ । पुनस्तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । अनेन क्रमेण प्रथमवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि शलाकाविरलनदेयक्रमेण संस्थाप्य श अ । वि अ । दे अ । प्राग्वत् विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श अ–१ । तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श अ–२ । एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि प्राग्वत् शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श अ । वि अ । दे अ । विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणयित्वा शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श अ–१ । पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । श अ–२ । एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशावपि निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ जगच्छ्रेणिघनप्रमिताश्चत्वारो धर्माधर्मैकजीवलोकाकाशप्रदेशराशय असंख्यातलोकमात्राऽप्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः ≡ अ अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः प्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः ≡ अ × ≡ अ एते षट्राशयः प्रक्षेतव्याः ।

जब दूसरी बारकी शलाका राशि भी समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हुई हो, उतने ही परिमाणकी विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करो । विरलन राशिका विरलन करके और प्रत्येकपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो और शलाकामें-से एक कम कर दो । ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उतनी ही विरलन और देयराशि रखकर विरलन राशिका विरलन करो और देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करो तथा शलाका राशिमें से एक कम करो । ऐसा करते-करते जब तीसरी बारकी भी शलाका राशि समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हो, उसमें जगतश्रेणिके घन अर्थात् लोकराशि प्रमाण धर्मद्रव्यके प्रदेश, उतने ही अधर्मद्रव्यके प्रदेश, उतने ही एक जीवके प्रदेश, उतने ही लोकाकाशके प्रदेश, असंख्यात लोक प्रमाण अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशि, इस राशिसे असंख्यात गुणा होनेपर भी असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंकी राशि, ये छह राशियाँ मिलाना । सबको जोड़नेपर जो परिमाण उत्पन्न हो, उतने ही परिमाणवाली शलाका विरलन और देयराशि

---

१. म °युमदने । १. म °रमोत्तमम् ।

प्रतिरूपमित्तु संगुणं माडि पूर्व्वतृतीयशलाकाराशियोळ् मत्तों दु रूपं कळेवुदेंता श अ । २ तृतीय-शलाकाराशियं निष्ठापिसि तत्रोत्पन्नराशियदुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पराशियक्कु मा महाराशियं स्थापिसि धर्म्मद्रव्यमधर्म्मद्रव्यमेकजीवप्रदेश लोकाकाशप्रदेशमो नाल्कुराशिय प्रदेशंगळ्-समानंगळ्समानंगळागुत्तं जगच्छ्रेणिघनप्रमितंगळ् प्रत्येकमप्पुवी नाल्कु राशिगळंमद=अ=एकजी =लोका=अप्रतिष्ठितप्रत्येकंगळ संख्यातलोकमात्रंगळुम=अ प्रतिष्ठितप्रत्येकंगळ संख्यातलोकमात्रं-गळागुत्तमप्रतिष्ठितप्रत्येकमं नोडलसंख्यातलोकमात्रगुणितंगळक्कु = अ = अ मी राशियुमितारु राशिगळनु महाराशियोळ्कूडि मत्तमा महाराशियं शलाकाविरलन देयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श अ विर अ । दे अ ॥ विरलनदेय क्रमदिंदं शलाकात्रयनिष्ठापनं गेय्दु तत्रोत्पन्नमहाराशियदुवु द्विकवार-असंख्यातमध्यमविकल्पराशियक्कुमी महाराशियोळुत्सर्प्पणावसर्प्पणाकालद्वयमं कल्पमेंबुदु । आ कल्पसमयसंख्येयुमं प ७। ("७।") स्थितिबंधप्रत्ययंगळुमं=अ अनुभागबंधाध्यवसायंगळुमं = अ=अ योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदंगळुम = अ = अ = अ नित्तो नाल्कं राशिगळुमनल्लि कूडि मत्तमा महाराशियं शलाकाविरलनदेयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श अ । वि अ दे अ मुन्निनंते विरलन देयक्रमदिदं शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नमहाराशिय संख्यातमं मीरि परीतानन्त जघन्य-

---

तं महाराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श अ । वि अ । दे अ । विरलनदेयक्रमेण प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ उत्सर्पिण्यवसर्पिणीद्वयात्मकसंख्यातपल्यमात्रकालसमयराशिः प अ असंख्यातलोकमात्र-स्थितिबन्धप्रत्ययराशिः = अ अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रोऽनुभागबन्धा(ध्य)व्यवसायराशिः = अ = अ अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रो योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदराशिः = अ = अ = अ एते चत्वारो राशयो मेलयितव्याः । तं महाराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श अ । वि अ । दे अ प्राग्वदेव

१—२—

विरलनदेयक्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तद्रूपोनं तदोत्कृष्टद्विकवारासंख्यातं भवति २५६ सम्पूर्णं तदा जघन्यपरीतानन्तं भवति । तत्संदृष्टिः २५६ । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान्मध्यमपरीतानन्तविकल्पान्नीत्वा इदं जघन्यपरीतानन्तं विरलयित्वा रूपं प्रति इदमेव दत्वा परस्परं गुणिते यल्लब्धं तद्रूपोनं तदा उत्कृष्टपरी-तानन्तं भवति । तत्संदृष्टिः—ज जु अ—१ सम्पूर्णं तदा जघन्ययुक्तानन्तं भवति तत्संदृष्टिः । ज जु अ । इदम-

---

स्थापित करो । पहलेकी ही तरह विरलन राशिका विरलन और देयराशिको उसपर स्थापित कर परस्परमें गुणा करना और शलाका राशिमें-से एक कम करना, आदिकी विधिसे जब शलाका राशि तीसरी बार भी समाप्त हो जाये तब जो राशि उत्पन्न हो, उसमें ये चार राशियाँ मिलाना—उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालके संख्यात पल्य प्रमाण समयराशि, असंख्यात लोक-मात्र स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थान, इनसे असंख्यात लोक गुणे होनेपर भी असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थान, तथा इनसे असंख्यात-लोकगुणे होनेपर भी असंख्यात लोक मात्र योगोंकी उत्कृष्ट अविभागी प्रतिच्छेद राशि । इनके मिलानेपर जो राशि उत्पन्न हो, उस राशि प्रमाण विरलन देय शलाका राशि स्थापित करके पूर्व रीतिसे तीन बार शलाका राशि स्थापित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, वह जघन्य परीतानन्त है । इसके ऊपर एक-एक बढ़ते-बढ़ते एक कम उत्कृष्ट परीतानन्त पर्यन्त मध्यम परीतानन्तके भेद जानना । एक कम जघन्य युक्तानन्त प्रमाण उत्कृष्ट परीतानन्त है । अब

---

१. म °प्रहितंग° । २. म °लमागुत्त° ।

राशियक्कुमदक्के संदृष्टि २५६ ई राशियोळोंदु रूपं कळेदोडे द्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशियक्कु २५६।१ मा परीतानंतजघन्यराशियं विरलिसि रूपं प्रति तद्राशियं कोट्टु परस्परं गुणिसिदोडुत्पन्नलब्धराशियुक्तानंतजघन्यप्रमाणमक्कुवी राशियभव्यजीवंगळ समानमक्कुमिदक्के संदृष्टि । ज । जु । आ । ई राशियोळोंदु रूपं कुंदिसिदोडे परीतानन्तदुत्कृष्टमक्कुं । परीतानंतजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तर वृद्धिक्रमदिंदं नडदु मध्यमविकल्पराशिगळागुत्तं बंदिदु परीतानंतोत्कृष्टराशियक्कुमेंबुदर्त्थं ज जु अ = १ मा अभव्यजीवराशिसमानमप्प युक्तानन्तजघन्यराशियं वर्गंगळोळुत्तिरलु जघन्यद्विकवाराऽनन्तराशियक्कुमिदक्के संदृष्टि । ज जु । अ । व । ई द्विकवारानन्तजघन्यराशियोळोंदु रूपं होनं माडि दोडे युक्तानंतजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तरवृद्धिक्रमदिंद नडेदु युक्तानंतमध्यमविकल्पराशिगळागुत्तं बंदिदु सर्व्वोत्कृष्टयुक्तानंतराशियक्कु । ज जु अ व १ ॥ मा द्विकवारानंतजघन्यराशियं ज जु अ व त्रिप्रतिकं माडि विरलनदेयक्रमदिंद शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नराशियदु जघन्यद्विकवारानंतराशिय मेलेकाद्येकोत्तरवृद्धिक्रमदिंदं पेच्चिबंद द्विकवारानंत-

---

भव्यराशिसमं । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् मध्यमयुक्तानन्तविकल्पान् नीत्वा अस्य वर्गं गृहीत्वा रूपमूनं तदा उत्कृष्टयुक्तानन्तं भवति संदृष्टिः ज जु अ व–१ । सम्पूर्णं तदा जघन्यद्विकवारानन्तं भवति । संदृष्टिः ज जु अ व । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् रूपोनकेवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदराशिपर्यन्तान् मध्यमान् द्विकवारानन्तविकल्पान् जानन् जघन्यद्विकवारानन्तं त्रिःप्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र सिद्धराशिः ३ पृथिव्यादिचतुष्टयप्रत्येकवनस्पतित्रसराशिरहितसंसारिराशिरेव निगोदराशिः १३ = । अतः प्रत्येकवनस्पत्यधिकवनस्पतिराशिः १३ = इतोऽनन्तानन्तगुणपुद्गलराशिः १६ ख । इतोऽनन्तानन्तगुणो व्यवहारकालसमयराशिः । १६ ख ख । इतोऽनन्तानन्तगुणो अलोकाकाशप्रदेशराशिः १६ ख ख ख । एते षट् राशयः प्रक्षेप्तव्याः । तं राशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र धर्माधर्मद्रव्ययोः अगुरुलघुगुणा-

---

जघन्य युक्तानन्तका प्रमाण कहते हैं—जघन्य परीतानन्तको एक-एकके रूपमें विरलन करके प्रत्येक एकपर जघन्य परीतानन्तको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, वह जघन्य युक्तानन्त है। इतनी ही अभव्य जीवोंकी राशि है। इसके ऊपर एक-एक बढ़ते एक कम उत्कृष्ट युक्तानन्त प्रमाण मध्य युक्तानन्तके भेद हैं। तथा एक कम जघन्य अनन्तानन्त प्रमाण उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

अब जघन्य अनन्तानन्तको कहते हैं—जघन्य युक्तानन्तको जघन्य युक्तानन्तसे गुणा करनेपर जघन्य अनन्तानन्त होता है। इसके ऊपर एक-एक बढ़ते-बढ़ते एक कम केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण मध्यम अनन्तानन्तके भेद होते हैं। जघन्यअनन्तानन्त प्रमाण विरलन देय शलाका राशिके क्रमसे पहलेकी तरह तीन बार शलाका राशि स्थापित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें ये छह राशियाँ मिलाना—सिद्ध राशि, पृथिवी आदि चार, प्रत्येक वनस्पति और त्रसराशिसे रहित संसारी जीवराशि मात्र निगोदराशि, प्रत्येक वनस्पति सहित निगोदराशि प्रमाण वनस्पतिराशि, जीवराशिसे अनन्तगुणी पुद्गलराशि। इससे भी अनन्तानन्तगुणी व्यवहार कालके समयोंकी राशि। इससे भी अनन्तानन्तगुणी अलोकाकाशके प्रदेशोंकी राशि। ये छह राशियाँ मिलाना। इन सबको मिलानेसे जो परिमाण हुआ, उतना ही विरलन देय शलाका राशिके क्रमसे पूर्ववत् तीनबार शलाका राशि समाप्त होनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघुगुणके

---

१. म °जघन्यमक्कुं° । २. म वर्गंगोलुत्तिरलु ।

मध्यमविकल्पमप्प राशियप्पुदा महाराशियोळु सिद्धराशियुं ३। पृथिव्यादिचतुष्टयं प्रत्येकवनस्पति-त्रसमेंबी मूरुं राशिगळिंद हीनमप्प निगोदराशियुं १३= पृथिव्यादिचतुष्टयं त्रसमुमेंबी राशिद्वय-विहीनं संसारिराशि निगोदराशियं नोडे साधिकमक्कुमप्पुदरिंदं ई साधिकवनस्पतिराशियु १३= मिद नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प पुद्गलराशियु १६ ख मिदं नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प व्यवहार-कालसमयप्रमाणराशियु १६ ख ख मिदं नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प अलोकाकाशप्रदेशप्रमाणराशियु १६ ख ख ख मेंबीयारुमनन्तानन्तात्मकराशिगळ् प्रक्षेपिसल्पडुवुवन्तु प्रक्षेपिसल्पट्टा महाराशियं त्रिप्रतीकं माडि विरलनदेयक्रमदिंदं वर्गितसंवर्ग्ग माडि शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्न-महाराशियुं द्विकवारानन्तमध्यमविकल्पमक्कुमा महाराशियोळु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळ अगुरुलघु-गुणाविभागप्रतिच्छेदंगळनन्तानंतंगळु ख ख प्रक्षेपिसल्पडुवुवन्तु प्रक्षेपिसल्पट्ट आ महाराशियं त्रिप्रतीकं माडि विरलनदेयक्रमदिंदं शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नराशियुं द्विकवारानंतमध्यम-विकल्पराशियक्कुमा महाराशियं केवलज्ञानदोळ् किंचिन्न्यूनं माडि मत्तमाकिंचिन्न्यूनकेवलज्ञान-राशियं केवलज्ञाननुं नोडल्किचित्तप्प तत्रोत्पन्नराशि केवलज्ञानानन्तैकभागमप्पुदरिंदा राशियो-

---

विभागप्रतिच्छेदसमूहमनन्तानन्तात्मकं (ख ख) प्रक्षिप्य तं राशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तं राशिं केवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदसमूहे ऊनयित्वा पुनस्तत्रैव निक्षिप्ते उत्कृष्टद्विक-वारानन्तमुत्पद्यते। तत्संदृष्टिः के। यदीदं सर्वं संख्यातादिकमेकादिकं स्यात् तदा सर्वधारैवोक्ता भवति। तेन शेषाः सम-विषम-कृति-कृतिमातृक-घन-घनमातृक-अकृति-अकृतिमातृक-अघन-अघनमातृक-द्विरूपवर्ग-द्विरूप-घन-द्विरूपघनाघनाख्यास्त्रयोदश धारास्तस्यामेवोत्पन्ना इति जानीहि। तासु द्विरूपवर्गधारादीनामेवात्रोपयोगित्वात्ता एव तिस्रः उच्यन्ते। तत्र द्विरूपवर्गधारा तावत् द्वौ चत्वारः षोडश विसदछप्पण्णं पण्णट्ठी वादालं एक्कट्ठं, एवं पूर्वपूर्वस्य कृतिक्रमेण संख्यातस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतासंख्यातस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः

अविभाग प्रतिच्छेदोंका जो अनन्तानन्त प्रमाण है, वह मिलाना। वह मिलानेसे जो राशि हो, उस राशि प्रमाण विरलन देय शलाकाके क्रमसे तीन बार शलाका राशि स्थापित करके गुणा करते हुए जो राशि उत्पन्न हो, उसे केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहमें घटाकर और पुनः उसीमें मिलानेपर केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रमाण होता है।

यदि ये सब संख्यात आदि एकको आदि लेकर हों, तो सर्वधारा ही कही जायेगी। इससे शेष समधारा, विषमधारा, कृतिधारा, अकृतिधारा, घनधारा, अघनधारा, कृति-मातृकधारा, अकृतिमातृकधारा, घनमातृकधारा, अघनमातृक धारा, द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारा ये तेरह धाराएँ उसीमें उत्पन्न जानो। इन धाराओंमें से द्विरूपवर्गधारा वगैरह ही यहाँ उपयोगी हैं, अतः उन्हीं तीनका यहाँ कथन किया जाता है।

दो के वर्गसे लेकर पूर्व-पूर्व संख्याका वर्ग करते हुए जो धारा चलती है, वह द्विरूप-वर्ग-धारा है। इसका प्रथम स्थान दो का वर्ग चार, चारका वर्ग सोलह दूसरा स्थान है, सोलहका वर्ग दो सौ छप्पन तीसरा स्थान है, उसका वर्ग पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस, जिसे संक्षेपमें पण्णट्ठी कहते हैं, चौथा स्थान है। उसका वर्ग ४२९४९६७२९६ जिसे संक्षेपमें बादाल कहते हैं, पाँचवाँ स्थान है। बादालका वर्ग एकट्ठी १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ छठा स्थान है। इस तरह पूर्व-पूर्वका वर्ग करते हुए संख्यात स्थान होनेपर जघन्य परीता-संख्यातकी वर्ग शलाका राशि होती है। उससे आगे संख्यात वर्ग स्थान जानेपर उसकी

ळप्रक्षेपिसुत्तिरलनन्तानन्तोत्कृष्टमप्प महाराशि केवलज्ञानमेयमक्कु मदक्क संदृष्टि के ई पेळ्दुवे एकाधिकमादोडे सर्व्वधारियक्कुमी सर्व्वधारियोळे समा विषम। कृति। कृति मातृक। घन। घनमातृक। अकृति। अकृति मातृक। अघन। अघनमातृक। द्विरूपवर्ग। द्विरूपघन। द्विरूपघनाघन। मे ब त्रयोदश धारिगळ् पुट्टुवविवरोळ् द्विरूपवर्ग द्विरूपघन द्विरूपघनाघनमे ब कडेय मूरु धारिगळेल्लिगुपयोगिगळे दु पेळ्वेमदे तें दोडे द्विरूपवर्गधारियं बुदु येरडु। नाल्कु। पदिनारु। मिनूर्नूरव्वत्तारु। मरुवत्तैदु सासिरद यिन्नूरमूवत्तारुं। नानूरि (रे) प्पत्तोंभत्तुकोटियु नाल्वत्तो-भत्तुलक्षमु मरुवत्तेळु सासिरदयिनूर तोंभत्तारुं। वोंदु लक्षमु मेण्भत्तनाल्कुसासिरद नानूरुवत्तेळु कोटिकोटिगळुं नाल्वत्तनाल्कु लक्षमु मेळु सासिरद मूनूरेप्पत्तु कोटिगळुं। तों भत्तैदुलक्षमुमय्व-तारु सासिरदरुनूरपदिनारु। मितु पूर्व्वपूर्व्वकृतिगळागि संख्यातस्थानंगळनडेदोडेयोळु जघन्य-परीतासंख्यातराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदल्लिदं मुंदे संख्यातस्थानंगळनडेदर्द्धच्छेदराशि पुट्टु-दल्लिदं मेले संख्यातवर्गस्थानंगळनडदु प्रथम मूलं पुट्टिदुदनंतरवग्गंस्थानं जघन्यपरिमिता-संख्यातराशि पुट्टिदुदल्लिदं मुंदे संख्यातवर्गस्थानंगळं नडदु प्रसिद्धमप्पावलि पुट्टिदुदनोम्मे

संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरिमितासंख्यातमुत्पद्यते। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा आवलिरुत्पद्यते। तस्यामेकवारं वर्गितायां प्रतरावलिरुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा सूच्यङ्गुलमुत्पद्यते।

अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे आगे संख्यात वर्ग स्थान जानेपर जघन्य परीतासंख्यातका वर्गमूल उत्पन्न होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर जघन्य परीता-संख्यात आता है।

विशेषार्थ—दो के वर्गसे लगाकर जितनी बार वर्ग करनेपर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है, उसकी उतनी ही वर्ग शलाका होती है। जैसे चार बार वर्ग करनेपर पण्णट्ठी राशि उत्पन्न होती है, तो उसकी चार वर्गशलाका है। और विवक्षित राशिका जितनी बार आधा-आधा हो सकता है, उतने उस राशिके अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे सोलहका एक बार आधा करनेपर आठ, दूसरी बार आधा करनेपर चार, तीसरी बार आधा करनेपर दो और चौथी बार आधा करनेपर एक आता है। अतः सोलहकी अर्द्धच्छेद राशि चार है। और जिसका एक बार वर्ग करनेपर विवक्षित राशि आती है, उसे उस राशिका प्रथम वर्गमूल कहते हैं।

जघन्य परीतासंख्यातसे संख्यातवर्ग स्थान जानेपर आवली उत्पन्न होती है। आवलीका वर्ग करनेपर प्रतरावलि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जानेपर पल्यकी वर्गशलाका राशि आती है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जानेपर पल्यकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जानेपर पल्यका प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर पल्य उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जानेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रतरांगुल उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जगत श्रेणिका घनमूल उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जाकर जघन्य परीतानन्तकी वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे

---

१. म मेले।

वर्ग्गिसिदडे प्रतरावलि पुट्टिदुदल्लिदं मेलेयुमसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनडदु प्रसिद्धमप्प पल्यद वर्ग्गशलाकेगळु पुट्टिदुर्मल्लिदं मेलेयुमसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनडेदर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुवल्लिदं मेले असंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनडदु प्रथममूलं पुट्टिदुददनोर्म्मे वर्ग्गिसिदोडे = पल्यं पुट्टिदुदल्लिदं मेलेऽसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनडदु सूच्यंगुलं पुट्टिदुददनोर्म्मे वर्ग्गिसिदोडे प्रत-
=
रांगुलं पुट्टिदुदल्लिदं मेले असंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनडदु जगच्छ्रेणिय घनमूलं पुट्टिदुदल्लिदं मेल- ५
संख्यात वर्ग्गस्थानंगळे नडेदु परीतानंतराशिय वर्ग्गशलाकाराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातराशि-
वर्ग्गस्थानंगळं नडेदुमर्द्धच्छेदं पुट्टिदुदल्लिद मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुददनोर्म्मे
वर्ग्गिसिदोडे परीतानंतजघन्यराशि पुट्टिदुदल्लिद मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु युक्तानंतजघन्य-
राशि पुट्टिदुददनोर्म्मे वर्ग्गिसिदोडे द्विकवारानन्तराशि पुट्टिदुदल्लिदंदत्त अनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं
नडेदु सर्व्वजीवराशिय वर्ग्गशलाकाराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलनन्तवर्ग्गस्थानंगळं नडेदर्द्धच्छेदराशि १०
पुट्टिदुदल्लिद मेलनंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिददनोर्म्मे वर्ग्गं गोंडोडे सर्व्वजीवराशि
प्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदत्तनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु सर्व्वपुद्गलराशिप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंता-
नंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु सर्व्वकालराशिप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु श्रेण्या-

---

तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराङ्गुलमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिघनमूलमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतानन्तस्य वर्गशलाकाराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा १५
तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरीतानन्तमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्ययुक्तानन्तमुत्पद्यते । तदभव्यराशिसमं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यद्विकवारानन्तमुत्पद्यते । ततः अनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाका-
राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाका राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा
तस्य प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वजीवराशिरुत्पद्यते । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सर्वपुद्गल- २०
राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सर्वकालराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाश-
प्रदेशराशिः । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराकाशप्रदेशराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा धर्माधर्मद्रव्य-
योरगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा एकजीवद्रव्यागुरुलघुगुणाविभाग-

---

असंख्यात वर्ग स्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जघन्य परीतानन्तका प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार २५
वर्ग करनेपर जघन्य परीतानन्त आता है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जाकर जघन्य युक्तानन्त उत्पन्न होता है। उतना ही अभव्य राशिका प्रमाण है। उसका एक बार वर्ग करने-पर जघन्य अनन्तानन्त उत्पन्न होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिकी वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर उसका प्रथम वर्गमूल ३०
होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर सर्व जीवराशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सर्व पुद्गल राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सर्व काल राशि होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर श्रेणिरूप आकाशके प्रदेशोंका परिमाण होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रतराकाशके प्रदेशोंका परिमाण होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु गुणोंके अविभाग ३५

काशप्रदेशप्रमाणं पुट्टिदुदनोम्मे वग्गिसिदोडे प्रतराकाशप्रदेशप्रमाणं पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानंत-वर्ग्गस्थानंगळं नडेदु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळ गुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदप्रचयप्रमाणं पुट्टिदुदर्ल्लिदत्त-लुमनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळनडेदुमेकजीवद्रव्यागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदनिवहप्रमाणं पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदसमूहप्रमाणं

५ पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानन्तवर्ग्गस्थानंगळनडेदु जघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदकलापप्रमाणं पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु केवलज्ञानवर्ग्गशलाकाराशि पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानंत-वर्ग्गस्थानंगळं नडेदर्द्धच्छेदराशिप्रमाणं पुट्टिदुदर्ल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदष्टममूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गिसिदोडेळनेय मूलं पुट्टिदुदनोम्मे वग्गिसलु षष्ठमूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गिसल् पंचममूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गिसिदोडे चतुर्थमूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गंगोळल् तृतीयमूलं पुट्टिदुद-

१० दनोम्मे वग्गंगोळल् द्वितीयमूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गिसिदोडे प्रथममूलं पुट्टिदुददनोम्मे वग्गिसि-दोडे गुणपर्य्यायवद्द्रव्यमेंदु द्रव्यगुणंगळगज्जदवृत्तिलक्षणाविनाभावमुंप्पुटरिंदं त्रिलोकोदरवर्त्ति त्रिकालगोचरजीवादिपदार्त्थसार्त्थविभासिकेवलज्ञानदिवाकरप्रभाप्रतिपक्षकर्म्मनिरवशेषक्षयदिनभि-व्यक्तिगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदनिकुरुंबप्रमाणमप्प सर्व्वोत्कृष्टभावप्रमाणं पुट्टुगुमिदक्कुत्कृष्टक्षा-यिकलब्धि येंब पेसरुमक्कुं।

---

१५ प्रतिच्छेदराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदसमूह-राशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदकलापराशिः। ततोऽनन्तानन्त-वर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानवर्गशलाकाराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्याष्टमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सप्तमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते षष्ठवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पञ्चमवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते चतुर्थवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं

२० वर्गिते तृतीयवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्वितीयवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रथमवर्गमूलम्। तस्मि-न्नेकवारं वर्गिते गुणपर्ययवत् त्रिलोकोदरवर्तित्रिकालगोचरजीवादिपदार्थसार्थविभासिकेवलज्ञानदिवाकरप्रभा-

---

प्रतिच्छेदकी राशि होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर एक जीव द्रव्यके अगु-रुलघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद समूहकी राशि उत्पन्न

१५ होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जघन्य क्षायिक लब्धिके अविभाग प्रतिच्छेदके समूहकी राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानकी वर्गशलाका राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानकी अर्द्धच्छेदराशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानका अष्टम वर्गमूल आता है। उसके एक बार वर्ग करनेपर सप्तम वर्गमूल आता है। उसके एक बार वर्ग करनेपर छठा वर्गमूल आता है।

२० उसका एक बार वर्ग करनेपर पाँचवाँ वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर चतुर्थ वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर तृतीय वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर द्वितीय वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर गुणपर्यायसे संयुक्त तीनों लोकों और तीन कालोंके जीवादि पदार्थोंके समूहके प्रकाशक केवलज्ञानरूपी सूर्यके प्रतिपक्षी कर्मोंके सर्वथा विनाशसे

२५ प्रकट हुए समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहात्मक भावप्रमाण उत्पन्न होता है। यही

ई द्विरूपवर्गधारेय सर्व्वराशिविकल्पंगळेनितक्कुमें दोडे केवलज्ञानवर्गशलाकाराशिप्रमाणंगळप्पुवु। मत्तमी द्विरूपवर्गधारेयोळं द्विरूपघनधारेयोळं द्विरूपघनाघनधारेयोळं ॥ शलाकाराशि विना विरलनदेयमात्रेण यो राशिरुत्पद्यते तस्य वर्गशलाकार्द्धच्छेदाः नोत्पद्यंते एंदितो वाक्यदिंदं विरलनदेयक्रमदिंदं पुट्टिद सूच्यंगुलादिराशिगळगे वर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळपुट्टुवेंदु पेळ्दं तेरं ॥ ५

मत्तमी द्विरूपवर्गधारेयोळु "देयराशेदुपरि विरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा विवक्षितराशिरुत्पद्यते" येदिदरिंदं सूच्यंगुलादिगळ्तम्म देयराशियिंदं मेलेनितु स्थानंगळं नडदु पुट्टुववेंदोडे देयराशिय मेले विरलनराशियर्द्धच्छेदराशिप्रमाणवर्गस्थानंगळं नडदु पुट्टुववेंदु पेळ्दं तेरं।

सूच्यंगुलं पल्यच्छेदराशियं विरलिसि प्रतिरूपं पल्यमं कोट्टु। संवर्गजनितराशियप्पुदरिं विरलनराशि पल्यच्छेदमदरच्छेदंगळपल्यवर्गशलाकाराशियप्रमाणंगळप्पुदरिंदं पल्यद मेले पल्यवर्गशलाकाराशिप्रमाणवर्गस्थानंगळं नडेदु पुट्टिदुदेंदु निश्चैसुवुदु ॥ २। ४। १६। २५६। ६५५३६। ४२९४९६७२९६। १८४४६७४४०–७३७०९५५१६१६। ०। व। ०। छे। ०। मू १। १६। ०। २। ४। ०। व०। छे। मू १। प०। २। ४। ०। ज। घ। मू ०। व ०। छे ०। मू १। २५६। ०। ज जु अ। ज जु अ व ०। व ०। छे ०। मू १। जी १६। ०। १६ ख ०। १६ ख ख। ०। श्रे आ १६ ख ख ख। प्र आ। १६ ख ख ख। १६ ख ख ख। ०। द। अ। अ। लघु ख

प्रतिपक्षकर्मनिरवशेषक्षयाभिव्यक्तसमस्ताविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकं सर्वोत्कृष्टं भावप्रमाणमुत्पद्यते। इदमेवोत्कृष्टक्षायिकलब्धिः। सदृष्टिः–२। ४। १६। २५६। ६५५३६। ४२९४९६७२९६। १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१६। ०। व०। छे०। मू १। १६। ०। २। ४। ०। व०। छे। मू १। प०। २। ४। ०। ज घ मू व०। छे०। मू १।२५६। ०। जजु अ०। जजु अ व०। व०। छे०। मू १। जी १६। ०। १६ ख ०। १६ ख ख ०। श्रे आ १६ ख ख ख। प्र आ १६ ख ख ख ख ख ख। ०। ध अ अ ख ख। ०। ए जी अ ख ख ख ०। सू नि ज ज्ञा ख ४। ०। ज क्षा ल ख ५। ०। व ०। छे०। मू ८। मू ७। मू ६। मू ५। मू ४। मू ३। मू २। मू १। के।

अस्या धाराया वर्गितवारास्तु केवलज्ञानस्य वर्गशलाकामात्राः। अस्यां च द्विरूपघनद्विरूपघनाघन-

---

उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि है। इस द्विरूपवर्गधाराके वर्गरूप सब स्थान केवलज्ञानकी वर्गशलाका प्रमाण होते हैं अर्थात् जितनी केवलज्ञानकी वर्गशलाका हैं, उतने ही द्विरूपवर्गधाराके सब वर्गस्थान हैं।

इस द्विरूपवर्गधारामें तथा द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारामें सूच्यंगुल आदिकी वर्गशलाका और अर्धच्छेदराशि उत्पन्न नहीं होतीं, क्योंकि ये विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होती हैं।

विशेषार्थ—जो राशि विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होती है, वह राशि जिस धारामें कही है, उस राशिकी वर्गशलाका या अर्धच्छेद उसी धारामें नहीं होते। जैसे विरलन राशि सोलहका विरलन करके प्रत्येकपर सोलह-सोलह देय राशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर एकट्ठी राशि उत्पन्न होती है, यह राशि द्विरूपवर्गधारामें है। किन्तु इसके अर्धच्छेद चौंसठ और वर्गशलाका छह ये दोनों द्विरूपवर्गधारामें नहीं हैं। ऐसा ही सूच्यंगुल वगैरहके विषयमें जानना।

ख । ० । एक जो अगुरुलघु ख ख ख ० । सूक्ष्मनिजज्ञा । प्रति । ख = । ४ । ० । ज = क्षा = लब्धि ख = ५ । ० । व । ० । छे । ० । मू ८ । मू ७ । मू ६ । मू ५ । मू ४ । मू ३ । मू २ । मू १ । के ॥ इदु द्विरूपवर्गधारा विन्यासं ॥

मत्तमी द्विरूपादि धारात्रयदोळु केळगण द्विरूपादि वर्गराशिगळर्द्धच्छेदंगळं नोडलु मेलण-
५ वर्गराशिगळर्द्धच्छेदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु । तिर्य्यक्कागि परस्थानंगळप्प द्विरूपघन द्विरूप-घनाघन धारेगळोळु त्रिगुणत्रिगुणंगळप्पुवु । वर्गशलाकेगळें बुवु स्वस्थानंगळोळु रूपाधिकक्रमंगळ-प्पुवु । मुन्निनंते परस्थानंगळोळु समानंगळेयप्पुवु-- । मिल्लि द्विरूपवर्गधारेयोळु स्ववर्गशलाका मात्र द्विकाहतलब्धराशियर्द्धच्छेदप्रमाणमक्कुमा अर्द्धच्छेदप्रमितद्विकाहतलब्धराशिप्रमाणमक्कु मेंदरियल्पडुगु । मी वर्गशलाकागळिंदमें दोडे राशियं वर्गिसिद वारंगळ् वर्गशलाकेगळंतल्लदोडे
१० राशियंदळियिसिद वारंगळ दळ वारंगळुं मेण वर्गशलाकेगळप्पुवु राशियनर्द्धिसिद वारंगलर्द्धच्छे-दंगळें दु निर्णीतंगळप्पुवु :—

२ । ४ । १६ । २५६।६५ = । ४२ । = १८ =

ई प्रकारदिंदं केवलज्ञानावसानमागि राशिगळुमर्द्धच्छेदंगळु वर्गशलाकेगळु नडेववु । द्विरूप-घनधारेयोळु मेंटु मरुवत्तनाल्कु मी प्रकारदिंदं पूर्व्वपूर्व्व वर्गस्थानंगळ् क्रमदिंदं संख्यातवर्गस्थानं-

---

१५ धारयोश्च सूच्यङ्गुलादीनां वर्गशलाकार्धच्छेदराशी नोत्पद्येते, विरलनदेयक्रमेण तदुत्पत्तेः । तथापि ते सूच्य-ङ्गुलादयो द्विरूपवर्गधारायां स्वस्वदेयराशेरुपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा उत्पद्यन्ते । तत्र सूच्यङ्गुलस्य विरलनराशिः पल्यच्छेदराशिः देयराशिः पल्यं जगच्छ्रेणेर्विरलनराशिः पल्यच्छेदराश्यसंख्यातैक-भागाः देयराशिः घनाङ्गुलं । स्वस्वविरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसम्वर्गं कृते तद्राशिरुत्पद्यते इत्यर्थः । तदर्धच्छेदराशिः राशेरर्धितवारमात्रः । वर्गशलाकाराशिः तदर्धच्छेदानां अर्धित-
२० वारमात्रः । अर्धच्छेदाः द्विरूपवर्गधारादिधारात्रये विवक्षितवर्गादुपरितनवर्गे द्विगुणद्विगुणा भवन्ति तत्प्रणिधौ परिस्थाने (स्थापने) द्विरूपघनद्विरूपघनाघनधारयोस्त्रिगुणास्त्रिगुणा भवन्ति । वर्गशलाकाः वर्गादुपरितनवर्गे

सूच्यंगुल आदि द्विरूपवर्गधारामें अपनी-अपनी देयराशिसे ऊपर विरलन राशिके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जानेपर उत्पन्न होते हैं। उसमें-से सूच्यंगुलकी विरलन राशि पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण है और देय राशि पल्य प्रमाण है। तथा जगत् श्रेणिकी विरलन
२५ राशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग मात्र है और देय राशि घनांगुल प्रमाण है। अपनी-अपनी विरलन राशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करनेसे वह राशि उत्पन्न होती है। राशिके आधा करनेके बार मात्र उसकी अर्धच्छेद राशि होती है। और उसके अर्धछेदोंको जितनी बार आधा-आधा किया जा सकता है, उतनी वर्गशलाका राशि होती है। द्विरूपवर्गधारा आदि तीन धाराओंमें विवक्षित वर्गसे ऊपरके
३० वर्गमें अर्धच्छेद दूने-दूने होते हैं। तथा उसके निकटवर्ती जो ऊपरका स्थान होता है, उसका जितने नम्बर हों, उतने ही नम्बरका स्थान द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारामें हो, तो तिगुने-तिगुने अर्धच्छेद होते हैं।

विशेषार्थ—जैसे द्विरूपवर्गधारामें दूसरा वर्गस्थान सोलह है। उसके अर्धच्छेद चार हैं। तीसरा वर्गस्थान दो सौ छप्पन है। उसके अर्धच्छेद आठ हैं। इसी तरह दूने-दूने होते
३५ हैं। तथा जैसे द्विरूपवर्गधाराका द्वितीय वर्गस्थान सोलह और उसके अर्धच्छेद चार हैं, उससे ऊपरका द्विरूपघनधाराका तीसरा स्थान चार हजार छियानबे हैं। उसके अर्धच्छेद बारह हैं। इस प्रकार सर्वत्र जानना।

गळनडेदावलिय घनं पुट्टिदुददरि नंतरमे प्रतरावलिवृंदं पुट्टिदु १।४।८।१६।३२।६४ दल्लिदं
०।१।२।३।४।५।६
मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु पल्यवर्ग्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेले असंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु पल्यच्छेदघनं पुट्टिदुल्लिदं मेले असंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु पल्यप्रथममूलवृंदं पुट्टिदुदरं नंतरमे पल्यघनं पुट्टिदुदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु वृंदांगुलं पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु जगच्छ्रेणि पुट्टिदुददरनंतरमे लोकप्रतराकाशप्रदेशप्रचयं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु जीववर्ग्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु जीवराश्यर्द्धच्छेदवृंदं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु जीवप्रथममूलघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतरमे जीवघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु श्रेण्याकाशवर्ग्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलेयुमनंतानंतवर्ग्गस्थानगळं नडेदु श्रेण्याकाशार्द्धच्छेदघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु श्रेण्याकाशप्रथममूलघनं पुट्टिददनंतरमदनोम्मे वर्ग्गगोळ् श्रेण्याकाशघनरूपमप्प सर्व्वाकाशप्रदेशप्रचयप्रमाणराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळ् निरंतरं

स्वस्थाने रूपाधिकाः परस्थाने तत्प्रणिधौ समाना भवन्ति। अर्धच्छेदराशिद्विरूपवर्गधारायां राशेर्वर्गशलाकामात्रेषु राशिश्च धारात्रये तदर्धच्छेदमात्रेषु च द्विकेषु गुणितेषु भवति। का वर्गशलाका? राशेर्वर्गितवारः, द्विरूपवर्गधारायामेवार्धच्छेदराशेरर्धितवारो वा भवति। कोऽर्धच्छेदः? राशेरर्धितवारः। अथ द्विरूपघनधारा— अष्टौ चतुष्षष्टिः षोडशघनः वेसदछप्पणघनः पण्णट्ठिघनः बादालघनः, एवं पूर्वपूर्वस्य वर्गक्रमेण संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा आवलेर्घनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतरावलिवृन्दम्। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा

तथा वर्गशलाका नीचेके वर्गसे ऊपरके वर्गकी स्वस्थानमें एक अधिक होती हैं और परस्थानमें समान होती हैं। जैसे द्विरूपवर्गधाराके दूसरे वर्ग सोलहकी दो और तीसरे वर्ग दो सौ छप्पनकी तीन वर्गशलाका हैं। तथा द्विरूपघनधाराके तीसरे स्थान चार हजार छियानवेकी भी वर्गशलाका तीन ही हैं। द्विरूपवर्गधारा राशिकी जितनी वर्गशलाका हों, उतनी जगह दो-दो के अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे अर्धछेदोंका प्रमाण आता है। तथा अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राशि उत्पन्न होती है। जैसे सोलहकी वर्गशलाका दो हैं। सो दो जगह दो रखकर गुणा करनेसे चार आता है सो सोलहके चार अर्धच्छेद होते हैं। तथा चार अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे सोलह राशि आती है। जितनी बार वर्ग करनेसे राशि उत्पन्न हो, उन्हें वर्गशलाका कहते हैं। अथवा द्विरूपवर्गधारामें अर्धच्छेदोंकी राशिको आधा-आधा करनेके बारोंको वर्गशलाका कहते हैं। और राशिको जितनी बार आधा-आधा किया जा सकता हो, उन्हें अर्धच्छेद कहते हैं।

अब द्विरूपघनधाराको कहते हैं। दोका घन आठ होता है। वह इस धाराका पहला स्थान है। इसका वर्ग चौंसठ दूसरा स्थान है, यह चारका घन है। चौंसठका वर्ग चार हजार छियानवे तीसरा स्थान है, यह सोलहका घन है। सोलहका घन दो सौ छप्पन उसका घन चौथा स्थान है। पण्णट्ठीका घन पाँचवाँ स्थान है। बादालका घन छठा स्थान है। इस प्रकार पहले-पहले स्थानका वर्ग करनेपर एक-एक स्थान होता है। ऐसे संख्यातवर्गस्थान जाने पर परीतासंख्यातका घन होता है। उससे संख्यात स्थान जानेपर आवलीका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर प्रतरावलिका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान

१. म °दरंतर°।

नडेदु केवलज्ञानद्वितीयमूलघनं पुट्टिदुदी राशिये द्विरूपघनधारेगिदक्के चरमराशियप्पुदेकेंदोडे केवलज्ञानप्रथममूलमं केवलज्ञानमुमेंदिवर घनंगळवसानराशियादोडे केवलज्ञाननतिक्रमिसुगुं। केवलज्ञानमे सर्व्वोत्कृष्टप्रमाणमप्पुदरिंदं। किं बहुना—

जत्थुद्देसे जायदि जो जो रासी विरूवधाराए।
घणरूवे तद्देसे उप्पज्जदि तस्स तस्स घणो॥

एंदितु द्विरूपवर्गधारेयोळु आवुदो दुद्देसिसल्पट्टेडेयोळु आवुदानु मोदो दु राशिगळ् काणल्पडुवुवा तत्तद्देशदोळु द्विरूपघनधारेयोळु तत्तद्राशिय घनं पुट्टुगुमेंबी व्याप्तियरियल्पडुगुं। ई द्विरूपघनधारेगे संदृष्टि :—

८। ६४। ४०९६। २५६ ≅। ६५ ≡। ४२ ≅। १८ ≡। ०। आ २। २। प्र आ ६४। ०। व व व ०। छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। प प प ०। ६। ०। —। = । ०। जी॥ व व व। ०। छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। १६। १६। १६। ०। श्रेण्याकाशवर्गं। व व व ०। छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। सर्व्वाकाश। ०। के = । मू २। मू २। मू २।

पल्यवर्गशलाकाघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यच्छेदराशिघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यप्रथममूलवृन्दम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा वृदाङ्गुलम्। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिः। तस्यामेकवारं वर्गितायां जगत्प्रतरः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाकाराशिघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदशलाकाराशिघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जीवराशिघनः ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाशस्य वर्गशलाकाघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते श्रेण्याकाशघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानस्य द्वितीयमूलवृन्दं तदेव तस्या अन्तः। अनन्तरवर्गस्य केवलज्ञानस्य तत्प्रथममूलसंवर्गमात्रत्वे सति केवलज्ञानातिक्रमात् तदधिकसंख्याया अभावात्। द्विरूपवर्गधारायां यत्रोद्देशे यो यो

जाकर पल्यकी वर्गशलाकाका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर पल्यकी अर्धच्छेद राशिका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर पल्यके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर पल्यका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर घनांगुल होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जगतश्रेणि होती है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर जगतप्रतर होता है। उससे अनन्तानन्त स्थान जाकर जीवराशिकी वर्गशलाका राशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिकी अर्धच्छेद शलाका राशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर जीवराशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर श्रेणिरूप आकाशकी वर्गशलाकाका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर उसीके अर्धच्छेदोंका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर उसीके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर श्रेणिरूप आकाशका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन होता है। यही द्विरूपघनधाराका अन्तस्थान है। प्रथम वर्गमूल और द्वितीय वर्गमूलको परस्परमें गुणा करनेसे जो परिमाण होता है, वही द्वितीय वर्गमूलका घन है। यदि केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूलका घन किया जाये, तो केवलज्ञानका अतिक्रमण हो जाये। किन्तु केवलज्ञानसे अधिक

मी द्विरूपघनधारेगे स्थानविकल्पंगळेनितक्कुमें दोडे—केवलज्ञानवर्गशलाकेगळोळेरडु रूपहीनमादविनितप्पुवु । व – २ । एकें दोडे वर्गशलाकेगळ् परसमंगळप्पुदरिंदं द्विरूपघनधारेयुमरियल्पडुगुमदं तें दोडे :—एंटर घनमादियागि तद्वर्गमिंतु पूर्वपूर्वकृतिगळमेले मेलें नडेववनन्तसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु लोकालोकप्रदेशप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यात वर्गस्थानंगळं नडेदु तेजस्कायिकजीवराशिय गुणकारशलाकाराशि पुट्टिदुदी गुणकारशलाकाराशियें बुदें तें दोडे गुणित वारंगळं गुणकारशलाकेगळें बुददावुदं गुणिसिद वारंगळें दोडे तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणानयन विधानदोळु लोकंगळं गुणिसिद वारंगळ बुदर्त्थमदं तें दोडे :—

सूत्राविरोधमागि आचार्य्यपरंपरागतोपदेशदिंदं पेळ्वे–। मो दु घनलोकमं शलाकाभूतमं स्थापिसियदने चिरलन देयमेंदु माडि श ≡ वि ≡ दे ≡ विरलन राशियं विरलिसि रूपं प्रति देयं-

---

राशिर्जायते तद्देशे द्विरूपघनधारायां तस्य तस्य घनो जायते–संदृष्टिः–८, ६४, ४०९६, २५६, = ६५ = - ६५ = । ४२ = ४२ = । १८ = । ० । आ २।२ । प्र आ ६४ । ० । व व व ० । छे छे छे ० । मू १ मू १ मू १ । प प प ०, ६।०।–। = ।०। जी व व व ० । छे छे छे ० । मू १ मू १ मू १ । १६ १६ १६ ।०। श्रे आ व व व ० छे छे छे ।०। मू १ मू १ मू १ । सर्वाकाशं ।०। के मू २, मू २ मू २ । अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य द्विरूपोनवर्गशलाकामात्राः व–२ ।

अथ द्विरूपघनाघनधारोच्यते तद्यथा–अष्टघनमादिं कृत्वा पूर्वपूर्वस्य वर्गक्रमेणासंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा लोकाकाशप्रदेशराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकजीवराशेर्गुणकारशलाकाराशिः । का गुणकारशलाका ? विरलनराशिमात्रतत्सर्वदेयराशीनां[3] गुणितवाररूपा । ततोऽसंख्यातान्यसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा तद्वर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशितेजस्कायिकजीवराशय उत्पद्यन्ते । एषां राशीनां[4] असंख्यातानि असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वे उपपत्तिरुच्यते । घनलोकं शलाकाविरलनदेयरूपेण

संख्याका अभाव है । द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानपर जो राशि होती है, उस स्थानपर द्विरूपघनधारामें उस-उस राशिका घन होता है । इस धाराके स्थानोंके विकल्प केवलज्ञानके दो कम वर्गशलाका प्रमाण हैं ।

अब द्विरूपघनाघनधाराको कहते हैं—दोके घनके घनको आदि देकर पहले-पहले स्थानका वर्ग करते हुए जो संख्या उत्पन्न हों, वे जिस धारामें पायी जायें, उसे द्विरूपघनाघनधारा कहते हैं । सो दोका घन, आठका घन, पाँच सौ बारह इसका आदिस्थान है । इससे आगे पूर्व-पूर्व स्थानका वर्ग करते हुए क्रमसे असंख्यात वर्गस्थान जाकर लोकाकाशके प्रदेशोंका परिमाण आता है । उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर तैजस्कायिक जीव राशिकी गुणकार शलाका राशि आती है ।

शंका—गुणकार शलाका किसे कहते हैं ?

समाधान—विरलन राशि प्रमाण उसकी सर्व देय राशियोंके गुणन करनेके बारोंको गुणकार शलाका कहते हैं ।

उससे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर अग्निकायिक जीवराशिकी वर्गशलाका राशि, अर्धच्छेद राशि और अग्निकायिक जीव राशि उत्पन्न होती है । इन राशियोंकी असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर उत्पन्न होनेको उपपत्ति कहते हैं ।

---

१. म देयंगलुमारि । २. म °यमनदने । ३. ब गुणन समासिरूपा । ततः पृथक्-पृथक् संख्यातानि वर्ग° । ४. ब °नाँम संख्यात वर्गस्थानानि ।

मदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळोंदु रूपं कळेयल्पडुवुदु। श तदा एकान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाके पडेयल्पडुगुं। तत्रोत्पन्नराशिगे पलितोपमा संख्यातैकभागमात्रंगळ्वर्ग-शलाकेगळप्पुवंतेकंदोडे "देयराशेरुपरिविरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्र वर्गस्थानानि गत्वा लब्धराशिरुत्पद्यते" एंदु घनलोकदर्द्धच्छेदंगळं पल्यासंख्यातैकभागंगळं वर्गस्थानंगळं लोकद मेले नडेदु पोगि पुट्टिदुदेंबुदर्त्थं। आ तत्रोत्पन्नराशिगे अर्द्धच्छेदशलाकेगळु मसंख्यातलोकंगळु राशियुमसंख्यातलोकमात्रमु मादुदु मत्तमा तत्रोत्पन्नमहाराशियं विरलनदेयंगळु माडि वि ≡ ० दे ≡ ० विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि पूर्वशलाकाराशियोळ्मत्तोंदु रूपं कळेय-

ल्पडुवुदु। श ≡ ० तदा अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळेरडु। २। वर्गशलाकार्द्धच्छेदशलाकेगळु राशियुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु। इन्ती क्रमदिंदं नेतव्यमेक्कुमेन्नेवरं लोकमात्रशलाकाराशिपरि-

---

१० संस्थाप्य श ≡ वि ≡ दे ≡ विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गं कृते

शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श ≡ । अत्रोत्पन्नगुणराशेर्गुणकारशलाका एका। वर्गशलाकाराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः विरलनराश्यर्धच्छेदयुतदेयराशिवर्गशलाकामात्रत्वात्। अर्धच्छेदराशिः असंख्यातलोकमात्रः देयराश्यर्धच्छेदगुणितविरलनराशिमात्रत्वात्। पुनस्तमुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव

दत्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श ≡ अत्रोत्पन्नराशेर्गुणकारशलाके द्वे। वर्ग-
१५ शलाकाराश्यर्धच्छेदराश्युत्पन्नराशयः त्रयोऽपि असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवं तावत्कर्तव्यं यावल्लोकमात्रशलाकाराशिर्निष्ठाप्यते। तदुत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः लोकमात्र्यः ≡ अन्ये त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। पुनस्तदुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श ≡ ० । वि ≡ ० । दे ≡ ० विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गं कृते

जैसे लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण पृथक्-पृथक् विरलन, देय और शलाकारूप तीन राशि
२० करो। विरलन राशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो। और शलाकाराशिमें-से एक कम करो। यहाँ जो राशि हुई उसकी गुणाकार शलाका एक हुई। और वर्गशलाका पल्यके असंख्यातवें भाग हुई; क्योंकि विरलन राशिके अर्धच्छेद देयराशिके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंमें जोड़नेसे विवक्षित राशिकी वर्गशलाकाका प्रमाण होता है। तथा अर्धच्छेद राशि असंख्यात लोक प्रमाण हुई। क्योंकि देयराशिके
२५ अर्धच्छेदोंसे विरलन राशिको गुणा करनेपर विवक्षित राशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। और उत्पन्न हुई राशि असंख्यात लोक प्रमाण है। ऐसा करते जो राशि हो, उसे प्रमाण विरलन और देयराशि करके तथा विरलन राशिका विरलन करके और उसपर देयराशिको देकर परस्पर गुणा करनेपर शलाकाराशिमें-से एक कम करना। यहाँ तक गुणाकार शलाका दो हुईं। और वर्ग शलाकाराशि, अर्धच्छेदराशि और इनको गुणन करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई,
३० तीनों ही असंख्यात लोक प्रमाण हुईं। जबतक वह लोक प्रमाण शलाका राशि एक-एक कम करते हुए समाप्त हो, तबतक ऐसे करते जाना। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उसकी गुणाकार शलाका तो लोकप्रमाण हुई और सब तीनों राशि असंख्यात लोक, असंख्यात लोक

---

१. म ० ≡ । २. म °व्यवेन्ने° । ३. ब °ष्ठापितो भवति ।

समाप्ति पर्य्यंतं। तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाका प्रमाणं घनलोकमक्कु। ≡ मुळिदु मूरु राशिगळुमसंख्यातलोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं शलाकाविरलन देयमें दु त्रिप्रतीकं माडि श ≡ a वि ≡ a दे ≡ a विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमना राशियन्ने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयशलाकाराशियोळु श ≡ a दोंदु रूपं कळेयल्पडुगु श ≡ a तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळु रूपादि- (धि) क लोकंगळु ≡ शेषत्रयमुमसंख्यात लोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं विरलन देयंगळं माडि विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनदन कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयशलाकाराशियोळमत्तों दु रूपु कळेयल्पडुगुं। श ≡ a। २ तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळु द्विरूपाधिक लोकंगळु। ≡। शेष वर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळु राशियुमें ब मूरुमसंख्यातलोकंगळु।

इन्ती क्रमदिदं द्विरूपोनोत्कृष्टसंख्यातशलाकामात्रलोकशलाकेगळनडेदल्लि ≡ १५। ई यन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळं मुन्निन द्विरूपाधिकलोकमात्रान्योन्यभ्यस्तगुणकारशलाकेगळोळु

द्वितीयशलाकाराशित एकं रूपमपनयेत्। श ≡ a अत्रोत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः रूपाधिकलोकमात्र्यः ≡ अपरे त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्राः असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते द्वितीयशलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श ≡ a−२। अस्योत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः द्विरूपाधिकलोकमात्र्यः ≡। शेषास्त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवं तदुपरि गुणकारशलाकाः उत्कृष्टसंख्यातलोकमात्रा द्विरूपोना नीत्वा ≡ १५ एतासु प्राक्तनद्विरूपाधिकलोकमात्रगुणकारशलाकाः निक्षिप्यन्ते। तदा ततः प्रभृति चत्वारोऽपि राशय

मात्र हुईं। इस राशि प्रमाण विरलन देय शलाका स्थापित करके विरलन राशिका एक-एकके रूपमें विरलन करके और एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्पर गुणा करो। और दूसरी बार स्थापित की हुई शलाका राशिमें-से एक कम करो। यहाँ जो राशि उत्पन्न हुई, उसकी गुणाकार शलाका एक अधिक लोकप्रमाण है और शेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र, असंख्यात लोकमात्र हैं। इस उत्पन्न हुई राशि प्रमाण विरलन और देयराशि स्थापित करके विरनलराशिका विरलन करके और देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करनेपर दूसरी शलाकाराशिमें-से एक कम करना। तब गुणाकार शलाका दो अधिक लोकप्रमाण हुईं। और शेष तीनों राशि असंख्यातलोक-असंख्यातलोक हुईं। इसी प्रकार दो कम उत्कृष्ट संख्यात लोकमात्र गुणाकार शलाका प्राप्त करके इनमें पूर्वोक्त दो अधिक लोकमात्र गुणाकार शलाका जोड़नेपर गुणाकार शलाका भी असंख्यात लोकप्रमाण हुईं। तब यहाँसे लेकर गुणाकार शलाका, वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद राशि और उत्पन्न हुई राशि ये चारों विशेष रूपसे हीन अधिक हैं, तथापि सामान्यसे असंख्यात लोकप्रमाणरूप असंख्यात हैं। इस तरहसे दूसरी बार स्थापित शलाकाराशिको भी एक-एक कम करके पूर्ण करे। ऐसा करनेसे उत्पन्न हुई राशि प्रमाण विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करके पूर्वोक्त प्रकारसे इस तीसरी बार स्थापित

कूडुत्तिर ≡ १६ ला येडेयोळु नाल्कुं राशिगळुमसंख्यातलोकंगळालापमात्रंविदप्पुर्वितु नडसल्पडुवुवेन्नेवरं द्वितीयवारं स्थापिसिद शलाकाराशि निष्ठापिसल्पडुदन्नेवरं तदा तद्राशिचतुष्टयमसंख्यात लोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं त्रिप्रतीकं माडि श ≡ ə वि ≡ ə दे ≡ ə विरलन राशियं विरलिसि रूपं प्रति देयमनदने कोट्टु वर्ग्गितसंवर्ग्ग माडि तृतीयशलाकाराशियोळों दु रूपु कळेयल्पडुगुं। श ≡ ə तदा राशिचतुष्टयमुमसंख्यातलोकंगळु इन्ती क्रमदिंदं नेतव्यमक्कुमेन्नेवरं तृतीयवारं स्थापिसि शलाकाराशि परिसमाप्तमक्कु मन्नेवरं तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियुं वर्ग्गशलाकाराशियुमर्द्धच्छेदराशियुं लब्धराशियुमेंबी राशिचतुष्टयमुं तद्योग्यासंख्यातलोकंगळु।

मत्तमा तत्रोत्पन्न महाराशियं त्रिप्रतीकमं माडि श ≡ ə वि ≡ ə दे ≡ ə विरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रति देयमनदने कोट्टु वर्ग्गितसंवर्ग्गमं माडि चतुर्त्थवारशलाकाराशियोळों दु रूपं कळेयल्पडुगुमिते पुनः पुनं माडि नडेसल्पडुवुदेन्नेवरं अतिक्रांतान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकगळिंदं परिहीनमप्प चतुर्त्थवारं स्थापितान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशि परिसमाप्तियक्कुमन्नेवरं।

तदा तेजस्कायिक जीवराशिप्रमाणंमप्पलब्धराशि पुट्टुगुं। ईयर्थमनाचार्य्यं मनदोळिरिसि :

आलापतः असंख्यातलोका असंख्यातलोका भवन्ति। एवं गत्वा द्वितीयवारनिष्ठापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं त्रिः प्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् इमं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा अतीतगुणकारशलाकाराशित्रयहीनोयं चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिर्निष्ठाप्यते। तदा तेजस्कायिकजीवराशिरुत्पद्यते। एतद्दृष्ट्वा....

'आउड्ढरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ'

इत्युक्तमाचार्यैः। ततोऽसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकस्थितेर्वर्गशलाकाराशिः। का तत्स्थितिः ?

शलाका राशिको भी समाप्त करके जो राशि उत्पन्न हो, उसी प्रमाण विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करके, इस चौथी बार स्थापित की गयी शलाकाराशिमें-से पहले कही तीन गुणकार शलाकाराशिके प्रमाणको कम करके जो शेष रहे, उतनी शलाकाराशिमें-से पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक कम करते जब वह समाप्त हो तब जो राशि उत्पन्न हो, वही अग्निकायिक जीवोंकी राशि है। यह देखकर ही आचार्योंने कहा है कि साढ़े तीन बारकी शलाका राशिरूपसे लोकको परस्परमें गुणा करनेपर तैजस्कायिक जीवराशि होती है। इस प्रकार अग्निकायिक जीवराशिकी गुणकार शलाकासे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर उसकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेदराशि और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर तैजस्कायिक जीवोंका प्रमाण होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर तैजस्कायिककी स्थितिकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है।

शंका—तैजस्कायिक स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—अन्यकायसे आकर तैजस्कायमें जीव उत्पन्न हो। और तैजस्कायको न छोड़कर उत्कृष्ट काल तक तैजस्कायमें ही जन्म लेता रहे। वही काल तैजस्कायिक स्थिति है।

---

१. म °डुवन्ने°।

'आउट्ठराशि वारं ळोगे अण्णोण्ण संगुणे तेऊ' एंदु पेळ्दं । अंता चतुर्त्थवारं स्थापिसिद शलाकाराशिप्रमाणमप्प तेजस्कायिकान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियिंदं मेले असंख्यात-वर्ग्गस्थानंगळं नडेदा तेजस्कायिकजीवराशिय वर्ग्गशलाकाराशि पुट्टिदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्ग-स्थानंगळं नडेदु तेजस्कायिकजीवराशियर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूळं पुट्टिदुदा प्रथममूलमनोम्में वर्ग्गगोळत्तेजस्कायिक जीवराशि प्रमाणं पुट्टिदु-दल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु तेजस्कायस्थितिय वर्ग्गशलाकाराशी पुट्टिदुदी तेजस्काय-स्थिति एंबुदेनं दोडन्यकायदत्तणिदं बंदु तेजस्कायंगळोळु पुट्टिद जीवक्कुत्कृष्टदिंदं तेजस्कायिकत्वमं पत्तुविडदिर्प्प कालमेंदितु पेळल्पट्टुदा तेजस्कायिकस्थितिवर्ग्गशलाकाराशियिंदं मेलसंख्यात-वर्ग्गस्थानंगळं नडेदु अर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुददनोम्में वर्ग्गगोळत्तेजस्कायिकस्थितिराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदवधि निबद्ध क्षेत्रोत्कृष्टराशिय वर्ग्गशलाकाराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु मर्द्धच्छेद प्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्में वर्ग्गगोळु त्तिरलवधि निबद्धक्षेत्रो-त्कृष्टप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु वर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळे यथाक्रमदिदं पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्में वर्ग्गंगोळलु स्थितिबंधाध्यवसाय राशिप्रमाणं पुट्टिदुदी स्थितिबंधाध्यवसायमेंबुदेनं दोडे ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळु ज्ञानाच्छादनादि तंतम्म स्वभावमक्कु पत्तु विडदिर्प्प कालमु स्थितियें बुदा स्थितिबंधकारणकषायपरिणामस्थानविकल्पराशिप्रमाणमं-

---

अन्यकायादागत्य तेषूत्पन्नस्य तेजस्कायिकत्वमत्यक्त्वा उत्कृष्टेन अवस्थानकालः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते तेजस्कायिक-स्थितिप्रमाणम् । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदशलाकाराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रम् । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशि-रर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि । कानि तानि ? ज्ञानप्रच्छा-दनादिस्वभावेन कर्मणामवस्थितिकालात्मकस्थितिबन्धनिबन्धनानि । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि । कानि

तैजस्कायिक स्थितिसे असंख्यात वर्गस्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेदराशि होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर तैजस्कायिक स्थितिका प्रमाण होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर अवधिज्ञान सम्बन्धी उत्कृष्ट क्षेत्रकी वर्गशलाकाराशि, अर्द्धच्छेदराशि और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर अवधिज्ञानसे सम्बद्ध उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण होता है।

शंका—स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानावरण आदि कर्मोंका ज्ञानको आवरण करना आदि स्वभाव रूपसे रहनेके कालका नाम तो स्थिति है और स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थानोंको स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान कहते हैं। उससे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं।

बुदर्त्थ मिल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वग्गिसिदोडनुभागबंधाध्यवसायस्थानं पुट्टिदुदा अनुभागबंधाध्यवसायमं बुदे तें दोडे ज्ञानावरणादि कर्म्मंगळ वर्ग्ग। वर्ग्गणा। स्पर्द्धक। गुणहानिस्थानरूपदिनिर्द्दर्डविभाग प्रतिच्छेदंगळ समूहमननुभागमं बुदा अनुभागबंधनिबंधनमप्प सकलसंसारिजीव त्रिकालगोचरं गळप्प कषायपरिणामविकल्पराशिप्रमाणमं बुदर्त्थ मिल्लिदं मेलसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्ग्गगोळ्गु निगोदजीवंगळकायोत्कृष्ट संख्याप्रमाणं पुट्टिदुदी निगोदकायोत्कृष्टसंख्ययं बुदे तें दोडे। स्कंधांडरावासपुळविगळु यथाक्रमदिंदमसंख्यातलोकगुणित क्रमंगळु। स्कं = ə। अं = ə। = ə। आ। = ə। = ə। = ə। पु = ə। = ə। = ə। = ə।

ई पुळविगळोळु प्र १ ॥ पुलविग। फल। निगोदशरीरंगळु = ə असंख्यातलोकमात्रंगळागलुमिनितु पुळविगळगेनितु निगोदशरीरंगळप्पुवेंदितनुपातत्रैराशिकसिद्धसमस्तनिगोदशरीरप्रमाणमेंबुदर्त्थं = ə = ə = ə = ə = ə अल्लिदं मेलसंख्यातलोकवग्गंस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्ग्गगोळ्गु निगोद-

---

तानि ? ज्ञानावरणादिकर्मणां वर्गवर्गणास्पर्धकगुणहानिस्थानरूपावस्थिताविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकानुभागस्य बन्धनिबन्धनानि। ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिरर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदशरीरोत्कृष्टसंख्या। कियती सा ? स्कन्धाण्डरावासपुलविदेहा। यतः पृथगसंख्यातलोकालापाः अपि असंख्यातलोकगुणितक्रमाः ततः एतावती = ə = ə = ə = ə = ə।

ततः असंख्यातलोकमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथमवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदकायस्थितिः। का सा ? निगोदशरीराकारेण परिणतपुद्गलस्कन्धानां तदाकारा-

---

शंका—अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान किसे कहते हैं—

समाधान—ज्ञानावरण आदि कर्मोंके वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुण-हानिरूपसे स्थित अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहरूप अनुभागके बन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थानोंका नाम स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर निगोद शरीरोंकी उत्कृष्ट संख्याकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर निगोदशरीरोंकी उत्कृष्ट संख्या होती है।

शंका—वह संख्य. कितनी है ?

समाधान—स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवि और देह ये पाँचों पृथक्-पृथक् असंख्यात लोकप्रमाण होनेपर भी क्रमसे असंख्यात लोक गुणित हैं। अतः पाँच जगह असंख्यात लोकको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी ही निगोद शरीरोंकी उत्कृष्ट संख्या है।

उससे आगे असंख्यातलोकमात्र असंख्यातलोकमात्र वर्गस्थान जाकर निगोदकायस्थितिकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर निगोदकायस्थिति होती है।

शंका – निगोदकायस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—निगोदशरीररूप परिणमे पुद्गल स्कन्ध उत्कृष्ट रूपसे जितने काल तक निगोदशरीरपनेको नहीं छोड़ते, उतने कालके समयोंका प्रमाण निगोदकायस्थिति है। यहाँ

कायस्थिति पुट्टिदुदा निगोदकायस्थितियेंबुदेंतेंदोडे ॥ ॥ निगोदशरीरस्वरूपंदिदं परिणमिसिद पुद्गलस्कंधंगळ् तत्स्वरूपमं पत्तुविडदेनितु कालमिर्प्पुवा कालमं निगोदकायस्थितियेंदु कैकोळ्वुदेकेंदोडे निगोदजीवंगळ्गे निगोदत्वपरित्यागकालमादोडदुत्कृष्टदिंदं द्वयर्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमितकालमप्पुददनंतमप्पुदरिंदमदिल्लि कैकोळल्पडदु । आ निगोदकायस्थितियिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्गशलाकार्द्धच्छेद प्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्गंगोळल् योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं पुट्टिदुदायोगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदमेंबुदेंतेंदोडे जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशंगळोळु कर्म्मनोकर्म्मपर्य्यायपरिणमनयोग्यकार्म्मणवर्गणाहारवर्गणारूप पुद्गलपिंडके तत्तत्पर्यायपरिणमन दोळ् प्रकृतिप्रदेशबंधनिमित्तशक्तियं योगमेंबुदा योगविकल्पस्थानंगळुं जगच्छ्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमाणंगळप्पुवु । चयाधिकंगळागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टस्थानंगतावि भागप्रतिच्छेदप्रमाणमेंबुदर्त्थं । अल्लिदं मेलसंख्यातवर्गस्थानत्वमं बिट्टनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु केवलज्ञानचतुर्त्थमूलघनाघनं पुट्टिदुदिदुवुं केवलज्ञानप्रथममूलमुमं तुरीयमूलमुमं गुणिसिद राशिप्रमाणमक्कुमिदे द्विरूपघनाघनाधारेगवस्थानमक्कुं । किं बहुना :—

त्यजनेन अवस्थानकालः, न तु निगोदजीवानां उत्कृष्टावस्थानकालः, तस्य द्वयर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमितत्वात् । ततः असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते योगस्य चतुःस्थानवृद्धिंगतश्रेण्यसंख्येयभागमात्रेण उत्कृष्टस्य अविभागप्रतिच्छेदराशिरुत्पद्यते । कः सः ? कर्मनोकर्मवर्गणानां सर्वात्मप्रदेशेषु प्रकृतिप्रदेशबन्धयोर्हेतुः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानस्य चतुर्थवर्गमूलघनाघनः । स च तस्य प्रथमचतुर्थवर्गमूलगुणनलब्धमात्रः । अयमेव अस्याः धारायाः अन्तः । द्विरूपवर्गधारायां इष्टस्थाने यो यो राशिर्दृश्यते अस्यां तत्स्थाने तत्सदृशाः नव नव राशिगुणनलब्धमात्राः सन्ति । अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य चतुरूपोनवर्गशलाकामात्राः के ब–४ । एवं चतस्र एव धारा

निगोद जीव निगोदपर्यायमें जितने उत्कृष्ट काल तक रहें, उसे निगोदकायस्थिति नहीं लेंगे क्योंकि उसका काल ढाई पुद्गल परावर्तन है जो अनन्त है । उससे असंख्यात-असंख्यात-वर्गस्थान जाकर उत्कृष्ट योगस्थानोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वर्गशलाकाराशि, अर्धच्छेद राशि और प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है । उसमें एक बार वर्ग करनेपर जो चतुःस्थान वृद्धिको लिये हुए श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान हैं, उनमें जो उत्कृष्ट योगस्थान है, उनके अविभागी प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । वे योगस्थानोंके अविभागी प्रतिच्छेद जीवके समस्त प्रदेशोंमें कर्म और नोकर्मपर्यायरूप परिणमनेके योग्य वर्गणाओंमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण होते हैं । उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानके चतुर्थ वर्गमूलके घनका घन आता है । वह केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूल और चतुर्थ वर्गमूलको गुणा करनेपर जो लब्ध आता है, उतना मात्र है । यही द्विरूप घनाघनधाराका अन्तस्थान है । द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानमें जो राशि होती है, इस धारामें उस स्थानमें उस राशिको नौ जगह स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी राशि होती है । इस धाराके सब स्थान केवलज्ञानकी वर्गशलाकाके प्रमाणसे चार कम होते हैं । इस तरह यहाँ चार ही धाराओंका कथन किया है । शेष समधारा आदि दस धाराएँ यहाँ उपयोगी न होनेसे नहीं

---

१. ब °त्रेषूक्तं ।

जो जो रासी दिस्सदि विरूववग्गे सनिट्ठाणम्मि ।
तट्ठाणे तस्सरिसा घणाघणे णव णउट्ठिट्ठा ॥

येंदु द्विरूपवर्गधारेयोळु स्वकीयेष्टस्थानदोळु आवावराशि काणल्पडुगुमास्थानदोळा-राशि समानंगळु द्विरूपघनाघनधारेयोळु नवनवोद्दिष्टंगळु ई द्विरूपघनाघनधारेगे स्थानविकल्पं-गळेनितक्कुमेंदोडे केवलज्ञानवर्गशलाकाराशियोळ्नाल्कु रूपगळ् कुंदिदनितु स्थानं विकल्पंगळ-प्पुवु । के ≡ । व – ४ । इंतिल्लिगुपयोगिगळप्प नाल्कु धारेगळ्पेळल्पट्टविन्नुळिद सम । विषम । कृति । अकृति । कृतिमूल । अकृतिमूल । घन । अघन । घनमूल । अघनमूल मेंब पत्तु धारेग-ळिल्लिगनुपयोगिगळेंदु पेळ्वुदिल्लं विस्तररुचिगळ् त्रिलोकसारदोळं बृहद्धारापरिकर्म्मदोळं नोडिकोळ्वुदु ॥

अनंतरं जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकनिर्णयार्त्थमागि परिभाषे पेळल्पडुगुमदंतेंदोडे :—

पल्लं समुद्दउवमं अंगुळयं सूइ पदरघणणामं ।
जगसेढि लोयपदरो लोओ विं य अडपमाणाणि ॥

पल्यमुं । सागरोपममुं । सूच्यंगुलमुं । प्रतरांगुलमुं । घनांगुलमुं । जगच्छ्रेणियुं । लोकप्रतरमुं । लोकमुमेंदितुपमा प्रमाणंगळ्गेंदु प्रकारंगळप्पुवु । "एकद्व्यादिगणनया वक्तुमशक्यस्य राशेः कयाचिदुपमया प्रतिपादनमुपमा । उपमैव प्रमाणमुपमाप्रमाण" मेंबी निरुक्त्याभिप्रायदिंद । प । सा । सू २ । प्र ४ । घ ६ । जगच्छ्रेणि— । ज प्र ८ । लो ≡ । मा ८ एंदु प्रमाणंगळ्गे इवु संदृष्टिगळु ॥

ववहारुद्धारद्धा तिय पल्ला पढमयम्मि संखाओ ।
बिदिए दीवसमुद्दा तदिये मिज्जेदि कम्मठिदी ॥

व्यवहारपल्यमेंदुद्धारपल्यमेंदु अद्धापल्यमेंदितु पल्यं मूरु विकल्पमप्पुदल्लि प्रथमोद्दिष्ट-व्यवहारपल्यदोळु रोमसंख्येगळ्, द्वितीयोद्धारपल्यदोळु द्वीपसागरसंख्येगळ्ं । तृतीयाद्धापल्यदोळु कर्म्मस्थितिगळ्मोदलादुवु प्रमाणिसल्पडुवुवु ।

उक्ताः । शेषसमादिदशधाराणामत्रानुपयोगित्वात् । तज्जिज्ञासवः त्रिलोकसारे बृहद्धारापरिकर्मणि वा शिष्या जानन्तु ।

यदेकद्व्यादिगणनया विना उपमयैव उच्यते तदुपमानं, तत्—पल्यं सागरोपमं सूच्यङ्गुलं प्रतराङ्गुलं घनाङ्गुलं जगच्छ्रेणिः लोकप्रतरो लोकश्च इत्यष्टधा । एषां स्वरूपं परिभाषाकथनपूर्वकं इदानीमुच्यते तद्यथा—यत् सुतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण छेत्तुं भेत्तुं मोटयितुं च न शक्यते जलानलादिभिर्नाशं नैति एकैकरसवर्णगन्धं

कही हैं। जिन्हें उनके जाननेकी इच्छा हो,उन्हें त्रिलोकसार अथवा बृहत्धारापरिकर्मसे जानना चाहिए।

जो राशि एक-दो आदि गणनाके द्वारा न कही जा सकनेके योग्य होनेसे केवल उपमाके द्वारा ही कही जाती है,उसे उपमान कहते हैं। उपमानके पल्य, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणि, लोकप्रतर और लोक इस प्रकार आठ भेद हैं। परिभाषाके कथनपूर्वक इनका स्वरूप अब कहते हैं—जो सुतीक्ष्ण शस्त्रसे भी छेदन-भेदन और मोड़नेमें असमर्थ होता है, जल-आग आदिसे नाशको प्राप्त नहीं होता, एक रस, एक गन्ध, एक रूप और दो स्पर्श गुणोंसे युक्त होता है,-शब्दका कारण है किन्तु स्वयं शब्दरूप नहीं है, आदि-मध्य

खंदं सयळ समत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होइ परमाणू ॥

सकलावयवसमर्थं स्कंधमेंबुदक्कुं । अदरर्द्धमं देशमेंदितु पेळ्वरर्द्धार्द्धमुमं प्रदेशमेंदु पेळ्व-र्प्परमाणुमेंबुदविभागियक्कुं ॥

सच्छेण सुतीक्खेण छेत्तुं भेत्तुं च जं किळ ण सक्को । ५
जळ अणळादीहि णासं ण एदि सो होदि परमाणू ॥

सुतीक्ष्णशस्त्रदिंदमेरडु खंडमाडलु विदारि-सलु-मोडेयलुं शक्यमल्लदुदुं जलानलादिगळिंदं नाशमनेय्ददुदावुदोंदु पुद्गलद्रव्यमदु परमाणुमक्कुं ॥

एक्करसवण्णगंधं दोपासं सद्दकारणमसद्दं ।
खंडंतरिदं दव्वं तं परमाणुं भणंति बुहा ॥ १०

यथायोग्यमप्प ओंदु रसनोंदु वर्णनमोंदु गंधमुमेरडु स्पर्शगळ्नुळ्ळुदुं शब्दकारणमुमशब्दमुं स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुमेंददं बुधवरर्गणधरादिदेवर्प्पेळ्वरु ।

अंताइमज्झहीणं अपदेसं इंदिएहि ण हगेज्झं ।
जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणुं भणंति जिणा ॥

अंतादिमध्यहीनमप्रदेशमिंद्रियंगळिंदमग्राह्यमुं यद्द्रव्यमविभक्तं तद्द्रव्यं परमाणुवेंदु १५
जिनर्प्पेळ्वरु ॥

पूरंति गळंति जदो पूरणगळणेहि पोग्गळा तेण ।
परमाणु प्पिय (णु पि य) जादा इयदिट्ठं दिट्ठिवादम्मि ॥

यतोंऽतरंगबहिरंगकारणाभ्यां पूरणगलनस्वभावैः पुद्गलाः पूरयंति गलंति तेन कारणेन पुद्गलपरमाणवोपि च पुद्गला जाताः ॥ २०

आवव केलवंतरंगबहिरंग कारणंगळिंदं पूरणगलनस्वभावदिंदं पुद्गलंगळु पूरिसुववुं गलिसुव-वदु कारणदिंदं परमाणुगळु पुद्गलंगळुमप्पुवेंदिदु दृष्टिवाददोळु दृष्टं ।

इंद्रियंगळिनग्राह्यंगळपरमाणुगळे बिदरिंदमभूर्त्तंगळ् परमाणु गळ्एं बाशंकेयादोडे स्पर्श-रसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः एंदिदरिंदं परमाणुगळ् भूर्त्तंगळु पूरणगलनस्वभावदिंदं पूरिसुवुवं गलिसुव-वुमदरिंदं पुद्गलंगळुमप्पुवेंदोडे परमाणुगळविभागिगळप्पुदरिंदं गलनपूरणमंतेंदोडे पेळ्दपरु :— २५

द्विस्पर्शशब्दकारणं अशब्दं स्कन्धान्तरितं आदिमध्यावसानरहितं अप्रदेशं इन्द्रियैरग्राह्यं अविभागि तद् द्रव्यं परमाणुः कथ्यते । स च अन्तरङ्गबहिरङ्गकारणाभ्यां वर्णरसगन्धस्पर्शैः सर्वदा पूरणं गलनं च स्कन्धवत् करोति इति पुद्गलः । तेषामनन्तानन्तानां स्कन्धः अवसन्नावसन्नो नाम, ततः सन्नासन्नः त्रुटरेणुः त्रसरेणुः रथरेणुः, उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिकर्मभूमिबालाग्राणि लिक्षासर्षपयवाङ्गुलानि चेति द्वादशापि अष्टाष्टगुणानि

और अन्तसे रहित है, बहुप्रदेशीन होनेसे अप्रदेशी है, इन्द्रियोंके द्वारा जाननेके अयोग्य है, ३०
जिसका विभाग नहीं हो सकता, उस द्रव्यको परमाणु कहते हैं। वह परमाणु अन्तरंग-बहिरंग कारणोंसे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श गुणोंके द्वारा स्कन्धकी तरह पूरण और गलन अर्थात् वृद्धि-हानिको प्राप्त होता रहता है, इसलिए उसे पुद्गल कहते हैं। उन अनन्तानन्त परमाणुओंके स्कन्धका नाम अवसन्नावसन्न है। उससे सन्नासन, त्रुटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, मध्यमभोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, ३५
जघन्यभोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, कर्मभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, लीख,

वण्णरसगंधफासे पूरणगळणाइ सव्वकालम्मि ।
खंधं पि व कुणमाणा परमाणू पोग्गळा तम्हा ॥

वर्णरसगंधस्पर्शेषु पूरणगलनानि सर्व्वकालेषु । कुर्व्वाणाः परमाणवस्तस्मात् स्कंधा अपीव पुद्गलाः स्युः ॥

वर्णरसगंधस्पर्शंदोळु पूरणगलनंगळं सर्व्वदा माळ्प परमाणुगळु स्कंधंगळुमेंतंते पुद्गलंगळप्पुवु ।

परमाणूहि यणंताणंतेहि बहुविदेहि दव्वेहि ।
ओसण्णासण्णेत्तिय सो खंधो होदि णामेण ॥

बहुविधंगळप्प परमाणुगळनंतानंतद्रव्यंगळिदं समुदितमाद स्कंधमदवसन्नासन्ने एंबुदक्कुं ॥

ओसण्णासण्णो जे य गुणिदे अट्ठेहि होदि णामेण ।
सण्णासण्णे त्ति तदो दु इट्टिट खंधो पमाणत्थं ॥

आ अवसन्नासन्नेयुमनें टरिदं गुणिसुत्तिरलु नामदिंदद्दु सन्नासन्नेयेंबुदक्कु मी द्वितीयस्कंधोपम द्रव्यमं ।—

अट्ठेहि गुणदव्वेहिं सण्णासण्णेहि होदि तुदिरेणू ।
तत्तियमेत्तहदेहिं तुदिरेणूहिं पि तसरेणू ॥

मत्तमें टरिद गुणिसल्पट्ट सन्नासन्नेगळिनों दु त्रुटिरेणुमक्कुमपिशब्ददिंदमा त्रुटिरेणुगळुमेटरिद गुणिसल्पट्टवादोंदु त्रसरेणुवक्कु ।

तसरेणू रथरेणू उत्तमभोगावणीए वालग्गं ।
मज्झिम भोगखिदीए वालंपि जहण्ण भोग खिदिवालं ॥

मा त्रसरेणुगळे टं गोंडदों दु रथरेणुमक्कुं रथरेणुगळे टरिंदमों दु तम् भोगभूमिजवालाग्रमक्कु मा वालाग्रंगळ टरिंदमों दु मध्यमभोगभूमिजबालाग्रमक्कु मा बालाग्रंगळे टरिंदं जघन्यभोगभूमिजातनों दु बालाग्रमक्कुमा बालाग्रंगळेटरिंदं :—

कम्ममहीए वालं लिक्खं जूयं जवं च अंगुळयं ।
इय उत्तरा पभणिदा पुव्वेहिं अट्ठगुणिदेहिं ॥

कर्म्मभूमिजनों दु बालाग्रमप्पुदा बालाग्रंगळे ट रिंदों दु लिक्षमप्पुदा लिक्षंगळे टरिंदमों दु सर्षपमप्पुदा सर्षपंगळे टरिंदमों दु यवेयक्कुमा यवेगळे टरिंदं ओंदंगुलमक्कु ।

मन्तव्यानि । अङ्गुलं तु उत्सेधाङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलं आत्माङ्गुलमिति त्रिधा । तत्र प्रागुक्तपरिभाषानिष्पन्नमुत्सेधाङ्गुलम् । तेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवशरीराणि भावनादिचतुर्विधदेवनगरतन्निकेतनानि च वर्ण्यन्ते । तच्च पञ्चशतगुणं भरतक्षेत्रावसर्पिणीकालप्रथमचक्रवर्त्यङ्गुलसमं प्रमाणाङ्गुलं भवति । तेन द्वीपोदधिशैलवेदीनदीकुण्डजगतीवर्षप्रमाणानि वर्ण्यन्ते । भरतैरावतमनुष्याणां स्वस्ववर्तमानकालाङ्गुलमात्माङ्गुलं भवति । तेन

सरसों, जौ, और अंगुल ये बारह भी एक दूसरेसे आठ-आठ गुने जानना । अंगुलके तीन भेद हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल । पूर्वोक्त क्रमसे उत्पन्न हुआ उत्सेधांगुल है । इससे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंके शरीर, भवनवासी आदि चार निकायोंके देवोंके नगर और निवासस्थान आदिके मापका कथन किया जाता है । उस उत्सेधांगुलसे पाँच सौ गुना प्रमाणांगुल होता है । यह प्रमाणांगुल भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्तीका आत्मांगुल होता है । इससे द्वीप, समुद्र, पर्वत, वेदी, नदी, कुण्ड, जगती, क्षेत्र

तिविकप्पमंगुलं तं उच्छेह पमाण अप्प अंगुलयं ।
परिभासाणिप्पणं होदि हु उस्सेहसूचि अंगुलयं ॥—[ति. प. १।१०७]

मत्तमा अंगुलं त्रिविकल्पमक्कु मुत्सेधप्रमाणात्मांगुलमेंदितुमिवरोळ् प्रथमोद्दिष्टपरिभाषानिष्पन्नांगुलमुत्सेध सूच्यंगुलमक्कुं ।

तच्चिय पंचसयाइं अवसप्पिणि-पढम-भरहचक्किस्स ।
अंगुलमेक्कं जं जिय तं तु पमाणंगुलं होदि ॥—[ति. प. १।१०८]

आ उत्सेधसूच्यंगुलंगळैनूरुं कोंडदोंदु भरतक्षेत्रदवसर्प्पणीकालद प्रथमचक्रवर्त्तिय अंगुलमक्कुमदु ताने मत्ते प्रमाणांगुलमें बपेसरनुळ्ळुदक्कुं ।

जस्सि जस्सि काळे भरहेरावदमहीसु जे मणुवा ।
तस्सि तस्सि ताणं अंगुलमादंगुलं णाम ॥—[ति. प. १।१०९]

आवाव कालदोळु भरतैरावतमहीगळोळाक्कलंबर्मनुष्यरुगळा आ कालदोळा मनुष्यरुगळंगुलमदात्मांगुलमें बुदक्कुं ।

उच्छेह अंगुळेण य सुराण णरतिरिय णारयाणं च ।
उस्सेह जाण भावण चउदेवणिकेदणयराणं ॥—[ति. प. १।११०]

देवमनुष्यतिर्य्यग्नारकरुगळ शरीरोत्सेधंगळुं भावनादि चतुर्व्विधदेवर्क्कळ नगरंगळोळगण निकेतनंगळुमुत्सेधांगुलदिंदं पवणिशल्पडुवुवु ।

दीवोवहिसेलाणं वेदीण णदीण कुंड जगदीणं ।
वस्साणं च पमाणं होदि पमाणंगुलेणेव ॥—[ति. प. १।१११]

द्वीपोदधिशैलंगळ वेदिगळ नदिगळ कुंडंगळ जगतिगळ वर्षंगळ प्रमाणंगळनितुं प्रमाणांगुलदिंद मेयप्पुवु ।

भिंगारकलसदप्पणधणुहयडहजुगाण सयणसगडाणं ।
हलमुसलसत्तितोमरसिंहासण बाणणालि अक्खाणं ॥
चामरदुंदुहिपीढच्छत्ताणं णरणिवासणयराणं ।
उज्जाण पहुडियाणं संखा आदंगुलेणेव ॥—[ति. प. १।११२-११३]

भृंगारकलशदर्प्पणधनुःपटहयुगशयनशकटहलमुशलशक्तितोमरसिंहासनबाणलक्षनालि चामरदुंदुभिपीठछत्रनरनिवासनरनगरोद्यान प्रभृतिगळ संख्ययात्मांगुलदिंद मेयमक्कुं ।

भृंगारकलशदर्पणधनुःपटहयुगशयनशकटहलमुशलशक्तितोमरसिंहासनबाणाक्षनालिचामरदुन्दुभिपीठछत्रनरनिवासनगरनगोद्यानादयो वर्ण्यन्ते । षडङ्गुलैः पादस्ततो वितस्तिः हस्तः किष्कुः दण्डश्चेति चत्वारोऽपि द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति । द्विसहस्रदण्डैः क्रोशः चतुर्भिः क्रोशैर्योजनम् । प्रमाणयोजनागाधव्यासो वृत्तो गर्तः, उत्तमभोग-

---

आदिके प्रमाणका कथन किया जाता है । भरत और ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने-अपने वर्तमानकालमें जो अंगुल होता है, वह आत्मांगुल है । उससे झारी, कलश, दर्पण, धनुष, ढोल, जुआ, शय्या, गाड़ी, हल, मूसल, शक्ति, भाला, सिंहासन, बाण, पासे, नाली, चमर, दुन्दुभि, आसन, छत्र, मनुष्योंके निवास, नगर, उद्यान आदिके प्रमाणका कथन किया जाता है । छह अंगुलका एक पाद होता है । उससे वितस्ति, हाथ, चार हाथ (२४ अंगुल) और दण्ड ये चारों दूने-दूने होते हैं । दो हजार दण्डका एक कोस, और चार कोसका एक योजन होता है ।

प्रमाणांगुलसे निष्पन्न योजन प्रमाण चौड़ा और गहरा गोल गड्ढा करो । उसे उत्तमभोगभूमिके मेढ़ेके युगलके जन्मसे एक दिनसे लेकर सात दिनके रोमोंके अग्रभागोंको,

छहि अंगुलेहि पादो बेपादेहिं विहत्थिणामा य ।
दोण्णि विहत्थी हत्थो बेहत्थेहिं हवे किक्कू ॥—[ति. प. १।११४]

आरंगुलदिदं पादं, पादद्वयदिदं वितस्ति, वितस्तिद्वयदिदं हस्तं हस्तद्वयदिदं किष्कु ।

बेकिक्कूहिं दंडो दोण्णि सहस्सेहि तेहि कोसो य ।
कोसचउक्केण हवे जोयणमेक्कं जहा कमसो ॥—[ ]

किष्कुद्वयदिदं दंडमक्कुमा दंडद्विसहस्रांगळिदं क्रोशमक्कुमाक्रोश चतुष्कदिनो दु योजनमक्कुं । प्रमाणांकयोजनोत्सेध योजनविस्तार वृत्तगर्त्तघनफलमं गणितकुशलदिदं तरल्पडुवुदु ।

समवट्टवासवग्गे दहगुणिदे करणिपरिरयो होदि ।
वित्थार तुरिमभागे परिहिहदे तस्स खेत्तफलं ॥—[ति. प. १।११७]

समवृत्तव्यासवर्ग्गमं । १ । १ । दशगुणितं माडुत्तिरलु करणिवृत्त परिधियक्कु १ । १ । १० । मी करणियं मूलंगोळलनितक्कु । १९ मिदं वित्थारतुरिमभागे परिहिहदि तस्स खेत्तफलं १९ । १
६ ६ ४

एंदिदु क्षेत्रफलमप्पुदिदं वेदियिंदं गुणिसुत्तिरलु पल्यद घनफलमक्कु १९ १ (१९/२४) मी
२ ४
घनफलमे प्रत्येकं त्रिविधपल्यंगळक्कुं।

उत्तमभोगखिदीए उप्पण्णविजुगलरोमकोडीओ ।
एक्कादिसत्तदिवसावहिम्मि छेत्तूण संगहिदं ॥—[ति. प. १।११९]

उत्तमभोगभूमियोळुत्पन्नावि युगळरोमंगळनेळुदिवसावसानदोळ् कत्तरिसिकोंडु रोमाग्रव्याससमानमं केळगिळिदु कत्तरिसिदा बालाग्रकोटिगळं संग्रहिसिकोंडु ।—

अइवट्टीहिं रोमं गेहिंतेहिं णिरंतरं पढमं ।
अच्चंतं णिचिदूणं भरिदव्वं जावभूमिसमं ॥—[ति. प. १।१२०]

इंतितिवृत्तंगळप्पाऽरोमाग्रंगळिदं निरंतरं अंतरालादर्शनमेंतंते अत्यंतनिचितं माडि प्रथमकुंडं तुंबल्पडुवुदुमदेन्नेवरं भूमिसमानमप्पुदन्नेवरं । इंतु तुंबिद प्रथमव्यवहारपल्यद रोमप्रमाणंगळुत्पत्तिपूर्व्वकमागि रोमप्रमाणंगळं पेळ्दपरु ।

दंडपमाणंगुलए उस्सेहंगुलं जवं च जूवं च ।
लिक्खं तह कादूणं बालग्गं कम्मभूमीए ॥—[ति. प. १।१२१]

मुं पेळ्द गर्त्तघनफलमं १९ प्रमाणदंडंगळुमं प्रमाणांगुलंगळुमं माडि मत्तमा प्रमाणां-
२४

भूमावियुगलस्य एकादिसप्तदिनाभ्यन्तरे गृहीतैरग्रव्यासायामै रोमाग्रैर्निरन्तरमत्यन्तनिचितो भूमिसमो भर्तव्यः । तद्रोमसंख्या साध्यते—

व्यासस्य वर्गो १ । १ दशभिर्गुणिते सति करणिरूपपरिधिर्भवति १ । १ । १० अस्य मूलमिदं १९
६

अस्मिन् व्यासतुरीयभागेन गुणिते क्षेत्रफलं भवति । १९ । १ अस्मिन् पुनः वेधेन गुणिते घनफलं भवति १९
६ । ४ २४

---

३० जिनकी लम्बाई-चौड़ाई अग्रभागके समान हो, पृथ्वीके स्तर तक अत्यन्त ठसाठस भर दो। उसके रोमोंकी संख्या साधते हैं—व्यास एक योजन, उसका वर्ग भी एक योजन, उसे दससे गुणा करनेपर दस योजन प्रमाण परिधि होती है। इसका वर्गमूल $\sqrt{\frac{१९}{६}}$ होता है। इसमें व्यासके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर क्षेत्रफल $\sqrt{\frac{१९}{६}} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ होता है। इसको गहराईमें एक योजनसे गुणा करनेपर घनफल भी $\frac{१९}{२४}$ होता है।

गुलंगळनुत्सेधांगुलंगळं माडियवने यवेगळं माडि, यवेगळं यूकंगळं माडि, यूकंगळं लिक्षंगळं माडि लिक्षंगळं कर्म्मभूमिजर बालाग्रंगळं माडि कर्म्मभूमिजर बालाग्रंगळं ।

अवर मज्झिमउत्तमभोगखिदीणं च बाल अग्गाणं ।
एक्केक्कमट्ठघणहद रोमा ववहारपल्लस्स ॥—[वि. प. १।१२२]

जघन्य भोगभूमिजर वालाग्रंगळं माडि मत्तमवं मध्यमभोगभूमिजर वालाग्रंगळं माडि मत्तवनुत्तमभोगभूमिजर वालाग्रंगळं माडि दंडंगळुमोदलादुमेल्लं घनराशिगे पुगुवमुच गुणकारंगळु घनात्मकंगळेयागल्वेळकुमप्पुदरिनेल्ला गुणकारंगळनुत्तमभोगभूमिजर वालाग्रपर्य्यंतमाद गुणकारंगळनितुमं घनात्मकंगळागि स्थापिसुवुदि १९।८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

२४।८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

न्तु स्थापिसिदी गुणकारंगळं राश्यर्धखंडविधानदिंदं लघुकरणमागि गुणियिसिद लब्धराशिय रोमप्रमाणंगळु व्यवहारपल्यरोमखंडंगळप्पुवुमवरप्रमाणमं पेळ्दपरु ।

अट्ठारसठाणेसुं सुण्णाणि दो णवेक्क दो एक्कं ।
पण णव चउक्क सत्ता सग सत्ता एक्क तिय सुण्णा ॥
दो अट्ठ सुण्ण तिय णभ तियछक्का दोण्णि पण चउक्काणि ।
तियएक्क चउक्काणिं अंककमे पल्लरोमस्स ॥—[ ]

इदं पुनरेकयोजनस्य अष्टसहस्रैर्दण्डैः, एकदण्डस्य पण्णवत्यङ्गुलैः, एकप्रमाणाङ्गुलस्य पञ्चशत्या व्यवहाराङ्गुलैः, एकतदङ्गुलस्य अष्टभिर्यवैरेकयवस्य अष्टभिर्यूकाभिः, एकयूकाया अष्टभिर्लिक्षाभिः, एकलिक्षाया अष्टभिः कर्मभूमिवालाग्रैः, एकतद्वालाग्रस्य अष्टभिर्जघन्यभोगभूमिवालाग्रैः, एकतद्वालाग्रस्य अष्टभिर्मध्यमभोगभूमिवालाग्रैः, एकतद्वालाग्रस्य अष्टभिरुत्कृष्टभोगभूमिवालाग्रैश्च घनराशेर्गुणकारा घनात्मका भवन्तीति घनीकृतैर्गुणयित्वा—

$\frac{१९}{२४}$—८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

अब यहाँ एक योजनके आठ हजार धनुष, एक धनुषके छियानवे अंगुल, एक प्रमाणांगुलके पाँच सौ व्यवहारांगुल, एक व्यवहारांगुलके आठ यव, एक यवके आठ जू, एक जू के आठ लीख, एक लीखके कर्मभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, एक बालाग्रके जघन्य भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, इस एक बालाग्रके मध्य भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, इस एक बालाग्रके उत्कृष्ट भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र होते हैं। घनराशिके गुणाकारघनात्मक ही होते हैं। अतः इन सबका गुणाकारघनरूप करनेके लिए पहले उन्नीसका चौबीसवाँ भाग लिखकर उसके आगे आठ हजार आदि तीन-तीन बार रखकर परस्परमें गुणा करना चाहिए—$\frac{१९}{२४}$×८०००।८०००।८०००।९६।९६।९६।५००।५००।५००।८। सोलहगुणाकारोंमें राशिके अर्धखण्ड विधान और लघुकरणके द्वारा गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हुआ, वह अंककमके अनुसार इस प्रकार है— बायीं ओरसे पहले अठारह बिन्दी लिखकर पीछे दो, नौ, एक, दो, एक, पाँच, नौ, चार, सात, सात, सात, एक, तीन बिन्दी, दो आठ बिन्दी, तीन बिन्दी, तीन, छह, दो, पाँच, चार, तीन, एक, चार लिखना। ये व्यवहारपल्यके रोमोंकी संख्या है—

अंकक्रमदिंदं पदिनेंटुं स्थानंगळोळु शून्यंगळप्पुवुमेरडुमो भत्तु मो दुमेरडुमो दुमय्दुमोंभत्तुं नाल्कुमेळु मेळु मेळुमो दु मूरुं शून्यमुमेरडुमें टुं शून्यमुं मूरु शून्यमू मूरु मारु मेरडुमय्दुं नाल्कु मूरुमोंदु नाकुमक्कुं। ४१३। ४५२६३०३०८२०३१७। ७७४९५१२। १९२०००००००००००००००००। नानूर पदिमूरुं षड्वारकोटिगळु नाल्वत्तय्दु लक्षेयुमिप्पत्तारु सासिरद मूनूर मूरु पंचवार कोटिगळु मेंदु लक्षेयु मिप्पत्तुसासिरद मूनूर पदिनेळु चतुर्व्वारकोटिगळु मेप्पत्तेळु लक्षेयुं नाल्वत्तोंभत्तु सासिरदैनूर हन्नेरडु त्रिवारकोटिगळुं हत्तों भत्तुलक्षेयुमिप्पतु सासिरद्विकवारकोटिगळप्पुवेंबुदत्थं।

एक्केक्कं रोमग्गं वस्ससदे पेलिदम्मि सो पल्लो।
रित्तो होदि स कालो उद्धारणिमित्तववहारो।—[ति. प. १।१२५]

इन्ती गर्त्तस्थित रोमाग्रंगळोळोंदोंदु रोमाग्रमं वर्षशतदोळु स्पेटिसला पल्यमेंदु होगे रिक्तमक्कुमा कालमुद्धारपल्यनिमित्तमप्प व्यवहार पल्यकालमक्कुं। संदृष्टि २–७। ७॥

ववहाररोमरासिं पत्तेक्कमसंखकोडिवरिसाणं।
समयसमं छेत्तूणं बिंदिए पल्लम्मि भरिदंमि॥—[ति. प. १।१२६]

व्यवहारपल्यस्थित रोमराशियोळेकैकरोममं प्रत्येकसंख्यातकोटिवर्षंगळसमयंगळोळ् समानमागि कत्तरिसि द्वितीयपल्यमं तुंबुवुदंतु तुंबुत्तिरलु।

समयं पडि एक्केक्कं वालग्गं पेलिदम्मि सो पल्लो।
रित्तो होदि स कालो उद्धारं णाम पल्लं तु॥—[ति. प. १।१२७]

आ तुंबिद वालाग्रंगळोळोंदोंदं समयं प्रति स्फेटिसुत्तिरला पल्यमेंदिगे रिक्तमक्कुमा

गुणकारेषु राश्यर्धखण्डविधानेन लघुकरणेन गुणितेषु यल्लब्धं तदिदमङ्कक्रमेण अष्टादशशून्यद्विनवैकद्व्येकपञ्चनवचतुःसप्तसप्तसप्तैकत्रिशून्यद्वचष्टशून्यत्रिषट्द्विपञ्चचतुस्त्र्येकचतुर्मात्रं व्यवहारपल्यसंख्या भवति—४१३, ४५२६३०३, ०८२०३१७, ७७४९५१२, १९२००००, ०००००००००००००००। चतुःशतत्रयोदशषट्वारकोटिपञ्चचत्वारिंशल्लक्षषड्विंशतिसहस्रत्रिशतत्रिपञ्चवारकोट्यष्टलक्षविंशतिसहस्रत्रिशतसप्तदशचतुर्वार-कोटिसप्तसप्ततिलक्षैकान्नपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशतद्वादशत्रिवारकोट्येकान्नविंशतिलक्षविंशतिसहस्रद्विवारकोटिमात्र-मित्यर्थः। एकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे वर्षशते वर्षशतेऽपनीते यावान् कालः स सर्वो व्यवहारपल्यस्य कालो भवति। संदृष्टिः २११। पुनरेकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे असंख्यातकोटिवर्षसमयैः समं प्रत्येकं खण्डिते [1]द्वितीयपल्यस्य रोमाग्र-

---

४१३,४५२६३०३,०८२०३१७, ७७४९५१२, १९२०००००००००००००००००। अर्थात् चार सौ तेरह कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी, पैंतालीस लाख छब्बीस हजार तीन सौ तीन कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी कोड़ी, आठ लाख बीस हजार तीन सौ सतरह कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी, सतहत्तर लाख उनचास हजार पाँच सौ बारह कोड़ाकोड़ी कोड़ी, उन्नीस लाख बीस हजार कोड़ाकोड़ी प्रमाण होते हैं। इन रोमाग्रोंमें-से एक-एक रोम सौ-सौ वर्षके बाद निकालनेपर जितना काल होता है, वह सब व्यवहारपल्यका काल है। पुनः इन एक-एक रोमाग्रका असंख्यात करोड़ वर्षोंके जितने समय होते हैं, उतने-उतने खण्ड करनेपर दूसरे उद्धार पल्यके रोमाग्रोंकी संख्या होती है। इतने ही इसके समय होते हैं। उनकी संख्या लाते हैं—विरलन राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर जो लब्ध आता है, वह उत्पन्न राशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। अतः अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिमें अद्धापल्यकी अर्धच्छेद

---

१. ब उद्धारप°।

३
कालमुद्धारपल्यमेंब नामक्कुमिदक्के संदृष्टि । वि ३ छे छे ई संदृष्टिगे निर्णयमं माळ्पें ।
२५ को २

"तियहीण सेढि छेदणमेत्तो रज्जुच्छेदे हवेइ" एंदु त्रिरूपोनजगच्छ्रेणिय अर्द्धच्छेदंगळु रज्जुच्छेदंगळप्पुवा (ज) गच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळेनितें दोडे :—

विरळिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥—[ति. सा. १०७]

एंदितु जगच्छ्रेणिय विरलनराशियं देयमप्प घनांगुलदर्द्धच्छेदंगळिदं गुणियिसिदोडे जगच्छ्रेणिय अर्द्धच्छेदंगळप्पुवा त्रिरूपोनजगच्छ्रेणिय अर्द्धच्छेदप्रमितंगळोळु रज्जुच्छेदंगळोळु वि ३ छे छे ३ ओंदु लक्षयोजनदर्द्धच्छेदंगळुं एळु लक्षेयुमरुवत्तें दुसासिरमंगुच्छेदंगळुमधिकमाद-सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळंकळियलु समस्तद्वीपसागरंगळ प्रमाणमक्कुमल्लियपनयन त्रैराशिकमं माडि कळेवुदें तेंदोडे छे छे ३ इंनितु गुणकारमं तोरि विरलनराशियोळोंदु रूपं कळेयल्पडुत्तिरलिनितु-रूपुगुळगे नितुरूपुगळकळेयल्बप्पुदें दु प्रमाणफलइच्छाराशिगळं माडि प्र छे छे ३ फ १ । इ । छे ७। छे। बंद लब्धं साधिकत्रिभागमना विरलनराशियप्प गुण्यराशियोळकळेदोडदु समस्तद्वीपसागर-

संख्या भवति, तत्समयसंख्यापि तावती संदृष्टिः वि ३ छे छे ३ । इयमानीयते—विरलनराशौ देयराश्यर्धच्छेद-मात्रैर्गुणिते लब्धस्योत्पन्नराश्यर्धच्छेदप्रमाणत्वात् अद्धापल्यस्य अर्धच्छेदराशौ तेनैव राशिना गुणिते सूच्य-ङ्गुलार्धच्छेदः छे छे । अयं च त्रिगुणितो घनाङ्गुलस्यार्धच्छेदः छे छे ३ । अनेन अद्धापल्यार्धच्छेदराश्यसंख्या-तैकभागे गुणिते जगच्छ्रेणेरर्धच्छेदः वि छे छे ३ । अयं च त्रिरूपोनो रज्जुच्छेदः वि छे छे ३ । अस्मात् मेरुमस्तकपतितैकार्धच्छेदेन सह लक्षयोजनानां सप्तलक्षाष्टाषष्टिसहस्राङ्गुलानां च संख्यातैरर्धच्छेदैः अधिक-सूच्यङ्गुलार्धच्छेदेषु अपनीतेषु शेषं समस्तद्वीपसागरसंख्या भवति । तदपनयनं तु यदि प्र छे छे ३ एतावन्मात्रा-

राशिसे गुणा करनेपर सूच्यंगुलकी अर्धच्छेदराशि होती है। इसको तिगुना करनेपर घनांगुल-की अर्धच्छेदराशि होती है। इससे अद्धापल्यकी अर्धच्छेद राशिके असंख्यातवें भागको गुणा करनेपर जगतश्रेणीके अर्धच्छेद होते हैं। इसमें तीन कम करनेपर राजूके अर्धच्छेद होते हैं। इनमें-से मेरुकी चोटीपर पड़नेवाले एक अर्धच्छेदके साथ एक लाख योजन तथा एक योजनके सात लाख अड़सठ हजार अंगुलोंके संख्यात अर्धच्छेदसे अधिक सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंको घटानेपर जो शेष रहे,उतनी ही समस्त द्वीपसमुद्रोंकी संख्या है। घटानेकी प्रक्रिया इस प्रकार है—यदि तिगुने सूच्यंगुलके अर्धच्छेद प्रमाण गुणाकारघटानेके लिए अद्धापल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें प्रमाण गुण्यमें एक घटाया जाता है, तो यहाँ संख्यात अधिक सूच्यंगुलके अर्धच्छेद घटानेके लिए कितना घटाना चाहिए,ऐसा त्रैराशिक करनेपर कुछ अधिक $\frac{1}{3}$ त्रिभाग गुण्यमें-से घटाना चाहिए। इस प्रकार कुछ अधिक एकके तीसरे भागसे हीन पल्यके

१. म °तियोलु। २. इंतु ।

३०
प्रमाणराशियक्कु मदक्के संदृष्टि वि छे छे ३ मत्तमी द्वीपसागरंगळु "सव्वे दीवसमुद्दा अड्ढाइज्जुद्धा रूवहिमेत्तया होंति" एंदुद्धारसागरोपमंगळ्गे रडुवरेयक्कुमो दुद्धारसागरोपमक्के पत्तु कोटिकोटियुद्धारपल्यंगळप्पुदरिंदेरडुवरेयुद्धारसागरोपमंगळ्गिप्पत्तप्पु कोटि कोटियुद्धारपल्यंगळप्पुवा उद्धारपल्यंगळिप्पत्तप्पु कोटि कोटिगळ्गिनितु राशियागलो दुद्धारपल्यक्केनितु राशि प्रमाणमप्पु-

३०
दें दु त्रैराशिकं माडि प्र उप=२५ को २ फ। वि—१ छे छे ३ इच्छि ॥ उप १ ॥ बंद लब्ध-
३
मो दुद्धारपल्यप्रमाणमक्कुं संदृष्टि वि १। छे छें ३ इंतुद्धारपल्यप्रमाणं सिद्धमाय्तु ।
३२५ को २

ईयुद्धारपल्यरोमंगळ मो दो दंऽसंख्यात वर्षसमयसमानमागि खंडिसि तृतीयपल्यमं तुंबि प्रतिसमयमो दो दु रोममं तेगेयलेनितुकालक्का पल्यरोमंगळतीर्ग्गुमनितु समयप्रमाणमद्धापल्यमें बुदक्कुमदरिंदं नारकतिर्य्यग्नरामररुगळ कर्म्मस्थिति पवणिसल्पडुगुं । संदृष्टि । प । उद्धारपल्यदोंदु रोममनद्धापल्यनिमित्तमागियसंख्यातवर्षसमय समानमागि खंडिसिदोडेनितु रोमखंडंगळप्पुवेंदु

३०
प्रश्नेयादोडे त्रैराशिकं माडल्पडुगुं। उद्धारपल्यरोमखंडंगळनितक्के प्र उ=रो=। वि छे छे ३
μ
३।२५ को २
=
फ। फ पल्यमागलो दुद्धारपल्यरोमक्केनितद्धारपल्यरोमखंडंगळप्पुवें —॥ इच्छि उ=रो=१ ॥ दु

पनयने एकं रूपं फ १ अपनीयते तदा इ छे छे एतावदपनयने कियदपनीयते इति त्रैराशिकेन लब्धं साधिक-

त्रिभागं १ गुण्येऽपनयेत्। तत्संदृष्टिः—वि (० ० छे छे ३ । एषा द्वीपसमुद्रसंख्या यतः सार्धद्वयोद्धारसागरोपम-
३ । १)
३

मात्रो ततः कारणात् पञ्चविंशतिकोटीकोटयुद्धारपल्यानि भवन्ति । तावतां पल्यानां प्र प २५ को २, यद्येयं

राशिः फ (० ० छे छे ३ तदा एकोद्धारपल्यस्य इ प १ कियान् राशिरिति त्रैराशिकेन प्रागुक्ता एकोद्धार-
वि । १)
३

अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागको पल्यके अर्धच्छेदोंके वर्गसे तीन गुणे प्रमाणसे गुणा करनेपर समस्त द्वीप-समुद्रोंकी संख्या होती है। यतः इतने द्वीपसमुद्र ढाई उद्धार सागर प्रमाण होते हैं।अतः वे पचीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य प्रमाण हुए। सो यदि इतने पल्योंकी पूर्वोक्त संख्या होती है,तो एक उद्धार पल्यकी कितनी हुई, ऐसा त्रैराशिक करनेपर पूर्वोक्त द्वीपसमुद्रोंकी संख्याको पचीस कोड़ाकोड़ीसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे,उतनी उद्धार पल्यके रोम खण्डोंकी संख्या जानना। इन उद्धार पल्यके रोमखण्डोंमें-से भी प्रत्येक खण्डके असंख्यात वर्षके जितने समय हैं,उतने खण्ड करो। जो प्रमाण हो,उतने ही अद्धापल्यके रोमखण्ड हैं। इसके समयोंका प्रमाण भी उतना है, क्योंकि प्रतिसमय एक-एक रोम निकालनेपर जितने

त्रैराशिकमं माडि बंद लब्धमिं $\overset{३०}{\text{वि}}$ छे प छे ३ दो द्धारररोममं खंडिसिद खंडप्रमाणमक्कुं । अद्धा-
$\overset{\mu}{३२५}$ को २

पल्य तन्नर्द्धच्छेदराशियं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पुट्टिदुदी हारं पल्यच्छेदराशिय प्रथमवर्गमं पल्यच्छेदासंख्यातैकभागदिंदं गुणिसिदनितेयक्कुमर्दारदमसंख्यातवर्षसमयंगळें बुवुमिनितेयप्पुवु
$\overset{२}{\text{वि}}\overset{३०}{\text{प छे छे}}$ ३ पल्यं प्रतिपादितमाय्तु ॥
$\overset{\mu}{\text{इ}}$ २५ को २

एदाणं पल्लाणं दहप्पमाणाओ कोडकोडीओ । ५
सागरउवमस्स पुढं एक्कस्स हवेज्ज परिमाणं ॥—[ति. प. १।१३०]

ई मूरु पल्यगळ पत्तुकोटिकोटियं प्रत्येकं कोंडोडे यथासंख्ययिंदं तत्तद्व्यवहारादि सागरोपमंगळप्पुवोंदोंदु ॥ वोंदु सागरोपमं पत्तुकोटिकोटि पल्यप्रमाणमप्पुदक्कुपपत्तियं पेळ्दपं ।

पल्यस्य संदृष्टिः [3]सिद्धयति $\overset{३०}{\text{वि}}\left(\begin{smallmatrix}1\\1\\३\end{smallmatrix}\right)$ छे छे ३ । पुनरस्यैकैकस्मिन् रोमखण्डे असंख्यातवर्षसमयैः समं खण्डिते
२५ को २

यावन्ति रोमखण्डानि तावती अद्धापल्यस्य रोमखण्डसंख्या भवति । तत्समयसंख्यापि तावत्येव । ते असंख्यात- १०
वर्षसमयाः कतीति चेत् उच्यते—एतावन्ति रोमखण्डानि $\text{प्र}\ \overset{३०}{\text{वि}}\left[\begin{smallmatrix}1\\1\\३\end{smallmatrix}\right]$ छे छे ३ असंख्यातवर्षसमयैः खण्डितानि
२५ को २

यद्यद्धापल्यमात्राणि भवेयुः फ प १ तदा एकखण्डे असंख्यातवर्षसमयैः खण्डिते कति खण्डानि भवेयुः ? इति

समयमें वह रिक्त हो, उतना ही अद्धापल्यका काल है। वे असंख्यात वर्षके समय कितने हैं, सो बतलाते हैं—उद्धारपल्यके समस्त रोमखण्डोंमें-से प्रत्येकके असंख्यात वर्षका समय प्रमाण खण्ड करनेपर यदि एक अद्धापल्य प्रमाण खण्ड होते हैं, तो एक खण्डको असंख्यात वर्षके १५
समयोंसे खण्डित करनेपर कितने खण्ड होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेसे जितना लब्धराशिका प्रमाण होता है, उतना ही असंख्यात वर्षके समय होते हैं। अद्धापल्य अपनी अर्धच्छेदराशिसे ऊपर असंख्यात वर्गस्थान जाकर उत्पन्न होता है, ऐसा जानना। इस प्रकार पल्योंको कहा।

---

१. म प
वि + छे छे
$\frac{१}{३}$ २५ को २ ।
२. म प + छे छे ३
वि.
$\frac{१}{३}$ २५ को २ ।
३. ब सिद्धा भवति ।

'लवणंबुहिसुहुमफळे चउरस्से एक्कजोयणस्सेव ।
सुहुमफळेणवहरिदे वट्टं मूळं सहस्सवेहगुणं ॥'—[त्रि. सा. १०३]
रोमहदं छक्केसजलु सेगे पण्णुवीस समयात्ति ।
संपादं करिय हदे केसेहिं सागरुप्पत्ती ॥'—[त्रि. सा. १०४]

लवणसमुद्रदायत चतुरस्रसूक्ष्मफलमं तंदु :—

'अंताइसूइजोग्गं रुद्धद्धगुणित्तु दुप्पडिं किच्चा ।
तिगुणं दसकरणि गुणं बादरसुहुमं फळं वलए ॥'—[त्रि. सा. ३१५]

अंतसूची । ५ ल । आदिसूची १ ल । योगं ६ ल रुंद्रार्द्धगुणं ६ ल ल । द्विप्रतीकं माडियोंदु राशियं त्रिगुणिसिदडे बादरक्षेत्रफलमक्कुमोंदु राशियं दशकरणियिदं गुणिसिदडे वर्गात्मकसूक्ष्मफलमक्कु । ६ ल ल ६ ल ल १० । मिदनेक योजनसूक्ष्मफलदिंदं भागिसलु वृत्त पल्यगर्तगळप्पु ६ ल ल । ६ ल ल १० विवनपवर्त्तिसिदडे दशकराणिगे दशकरणि होगि 'हारस्य हारो गुणकोंश-

१ १
४ ४ १०

त्रैराशिकेन लब्धमात्रसमया भवन्ति इत्यर्थः वि] छे छे ३ । (अद्धापल्यं हि निजार्धच्छेदराशेरुपरि असंख्यात-
।
१] २५ को २
३

वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नं इति ज्ञातव्यं) एवं पल्यान्युक्तानि ।

तत्राद्येन पल्येन रोमसंख्या, द्वितीयेन द्वीपसमुद्रसंख्या, तृतीयेन कर्मस्थित्यादिश्च वर्ण्यते । तैस्तैर्दशभिः कोटिकोटिभिः, एकैकं तत्तन्नाम सागरोपमं भवति । तस्योपपत्तिरुच्यते—लवणसमुद्रस्यान्तःसूची ५ ल, तथादि सूची १ ल । अनयोर्योगः ६ ल । अस्मिन् रुन्द्रार्धेन १ ल गुणिते सति यल्लब्धं तदिदं ६ ल ल वर्गात्मकं कृत्वा ६ ल ल ६ ल ल दशभिः करण्यात्मभिर्गुणिते सूक्ष्मफलवर्गो भवति, ६ ल ल । ६ ल ल १० । इमं एकयोजनव्यासवृत्तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलेन ६ ल ल । ६ ल ल । १० । भक्त्वा दशकरण्या दशकरणिम-
१ १ १०
४ ४

इनमें-से प्रथम पल्यसे रोम संख्या, दूसरेसे द्वीपसमुद्रोंकी संख्या और तीसरेसे कर्मोंकी स्थिति आदि जानी जाती है। प्रत्येक पल्यको दस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करनेपर अपने-अपने नामका एक-एक सागर होता है। उसकी उपपत्ति कहते हैं—

लवणसमुद्रकी अन्तसूची पाँच लाख और आदि सूची एक लाख है। दोनोंको मिलानेपर छह लाख होते हैं। इसको लवणसमुद्रके दो लाख व्यासके आधे एक लाखसे गुणा करनेपर छह लाख लाख होते हैं। इसका वर्ग करके उसे दससे गुणा करनेपर ६ ल. ल. × ६ ल. ल. × १० यह परिधिरूप क्षेत्र हुआ। इस परिधिरूप क्षेत्रफलको एक योजन व्यासवाले गोलाकार पल्यके गड्ढेके सूक्ष्म क्षेत्रफलसे भाग देनेपर ६ ल. ल. × ६ ल. ल. × १० दससे
$\frac{1}{4} \times \frac{1}{4} \times 10$
दसका अपवर्तन करके तथा 'भागहारका भागहार राशिका गुणाकार होता है', इस नियमके

१. म ६ ल । १ ल । २. रेखाङ्कितभागो नास्ति बप्रतौ ।

राशेः[1] एंदा नाल्कु नाल्कुगळिंदमारारु अंकंगळं गुणियिसलु २४ ल ल २४ ल ल वृत्तगर्त्तंगळ वर्गंमक्कुमो वर्गंमं मूलंगोळलु शुद्धगर्त्तसूक्ष्मफलंगळप्पुवु। २४ ल ल इवं वेधेयप्पसहस्रदिंदं गुणियिसलु पल्यगर्त्तंगळ घनफलमक्कु २४ ल ल। १०००। मी राशियं तत्र रोमखंडंगळिंदं गुणियिसलु गर्त्तंगळं रोमप्रमाणमप्पु। २४ ल ल १००० ४१ = a a। वी रोमंगळारिर्द्देडेय जलमं सूंचिसुतिरलिप्पत्तप्दु समयंगळागलिनितु रोमंगळिर्द्देडेय जलमं सूंचिसुत्तिरलेनितु समयंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडि :—प्र = रो ६। फ। स २५। इ। रो = २४ ल ल। १०००। ४१। a a। बंद लब्धं समयंगळप्पु १०० ल ल। १०००। ४१। = a a वी समयंगळ प्रमाणराशियनिनितु समयंगळ ४१ = a a ळोंदु पल्यमाग – । प। लिनितुं समयंगळेनितु पल्यंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडि प्र ४१ = a a फ। प। इ। १०० ल ल। १०००। ४१ = a a बंद लब्धं पत्तु कोटि कोटि पल्यंगळप्पुवु प १० को २ इंतु सागरोपममुं प्रणीतमाय्तु।

अद्धारपल्लछेदो तस्सासंखेज्जभागमेत्ते य।
पल्लघणंगुलवग्गिद संवग्गिदयम्मि सूइ जगसेढी ॥—[ति. प. १।१३१]

अद्धापल्यच्छेदराशियुमनोंदनदरसंख्यातैकभागमनोंदनिततेरडु राशिगळं बेरेबेरे स्थापिसि

पवर्त्य हारस्य हारो गुणकोंशराशेरिति चतुष्कद्वयेन स्वस्वोपरितनषट्कं गुणयित्वा २४ ल ल। २४ ल ल। अस्य मूलं गृहीत्वा २४ ल ल। अस्मिन् सहस्रवेधेन गुणिते पल्यगर्तानां संख्यात्मकं घनफलं भवति २४ ल ल १०००। अस्मिन् स्वस्वरोमखण्डैर्गुणिते तद्गर्त्तानां रोमसंख्या भवति—

[4]२४ ल ल। १०००। ४१ = aa। षड्रोममात्रजलोत्सेके प्र ६ पञ्चविंशतिसमया यान्ति फ २५। तदा एतावद्रोममात्र इ २४ ल ल १०००।४१ = aa[5]। जलोत्सेके कति समया यान्ति ? इति त्रैराशिकेन लब्धसमया एतावन्तो भवन्ति। १०० ल ल १००० ४१ = aa एतावद्भिः समयैः प्र ४१ = प्र ४१ a। प्र ४१ = aa यद्येकैकपल्यं भवति फ प १, तदा एतावद्भिः समयैः इ १०० ल ल १०००।४१ = aa स्थानत्रयेऽपि इ १०० ल ल १००० ४१ = इ १०० ल ल १००० ४१ = aa कति पल्यानि भवन्तीति त्रैराशिके दशकोटीकोटिपल्यानि लभ्यन्ते। प १० को २। एवं सागरोपममुत्पन्नं तत्संदृष्टिः—सा। अद्धापल्यस्य

अनुसार नीचेके दोनों चारके द्वारा अपने-अपने ऊपरके छहको गुणा करनेपर २४ ल. ल. × २४ ल. ल. होता है। इसका वर्गमूल निकालनेपर २४ ल ल. होता है। इसको गहराई एक हजारसे गुणा करनेपर समस्त लवणसमुद्रमें पल्य प्रमाण गड्ढोंका प्रमाण २४ लाख लाख × १००० होता है। इसको अपने-अपने रोमखण्डोंसे गुणा करनेपर उन-उन गड्ढोंकी रोम संख्या होती है। छह रोम जितना क्षेत्र रोकते हैं, उतने क्षेत्रका जल निकालनेमें पच्चीस समय लगते हैं तो सब रोमोंके क्षेत्रका जल निकालनेमें कितना समय बीतेगा। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि रोम छह, फलराशि समय पच्चीस, इच्छाराशि गड्ढोंके रोमोंका प्रमाण। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर समयोंका प्रमाण आता है। इतने समयोंका यदि एक पल्य होता है, तो सब समयोंके कितने पल्य होंगे—ऐसा त्रैराशिक करनेपर दस कोड़ाकोड़ि पल्योंका प्रमाण आता है। अतः दस कोड़ाकोड़ि पल्योंका एक सागरोपम होता है।

१-२. म सुसुत्तिर°। ३ म विन्तु।

४. ब २४ ल ल। १०००। ४१ =। २४ ल ल १०००। ४१ = a। २४ ल ल १०००। ४१ = aa। १०० ल ल १०००। ४१ = a। ५. २४ ल ल १०००। ४१ = aa। इ २४ ल ल १०००। ४१ = aa।

यथासंख्यमागि छे छे प्रथमोद्दिष्टपल्यच्छेदराशियं विरलिसि रूपं प्रति पल्यमं कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडलु सूच्यंगुलं पुट्टुगुं । २ । द्वितीयोद्दिष्टपल्यच्छेदासंख्यातमं विरळिसि रूपं प्रति घनांगुलमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडलु जगच्छ्रेणि पुट्टुगुं ।

तव्वर्गे पदरंगुळ पदराणि घणे घणंगुळं ळोगो ।
जगसेढीए सत्तम भागो रज्जू पभासंते ॥—[ति. प. १।१३२]

आ सूच्यंगुलमं वर्गंगोळल् प्रतरांगुलं पुट्टुगुं । घनंगोळल् घनांगुलं पुट्टुगुं । ४ । ६ । जगच्छ्रेणियं वर्गंगोळल् लोकप्रतरे पुट्टुगुं । घनंगोळ्ल् घनलोकपुट्टुगुं । = । ≡ मितुपमा प्रमाणंगळे ट्टुं पेळल्पट्टुवु ।

प	सा	सू	छे	प्र ४	घ ६	ज—.	ज =	घ लो
छे	छे	छे	२	छे छे२	छे छे३	वि छे छे३	वि छे छे ६	वि छे छे ९
व	०	व		व २	व २	व २ / १६ । २	व २ / व	व २ / व

ई राशिगळ्गे अर्द्धच्छेदंगळुं वर्ग्गशलाकेगळुं पेळ्पडुवुवु । अद्धापल्यं द्विरूपवर्ग्गधारेयोळ् पुट्टिदुददरर्द्धच्छेदंगळा राशियिदं केळगसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळ्निळिदु पुट्टिदुवा वर्ग्गशलाकाराशियुमा यर्द्धच्छेदराशियिदं केळगेयसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं मूलरूपदिदं केळकेळगिळिदु पुट्टिदुदु ।

अर्धच्छेदराशिं विरलयित्वा प्रतिरूपमद्धापल्यमेव दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते सूच्यङ्गुलमुत्पद्यते २ । तस्य वर्गः प्रतराङ्गुलं ४ । घनो घनाङ्गुलं ६ । पुनः अद्धापल्यस्यार्धच्छेदराश्यसंख्येयभागं विरलयित्वा प्रतिरूपं घनाङ्गुलं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते जगच्छ्रेणिरुत्पद्यते, तस्या वर्गो जगत्प्रतरं = घनो लोको भवति ≡ । एवमष्टधोपमाप्रमाणमुक्तम् ।

अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर अद्धापल्यको देकर परस्परमें गुणा करनेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है। सूच्यंगुलका वर्ग प्रतरांगुल है और घन घनांगुल है ।

विशेषार्थ—एक प्रमाणांगुल प्रमाण लम्बे तथा एक प्रदेश प्रमाण चौड़े ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आवें, उनका प्रमाण सूच्यंगुल है। एक अंगुल चौड़े, एक अंगुल लम्बे, तथा एक प्रदेश ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आते हैं, उनका प्रमाण प्रतरांगुल है। और एक अंगुल चौड़े, एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल ऊँचे क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घनांगुल है ।

अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिके असंख्यातवें भाग राशिका विरलन करके प्रत्येकपर घनांगुलको देकर परस्परमें गुणा करनेपर जगतश्रेणी उत्पन्न होती है। जगतश्रेणीका वर्ग जगत्प्रतर है और उसका घन लोक है ।

विशेषार्थ—सात राजू लम्बी आकाशप्रदेश पंक्तिको श्रेणी कहते हैं। जगतश्रेणीका सातवाँ भाग राजूका प्रमाण है। जगतश्रेणीको जगतश्रेणीसे गुणा करनेपर जगत्प्रतर होता है और जगतश्रेणीका घन लोक है। सो सब लोकके प्रदेशोंका प्रमाण जानना ।

१. म द्विरूपधा° । २. म केलगिलिदु ।

सागरोपमराशि सर्व्वधारेयोळपुट्टिदुदाराशियर्द्धच्छेदंगळु मा धारेयोळे पुट्टिदुववर प्रनाणं—

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धच्छेदजुदा ।
लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स छेदणा णत्थि ॥—[त्रि. सा. १०५]

एंदु पल्यक्के गुणकारभूत पत्तु कोटि कोटियर्द्धच्छेदंगळिंदधिकमाद पल्यार्द्धच्छेदप्रमितंगळप्पुवा सागरोपमं वर्ग्गात्मकमल्लप्पुदरिंदं वर्ग्गच्छेदंगलप्पुट्टिसवुं । सूच्यंगुलं द्विरूपवर्ग्गधारियोळ् पुट्टिदुददरर्द्धच्छेदवर्ग्गशलाकंगळु ।

उप्पज्जदि जो रासी विरलणदिज्जक्कमेण तस्सेत्थ ।
वग्गस्सळद्धच्छेदा धारातिदएण जायंते ॥—[त्रि. सा. ७३]

एंदु विरलनदेयक्रमदिनुत्पन्नराशिगळ्गे वर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदंगळु द्विरूपवर्ग्गादि धारात्रयदोळु पुट्टुवु । मत्तेल्लि पुट्टुगुमेंदडे सर्व्वधारियोळं यथायोग्यमप्पधारिगळोळं पुट्टुववु ।

अर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवेंदोडे :—

विरळिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदिहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥—[त्रि. सा. १०७]

विरलनराशियप्प पल्यार्द्धच्छेदराशियं देयमप्पपल्यार्द्धच्छेदंगळिवं गुणियिसुत्तिरलु तद्राशिगर्द्धच्छेदंगळक्कुं । वर्ग्गशलाकेगळु "देयराशेरुपरि विरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्ग्गस्थानानि गत्वा तद्राशिरुत्पद्यते" एंदु द्विरूपवर्ग्गधारियोळु पल्यद मेले तत्र विरलनराशिपल्यार्द्धच्छेदमदरर्द्धच्छेद-

---

तेषामर्धच्छेदसंख्या वर्गशलाकासंख्या चोच्यते । तत्र तावदद्धापल्यस्य अर्धच्छेदसंख्या द्विरूपवर्गधारायां अद्धापल्यादधः असंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीयं, छे । तद्वर्गशलाकासंख्या तु ततोऽप्यधोसंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीयं २ छे । सागरोपमस्य सर्वधारादित्रयोग्यधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदाः पल्यार्धच्छेदेषु गुणकारस्य दशकोटीकोटेरर्धच्छेदसंख्यातेनाधिकेषु लब्धमात्रा भवन्ति १ छे तद्वर्गशलाकास्तु तस्यावर्गात्मकत्वात् न घटन्ते । सूच्यङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य विरलनदेयक्रमेण उत्पन्नत्वात् अर्धच्छेदवर्गशलाका द्विरूपवर्गधारादित्रयं विना शेषतद्योग्यधारासु उत्पद्यन्ते । ते अर्धच्छेदाः विरलनराशौ अद्धापल्यार्धच्छेदे देयस्य तत्पल्यस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवन्ति छे छे । तद्वर्गशलाकास्तु सूच्यङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारायां

इस प्रकार आठ प्रकारके उपमा प्रमाणका कथन पूर्ण हुआ । अब इनके अर्धच्छेदों और वर्गशलाकाओंकी संख्या कहते हैं । सो प्रथम अद्धापल्यके अर्धच्छेदोंकी संख्या द्विरूपवर्गधारामें अद्धापल्यसे नीचे असंख्यात वर्गस्थान उतरकर जो राशि होती है,उतनी है । तथा अद्धापल्यकी वर्गशलाकाओंकी संख्या उससे भी नीचे असंख्यात वर्गस्थान उतरकर जो राशि है,उतनी है । सागरोपमके अर्धच्छेद सर्वधारामें होते हैं । सो सागरोपमके अर्धच्छेद पल्यके अर्धच्छेदोंमें गुणाकार दस कोड़ाकोड़ीके संख्यात अर्द्धच्छेद जोड़नेपर जो प्रमाण हो,उतने हैं । यतः सागरोपमराशि अवर्गात्मक है,इसलिए उसकी वर्गशलाका नहीं बनतीं । सूच्यंगुल द्विरूपवर्गधारामें उत्पन्न हुआ है, अतः विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होनेसे इसकी अर्धच्छेद और वर्गशलाका द्विरूपवर्गधारा आदि तीन धाराओंके बिना शेष अपने योग्य धाराओंमें पायी जाती हैं । विरलन राशि अद्धापल्यके अर्द्धच्छेदोंमें देयराशि अद्धापल्यके अर्धच्छेदोंसे

---

१. म द्विरूपधारे° । २. म वग्गसकलद्धच्छेद । ३. १०० ल ल १००० । ४१ = ७७ ।

प्रमाणवर्गस्थानंगळु पल्यवर्गशलाकाराशिमात्रंगळं नडेदु पुट्टिदुदा वर्गशलाकेगळुमं पल्यवर्गशलाकेगळुमं कूडलु पल्यद्विगुणवर्गशलाकामात्रंगळप्पुवु । अथवा "गुणयारद्धच्छेदा" एंबिदु मोदलादुदरिंदं सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळर्द्धच्छेदंगळं वर्गशलाकेगळप्पुदरिंदं गुणकारार्द्धच्छेदंगळु पल्यवर्गशलाकेगळगुण्यदर्द्धच्छेदंगळं पल्यवर्गशलाकेगळा येरडुमं कूडलु पल्यशलाकाद्विगुणप्रमितंगळप्पुवु । व २ । प्रतरांगुलं द्विरूपवर्गधारियोळपुट्टिदुददक्कं वर्गशलार्द्धच्छेदंगळु यथायोग्यधारिगळोळु पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे :—

वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवंति अद्धच्छिदि ।
धारातयसंठाणे तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे ॥ —[त्रि. सा. ७४]

एंदु प्रतरांगुलं सूच्यंगुलोपरितनानन्तरवर्गराशियप्पुदरिनदरर्द्धच्छेदंगळु सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळं नोडल् द्विगुणंगळप्पुववक्के संदृष्टि :—छे छे २ । अथवा :—गुणयारद्धच्छेदेत्यादिर्यिदं गुण्यगुणकाररूपदिनिर्द्द सूच्यंगुलंगळर्द्धच्छेदंगळं कूडुत्तिरलु तत्प्रमाणंगळप्पुवेंबुदर्त्थं । छे छे २ । वर्गशलाकेगळेनितक्कुमेंदोडे वग्गसला रूवहिया सपदे इत्यादिर्यिदं सूच्यंगुलानंतरवर्गमप्पुदरिंदं

सूच्यंगुलवर्गशलाकेगळं नोडलोंदु रूपधिकमक्कुं व २ । घनांगुलं द्विरूपघनधारियोळपुट्टिदुद-

---

पल्यस्योपरि स्वविरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्पत्तेर्द्विगुणपल्यवर्गशलाकामात्र्यः । अथवा सूच्यङ्गुलार्धच्छेदराशौ गुणकारस्यार्धच्छेदेषु गुण्यस्यार्धच्छेदैर्युतेषु यल्लब्धं तावन्मात्र्यो भवन्ति व २ । प्रतराङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य वर्गशलाकार्धच्छेदाः यथायोग्यधारासु उत्पद्यन्ते । तत्रार्धच्छेदाः 'वग्गादुवरिमवग्गो दुगुणा दुगुणेति' सूच्यङ्गुलार्धच्छेदेभ्यो द्विगुणाः । अथवा गुण्यगुणकारयोः सूच्यङ्गुलयोरर्धच्छेदयुतिमात्रा भवन्ति छे छे २ । तद्वर्गशलाकास्तु रूवहियेति सूच्यङ्गुलानन्तरवर्गराशित्वात् तद्वर्गशलाकाभ्यो रूपाधिकमात्र्यो भवन्ति व २ । घनाङ्गुलस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्य अर्धच्छेदाः अन्यत्रोत्पन्नाः 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणेति

गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतने ही सूच्यंगुलके अर्द्धच्छेद हैं। द्विरूपवर्गधारामें पल्यके ऊपर सूच्यंगुलकी विरलनराशि पल्यके अर्द्धच्छेद, उन अर्द्धच्छेदोंके जितने अर्द्धच्छेद हैं उतने वर्गस्थान जानेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है। इसलिए पल्यकी वर्गशलाकाके प्रमाणसे सूच्यंगुलकी वर्गशलाका दुगुनी होती हैं। अथवा सूच्यंगुलके अर्द्धच्छेदोंमें विरलनराशि पल्यके अर्द्धच्छेद, उनके जितने अर्धच्छेद हैं, उनमें देयराशि पल्य, उसके अर्द्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर सूच्यंगुलकी वर्गशलाका होती हैं। इस तरह पल्यकी वर्गशलाकासे दूनी सूच्यंगुलकी वर्गशलाका है। प्रतरांगुल द्विरूपवर्गधारामें आता है, अतः उसके वर्गशलाका और अर्धच्छेद यथायोग्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। 'वर्गसे ऊपरके वर्गस्थानके अर्धच्छेद दूने-दूने होते हैं'—इस नियमके अनुसार सूच्यंगुलसे दूने प्रतरांगुलके अर्द्धच्छेद होते हैं। अथवा गुण्य और गुणकारके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद होते हैं। इसके अनुसार गुण्य सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंमें गुणकार सूच्यंगुलके अर्धच्छेद जोड़नेपर प्रतरांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। तथा 'वर्गशलाका एक अधिक होती है' अतः सूच्यंगुलके अनन्तर प्रतरांगुलका स्थान है, इसलिए प्रतरांगुलकी वर्गशलाका सूच्यंगुलकी वर्गशलाकासे एक अधिक होती है। घनांगुल द्विरूपघनधारामें उत्पन्न होता है, इसलिए अन्य धारामें उत्पन्न होनेसे 'अन्य धारामें ऊपरके

---

१. म इत्यादिर्यिदं सूच्यंगु० । २. म एंदु सू० । ३. तत्प्रमाणंगलेंबुदर्त्थं ।

ददर्द्धच्छेदंगळुमन्यत्र पुट्टिदुवु। अर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे तिगुणा तिगुणा परट्टाणे एंदु सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळं नोडलु त्रिगुणमप्पवु। छे छे ३ ॥ अथवा गुणयारद्धच्छेदेत्यादियिंदं गुण्यगुणकाररूपदिनिर्द्द सूच्यंगुलं मूररलुं प्रत्येकं सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंप्रमितंगळुं मूरुमं छे छे १ कूडुत्तिरलु
छे छे १
छे छे १
तत्प्रमाणराशियक्कुमेंबुदर्थं। छे छे ३ ॥ वग्गशलाकेगळु वग्गसळा रूवहिया सपदे परसमित्यादियिंदं द्विरूपवर्गधारियोळपुट्टिद सूच्यंगुलवर्गशलाकेगळ समं घनाघनधारिगळ राशिगळोळ तत्सैवळियोळ् समानंगळप्पुदरिंदं सूच्यंगुलवर्गशलाकाप्रमितंगळप्पुवु अथवा 'राशिस्स अद्धच्छेदस्स अद्धिदवारा वा वग्गसलागा' एंदु घनांगुलार्द्धच्छेदराशिय दलितशलाकाप्रमितंगलप्पुववा प्रमाणमक्कुमेंदु गुणयारद्धच्छेदेत्यादि सूत्रदिंदं द्विगुणपल्यवर्गशलाकाप्रमितंगलप्पुवु। व. २ ॥

जगच्छ्रेणियुं द्विरूपघनधारियोळपुट्टिदुददर्द्धछेदवर्गशलाकेगळुमन्यत्र पुट्टिदवु। अर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवेंदोडे—

विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदेहि संगुणिदे।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥ [त्रि. सा. १०७]

एंदु विरलनराशिपल्यार्द्धच्छेदासंख्यातैकभागमं छे। देयमप्प घनांगुलदर्द्धच्छेदंदिंदं
अ
गुणिसुत्तिरलु जगच्छ्रेणिगर्द्धंगळप्पुवु। छे छे छे ३ वग्गशलाकेगळु।
अ अ अ

सूच्यङ्गुलार्धच्छेदेभ्यस्त्रिगुणाः। अथवा गुण्यगुणकारसूच्यङ्गुलत्रयस्यार्धच्छेदानां छे छे १ यावन्ती युतिस्ता-
छे छे १
छे छे १
वन्मात्रा भवन्ति छे छे ३। तद्वर्गशलाकास्तु परसमेति घनधारोत्पन्नघनाङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नसूच्यङ्गुलप्रणिधौ समुत्पन्नत्वात् सूच्यङ्गुलवर्गशलाकाभ्यो भवन्ति। जगच्छ्रेणे. द्विरूपघनधारोत्पन्नत्वादर्धच्छेदवर्गशलाका अन्यत्रोत्पद्यन्ते। ते अर्धच्छेदाः "विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे लद्धच्छेदा होंति।" इति पल्यार्धच्छेदासंख्येयभागे छे घनाङ्गुलस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवन्ति छे छे छे ३। तद्वर्ग-
अ अ

स्थानके तिगुने-तिगुने अर्धच्छेद होते हैं'- इस नियमके अनुसार सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंसे तिगुने घनांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। अथवा सूच्यंगुलको तीन जगह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे घनांगुल उत्पन्न होता है। अतः गुण्य और गुणकाररूप तीन सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंको जोड़नेसे घनांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। तथा 'वर्गशलाका अन्य धारामें समान होती हैं' इस नियमके अनुसार द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानमें सूच्यंगुल उत्पन्न होता है, द्विरूपघनधारामें उसी स्थानमें घनांगुल उत्पन्न होता है, इसलिए जितनी वर्गशलाका सूच्यंगुलकी है उतनी ही घनांगुलकी है। जगतश्रेणी द्विरूपघनधारामें उत्पन्न है, अतः इसके अर्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धारामें उत्पन्न होते हैं। 'विरलनरूप राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर लब्धराशिके अर्धच्छेद होते हैं।'- इस सूत्रनियमके अनुसार विरलनराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागको देयराशि घनांगुलके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतने जगतश्रेणीके अर्धच्छेद होते हैं। दुगुने जघन्य परीतासंख्यातका भाग अद्धापल्यकी वर्गशलाकामें देनेपर जो प्रमाण आवे, उसमें घनांगुलकी वर्गशलाकाओंको जोड़नेपर जो

दुगुणपरित्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
बिंदंगुळ वग्गसलासहिया सेढिस्स वग्गसला ॥ —[त्रि. सा. १०९]

एंदु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशियिदं भागिसल्पट्टद्धापल्यवर्गशलाकेगळु व बिंदंगुळ
१६ । २
वग्गसळासहिया । वृंदांगुलवर्गशलाकेगळं कूडि श्रेणिगे वर्गशलाकेगळप्पुवु । व २ अथवा
व
१६।२

५ देयराशेरुपरिविरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा विवक्षितराशिरुत्पद्यते एंदु देय-
राशियप्प घनांगुलद मेले विरलनराशियर्द्धच्छेदमात्रवर्गस्थानंगळं नडेदु व जगच्छ्रेणि पुट्टिदु-
१६ । २
दिदनू घनांगुलवर्गशलाकेगळनु कूडुत्तिरलु तद्राशिप्रमाणमेयप्पु वे बुर्त्थमिल्लि द्विगुण व
१६ । २
परीतासंख्यातजघन्यर्दिदं भागिसल्पट्टद्धापल्यवर्गशलाकाराशिय लब्धमं विरलिसि रूपं प्रति

शलाकास्तु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यभक्ताद्धापल्यवर्गशलाकायुतवृन्दाङ्गुलवर्गशलाकामात्र्यः व अथवा—
१६ । ३
व । २

१० जगच्छ्रेणेर्देयराशिघनाङ्गुलस्योपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नत्वादप्युक्तमात्र्यो भवन्ति । स च विरलनराशिः कियानिति चेत् उच्यते—अद्धापल्यार्धच्छेदराशेर्वर्गमूलानि द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्य-स्यार्धच्छेदमात्राण्यधोऽवतीर्य चरमवर्गमूलस्यार्धच्छेदाः द्विगुणजघन्यपरीतासंख्यातभक्तवर्गशलाकामात्राः 'तस्मित्तद्गुणे गुणे रासीति' तदर्धच्छेदस्य व भाज्यमात्रेषु भागहारमात्रेषु च द्विकेषु पृथग्वर्गितेषु
१६ । २

प्रमाण हो, उतनी ही जगतश्रेणीकी वर्गशलाका है। अथवा जगतश्रेणीकी देयराशि घनांगुलके
१५ ऊपर विरलन राशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग, उसके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जाकर जगतश्रेणी उत्पन्न होती है। इससे भी जगतश्रेणीकी वर्गशलाका का पूर्वोक्त प्रमाण जानना। सो जगतश्रेणीकी विरलन राशि कितनी है, यह बतलाते हैं— अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिके वर्गमूल दूने जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेद प्रमाण करो। सो द्विरूपवर्गधारामें पल्यके अर्धच्छेदरूप स्थानसे नीचे उतने स्थान जाकर अन्तमें जो
२० वर्गमूलरूप स्थान हो, उसके अर्धच्छेद, दूने जघन्य परीतासंख्यातका भाग पल्यकी वर्गशलाकामें देनेपर जो प्रमाण होता है, उतने हैं। 'अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण हो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर राशि उत्पन्न होती है।' इस नियमके अनुसार यहाँ पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाण भाज्य है सो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यकी अर्धच्छेद राशि होती है और दूना जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण
२५ भागहार है सो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर यथासम्भव असंख्यात होता है। इस तरह उस अन्तिम वर्गमूलका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग जानना। वही यहाँ जगतश्रेणीकी विरलनराशि है। लोकप्रतर द्विरूपघनधारामें उपन्न होता है। अतः उसके अर्द्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। लोकप्रतरके अर्धच्छेद जगतश्रेणीके अर्द्धच्छेदोंसे दूने होते हैं। तथा 'वर्गशलाका एक अधिक होती है'-इस नियमके
३० अनुसार जगतश्रेणीकी वर्गशलाकासे एक अधिक जगतप्रतरकी वर्गशलाका होती है। तथा

द्विकंगळं कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडलु जगच्छ्रेणिय विरलन राशि पुट्टुगुमा राशि प्रमाणमनरिवुपायमं तोर्प्पं ।

भज्जमिददुगगुणुत्थिदरासी मूलाणि हारथिदिपमिदं ।
गंतूण चरिममूलं लद्धमिददुगाहदे जणिदं ॥ —[ ]

एंदु भाज्यमप्पद्धापल्यवर्गशलाकाराशिय द्विकसंवर्गदिंदं पल्यार्द्धच्छेदराशि पुट्टुगुमा च्छेदराशिय मूलंगळु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशियर्द्धच्छेदमात्रमूलंगळं कॆळगिळिदु चरमरूपाधिकसंख्यातदनितेनयमूलं जगच्छ्रेणिय विरलनराशियप्पुददरर्द्धच्छेदंगळु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशिभाजिताद्धापल्यवर्गशलाकेगळॆंबुदु सिद्धमाय्तु ॥

आ रूपाधिकसंख्यातनितेनेय मूलं मोदल्गोंडु च्छेदराशिय प्रथमं मूलपर्य्यंत इर्द मूलंगळ नडरे गुणियिसिदंतप्पसंख्यातं पल्यच्छेदराशिगे पोक्क भागहारप्रमाणमप्पुदुतल्लब्धमुमा रूपाधिकसंख्यातदनितेनेय मूलमक्कुं । मू १ ॥

लोकप्रतरेयुं द्विरूपघनधारियोळ्पुट्टिदुददरर्द्धच्छेदवर्गशलाकेगळुमन्यत्र पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळु । 'वग्गादुवरिमवग्गेदुगुणादुगुणा हवंति अद्धच्छिदि' । एंदु जगच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळं नोडलु

छे		व
मू	१	व
		२
मू	२	व
२	, २	
मू	३	व
२,	२,	२
०		०
०		०
०		०
मू	१	व
	१६	
मू	१	व
१६	,	२

असंख्यातभक्तपल्यच्छेदमात्रं छे तन्मूलमुत्पद्यते । तदेव जगच्छ्रेणेर्विरलनराशि-
ज्ञातव्यः । लोकप्रतरस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदवर्गशलाकाः अन्यत्रोत्पद्यन्ते । ते
अर्धच्छेदा जगच्छ्रेण्यर्धछेदेभ्यो द्विगुणा भवन्ति छे छे छे ६ । तद्वर्गशलाकास्तु रूवहियेति

घनलोक द्विरूपघनाघनधारामें उत्पन्न होता है, इसलिए उसके अर्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। 'परस्थानमें तिगुने-तिगुने अर्धच्छेद होते हैं'-इस नियमके अनुसार द्विरूपघनधारामें प्राप्त जगतश्रेणीके अर्धच्छेदोंसे लोकके अर्धच्छेद तिगुने होते हैं। अथवा जगतश्रेणीको तीन जगह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे लोक होता है। अतः गुण्य और गुणाकाररूप तीन जगतश्रेणीके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर लोकके अर्धच्छेद होते हैं। उसकी वर्गशलाका तो 'परसम' नियमके अनुसार जगतश्रेणीकी वर्गशलाका जितनी ही होती है। इस विषयमें उपयोगी गाथा सूत्र कहते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है—गुणाकारके अर्धच्छेदोंमें गुण्यराशिके अर्धच्छेद जोड़नेपर लब्धराशिके अर्धच्छेद होते हैं। जैसे गुणाकार आठके अर्धच्छेद तीन और गुण्य सोलहके अर्धच्छेद चारको जोड़नेपर लब्धराशि एक सौ अट्ठाईसके अर्धच्छेद सात होते हैं। इसी प्रकार गुणाकार दश कोड़ाकोड़ीके असंख्यात अर्धच्छेद गुण्यराशि पल्यके अर्धच्छेदोंमें जोड़नेपर लब्धराशि सागरके अर्धच्छेद होते हैं। किन्तु अधिक-

द्विगुणंगळप्पुवु ॥ वि छे छे ६ । वर्गशलाकेगळं जगच्छ्रेणिय वर्गशलाकेगळं नोडलु रूपाधिकगळप्पुवेकेंदोडे "वग्गसळा रूवहिया सपदे" एंदरियल्पडुवुदरिंदं व २ घनलोकमुं द्विरूपघना-
व
१६ । २
घनधारियोळुप्पुट्टिदुददरर्द्धच्छेदवर्गशलाकेगळन्यत्र पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे एंदु द्विरूपघनधारियोळुप्पुट्टिद जगच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळं नोडलु त्रिगुणंगळप्पुवु । वि छे छे ९ ॥ अथवा गुणयारद्धेत्यादिर्यिदं गुण्यगुणकाररूपदिनिर्द्द जगच्छ्रेणिय मूरु राशिगळुगं समानंगळप्पर्द्धच्छेदंगळं वि छे छे ३ कूडिदोडे तद्राशिप्रमाणमेयक्कुं वि छे छे ९ वर्ग-
वि छे छे ३
वि छे छे ३

जगच्छ्रेणिवर्गशलाकाभ्यो रूपाधिका भवन्ति व । घनलोकस्य द्विरूपघनाघनधारोत्पन्नत्वात्तदर्धच्छेदवर्ग-
१६ । २
व । २
शलाका अन्यत्रोत्पद्यन्ते, तेऽर्धच्छेदाः 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणेति' द्विरूपघनधारोत्पन्नजगच्छ्रेण्यर्धछेदेभ्यस्त्रिगुणाः, अथवा गुण्यगुणकारस्थितजगच्छ्रेणित्रयस्यार्धच्छदेषु वि छे छे ३ मिलितेषु युतिमात्रा भवन्ति
वि, छे छे ३
वि, छे छे ३

के छेद नहीं हैं, क्योंकि अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदप्रमाण वर्गशलाका होती है। सो यहाँ पल्यके अर्धच्छेदोंसे संख्यात अर्धच्छेद सागरके अधिक कहे हैं सो इन अधिक अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद तो होते हैं, परन्तु वर्गशलाकारूप प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती। इसीसे अधिकके अर्धच्छेद नहीं करते, ऐसा कहा है। इसीसे सागरकी वर्गशलाका नहीं है।

भाज्यराशिके अर्धच्छेदोंमें-से भागहारके अर्धच्छेदोंको घटानेपर लब्धराशिकी अर्धच्छेद शलाका सर्वत्र होती है। जैसे एक सौ अट्ठाईसके भाज्यके अर्धच्छेद सातमें भागहार आठके तीन अर्धच्छेद घटानेपर लब्धराशि सोलहके चार अर्धच्छेद होते हैं, ऐसे ही सर्वत्र जानना।

विरलन राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर सर्वत्र उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद होते हैं। जैसे विरलनराशि चारको देयराशि सोलहके अर्धच्छेद चारसे गुणा करनेपर उत्पन्न राशि पण्णट्ठिके सोलह अर्धच्छेद होते हैं इसी प्रकार यहाँ भी पल्य अर्धच्छेद प्रमाण विरलन राशिको देयराशि पल्यके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर उत्पन्न राशि सूच्यंगुलके अर्धच्छेद होते हैं, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

विरलनराशिके अर्धच्छेदोंमें देयराशिके अर्धच्छेदोंको मिलानेपर उत्पन्न राशिकी वर्गशलाकाका प्रमाण होता है।

जैसे विरलनराशि चारके अर्धच्छेद दो और देयराशि सोलहके अर्धच्छेद चारके अर्धच्छेद दो मिलानेपर उत्पन्न राशि पण्णट्ठीकी वर्गशलाका चार होती है। इसी प्रकार विरलनराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंमें देयराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद जोड़नेपर उत्पन्न राशि सूच्यंगुलके वर्गशलाकाका प्रमाण होती है, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

---

१. म °पघनचा° ।

शलाकेगळु परसमयमेंबी न्यायविदं जगच्छ्रेणिय सैवळिय घनाघनधारिय लोकवर्गशलाकेगळुं समानंगळेयप्पुवु व २ इल्लिगुपयोगिगळप्प गाथासूत्रंगळु :—

व
१६।२

'गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणिस्स अद्धछेदजुदा ।
अद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स च्छेदणा णत्थि ॥'
भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा ।
अद्धच्छेदसळागा अद्धस्स हवंति सव्वत्थ ॥
विरळिज्जमाणरासि दिण्णस्सद्धच्छिदेहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ।
विरलिदरासिच्छेदा दिण्णद्धच्छेदछेदसंमिलिदा ।
वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥

वि छे छे ९ तद्वर्गशलाकास्तु परसमेति जगच्छ्रेणिवर्गशलाकामाद्यो भवन्ति व । अत्रोपयोगिगाथासूत्राणि—

१६।२
व २

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धछेदजुदा । लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स च्छेदणा णत्थि ॥१॥
भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा । अद्धच्छेदसलागा लद्धस्स हवन्ति सव्वत्थ ॥२॥
विरलिज्जमाणरासि दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे । अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥३॥
विरलिदरासिच्छेदा दिण्णद्धच्छेदछेदसम्मिलिदा । वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥४॥

दूने जघन्य परीतासंख्याका भाग अद्धापल्यकी वर्गशलाकाको देनेपर जो प्रमाण हो, उसमें घनांगुलकी वर्गशलाकाका प्रमाण जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतनी जगतश्रेणीकी वर्गशलाका होती है।

विरलनराशिसे जितने अधिक रूप हों, उनको परस्परमें गुणा करनेपर लब्धराशिका गुणकार होता है। जैसे चार अर्धच्छेदरूप विरलनराशि और तीन अर्धच्छेदरूप अधिकराशि इनमें-से विरलनराशिके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर २×२×२×२ सोलह लब्धराशि होती है। और अधिकराशि तीन अर्धच्छेदप्रमाण दोके अंक रखकर २×२×२ परस्पर गुणा करनेपर गुणाकार आठ होता है। सो लब्धराशिके गुणाकारसे गुणा करनेपर एक सौ अट्ठाईस होते हैं। जिसके अर्द्धच्छेद सात हैं। इसी प्रकार पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण विरलनराशि है सो इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर लब्धराशि पल्य होती है और अधिक राशि संख्यात अर्धच्छेद है सो इतने प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर दस कोड़ाकोड़ी गुणाकार होता है सो पल्यको दस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करनेपर सागरका प्रमाण होता है, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

विरलनराशिसे जितने हीन रूप हों, उनको परस्पर गुणा करनेपर उत्पन्न राशिका भागहार होता है। जैसे विरलन राशि अर्धच्छेद सात और हीन रूप अर्द्धच्छेद तीन इनमें-से विरलन राशिमात्र दोके अंक रखकर २×२×२×२×२×२×२ परस्पर गुणा करनेपर एकसौ अट्ठाईस राशि उत्पन्न होती है। और हीनरूप प्रमाण दोके अंक रखकर २×२×२ परस्पर गुणा करनेपर आठ भागहार राशि होती है। सो उत्पन्नराशिमें भागहाररूप राशिका

दुगुणपरीतासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसळा ।
बिंदंगुलवग्गसळासहिया सेढिस्स वग्गसळा ॥
विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहिय रूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदे गुणयारो लद्धरासिस्स ॥
विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ [त्रि. सा. १०५-१११]

इंतु परिभाषास्वरूपनिरूपणं माडि प्रकृतमं प्रवर्त्तिसिदपें ।

□

दुगुणपरीत्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला । विन्दंगुलवग्गसला सहिया सेढिस्स वग्गसला ॥५॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि अहियरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥६॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदो हारो उप्पण्णरासिस्स ॥७॥
एवं परिभाषोक्ता ।

भाग देनेपर सोलह होते हैं, जिसके अर्द्धच्छेद चार हैं ; ऐसे ही अन्यत्र जानना । इस प्रकार प्रमाणका वर्णन किया ।

विशेषार्थ—इस प्रकार मानभेदके द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका परिमाण किया जाता है—सो जहाँ द्रव्यका परिमाण हो, वहाँ उतने पदार्थ अलग-अलग जानना, जहाँ क्षेत्रका परिमाण हो, वहाँ उतने प्रदेश जानना, जहाँ कालका परिमाण हो, वहाँ उतने समय जानना, जहाँ भावका परिमाण हो, वहाँ उतने अविभागी प्रतिच्छेद जानना । जैसे हजार मनुष्य कहनेपर हजार मनुष्य अलग-अलग जानना । इसी प्रकार द्रव्य परिमाणमें अलग-अलग पदार्थ जानना । जैसे यह वस्त्र बीस हाथ है, यहाँ उस वस्त्रमें बीस अंश अलग-अलग नहीं हैं, परन्तु एक हाथ जितना क्षेत्र रोकता है, उसकी कल्पना करके बीस हाथ कहते हैं । इसी प्रकार क्षेत्र परिमाणमें जितना क्षेत्र परमाणु रोकता है, उसको प्रदेश कहते हैं, उसकी कल्पना करके क्षेत्रका परिमाण कहा जाता है । तथा जैसे एक वर्षके तीन सौ छियासठ दिन-रात कहे जाते हैं, किन्तु अखण्डित काल-प्रवाहमें अंश नहीं हैं । परन्तु सूर्यके उदय-अस्त होनेकी अपेक्षा कल्पना करके कहे जाते हैं । इसी प्रकार कालप्रमाणमें जितने कालमें एक परमाणु मन्दगतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जाता है, उसको समय कहते हैं, उसीकी अपेक्षा कल्पना करके कालका प्रमाण कहा है । तथा जैसे ये सोना सोला वानीका है सो उस सोनेमें सोलह अंश नहीं हैं, तथापि एक वानके सोनामें जैसे वर्णादिक पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा कल्पना करके कहा है । इसी प्रकार भाव परिमाणमें केवलज्ञानगम्य अतिसूक्ष्म जिसका दूसरा भाग न हो, ऐसे शक्तिके अंशको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं । उसकी कल्पना करके भावका परिमाण कहा है । इस प्रकार मुख्य परिमाणका कथन जानना । विशेष जैसा जहाँ विवक्षित हो, वहाँ वैसा जानना । जैसे क्षेत्र परिमाणमें आवलीका परिमाण कहा, वहाँ आवलीके जितने समय हों, उतने प्रदेश जानना । इसी प्रकार कालप्रमाणमें जहाँ लोकप्रमाण कहा, वहाँ लोकके जितने प्रदेश हों, उतने समय जानना । इस प्रकार इस ग्रन्थमें यत्र-तत्र मानका प्रयोजन जान कर मानका वर्णन किया है ।

अनंतरं पर्य्याप्तिप्ररूपणाधिकारमं प्रारंभिसुवातं दृष्टांतपुरस्सरं पर्य्याप्तेतरस्वामिनिर्देशार्थ-निमित्तमागि पेळ्दपं :—

जह पुण्णापुण्णाइं गिहघडवत्थादियाइ दव्वाइं ।
तह पुण्णिदरा जीवा पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥

यथा पूर्णापूर्णानि गृहघटवस्त्रादिकानि द्रव्याणि । तथा पूर्णेतरा जीवाः पर्य्याप्तेतरा मन्तव्याः ॥

एन्तिगळु लोकदोळु गृहघटवस्त्रादिद्रव्यंगळु व्यंजनपर्य्यायात्मकंगळु पूर्णंगळ् सर्व्वशक्ति-संपूर्णंगळुमपूर्णंगळु तच्छक्तिविकलंगळ् कारणत्वदिंदुवंते पर्य्याप्तापर्य्याप्तनामकर्म्मोदयं गळिंदमाक्रांतंगळप्प जीवंगळु पूर्णंगळु स्वस्वयोग्यपर्य्याप्तिगळिंदं संभृतंगळु । मत्तमपर्य्याप्तंगळु तच्छक्तिविकलंगळप्पुवेंदितु ज्ञातव्यंगळु ।

अनंतरं पर्य्याप्तिविशेषमं तत्स्वामिविशेषमुमं पेळ्वेडि मुंदणगाथासूत्रमं पेळ्दपं ।

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाण-भासमणो ।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदियविय्लसण्णीणं ॥११९॥

आहारशरीरेन्द्रियपर्य्याप्तयः आनापानभाषामनःपर्य्याप्तयो यथासंख्यं चतस्रः पंच षडपि चैकेन्द्रियविकलसंज्ञिनां ॥

अथ पर्याप्तिप्ररूपणां प्रारभमाणो दृष्टान्तपुरस्सरं ताभिः पूर्णापूर्णत्वं जीवानां दर्शयति—

यथा लोके गृहघटवस्त्रादिद्रव्याणि व्यञ्जनपर्यायात्मकानि पूर्णानि– सर्वशक्तिसम्पूर्णानि, अपूर्णानि–तच्छक्तिविकलानि च दृश्यन्ते । तथा पर्याप्तापर्याप्तनामकर्मोदयाक्रान्ता जीवा अपि पूर्णाः—स्वस्वयोग्यपर्याप्तिभिः संभृताः, अपूर्णाः—तच्छक्तिविकलाश्च भवन्ति इति मन्तव्याः ॥११८॥

अथ पर्याप्तीनां तत्स्वामिनां च विशेषमाह—

पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्ध्यते मध्यदीपकत्वात् । आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः आनपानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिरिति पर्याप्तयः षट् ६ । तत्र आद्याश्चतस्र एकेन्द्रियजीवानां मनः-

अब पर्याप्तियोंके कथनका प्रारम्भ करते हुए दृष्टान्तपूर्वक उनके द्वारा जीवोंकी पूर्णता और अपूर्णता दिखाते हैं—

जैसे लोकमें घर, घट, वस्त्र आदि व्यंजन पर्यायरूप द्रव्य कुछ पूर्ण और कुछ अपूर्ण होते हैं अर्थात् कुछ पदार्थ सर्वशक्तिसे सम्पन्न और कुछ सर्वशक्तिसे रहित देखे जाते हैं या कुछ अपने अवयवोंसे निष्पन्न होते हैं और कुछ अपने अवयवोंसे अनिष्पन्न होते हैं, वैसे ही पर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियोंसे पूर्ण होते हैं और अपर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त जीव अपूर्ण होते हैं अर्थात् जो सर्वपर्याप्तियोंको पूर्ण करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होते हैं,वे पर्याप्तक जानना, और जिनमें इस तरहकी शक्ति नहीं है, वे अपर्याप्तक जानना ॥११८॥

आगे उन पर्याप्तिके भेदोंको और उनके स्वामियोंको कहते हैं—

मध्यदीपक होनेसे पर्याप्ति शब्द प्रत्येकके साथ लगाया जाता है। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और भाषापर्याप्ति, मनःपर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ हैं। इनमें-से एकेन्द्रिय जीवोंके आदिकी चार पर्याप्तियाँ होती हैं। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके मनःपर्याप्तिके बिना पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञिपंचे-

आहारपर्य्याप्तियुं शरीरपर्य्याप्तियुमिंद्रियपर्य्याप्तियुमानापानपर्य्याप्तियुं भाषापर्य्याप्तियुं मनःपर्य्याप्तियुमेंदितु षट्पर्य्याप्तिगळप्पुवरोळु मोदल नाल्कुं पर्य्याप्तिगळेकेंद्रियजीवंगळ्गप्पुवुमंते मोदलय्दु पर्य्याप्तिगळ् विकलेंद्रियजीवंगळ्गाप्पुवुमंतेयारुं पर्य्याप्तिगळ्पंचेंद्रियसंज्ञिजीवंगळोळप्पुवुमिल्लियौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्म्मोदयप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तच्छरीरत्रयषट्पर्य्याप्तिपर्य्यायपरिणमनयोग्यंगळप्प पुद्गलस्कंधंगळं खलरसभागदिंदं परिणमिसल्के पर्य्याप्तनामकर्म्मोदयावष्टंभसंभूतमप्पात्मन शक्तिनिष्पत्तियाहारपर्य्याप्ति एंबुदक्कुमन्तु परिणतंगळप्प पुद्गलस्कंधंगळ्गे खलभागमप्प अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपदिंदमुं रसभागमं रुधिरादिद्रवावयवरूपदिंदं परिणमिसल्के शक्तिनिष्पत्तिशरीरपर्य्याप्तियें बुदक्कुमावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितमप्पात्मन योग्यदेशावस्थितरूपादिविषयग्रहणव्यापारदोळु शक्तिनिष्पत्तिजातिनामकर्म्मोदयजनितमिंद्रियपर्य्याप्तियें बुदक्कु—माहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळनुच्छ्वासनिःश्वासरूपदिंदं परिणमिसल्के युच्छ्वासनिःश्वासनामकर्म्मोदयजनितशक्तिनिष्पत्ति युच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तियें बुदक्कु । स्वरनामकर्म्मोदयवशदिंदं भाषावर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळं सत्यासत्योभयानुभयभाषारूपदिंदं परिणमियिसिसल्के

पर्याप्तिं विना पञ्च विकलेन्द्रियजीवानां षट् संज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवानां भवन्ति । अत्र औदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्मोदयप्रथमसमयमादिं कृत्वा तच्छरीरत्रयषट्पर्याप्तिपर्यायपरिणमनयोग्यपुद्गलस्कन्धान् खलरसभागेन परिणामयितुं पर्याप्तिनामकर्मोदयावष्टम्भसंभूतात्मनः शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्तिः । तथापरिणतपुद्गलस्कन्धानां खलभागं अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपेण रसभागं रुधिरादिद्रव्यावयवरूपेण च परिणामयितुं शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः । आवरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविजृम्भितात्मनो योग्यदेशावस्थितरूपादिविषयग्रहणव्यापारे शक्तिनिष्पत्तिर्जातिनामकर्मोदयजनितेन्द्रियपर्याप्तिः । आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् उच्छ्वासनिश्वासरूपेण परिणामयितुं उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयजनितशक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिः । स्वरनामकर्मोदयवशाद् भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् सत्यासत्योभयानुभयभाषारूपेण परिणामयितुं शक्तिनिष्पत्तिः भाषापर्याप्तिः ।

न्द्रिय जीवोंके छह पर्याप्तियाँ होती हैं । औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर नामकर्मके उदयके प्रथम समयसे लेकर उन तीन शरीर और छह पर्याप्तिरूप पर्यायके परिणमने योग्य पुद्गल स्कन्धोंको खल और रसभागरूपसे परिणमानेके लिए पर्याप्तिनामकर्मके उदयके साहाय्यसे उत्पन्न आत्माकी शक्तिकी निष्पत्ति आहारपर्याप्ति है । अर्थात् जैसे तिलोंको पेलकर खल और तेलके रूपमें परिवर्तित करते हैं, वैसे ही शरीरनामकर्मका उदय होते ही शरीर और पर्याप्तियोंके योग्य 'जो पुद्गलस्कन्ध जीव ग्रहण करता है, उनको खल और रसभागरूपसे परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं । खल और रसभागरूपसे परिणत पुद्गल स्कन्धोंमें-से खल भागको हड्डी आदि स्थिर अवयवरूपसे और रसभागको रक्त आदि द्रव अवयव रूपसे परिणमानेकी शक्तिकी निष्पत्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं । मतिश्रुतज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे युक्त तथा योग्यदेशमें अवस्थित रूप आदि विषयोंको ग्रहण करने रूप व्यापारसे विशिष्ट आत्माके स्पर्शन आदि द्रव्येन्द्रिय रूपसे विवक्षित पुद्गल स्कन्धोंको जातिनामकर्मके उदयके अनुसार परिणमानेकी शक्तिकी निष्पत्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं । आहारवर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गलस्कन्धोंको उच्छ्वास-निश्वास रूपसे परिणमानेके लिए उच्छ्वास-निश्वासनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिकी निष्पत्तिको उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति कहते हैं । स्वरनामकर्मके उदयके वशसे

१. म °प्पयो° । २. म °मिसं° ।

शक्तिनिष्पत्तिभाषापर्य्याप्तियें बुदक्कुं। मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळनंगोपांगनामकर्म्मोदयबलाधानदिं द्रव्यमनोरूपदिदं परिणमियिसिसलके आ द्रव्यमनोबलाधानदिं नोइंद्रियावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमविशेषदिंदमुं गुणदोषविचारानुस्मरणप्रणिधानलक्षणभावमनःपरिणमनशक्तिनिष्पत्ति मनःपर्य्याप्तियें बुदु अक्कुं।

पज्जत्ती पट्ठवणं जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं ।
अंतोमुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥१२०॥

पर्य्याप्तिप्रस्थापनं युगपत्पुनः क्रमेण भवति निष्ठापनमन्तर्म्मुहूर्त्तकालेनाधिकक्रमास्तावन्मात्रालापाः ॥

समस्तस्वस्वयोग्यपर्य्याप्तिगळगे शरीरनामकर्म्मोदयप्रथमसमयदोळे युगपत्प्रारंभमक्कुं। मत्तं तन्निष्ठापनंगळुमंतर्म्मुहूर्त्तदिनधिकक्रमंगळादोडं तावन्मात्रालापगळेयप्पुवु। ते दोडेयाहारपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं सर्व्वतस्तोकमंतर्म्मुहूर्त्तकालमक्कु २१। मिदं नोडे शरीरपर्य्याप्तिकालं

मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयबलाधानेन द्रव्यमनोरूपेण परिणामयितुं तद्द्रव्यमनोबलाधानेन नोइन्द्रियावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषेण च गुणदोषविचारानुस्मरणप्रणिधानलक्षणभावमनःपरिणमनशक्तिनिष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः ॥११९॥

समस्तस्व-स्वयोग्यपर्याप्तीनां शरीरनामकर्मोदयप्रथमसमये एव युगपत् प्रतिष्ठापनं प्रारम्भो भवति। तु पुनः तन्निष्ठापनानि अन्तर्मुहूर्तेन क्रमेण तथापि तावन्मात्रालापेनैव भवन्ति। तद्यथा—आहारपर्याप्तिनिष्पत्ति-

भाषावर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गल स्कन्धोंको सत्य, असत्य, उभय और अनुभय भाषाके रूपमें परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं। मनोवर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गलस्कन्धोंको अंगोपांगनामकर्मके उदयकी सहायतासे द्रव्यमनोरूपसे परिणमानेके लिए तथा उस द्रव्य मनकी सहायतासे नोइन्द्रियावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम विशेषसे गुणदोषका विचार, स्मरण, प्रणिधानलक्षणवाले भावमन रूपसे परिणमन करनेकी शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं ॥११९॥

विशेषार्थ—शक्तिकी निष्पत्तिको पर्याप्ति कहते हैं। औदारिक आदि शरीरनामकर्मके उदयसे औदारिक आदि शरीररूप परिणमनके योग्य आहारवर्गणाके स्कन्ध आत्माके द्वारा गृहीत होकर समस्त आत्मप्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूपसे स्थित होते हैं। वे पर्याप्तनामकर्मका मन्द अनुभागोदय होनेसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक आहार आदिकी शक्ति निष्पत्तिको उत्पन्न नहीं करते। अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् पर्याप्तनामकर्मका तीव्र अनुभागोदय होनेसे उस रूप परिणमनकी शक्ति निष्पत्तिको करते हैं। गाथामें आये 'च' शब्दसे लब्ध्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदिके क्रमसे अपर्याप्तियाँ भी चार-पाँच और छह होती हैं ॥११९॥

शरीरनामकर्मके उदयके प्रथम समयमें ही अपने-अपने योग्य समस्त पर्याप्तियोंका प्रतिष्ठापन अर्थात् प्रारम्भ एक साथ होता है। किन्तु उनका निष्ठापन अर्थात् समाप्ति क्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालमें होती है। जैसे, आहारपर्याप्तिकी निष्पत्तिका काल सबसे छोटा अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उससे शरीरपर्याप्तिका काल उसके असंख्यातवें भाग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक है तथा मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त ही है। अर्थात् आहारपर्याप्तिके कालको संख्यातका भाग देनेसे जो

१. म °मिसल्के नो ।

तत्संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्त्तादिनधिकमक्कु २१।२१ कूडिदडिनितक्कुमो युति संस्कृतव्याख्यान-
४
दोळ्पेळ्द अथवा एंब पक्षांतरमनपेक्षिसि पेळल्पट्टुदु ॥ मुंदे नाल्कंडेयोळमो तेर २१।५ मिदु-
४
वुमंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिदं नोडलिंद्रियपर्य्याप्तिकालं संख्यातैकभागमात्रांतर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु
२१।२१।२१ कूडिदोडिंद्रियपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालमिदुवु २१ ५।५ मंतर्मुहूर्त्तकालमेयक्कु
४ ४ ४ ४ ४
२१ मिदं नोडलुच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं संख्यातैकभागमात्रांतर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु
५ २१।२१।२१।२१ मिदवुं कूडि २१।५।५।५ यु मंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिमेकेंद्रियपर्य्याप्तकन
४।४।४।४ ४४ ४।४।४।
पर्य्याप्तिगळ क्रमदिदं नालकुं संपूर्णगळप्पुवुमिदं नोडे भाषापर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं संख्यातैकभागां-
तर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु २१।२१। २१। २१। २१ मिदणुं कूडिदोड २१ ५।५।५।५
४। ४।४। ४।४।४। ४।४।४।४ ४।४।४।४
१० मंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिगे विकलत्रयपर्य्याप्तजीवंगळ्गे तम्मध्युं पर्य्याप्तिगळ्क्रमदिदं
परिपूर्णगळप्पुवुमिदं नोडे मनःपर्य्याप्तिकालं संख्यातैकभागांतर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु ।

कालः सर्वतः स्तोकोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रः, २१, इतः शरीरपर्याप्तिकालः तत्संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
२१।२१ मिलितोऽपि २१।५ अन्तर्मुहूर्तः । इतः इन्द्रियपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागमात्रान्तर्मुहूर्ताधिकः
४ ४
१५ २१।२१।२१ मिलितोऽपि २१ ५ अन्तर्मुहूर्तः । इतः उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
४।४।४
२१।२१।२१।२१ मिलितोऽप्यन्तर्मुहूर्तः २१ ५।५।५। एता एव चतस्रः एकेन्द्रियपर्याप्तकस्य
४।४।४।४।४।४ ४।४।४
पर्याप्तयोऽनेन क्रमेण पूर्णा भवन्ति । ततः भाषापर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
२१।२१।२१। २१। २१। मिलितोऽपि अन्तर्मुहूर्तः २१।५।५।५।५।
४।४।४।४।४।४।४।४।४।४। ४।४।४।४।
२० एताः पञ्च विकलेन्द्रियपर्याप्तकजीवानामनेन क्रमेण पूर्णा भवन्ति । ततः मनःपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्त-

---

कालका परिमाण आता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। यह अन्तर्मुहूर्त उस आहारपर्याप्तिके अन्तर्मुहूर्तमें मिलानेपर जो परिमाण होता है, वह शरीरपर्याप्तिका निष्ठापन काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इसका संख्यातवाँ भाग उसीमें मिलानेपर इन्द्रियपर्याप्तिका काल होता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इसका संख्यातवाँ भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त इसीमें मिलानेसे श्वासो-
२५ च्छ्वास पर्याप्तिका काल है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। ये चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय पर्याप्तकके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके कालका संख्यातवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त उसीमें मिलानेपर भाषापर्याप्तिका काल होता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। ये पाँच पर्याप्तियाँ विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं। भाषापर्याप्तिकालका

---

१. म °क्कु २१।५ मिदुवुमंत° ।
४

२१ । २१ । २१ । २१ । २१ । २१ । मिदुवुं कूडि २१ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४

युमंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिगे संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकनारुं पर्य्याप्तिगळ क्रमदिंदं परिपूर्णगळप्पुवु ।

अनंतरं पर्य्याप्तिनिर्वृत्यपर्य्याप्तिकालविभागकालमं पेळ्दपं :—

पज्जत्तस्स य उदये णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि ।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णगो ताव ॥१२१॥

पर्य्याप्तिनामकर्म्मण उदये निजनिजपर्य्याप्तिनिष्ठितो भवति । यावच्छरीरमपूर्णं निर्वृत्यपर्य्याप्तकस्तावत् ॥

पर्य्याप्तिनामकर्म्मदुदयमुंटागुत्तिरलेकेंद्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवंगळ् तंतम्म नाल्कैदु मूरु पर्य्याप्तिगळिंद निष्ठितमप्परु । निष्पन्नशक्तिकरप्पुवु । यें[1]न्नेवर मा जीवंगळ्गे शरीरपर्य्याप्तिनिष्पन्नमागदन्नेवरं समयोनशरीरपर्य्याप्तिकालांतर्मुहूर्त्तपर्य्यंतं २१।५/४ निर्वृत्यपर्य्याप्तकरेंदु पेळल्पट्टरु ॥

निर्वृत्याशरीरनिष्पत्याऽपर्य्याप्ता अपूर्णानिर्वृत्यपर्य्याप्ताः एंदितु निरुक्तिसिद्धरप्परु ॥

मुहूर्तेनाधिकः २१ । २१ । २१ । २१ । २१ । २१ ।
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

मिलितोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रः २१ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । एताः षट् संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकानामनेन क्रमेण
४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

पूर्णा भवन्ति ॥१२०॥

अथ पर्याप्तिनिर्वृत्यपर्याप्तकालविभागमाह—

पर्याप्तनामकर्मोदये सति एकेन्द्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवाः निजनिजचतुःपञ्चषट्पर्याप्तिभिर्निष्ठिताः निष्पन्नशक्तयो भवन्ति । ते च यावत् शरीरपर्याप्तया न निष्पन्नाः तावत् समयोनशरीरपर्याप्तिकालान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं २१।५/४ निर्वृत्यपर्याप्ता इत्युच्यन्ते । निर्वृत्या शरीरनिष्पत्त्या अपर्याप्ता अपूर्णा निर्वृत्यपर्याप्ता इति निर्वचनात् ॥१२१॥

संख्यातवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त उसीमें मिलानेपर मनःपर्याप्तिका काल होता है वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है । ये छह पर्याप्तियाँ संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं ॥१२०॥

आगे पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्तके कालका विभाग करते हैं—

पर्याप्तनामकर्मका उदय होनेपर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय चार और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अपनी-अपनी चार, पाँच और छह पर्याप्तियोंसे निष्ठित अर्थात् सम्पूर्ण शक्तियुक्त होते हैं । वे जबतक शरीर पर्याप्तिसे निष्पन्न नहीं होते अर्थात् जबतक उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक निर्वृत्यपर्याप्त कहे जाते हैं । अर्थात् एक समय कम शरीरपर्याप्तिके काल अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तका काल है । निर्वृत्ति अर्थात् शरीरपर्याप्तिकी निष्पत्तिसे अपर्याप्त अर्थात् अपूर्णको निर्वृत्यपर्याप्त कहते हैं, यह उसकी व्युत्पत्ति है ॥१२१॥

विशेषार्थ—शरीरपर्याप्तिकी निष्पत्तिके समयसे लेकर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्तिकी निष्पत्ति नहीं होनेपर भी जीव पर्याप्तक ही कहा जाता है ।

---

१. म विकलत्रयसं ।

अनंतरलब्ध्यपर्य्याप्तकस्वरूपनिरूपणं माडिदपं ।

उदए दु अपुण्णस्स य सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि ।
अंतोमुहुत्तमरणं लद्धियपज्जत्तगो सो दु ॥१२२॥

उदये त्वपूर्णस्य च स्वक-स्वकपर्य्याप्तिं न निष्ठापयति । अंतर्म्मुहूर्त्तमरणं लब्ध्यपर्य्याप्तकः स तु । अपर्य्याप्तनामकर्म्मक्कुदयमागुत्तिरलेकेंद्रियविकलसंज्ञिजीवंगळ् तंतम्म पर्य्याप्तिगळनाल्कुमय्दु मारुगळं निष्ठापनमं माळपरल्लरुमवर्गळुमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रांतर्म्मुहूर्त्तदोळे मरणमनुळ्ळरु ॥ लब्ध्यपर्य्याप्तरें दु पेळल्पट्टरु । लब्ध्या स्वस्वपर्य्याप्तिनिष्ठापनयोग्यतयाऽपर्य्याप्ता अनिष्पन्ना लब्ध्यपर्य्याप्तका एंदितु निरुक्तिसिद्धरप्परु । लब्ध्यपर्य्याप्तरिगायुष्यमुमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमें दु व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः एंबी न्यायदिदं पेळल्पट्टुदु । अनंतरमेकेंद्रियादिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमिर्द्द लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवंगळोळु सर्वनिरंतरजन्ममरणकालप्रमाणमं पेळल्वेडि पेळ्दपं ।

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अंतोमुहूत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥१२३॥

त्रिशतं षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्राणि मरणान्यंतर्म्मुहूर्त्तकाले तावत्काश्चैव क्षुद्रभवाः ॥ षट्त्रिंशत्त्रिशताभ्यधिकषट्षष्टिसहस्रमरणंगळंतर्म्मुहूर्त्तकालदोळु संभविसुववनिते क्षुद्रभवंगळुमप्पुवु । क्षुद्रस्य सर्वनिकृष्टस्य लब्ध्यपर्य्याप्तकस्य भवाः क्षुद्रभवाः एंबी निरुक्तिसिद्धंगळप्प लब्ध्यपर्य्याप्तक-

---

अथ लब्ध्यपर्याप्तकस्वरूपं निरूपयति—

अपर्याप्तनामकर्मोदये सति एकेन्द्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवाः स्व-स्वचतुःपञ्चषट्पर्याप्तीर्न निष्ठापयन्ति । उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रे एवान्तर्मुहूर्ते म्रियन्ते ते जीवा लब्ध्यपर्याप्तका इत्युच्यन्ते । लब्ध्या स्वस्य पर्याप्तिनिष्ठापनयोग्यतया अपर्याप्ता अनिष्पन्ना लब्ध्यपर्याप्ता इति निरुक्तेः ॥१२२॥

अथैकेन्द्रियादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तलब्ध्यपर्याप्तकजीवेषु सर्वनिरन्तरजन्ममरणकालप्रमाणमाह—

अन्तर्मुहूर्तकाले क्षुद्राणां लब्ध्यपर्याप्तानां मरणानि षट्त्रिंशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि संभवन्ति । तथा तद्भवा अपि तावन्त एव ॥१२३॥

लब्ध्यपर्याप्तकका स्वरूप कहते हैं—

अपर्याप्तकनामकर्मका उदय होनेपर एकेन्द्रिय, चारों विकलेन्द्रिय और संज्ञी जीव अपनी-अपनी चार, पाँच और छह पर्याप्तियोंको पूर्ण नहीं करते हैं । उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमें ही वे मर जाते हैं । वे जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहे जाते हैं । लब्धि अर्थात् अपनी पर्याप्तिको पूर्ण करनेकी योग्यतासे अपर्याप्त अर्थात् अनिष्पन्न जीव लब्ध्यपर्याप्त है ऐसी निरुक्ति है ॥१२२॥

आगे एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें निरन्तर जन्म और मरणके कालका प्रमाण कहते हैं—

अन्तर्मुहूर्तकालमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका मरण छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार होता है । तथा उनका जन्म भी उतनी ही बार होता है ॥१२३॥

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक जीवके ८७$\frac{3}{5}$ उच्छ्वासोंसे हीन एक मुहूर्त काल प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमें छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं । उतने ही क्षुद्रभव हैं ।

---

१. म °गलंतम्म । २. म °लायुष्यमुं । ३. म °र्त्तमे मा° ।

मरणजन्मंगळगेकेंद्रियादिजीवंगळोळु संभविसुव प्रमाणमुमं पेळ्दपं।

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥१२४॥

अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिः पंचाक्षे षट्षष्टिसहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे॥

एकेंद्रियंगळगे द्वात्रिंशच्छताभ्यधिकषट्षष्टिसहस्रंगळ् निरंतरक्षुद्रभवंगळप्पवु ६६१३२। दानुमोर्व्वमेकेंद्रियं लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवं तद्भवप्रथमसमयं मोदल्गो डुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रकालमं स्वस्थितियं जीविसि सत्तु मत्तमल्लियेकेंद्रियंगळोळ् पुट्टि मत्तं तावन्मात्रस्थितियं जीविसि सत्तितु निरंतरमेकेंद्रियंगळोळु लब्ध्यपर्य्याप्तकंगेत्तलानुं बहुभवंगळ् संभविपोडमा पेळ्द संख्याप्रमाणम ६६१३२। नतिक्रमिसवु। इन्ते द्वींद्रियादिगळोळं निरंतरक्षुद्रभवप्रकारंगळ् योजिसल्पडुवुमन्ते द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळ८भत्तु ८० त्रींद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळरुवत्तु ६० चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळ्मंते नाल्वत्तु ४० पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळिप्पत्तनाल्कु २४ इवरोळ्मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळ्[1]ं टु ८। असंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतर क्षुद्रभवगळेटु ८ संज्ञिपंचेंद्रिय लब्ध्यपर्य्याप्त-

---

अथ तन्मरणजन्मनां एकेन्द्रियादिजीवसंभविनां तत्कालस्य च प्रमाणमाह—

ते निरन्तरक्षुद्रभवा लब्ध्यपर्याप्तकेषु एकेन्द्रिये द्वात्रिंशदग्रशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि भवन्ति ६६१३२। तद्यथा—कश्चिदेकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकः तद्भवप्रथमसमयादारभ्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रीं स्वस्थितिं जीवित्वा पुनस्तदेकेन्द्रिये एवोत्पन्नः, पुनस्तावन्मात्रस्वस्थितिं जीवितः। एवं निरन्तरमेकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकभवानेव बहुवारं गृह्णाति। तदा उक्तसंख्यां ६६१३२ नातिक्रामति। एवमेव द्वीन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके अशीति ८०, त्रीन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके षष्टि ६०, चतुरिन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके चत्वारिंशत् ४०, पञ्चेन्द्रिये लब्ध्य-

---

उसका भव सब जीवोंके भवसे अति अल्प होता है,इसलिए उसे क्षुद्रभव कहते हैं। लब्ध्यपर्याप्तकको छोड़कर अन्य किसी भी जीवका उच्छ्वासके अठारहवें भाग मात्र भव नहीं होता। एक भवके कालका प्रमाण यदि एक उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग मात्र है,तो छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभवोंके कितने उच्छ्वास होते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर पृथिवीकायिकसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अव्यवहित क्षुद्रभवोंका काल तीन हजार छह सौ पिचासी तथा एक त्रिभाग ३६८५$\frac{1}{3}$ उच्छ्वास प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है ॥१२३॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंके होनेवाले उन मरण और जन्मोंका तथा उनके कालका प्रमाण कहते हैं—

वे निरन्तर क्षुद्रभव लब्ध्यपर्याप्तोंमें एकेन्द्रियोंके छियासठ हजार एक सौ बत्तीस ६६१३२ होते हैं। सो इस प्रकार हैं—कोई एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक अपने भवके प्रथम समयसे लेकर उच्छ्वासके अठारहवें भागमात्र अपनी स्थिति प्रमाण जीवित रहकर पुनः उस एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्पन्न हुआ। और एक उच्छ्वासके अठारहवें भाग काल तक जीवित रहा। इस प्रकार निरन्तर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भवोंको ही बार-बार ग्रहण करता है। तब उक्त संख्या ६६१३२ का उल्लंघन नहीं करता। इसी तरह दोइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें अस्सी ८०, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें साठ ६०, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें चालीस ४०, पंचेन्द्रिय

---

१. म °मं कालप्रमाणमुमं। २. म °गलोंटु।

कन निरंतरक्षुद्रभवंगळे[1]ंदु कूडि पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळिप्पत्तनाल्कु २४ । अनंतरमेकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभव संख्येयोळु स्वामिभेदमनाश्रयिसि विभागिसिदपं ।

पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बार खं छक्कं ॥१२५॥

पृथिव्युदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः । एतेष्वपूर्णेषु चैकस्मिन् द्वादश खं षट्कं ॥

पृथिवीकायिक - अप्कायिक - तेजस्कायिक - वातकायिक साधारणवनस्पतिकायिकंगळोळु प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदद्वयविभिन्नंगळोळं प्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळोळमितु पन्नों देंडेयोळं द्वादशोत्तरषट्सहस्रंगळिन्तरंतरं क्षुद्रभवंगळप्रत्येकमप्पुवें[2]दु पन्नोंदरिदमेकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकनिरंतरक्षुद्रभवंगळं ६६१३२ भागिसलो दों दक्कं मुंपेळ्द बार खं छक्कं ६०१२ निरंतरक्षुद्रभवंगळप्पुवु । सामान्यलब्ध्यपर्य्याप्तकन सर्व्वनिरंतरक्षुद्रभवसंख्यातत्कालादिगळ्गे परिमाणनिर्णयनिमित्तमागि चतुर्द्धापवर्त्तनं तोरल्पडुगुमदें तेंदोडे—वों दु क्षुद्रभवक्कत्तलानुमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रममक्कु मागळु षट्त्रिंशत्त्रिशतोत्तरषट्षष्टिसहस्र ६६३३६ निरंतरक्षुद्रभवंगळ्गेनितु कालमक्कुमेंदितु संपादिसुत्तिरलु प्र भ १ फ उ १ इ भ ६६३३६ लब्धकालमुच्छ्वासंगळु ३६८५ १ इंदिल्लि-
१८ ३

पर्याप्तके चतुर्विंशतिः २४ । तत्र तु मनुष्ये लब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८, संज्ञिपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८ मिलित्वा पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके चतुर्विंशतिर्भवन्ति ॥१२४॥

अथैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरन्तरक्षुद्रभवसंख्यां स्वामिभेदानाश्रित्य विभजति—

पृथिव्यप्तेजोवायु-साधारणवनस्पतयः पञ्चापि प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदेन दश । तथा प्रत्येकवनस्पतिश्चेत्येषु एकादशसु लब्ध्यपर्याप्तभेदेषु एकैकस्मिन् भेदे प्रत्येकं द्वादशोत्तरषट्सहस्री निरन्तरक्षुद्रभवा भवन्तीति एकादशभिः एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरन्तरक्षुद्रभवेषु ६६१३२ भक्तेषु एकस्य प्रागुक्तं 'बार खं छक्कं' ६०१२ निरन्तरक्षुद्रभवप्रमाणमागच्छति । उक्तसर्वनिरन्तरक्षुद्रभवसंख्यां तत्कालादिप्रमाणं च निर्णेतुं चतुर्धापवर्तनं दर्श्यते । तद्यथा—यद्येकक्षुद्रभवस्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागकालः तदा षट्त्रिंशत्त्रिशतोत्तरषट्षष्टिसहस्र-६६३३६ निरन्तरक्षुद्रभवानां कियन्त उच्छ्वासाः ? इति संपाते सति प्र., भ १ । फ. उ. $\frac{१}{१८}$ । इ, भ ६६३३६

लब्ध्यपर्याप्तकमें चौबीस २४, उनमें भी मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८, और संज्ञी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८ सब मिलकर चौबीस होते हैं । इस प्रकार सब भवोंका ग्रहण करता है ॥१२४॥

आगे एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके निरन्तर क्षुद्रभवोंकी संख्याको स्वामिभेदसे विभाजित करते हैं—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु और साधारण वनस्पति, इन पाँचोंमें-से प्रत्येक बादर और सूक्ष्म होनेसे दस होते हैं । तथा प्रत्येक वनस्पति मिलाकर इन ग्यारह लब्ध्यपर्याप्तकोंमें-से एक-एक भेदमें छह हजार बारह निरन्तर क्षुद्रभव होते हैं । एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके निरन्तर क्षुद्रभव ६६१३२ में ग्यारहसे भाग देनेपर एक एकेन्द्रियके क्षुद्रभवोंका प्रमाण छह हजार बारह होता है । उक्त समस्त निरन्तर क्षुद्रभवसंख्या और उसके काल आदिके प्रमाणका निर्णय करनेके लिए चार प्रकारके अपवर्तनको दिखाते हैं । यदि एक क्षुद्रभवका काल उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग है, तो छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस निरन्तर क्षुद्रभवोंका कितने उच्छ्वास

---

१. म °गळ्गेंटु ।

यंतर्मुहूर्त्तमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

आढ्याऽनल साऽनुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिमितैः ३७७३ आहुर्मुहूर्त्तमन्तर्मुहूर्त्त-मष्टाष्टवर्ज्जितैस्त्रिभागयुतैः ३६८५ १/३ ई यंतर्मुहूर्त्तमेकमुहूर्त्तोच्छ्वासंगळं ३७७३ नोडलें भत्तळ-मुच्छ्वासंगळु मुच्छ्वासद्वित्रिभागंगळिदं न्यूनमेंदरियल्पडुवुवु । 'आयुरंतर्मुहूर्त्तः स्यादेषोऽष्टा-दशांशकः । उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ॥' एंदितो दुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्र-कालक्के वोंदु क्षुद्रभवमागलु इंतुच्छ्वासंगळ्गेनितु क्षुद्रभवंगळप्पुवेंदु संपादिसलु प्र उ १ फ भ १/१८ १ । इ उ ३६८५ १/३ लब्धक्षुद्रभवंगळु ६६३३६ । मत्तमिंतु क्षुद्रभवंगळ्गे प्रमाण ६६३३६ फल-मिनितुच्छ्वासंगळागलु ३६८५ १/३ वोंदु क्षुद्रभवक्केनितु कालमक्कुमेंदु त्रैराशिकमं माडलु लब्धं उ १/१८ मत्तमिंतु कालक्के ३६८५ १/३ इंतु भवंगळागलु ६६३३६ इंतु कालक्के उ १/१८ एंतु भवमेंदु

लब्धोच्छ्वासाः ३६८५१/३ इत्ययमन्तर्मुहूर्तो ग्राह्यः ।

'आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिमितैः ३७७३ ।
आहुर्मुहूर्तमन्तर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः ॥' इति वचनात् ।

'आयुरन्तर्मुहूर्तः स्यादेषोऽस्याष्टादशांशकः ।
उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ॥'

इत्युक्तोच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रस्यैकक्षुद्रभवः, तदा एतावतां उच्छ्वासानां कति क्षुद्रभवाः ? इति संपाते प्र उ १/१८ । फ भ. १ । इ उ ३६८५१/३ लब्धक्षुद्रभवाः ६६३३६ । पुन इयतां क्षुद्रभवानां ६६३३६ यदि इयन्त उच्छ्वासाः ३६८५१/३ तदा एकक्षुद्रभवस्य किमिति त्रैराशिके कृते लब्धैकक्षुद्रभवकालः उ १/१८ । पुनरियतः कालस्य ३६८५१/३ इयन्तो भवाः ६६३३६ तदा इयतः कालस्य उ १/१८ कति भवाः ? इति संपातेन

प्रमाण काल होगा । ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि एक, फलराशि एकका अठारहवाँ भाग १/१८ और इच्छाराशि छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर लब्धराशि तीन हजार छहसौ पिचासी और एक त्रिभाग प्रमाण उच्छ्वास होती है । इतना अन्तर्मुहूर्त काल लेना । क्योंकि कहा है—धनसम्पन्न निरालसी और नीरोगी मनुष्यके तीन हजार सातसौ तिहत्तर उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है । उसमें-से अठासी और एकका तीसरा भाग प्रमाण उच्छ्वासोंको घटानेपर क्षुद्रभवोंका काल अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य-तिर्यंचोंकी आयु एक उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होती है । अतः यदि एक श्वासका अठारहवाँ भाग कालका एक क्षुद्रभव होता है,तो छत्तीस सौ पिचासी और एकके त्रिभाग प्रमाण उच्छ्वासोंके कितने क्षुद्रभव होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि १/१८ उच्छ्वास, फलराशि एक भव और इच्छाराशि ३६८५१/३ उच्छ्वास । भाग देनेपर ६६३३६ भव आते हैं । पुनः इतने ६६३३६ क्षुद्रभवोंके यदि इतने ३६८५१/३ उच्छ्वास,तो एक क्षुद्रभवके कितने ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर

---

१. म यिदनिल्लि ।

संपादिसलु लब्धं भव १ इंतोंदु भवक्कं तत्कालक्कं समस्तभवंगळ्गं तत्कालक्कं क्रमदिंदं प्रमाणराशिकरणदिंदं चतुर्द्धा त्रैराशिकं सर्व्वत्र यथासंभवमरियल्पडुगुं।

अनंतरं समुद्घातकेवलिगे अपर्य्याप्तकत्वसंभवमं पेळ्दपं :—

पज्जत्तसरीरस्स य पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं अपुण्णजोगो त्ति णिद्दिट्ठं ॥१२६॥

पर्य्याप्तशरीरस्य च पर्य्याप्त्युदयस्य काययोगस्य। योगिनोऽपूर्णत्वमपूर्णयोगवदिति निर्दिष्टं।

परिपूर्णपरमौदारिकशरीरनुं पर्याप्तनामकर्म्मोदयमनुळ्ळनुं काययोगमनुळ्ळनुमिंतप्प सयोगकेवलिभट्टारकंगे आरोहणावरोहणकवाटद्वयसमुद्घातदोळु पेळल्पट्टपूर्णत्वमौदारिकमिश्रकाययोगदंतप्पपूर्णकाययोगमेंदु पेळल्पट्टुदद्दु कारणदिंदमामौदारिकमिश्रकाययोगदिंदं आक्रांतनप्प सयोगकेवलिभट्टारकनुं कवाटयुगलकालदोळपर्य्याप्ततेयं भजिसुगुमेंदितु प्रवचनदोळ्पेळल्पट्टं। अनंतरं लब्ध्यपर्य्याप्तकादिगळ्गे गुणस्थानंगळोळु संभवासंभवप्रकारमं पेळ्दपं :—

लद्धियपुण्णो-मिच्छे तत्थ वि बिदिये चउत्थ सट्ठे य।
णिव्वत्तियपज्जत्तो तत्थ वि सेसेसु पज्जत्तो ॥१२७॥

लब्ध्यपूर्णमिथ्यात्वे तत्रापि द्वितीये चतुर्थे षष्ठे च। निर्वृत्यपर्य्याप्तकः तत्रापि शेषेषु च पर्य्याप्तकः।

लब्धभवः १। एवमेकभवस्य तत्कालस्य समस्तभवानां तत्कालानां च क्रमशः प्रमाणराशिकरणात् चतुर्धा त्रैराशिकं सर्वत्र यथासंभवं ज्ञातव्यम् ॥१२५॥

अथ समुद्घातकेवलिनः अपर्याप्तत्वसंभवमाह—

परिपूर्णपरमौदारिकशरीरस्य पर्याप्तनामकर्मोदययुतस्य काययोगयुक्तस्य सयोगकेवलिभट्टारकस्य आरोहणावरोहणकपाटद्वये समुद्भूते कथितमपूर्णत्वं अपूर्णकाययोग इति। ततः कारणादौदारिकमिश्रकाययोगाक्रान्तः सयोगकेवलिभट्टारकः कपाटयुगलकाले अपर्याप्ततां भजतीति प्रवचने निर्दिष्टं—कथितं ॥१२६॥ अथ लब्ध्यपर्याप्तकादीनां गुणस्थानेषु संभवासंभवप्रकारमाह—

एक क्षुद्रभवका काल $\frac{1}{६६३३६}$ उच्छ्वास आता है। पुनः इतने $३६८५\frac{३}{४}$ कालमें इतने ६६३३६ भव तो $\frac{1}{६६}$ उ. कालमें कितने भव? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्ध एक भव आता है। इस प्रकार एक भव और उसके कालको तथा समस्त भवों और उनके कालोंको क्रमसे प्रमाणराशि करनेसे चार प्रकारसे त्रैराशिक किया। इसी प्रकार सर्वत्र यथासम्भव जानना ॥१२५॥

आगे समुद्घात केवलीके अपर्याप्तपना बतलाते हैं—

सयोगकेवली भट्टारकका परम औदारिक शरीर परिपूर्ण है, उनके पर्याप्त नामकर्मका उदय भी है और वे काययोगसे युक्त हैं। फिर भी जब वे कपाट समुद्घात करते हैं, एक समुद्घातका विस्तार करते हुए और एक संकोच करते हुए, तब इन दोनोंमें अपूर्ण काययोगके होनेसे अपूर्णपना कहा है। इस कारणसे औदारिक मिश्रकाययोगसे युक्त सयोगकेवलि भट्टारकके दोनों कपाटोंके कालमें अपर्याप्तपना होता है;ऐसा जिनागममें कहा है ॥१२६॥

विशेषार्थ—इसी गाथाकी मन्द प्रबोधिनी टीकामें कहा है कि सयोग केवलीके समुद्घातकालमें, कपाटयुगलमें, प्रतरयुगलमें और लोकपूरणमें इन पाँच समयोंमें अपर्याप्तपना कैसे सम्भव है? ऐसा प्रश्न होनेपर उत्तर है कि अपूर्णयोग ही अर्थात् औदारिकमिश्र

लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळे संभविसुगुमुळिदंतुपरिमगुणस्थानंगळोळे-ल्लियुमिल्ल। पर्य्याप्तकालदोळे सम्यक्त्वग्रहणसंभवमप्पुदरिंदं लब्ध्यपर्य्याप्तकस्थितिगपर्य्याप्तकाल-दोळ क्षयमप्पुदरिंदं लब्ध्यपर्य्याप्तकालदोळु सम्यक्त्वग्रहणाभावमप्पुदरिंदं सासादनादिगुणस्थानंगळु संभविसमप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळे लब्ध्यपर्य्याप्तकसंभवमे दितु सिद्धं।

मत्तमा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनगुणस्थानदोळमसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तगुण- ५
स्थानदोळं निर्वृत्यपर्य्याप्तजीवसंभवमक्कुमन्यगुणस्थानंगळोळिल्ल। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळम-संयतगुणस्थानदोळं मृतमागि जीवंगळु चतुर्ग्गतिगळोळपुट्टिदवक्कं। सासादनगुणस्थानदोळु मृतमागि नरकगतिवर्ज्जितचतुर्ग्गतिगळोळपुट्टिदवक्कमुत्पन्नप्रथमसमयं मोदल्गो डौदारिक-वैक्रियिकशरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनमन्नेवर-मन्नेवरं तत्तच्छरीरनिर्वृत्तिगभावमप्पुदरिंदं तद्गुण-स्थानंगळोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तजीवंगळ् संभविसुगुं। १०

प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु मत्ताहारकशरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनमन्नेवरमन्नेवरं तच्छरीर-निर्वृत्यभावमप्पुदरिंदं प्रमत्तगुणस्थानदोळं जीववंतनप्पवस्थेयोळं निर्वृत्यपर्य्याप्तकजीवं संभवि-

---

लब्ध्यपर्याप्तकजीवो मिथ्यादृष्टि गुणस्थाने एव संभवति नान्यगुणस्थाने सासादनत्वादिविशेषगुणानां तस्याभावात्। पुनः तत्रापि—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानेऽपि द्वितीये-सासादनगुणस्थाने, चतुर्थे—असंयतगुणस्थाने, षष्ठे—प्रमत्तगुणस्थाने चेति चतुर्षु गुणस्थानेषु अपि निर्वृत्यपर्याप्तकजीवः संभवति, नान्यगुणस्थानेषु। मिथ्यादृष्ट्य- १५
संयतगुणस्थानमृताश्चतुर्गतिषु, सासादनगुणस्थानमृता नरकवर्जितगतिषु चोत्पद्यन्ते, ततस्तद्गुणस्थानत्रये तदुत्पत्तिप्रथमसमयादारभ्य समयोनौदारिकवैक्रियिकशरीरपर्याप्तिकालपर्यन्तं तथा प्रमत्तसंयतस्य समयोनाहारक-

---

और कार्मणकाययोगका सद्भाव ही उनके उपचारसे अपर्याप्तपनेका कारण है, मुख्य रूपसे वे अपर्याप्त नहीं हैं।

आगे लब्ध्यपर्याप्तक आदिके गुणस्थानोंके होने न होनेका कथन करते हैं— २०

लब्ध्यपर्याप्तक जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है, अन्य गुणस्थानमें नहीं होता, क्योंकि उसके सासादनत्व आदि विशेष गुणोंका अभाव है। पुनः तत्रापि अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें भी, तथा दूसरे सासादनगुणस्थानमें, चतुर्थ असंयतगुणस्थानमें, छठे प्रमत्तगुण-स्थानमें, इन चार गुणस्थानोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक जीव होता है। इनके सिवाय अन्य गुणस्थानोंमें नहीं होता। क्योंकि मिथ्यादृष्टि और असंयतगुणस्थानमें मरे जीव चारों गतियोंमें और २५
सासादन गुणस्थानमें मरे जीव नरकगतिके सिवाय शेष तीन गतियोंमें उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन तीन गुणस्थानोंमें जन्मके प्रथम समयसे लेकर एक समय कम औदारिक और वैक्रियिक शरीरकी शरीरपर्याप्तिके काल पर्यन्त, तथा प्रमत्तसंयतके एक समय कम आहारकशरीर पर्याप्तिके काल पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तकपना सम्भव है। पुनः तत्रापि अर्थात् उक्त चारों गुण-स्थानोंमें भी और शेष मिश्र, देश संयत, तथा अप्रमत्तसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त गुणस्थानों- ३०
में पर्याप्तक जीव होता है, क्योंकि उसका कारण पर्याप्तिनामकर्मका उदय इन सब गुणस्थानोंमें होता है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्मिथ्यात्वका उदय, दर्शनमोहका उपशम, देश-संयम और सकल संयम नहीं होता। तथा निर्वृत्यपर्याप्तकालमें सम्यक्मिथ्यात्वका उदय देशसंयम आदि नहीं होते। प्रश्न हो सकता है कि तब निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें प्रमत्तसंयम ३५

सुगुमेंदितु गुणस्थानचतुष्टयदोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तकनियममं पेळल्पट्टुदी गुणस्थानचतुष्टयदोळं शेषमिश्रगुणस्थानदोळं देशसंयतगुणस्थानदोळमप्रमत्तादि सयोगकेवलिपर्य्यंतमिर्द्द गुणस्थानंगळोळु पर्याप्तजीवसंभवमक्कुमेकेंदोडे तत्कारणभूतपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयक्के सर्व्वत्र सद्भावमप्पुदरिंदं।

अनंतरमपर्य्याप्तकालदोळु सासादनंगमसंयतंगं नियमिंदमुत्पत्त्यभावस्थानंगळं पेळ्दपं।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारया पुण्णे ॥१२८॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां ज्योतिर्व्यंतरभावनसर्व्वस्त्रीणां। पूर्णेतरेषु नास्ति सम्यग्दृष्टिर्न सासादनो नारकापूर्ण ॥ नरकगतियोळु रत्नप्रभेयोळपुट्टिदरं बिट्टुळिदधस्तनषड्भूमिजरप्प नारकरुगळ ज्योतिर्व्यंतरभावनदेवरुगळ सर्व्वतिर्य्यग्मनुष्यर देवगतिसंबंधिगळप्प स्त्रीयर निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु सम्यक्त्वग्रहणायोग्यकालमप्पुदरिंदमुं सम्यक्त्वपूर्वकं मरणमादितिर्य्यग्मानुषरुं देवनारकरुं यथायोग्यमागि शर्कराप्रभादिषड्भूमिजरप्प निर्वृत्यपर्य्याप्तकरुं भवनत्रयनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुं सर्व्वतिर्य्यग्मनुष्यदेवस्त्रीयरप्प निर्वृत्यपर्य्याप्तकरागि पुट्टरु। देवनारकतिर्य्यग्मनुष्यस्त्रीयरप्प निर्वृत्यपर्य्याप्तकरागि पुट्टुवरु मा येडेगळोळपुट्टुवडं विराधितसम्यक्त्वरुमप्प मिथ्या-

---

शरीरपर्याप्तिकालपर्यन्तं च निर्वृत्त्यपर्याप्तकत्वसंभवात्। पुनस्तत्रापि—उक्तगुणस्थानचतुष्टयेऽपि शेषेषु मिश्रदेशसंयताप्रमत्तादिसयोगकेवलिपर्यन्तगुणस्थानेषु च पर्याप्तकजीवः संभवति तत्कारणस्य पर्याप्तिनामकर्मोदयस्य तत्र सर्वत्र संभवात् ॥१२७॥ अथापर्याप्तकाले सासादनासंयतयोर्नियमेन अभावस्थानान्याह—

नरकगतौ रत्नप्रभारहितशेषषड्भूमिनारकाणां ज्योतिर्व्यन्तरभावनदेवानां सर्वतिर्यग्मनुष्यदेवस्त्रीणां च निर्वृत्यपर्याप्तके सम्यग्दृष्टिर्नहि नास्त्येव, तदा तद्ग्रहणयोग्यकालाभावात् सम्यक्त्वेन सह मृतस्य तिर्यग्मनुष्यस्य तत्रोत्पत्त्यभावाच्च। मरणे विराधितसम्यक्त्वमिथ्यादृष्टिसासादनानां यथासंभवं तत्रोत्पत्तौ विरोधाभावात्।

कैसे होता है? इसका उत्तर यह है कि आहारक शरीरके प्रारम्भ समयसे लेकर उसकी निर्वृत्यपर्याप्ति और पर्याप्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ही सम्भव है, यह बात परमागममें प्रसिद्ध है। ऋद्धिप्राप्त भी मुनि अप्रमत्त आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें अपनी ऋद्धिका प्रयोग नहीं करते ॥१२७॥

आगे अपर्याप्तकालमें सासादन और असंयतगुणस्थानका जहाँ नियमसे अभाव होता है, उन्हें कहते हैं—

नरकगतिमें रत्नप्रभाके विना शेष छह भूमिके नारकियोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें, समस्त तिर्यंच मनुष्य और देवगति सम्बन्धी स्त्रियोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्योंकि उस अवस्थामें सम्यक्त्वके ग्रहण योग्य काल नहीं है। तथा सम्यक्त्वके साथ मरे तिर्यंच और मनुष्य वहाँ उत्पन्न नहीं होते। मरनेसे पूर्व सम्यक्त्वकी विराधना करके मिथ्यादृष्टि या सासादन होनेवाले यथासम्भव वहाँ उत्पन्न होते हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है। तथा सातों पृथिवियोंके नारकियोंके निवृत्यपर्याप्तकोंमें

---

१. म °योलु बि°।

दृष्टिगळुं सासादनरुमागमाविरोधमेंतप्पुदंते पुट्टुवडं । सासादनसम्यग्दृष्टिगळु नरकमं पुगरप्पुदरिंदं समस्तनरकभूमिजरप्प नारकापूर्णरोळु सासादनरिल्ल ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह - सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति - श्रीमदभयसूरि-सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं - श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु तृतीयपर्य्याप्तिप्ररूपणाधिकारं प्रतिपादितमाय्तु ।

सप्तपृथ्वीनारकनिर्वृत्यपर्याप्तके सासादनसम्यग्दृष्टिर्नास्ति तस्य नरके गमनाभावात् । तत्रोत्पन्नस्य तु तस्मिन् काले सासादनत्वसंभवाभावाच्च ॥१२८॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु पर्याप्तिप्ररूपणानाम तृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

सासादनगुणस्थान नहीं होता। क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें नहीं जाता। और वहाँ उत्पन्न हुए जीवके उस समय सासादनपना होना सम्भव नहीं है ॥१२८॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से पर्याप्ति प्ररूपणा नामक तृतीय महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

अथ प्राणप्ररूपणाधिकारः ॥४॥

श्रीवीतरागाय नमः । अनंतरं प्राणप्ररूपणनिरूपणनिमित्तं पेळ्दपरु ।

बाहिरपाणेहि जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहिं ।
पाणंति जेहि जीवा पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ॥१२९॥

बाह्यप्राणैर्यथा तथैवाभ्यंतरैः प्राणैः प्राणंति यैर्जीवाः प्राणास्ते भवंति निर्दिष्टाः । आवुवु-केलवभ्यंतरभावप्राणंगळिंदं जीवंगळु जीविसुत्तिर्प्पुवु जीविसुव व्यवहारयोग्यंगळप्पुवु । बाह्यप्राणंग-ळिंदेंतेया जीवधर्मंगळ् प्राणंगळप्पुवेंदितु पेळल्पट्टुवु । यैरभ्यंतरैर्भावप्राणैर्जीवाः प्राणंति जीवंति जीवद्व्यवहारयोग्या भवंति कैरिव बाह्यैर्द्रव्यप्राणैरिव यथाशब्दस्य इवार्थवाचकत्वात् त आत्मनो धर्म्माः प्राणा भवंतीति निर्दिष्टाः ।

एंदीनिर्वचनदिंदमे प्राणशब्दार्थमरियल्के शक्यमेंदितु तल्लक्षणं पृथक्पेळल्पट्टुदिल्ल । पौद्गलिकद्रव्येंद्रियव्यापाररूपंगळु द्रव्यप्राणंगळु तन्निमित्तकंगळप्प ज्ञानावरण वीर्य्यांतरायक्षयो-

---

त्रिषष्टिं प्रकृतीर्हत्वा लब्ध्वार्हन्त्यं जगन्नुतम् ।
शास्ति भव्यान् द्विधा धर्मं यस्तं वन्देऽभिनन्दनम् ॥४॥

अथ प्राणप्ररूपणां निरूपयति—

यैरभ्यन्तरैर्भावप्राणैः जीवाः जीवन्ती—जीवद्व्यवहारयोग्या भवन्ति । कैरिव ? बाह्यैर्द्रव्यप्राणैरिव यथाशब्दस्य इवार्थवाचकत्वात् । ते आत्मनो धर्माः प्राणाः भवन्तीति निर्दिष्टाः । इति निर्वचनेनैव प्राणशब्दार्थस्य ज्ञातुं शक्यत्वात् तल्लक्षणं पृथग् नोक्तम् । पौद्गलिकद्रव्येन्द्रियादिव्यापाररूपाः द्रव्यप्राणाः । तन्निमित्तभूत-ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमादिविजृम्भितचेतनव्यापाररूपा भावप्राणाः । अत्र पर्याप्तिप्राणयोः को भेदः ? इति चेदुच्यते—पञ्चेन्द्रियावरणक्षयोपशमजाः पञ्चेन्द्रियप्राणाः तदुत्पन्नार्थग्रहणसमर्थत्वेनोत्पन्नप्रथमसमयादारभ्य

जो कर्मोंकी त्रेसठ प्रकृतियोंको नष्ट करके और जगत्के द्वारा वन्दनीय आर्हन्त्य पदको प्राप्त करके श्रावक और मुनिधर्मका उपदेश भव्यजीवोंको देते हैं, उन अभिनन्दननाथ भगवान्को नमस्कार करता हूँ ।

आगे प्राणप्ररूपणाको कहते हैं—

बाह्य अर्थात् द्रव्य प्राणोंकी तरह जिन अभ्यन्तर अर्थात् भावप्राणोंसे जीव 'प्राणन्ति' अर्थात् जीवनव्यवहारके योग्य होते हैं आत्माके वे धर्म प्राण कहे जाते हैं । इस व्युत्पत्तिसे ही प्राण शब्दका अर्थ जानना शक्य होनेसे उसका लक्षण अलगसे नहीं कहा है । पौद्गलिक द्रव्येन्द्रिय आदिके व्यापाररूप द्रव्यप्राण होते हैं । और उनमें निमित्तभूत ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशम आदिसे प्रकट हुए चेतनके व्यापाररूप भावप्राण होते हैं ।

शंका—पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है ?

समाधान—पाँच इन्द्रियसम्बन्धी आवरणोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए पाँच इन्द्रियप्राण होते हैं । और उस क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई अर्थको ग्रहण करनेकी सामर्थ्यके साथ उत्पन्न

पशमादिर्गळिंदं विजृंभिसल्पट्ट चेतनव्यापाररूपंगळ्ु भावप्राणंगळ्ु। इल्लि पर्य्याप्ति-प्राणंगळ्गे भेदमे तेंदोडे पंचेंद्रियावरणक्षयोपशमजंगळ्ु पंचेंद्रियप्राणंगळ्ु तदुत्पन्नार्थग्रहणक्षमतेयिंदमुत्पन्न प्रथमसमयं मोदल्गोंडंतर्मुहूर्त्तदिंदं मेलप्पुदिंद्रियपर्य्याप्तियें बुदु। मनोज्ञानावरणक्षयोपशमसन्निधानदिंदं विजृंभिसल्पट्ट मनोवर्गणेगळिंदं विरचिसल्पडुवद्रव्यमनदिंदं समुत्पन्नजीवशक्तियदनुभूतार्थग्रहणकारणमुत्पन्नांतर्म्मुहूर्त्तावसाननिष्पन्नमप्पुदुमनःपर्य्याप्तियें बुदु। ५

अनुभूतार्थग्रहणमुं तद्योग्यतेयुं मनःप्राणमें बुदु। नोकर्म्मशरीरोपचयमानशक्तिनिष्पत्तियदु जीवक्के समुचितकालायातभाषावर्गणाविशेषपरिणतिविधायि भाषापर्य्याप्तियें बुदु। स्वरनामकर्म्मोदयसहकारिणियप्प भाषापर्य्याप्तियोळुत्तरकालविशिष्टोपयोगप्रयोजनात्मकं वाक्प्राणमें बुदक्कु। कायवर्गणावष्टंभजनितात्मप्रदेशप्रचयशक्तिकायबलप्राणमें बुदक्कुं। नोकर्म्मपुद्गलंगळनु खलरसभागपरिणतंगळनस्थ्यादिरुधिरादिस्थिरास्थिरावयवरूपदिंदं परिणामियिसल्के शक्तिनिष्पत्ति जीवक्के शरीरपर्य्याप्तियें बुदक्कु—। १०

मुच्छ्वासनिःश्वासनिःसरणशक्तिनिष्पत्तियानापानपर्य्याप्ति एंबुदक्कुं तत्परिणतिये तत्प्राणमें बुदक्कु मदु कारणमागि भेदमुंटु।

अनंतरं प्राणविकल्पंगळं पेळ्दपं :—

अन्तर्मुहूर्तस्योपरि जायमाना इन्द्रियपर्याप्तिः। मनोज्ञानावरणक्षयोपशमसन्निधानविजृम्भितामनोवर्गणाविरचितद्रव्यमनः समुत्पन्ना जीवशक्तिः सानुभूतार्थग्रहणसमुत्पन्नान्तर्मुहूर्तावसाननिष्पन्ना मनःपर्याप्तिः। अनुभूतार्थग्रहणं तद्योग्यता च मनःप्राणः। नोकर्मशरीरोपचीयमानशक्तिनिष्पत्तिः सा जीवस्य समुचितकालायातभाषावर्गणाविशेषपरिणतिविधायिभाषापर्याप्तिः। स्वरनामकर्मोदयसहकारिभाषापर्याप्त्युत्तरकालविशिष्टोपयोगप्रयोजनात्मको वाक्प्राणः। कायवर्गणावष्टम्भजनितात्मप्रदेशप्रचयशक्तिः कायबलप्राणः। नोकर्मपुद्गलान् खलरसभागपरिणतान् अस्थ्यादिरुधिरादिस्थिरास्थिरावयवरूपेण परिणमयितुं शक्तिनिष्पत्तिर्जीवस्य शरीरपर्याप्तिः। उच्छ्वासनिःश्वासनिःसरणशक्तिनिष्पत्तिरानपानपर्याप्तिः। तत्परिणतिरेव तत्प्राणाः, इति भेदो ज्ञातव्यः ॥१२९॥ अथ प्राणभेदानाह—

होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तके ऊपर होनेवाली इन्द्रियपर्याप्ति है। मनोज्ञानावरणके क्षयोपशमके सामीप्यसे प्रकट हुई और मनोवर्गणासे बने द्रव्यमनसे उत्पन्न हुई जीवकी जो शक्ति अनुभूत अर्थका ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हो अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तमें पूर्ण होती है वह मनःपर्याप्ति है। और अनुभूत अर्थको ग्रहण करना तथा उसकी योग्यता मनःप्राण है। नोकर्म शरीरसे संचित शक्तिकी पूर्णता जो जीवके समुचित कालमें आयी भाषावर्गणाके विशेष परिणमनको करनेवाली है वह भाषापर्याप्ति है। स्वरनामकर्मका उदय जिसका सहायक है उस भाषापर्याप्तिके उत्तरकालमें विशिष्ट उपयोगका प्रयोजक वचन प्राण है। कायवर्गणाके साहाय्यसे होनेवाली आत्मप्रदेशके समूहकी शक्ति कायबलप्राण है। और खल तथा रसभाग रूपसे परिणत नोकर्म पुद्गलोंको अस्थि आदि स्थिर और रुधिर आदि अस्थिर अवयवोंके रूपसे परिणमन करनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। उच्छ्वास-निःश्वासके निकलनेकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं और श्वासोच्छ्वासका परिणमन श्वासोच्छ्वास प्राण है। यह पर्याप्ति और प्राणमें भेद जानना ॥१२९॥

आगे प्राणोंके भेद कहते हैं—

---

१. ब °लाया स°।

पंचेविंदियपाणा मणवचिकायेसु तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दसपाणा ॥१३०॥

पंचैवेंद्रियप्राणा मनोवचःकायेषु त्रयो बलप्राणाः । आनापानप्राणा आयुष्प्राणेन भवंति दशप्राणाः ।

स्पर्शनादियादैंदिंद्रियप्राणंगळुं मनोबलप्राणमुं वचोबलप्राणमुं कायबलप्राणमुमानापानप्राणमु आयुः प्राणमेंदितु दशप्राणंगळेयप्पवधिकमल्तु ।

अनंतरं द्रव्यभावप्राणंगळ्गुत्पत्तिसामग्रियं पेळ्दपं ।

वीरियजुदमदिखओवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला ।
देहुदये कायाणा वचीबला आउ आऊदए ॥१३१॥

वीर्य्ययुत मतिक्षयोपशमोत्था नोइंद्रियेंद्रियेषु बलाः । देहोदये कायाः नौ वचोबला आयुः आयुरुदये ॥

वीर्यांतरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनित नोइंद्रियेंद्रियस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रसमुद्भूतंगळिंद्रियप्राणंगळु । नोंद्रियजनितमनोबलप्राणमुं शरीरनामकर्म्मोदयदोळु कायबलप्राणमुमानापानाप्राणमुमप्पुवु । शरीरनामकर्म्मोदयदोळं स्वरनामकर्म्मोदयदोळं वचोबलप्राणं प्रादुर्भूतमप्पुदायुष्कर्मोदयदोळायुःप्राणमुद्भविसुगुमितु प्राणंगळुत्पत्तिसामग्रि सूचितमाय्तु ।

अनंतरं प्राणंगळ्गे स्वामिभेदमं पेळ्दपं ।

स्पर्शनादयः पञ्चेन्द्रियप्राणाः मनोबलप्राणः वचोबलप्राणः आनापानप्राण आयुःप्राणश्चेति दशैव प्राणा भवन्ति नाधिकाः ॥१३०॥ अथ द्रव्यभावप्राणानामुत्पत्तिसामग्रीमाह—

वीर्यान्तरायक्षयोपशमयुतमतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनिताः नोइन्द्रियेन्द्रियेषु बलाः स्वार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिनामभावेन्द्रियस्वभावाः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रजेन्द्रियप्राणनोइन्द्रियजमनोबलप्राणाः षट् भवन्ति । देहोदये—शरीरनामकर्मोदये सति कायचेष्टाजननशक्तिरूपः कायबलप्राणः । उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयसहितदेहोदये सति उच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिकारणशक्तिरूपः आनापानप्राणश्च भवति । स्वरनामकर्मोदये सति वचनव्यापारकरणशक्तिविशेषरूपो वचोबलप्राणो भवति । आयुःकर्मोदये सति नारकादिपर्यायरूपभवधारणशक्तिरूपः आयुःप्राणो भवति । एवं दशप्राणानामुत्पत्तिसामग्री सूचिता ॥१३१॥ अथ प्राणानां स्वामिभेदमाह—

स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रिय प्राण हैं । तथा मनोबलप्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुप्राण ये दस ही प्राण हैं; अधिक नहीं हैं ॥१३०॥

स्वार्थको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप लब्धि नामक भावेन्द्रिय स्वभाववाले स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रसे उत्पन्न हुए पाँच इन्द्रियप्राण और नोइन्द्रियसे उत्पन्न मनोबलप्राण ये छह प्राण तो वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे सहित मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं । शरीरनामकर्मका उदय होनेपर शरीरकी चेष्टाको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप कायबलप्राण होता है । उच्छ्वासनिश्वास नामकर्मके उदयके साथ शरीर नामकर्मका उदय होनेपर उच्छ्वासनिश्वासकी प्रवृत्तिका कारण शक्तिरूप श्वासोच्छ्वासप्राण होता है । स्वरनामकर्मका उदय होनेपर वचनव्यापारका कारण शक्ति विशेषरूप वचनबलप्राण होता है । आयुकर्मका उदय होनेपर नारकादिपर्यायरूप भवधारणकी शक्तिरूप आयुप्राण होता है । इस तरह दस प्राणोंकी उत्पत्तिकी सामग्री सूचित की ॥१३१॥

अब प्राणोंके स्वामी बतलाते हैं—

इंदियकायाऊणि य पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
वीइंदियादिपुण्णे वचीमणोसण्णिपुण्णेव ॥१३२॥

इंद्रियकायायूंषि च पूर्णापूर्णेषु पूर्णके आनाः । द्वींद्रियादिषु पूर्णे वाक्मनःसंज्ञिपूर्णे एव ।

इंद्रियकायायुष्प्राणंगळु पर्य्याप्तकरोळमपर्य्याप्तकरोळमप्पुवु साधारणप्राणंगळुच्छ्वास-निःश्वासप्राणं पर्य्याप्तकरोळेयक्कुं मेकें दोडे तत्कारणमप्पुच्छ्वासनामकर्म्मोदयक्कं पर्य्याप्तकालदोळे संभवमप्पुदरिंदं । द्वींद्रियादिगळोळु पंचेंद्रियावसानमादवरोळु पर्य्याप्तरोळे बाग्बलप्राणं संभविसुगुमेकें दोडे तद्धेतु स्वरनामकर्मोदयक्कं पर्य्यातकरोळमल्लदेडपर्य्याप्तकरोळ् संभवमल्लप्पुदरिंदं । पर्याप्तकसंज्ञिपंचेंद्रियंगळोळे मनोबलप्राणमक्कुं तन्निबंधनमप्प वीर्य्यांतराय नोइंद्रियावरणक्षयोपशमक्कन्यत्रासंभवमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं दशप्राणंगळ्गेकेंद्रियादि जीवंगळोळु संख्यावधारणनियममं माडल्वेडि मुंदण गाथा सूत्रमं पेळ्दपरु :—

दससण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वेऊणा ।
पज्जत्तेसिदरेसु य सत्तदुगे सेसगेगूणा ॥१३३॥

दश संज्ञिनां प्राणाः शेषेष्वेकोनाः चरमस्य द्विहीनाः पर्य्याप्तकेष्वितरेषु च सप्त द्विके शेषकेष्वेकोनाः ।

परगे पेळ्व स्वामि निर्मदिंदं ई विभागं पडेयल्पडुगुमदें तेंदोडे:—संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरोळु दशप्राणंगळुमप्पुवु॥ शेषासंज्ञिमोदलागि पश्चादनुपूर्व्वियिंदं द्वींद्रियावसानमादवरोळु पर्य्याप्तकरोळु एकैकप्राणोनंगळु संभविसुगुमंतिममप्पेकेंद्रियदोळु द्विप्राणोन प्राणंगळप्पुवुवदें तेंदोडे असंज्ञिगळोळु मनोविरहितमागि नवप्राणंगळप्पुवु । चतुरिंद्रियगळोळु मनःश्रोत्रेंद्रियावशेषंगळें दु संभविसुववु ।

इन्द्रियकायायूंषीति त्रयः प्राणाः पर्याप्तेष्वपर्याप्तेषु च साधारणा भवन्ति । उच्छ्वासनिश्वासप्राणः पर्याप्तकेष्वेव भवति तत्कारणोच्छ्वासनामकर्मोदयस्य पर्याप्तकाल एव संभवात् । द्वीन्द्रियादिषु पञ्चेन्द्रियावसानेषु पर्याप्तेष्वेव वाग्बलप्राणः संभवति तद्धेतुस्वरनामकर्मोदयस्यान्यत्र संभवाभावात् । मनोबलप्राणः पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव संभवति तन्निबन्धनवीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमस्यान्यत्रासंभवात् ॥१३२॥
अथ प्राणानामेकेन्द्रियादिजीवेषु संख्यानियममवधारयति—

समनन्तरोक्तस्वामिनियमेनायं विभागो लभ्यते तद्यथा—संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तकेषु दश प्राणा भवन्ति । शेषेषु असंज्ञ्यादिषु पश्चादानुपूर्व्या द्वीन्द्रियावसानेषु पर्याप्तकेषु एकैकोनाः प्राणा भवन्ति । तथाहि—

इन्द्रिय, काय और आयु ये तीन प्राण पर्याप्तों और अपर्याप्तोंमें समान रूपसे होते हैं। उच्छ्वासनिश्वास प्राण पर्याप्तकोंमें ही होता है। क्योंकि उसका कारण जो उच्छ्वासनामकर्मका उदय है, वह पर्याप्तकालमें ही होता है। दोइन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रियपर्यन्त पर्याप्तोंमें ही वचनबलप्राण होता है, क्योंकि उसका कारण स्वरनामकर्मका उदय है और वह पर्याप्तोंमें ही होता है। मनोबलप्राण पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें ही होता है क्योंकि उसका कारण है नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम, और वह अन्य किसीके नहीं होता ॥१३२॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें प्राणोंकी संख्याका नियम करते हैं—

इससे पहलेकी गाथामें जो स्वामीका नियम किया है उसीसे आगे कहा-भेद प्रकट होता है। जो इस प्रकार है—संज्ञीपंचेन्द्रियोंमें दस प्राण होते हैं। शेष असंज्ञीसे लेकर पश्चात्

त्रींद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुरिंद्रियावशेषंगळेळु प्राणंगळप्पुवु। द्वींद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुघ्राणावशेषंगळारु प्राणंगळप्पुवु। एकेंद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनवाग्बलप्राणावशेषंगळ् नाल्कु प्राणंगळप्पुवु। इंतु पर्य्याप्तकरोळु प्राणंगळगे स्वामिभेदमप्पुदरिंदं संख्याभेदं पेळल्पट्टुदु। पर्य्याप्तेतररप्प अपर्य्याप्तरोळु संज्ञिअसंज्ञिपंचेंद्रियरोळु प्रत्येकमेलेळु प्राणंगळप्पुवेकेंदोडे पर्य्याप्तकाल संभविगळप्पुच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणंगळ्गिंतु मिल्लियसंभवमप्पुदु कारणमागि शेषंगळोळु चतुरिंद्रियादि एकेंद्रियावसानमादऽपर्य्याप्तकरोळु यथासंख्यं श्रोत्रचक्षुघ्राणरसनेंद्रियप्राणावशेष प्राणंगळु षट्पंचचतुस्त्रिसंख्याक्रांतप्राणंगळप्पुवु।

इंतु भगवदर्हरमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यं महावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्ट श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्व प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु चतुर्त्थं प्राणप्ररूपणाधिकारं निगदितमाय्तु।

असंज्ञिषु मनोरहिता नव। चतुरिन्द्रियेषु मनःश्रोत्रेन्द्रियावशेषा अष्टौ। त्रीन्द्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुरिन्द्रियावशेषाः सप्त। द्वीन्द्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणावशेषाः षड् भवन्ति। अन्तिमे एकेन्द्रिये द्वीन्द्रियोक्तप्राणेषु द्वौ ऊनाविति मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनवाग्बलप्राणावशेषाश्चत्वारः प्राणा भवन्ति। तथा इतरेषु अपर्याप्तजीवेषु तु संज्ञासंज्ञिपञ्चेन्द्रिययोः प्रत्येकं प्राणाः सप्तैव भवन्ति पर्याप्तकालसंभविनां उच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणानामत्रासंभवात्। शेषेषु चतुरिन्द्रियाद्येकेन्द्रियावसानेषु अपर्याप्तेषु यथासंख्यं श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनेन्द्रियावशेषाः षट्पञ्चचतुस्त्रिसंख्या प्राणा भवन्ति ॥ १३३ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु प्राणप्ररूपणानाम चतुर्थोऽधिकारः ॥४॥

आनुपूर्वीसे दोइन्द्रिय पर्यन्त पर्याप्तकोंमें एक-एक प्राण घटता है। असंज्ञीपंचेन्द्रियोंमें मनके बिना नौ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रियोंमें मन और श्रोत्रेन्द्रियको छोड़कर शेष आठ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रियोंमें मन, श्रोत्र और चक्षुके सिवाय शेष सात प्राण होते हैं। दोइन्द्रियोंमें मन, श्रोत्र, चक्षु और घ्राणके सिवाय शेष छह प्राण होते हैं। अन्तिम एकेन्द्रियमें दोइन्द्रियमें कहे गये प्राणोंमें-से दो कम होते हैं। इस तरह मन, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और वचनबलप्राणोंमें से शेष चार प्राण ही होते हैं। इतर अपर्याप्त जीवोंमें संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें-से प्रत्येकके सात प्राण ही होते हैं। क्योंकि पर्याप्तकालमें होनेवाले उच्छ्वास, वचनबल और मनोबल प्राण यहाँ नहीं होते। शेष चौइन्द्रियसे लेकर एकेन्द्रिय पर्यन्त अपर्याप्तोंमें क्रमसे श्रोत्र, चक्षु, घ्राण और रसनेन्द्रियको छोड़कर छह, पाँच, चार और तीन प्राण होते हैं ॥१३३॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से प्राण प्ररूपणा नामक चतुर्थ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

संज्ञाप्ररूपणाधिकारः ॥५॥

अनंतरं संज्ञाप्ररूपणार्थमागि पेळ्दपं ।

इह जाहि बाहियावि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंतावि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥१३४॥

इह याभिर्बाधिता अपि च जीवाः प्राप्नुवंति दारुणं दुःखं । सेवमाना अपि च उभये ताश्चतस्रः संज्ञाः ।

आवु केलवु संज्ञेगळिदमाहारभयमैथुनपरिग्रहंगळ वांछेगळिवमे बाधिसल्पट्ट जीवंगळी भवदोळु दारुणमप्पदुःखमनेय्दुवरा विषयंगळननुभविसुववर्गळु मत्ता विषयंगळु प्राप्ताप्राप्तंगळादोडमुभयभवंगळोळं दारुणदुःखमनेय्दुवरंतप्प आनात्कु वांछेगळुं संज्ञेगळे वु पेळ्दपरु ।

अनंतरमाहारसंज्ञेगुत्पत्तियोळु बहिरंतरंगकारणद्वयमं पेळ्दपरु ।

आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोट्ठाए ।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु ॥१३५॥

आहारदर्शनेन च तस्योपयोगेनावमकोष्ठतया । सातेतरोदीरणया भवति खल्वाहारसंज्ञा खलु ।

विशिष्टान्नादिचतुर्व्विधाहारदर्शनदिंदं तत्कथाश्रवण प्रागुपयुक्तविशिष्टान्नादिस्मरणदिंदमुं रिक्तकोष्ठतेयिंदमुमे बी बाह्यकारणंगळिंदमु मंतरंगकारणमप्प असातावेदोदीरणेयिंदं तीव्रोदयदिंद-

---

जितरजोरहस्यारिः प्राप्तानन्तगुणो जिनः ।
जितदोषो जगन्नाथः सुमतीशो नमस्यते ॥ ५ ॥

अथ संज्ञाप्ररूपणां प्ररूपयति—

याभिः संज्ञाभिः—आहारभयमैथुनपरिग्रहवाञ्छाभिः, एव बाधिता जीवा अस्मिन् भवे तद्विषयान् सेवमानाः अपि च तत्प्राप्त्यप्राप्त्योः सत्योः उभयभवयोर्दारुणं दुःखं प्राप्नुवन्ति ताः चतस्रो वाञ्छाः संज्ञा इति वदन्ति ॥१३४॥ अथाहारसंज्ञोत्पत्तौ बहिरन्तरंगहेतू कथयति—

विशिष्टान्नादिचतुर्विधाहारदर्शनेन तत्स्मरणकथाश्रवणाद्युपयोगेन रिक्तकोष्ठतयेति बाह्यकारणैः

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मको जीतकर अनन्तगुणोंको प्राप्त करनेवाले दोषविजेता जगत्के स्वामी सुमतिनाथको नमस्कार करता हूँ ।

आगे संज्ञाप्ररूपणाको कहते हैं—

आहार, भय, मैथुन और परिग्रहकी वांछारूप जिन संज्ञाओंके द्वारा पीड़ित जीव इस भवमें उन विषयोंका सेवन करते हुए भी इस लोक और परलोकमें उनके प्राप्त होने और न होनेपर भी दारुण दुःख पाते हैं, उन चार वांछाओंको संज्ञा कहते हैं ॥१३४॥

आगे आहारसंज्ञाकी उत्पत्तिमें बाह्य और अन्तरंग कारण कहते हैं—

विशिष्ट अन्न आदि चार प्रकारके आहारके देखनेसे, उसके स्मरण, उसकी कथाका

माहारसंज्ञे पुट्टुगु-। "माहारे विशिष्टान्नादौ संज्ञा वांछा आहारसंज्ञा" एंदितु ई निरुक्तियिंद मेतल्लक्षणं पेळल्पट्टुदु ।

अनंतरं भयसंज्ञोत्पत्तिकारणमं पेळ्दपं ।

अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्ताए ।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहि ॥१३६॥

अतिभीमदर्शनेन च तस्योपयोगेनावमशक्त्या । भयकर्म्मोदीरणया भयसंज्ञा जायते चतुर्भिः ।

बहिरंगकारणंगळप्पतिभयंकरव्याघ्रादिक्रूरमृगादिगळ दर्शनदिंदं तत्कथाश्रवणस्मरणादिगळिंदं रिक्तशक्ततयिंदमुमंतरंगकारणमप्प भयनोकषायतीव्रोदयदिंदमिंती चतुर्विधकारणंगळिंदं भयसंज्ञे पुट्टुगुं । भयदिंदं पुट्टुव पलायनेच्छे भयसंज्ञे एंबुदक्कुं ।

अनंतरं मैथुनसंज्ञासामग्रियं सूचिसिदपं ।

पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥१३७॥

प्रणीतरसभोजनेन च तस्योपयोगेन कुशीलसेवया । वेदस्योदीरणया मैथुनसंज्ञा भवति एवं ।

वृष्यरसंगळ भोजनदिंदमुं कामकथाश्रवणानुभूतकामविषयस्मरणाद्युपयोगदिंदं कुशीलरूप्प विटकंदर्प्पादिजनसेवे गोष्टियिंदमुमिंतीं बहिरंगकारणंगळिंदमुमंतरंगकारणमप्प स्त्रीपुन्नपुंसक-

---

असातवेदनीयोदीरणात्तीव्रोदयाभ्यां अन्तरङ्गकारणाभ्यां च आहारसंज्ञा भवति-जायते । आहारे-विशिष्टान्नादौ संज्ञा-वाञ्छा आहारसंज्ञा ॥ १३५ ॥ अथ भयसंज्ञोत्पत्तिकारणमाह-

अतिभयंकरव्याघ्रादिक्रूरमृगादिदर्शनेन तत्कथाश्रवणस्मरणाद्युपयोगेन रिक्तशक्तितया चेति बहिरङ्गकारणैः भयनोकषायतीव्रोदयेन अन्तरङ्गकारणेन च भयसंज्ञा जायते । भयेन उत्पन्ना पलायनेच्छा भयसंज्ञा ॥१३६॥ अथ मैथुनसंज्ञासामग्रीं सूचयति-

वृष्यरसभोजनेन कामकथाश्रवणानुभूतकामविषयस्मरणाद्युपयोगेन कुशीलविटकंदर्पादिजनसेवागोष्ठ्येति बहिरङ्गकारणैः स्त्रीपुंनपुंसकवेदान्यतमनोकषायोदीरणयेत्यन्तरङ्गकारणेन च मैथुनसंज्ञा जायते । मैथुने—

श्रवण आदिरूप उपयोगसे तथा पेटके खाली होनेसे इन बाह्य कारणोंसे और असातावेदनीयकी उदीरणा या तीव्र उदयरूप अन्तरंग कारणोंसे आहारसंज्ञा होती है। आहार अर्थात् विशिष्ट अन्न आदिमें संज्ञा अर्थात् वांछाको आहारसंज्ञा कहते हैं ॥१३५॥

आगे भयसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारण कहते हैं—

अति भयंकर व्याघ्र आदि या क्रूर मृगादिके देखनेसे, उसकी कथा सुनना, उनका स्मरण करना इत्यादि उपयोगसे और शक्तिकी कमी इन बाह्य कारणोंसे और भय नामक नोकषायके तीव्र उदयरूप अन्तरंग कारणसे भयसंज्ञा उत्पन्न होती है। भयसे उत्पन्न हुई भागनेकी इच्छाको भयसंज्ञा कहते हैं ॥१३६॥

आगे मैथुनसंज्ञाकी सामग्री कहते हैं—

कामोत्पादक पौष्टिक भोजन करनेसे, कामकथाका सुनना, अनुभूत काम विषयका स्मरण आदि उपयोगसे, दुराचारी वेश्यागामी कामी पुरुषोंकी संगति गोष्ठीसे, इन बाह्य

वेदान्यतमनोकषायोदीरणेयिंदमिंती चतुर्व्विधकारणंगळिंदं मैथुनसंज्ञे पुट्टुगुं ।

मैथुने मिथुनकर्म्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा वांछा मैथुनसंज्ञा येंबुदत्थं ।

अनंतरं परिग्रहसंज्ञोत्पत्तिहेतुगळं पेळ्दपं ।

उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ॥१३८॥

उपकरणदर्शनेन च तस्योपयोगेन मूर्च्छिता येन । लोभस्योदीरणया परिग्रहे जायते संज्ञा ।

बाह्यपरिग्रहंगळप्प धनधान्याद्युपकरणदर्शनिंदिदमुं तत्परिग्रहकथाश्रवणस्मरणादिगळिंदमुं मूर्च्छितरप्प परिग्रहार्जनादिगळोळासक्तरुगळ 'अयः संबंधः मूर्च्छिता यस्तेन' एंदीसंबंधदिंदमंतरंगकारणमप्प लोभकषायोदीरणेयिंदमुमिंती कारणचतुष्टयदिंदं परिग्रहसंज्ञे तदर्ज्जनवांछे पुट्टुगुमेंबुदत्थं ।

अनंतरं संज्ञेगळ्गे स्वामिभेदमं पेळ्दपं ।

णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि ण हि कज्जे ॥१३९॥

नष्टप्रमादे प्रथमा संज्ञा न हि तत्र कारणाभावात् । शेषाः कर्म्मास्तित्वेनोपचारेण संति न हि कार्ये ।

नष्टप्रमादरप्पऽप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिगळप्प जीवंगळोळु प्रथमोद्दिष्टाहारसंज्ञे संभविसदेकेंदोडे तन्निमित्तमप्पऽसातावेदोदीरणेगप्रमत्तरोळु व्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं 'कारणाभावात्कार्य्यस्याप्य-

---

मिथुनकर्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा—वाञ्छा मैथुनसंज्ञा ॥ १३७ ॥ अथ परिग्रहसंज्ञोत्पत्तिहेतूनाह—

बाह्यपरिग्रहस्य धनधान्याद्युपकरणस्य दर्शनेन तत्कथाश्रवणादिभिः मूर्छितस्य परिग्रहार्जनाद्यासक्तेः अनेन संबन्धेन चेति बाह्यकारणैः लोभकषायोदीरणयेति अन्तरङ्गकारणेन च परिग्रहसंज्ञा—तदर्जनादिवाञ्छा जायते ॥१३८॥ अथ संज्ञानां स्वामिभेदानाह—

नष्टप्रमादे-अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिजीवेषु प्रथमा आहारसंज्ञा नहि नैवास्ति । तद्धेत्वसातावेदनीयोदीरणायाः प्रमत्ते एव व्युच्छित्तेः कारणाभावात् कार्यस्याप्यभावः । इति प्रमादरहितेषु प्रथमा संज्ञा नास्ति

कारणोंसे तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदमें-से किसी एक वेदरूप नोकषायकी उदीरणासे इस अन्तरंग कारणसे मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है । मैथुन अर्थात् कामसेवनरूप मिथुन कर्ममें संज्ञा अर्थात् वांछा मैथुनसंज्ञा है ॥१३७॥

आगे परिग्रहसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारणोंको कहते हैं—

बाह्य परिग्रह धनधान्य आदि उपकरणोंके देखनेसे, उसकी कथा सुनने आदिसे, परिग्रह आदिके उपार्जन करनेकी आसक्तिके सम्बन्धसे इन बाह्य कारणोंसे और लोभकषायकी उदीरणारूप अन्तरंग कारणसे परिग्रहसंज्ञा, उसके अर्जन करनेकी वांछा होती है ॥१३८॥

संज्ञाओंके स्वामी कहते हैं—

नष्टप्रमाद अर्थात् अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवोंमें पहली आहारसंज्ञा नहीं होती । क्योंकि आहारसंज्ञाका अन्तरंग कारण असातावेदनीयकी उदीरणा है और उसकी व्युच्छित्ति प्रमत्तगुणस्थानमें ही हो जाती है । अतः कारणका अभाव होनेसे कार्यका भी अभाव होता

भावः' एंवु प्रमाद रहितरप्पऽप्रमत्तादियुपरितनगुणस्थानवर्त्तिगळोळु संभविसदु। शेषसंज्ञे तत्कारणकर्मोदयास्तित्वविंदमुपचारदिंदमुंटुलिदंते तत्कार्यं प्रमादरहितरोळिल्ल।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्य महावादवादीश्वर रायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्पगोम्मटसारकर्णाट वृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणेगळोळु पंचमसंज्ञाप्रकरणाधिकारं निरूपितमाय्तु।

शेषसंज्ञाः तत्कारणकर्मोदयास्तित्वेन उपचारेणैव सन्ति। न च तत्कार्यं प्रमादरहितेष्वस्ति ॥ १३९ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामधेयपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञाप्ररूपणानाम पञ्चमोऽधिकारः ॥ ५ ॥

है। इस प्रकार प्रमादरहित संयमियोंमें पहली संज्ञा नहीं है। शेष संज्ञाएँ उनके कारण कर्मोंके उदयका अस्तित्व होनेसे उपचारसे ही हैं, उनका कार्य वहाँ नहीं पाया जाता अर्थात् उक्त आहार आदि चारों संज्ञाएँ मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होती हैं ॥१३९॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से संज्ञा प्ररूपणा नामक पाँचवाँ महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

मार्गणामहाधिकारे गतिप्ररूपणाधिकारः ॥६॥

अनंतरमर्हत्परमेश्वरप्रणामरूपमंगलपुरःसरं मार्गणामहाधिकारं प्ररूपणनिरूपणप्रतिज्ञेयं माडिदपं।

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता।
मग्गणमहाहियारं विविहहियारं भणिस्सामो ॥१४०॥

धर्म्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलं जिनं नत्वा। मार्गणामहाधिकारं विविधाधिकारं भणिष्यामः।

रत्नत्रयात्मको धर्मो धनुस्तस्योपकारका ज्ञानादिधर्म्मा गुणा ज्याः। तदाश्रयाश्चतुर्दश मार्गणास्त एव मार्गणा बाणास्तैराहतानि मोहारेर्म्मोहनीयनाम्नः कर्म्मणः शत्रोर्बलानि ज्ञानावरणादिकर्म्मप्रकृतयो येनासौ धर्म्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलस्तं जिनमर्हद्भट्टारकं नमंसित्वा गत्यादिविविधाधिकारांचितं मार्गणा महाधिकारं भणिष्यामः। इत्यनेन मध्यममंगलकरणेन विनाशितविघ्नमलो नेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्ती मार्गणधिकारं वक्तुं प्रारभते।

जित्वा घातीनि सर्वाणि लब्ध्वा लब्धिगुणव्रजम्।
प्रकाशितं हितं येन पद्माभं तं भजेऽनघम् ॥ ६ ॥

अथार्हत्परमेश्वरप्रणामरूपमंगलपुरस्सरमार्गणामहाधिकारप्ररूपणप्रतिज्ञां करोति—

रत्नत्रयात्मको धर्मो धनुः, तदुपकारका ज्ञानादिधर्माः गुणाः ज्याः, तदाश्रयाश्चतुर्दशमार्गणाः ता एव बाणाः तैराहतानि मोहारेः मोहनीयकर्मशत्रोः, बलानि ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतयः, येन असौ धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलः, तं जिनं—अर्हद्भट्टारकं, नमस्कृत्वा गत्यादिविविधाकाराञ्चितं मार्गणामहाधिकारं भणिष्यामः। इत्यनेन मंगलकरणेन विनाशितविघ्नमलो नेमिचन्द्रसैद्धांतचक्रवर्ती मार्गणाधिकारं वक्तुं प्रारभते—॥ १४० ॥

जिन्होंने सब घातिकर्मोंको जीतकर गुणोंके समूहको प्राप्त किया और हितका प्रकाशन किया, उन पापरहित पद्मप्रभ स्वामीको मैं भजता हूँ।

आगे अर्हन्तदेवको प्रणामरूप मंगलपूर्वक मार्गणामहाधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

जिन्होंने रत्नत्रयात्मक धर्मरूप धनुष, उसके उपकारक ज्ञानादि धर्मरूप गुण अर्थात् धनुषकी डोर और उनके आश्रयभूत चौदह मार्गणारूपी बाणोंके द्वारा मोहनीय कर्मशत्रुकी ज्ञानावरण आदि कर्म प्रकृतिरूप सेनाको मार डाला है, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार करके गति आदि विविध अधिकारोंसे युक्त मार्गणामहाधिकारको कहेंगे। इस मंगलके द्वारा विघ्नरूपी मलको नष्ट करके नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती मार्गणा महाधिकारको कहना प्रारम्भ करते हैं ॥१४०॥

अनंतरमार्गणाशब्दक्के निरुक्तिसिद्धमप्प लक्षणमं पेळल्वेडि मुंदणगाथासूत्रमं पेळ्दपं ।

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोद्दस जाणे सुयणाणे मग्गणा होंति ॥१४१॥

याभिर्य्यासु वा जीवा मार्ग्यंते यथा तथा दृष्टास्ताश्चतुर्द्दश जानीहि श्रुतज्ञाने मार्गणा भवंति ।

आवुवु केलवरिंदमावुवु केलवरोळु मेणावप्रकारदिंदं श्रुतज्ञानदोळु काणल्पट्टुवा प्रकारदिंदमरसल्पडुववु चतुर्द्दशमार्गणेगळप्पुवु ।

परगे सामान्यदिंदं गुणस्थानजीवसमासपर्य्याप्तिप्राण संज्ञेगळेंदि वरिंद त्रिलोकोदरवर्त्तिगळप्प जीवंगळं लक्षणदिंदं भेददिंदमुं विचारिसि मत्तीगळ् विशेषरूपदिंदं गत्यादिमार्गणेगळिंदमा जीवंगळु विचारिसल्पडुत्तिर्द्दपमेंदरियेंदु शिष्यसंबोधनं प्रयुक्तमादुदु ।

गत्यादिमार्गणेगळावागळोम्मे जीवक्के नारकत्वादिपर्य्यायस्वरूपंगळु विवक्षितंगळप्पुवागळु याभिः एंदितु इत्थंभूतलक्षणदोळु तृतीयाविभक्तियक्कुमागळोम्मे द्रव्यमं कूर्त्तु पर्य्यायंगळधिकरणते विवक्षिसल्पडुगुमागळु यासु एंदितधिकरणदोळ सप्तमीविभक्तियक्कुमेकेंदोडे 'विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिः' एंदितो न्यायमुंटप्पुदरिं ।

अथ मार्गणाशब्दस्य निरुक्तिसिद्धलक्षणमाह—

याभिः यासु वा जीवाः यथा श्रुतज्ञानेन दृष्टाः तथा मृग्यन्ते विचार्यन्ते ज्ञायन्ते ताश्चतुर्दश मार्गणा भवन्ति । पूर्वं सामान्येन गुणस्थानजीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञाभिः एताभिः त्रिलोकोदरवर्तिनो जीवाः लक्षणेन भेदेन च विचारिताः । पुनरिदानीं विशेषरूपगत्यादिमार्गणाभिः तानेव विचार्यमाणान् जीवान् जानीहि इति शिष्यसंबोधने प्रयुक्तम् । गत्यादिमार्गणा यदा एकजीवस्य नारकत्वादिपर्यायस्वरूपा विवक्षिताः तदा 'याभिः' इतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्तिः । यदा पुनः एकद्रव्यं प्रति पर्यायाणामधिकरणता विवक्ष्यते तदा 'यासु' इत्यधिकरणे

जिनके द्वारा या जिनमें जीव, जैसे श्रुतज्ञानके द्वारा देखे गये हैं, उसी रूपमें विचारे जाते हैं, जाने जाते हैं, वे चौदह मार्गणाएँ होती हैं । पहले सामान्यसे गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण और संज्ञाके द्वारा तीनों लोकोंमें रहनेवाले जीवोंका लक्षण और भेदके साथ विचार किया । अब विशेषरूप गति आदि मार्गणाओंके द्वारा उन्हीं विचारने योग्य जीवोंको हे शिष्य, तू जान । इस प्रकार सम्बोधनमें प्रयोग किया है । जब गति आदि मार्गणा एक जीवके नारक आदि पर्यायरूपसे विवक्षित हों, तब 'जिनके द्वारा जीव जाने जायें' इस प्रकार तृतीया विभक्ति कहना । और जब एक द्रव्यके प्रति पर्यायोंके अधिकरणकी विवक्षा हो, तब 'जिनमें जीव पाये जायें' इस प्रकार अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति कहना ; क्योंकि 'विवक्षाके वश कारकोंकी प्रवृत्ति होती है', यह न्याय वर्तमान है ॥१४१॥

विशेषार्थ—गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण और संज्ञाके द्वारा संक्षेप रूपसे विचारित जीवोंका विस्तारसे गति, इन्द्रिय आदि पाँच भावविशेषोंके द्वारा विचार करना युक्त है, ऐसा अर्थ करनेपर 'याभिः' तृतीया विभक्तिका निर्देश है । और गति, इन्द्रिय आदि पाँच भावरूप पर्यायोंमें जीवद्रव्य रहते हैं; इस प्रकार आधारकी विवक्षा होनेपर 'यासु' सप्तमीनिर्देश युक्त है । जिसके द्वारा श्रुतका ज्ञान हो, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं । वर्णपदवाक्यरूप

अनंतरमा चतुर्द्दशमार्गणेगळगे नामोद्देश मं माडिदपं ।

गइइंदिएसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य ।
संजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे ॥१४२॥

गतींद्रिययोः काये योगे वेदे कषायज्ञानयोश्च । संयमदर्शनलेश्या भव्यसम्यक्त्वसंज्ञाहारे ।

इन्तिंतु गत्यादिपदंगळु तृतीयांतंगळुमेनु सप्तम्यांतंगळुमागलिवरर्त्तणिदमी प्रकारदिंद व्याख्यानिसल्पडुगुं । गत्यागत्यां । इंद्रियेणेंद्रिये । कायेन काये । योगेन योगे । वेदेन वेदे । कषायेण कषाये । ज्ञानेन ज्ञाने । संयमेन संयमे । दर्शनेन दर्शने । लेश्यया लेश्यायां । भव्येन भव्ये । सम्यक्त्वेन सम्यक्त्वे । संज्ञिना संज्ञिनि । आहारेणाहारे । जीवाः मार्ग्यंते एंदितु । ई गत्यादिचतुर्द्दश मार्गणेगळितु नामोद्देशदिंदं पेळल्पट्टुवु ।

अनंतरमी मार्गणेगळोळु सांतरमार्गणेगळ स्वरूपसंख्याविधाननिरूपणार्थं ई गाथात्रयमं पेळ्दपं ।

सप्तमीविभक्तिः । विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिरिति न्यायस्य सद्भावात् ॥१४१॥ अथ तासां चतुर्दशमार्गणानां नामोद्देशं करोति—

एतानि गत्यादिपदानि तृतीयान्तानि वा सप्तम्यन्तानि तदा एवं व्याख्येयानि गत्या गत्यां, इन्द्रियेण इन्द्रिये, कायेन काये, योगेन योगे, वेदेन वेदे, कषायेण कषाये, ज्ञानेन ज्ञाने, संयमेन संयमे, दर्शनेन दर्शने, लेश्यया लेश्यायां, भव्येन भव्ये, सम्यक्त्वेन सम्यक्त्वे, संज्ञिना संज्ञिनि, आहारेण आहारे च जीवाः मार्ग्यन्त इति ता मार्गणा यथानामोद्देशं कथयिष्यन्ते ॥१४२॥ अथ तासु सान्तरमार्गणानां स्वरूपसंख्यातदनन्तरकाल-प्रमाणं व्यवधाननिरूपणार्थं च गाथात्रयमाह—

द्रव्यश्रुत गुरु-शिष्य-प्रशिष्य परम्परासे अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे चला आता है। 'उसमें जैसा देखा है,वैसा जानो' इस कथनसे काल, दोष और प्रमादसे शास्त्रकारके द्वारा जो त्रुटि हुई हो, उसे छोड़कर परमागमके अनुसार व्याख्यान अथवा अध्ययन करनेवाले वस्तुस्वरूपको विरोधरहित ही ग्रहण करते हैं। ऐसा आचार्यने बतलाया है।

आगे उन चौदह मार्गणाओंका नाम निर्देश करते हैं—

ये गति आदि पद तृतीया अथवा सप्तमी विभक्तिको लिये हुए हैं। अतः इनकी व्याख्या इस प्रकार करनी चाहिए— गतिके द्वारा अथवा गतिमें, इन्द्रियके द्वारा अथवा इन्द्रियमें, कायके द्वारा या कायमें, योगके द्वारा या योगमें, वेदके द्वारा या वेदमें, ज्ञानके द्वारा या ज्ञानमें, संयमके द्वारा या संयममें, दर्शनके द्वारा या दर्शनमें, लेश्याके द्वारा या लेश्यामें, भव्यके द्वारा या भव्यमें, सम्यक्त्वके द्वारा या सम्यक्त्वमें, संज्ञीके द्वारा या संज्ञीमें तथा आहारके द्वारा या आहारमार्गणामें जीव 'मार्ग्यन्ते' जाने जाते हैं,वे मार्गणा हैं। नामनिर्देशके अनुसार आगे उनका कथन करेंगे ॥१४२॥

इन चौदह मार्गणाओंमें आठ सान्तर मार्गणा हैं। आगे उनकी संख्या, स्वरूप, अन्तरकाल और निरन्तर प्रवृत्तिकाल तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. "स्वरूपसंख्याविधाननिरूपणार्थं गाथात्रयमाह" इति घ पुस्तके पाठः ।

उवसम सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्सणर अपज्जत्ते ।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणाअट्ठ ॥१४३॥

उपशमसूक्ष्माहारेषु वैक्रियिकमिश्रनरापर्याप्तयोः । सासादनसम्यग्दृष्टौ मिश्रे सांतरमार्गणाः अष्टौ ।

सत्तदिणा छम्मासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु ॥१४४॥

सप्तदिनानि षण्मासाः वर्षपृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्त्ताः । पल्यासंख्यं त्रयाणां वरमवरमेकसमयस्तु ।

अन्तरं विरहकालः । विवक्षितमप्प गुणस्थानमं मार्गणास्थानमं मेणु बिट्टु गुणांतरदोळं मार्गणांतरदोळं मेणन्नेवरमिद्दुं मत्ते विवक्षितमप्प गुणस्थानमं मार्गणास्थानमं मेणु पोद्दुंगुमन्नेवरमा कालमंतरमेंबुदवरोळौपशमिकसम्यग्दृष्टिगळगे लोकवळु नानाजीवापेक्षेयिमुत्कृष्टांतरं सप्तदिनंगळुत्कृष्टदिदं सप्तदिन पर्य्यंतमे उपशमसम्यग्दृष्टिगळगे चतुर्गतिगळोळऽभावमक्कुमल्लिदं मेलोळरेंबुदर्त्थं । सूक्ष्मसांपरायसंयमिगळगे षण्मासमेयंतरकालमक्कु–। आहारकाहारकमिश्रकाययोगिगळगे वर्षपृथक्त्वमंतरकालमुत्कृष्टमक्कुं । मूररिंवं मेलेयोंभत्तरिंदं केळगे पृथक्त्वमेंबुदागमिके संज्ञेयक्कुं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळगे द्वादश मुहूर्त्तंगळुत्कृष्टांतरकालमक्कुं । लब्ध्यपर्य्याप्तमनुष्यरुगळगे पल्यासंख्यातैकभागकालमुत्कृष्टांतरमक्कुं । सासादनसम्यग्दृष्टिगळगे

लोके नानाजीवापेक्षया विवक्षितगुणस्थानं विवक्षितमार्गणास्थानं वा त्यक्त्वा गुणस्थानान्तरे मार्गणान्तरे वा गत्वा पुनर्यावत्तद्विवक्षितं गुणस्थानं मार्गणास्थानं वा नायाति तावान् कालः अन्तरं नाम । तच्च उत्कृष्टेन औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सप्त दिनानि । तदनन्तरं कश्चित्स्यादेवेत्यर्थः । सूक्ष्मसांपरायसंयमिनां षण्मासाः । आहारकतन्मिश्रकाययोगिनां वर्षपृथक्त्वं । त्रिकादुपरि नवकादधः पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा । वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां द्वादशमुहूर्ताः । लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागमात्रं एवं सान्तरमार्गणा अष्टौ । तासां जघन्येनान्तरं एकसमय एव ज्ञातव्यः । लोके उपशमसम्यग्दृष्ट्यादयो

लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान और मार्गणास्थानको त्यागकर अन्य गुणस्थान और अन्य मार्गणास्थानमें जाकर पुनः जबतक विवक्षित गुणस्थान और मार्गणास्थानमें नहीं आता, तबतकके कालको अन्तर कहते हैं । वह अन्तर उत्कृष्टसे औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका सात दिन है । अर्थात् तीनों लोकोंमें कोई भी जीव उपशमसम्यक्त्वधारी यदि न हो,तो अधिकसे-अधिक सात दिन तक न हो । उसके बाद कोई अवश्य ही होगा । इसी तरह सूक्ष्म साम्पराय संयमियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास है । आहारक और आहारकमिश्रकाय योगवालोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ।

तीनसे ऊपर और नौ से नीचेकी संख्याकी आगममें पृथक्त्व संज्ञा है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंका अन्तर बारह मुहूर्त है । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सासादन सम्यग्दृष्टिऔर

---

१. त्रितया–ब । २. संख्येय भा–ब. ।

पल्यासंख्यातैकभागमात्रकालमुत्कृष्टांतरमक्कुं । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे पल्यासंख्यातैकभागमात्रकालमुत्कृष्टांतरमक्कुमितु सांतरमार्गणेगळुमं दुयरियल्पडुवु ।

इवकेल्लं जघन्यदिंदमंतरकालमो दे समयमक्कुं ।

पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा ।
विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोद्धव्वो ॥१४५॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहिते विरताविरते चतुर्दश दिवसाः । विरते पंचदश दिवसा विरहितकालस्तु बोद्धव्यः । प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहितरप्प विरताविरतरिगे विरहितकालमुत्कृष्टदिंदं चतुर्दशदिवसंगळक्कुमा सम्यक्त्वमुं महाव्रतमुळ्ळगे विरहितकालमुत्कृष्टदिंदं पंचदशदिवसंगळप्पुवु । द्वितीयसिद्धांतापेक्षेयिंदमिप्पत्त नाल्कु दिवसंगळप्पुवुमिदूपलक्षणमेकजीवापेक्षेयिंदं मार्गणेगळ्ग विरहकालं प्रवचनानुसारमागियरियल्पडुवुदु :— उ = दि ७ । सू = मा ६ । आ = ७ । ८ ।

उ = देशव्रतदिन १४ उपशम वर्ष ।

उ = विरत दि १५

आमि = वर्ष । ७ । ८ । वै = मि = मु १२ । न = अ = प । सा = प मि = प ।
अ अ अ

अनंतरं गतिमार्गणास्वरूपनिरूपणं माडिदपं ।

यदि न सन्ति तदा उत्कर्षेणोक्तस्वस्वकालपर्यन्तमेव तेषामष्टानां अभावः ततो नाधिकः कालः ॥१४३-१४४॥
अथ सांतरमार्गणाविशेषं प्ररूपयति—

विरहकालः लोके नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेनान्तरं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहिताया विरताविरतेः— अणुव्रतस्य, चतुर्दशदिनानि । तत्सहितविरतेः—महाव्रतस्य पञ्चदश दिनानि । तु पुनः, द्वितीयसिद्धान्तापेक्षया चतुर्विंशतिदिनानि । इदमुपलक्षणं इत्येकजीवापेक्षयापि उक्तमार्गणानामन्तरं प्रवचनानुसारेण बोद्धव्यम् ॥१४५॥
अथ गतिमार्गणास्वरूपं निरूपयति—

सम्यग्मिथ्यादृष्टिमेंसे प्रत्येकका अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ भाग काल है। इस प्रकार सान्तरमार्गणा आठ हैं। इनका जघन्य अन्तर एक समय ही जानना। लोकमें यदि उपशमसम्यग्दृष्टि आदि न हो, तो उत्कर्षसे उक्त अपने-अपने काल पर्यन्त ही उन आठोंका अभाव हो सकता है, इससे अधिक काल तक नहीं ॥१४३-१४४॥

आगे सान्तर मार्गणाविशेषको कहते हैं—

विरहकाल अर्थात् लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित विरताविरत अर्थात् अणुव्रतका चौदह दिन है। और प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित विरत अर्थात् महाव्रतका पन्द्रह दिन है। किन्तु द्वितीय सिद्धान्तकी अपेक्षा चौबीस दिन है। यह कथन उपलक्षणरूप है। अतः एक जीवकी अपेक्षा भी उक्त मार्गणाओंका अन्तर प्रवचनके अनुसार जानना ॥१४५॥

अब गतिमार्गणाका स्वरूप कहते हैं—

---

१. ल उ-ब. ।

गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्स हेदु वा हु गई ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइत्ति य हवे चदुधा ॥१४६॥

गत्युदयजपर्य्यायश्चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा गतिः । नारकतिर्य्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेच्चतुर्धा । गम्यत इति गतिः एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवप्राप्यद्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यादिति चेन्न गतिनामकर्म्मणः समुत्पन्नस्य जीवपर्य्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात् । गमनं वा गतिः एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वप्रसंग इति चेन्न । भवाद्भवसंक्रांतिर्गतिरिति विवक्षितत्वात् । गमनहेतुर्वा गतिरिति अपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वप्राप्तिरिति चेन्न । भवांतरगमनहेतोर्गतिनामकर्म्मणो गतित्वाभ्युपगमात् ।

सा च गतिर्न्नारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिभेदाच्चतुर्द्धा स्यात् ।

अनंतरं नारकगतिनिर्द्देशार्थं पेळ्दपं ।

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य कालभावे य ।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिदा ॥१४७॥

न रमंते यतो नित्यं द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारका भणिताः ।

आवुदोंदु कारणदिंद मावुवु केलवु जीवंगळु नरकभूमिसंबंधियप्पन्नपानादि द्रव्यदोळं तद्भूतलमप्प क्षेत्रदोळं समयादिस्वायुरवसानमप्प कालदोळं चित्पर्य्यायमप्प भावदोळं भवांतर-

---

गम्यत इति गतिः एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवं प्राप्य द्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यात् ? तन्न–गतिनामकर्मोदयोत्पन्नजीवपर्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात् । गमनं वा गतिः । एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वं प्रसज्यते, तन्न, भवाद् भवसंक्रान्तिरेव विवक्षितत्वात् । गमनहेतुर्वा गतिः इत्यपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वं प्राप्नोति, तन्न–भवान्तरगमनहेतोर्गतिनामकर्मणो गतित्वाभ्युपगमात् । सा च गतिः उत्तरप्रकृतिसामान्येन एकापि उत्तरोत्तरप्रकृतिविवक्षया नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिभेदाच्चतुर्धा भवेत् ॥१४६॥

अथ नारकगतिं निर्दिशति—

यस्मात्कारणात् ये जीवाः नरकगतिसम्बन्ध्यन्नपानादिद्रव्ये तद्भूतलरूपक्षेत्रे, समयादिस्वायुरवसानकाले

'गम्यते' गमन करना गति है । ऐसा कहनेपर गमन क्रिया करते हुए जीवको प्राप्त करके द्रव्य आदिको भी गति कहना सम्भव होगा । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि गति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न जीवकी पर्यायको ही गति माना है । अथवा गमन गति है, ऐसा कहनेपर ग्राम, उद्यान आदिकी ओर गमन करनेको भी गति कहा जायेगा? किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि एक भवसे दूसरे भवमें जानेकी ही विवक्षा है । अथवा गमनमें जो हेतु है,वह गति है । ऐसा कहनेपर गाड़ी आदिको भी गतिपना प्राप्त होता है । किन्तु ऐसा नहीं है,क्योंकि भवान्तरके प्रति गमनमें कारण गतिनाम कर्मको गति माना है । वह गति उत्तर प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा एक होनेपर भी उत्तर-उत्तर प्रकृतिकी अपेक्षा नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिके भेदसे चार प्रकारकी है ॥१४६॥

अब नारक गतिको कहते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नरकगति सम्बन्धी अन्नपान आदि द्रव्यमें, वहाँके भूतलरूप क्षेत्रमें, प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुपर्यन्तकालमें और चैतन्यके पर्यायरूप भावमें,

---

१. तद्भव–ब. । २. गति नारक–ब. ।

वैरोद्भववैरो[1]द्रिक्तर्दिदं संजनितक्रोधादिगळोळावुदो[2]र्दु कारणदिमोरोर्व्वरोडने नूतनपुरातन नारकरुगळु परस्परं क्रीडिसुवरल्तदु कारणदिंदमा जीवंगळु नरतर[3]रु पेळल्पट्टरु। न रता एव नारता एंदितु स्वार्त्थिकाण्प्रत्ययदिंदं नारता एंदु अप्परु। नरकेषु जाता नारका एंदितु मेणु च्छाये माडल्पडुवुदिंतप्प नारकपर्य्यायं जीवक्के नारकगति एंदितु निर्द्देशिसल्पट्टुदु। अथवा हिंसाद्यसदनुष्ठानेषु निरता व्यापृताः प्रवृत्तास्तेषां गतिर्निरतगतिः। अथवा नरान् प्राणिनः कायति यातयति कदर्थयति खलीकरोति बाधत इति नरकं कर्म्म तस्यापत्यानि नारकाः तेषां गतिर्न्नारकगतिः। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावेष्वन्योन्येषु चारता न रतास्तेषां गतिर्नरतगतिः। अथवा निर्गतोऽयः पुण्यमेभ्यस्ते निरयास्तेषां गतिर्न्निरयगतिः। एंदितो व्युत्पत्तिगळिंदमे नारकगतिलक्षणं पेळल्पट्टुदु।

अनंतरं तिर्य्यग्गतिस्वरूपनिरूपणं माडिदपं।

तिरियंति कुडिलभावं सुवियलसण्णा णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंतपावबहुला तम्हा तेरिच्छिया भणिदा ॥१४८॥

तिरोंचंति कुटिलभावं सुविवृतसंज्ञा निकृष्टा अज्ञानाः। अत्यंतपापबहुलाः तस्मात्तैरश्चा भणिताः।

चित्पर्यायरूपभावे भवान्तरवैरो[3]द्भूतजनितक्रोधादिभ्योऽन्योन्यैः सह नूतनपुरातननारकाः परस्परं च न रमन्ते तस्मात्कारणात् ते जीवा नर[4]ता इति भणिताः। नरता एव नारताः स्वार्थिकाण्विधानात्[5]। अथवा नरकेषु जाता नारका इति छाया। एवंविधनारकपर्यायो जीवस्य नारकगतिर्निर्दिश्यते। अथवा हिंसाद्यसदनुष्ठानेषु निरता व्यापृताः प्रवृत्ताः—तेषां गतिर्निरतगतिः। अथवा नरान्—प्राणिनः, कायति—घातयति, कदर्थयति खलीकरोति बाधक इति नरकं कर्म तस्यापत्यानि नारकाः, तेषां गतिः नारकगतिः। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु अन्योन्येषु चारताः नरताः तेषां गतिर्नरतगतिः। अथवा निर्गतोऽयः पुण्यं एभ्यः ते निरयाः तेषां गतिः निरयगतिः इति व्युत्पत्तिभिरपि नारकगतिलक्षणं कथितम् ॥१४७॥ अथ तिर्यग्गतिस्वरूपं निरूपयति—

पूर्वभवके वैरके कारण उत्पन्न हुए क्रोधादिके कारण नवीन और पुराने नारकी परस्परमें रमण नहीं करते, वे जीव नरत कहलाते हैं। नरत ही स्वार्थमें अण् करनेसे नारत होते हैं। अथवा जो नरकोंमें जन्म लेते हैं, वे नारक हैं। जीवकी इस प्रकारकी नारक पर्यायको नरक गति कहते हैं। अथवा जो हिंसा आदि असत् कार्योंके अनुष्ठानमें निरत अर्थात् प्रवृत्त हैं, उनकी गति नरक गति है। अथवा 'नरान्' अर्थात् प्राणियोंको 'कायति' कष्ट देता है, दुर्गति करता है, बाधा पहुँचाता है, वह नरक कर्म है; उसकी सन्तान नारक हैं। और उनकी गति नारक गति है। अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें परस्परमें जो रत नहीं है, वे नरत हैं। उनकी गति नरकगति है। अथवा निर्गत अर्थात् चला गया है पुण्य जिनसे, वे निरय हैं और उनकी गति निरयगति है। इन व्युत्पत्तियोंके द्वारा नरकगतिका लक्षण कहा ॥१४७॥

आगे तिर्यंच गतिका स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °रोद्रेकदिदं। २. म °दोंदुरत्तणिदमोरोर्व्व°। ३. वैरत-द्भवजनित-ब.। ४. नारका-ब.। ५. नारका एव नारका स्वा-ब.।

आवुदो दु कारणदिंदं तिरोभावं कुटिलभावमं मायापरिणाममनेय्दुवरे दितु तिर्य्यंचरप्पर-हंगेयुमा गूढमप्पाहारादि प्रकटसंज्ञेगळनुळ्ळवुवंते प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धिमोदलादुवरिंदमल्पि-यांसरप्पुदरिंदं निकृष्टंगळुमंते हेयोपादेयज्ञानादिविशिष्टज्ञानहीनमप्पुदरिंद अज्ञानरुमंते नित्यनिगोद-तिर्य्यग्जीवविवक्षेयिंदमंतातीतपापबहुलरप्परदुःकारणदिंदं आ जीवंगळु तिर्य्यंचरंदु पेळल्पट्टरिल्लियुं स्वार्थिकाण्प्रत्ययदिंदं तैरश्चा एंदितु शब्दस्थितियक्कुं। एवंविधतिर्य्यक्पर्य्यायमे तिर्य्यग्गतियेंदितु भाषितमाय्तु।

अनंतरं मनुष्यगतिस्वरूपनिरूपणमं माडिदपं।

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणुउब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिदा ॥१४९॥

मन्यंते यतो नित्यं मनसा निपुणा मनोत्कटा यस्मात्। मनोरुद्भवाश्च सर्व्वे तस्मात्ते मानुषा भणिताः।

आवुदो दु कारणदिंदमाकेलंबरु जीवंगळु नित्यं बगेवरु अरिवरु हेयोपादेयादिविशेषमनें दितु मानुषाः एंबुदु। आवुदो दु मेणु मनसा निपुणाः कलाशिल्पादिगळोळं कुशलरप्पुदरिंदं मानुषा एंबुदु। मनसोत्कटाः अवधानादिदृढोपयोगरप्पुदरिंदं मानुषा एंबुदु। अथवा मनोरुद्भवा अपत्यानि मानुषा यें बुदिती यथोचितनिरुक्तिसिद्ध लक्षणरप्पर्मानुषा एंदितु प्रवचनदोळ् पेळल्पट्टरल्लरुं।

यस्मात्कारणात् ये जीवाः सुविवृतसंज्ञाः अगूढाहारादिप्रकटसंज्ञायुताः, प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्ध्यादि-भिरल्पीयस्त्वान्निकृष्टाः, हेयोपादेयज्ञानादिभिर्विहीनत्वादज्ञानाः, नित्यनिगोदविवक्षया अत्यन्तपापबहुलाः, तस्मात्कारणात्ते जीवाः तिरोभावं-कुटिलभावं मायापरिणामं अंचंति-गच्छन्ति, इति तिर्यञ्चो भणिता भवन्ति। तिर्यञ्च एव तैरश्चाः स्वार्थिकाण्विधानात्। एवंविधतिर्यक्पर्याय एव तिर्यग्गतिरिति भाषितम् ॥१४८॥

अथ मनुष्यगतिस्वरूपं निरूपयति—

यस्मात्करणात् ये जीवाः नित्यं मन्यन्ते हेयोपादेयादिविशेषान् जानन्ति-वा मनसा निपुणाः-कला-शिल्पादिषु कुशलाः वा मनसोत्कटाः अवधानादिदृढोपयोगाः वा मनोरुद्भवाः[2] अपत्यानीति ते जीवाः सर्वेऽपि

जिस कारणसे जो जीव 'सुविवृत संज्ञा' अर्थात् आहार आदिकी प्रकृत संज्ञावाले होते हैं, प्रभाव-सुख-कान्ति-लेश्याविशुद्धि आदिसे हीन होनेसे निकृष्ट हैं, हेय उपादेयके ज्ञानसे विहीन होनेसे अज्ञानी हैं, नित्य निगोदकी विवक्षासे अत्यन्त पापबहुल होते हैं, तिस कारणसे वे जीव 'तिरोभाव' अर्थात् कुटिलभाव मायापरिणामको 'अंचन्ति' प्राप्त होते हैं, इसलिए उन्हें तिर्यंच कहते हैं। तिर्यंच ही स्वार्थमें अण् प्रत्यय करनेसे तैरञ्च होते हैं। इस प्रकारकी तिर्यक् पर्याय ही तिर्यग्गति कही गयी है ॥१४८॥

आगे मनुष्यगतिका स्वरूप कहते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नित्य 'मन्यन्ते' अर्थात् हेय-उपादेय आदिके भेदको जानते हैं। अथवा 'मनसा निपुणाः' अर्थात् कला,शिल्प आदिमें कुशल होते हैं। अथवा 'मनसा उत्कटाः' अर्थात् अवधान आदि दृढ़ उपयोगके धारी हैं। अथवा मनुके वंशज हैं। इसलिए वे जीव सभी मनुष्य हैं,ऐसा आगममें कहा है ॥१४९॥

---

१. म एंदितु। २. मनोरुद्भ-ब.।

अनंतर तिर्य्यग्मनुष्यगें व्यक्तिभेदनिदर्शन निमित्तं पेळ्दपं ।

सामण्णा पंचिंदी पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता ।
तिरिया णरा तहावि य पंचिंदियभंगदो हीणा ॥१५०॥

सामान्याः पंचेंद्रियाः पर्य्याप्ता योनिमत्योऽपर्य्याप्ताः । तिर्य्यंचो नरास्तथापि च पंचेंद्रिय-भंगतो हीनाः ।

सामान्यतिर्य्यंचरें दुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरें दु पर्य्याप्ततिर्य्यंचरें दुं योनिमतिर्य्यंचरें दु पंचप्रकारं तिर्य्यंचरप्परवरु । मत्तं मनुष्यरुं पंचेंद्रियभंगदिदं हीनरु सामान्यदि चतुःप्रकारमनुष्य-रप्परेकेंदोडे तिर्य्यंचरोळ् पंचेंद्रियंगल्लद द्वींद्रियादिजीवंगळुं टप्पुदरिंदमिल्लि मनुष्यरेल्लरुं पंचेंद्रियं-गळेयप्पुदरिनिल्लि गा विशेषणं व्यवच्छेद्यमिल्लदुदरिंदं तंगियल्पट्टुदु ।

अनंतरं देवगतियं पेळ्दपं ।

दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहि दिव्वभावेहिं ।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ॥१५१॥

दीव्यंति यतो नित्यं गुणैरष्टभिश्च दिव्यभावैर्भासमानदिव्यकायाः तस्मात्ते वर्णिता देवाः ।

आवुदों दु कारणदिंदमावुवु केलवु जीवंगळु नित्यमनवरतं कुलगिरिमहासमुद्रादिगळोळु क्रीडिसुवरुं । मोदंते माद्यंति कामयंते अणिमादिभिरष्टभिर्दिव्यभावैरमानुषगोचरप्रभावैर्गुणैर्भास-मानाः प्रकाशमानाः दिव्यकाया धातुमलदोषरहितप्रभास्वरमनोहरशरीरास्ते जीवास्तस्मात्कारणा-द्देवा इति परमागमे वर्णिताः ।

मानुषा इति प्रवचने भणिताः ॥१४९॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगतिव्यक्तिभेदान् दर्शयति—

तिर्यञ्चः—सामान्यतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पर्याप्ततिर्यञ्चः योनिमत्तिर्यञ्चः अपर्याप्ततिर्यञ्चश्चेति पञ्च-विधा भवन्ति । तथा मनुष्या अपि । किन्तु पञ्चेन्द्रियभङ्गतः—भेदात्[1] हीना भवन्ति—सामान्यादिचतुर्विधा एव भवन्तीत्यर्थः । सर्वमनुष्याणां केवलं पञ्चेन्द्रियत्वेनैव सम्भवात्, तिर्यग्वत्तद्विशेषणस्य व्यवच्छेद्यत्वाभावात् ॥१५०॥ अथ देवगतिं प्ररूपयति—

यस्मात्कारणात् ये जीवाः नित्यं—अनवरतं, कुलगिरिमहासमुद्रादिषु दीव्यन्ति क्रीडन्ति मोदन्ते माद्यन्ति कामयन्ते अणिमादिभिरष्टभिः दिव्यभावैः—अमानुषगोचरप्रभावैः गुणैर्भासमानाः—प्रकाशमानाः, दिव्यकाया धातुमलदोषरहितप्रभास्वरमनोहरशरीराः ते जीवाः तस्मात्कारणात् देवा इति परमागमे वर्णिताः ॥१५१॥

आगे तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें जीवोंके भेद दिखलाते हैं—

तिर्यंच सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच, योनिमत् तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच इस तरह पाँच प्रकारके होते हैं । तथा मनुष्य भी होते हैं, किन्तु पंचेन्द्रिय नामक भेद मनुष्योंमें नहीं होता, अतः वे सामान्य आदि चार ही प्रकारके होते हैं; क्योंकि सभी मनुष्य केवल पंचेन्द्रिय ही होते हैं । अतः तिर्यंचोंकी तरह पंचेन्द्रिय विशेषणसे किसीका व्यवच्छेद नहीं होता ॥१५०॥

आगे देवगतिका कथन करते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नित्य—निरन्तर कुलाचल, महासमुद्र आदिमें 'दीव्यन्ति' अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, मत्त होते हैं, कामाविष्ट होते हैं, अणिमा आदि आठ अमानवीय

---

१. भेदेन ब. ।

अनंतरं संसारिविलक्षणमप्प सिद्धगतियं व्यक्तं माडिदपं ।

जाइजरामरणभया संयोगविजोगदुक्खसण्णाओ ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई ।।१५२।।

जातिजरामरणभयानि संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः । रोगादिकाश्च यस्यां न संति सा भवति सिद्धगतिः ।

जातिजरामरणभयंगळुमनिष्टसंयोगइष्टवियोगदुःखसंज्ञेगळुं रोगादिकंगळिनप्प विविधवेदनेगळुमावुदो दु गतियोळिल्लविप्पुवा कृत्स्नकर्म्मविप्रमोक्षप्रादुर्भूतसिद्धत्वपर्य्यायलक्षणमप्प सिद्धगतियुमुंटु । इदरिंदं संसारिगत्यपेक्षेयिंद गतिमार्गणेगे चतुर्व्विधत्वं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे मत्ते मुक्तगत्यपेक्षेयिंदं अदक्के तद्विलक्षणादत्तणिदं गतिमार्गणेयोळविवक्षितत्वमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं गतिमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्वातनभेदरं नरकगतियोळु गाथाद्वयदिंदं तत्संख्येयं पेळ्दपं ।

सामण्णा णेरइया घणअंगुलबिदियमूलगुणसेढी ।
बिदियादि बारदस अडछत्तिदुणिजपदहिदा सेढी ।।१५३।।

सामान्यनारका घनांगुलद्वितीयमूलगुणश्रेणिः । द्वितीयादिद्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजपदहृता श्रेणिः ।

घर्म्मादिपृथ्वीभेदविवक्षेयं माडदे सामान्यनारकरु सर्व्वपृथ्विजरु घनांगुलद्वितीयवर्गमूळगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरप्पर् संदृष्टि २ मू.। वंशादियधस्तनपृथ्विगळोळु नारकरु मत्ते यथाक्रमदिं

अथ संसारविलक्षणां सिद्धगतिं व्यनक्ति—

जातिजरामरणभयानि, अनिष्टसंयोगेष्टवियोगदुःखसंज्ञाः, रोगादिविविधवेदनाश्च यस्यां न सन्ति सा कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षप्रादुर्भूतसिद्धत्वपर्यायलक्षणा सिद्धगतिरस्ति । अत एव संसारिगत्यपेक्षया गतिमार्गणायाश्चतुर्विधत्वमुक्तं । मुक्तगत्यपेक्षया तस्यास्तद्विलक्षणत्वेन गतिमार्गणायामविवक्षितत्वात् ।।१५२।। अथ गतिमार्गणायां जीवसंख्यां कथयंस्तावन्नरकगतौ गाथाद्वयेनाह—

घर्मादिपृथ्वीभेदविवक्षामकृत्वा सामान्यनारकाः सर्वपृथ्वीजाः घनाङ्गुलद्वितीयवर्गमूलगुणितजगच्छ्रेणि-

---

गुणोंसे युक्त धातुमल दोषसे रहित मनोहर शरीरोंसे जो भासमान हैं, वे जीव परमागममें देव कहे गये हैं ।।१५१।।

आगे संसारसे विलक्षण सिद्धगतिको कहते हैं—

जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, दुःख, संज्ञा, रोग आदि नाना प्रकारकी वेदना जिसमें नहीं हैं, वह समस्त कर्मोंके सर्वथा विनाशसे प्रकट हुई सिद्ध पर्याय रूप सिद्धगति है ।।१५२।।

आगे गति मार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हुए सर्वप्रथम नरकगतिमें दो गाथाओंसे संख्या कहते हैं—

घर्मा आदि पृथ्वीके भेदोंकी विवक्षा न करके सभी पृथ्वीके सब नारकी घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणी प्रमाण हैं । तथा वंशा आदि नीचेकी छह पृथिवियोंमें नारकी क्रमसे जगतश्रेणीके बारहवें, दसवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे जगत-

---

१५ १-२. म सिद्धि ।

द्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणिप्रमितरुंदु ।

$-\frac{1}{12}-\frac{1}{10}-\frac{1}{8}-\frac{1}{6}-\frac{1}{3}-\frac{1}{2}$

हेट्ठिमछप्पुढवीणं रासिविहीणो दु सव्वरासी दु ।
पढमावणिम्हि रासी णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ॥१५४॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां राशिविहीनस्तु सर्व्वराशिस्तु । प्रथमावनौ नैरयिकाणां राशिस्तु निर्दिष्टः ।

अधस्तनवंशादिषट्पृथ्विगळ्गे पेळ्दारुराशिगळं कूडिया राशियं साधिकद्वादशमूलभक्तजगच्छ्रेणिप्रमितमं $\frac{1}{12}$ सामान्यनारकराशियोळ्कळेदोडे $-\frac{1}{12}$ धर्म्मेय नारकर प्रमाणमक्कु- । मिल्लियपनयनत्रैराशिकमं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे प्र $-\frac{1}{12}$ । फ १ । इ । १ जगच्छ्रेणियं गुण्यमं तोरि गुणाकारमप्प घनांगुलद्वितीयमूलदोळोंदु रूपु कळेयल्पडुत्तिरलु साधिकद्वादश मूलभक्त-

प्रमिता भवन्ति (–२मू०) वंशाद्यधस्तनपृथ्वीषु नारकाः पुनः यथाक्रमं द्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणीमात्राः सन्ति $\frac{1}{12}$ । $\frac{1}{10}$ । $\frac{1}{8}$ । $\frac{1}{6}$ । $\frac{1}{3}$ । $\frac{1}{2}$ ॥१५३॥

अधस्तनवंशादिषट्पृथ्वीकथितषड्राशीनां संयोगः निजद्वादशमूलभक्तसाधिकजगच्छ्रेणिमात्रः $\frac{1}{12}$ । अनेन सामान्यनारकराशिर्विहीनः तदा घर्मानारकप्रमाणं भवति $-\frac{1}{12}$ तदपनयनत्रैराशिकमिदं–प्र–। फ १ इ $\frac{1}{12}$

एकजगच्छ्रेण्यपनयने घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रराशौ गुणकारे यद्येकं रूपमपनीयते तदा निजद्वादश-

श्रेणीमें भाग देनेपर जो लब्ध आवें, उतने हैं। अर्थात् जगतश्रेणीके बारहवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण दूसरी पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके दसवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण तीसरे नरकके नारकी हैं। जगतश्रेणीके आठवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण चतुर्थ पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके छठे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण पंचम पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके तीसरे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण छठी पृथ्वीके नारकी हैं। और जगतश्रेणीके दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण सातवीं पृथ्वीके नारकी हैं। इस तरह अपने-अपने वर्गमूलका भाग जगतश्रेणीमें देनेसे जो लब्ध आवे, उतने उस नरकमें नारकी हैं ॥१५३॥

नीचेकी वंशा आदि छह पृथिवियोंकी ऊपर कही संख्याका जोड़ अपने बारहवें वर्गमूलसे भाजित साधिक जगतश्रेणी प्रमाण है। इस राशिको पहले कही सामान्य नारकियोंकी संख्यामें घटानेपर प्रथम नरकके नारकियोंका प्रमाण आता है। इस घटानेका त्रैराशिक इस प्रकार है—सामान्य नारकियोंका प्रमाण लानेके लिए गुण्य जगतश्रेणीका प्रमाण है और गुणाकार घनांगुलका द्वितीय वर्गमूल है। इस प्रमाणमें-से यदि जगतश्रेणी मात्र घटाना हो, तो गुणाकारमेंसे एक घटाना चाहिए। तब जो जगतश्रेणीके बारहवाँ वर्गमूलसे भाजित साधिक जगतश्रेणी मात्र घटाना हो, तो गुणाकारमें-से कितना घटाना चाहिए। ऐसा त्रैराशिक करनेपर यहाँ प्रमाणराशि जगतश्रेणी है, फलराशि एक, इच्छाराशि जगत-

जगच्छ्रेणियं तोरि एनितना गुणाकारदोळु कळेयल्बक्कुमेंदु त्रैराशिकदिं बंद लब्धं साधिकैक-द्वादश भागमं १/१२ कळेदेनितेंबुदत्थं ।

अनंतरं तिर्यग्जीवसंख्येयं पेळ्वातनेरडुगाथासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु ।

संसारी पंचक्खा तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो ।
सामण्णा पंचिंदी पंचिंदियपुण्ण तेरिच्छा ॥१५५॥

संसारिणः पंचाक्षास्तत्पूर्णास्त्रिजगतिहीनकाः क्रमशः । सामान्याः पंचेंद्रियाः पंचेंद्रिय-पूर्णास्तैरश्चाः ।

नारकमनुष्यदेवराशित्रयविहीनसर्व्वसंसारिराशियदु तिर्य्यंग्गतियोळु सामान्यतिर्य्यंचराशि-प्रमाणमक्कुं १३≡ तद्गतित्रयराशिहीनमप्प सामान्यपंचेंद्रियराशियदु तिर्य्यंग्गतियोळु पंचेंद्रिय-राशियक्कु = ५८३६ तद्गतित्रयपर्य्याप्तराशिहीनसामान्यपंचेंद्रियपर्य्याप्तराशियवु तिर्य्यंग्गतियोळु ४।४।६५६१ ३≡

मूलभक्तसाधिकश्रेण्यपनयने गुणकारे कियदपनीयते ? इति लब्धे साधिकैकद्वादशभागं १/१२ अपनयेदित्यर्थः ॥१५४॥ अथ तिर्यग्जीवसंख्यां गाथाद्वयेन आह—

नारकमनुष्यदेवराशित्रयविहीनसर्वसंसारिराशिरेव तिर्यग्गतौ सामान्यतिर्यग्राशिप्रमाणं भवति । १३≡ । तद्गतित्रयराशिविहीनः सामान्यपञ्चेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ पञ्चेन्द्रियराशिः स्यात् । = ५८३६ ४ । ४ । ६५६१ ३≡

---

१५ श्रेणीके बारहवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी है । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जगतश्रेणीके वर्गमूलका साधिक एकका बारहवाँ भाग लब्ध आया । इसे घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमें-से घटाकर जो शेष रहे,उससे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर प्रथम घर्मा पृथिवीके नारकियोंका प्रमाण आता है ॥१५४॥

विशेषार्थ—तीसरी आदि सब पृथिवियोंके नारकी दूसरी पृथिवीके नारकियोंके २० असंख्यातवें भाग मात्र ही हैं, क्योंकि उनका भागहार अधिक होनेसे लब्ध कम आता है । इसलिए दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारकियोंकी संख्या द्वितीय पृथिवीके नारकियोंसे कुछ अधिक कही है । इसे सर्वनरक राशिमें-से घटानेपर प्रथम नरकके नारकियों-की संख्या आती है । इस घटानेको अंकसंदृष्टिसे इस प्रकार जानना । गुण्यराशि २५६ और गुणाकार चार है । यदि २५६ कम करनेके लिए गुणाकार चारमें-से एक घटाया जाता है, तो २५ $\frac{३५१}{४}$ कम करनेके लिए कितना घटाना चाहिए । यहाँ फलराशिसे इच्छा राशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर $\frac{१}{४}$ आता है।इसे गुणाकार ४ में-से घटानेपर $\frac{१५}{४}$ आता है।इसे गुण्य राशि २५६ से गुणा करनेपर ९६० लब्ध आता है । इसी तरह अर्थसंदृष्टिसे जानना ॥१५४॥

आगे दो गाथाओंसे तिर्यंचगतिमें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

संसारी जीवोंकी राशिमें-से नारकी, मनुष्य और देवोंकी राशि घटानेपर तिर्यंचगतिमें ३० सामान्य तिर्यंचोंकी राशिका प्रमाण होता है । आगे इन्द्रियमार्गणामें सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण कहेंगे । उसमें-से नारकी, मनुष्य और देव, इन तीन गतिके जीवोंकी

पंचेंद्रियपर्य्याप्तराशियक्कु ।
=५८६४
४।४।६५६१
५=

छस्सदजोयणकदिहिदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं ।
पुण्णूणा पंचक्खा तिरिय अपज्जत्त परिसंखा ॥१५६॥

षट्शतयोजनकृतिहृतजगत्प्रतरो योनिमतीनां परिमाणं । पूर्णोनाः पंचाक्षास्तिर्य्यग-पर्य्याप्तपरिसंख्या । ५

षट्शतयोजनंगळ कृतियिंदं भागिसल्पट्ट जगत्प्रतरप्रमाणं तिर्य्यग्गतियोळु योनिमतिगळप्प द्रव्यस्त्रीयर प्रमाणमक्कुं =४।६५ = ८१।४।१० तिर्य्यंकपंचेंद्रियपर्य्याप्तराशिहीनतिर्य्यंक्पंचेंद्रिय-राशियदु तिर्य्यंगपर्य्याप्तपंचेंद्रियराशिप्रमाणमक्कुं =५८ ३६ ५८ ६४।५=
४।४।६५६१
८ =

तद्गतित्रयपर्याप्तराशिहीनः सामान्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिः स्यात् । =५८६४ ॥१५५॥ १०
४।४।६५६१
५=

षट्शतयोजनानां कृत्या भक्तजगत्प्रतरप्रमाणं तिर्यग्गतौ योनिमतीनां द्रव्यस्त्रीणां प्रमाणं

भवति । ४।६५ = ।८१।४।१० तिर्यक्पंचेन्द्रियपर्याप्तराशिहीनतिर्यक्पंचेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्पर्याप्तपंचे-

---

राशि घटानेपर जो शेष रहे, उतनी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवोंकी संख्या है। तथा सामान्य पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी राशिमें-से उक्त तीन गतिके पर्याप्तकोंकी राशि घटानेपर तिर्यंचगतिमें पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंकी राशि होती है ॥१५५॥ १५

छह सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण होता है, उतना तिर्यंच-गतिमें योनिमती अर्थात् द्रव्यस्त्रियोंका प्रमाण होता है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके प्रमाणमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंका प्रमाण घटानेपर जो शेष रहे, वह अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका प्रमाण है।

विशेषार्थ—छह सौ योजनके वर्गके अंगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे तीन लाख चौबीस हजार करोड़को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं। इसके प्रदेश संख्यात प्रतरांगुलमात्र होते हैं। यही जगत्प्रतरका भागहार है ॥१५६॥ २०

---

१. इतो अग्रे-'क' प्रतौ- = ९ ई संदृष्टिय हारंगळे तादुदे दोडे षट्छत योजनंगळ कृतियं ६०० योजनदंडंगळिदं ६००
वर्गात्मकंगळिदं ८००० गुणिसि मत्तवं एकदंडांगुलंगळिद वर्गरूपं गळिदं ९६ गुणिसुवल्लि दशशून्यं-८००० ९६
गळि बेरिरिसिबे आररिं ९६दं अपवर्त्तिसलिनिक्कु १६।६ एंटनेरडरिनपवर्त्तिसि ४।२
१६।६ ४।२

अनंतरं मनुष्यजीवसंख्येयं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपं :—

सेढी सूई अंगुल आदिमतदियपद भाजिदेगूणा ।
सामण्ण मणुसरासी पंचमकदिधणसमा पुण्णा ॥१५७॥

श्रेणी सूच्यंगुलप्रथमतृतीयपदभाजितैकोना। सामान्यमनुष्यराशिः पंचमकृतिघनसमाः पूर्णाः।

जगच्छ्रेणियं सूच्यंगुलद प्रथमवर्गमूलदिंदमुं तृतीयवर्गमूलदिंदमुं भागिसि बंद लब्धदोळोंदु रूपं कळेयलोडना राशि सामान्यमनुष्यराशियक्कु १।३ द्विरूपवर्गधारा संबंधि पंचमवर्गं बादाळसंज्ञेयनुळ्ळ राशियं घनंगोंडनितु प्रमाणरु मनुष्यरुपर्य्याप्तकरप्परु। ४२=४२=४२=। ई राशियं परस्परं गुणिसिद लब्धराशियनक्षरसंज्ञेयिंदमंकक्रमदिंदं पेळ्दपरु।

तल्लीन मधुगबिमलं धूमसिलागाविचोर भयमेरू ।
तटहरिखझसा होंति हु माणुसपज्जत्तसंखंका ॥१५८॥

। ७९ २२ ८१ ६२ ५१ ४२ ६४ ३३ ७५ ९३ ५४ ३९ ५० ३३६।

ई राशियने मत्तमक्षरसंज्ञेयिंदं पूर्वानुपूर्वियागि पेळ्दपं।

न्द्रियराशिप्रमाणं भवति =५८ ३६ ०≡ ॥१५६॥ अथ मनुष्यगतिजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

५८ ६४। ५≡
४, ४, ६५ ६१

जगच्छ्रेणिं सूच्यङ्गुलस्य प्रथममूलतृतीयमूलाभ्यां भक्त्वा तल्लब्धे एकरूपे अपनीते स राशिः सामान्य-

मनुष्यराशिः स्यात् १।३। द्विरूपवर्गधारासम्बन्धिपञ्चमवर्गस्य बादालसंज्ञस्य घनप्रमाणाः पर्याप्तमनुष्या भवन्ति ४२=४२=४२=॥१५७॥ अस्मिन् राशौ परस्परं गुणिते यल्लब्धं तं राशिम् अक्षरसंज्ञयाङ्कक्रमेण कथयति—

सप्तचतुर्वारकोटिद्विनवतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्रैकशतद्वाषष्टित्रिवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षद्वाचत्वारिंशत्सहस्र-षट्शतत्रिचत्वारिंशद्द्विवारकोटिसप्तत्रिंशल्लक्षैकान्नषष्टिसहस्रत्रिशतचतुःपञ्चाशत्कोट्येकान्नचत्वारिंशल्लक्षपञ्चा-शत्सहस्रत्रिशतषट्त्रिंशत्प्रमिता पूर्वोक्तपञ्चमवर्गघनाङ्करूपा पर्याप्तमनुष्याणां संख्या भवति ७, ९२२८१६२,

---

आगे तीन गाथाओंसे मनुष्यगतिमें जीव संख्या कहते हैं—

जगतश्रेणीको सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलका भाग दो, जो लब्ध आवे उसमें पुनः सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलका भाग दें। और लब्धमें-से एक घटानेपर जो शेष रहे, उतनी सामान्य मनुष्य राशि है। तथा द्विरूप वर्गधारा सम्बन्धी पंचमवर्ग बादाल प्रमाण है उसके घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण है। इस राशिको परस्परमें गुणित करनेपर जो राशि आती है, उसे अक्षरोंके द्वारा अंकरूपमें बतलाते हैं ॥१५७॥

सात कोटिकोटि कोटाकोटी, बानवे लाख अट्ठाईस हजार एक सौ बासठ कोटिकोटि कोटी, इक्यावन लाख बयालीस हजार छह सौ तैंतालीस कोटि कोटि, सैंतीस लाख उनसठ हजार तीन सौ चौवन कोटि, उनतालीस लाख पचास हजार तीन सौ छत्तीस ७,९२२८१६२, ५१४२६४३,३७५९३५४,३९५०३३६। प्रमाण पूर्वोक्त पंचमवर्गके घनरूप अंक होते हैं। यह ही

---

१. वर्णक्रमाः मु।

'साधूरराज कोर्तरेणांको भारती विलोलः समधिः ।
गुणवर्ग धर्म्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमतः ॥'
एंदितु पर्य्याप्तमनुष्यर संख्येयं पेळल्पट्टुदु ।

५१४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६ । अयमेव राशिः पुनरक्षरसंख्यया पूर्वानुपूर्व्या कथ्यते—

पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या है । इसी राशिको पूर्वानुपूर्वीसे अक्षरोंकी संख्याके द्वारा दूसरे रूपमें कहा गया है ।

विशेषार्थ—इस गाथामें पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या अक्षरोंके द्वारा अंकोंको सूचित करते हुए बायीं ओरसे कही है । अक्षरोंके द्वारा अंक कहनेका सूत्र इस प्रकार है—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरमनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम् ॥

इसका अर्थ इस प्रकार है—ककारसे लेकर नौ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर नौ तक अंक जानना । टकारसे लेकर धकार पर्यन्त नौ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर नौ तक अंक जानना । इसी तरह पकारसे लेकर मकार तक पाँच अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर पाँच तक जानना । यकारसे लेकर हकार पर्यन्त आठ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर आठ तक अंक जानना । जहाँ स्वर या ञकार या नकार लिखा हो,वहाँ शून्य (बिन्दी) जानना । अक्षरपर लगी मात्रा या ऊपर लिखे अक्षरसे कुछ प्रयोजन नहीं है । इस सूत्रके अनुसार यहाँ अक्षरोंके द्वारा अंक कहे हैं । 'त' से छह, 'ल' से तीन, 'ली' से तीन, 'न' से शून्य, 'म' से पाँच, धु से नौ, ग से तीन, वि से चार, 'भ' से पाँच, 'लं' से तीन, घू से नौ, म से पांच, सि से सात, ला से तीन, गा से तीन, वि से चार, चो से छह, र से दो, भ से चार, य से एक, म से पाँच, रु से दो, त से छह, ट से एक, ह से आठ, रि से दो, ख से दो, झ से नौ, स से सात । अंकोंको बायीं ओरसे लिखनेपर उक्त संख्या होती है । इन्हीं अंकोंको एक श्लोकमें जो ऊपर टीकाकारने अपनी टीकामें दिया है; अक्षरोंके द्वारा दाहिनी ओरसे कहा है—'सा से सात, धु से नौ, र से दो, रा से दो, ज से आठ, की से एक, र्ते से छह, रे से दो, णां से पाँच, को से एक, भा से चार, र से दो, ती से एक, वि से चार, लो से दो, ल से दो, स से सात, म से पांच, धी से नौ, गु से तीन, ण से पाँच, 'व' से चार, र्ग से तीन, ध से नौ, र्म से पाँच, नि से शून्य, ग से तीन, लि से तीन, त से छह । इस गाथाकी मन्द प्रबोधिनी टीकामें 'किंचित् प्रकृतोपयोगी' लिखा है । उसका आशय यहाँ दिया जाता है—पैंतालीस लाख चौड़े गोलाकार मनुष्य क्षेत्रकी सूक्ष्म परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन, एक कोस, एक हजार सात सौ छियासठ दण्ड और पाँच अंगुल होती है । इसका क्षेत्रफल सोलह लाख नौ सौ तीन करोड़ छह लाख चौवन हजार छह सौ एक योजन, एक योजनके उन्नीस भागोंमें-से सोलह भाग प्रमाण होता है । इस क्षेत्रफलके अंगुल नौ हजार चार सौ बयालीस कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख चार हजार नौ सौ अड़सठ कोटि कोटि, उन्नीस लाख बयालीस हजार चार सौ कोटि प्रमाण होते हैं । ऐसा होनेपर मनुष्य क्षेत्रके प्रतरांगुलोंसे पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या संख्यात गुणी होती है । अतः उनकी अवगाहन शक्ति केवल आगमगम्य है । हमें इसपर कोई आक्षेप नहीं करना है । यह केवल आज्ञाश्रद्धानका विषय है,यह बतलानेके लिए आचार्योंने लिखा है । इसी प्रकार अन्य-अन्य भी विषय आज्ञाश्रद्धानमें आते हैं ॥१५८॥

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं ।
सामण्णा पुण्णूणा मणुव अपज्जत्तगा होंति ॥१५९॥

पर्य्याप्तमनुष्याणां त्रिचतुर्त्थो भागो मानुषीणां परिमाणं । सामान्याः पूर्णोना मनुष्यका अपर्य्याप्तका भवंति ।

पर्य्याप्तमनुष्यरुगळ राशित्रिचतुर्भाग मानुषियरप्प द्रव्यस्त्रीयर परिमाणमक्कुं ४२=४२=४२ ३ सामान्यमनुष्यराशियोळु पर्य्याप्तमनुष्यराशियं कळेदोडे मनुष्यापर्य्याप्तर ४
प्रमाणमक्कुं ०— १ इल्लि प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्या एंदितेरडुवरे द्वीपमे मनुष्यलोकमप्पुदरिंदमा १ । ३
मनुष्यक्षेत्रदक्षेत्रफलमं तंदु तन्मनुष्यक्षेत्रस्थरप्प मनुष्यपर्य्याप्तक व्यक्तिगळिरविंगे तत्क्षेत्रावगाहनशक्तियं तोरल्पडुगुमदे तें दोडे :—

इगिचउदुगतियसुण्णं दुग चउणवजोयणाणि इगिकोसं ।
णरमहिपरिहो इगि सग छच्छं दंडाणि पण य अंगुलयं ॥

एंदितु नाल्वत्तय्दिदु लक्षयोजनव्यासमप्प मनुष्यक्षेत्रपरिधिय प्रमाणमं 'विक्खंभवग्ग दहगुणकरणि वट्टस्स परिरहो होदि' एंदी सूत्रदिंदं तंद परिधिप्रमाण योजनंगळ १४२३०२४९ । क्रो १ दंडंगळु १७६६ अंगुलंगळु ५ । ई परिधियं व्यासचतुर्त्थांशदिंदं ४५ ल । इवर लब्धं । ११२५००० ४
गुणिसिदडे क्षेत्रफलमक्कुं । प्रमाणयोजनंगळु १६००९०३०६५४६०१ भागि १९ ई क्षेत्रफलमं २५६

पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्भागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति ४२=४२=४२=$\frac{३}{४}$ ०—

सामान्यमनुष्यराशौ पर्याप्तममनुष्यराशावपनीते अपर्याप्तमनुष्यप्रमाणं भवति । १ ३—१ अत्र च 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः, इति पञ्चचत्वारिंशल्लक्षविष्कम्भमनुष्यलोकस्य विक्खंभवग्गदहगुणेत्यादिना आनीतपरिधिः एककोटिद्वाचत्वारिंशल्लक्षत्रिंशत्सहस्रद्विशतैकोनपञ्चाशद्योजनैकक्रोशसप्तदशशतषट्षष्टिदण्डपञ्चाङ्गुलमात्रः यो १, ४२, ३०, २४९, क्रो १ दं १७६६, अं ५ । अयं च व्यासचतुर्थांशेन ४५ ल एतावता ११२५००० गुणितः षोडशलक्षनवशतत्रिकोटिषट्लक्षचतुःपंचाशत्सहस्रषट्शतैकयोजनमात्रं एकयोजनस्यैकान्नविंशतिद्विशतषट्पञ्चाशद्भागाधिकं क्षेत्रफलं भवति १६००९०३०६५४६०१ भागा १९ इदं चाङ्गुलीकर्तुं वर्गात्मकत्वाद्यो- २५६

पर्याप्त मनुष्योंकी राशिके तीन चतुर्थ भाग प्रमाण मानुषी अर्थात् द्रव्यस्त्रियोंका परिमाण होता है। सामान्य मनुष्योंकी राशिमेंसे पर्याप्त मनुष्योंकी राशिको घटानेपर अपर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण होता है। 'मानुषोत्तरपर्वतसे पहले ही मनुष्योंका निवास है', इस सूत्रकथनके अनुसार पैंतालीस लाख विष्कम्भवाले मनुष्यलोककी 'विक्खम्भवग्ग दह गुण' इत्यादि सूत्रके अनुसार निकाली गयी परिधि एक कोटि बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन, एक कोस, सतरह सौ छियासठ दण्ड और पाँच अंगुल मात्र होती है। १४२३०२४९ योजन १ क्रो, १७६६ दं. ५ अं.। इसको व्यासके चतुर्थांश ४५ से अर्थात् ११२५००० से गुणा करनेपर सोलह लाख नौ सौ तीन कोटि, छह लाख चौवन हजार छह सौ एक योजन मात्र, एक योजनके दो सौ छप्पन भागोंमें-से उन्नीस भाग १६००९०३०६५४-

प्रमाणांगुलंगलं माडलु क्षेत्रफलं वर्गात्मकमप्पुदरिंदं "वग्गरासिस्स। गुणयारभागहारा वग्गाणि हवंति णियमेण।" एंदी सूत्रदिष्टदिंदमंगुलंगळं माडले। १६०० ९० ३०६५४६०१ भागदिंद १९ ७६८००० गुणियिसि लब्धराशियं तुटे दोडे—

२५६ ७६८०००

दीर्घभूभारमयिनेव धौत जाड्याद्विभारवे। ५
र्न्नवांबरयुता संख्या नृलोके प्रतरांगुलैः॥

९४४२५१०४९६८१९४२४०००००००००।

इंतु प्रतरांगुलंगळु प्रमाणांगुलंगळेयप्पविवनिन्नुत्सेधांगुलंगळप्प व्यवहारांगुलंगळं माडल्वेळकुमेकें दोडे शरीरावगाहनंगळु व्यवहारांगुलमप्पुदरिंदमें दितु व्यवहारांगुलंगळं माडदे प्रमाणांगुलंगळने माडिदुदक्कें कारणमेनें दोडात्मांगुलापेक्षेयिंदं चतुर्थकालप्रथमदोळमुत्सर्पणतृतीयकालावसानदोळं विदेहादि क्षेत्रदोळ मय्नूरुबिल्लिडेयरपेक्षेयिंते प्रमाणांगुलमेयक्कुमें बुदु कारणमागि। १०

छट्ठुकदीए उवरिं सत्तमिए हेट्ठदो य णरपुण्णा।
तियवारादो उवरिं हेट्ठा चउवारकोडीए॥ [ ]

एंदितु पर्य्याप्तमनुष्यरुमनुक्षेत्रफलांगुलंगळं नोडलु संख्यातगुणमप्परु।

अनंतरं देवगतिजीवसंख्येयं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपं। १५

तिण्णिसय जोयणाणं वेसदछप्पण अंगुलाणं च।
कदिहिदपदरं वेंतरजोइसियाणं च परिमाणं॥१६०॥

त्रिशतयोजनानां द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां च यथाक्रमं कृतिहतप्रतरं व्यंतरज्योतिष्काणां च परिमाणं।

जनांगुलवर्गेण ७६८००० ७६८००० गुणितं नवसहस्रचतुःशतद्वाचत्वारिंशत्त्रिवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षचतुः- २०
सहस्रनवशताष्टषष्टिद्विवारकोट्येकान्नविंशतिलक्षत्रिचत्वारिंशत्सहस्रचतुःशतकोटिप्रतराङ्गुलमात्रं भवति ९४४२, ५१०४९६८, १९४३४०००००००००० एतानि च प्रमाणाङ्गुलानि नोत्सेधाङ्गुलानि कर्तव्यानि। चतुर्थकालादौ उत्सर्पिणीतृतीयकालावसाने विदेहादिक्षेत्रे चात्माङ्गुलस्यापि तत्प्रमाणत्वात्। एतेभ्यः पर्याप्तमनुष्याणां संख्यातगुणत्वेऽपि आकाशस्यावगाहशक्तिवैचित्र्यात्संशोतिर्न कर्तव्या॥१५९॥ अथ देवगतिजीवसंख्यां गाथाचतुष्टयेनाह— २५

६०१$\frac{१६}{२५६}$ क्षेत्रफल होता है। इसके अंगुल बनानेके लिए वर्गात्मक होनेसे एक योजन अंगुलके वर्गसे ७६८०००×७६८००० गुणा करनेपर नौ हजार चार सौ बयालीस कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख चार हजार नौ सौ अड़सठ कोटि कोटि, उन्नीसलाख तैंतालीस हजार चार सौ कोटि ९४४२,५१०४९६८,१९४३४०००००००० प्रतरांगुलमात्र होते हैं। ये प्रमाणांगुल हैं। इनके उत्सेधांगुल नहीं करना चाहिए। चतुर्थ कालके आदिमें और उत्सर्पिणीके तृतीयकालके अन्तमें तथा विदेह आदि क्षेत्रमें आत्मांगुल भी प्रमाणांगुलरूप होता है। इनसे पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या संख्यातगुणी होनेपर भी आकाशकी अवगाहन शक्तिकी विचित्रतामें सन्देह नहीं करना॥१५९॥ ३०

आगे देवगतिके जीवोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं—

मूनूरु योजनंगळ कृतियिंदमुमिन्नूररय्वत्तारंगुलंगळ कृतियिंदमुं भागिसल्पट्ट जगत्प्रतरे यथासंख्यं व्यंतरपरिमाणमुं ज्योतिष्कप्रमाणमुमप्पुवु । संदृष्टि व्यंतरु $\overline{=}४।६५=८१।१०^{\circ}$ ज्योतिष्करु $\overline{=}४६५=$

घण अंगुलपढमपदं तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो ।
भवणे सोहम्मदुगे देवाणं होदि परिमाणं ॥१६१॥

घनांगुलप्रथमपदं तृतीयपदं श्रेणिसंगुणं क्रमशः । भवने सौधर्म्मद्विके देवानां भवति परिमाणं ।

श्रेणिय गुणियिसिद घनांगुलप्रथमवर्गमूलमुं तृतीयवर्गमूलमुं यथाक्रमदिंदं भवंगळोळं सौधर्म्मद्वयदोळं देवर्क्कळ प्रमाणमक्कुं । संदृष्टि भावनरु—१ सौधर्म्मद्वयदोळु—३ ।

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूल भाजिदा सेढी ।
पल्लासंखेज्जदिमा पत्तेयं आणदादिसुरा ॥१६२॥

तत एकादशनवमसप्तमपंचमचतुर्थनिजमूलभाजिता श्रेणी । पल्यासंख्येयभागाः प्रत्येकमानतादिसुराः ।

त्रिशतयोजनानां कृत्या षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशताङ्गुलानां कृत्या च भाजितौ जगत्प्रतरौ यथासंख्यं व्यन्तरप्रमाणं ज्योतिष्कप्रमाणं च भवति । संदृष्टिः व्यन्तराः $\overline{=}४।६५=।८१।१०^{\circ}$ ज्योतिष्काः $\overline{=}४।६५=$ ॥१६०॥

श्रेणीगुणितघनाङ्गुलप्रथमवर्गमूलं श्रेणिगुणितघनाङ्गुलतृतीयवर्गमूलं च यथाक्रमं भवनेषु सौधर्मद्वये च देवानां प्रमाणं भवति । संदृष्टिः—भावनाः –१ । सौधर्मद्वयजाः –३ ॥१६१॥

तीन सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरको देनेसे जो परिमाण हो, उतना व्यन्तरोंका प्रमाण है। और दो सौ छप्पन अंगुलके वर्गका भाग जगतप्रतरमें देनेसे जो परिमाण आवे, उतना ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—तीन सौ योजन लम्बा, तीन सौ योजन चौड़ा और एक प्रदेश ऊँचा क्षेत्रमें जितने आकाशके प्रदेश हों, उनका भाग जगतप्रतरमें देनेसे व्यन्तर देवोंका प्रमाण आता है। सो उक्त क्षेत्रके प्रतरांगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे गुणित इक्यासी हजार कोटि प्रमाण होते हैं। यही जगत्प्रतरका भागहार है। तथा ज्योतिष्क देवोंकी संख्या लानेके लिए दो सौ छप्पन अंगुल प्रमाण क्षेत्रके प्रतरांगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस होते हैं, वही जगत्प्रतरका भागहार है ॥१६०॥

घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतना भवनवासी देवोंका परिमाण है। तथा घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतना सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंका परिमाण है ॥१६१॥

---

१. भवतः ब ।

इल्लिदत्तलु सानत्कुमारमाहेंद्रयुगलं मोदल्गोंडु शतारसहस्रारयुगलावसानमादय्दुं कल्पयुगलंगळोळु देवक्कळु यथाक्रमदिंदं निजैकादशमूलदिंदं नवममूलदिंदं सप्तममूलदिंदं पंचममूलदिंदं चतुर्थमूलदिंदं भागिसल्पट्ट जगच्छ्रेणिप्रमितरप्परु। मत्तमिल्लिदं मेलानतादिकल्पयुगलद्वयदोळं ग्रैवेयकाधस्तनमध्यमोपरिमत्रयदोळमनुदिशविमानंगळोळं नाल्कनुत्तरविमानंगळोळं देवक्कळु प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागप्रमितरप्परु। संदृष्टि –।–।–।–।–।प।प।प।प।प।प।प ५

११।९।७।५।४।०।०।०।०।०।०।०।

तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो।
सामण्णदेवरासी जोइसियादो विसेसहिया ॥१६२॥

त्रिगुणाः सप्तगुणा वा सर्वार्थ्या मानुषीप्रमाणतः। सामान्यदेवराशिर्ज्योतिषिकात् विशेषाधिकः। १०

सर्व्वार्थसिद्धिजरप्पहमिंद्ररु मनुष्यरस्त्रीयर संख्येयं नोडलु त्रिगुणमप्परु। अथवा आचार्य्यांतराभिप्रायदिंदं सप्तगुणरुमप्परु ४२=४२=४२=३।३।७ भावनव्यन्तरकल्पजदेवक्कळु कूडिद साधिकव्यंतरराशियं ज्योतिष्करराशियोळु संख्यातैकभागमं $=\frac{१}{४६५}$ ० कूडिदोडे $=८१।१०$

सर्व्वसामान्यदेवराशियक्कुं ॥ संदृष्टि $=\frac{१}{४।६५}$ ७।

तत्त उपरि सनत्कुमारमाहेन्द्रयुगलादारभ्य शतारसहस्रारयुगलावसानपञ्चकल्पयुगलेषु देवाः यथाक्रमं निजैकादशमूलेन नवममूलेन सप्तममूलेन पञ्चममूलेन चतुर्थमूलेन भाजितजगच्छ्रेणिप्रमिता भवन्ति। ११। ९। ७। ५। ४ पुनः तत उपरि आनतादिकल्पयुगलद्वये अधस्तनमध्यमोपरिमग्रैवेयकत्रये अनुदिशविमानेषु चतुरनुत्तरविमानेषु च देवाः प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवन्ति प ॥१६२॥

०

सर्वार्थसिद्धिजाहमिन्द्राः मनुष्यस्त्रीसंख्यातः त्रिगुणा भवन्ति। अथवा आचार्यान्तराभिप्रायेण सप्तगुणा भवन्ति ४२=४२=४२=$\frac{३}{७}$। ३। ७। ज्योतिष्कराशिमध्ये भावनकल्पवासिदेवसाधिकव्यन्तरराशौ

इससे ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र युगलसे लेकर शतार सहस्रारयुगल पर्यन्त पाँच कल्प युगलोंमें क्रमसे जगतश्रेणीके ग्यारहवें वर्गमूलसे, नवें वर्गमूलसे, सातवें वर्गमूलसे, पाँचवें वर्गमूलसे, और चतुर्थवर्गमूलसे जगतश्रेणीमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना परिमाण होता है। उससे ऊपर आनत आदि दो कल्पयुगलोंमें, अधोग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकोंमें, अनुदिश विमानोंमें और चार अनुत्तरविमानोंमें-से प्रत्येकमें देव पल्यके असंख्यातवें भाग हैं ॥१६२॥

सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंका प्रमाण मनुष्यस्त्रियोंकी संख्यासे तिगुणा है। अथवा अन्य आचार्यके अभिप्रायसे सात गुणा है। ज्योतिष्क देवोंकी राशिमें भवनवासी और कल्पवासी देवोंसे साधिक व्यन्तर देवोंकी राशिको, जो कि ज्योतिषीदेवोंके संख्यातवें भाग हैं, जोड़नेपर सामान्य देवराशिका प्रमाण होता है। ३०

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु मंडलाचार्यवर्य्य महावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु षष्ठगतिमार्गणाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ।

५ संख्येयभागमात्रे ४ । ६५ = । ८१ । १० युक्ते सति सर्वसामान्यदेवराशिर्भवति । ४ । ६५ = ७ ॥१६३॥

विशेषार्थ—ज्योतिष्क देवोंकी राशिसे विशेष अधिक सामान्य देवराशि है। उस विशेष अधिकका प्रमाण इस प्रकार है—ज्योतिष्क देवराशिके संख्यातवें भाग व्यन्तरदेवोंकी राशि, असंख्यात श्रेणीमात्र भवनवासी देवोंकी राशि, और असंख्यात श्रेणी मात्र वैमानिक देवोंकी राशि, इन्हें ज्योतिष्क देवोंकी राशिमें जोड़नेसे सामान्य देवराशिका प्रमाण १० होता है ॥१६३॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहको भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी १५ अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से गति प्ररूपणा नामक छठा महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

१. = ११ ब ।

इन्द्रियमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ॥७॥

अनंतरमिंद्रियमार्गणेयं प्रारंभिसुत्तमिंद्रियशब्दक्के निरुक्तिपूर्व्वकमर्त्थमं पेळ्दपं ।

अहमिंदा जह देवा अविसेसं अहमहंति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिए जाण ॥१६४॥

अहमिंद्रा यथा देवा अविशेषमहमहमिति मन्यमानाः । ईशत एकमेकं इंद्रा इवेंद्रियाणि जानीहि ।

येंतिगळु ग्रैवेयकादिभवरप्पऽहमिंद्रदेवर्क्कळु अहमहमेंदितु स्वामिभृत्यविशेषशून्यमं बगेयुत्तमेकैकमोरोर्व्वरु माज्ञादिगळिनपरतंत्ररु । ईशते प्रभवंति स्वामिभावमं पोद्दुवरहंगे स्पर्शनादींदियंगळु स्पर्शनादिस्वस्वविषयंगळोळु ज्ञानमं पुट्टिसुवेडेयोळु । ईशते परमुखाऽप्रेक्षतेयिंदं प्रभविसुववु कारणदिंदमहमिंद्ररंते इंद्रियंगळेंदितु ।

श्रीमन्तं त्रिजगत्पूज्यं लोकालोकप्रकाशकम् ।
सप्तमं तीर्थकर्तारं श्रीसुपार्श्वं नमाम्यहम् ॥७॥

अथेन्द्रियमार्गणां प्रारभमाणः इन्द्रियशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति—

यथा ग्रैवेयकादिजाता[1] अहमिन्द्रदेवा अहमहमिति स्वामिभृत्यादिविशेषशून्यं मन्यमाना एकैके भूत्वा आज्ञादिभिरपरतन्त्राः[2] सन्तः ईशते—प्रभवन्ति-स्वामिभावं श्रयन्ति तथा स्पर्शनादीन्द्रियाण्यपि स्पर्शादिस्वस्वविषयेषु ज्ञानमुत्पादयितुं ईशते-परानपेक्षतया प्रभवन्ति ततः कारणात् अहमिन्द्रा इव इन्द्रियाणीति सादृश्यार्था-

लोकालोकके प्रकाशक जगत्पूज्य सप्तम तीर्थंकर भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामीको नमस्कार करता हूँ ।

आगे इन्द्रिय मार्गणाको प्रारम्भ करते हुए इन्द्रिय शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहते हैं—

जैसे ग्रैवेयक आदिमें उत्पन्न हुए अहमिन्द्रदेव स्वामी-सेवक आदिके भेदसे रहित 'मैं ही हूँ' इस प्रकार मानते हुए एक-एक होकर आज्ञा आदिके पराधीनतासे रहित होते हुए अपनेको स्वामी मानते हैं । उसी प्रकार स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ भी अपने-अपने स्पर्श आदि विषयोंमें ज्ञान उत्पन्न करनेके लिए अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करते हुए स्वयं समर्थ होती हैं । इस कारणसे अहमिन्द्रोंके समान इन्द्रियाँ हैं । इस प्रकार सादृश्यका आश्रय लेकर इन्द्रिय शब्दका निरुक्तिसे सिद्ध अर्थ हे शिष्य तू जान ॥

विशेषार्थ—जैसे अहमिन्द्र देव अपने-अपने व्यापारमें स्वतन्त्र होते हैं, उसी तरह इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयको ग्रहण करनेमें स्वतन्त्र हैं । कोई इन्द्रिय अपने विषयको

१. दिजा अ—ब । २. त्रा इ—ब ।

सादृश्यार्थाश्रयनिरुक्तिसिद्धरप्पिंद्रियशब्दार्थमं नीनरियें दितु शिष्यसंबोधनं प्रतिपत्तव्यमक्कुं।

अनंतरमिंद्रियभेदस्वरूपनिरूपणार्थं पेळ्दपं।

मदियावरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा।
भाविंदियं तु दव्वं देहुदयजदेहचिण्हं तु ॥१६५॥

मत्यावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धिः खलु तज्जबोधो वा। भावेंद्रियं तु द्रव्यं देहोदयजदेहचिह्नं तु।

मतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धियदु तानु जीवक्कर्त्थग्रहणशक्तिलक्षणमप्प लब्धियं बुदक्कुं। ई लब्धियुं मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितबोधमुमर्त्थग्रहणव्यापाररूपमप्पुपयोगमुमिंतेरडुं भावेंद्रियं एंदु पेळल्पट्टुदु।

भावमें बुदु चित्परिणामं तदात्मकमप्पेंद्रियं भावेंद्रियमक्कुमेकें दोडे इंद्रस्यात्मनो लिंगमिंद्रियमें दितु व्युत्पत्तिवशदिदं लब्ध्युपयोगलक्षणचित्परिणामक्कंये भावेंद्रियत्वसमर्थनदत्तणिदं। मत्ते जातिनामकर्म्मोदयसहकारिदेहनामकर्म्मोदयजनितमप्प निर्वृत्युपकरणरूपं देहचिह्नमेकेंद्रियादिशरीरक्के प्रतिनियतसंस्थानाभिव्यंजकमप्प पुद्गलद्रव्यात्मकमप्पेंद्रियं द्रव्येंद्रियमें दितु इंद्रियं द्रव्यभावात्मकतेयिदं द्विप्रकारमागि भेदिसल्पट्टुदिल्लि लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियमें दितु लब्धियें बुदर्त्थ-

---

श्रयनिरुक्तिसिद्धमिन्द्रियशब्दार्थं जानीहि इति शिष्यसम्बोधनं प्रतिपत्तव्यं ॥१६४॥ अथेन्द्रियभेदस्वरूपं निरूपयति—

प्रतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्था विशुद्धिर्जीवस्यार्थग्रहणशक्तिलक्षणलब्धिः[२], मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितबोधश्चार्थग्रहणव्यापाररूपोपयोगः[3] इति द्वयं भावेन्द्रियम्। भावः—चित्परिणामः, तदात्मकमिन्द्रियं भावेन्द्रियं, इन्द्रस्य—आत्मनो लिङ्गं इन्द्रियं इति व्युत्पत्त्यापि लब्ध्युपयोगलक्षणस्यैव भावेन्द्रियत्वसमर्थनात्। पुनः जातिनामकर्मोदयसहकारि देहनामकर्मोदयजनितं निर्वृत्त्युपकरणरूपं[४], देहचिह्नं एकेन्द्रियादिशरीरस्य प्रतिनियतसंस्थानाभिव्यञ्जकरूपपुद्गलद्रव्यात्मकमिन्द्रियं द्रव्येन्द्रियम्। एवमिन्द्रियं द्रव्यभावात्मकतया द्विधा

ग्रहण करनेमें दूसरी इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं करती। अतः इन्द्रके समान स्वतन्त्र होनेसे इन्द्रिय कहते हैं ॥१६४॥

आगे इन्द्रियके भेद और उनका स्वरूप कहते हैं—

मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई विशुद्धि जो जीवके अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति है, वह लब्धि है। वह लब्धि मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ बोधरूप है। और अपने विषयको ग्रहण करनेके व्यापारका नाम उपयोग है। ये दोनों लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय हैं। आत्माके परिणामको भाव कहते हैं, उस रूप इन्द्रिय भावेन्द्रिय है। इन्द्र अर्थात् आत्माके लिंगको इन्द्रिय कहते हैं। इस व्युत्पत्तिसे भी लब्धि और उपयोग लक्षणवाली भावेन्द्रियका ही समर्थन होता है। तथा जाति-नाम-कर्मके उदयके साथ शरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न निर्वृत्ति और उपकरणरूप देह चिह्न द्रव्येन्द्रिय है। अर्थात् एकेन्द्रिय आदिके शरीरके प्रतिनियत आकारको व्यक्त करने रूप पुद्गल द्रव्यसे बनी इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय है। इस तरह इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रियके भेदसे दो प्रकारकी होती है। उनमें-से लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय है। अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति लब्धि है। अर्थको

---

१. म प्राप्तेति चें°। २. -ब्दार्थत्वं जा-ब। ३. लब्धिः सा च म-मु०। ४. बोधः स्वा-मु०।

ग्रहणशक्तियक्कुमर्त्थग्रहणव्यापारमुपयोगमक्कुं। प्रत्यक्षनिरतानींद्रियाणि। अक्षाणींद्रियाणि अक्षमक्षं प्रति वर्त्तत इति प्रत्यक्षं। विषयोऽक्षजो बोधो वा तत्र निरतानि व्यापृतानींद्रियांणि। विशेषाभावात्तेषां संकरव्यतिकररूपेण व्यापृतिः प्राप्नोतीति चेन्न प्रत्यक्षे नियमिते रतानिति प्रतिपादनात् संकरव्यतिकरदोषनिवारणाय। स्वविषयनिरतानींद्रियाणीति वा वक्तव्यं। स्वेषां विषयः स्वविषयस्तत्र नि निश्चयेन निर्णयेन रतानींद्रियाणि स्वविषयनिरतानींद्रियाणि। संशयविपर्य्यासावस्थायां निर्णयात्मकरतेरभावात्तत्रात्मनोऽनिंद्रियत्वं स्यादिति चेन्न रूढिबलादुभयत्र प्रवृत्त्यविरोधः।

अथवा स्ववृत्तिनिरतानींद्रियाणि। संशयविपर्य्ययनिर्णयादौ वर्त्तनं वृत्तिस्तस्यां स्ववृत्तौ रतानींद्रियाणि। निर्व्यापारावस्थायामनिंद्रियव्यपदेशः स्यादिति चेन्न दत्तोत्तरत्वात्।

भिद्यते। तत्र लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियमिति, अर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः अर्थग्रहणव्यापार उपयोगः। 'प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि' अक्षाणि इन्द्रियाणि, अक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षं विषयः, अक्षबोधो वा। तत्र निरतानि व्यापृतानीन्द्रियाणि। विशेषाभावात्तेषां संकरव्यतिकररूपेण व्यापृतिः प्राप्नोति ? इति चेन्न, प्रत्यक्षे नियमिते रतानीति प्रतिपादनात्। संकरव्यतिकरदोषनिवारणाय स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणीति वा वक्तव्यम्। स्वेषां विषयः स्वविषयः, तत्र निश्चयेन निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि[2] स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि। संशयविपर्यासावस्थायां निर्णयात्मकरतेरभावात् तत्र आत्मनोऽनिन्द्रियत्वं स्यात् ? इति चेन्न रूढिबलादुभयत्र प्रवृत्त्यविरोधः। अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानीन्द्रियाणि' संशयविपर्ययनिर्णयादौ वर्तनं—वृत्तिः तस्यां स्ववृत्तौ निरतानीन्द्रियाणि।

ग्रहण करनेका व्यापार उपयोग है। इन्द्रिय शब्दकी आगममें विविध निरुक्ति मिलती है, उसे कहते हैं—

'प्रत्यक्षनिरतानि इन्द्रियाणि'—अक्ष अर्थात् इन्द्रिय। अक्ष अक्ष प्रति जो प्रवृत्त हो, वह प्रत्यक्ष है। इस व्युत्पत्तिके अनुसार प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ विषय और इन्द्रियजन्य ज्ञान दोनों होता है। उसमें जो निरत अर्थात् व्यापारयुक्त है, वह इन्द्रिय है।

शंका—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तो कोई भेद न होनेसे संकर और व्यतिकर रूपमें भी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति प्राप्त होती है अर्थात् एक ही विषयमें सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति हो सकेगी। यह संकर है। या जिस विषयको रसना जान सकती है, उसे घ्राण जान सकेगी और घ्राणके विषयमें रसनाकी प्रवृत्ति हो सकेगी—यह व्यतिकर है।

समाधान—नहीं, क्योंकि नियमित प्रत्यक्षमें जो रत है, वह निरत है; ऐसा निरत शब्दका अर्थ कहा है। अथवा संकर व्यतिकर दोषको निवारण करनेके लिए 'स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि' ऐसा कहना चाहिए। स्वविषय अर्थात् अपने-अपने विषयमें निश्चय रूपसे या निर्णयात्मक रूपसे रत इन्द्रियाँ स्वविषयनिरत इन्द्रियाँ हैं।

शंका—संशय और विपर्ययकी अवस्थामें निर्णयात्मक रतिका अभाव होनेसे आत्माको अनिन्द्रियपना प्राप्त होगा;

समाधान—नहीं प्राप्त होता; क्योंकि रूढ़िके बलसे दोनोंमें प्रवृत्ति होनेमें विरोध नहीं है अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानीन्द्रियाणि' ऐसा कहना चाहिए। संशय, विपर्यय, निर्णय आदिमें प्रवृत्ति करना वृत्ति है। उस अपनी वृत्तिमें निरत इन्द्रियाँ हैं।

शंका—यदि इन्द्रिय अपने विषयमें प्रवृत्त न होकर निर्व्यापार रहे, तो वह उस अवस्थामें अनिन्द्रिय कहलायेगी ?

---

१. रूपं चि–ब। २. निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि सं–ब।

अथवा स्वार्थं निरतानींद्रियाणि । अर्य्यते परिच्छिद्यत इत्यर्थः । स्वस्मिन्नर्थे च निरतानींद्रियाणि निरवद्यत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति । अथवा इंदनादाधिपत्यादींद्रियाणि स्पर्शरसगंधरूपशब्दज्ञानावरणकर्म्मणां क्षयोपशमाः द्रव्येंद्रियकारणानींद्रियाणीत्यर्थः ।

यदींद्रस्यात्मनो लिंगं यदि वेंद्रेण कर्म्मणा ।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदींद्रियं ॥ [ ]
मलविद्धमणिव्यक्तिर्य्यथानेकप्रकारतः ।
कर्म्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥ [ ]

मत्तमा इंद्रियंगळोळु तत्तदावरणक्षयोपशमविशिष्टात्मप्रदेशसंस्थानमभ्यंतरनिर्वृत्तियक्कुं । तदवष्टब्धशरीरप्रदेशसंस्थानं बाह्यनिर्वृत्तियक्कुं । इंद्रियपर्य्याप्त्यायातनोकर्म्मवर्गणास्कंधरूपं स्पर्शाद्यर्थज्ञानसहकारि यत्तदभ्यंतरमुपकरणं तदाश्रयमप्प त्वगादिकं बाह्यमुपकरणमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं ।

निर्व्यापारावस्थायामनिन्द्रियव्यपदेशः स्यादिति चेन्न, दत्तोत्तरत्वात् । अथवा 'स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणि' अर्यते—परिच्छिद्यते इत्यर्थः स्वस्मिन्नर्थे च निरतानीन्द्रियाणि निरवद्यत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति । अथवा इन्दनादाधिपत्यात् इन्द्रियाणि स्पर्शरसगन्धरूपशब्दज्ञानावरणकर्मणां क्षयोपशमाः द्रव्येन्द्रियकारणानीन्द्रियाणीत्यर्थः । उक्तं च—

यदिन्द्रस्यात्मनो लिङ्गं यदि वा इन्द्रेण कर्मणा ।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदिन्द्रियम् ॥—[ ]
मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथानेकप्रकारतः ।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥—[ ]

पुनस्तेष्विन्द्रियेषु तत्तदावरणक्षयोपशमविशिष्टात्मकप्रदेशसंस्थानमभ्यन्तरनिर्वृत्तिः । तदवष्टब्धशरीरप्रदेशसंस्थानं बाह्यनिर्वृत्तिः । इन्द्रियपर्याप्त्यायातनोकर्मवर्गणास्कन्धरूपं स्पर्शाद्यर्थज्ञानसहकारि यत्तदभ्यन्तरमुपकरणम् । तदाश्रयभूतत्वगादिकं बाह्यमुपकरणमिति ज्ञातव्यम् ॥१६५॥

समाधान—नहीं, इसका उत्तर दे चुके हैं कि रूढ़िके बलसे वह इन्द्रिय ही है । अथवा 'स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणि'। 'अर्यते' अर्थात् जो जाना जाये वह अर्थ है । अपने अर्थमें जो निरत हैं, वे इन्द्रियाँ हैं । निर्दोष होनेसे इसमें किसी तर्कके लिए स्थान नहीं है । अथवा 'इन्दनात्' अर्थात् स्वामित्वके कारण इन्द्रियाँ हैं । स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द सम्बन्धी ज्ञानावरण कर्मोंके जो क्षयोपशम द्रव्येन्द्रियके कारण हैं, वे इन्द्रियाँ हैं; यह इसका अभिप्राय है । जो इन्द्र अर्थात् आत्माका लिंग (चिह्न) है, वह इन्द्रिय है । अथवा इन्द्र अर्थात् कर्मके द्वारा रची गयी है, सेवित है, दृष्ट अथवा दत्त है, वह इन्द्रिय है । जैसे मलसे लिपटी हुई मणिकी व्यक्ति अनेक प्रकारसे होती है, उसी तरह कर्मोंसे लिप्त आत्माकी व्यक्ति भी अनेक प्रकारसे होती है अर्थात् ये इन्द्रियाँ कर्मविद्ध आत्माकी ही विविध प्रकारसे व्यक्तियाँ हैं ।

द्रव्येन्द्रियके दो भेद हैं—निर्वृत्ति और उपकरण । ये दोनों भी बाह्य और अभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारके हैं । अपने-अपने आवरणके क्षयोपशमसे विशिष्ट आत्मप्रदेशोंका इन्द्रियके आकार रचना होना अभ्यन्तरनिर्वृत्ति है । और उन आत्मप्रदेशोंसे सम्बद्ध स्थानमें शरीरके प्रदेशोंकी तदनुरूप रचना बाह्यनिर्वृत्ति है । इन्द्रिय पर्याप्तिके द्वारा आये नोकर्मवर्गणारूप स्कन्ध जो स्पर्श आदि अर्थके ज्ञानमें सहायक हैं, वह अभ्यन्तर उपकरण है । और उसके आश्रयभूत त्वचा वगैरह बाह्य उपकरण हैं ॥१६५॥

अनंतरं तथाविधेंद्रियंगळिंदमुपलक्षितंगळप्प जीवंगळं पेळ्दपं :—

फासरसगंधरूवे सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं ।
इगिबितिचदुपंचिंदिय जीवा णियभेयभिण्णाओ ॥१६६॥

स्पर्शरसगंधरूपे शब्दे ज्ञानं च चिह्नं येषां । एकद्वित्रिचतुः पंचेंद्रिय जीवा निजभेदभिन्नाः ॥

आवुवु केलवु जीवंगळगे स्पर्शदोळे ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळेकेंद्रियजीवंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु द्वींद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु त्रींद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं रूपदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु चतुरिंद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं रूपदोळं शब्ददोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु पंचेंद्रियंगळु । आ एल्ला जीवंगळुं निजनिजभेदप्रभेदभिन्नंगळिंदितरियल्पडुववु ।

अनंतरमेकेंद्रियादिजीवंगळगे संभविसुविंद्रियसंख्याप्ररूपणार्थं पेळ्दपं ।

एइंदियस्स फुसणं एक्कंचि य होदि सेसजीवाणं ।
होंति कमवड्ढियाइं जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं ॥१६७॥

एकेंद्रियस्य स्पर्शनमेकमेव भवति शेषजीवानां । भवंति क्रमवर्द्धितानि जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि ।

एकेंद्रियजीवक्के स्पर्शनमो दे इंद्रियमक्कुं । शेषद्वींद्रियादिजीवंगळगे जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्रंगळु क्रमदिंदमेकैकवृद्धंगळप्पुवु । एकमेवेंद्रियं येषां ते एकेंद्रियाः । द्वे एवेंद्रिये येषां ते द्वींद्रियाः । त्रीण्ये-

---

अथ तथाविधेन्द्रियोपलक्षितजीवानाह—

येषां जीवानां स्पर्शे ज्ञानं चिह्नं ते जीवा एकेन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसयोर्ज्ञानं चिह्नं ते जीवा द्वीन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवास्त्रीन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धरूपेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाश्चतुरिन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धरूपशब्देषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाः पञ्चेन्द्रियाः । ते सर्वेऽपि जीवा निजनिजभेदभिन्ना इति ज्ञातव्याः ॥१६६॥ अथैकेन्द्रियादिजीवानां संभवदिन्द्रियसंख्यां प्ररूपयति—

एकेन्द्रियजीवस्य एकं स्पर्शनमेव भवति । शेषद्वीन्द्रियादिजीवानां जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि क्रमेणैकैक-

---

आगे इन्द्रियोंसे युक्त जीवोंको कहते हैं—

जिन जीवोंका चिह्न स्पर्शविषयक ज्ञान है, वे जीव एकेन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श और रसका ज्ञान है, वे जीव दोइन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस और गन्धका ज्ञान है, वे जीव तेइन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस, गन्ध और रूपका ज्ञान है, वे जीव चतुरिन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दका ज्ञान है, वे जीव पंचेन्द्रिय हैं। ये सब जीव अपने-अपने भेदसे अनेक प्रकारके हैं ॥१६६॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंके सम्भाव्य इन्द्रियोंकी संख्या कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन ही होती है। शेष दो इन्द्रिय आदि जीवोंके जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रमें-से क्रमसे एक-एक अधिक होती है। जिनके एक ही इन्द्रिय है, वे एकेन्द्रिय

---

१. म स्पर्शन । २. म रसन । ३. म स्पर्शन । ४. म घालु । स्पर्शनदोलं । ५. म भालु स्पर्शन दोलं । ६. म °गलेदरियल्प° ।

वेंद्रियाणि येषां ते त्रींद्रियाः। चत्वार्येवेंद्रियाणि येषां ते चतुरिंद्रियाः। पंचैवेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रियाः। एंदितु व्युत्पत्तिसिद्धंगळप्पुवु।

अनंतरं स्पर्शनादींद्रियंगळ्गे विषयक्षेत्रपरिमाणमं पेळ्दपं।

धणुवीसडदसयकदी जोयणछादालहीणतिसहस्सा।
अट्ठसहस्स धणूणं विसया दुगुणा असण्णित्ति ॥१६८॥

धनुर्विंशत्यष्टदशकृतिर्य्योजनानां षट्चत्वारिंशद्धीनत्रिसहस्राणि। अष्टसहस्रं धनुषां विषया द्विगुणा असंज्ञिपर्य्यंतं॥

एकेंद्रियजीवक्के स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्रं विंशतिकृतिदंडप्रमितमक्कुं ४००। द्वींदियाद्यसंज्ञिपर्य्यंतं स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु ८००। १६००। ३२००। ६४००। द्वींद्रियजीवक्के रसनेंद्रियविषयमष्टकृतिदंडप्रमाणमक्कुं ६४। त्रींद्रियादियसंज्ञिपंचेंद्रियावसानमाद जीवंगळ्गे रसनेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु। १२८। २५६। ५१२। त्रींद्रियजीवक्के घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रं दशकृतिदंडपरिमितमक्कुं। १००। चतुरिंद्रियादिगळ्गे घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु। च २००। अ ४००। चतुरिंद्रियजीवक्के चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं षट्चत्वारिंशन्न्यूनत्रिसहस्रयोजनपरिमितमक्कुं।२९५४।

वृद्धानि भवन्ति। एकमेव इन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः। द्वे एव इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः। त्रीण्येवेन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः। चत्वारि एव इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः। पञ्चैव इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रिया इति व्युत्पत्तिसिद्धत्वात् ॥१६७॥ अथ स्पर्शनादीन्द्रियाणां विषयक्षेत्रं प्रमाणयति—

एकेन्द्रियजीवस्य स्पर्शनेन्द्रियविषयक्षेत्रं विंशतिकृतिदण्डप्रमितं भवति। ४००। द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपर्यन्तं स्पर्शनेन्द्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवन्ति। ८००। १६००। ३२००। ६४००। द्वीन्द्रियजीवस्य रसनेन्द्रियविषयक्षेत्रम् अष्टकृतिदण्डप्रमाणं भवति। ६४। त्रीन्द्रियाद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियावसानजीवानां रसनेन्द्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवन्ति। १२८। २५६। ५१२। त्रीन्द्रियजीवस्य घ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्रं दशकृतिदण्डपरिमितं भवति १००। चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवयोर्घ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणद्विगुणक्रमं भवति। २००। ४००। चतुरिन्द्रियजीवस्य चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं षट्चत्वारिंशन्न्यूनत्रिसहस्रयोजनप्रमितं

हैं। जिनके दो ही इन्द्रियाँ हैं, वे दोइन्द्रिय हैं। जिनके तीन ही इन्द्रियाँ हैं, वे तेइन्द्रिय हैं। जिनके चार ही इन्द्रियाँ हैं, वे चौइन्द्रिय हैं और जिनके पाँच इन्द्रियाँ हैं, वे पंचेन्द्रिय हैं। इस तरह प्रत्येककी व्युत्पत्तिसे सिद्ध है ॥१६७॥

आगे स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीवके स्पर्शन इन्द्रियके विषयका क्षेत्र बीसकी कृति अर्थात् ४०० धनुष प्रमाण है। दो इन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त जीवोंके स्पर्शन इन्द्रियके विषयका क्षेत्र क्रमसे दूना-दूना होता है—८००।१६००।३२००।६४००। दो इन्द्रिय जीवके रसना इन्द्रियके विषयका क्षेत्र आठकी कृति अर्थात् ६४ धनुष प्रमाण होता है। तेइन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय-पर्यन्त जीवोंके रसना इन्द्रियका विषयक्षेत्र क्रमसे दूना-दूना १२८।२५६।५१२ धनुष होता है। तेइन्द्रिय जीवके घ्राणेन्द्रियका विषयक्षेत्र दसकी कृति अर्थात् १०० धनुष होता है। चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके घ्राणेन्द्रियका विषयक्षेत्र दूना-दूना २००।४०० धनुष होता है। चतुरिन्द्रिय जीवके चक्षु इन्द्रियके विषयका क्षेत्र छियालीस कम तीन हजार योजन

असंज्ञिपंचेंद्रियक्के चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं तद्द्विगुणमक्कुं । ५९०८ । असंज्ञिपंचेंद्रियक्के श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्रं अष्टसहस्रदंडावच्छिन्नमक्कुं । ८००० ॥

सण्णिस्स बार सोदे तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स ।
सत्तेतालसहस्सा बेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥१६९॥

संज्ञिनो द्वादश श्रोत्रे त्रयाणां नवयोजनानि चक्षुषः । सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशतत्रिषष्टि- ५
रतिरेकाणि ॥

संज्ञिपंचेंद्रियक्के स्पर्शनरसनघ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु नवनव-योजन प्रमितंगळक्कुं । ९ । ९ । ९ । चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं साधिकत्रिषष्टयभ्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितमक्कुं । ४७२६३ । ७ । श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्रं द्वादशयोजनप्रमितमक्कुं १२ ।

तिण्णिसयसट्ठिविरहिदलक्खं दसमूलताडिदे मूलं । १०
णवगुणिदे सट्ठिहिदे चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ॥१७०॥

त्रीणि शतानि षष्ठिविरहितलक्षं दशमूलताडिते मूलं नवगुणितं षष्ठिहृते चक्षुःस्पर्श-स्याध्वानम् ।

जंबूद्वीपलक्षयोजनव्यासदोळु पार्श्वद्वयद्वीपचारक्षेत्रमं मूनूररुवत्तु योजनमं कळेदोडे शेषमभ्यं-तरपरिधिविष्कंभप्रमाणमक्कुं । ९९६४० । १५

इदं "विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदि" एंदु वर्गिसि दशगुणितं माडिद करणियं ९९२८१२९६००० मूलंगोळलभ्यंतरपरिधिप्रमाणमक्कुं । ३१५०८९ इल्लि त्रैराशिकं

भवति । २९५४ । असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणं भवति । ५९०८ । असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य श्रोत्रेन्द्रियविषयक्षेत्रं अष्टसहस्रदण्डावच्छिन्नं भवति ८००० ॥१६८॥

संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्राणि नवनवयोजनमात्राणि चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं २०
साधिकं त्रिषष्ट्यभ्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं भवति । ४७२६३ $\frac{७}{१००}$ श्रोत्रेन्द्रियविषयक्षेत्रं द्वादशयोजनमात्रं भवति ॥१६९॥

जम्बूद्वीपस्य लक्षयोजनव्यासः पार्श्वद्वयद्वीपचारक्षेत्रेण षष्ट्यधिकत्रिशतयोजनमात्रेण विरहितोऽभ्यन्तर-परिधिविष्कम्भः स्यात् ९९६४० । अस्य वर्गं कृत्वा दशकरण्या वर्गमूलग्रहणयोग्यराशिना गुणयित्वा ९९२८१२९६००० मूले गृहीते अभ्यन्तरपरिधिप्रमाणं भवति । ३१५०८९ । षष्टिमुहूर्तानां प्र ६० एतावद्ग- २५

प्रमाण २९५४ होता है । असंज्ञी पंचेन्द्रियके चक्षु इन्द्रियका विषयक्षेत्र उससे दूना ५९०८ योजन होता है । असंज्ञी पंचेन्द्रियके श्रोत्रेन्द्रियके विषयका क्षेत्र आठ हजार धनुष है ॥१६८॥

संज्ञी पंचेन्द्रियके स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रियके विषयका क्षेत्र नव-नव योजन मात्र है । चक्षु इन्द्रियका विषयक्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ तरेसठ योजन तथा सात योजनका बीसवाँ भाग अधिक है ४७२६३ $\frac{७}{२०}$ । श्रोत्र इन्द्रियका विषयक्षेत्र बारह योजन ३०
मात्र है ॥१६९॥

संज्ञी पंचेन्द्रियके चक्षु इन्द्रियके विषयके उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण लानेकी यह विधि है—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है । सूर्यके गमनका क्षेत्र, जिसे चार क्षेत्र कहते हैं, जम्बूद्वीपके भीतर दोनों पार्श्वोंमें एक सौ अस्सी-एक सौ अस्सी योजन तक है । अतः एक लाखमें-से तीन सौ साठ कम करनेपर जम्बूद्वीपकी अभ्यन्तर परिधिका विस्तार ९९६४० ३५

माडल्पडुगुं। अरुवत्तु मुहूर्त्तक्केल्लमिनितु गम्यक्षेत्रमागलो भत्तु मुहूर्त्तक्केनितु गम्यक्षेत्रमक्कुमेंदितु प्र । मू ६० । फ । ३१५०८९ । इ । मु । ९ । लब्धक्षेत्रं चक्षुरिन्द्रियविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रमक्कुं। ४७२६३ ३/६० अनंतरमिंद्रियंगळगे संस्थाननिर्देशमं माडिदपं।

चक्खू सोदं घाणं जिब्भायारं मसूरजवणाली।
अदिमुत्तखुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

चक्षुःश्रोत्रं घ्राणं जिह्वाकारः यथासंख्यं मसूरियवनाल्यतिमुक्तक्षुरप्रसमं भवत्याकारः स्पर्शनं त्वनेकसंस्थानम् ॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारंगळु यथासंख्यमागि मसूरिकायवनाळियतिमुक्तक क्षुरप्रसमानंगलप्पुवु ८।

स्पर्शनमनेक संस्थानमक्कुमेकें दोडे पृथिव्यादिगळगं द्वींद्रियादिगळगं शरीराकारमनेकविधमप्पुदरिंदं स्पर्शनेंद्रियक्के सर्व्वांगव्यापित्वदिंदं शरीराकारानुकारित्वमुंटप्पुदु कारणमागि।

म्यक्षेत्रं फ ३१५०८९ तदा नवमुहूर्तानां इ ९ कियदिति त्रैराशिकं कृत्वा नवभिर्गुणयित्वा षष्ट्याहृते सति यल्लब्धं तच्चक्षुरिन्द्रियविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रं भवति ४७२६३ ३/६० ॥१७०॥ अथेन्द्रियाणां संस्थानं निर्दिशति—

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारा यथासंख्यं मसूरिकायवनाल्यतिमुक्तकक्षुरप्रसमाना भवन्ति। स्पर्शनमनेकसंस्थानं भवति। पृथिव्यादीनां द्वीन्द्रियादीनां च शरीराकारस्यानेकविधत्वात् सर्वव्यापिनः स्पर्शनेन्द्रियस्यापि

होता है। इसका वर्ग करके फिर उसे दससे गुणा करनेपर ९९२८१२९६००० होता है। इसका वर्गमूल ग्रहण करनेपर अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण ३१५०८९ होता है। इस परिधिको एक सूर्य साठ मुहूर्तमें समाप्त करता है। और सूर्यको निषधाचलसे अयोध्या तकका मार्ग तय करनेमें नौ मुहूर्त लगते हैं। यदि सूर्य साठ मुहूर्तमें ३१५०८९ योजन चलता है, तो नौ मुहूर्तमें कितना चलता है, ऐसा त्रैराशिक करनेपर ३१५०८९ को नौसे गुणा करके साठसे भाग देनेपर जो लब्ध आता है ४७२६३ ३/६०, वही चक्षु इन्द्रियके विषयका सबसे उत्कृष्ट क्षेत्र होता है।

विशेषार्थ—जब श्रावण मासमें सूर्य अभ्यन्तरवीथीमें होता है, तो निषधगिरिके ऊपर उदय होते सूर्यको अयोध्याके मध्यमें महलके ऊपर स्थित भगवान् ऋषभदेव, भरतचक्रवर्ती आदि विशिष्ट क्षयोपशमवाले विशिष्ट पुरुष देखते हैं। अतः अयोध्यासे निषधाचलकी जितनी दूरी है उतना ही चक्षुका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र है। सूर्यको उस समय अयोध्या तक आनेमें नौ मुहूर्त लगते हैं, क्योंकि अयोध्या मध्यमें है और उस समय दिन अठारह मुहूर्तका होता है। तथा एक सूर्य दो दिनमें परिधिको समाप्त करता है—इस तरह प्रमाणराशि साठ मुहूर्त और इच्छाराशि नौ मुहूर्त सिद्ध होती है ॥१७०॥

आगे इन्द्रियोंका आकार कहते हैं—

चक्षु इन्द्रियका आकार मसूरके समान है। श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौकी नालीके समान है। घ्राण इन्द्रियका आकार तिलके फूलके समान है। और जिह्वाका आकार खुरपाके समान है। स्पर्शन इन्द्रियके अनेक आकार हैं, क्योंकि पृथिवी आदि और दोइन्द्रिय आदिके शरीरके आकार अनेक प्रकारके होनेसे सर्वशरीरव्यापी स्पर्शन इन्द्रियके भी अनेक आकार होते हैं ॥१७१॥

अनंतरमिंद्रियसंस्थानंगळगे प्रदेशावगाहप्रमाणमं पेळ्दपं ।

अंगुलअसंखभागं संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं ।
तत्तो असंखगुणिदं अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ॥१७२॥

अंगुलासंख्यभागं संख्यातगुणं ततो विशेषाधिकम् । ततो संख्यगुणितमंगुलसंख्येयं तदेव ॥

घनांगुलमं रूपाधिकपल्यासंख्यातगुणितसंख्यातद्वयदिंदमुं पल्यासंख्यातदिंदमुं भागिसि ५

पल्यासंख्यातदिंदं गुणितप्रमाण ६ प प चक्षुरिंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमक्कुमिदं संख्यातदिंदं गुणिसि-
प अ
अ १ १ १

दनितु श्रोत्रेंद्रियावगाहप्रमाणमक्कु । ६ प प घ्राणेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं पल्यासंख्यातैकभाग-
प अ
अ १ अ

खंडितैक भागमात्र ६ प मिनितरिंददधिकमक्कु ६ जिह्वेंद्रियप्रदेशावगाहं पल्या-
प अ प प प १
अ १ अ अ अ

संख्यातैकभागगुणितमक्कु ६ मिदे घनांगुलसंख्येयभागप्रमितमक्कुं ।
१

तथाविधत्वसंभवात् ॥१७१॥ अथेंद्रियसंस्थानानां प्रदेशावगाहं प्रमाणयति— १०

रूपाधिकपल्यासंख्यातसंख्यातद्वयपल्यासंख्यातभक्तपल्यासंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६ । प १
प अ प
अ । १ १ । अ

चक्षुरिन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति । ततः संख्यातेन गुणितं श्रोत्रेन्द्रियावगाहप्रमाणं भवति— ६ । प
अ १
प । १ । प
अ अ

ततस्तस्यैव पल्यासंख्येयभागेन[1] समच्छेदेन ६ । प १ अधिकमपवर्तितं घ्राणेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति
प अ प प
अ । १ अ अ

आगे इन्द्रियोंके आकारोंके प्रदेशोंके अवगाहका प्रमाण कहते हैं—

घनांगुलको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करो तथा उसमें एक अधिक पल्यके १५
असंख्यातवें भागसे, दो बार संख्यातसे तथा पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दो, जो प्रमाण आवे, उतनी ही चक्षु इन्द्रियकी अवगाहना है अर्थात् उतने आकाशके प्रदेशोंको चक्षु इन्द्रिय रोके हुए हैं। उससे संख्यातगुणी श्रोत्र इन्द्रियकी अवगाहनाका प्रमाण है। इस गुणाकारसे एक बार संख्यातके भागहारका अपवर्तन करके फिर उसे पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे, उसे श्रोत्र इन्द्रियकी अवगाहनामें जोड़नेसे घ्राण इन्द्रियके प्रदेशोंकी २०
अवगाहनाका प्रमाण होता है। उसे पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जिह्वा इन्द्रियके

---

१. गेनाधि ब ।

अनंतरं स्पर्शनेंद्रियदेशावगाहप्रमाणमं पेळ्दपं ।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥१७३॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तस्य जातस्य तृतीयसमये । अंगुलासंख्येयभागं जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन उत्पन्नतृतीयसमयदोळु आवुदों दु शरीरावगाहं घनांगुलासंख्येयभागप्रमित ६ । ८-२२ मिदु स्पर्शनेंद्रियप्रदेशावगाहं जघन्यमक्कुं । उत्कृष्टदिंदं

६ अ
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९
अ अ अ

महामत्स्यदावुदों दु शरीरावगाहं संख्यातघनांगुलप्रमितमदुत्कृष्टस्य ६११११११ स्पर्शनेंद्रियदेशावगाहप्रमाणमक्कुं ।

अनंतरमेकेंद्रियादि संसारिगळं पेळ्दु मत्तमतींद्रियज्ञानीगळं पेळदपं ।

---

६ । ततः पल्यासंख्येयभागगुणितं जिह्वेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति तत्तु घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेव ।
प १
अ
६ ॥१७२॥ अथ स्पर्शनेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमाह—
१

स्पर्शनेन्द्रियस्य जघन्यप्रदेशावगाहप्रमाणं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पन्नस्य तृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यशरीरावगहनत्रनाङ्गुलसंख्येयभागप्रमितं— ६ । ८ । २२ तदेव भवति । उत्कृष्टं

अ १
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९
अ अ अ

तु महामत्स्ये यदुत्कृष्टशरीरावगाहनं संख्यातघनाङ्गुलप्रमितमुक्तं ६ १ १ १ १ १ तद्भवति । [सर्वत्र स्पर्शनेन्द्रियस्य स्वशरीरप्रमाणसर्वात्मप्रदेशसंगत्वात्] ॥१७३॥ एवमिन्द्रियज्ञानिजीवान्—संसारिजीवान् प्ररूप्य अधुना अतीन्द्रियज्ञानिजीवान् प्ररूपयति—

प्रदेशोंकी अवगाहनाका प्रमाण होता है। इस प्रकार यह जिह्वा इन्द्रियकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भाग मात्र ही है ॥१७२॥

आगे स्पर्शन इन्द्रियके प्रदेशोंकी अवगाहनाका प्रमाण कहते हैं—

स्पर्शन इन्द्रियकी जघन्य प्रदेशावगाहनाका प्रमाण सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें जो पहले कही जघन्य शरीरावगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग है, उतना ही है। तथा उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्यकी जो उत्कृष्ट शरीरावगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, वही है। क्योंकि सर्वत्र स्पर्शन इन्द्रिय अपने शरीर प्रमाण सर्व आत्मप्रदेशोंमें संगत होती है ॥१७३॥

इस प्रकार इन्द्रियज्ञानवाले संसारी जीवोंका कथन करके अब अतीन्द्रियज्ञानवाले जीवोंका कथन करते हैं—

---

१. [ ] एतदन्तर्गतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति ।

णवि इंदियकरणजुदा अवग्गहादीहि गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा ॥१७४॥

नापींद्रियकरणयुता अवग्रहादिभिर्ग्राहका अर्थान् । नैव चेंद्रियसौख्याः अतींद्रियाऽनंतज्ञानसुखाः ॥

इंद्रियकरणंगळिंदमुन्मीलनादिव्यापारंगळिंद नियमदिंद कूडिदरल्लरदुकारणदिंदमवग्रहादि क्षायोपशमिकज्ञानं गळिंदमर्त्थग्राहकरुमल्तु । इंद्रियविषयसंश्लेषजनितसुखमनुळ्ळरुमल्तुमावकेंलंबर्जीवंगळा जीवंगळु जिनरुं सिद्धरुगळुमोळरवर्मळुमींद्रियानंतज्ञानसुखमनुळ्ळराज्ञानसुखंगळगे शुद्धात्मस्वरूपोपलब्धिसमुद्भूतमुंटप्पुदरिंदं ।

अनंतरमेकेंद्रियादिगळगे सामान्यदिंदं संख्येयं पेळ्दपं ।

थावरसंखपिपीलियभमरमणुस्सादिगा सभेदा जे ।
जुगवारमसंखेज्जा णंताणंता णिगोदभवा ॥१७५॥

स्थावरशंखपिपीलिका भ्रमरमनुष्यादिकाः सभेदा ये । द्विकवारमसंख्येया अनंताअनंता निगोदभवाः ॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायिकपंचस्थावरंगळप्पेकेंद्रियंगळुं शंखादिद्वींद्रियंगळुं पिपीलिकादित्रींद्रियंगळुं भ्रमरादिचतुरिंद्रियंगळुं मनुष्यादिपंचेंद्रिययंगळिवु तंतम्मवांतरभेदसहितंगळ् परगे पेळल्पट्टुवु प्रत्येकं द्विकवारासंख्यातंगळु । निगोदसाधारणवनस्पतिकायिकंगळनंतानंतंगळु ।

ये जीवा नियमेन इन्द्रियकरणैः—उन्मीलनादिव्यापारैः, युताः—युक्ता न सन्ति [कस्मात् ? तेषामशरीरत्वात् तत्कारणजातिनामादिकर्माभावाच्च] । तथा च अवग्रहादिभिः—क्षायोपशमिकज्ञानैरर्थग्राहका न भवन्ति । पुनः इन्द्रियविषयसंश्लेषजनितसुखयुता नैव सन्ति ते जिनसिद्धनामानो जीवा अनिन्द्रियानन्तज्ञानसुखकलिता भवन्ति । कस्मात् ? तज्ज्ञानसुखयोः शुद्धात्मस्वरूपोपलब्ध्युत्पन्नत्वात् ॥१७४॥ अथैकेन्द्रियादीनां सामान्यसंख्यामाह—

स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायिकनामानः पञ्चविधैकेन्द्रियाः । शङ्खादयो द्वीन्द्रियाः । पिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः । भ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः । मनुष्यादयः पञ्चेन्द्रियाश्च स्वस्वावान्तरभेदसहिताः प्राक्

जो जीव नियमसे इन्द्रियोंके उन्मीलन आदि व्यापारसे युक्त नहीं हैं; क्योंकि वे अशरीरी हैं, उनके इन्द्रियव्यापारका कारण जातिनाम आदि कर्मोंका अभाव है, इसीसे अवग्रह आदि क्षायोपशमिक ज्ञानोंके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण नहीं करते । तथा इन्द्रिय और विषयके सम्बन्धसे होनेवाले सुखसे भी युक्त नहीं हैं; वे जिन और सिद्ध नामधारी जीव अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान और सुखसे युक्त होते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान और सुख शुद्ध आत्मस्वरूपकी उपलब्धिसे उत्पन्न हुआ है ॥१७४॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंकी सामान्य संख्या कहते हैं—

स्थावर अर्थात् पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक नामवाले पाँच प्रकारके एकेन्द्रिय, शंख आदि दोइन्द्रिय, पिपीलिका आदि तेइन्द्रिय, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय, तथा मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय पहले कहे अपने-अपने

---

१. [ ] एतदन्तर्गतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति । २. तत एव च ब ।

अनंतरं विशेषसंख्येयं पेळ्वातं मोदलोळेकेंद्रियसंख्येयं पेळ्दपं ।

तसहीणो संसारी एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाणं संखेज्जदिमं अपुण्णाणं ॥१७६॥

त्रसहीनसंसारिण एकाक्षास्तेषां संख्येयभागाः पूर्णानां परिमाणं संख्येयं भागमपूर्णानां ॥

त्रसराशिविहीनमप्प संसारिराशियदेकेंद्रियराशिक्कु १३ मी एकेंद्रियराशिय संख्यातबहुभागंगळ पर्य्याप्तकगळ परिमाणमक्कुं । तदेकभागमपर्य्याप्तकराशिप्रमाणमक्कु — प १३ — ४ अ १३ — १
५ ५ ५

मिल्लिय संख्यातक्के पंचांकं संदृष्टियक्कुं ॥

अनंतरमेकेंद्रियावांतरभेदसंख्याविशेषमं पेळ्दपं ।

बादरसुहुमा तेसिं पुण्णापुण्णेत्ति छव्विहाणंपि ।
तक्कायमग्गणाए भणिस्समाणक्कमो णेया ॥१७७॥

बादरसूक्ष्मास्तेषां पूर्णापूर्णा इति षड्विधानामपि । तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाणक्रमो ज्ञेयः ॥

सामान्यैकेंद्रियराशियदु बादरसूक्ष्मभेददिंदं द्विप्रकारमक्कुमा बादरसूक्ष्मंगळुं प्रत्येकं पर्य्याप्तापर्याप्तभेददिंदं चतुःप्रकारमप्पुदरिंमितारुं प्रकारंगळगे तत्कायमार्गणेयोळु मुंदे पेळ्व संख्याक्रममरियल्पडुगुं । इल्लियुं संख्याक्रममरियल्पडुगुमदं तंदोडे एकेंद्रियसामान्यराशियनसंख्यातलोकदिंद

कथिताः ते प्रत्येकं द्विकवारासंख्यातप्रमिता भवन्ति । निगोदाः-साधारणवनस्पतिकायिकाः, अनन्तानन्ता भवन्ति ॥१७५॥ अथ विशेषसंख्यां कथयंस्तावदेकेन्द्रियसंख्यामाह—

त्रसराशिहीनसंसारिराशिरेवैकेन्द्रियराशिर्भवति १३—। अस्य च संख्यातबहुभागाः पर्याप्तकराशिपरिमाणं भवति १३—। ४ । तदेकभागः अपर्याप्तकराशिप्रमाणं भवति १३—। १ । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चाङ्कः
५ ५

५ ॥१७६॥ अथैकेन्द्रियावान्तरभेदसंख्याविशेषमाह—

सामान्यैकेन्द्रियराशेर्बादरसूक्ष्माविति द्वौ भेदौ तयोः पुनः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । एवं षड्भेदानां तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाणः क्रमो ज्ञेयः । तद्यथा—एकेन्द्रियसामान्यराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागो

अवान्तर भेदोंके साथ प्रत्येक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं । और निगोद अर्थात् साधारण वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त हैं ॥१७५॥

आगे विशेष संख्याको कहते हुए पहले एकेन्द्रियोंकी संख्या कहते हैं—

संसारी जीवराशिमें-से त्रसजीवोंकी राशि कम कर देनेपर एकेन्द्रिय जीवोंकी राशि होती है । इस एकेन्द्रिय राशिमें संख्यातसे भाग देनेपर संख्यात बहुभाग प्रमाण पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंका परिमाण होता है और संख्यात एक भाग प्रमाण अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंका परिमाण होता है ॥१७६॥

सामान्य एकेन्द्रिय राशिके बादर और सूक्ष्म इस प्रकार दो भेद हैं । और उनमें-से प्रत्येकके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद हैं । इस तरह एकेन्द्रियके चार भेद हैं । छहों प्रकारके जीवोंका कायमार्गणामें क्रमसे कथन किया जायेगा जो इस प्रकार है—

एकेन्द्रिय सामान्यकी राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण है और बहुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण है ।

भागिसिदेकभागमात्रं बादरैकेंद्रियराशिप्रमाणमक्कुं १३—१ तद्बहुभागं १३—८ सूक्ष्मैकेंद्रियराशि-
९ ९

प्रमाणमक्कुं इल्लियसंख्यातलोकक्के नवांके संदृष्टियक्कुं । ९ ।

मत्तं बादरैकेंद्रियराशिनसंख्यातलोकदिंदं खंडिसिदेकभागं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तराशियक्कुं । १३ तद्बहुभागं बादरैकेंद्रियापर्याप्तराशिप्रमाणमक्कु १३—६ इल्लियुमसंख्यातलोकक्के सप्तांकं
९७ ९।७

संदृष्टियक्कुं । ७ । ५

सूक्ष्मैकेंद्रियराशियं संख्यातदिंदं खंडिसिद बहुभागं सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तराशिय प्रमाण-मक्कुं १३—८।४ तदेकभागमपर्य्याप्तराशिप्रमाणमक्कु १३—८।१ इल्लियुं संख्यातक्कं
९।५ ९।५।

संदृष्टि पंचांकमक्कुं ५ ।

अनंतरं त्रसजीवसंख्येयं गाथात्रयदिंद पेळ्दपं ।

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं । १०
हीणकमं पडिभागो आवलियासंखभागो दु ॥१७८॥

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियमानमसंख्येनापहृतप्रतरांगुलेन हृतप्रतरो हीनक्रमः प्रतिभाग आवल्य-संख्यभागस्तु ।

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवंगळ सामान्ययुतराशिप्रमाणमसंख्यातदिनपहृतप्रतरांगुलदिनपहृत-
४
जगत्प्रतरप्रमितमक्कु ∴ मिल्लिद्वींद्रियराशिप्रमाणमेल्लवरिंदमधिकमक्कुमदं नोडे त्रींद्रियंगळ् १५
∂

बादरैकेन्द्रियराशिप्रमाणं १३— १ तद्बहुभागः १३—८ सूक्ष्मैकेन्द्रियराशिप्रमाणं । अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिर्न-
९ ९

वाङ्कः ९ । पुनः बादरैकेन्द्रियराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागस्तत्पर्याप्तराशिः । १३—१ १ १ बहुभागस्तद-
९ ७

पर्याप्तराशिः १३—१ १ ६ अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिः सप्ताङ्कः । सूक्ष्मैकेन्द्रियराशेः संख्यातभक्तबहुभाग-
९।७

स्तत्पर्याप्तराशिः १३—१ ८।४ तदेकभागस्तदपर्याप्तराशिः १३—१ ८।१ अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः
९।५ ९।५

पञ्चाङ्कः ॥१७७॥ अथ त्रसजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह— २०

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां सामान्यराशिप्रमाणं असंख्यातभक्तप्रतराङ्गुलेन भक्तं जगत्प्रतरप्रमितं

पुनः बादर एकेन्द्रियोंकी राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी राशिका प्रमाण है और बहुभाग अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय राशिका प्रमाण है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिमें संख्यातका भाग देनेपर बहुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका प्रमाण है और एक-एक भाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंका प्रमाण है ॥१७७॥ २५

आगे त्रसजीवोंकी संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंकी सामान्य राशिका प्रमाण असंख्यातसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगतप्रतरमें दो, जो प्रमाण आवे उतना है। इनमें

विशेषहीनंगळवं नोडल् चतुरिंद्रियजीवंगळ् विशेषहीनंगळवं नोडल् पंचेंद्रियजीवंगळ् विशेषहीनंगळुमिल्लि विशेषागमननिमित्तं भागहारं प्रतिभागहारमदुवुमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कुमा विभागक्रममं तें दोडे :—

बहुभागे समभागो चउण्हमेदेसिमेक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥१७९॥

बहुभागे समभागश्चतुर्णामेकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ।

त्रसराशियनितद = ४ नावल्यसंख्यातभागदिंदं भागिसि तदेकभागमं बेरों देडेयोलिरिसि
अ

बहुभागमं नाल्करिंदं भागिसि द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळगे नाल्कडेयोळ् समभागमं कुडुवुदु :—

द्वि त्रि च प मत्तं बेरिरिसिदेक भागमनिद = १ ८
= ८ = ८ = ८ = ८ ४।४।९
४।४।९ ४।४।९ ४।४।९ ४।४।९ अ
अ अ अ अ

नावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहुभागमं द्वींद्रियक्के कोडुवुदु = ८ तदेकभागमनिद
४। ९।९
अ

= १ नावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहुभागमं त्रींद्रियक्के कुडुवुदु = ८
४।९।९ ४।९।९।९
अ अ

भवति = ४। अत्र द्वीन्द्रियराशिप्रमाणं सर्वतोऽधिकम् । ततस्त्रीन्द्रियराशिः विशेषहीनः । ततश्चतुरिन्द्रियराशिः
अ
विशेषहीनः । ततः पञ्चेन्द्रियराशिः विशेषहीनः । अत्र विशेषागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागमात्रः ॥१७८॥ तद्विभागक्रमः कथमिति चेदाह—

त्रसरासिं = ४ आवल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा एकभागं पृथक् संस्थाप्य बहुभागं = ४ । ८ चतुर्भिर्भक्त्वा-
अ अ ९

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाणां चतुर्षु स्थानेषु समभागतया दत्त्वा = ४।४।९ । ८ । = ४।४।९ । ८ । = ४।४।९ । ८ ।
अ अ अ

= ४।४।९ । ८ तत्पृथक्स्थापितैकभागमिमं = ४। ९ । १ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन = ४।९।९ । १ भक्त्वा बहुभागं
अ अ अ

दोइन्द्रियोंकी राशिका प्रमाण सबसे अधिक है। उससे तेइन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है। उससे चतुरिन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है। उससे पंचेन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है। यहाँ विशेषका प्रमाण जाननेके लिए भागहार और भागहारका भागहार आवलीके असंख्यातवें भाग है ॥१७८॥

आगे उस विभागका क्रम दिखलाते हैं—

त्रसराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके एक भागको अलग रखो। और बहुभागको चारसे भाजित करके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंके चार स्थानोंमें बराबर-बराबर समभाग रूपसे दो। अलग रखे हुए एक भागमें पुनः आवलीके

तदेकभागमनिद = ४।९।९।९ ə १ नावल्यसंख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं चतुरिंद्रियक्के कुडुवुदु

= ४।९।९।९।९ ə १ तदेकभागमं पंचेंद्रियक्के कोडुवुदु = ४।९।९।२।९ ə १ इंतिल्ल विभागन्यासमिदु

बि = ४।४।९ ə = ४।९।९ ə ८

ति = ४।४।९ ə = ४।९९९ ə ८

च = ४।४।९ ə = ४ ə९।९।९।९ ८

प = ४।४।९ ə = ४।९।९।९।९ ə ८ ५

ई राशिगळं समच्छेदमं माडि कूडिदोडिदु न्यासवु :—

बि = ४४२४ ४।४।६५६१ ə

ति = ६१२० ४।४।६५६१ ə

च = ५८६४ ४।४।६५६१ ə

प = ५८३६ ४।४।६५६१ ə

द्वीन्द्रियस्य दत्त्वा = ४।९।९ ə ८।१ तदेकभागमिमं = ४।९।९ ə १।१ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं

त्रीन्द्रियस्य दत्त्वा = ४।९।९।९ ə ८।१ तदेकभागमिमं = ४।९।९।९ ə १ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं १०

चतुरिन्द्रियस्य दत्त्वा = ४।९।९।९।९ ə ८ तदेकभागं पञ्चेन्द्रियस्य दद्यात् = ४।९।९।९।९ ə १ तद्विन्यासः—

समभागः	वि = ४।४।९ ə ८	ति = ४।४।९ ə ८	च = ४।४।९ ə ८	पं = ४।४।५ ə ८
देयभागः	= ४।९।९ ə ८	= ४।९।९।९ ə ८	= ४।९।९।९।९ ə ८	= ४।९९९९ ə १ १५

स्वस्वाधस्तनराशयः स्वस्वोपरितनराशिषु समच्छेदेन मिलिता ईदृशा भवन्ति—

वि = ८४२४ ४, ४, ६५६१ ə	ति = ६१२० ४, ४, ६५६१ ə	च = ५८६४ ४, ४, ६५६१ ə	पं = ५८३६ ४, ४, ६५६१ ə

असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग दोइन्द्रियको दो। और एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग तेइन्द्रियको दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके २० असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग चतुरिन्द्रियको दो। और शेष एक भाग पंचेन्द्रियको

तिविपंचपुण्णपमाणं पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा विति चपजीवा अपज्जत्ता ॥१८०॥

त्रिद्विपंचचतुःपूर्णप्रमाणं प्रतरांगुलसंख्येयभागहृतप्रतरो । हीनक्रमः पूर्णोनाः द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवाः अपर्याप्ताः ।

त्रिद्विपंचचतुरिंद्रियपर्याप्तराशिप्रमाणं प्रतरांगुलसंख्येयहृतजगत्प्रतरप्रमितमक्कु $= \frac{४}{५}$

मिल्लि त्रींद्रियादिगळुत्तरक्रमदिंदं हीनक्रमंगळप्पुवु । इल्लियं पूर्वोक्तक्रमदिंदं—

बहुभागे समभागो चउण्णमेदेसिमेक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थ वि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥

एंदी सूत्रोक्तक्रमदिंदं त्रींद्रियद्वींद्रिय पंचेंद्रियचतुरिंद्रियऽपर्याप्तकंगळगे विभागिसिद न्यासमिदु :

ति = ८	बि = ८	प = ८	च = ८	ई राशिगळं
४।४।९	४।४।९	४।४।९	४।४।९	
५	५	५	५	
= ८	= ८	= ८	= १	
४।९।९	४९९९	४९९९९	४९९९९	
५	५	५	५	

समच्छेदमं माडि कूडिद न्यासमिदु :—

त्रिद्विपञ्चचतुरिन्द्रियपर्याप्तराशिप्रमाणं प्रतराङ्गुलसंख्येयभागभक्तजगत्प्रतरप्रमितं भवति $= \frac{४}{५}$ अत्र त्रीन्द्रियादय उक्तक्रमेण हीनक्रमा भवन्ति । अत्रापि 'बहुभागे समभागो' इत्यादिसूत्रोक्तक्रमेण त्रिद्विपञ्चचतुरिन्द्रियपर्याप्तकानां विभक्तस्य विन्यासोऽयम्—

ति = ८	वि = ८	पं = ८	च = ८
४।४।९	४।४।९	४।४।९	४।४।९
५	५	५	५
= ८	= ८	= ८	= १
४।९।९	४।९९९	४।९९९९	४९९९९
५	५	५	५

समच्छेदेन मिलितानां न्यासोऽयम् ।

दो । अपने-अपने पीछेकी राशिको अपनी-अपनी पहली राशिमें मिलानेसे दोइन्द्रिय आदिकी संख्या आती है ॥१७९॥

पर्याप्त तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव राशिका प्रमाण प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे भाजित जगतप्रतर प्रमाण है । इनमें सबसे अधिक तेइन्द्रिय हैं । उनसे कम दोइन्द्रिय हैं । उनसे कम पंचेन्द्रिय हैं और उनसे कम चौइन्द्रिय हैं । यहाँ भी पूर्वोक्त 'बहुभागे समभागो' इत्यादि सूत्रमें कहे अनुसार विभाग करना । अर्थात् सामान्य पर्याप्त त्रसराशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखकर शेष बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और

ति = ८४२४ ४।४।६५६१ ५ बि = ६१२० ४।४।६५६१ ५ प = ५८६४ ४।४।६५६१ ५ च = ५८३६ ४।४।६५६१ ५

ई पर्य्याप्तराशिगळं तंतम्म द्वींद्रियादि सामान्यराशिगळोळ् कळिदोडे द्वींद्रियादि पंचेंद्रिय-पर्य्यंतमिर्द्दपर्य्याप्तकंगळ प्रमाणमक्कुमदक्के न्यासमिदु

बि ५° । ६१२० = अ । ८४२४ ४।४।६५६१ ति ५° । ८४२४ = अ । ६१२० ४।४।६५६१ च ५° । ५८३६ = अ । ५८६४ ४।४।६५६१ प ५° । ५८६४ = अ । ५८३६ ४।४।६५६१

ज्ञातपर्य्याप्तराशिगळं तंतम्म सामान्यराशिय मेले यिरिसि सोन्नेयनिक्किदोडे कळेदुदें-बुदर्त्थमा शेषराशियुं तत्तदपर्य्याप्तकराशिप्रमाणमेंबुदु ज्ञातव्यमक्कुं।

ति = ८४२४ ४।४।६५६१ ५	वि = ६१२० ४।४।६५६१ ५	पं = ५८६४ ४।४।६५६१ ५	च = ५८३६ ४।४।६५६१ ५

एतेषु पर्याप्तराशिषु निजनिजद्वीन्द्रियादिसामान्यराशिषु अपनीतेषु शेषद्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानाम् अपर्याप्तक-जीवराशीनां प्रमाणं भवतीति ज्ञातव्यम्—

५° । ६१२० वि = ८४२४ अ ४।४।६५६१	५° । ८४२४ ति = । ६१२० अ ४।४।६५६१	५° । ५८३६ च = । ५८६४ अ ४।४।६५६१	५° । ५८६४ पं. = । ५८३६ अ ४।४।६५६१

चतुरिन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग तेइन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग दोइन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग पंचेन्द्रियको देना। अलग रखा एक भाग चौइन्द्रियको देना। इस प्रकार अपने-अपने सम-भागमें पीछेके देय भागको जोड़नेसे तेइन्दिय आदि पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है। पहले जो सामान्य दोइन्द्रिय आदि जीवोंका प्रमाण कहा था, उसमें-से यहाँ कहे अपने-अपने पर्याप्तके परिमाणको घटानेपर अपना-अपना अपर्याप्त जीवोंका परिमाण होता है ॥१८०॥

विशेषार्थ—यहाँ 'बहुभागे समभागो' को अंक संदृष्टिसे स्पष्ट किया जाता है। कल्पना कीजिए कि त्रसजीवोंकी सामान्य राशि ६४०० है और भागहार आवलीके असंख्यातवें भागका प्रमाण ४ है। अतः ४का भाग ६४००में देनेसे एक भाग १६०० को अलग रखकर बहुभाग ४८००के चार समान भाग करके दोइन्द्रिय आदिको १२००, १२०० दे दिये। शेष एक भाग १६०० में पुनः ४ से भाग देकर एक भाग ४०० को अलग रखकर बहुभाग १२०० दोइन्द्रियको दिया। एक भाग चार सौमें चारसे भाग देकर एक भाग १०० को अलग रख बहुभाग ३०० तेइन्द्रियको दिया। शेष एक भाग १००में पुनः ४ से भाग देकर बहुभाग ७५ चौइन्द्रियको दिया और शेष एक भाग २५ पंचेन्द्रियोंको दिया। अपने-अपने समभाग और बहुभागको मिलानेसे अपना-अपना प्रमाण होता है ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटकवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु सप्तमेंद्रियप्ररूपणाधिकारं रचितमाय्तु।

इत्याचार्य-श्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु इन्द्रियमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तमोऽधिकारः ॥७॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें- इन्द्रिय प्ररूपणा नामक सातवाँ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

कायमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ॥८॥

अनंतरं कायमार्गणेयं पेळ्दपं :—

जाई अविणाभावीतसथावरउदयजो हवे काओ ।
सो जिणमदम्मि भणियो पुढविक्कायादिछब्भेयो ॥१८१॥

जात्यविनाभावित्रसस्थावरोदयजो भवेत्कायः । स जिनमते भणितः पृथ्वीकायादिषड्भेदः ॥

जातिनामकर्म्माविनाभावित्रसस्थावरनामकर्म्मोदयजनितात्मत्रसस्थावरत्वपर्य्यायमं कायमेंबुदु । आ कायमुं पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेददिं षड्भेदमनुळ्ळुदेंदु जिनमतदोळु पेळल्पट्टुदु । कायते त्रसस्थावर इति व्यवहर्तृजनैः शब्द्यते कथ्यते इति कायः एंदितु द्वेजनक्रियेयोळं स्थानक्रियेयोळं तल्लक्षणं निरुक्तिसिद्धमक्कु । चीयते पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कंधैरिति कायः । औदारिकादिशरीरमुं कायस्थमप्पात्मपर्य्यायमुं कायमेंदितुपचारदिंदं पेळल्पट्टुदु । जातित्रसस्थावरनाम-

चन्द्रकोटिप्रभाचक्रं समवसृतिसंयुतम् ।
नवकेवललब्धीशं चन्द्रप्रभजिनं भजे ॥८॥

अथ कायमार्गणामाह—

जातिनामकर्मोदयाविनाभावित्रसस्थावरनामकर्मोदयजनितः आत्मनः त्रसत्वस्थावरत्वपर्यायः कायो नाम । स च कायः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदात् षड्भेदो जिनमते भणितः । कायते[1]—त्रस इति स्थावर इति च व्यवहर्तृजनैः शब्द्यते[2]—कथ्यते इति कायः[3] इति उद्वेजनक्रियायां स्थानक्रियायां च तल्लक्षणस्य निरुक्तिसिद्धत्वात् । चीयते—पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कन्धैरिति वा कायः—औदारिकादिशरीरं, कायस्य आत्मपर्यायोऽपि काय इत्युपचर्यते । जातित्रसस्थावरनामकर्मणां जीवविपाकित्वेन तेषां कार्यस्य जीवपर्यायस्य काय

एक कोटि चन्द्रमाके समान प्रभामण्डलसे शोभित, समवसरणमें विराजमान तथा नव केवल लब्धियोंके स्वामी चन्द्रप्रभ जिनको भजो ॥

आगे कायमार्गणाको कहते हैं—

जातिनामकर्मके उदयके अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न आत्माकी त्रसरूप और स्थावररूप पर्यायको काय कहते हैं । वह काय पृथिवीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकायके भेदसे छह प्रकारका जिनमतमें कहा है । 'कायते' अर्थात् व्यवहारी पुरुषोंके द्वारा 'त्रस' 'स्थावर' इस प्रकारसे कही जाती है, वह काय है । 'त्रस्' धातुका अर्थ उद्वेगरूप किया है, उससे त्रस शब्द निष्पन्न हुआ है और स्थान क्रियासे स्थावर शब्द निष्पन्न हुआ है, अतः त्रस और स्थावरका लक्षण निरुक्तिसिद्ध है । अथवा 'चीयते' अर्थात् पुद्गलस्कन्धोंके द्वारा जो पुष्टिको प्राप्त हो, वह काय है । अर्थात् औदारिक आदि शरीर । कायमें स्थित आत्मपर्यायको भी उपचारसे काय कहते हैं । जातिनामकर्म,

१. कायन्ते ब । २. शब्द्यन्ते-कथ्यन्ते ब । ३. कायाः ब ।

कर्म्मंगळ्गे जीवविपाकत्वंदिंदमवरकार्य्यमप्प जीवपर्य्यायक्के कायमेंदितु व्यवहारसिद्धियक्कुं। पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्म्मोदयकार्य्यत्वदिनिल्लि शरीरक्के कायशब्दंदिंद ग्रहणमिल्लि।

अनंतरं स्थावरकायपंचकप्रपंचमं पेळ्दपं।

पुढवी-आऊतेऊ-वाऊकम्मोदयेण तत्थेव।
णियवण्णचउक्कजुदो ताणं देहो हवे णियमा ॥१८२॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुकर्म्मोदयेन तत्रैव। निजवर्णचतुष्कयुतस्तेषां देहो भवेन्नियमात्॥

पृथिव्यप्तेजोवायुविशिष्टनामकर्म्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयदिंदमा पृथिव्यप्तेजोवायुपुद्गलस्कंधंगळोळ् तंतम्मवर्णचतुष्कदोळ्कूडिया जीवंगळं देहं नियमदिंद अप्पुदंतागुत्तिरलु पृथ्वीकायिकंगळुमप्कायिकंगळुं तेजस्कायिकंगळुं वायुकायिकंगळुमप्पुवु। पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति पृथ्वीकायिकाः अथवा पृथ्वीकायः शरीरं येषां ते पृथ्वीकायिकाः।

अप्कायोऽप्त्विशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामित्यप्कायिकाः अथवा आपः कायः शरीरं येषां तेऽप्कायिकाः। तेजःकायस्तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति तेजस्कायिकाः अथवा तेजः कायः शरीरं येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुकायो वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति वायुकायिकाः अथवा वायुः कायः शरीरं येषां ते वायुकायिकाः।

इति व्यवहारसिद्धेः। पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्मोदयकार्यत्वेन अत्र शरीरस्यैव कायशब्देन ग्रहणं नास्ति ॥१८१॥ अथ स्थावरकायपञ्चकं प्रपञ्चयति—

पृथिव्यप्तेजोवायुविशिष्टनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयेन तत्रैव पृथिव्यप्तेजोवायुपुद्गलस्कन्धेषु तत्तद्वर्णचतुष्कयुतः तेषां जीवानां देहः नियमेन भवेत्। तथा सति पृथ्वीकायिका अप्कायिकाः तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च भवन्ति। पृथ्वीकायः—पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति पृथ्वीकायिकाः। अथवा पृथ्वी कायः—शरीरं येषां ते पृथ्वीकायिकाः। अप्कायः—अप्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामित्यप्कायिकाः। अथवा आपः कायः शरीरं येषां ते अप्कायिकाः। तेजस्कायः-तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति तेजस्कायिकाः। अथवा तेजः कायः शरीरं येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुकायः—वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्यायो-

---

त्रसनामकर्म और स्थावरनामकर्म जीवविपाकी होनेसे उनका कार्य जीवपर्याय काय है, यह व्यवहारसिद्ध है। पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्मके उदयका कार्य होनेसे यहाँ काय शब्दसे शरीरका ही ग्रहण नहीं है ॥१८१॥

आगे स्थावर कायके पाँच भेदोंका कथन करते हैं—

नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें एक स्थावर नामकर्म है और उसकी भी उत्तरप्रकृतियाँ पृथ्वी, अप्, तेज और वायु नामकर्म हैं। इस प्रकार नामकर्मकी इन उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके उदयसे पृथिवीरूप, जलरूप, तेजरूप और वायुरूप पुद्गल स्कन्धोंमें अपने-अपने रूपरसगन्ध और स्पर्शगुणोंसे युक्त उन जीवोंके शरीर नियमसे होते हैं। ऐसा होनेपर वे जीव पृथिवीकायिक, तैजस्कायिक और वायुकायिक होते हैं। पृथ्वीकाय अर्थात् पृथिवीत्व विशिष्ट स्थावरपर्याय जिनकी है, वे पृथिवीकायिक हैं। अथवा पृथ्वी जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे पृथ्वीकायिक हैं। अप्काय अर्थात् अप्त्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं वे अप्कायिक हैं। अथवा अप् जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे अप्कायिक हैं। तैजस्काय अर्थात् तैजस्त्व विशिष्ट स्थावर पर्याय जिनकी है, वे तैजस्कायिक हैं। अथवा तेज जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे तैजस्कायिक हैं। वायुकाय अर्थात् वायुत्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं, वे

एंदितु तिर्य्यग्गत्येकेंद्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायादिगळ्गे नामकर्म्मप्रकृत्युदयमनाश्रयिसिये एवंविध निरुक्ति संभविसुगुं। पृथ्वीकायिकत्वपर्य्यायाभिमुखं विग्रहगतियोळ् वर्त्तमानमप्पं पृथ्वीजीवं, गृहीतपृथ्वीशरीरमनुळ्ळं पृथ्वीकायिकमा जीवनिंद बिडल्पट्ट देहं पृथ्वीकायमक्कु। मिते अब्जीवः अप्कायिकोऽप्कायास्तेजोजीवस्तेजस्कायिकस्तेजस्कायः। वायुजीवो वायुकायिको वायुकाय इति। एंदितु त्रिधा व्यवस्थेयरियल्पडुगुं। ५

बादरसुहुमुदएण य बादरसुहुमा हवंति तद्देहा।
घादसरीरं थूलं अघाददेहं हवे सुहुमं ॥१८२॥

बादरसूक्ष्मोदयेन च बादरसूक्ष्मौ भवतस्तद्देहौ। घातशरीरं स्थूलमघातशरीरं भवेत्सूक्ष्मं॥

बादरनामकर्म्मोदयदिंदं तद्देहजंगळप्प पृथ्वीकायिकादिजीवंगळु बादरंगळप्पुवु। सूक्ष्मनामकर्म्मोदयदिंद पृथ्वीकायिकादिजीवंगळु सूक्ष्मंगळेंदु पेळल्पडुवुवु। एकेंदोडे जीवविपाकिगळप्प बादरसूक्ष्मनामकर्म्मोदयंगळ्दिं बादरसूक्ष्मजीवव्यपदेशमुंटप्पुदरिंदमा देहंगळुं बादरंगळु सूक्ष्मंगळु अप्पुदरिंदमिंद्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखमेंतंते परिंदं तनगे तन्निंदं परंगे मेणु प्रतिघातसंभव- १०

ऽस्त्येषामिति वायुकायिकाः। अथवा वायुः कायः—शरीरं येषां ते वायुकायिकाः। तिर्यग्गत्येकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायादीनां नामकर्मप्रकृतीनाम् उदयमाश्रित्यैव एवंविधनिरुक्तिसंभवात्। पृथ्वीकायिकत्वपर्यायाभिमुखो विग्रहगतौ वर्तमानः पृथ्वीजीवः। गृहीतपृथ्वीशरीरः पृथ्वीकायिकः। तत्त्यक्तदेहः पृथ्वीकायः। तथैव अब्जीवः अप्कायिकः अप्कायः। तेजोजीवः तेजस्कायिकः तेजस्कायः। वायुजीवः वायुकायिकः वायुकायः, इति त्रिविधत्वं ज्ञातव्यम् ॥१८२॥ १५

बादरनामकर्मोदयेन तद्देहाः पृथ्वीकायिकादिजीवाः बादरा भवन्ति। सूक्ष्मनामकर्मोदयेन च पृथ्वीकायिकादिजीवाः सूक्ष्मा भवन्ति। जीवविपाकिबादरसूक्ष्मनामकर्मोदयाभ्यां बादरसूक्ष्मजीवव्यपदेशसद्भावात्तद्देहा अपि बादरसूक्ष्मा भवन्ति। तेन इन्द्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखवत् परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा प्रतिघात- २०

वायुकायिक हैं। अथवा वायु जिनका काय है, वे वायुकायिक हैं। तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, स्थावरकाय आदि नामकर्मकी प्रकृतियोंके उदयको लेकर ही इस प्रकारकी निरुक्ति होती है। जो जीव पूर्व पर्यायको छोड़कर पृथ्वीकायिकरूप पर्यायको धारण करनेके अभिमुख होता हुआ जबतक विग्रहगतिमें वर्तमान है, तबतक उसे पृथ्वीजीव कहते हैं। जिसने पृथ्वीको शरीररूपसे ग्रहणकर लिया है, वह पृथ्वीकायिक है। जिस पृथ्वी- २५
में-से जीव निकल गया है वह पृथ्वीकाय है। इसी तरह अप्जीव, अप्कायिक, अप्काय, तेजोजीव, तेजस्कायिक, तेजस्काय, वायुजीव, वायुकायिक, वायुकाय इस प्रकार प्रत्येकके तीन-तीन भेद जानना ॥१८२॥

बादरनामकर्मके उदयसे पृथ्वीकायिक आदि जीव बादर होते हैं और सूक्ष्मनामकर्मके उदयसे पृथ्वीकायिक आदि जीव सूक्ष्म होते हैं, क्योंकि बादर और सूक्ष्मनामकर्म ३०
जीवविपाकी हैं। अतः उनके उदयसे जीव बादर और सूक्ष्म कहे जाते हैं। और उनके सम्बन्धसे उनके शरीर भी बादर और सूक्ष्म होते हैं। इस कारणसे इन्द्रिय और विषयके संयोगसे उत्पन्न सुख-दुःखकी तरह परसे अपना और अपनेसे परका घात सम्भव होनेसे घात शरीर स्थूल होता है और अघात शरीर सूक्ष्म होता है। उन शरीरोंके धारी भी घात

दत्तणिदं घातशरीरं स्थूलमक्कुमघातदेहं सूक्ष्ममक्कुं। तद्देहिगळु घातशरीररप्प स्थूलरुमघातदेहमप्प सूक्ष्मरुमप्परु। घातलक्षितं शरीरं येषां ते घातशरीराः अघातो देहो येषां ते अघातदेहाः एंदितु बाध्याबाध्यत्वपरिणति संभविसुगुमप्पुदरिंदं।

तद्देहमंगुलस्सासंखं भागस्स बिंदमाणं तु।
आधारे थूलाओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥१८४॥

तद्देहोंऽगुलस्यासंख्येयभागस्य वृंदमानस्तु। आधारे स्थूलाः सर्व्वत्र निरंतराः सूक्ष्माः॥

आ बादरसूक्ष्मंगळप्प पृथ्वीकायिकादिचतुःप्रकारमप्प जीवंगळ शरीरंगळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवेकेंदोडे—सूक्ष्मवायुकायिकापर्य्याप्तकजघन्यशरीरावगाहं मोदल्गोंडु बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्य्यंतं ४२ नाल्वत्तेरडुं स्थानदोळं पल्यासंख्यातभागहारंगळु घनांगुलक्के संभविसुगुमप्पुदरिंदमदल्लदेयुमागमदोळु "बिपुण्णजहण्णोत्ति य संखं संखं गुणं तत्तो" एंदसंख्यातगुणकारसंभववचनदिंदमुमसंख्यातभागहाराभिव्यक्ति प्रसिद्धियक्कुं।

सूक्ष्मापर्य्याप्तवातकायजघन्यावगाहनन्यासमिदु ६।८।२२ पृथ्वीकायबाद-

अ
प।१९।८।८।८।२२।१।९
अ अ अ

संभवात् घातशरीरं स्थूलं भवति। अघातदेहः सूक्ष्मो भवति। तद्देहिनोऽपि घातशरीराः स्थूलाः, अघातदेहाः सूक्ष्मा भवन्ति। घातोपलक्षितं शरीरं येषां ते घातशरीराः। अघातो देहो येषां ते अघातदेहा इति बाध्यत्वाबाध्यत्वपरिणतिसंभवात् ॥१८३॥

तेषां बादरसूक्ष्मपृथ्वीकायिकादिचतुर्विधजीवानां शरीराणि घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्राणि भवन्ति। सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकजघन्यशरीरावगाहनादारभ्य बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्यन्तं द्वाचत्वारिंशत्स्थानेषु घनाङ्गुलस्य पल्यासंख्यातभागहारसंभवात्। अथवा परमागमे—बीपुण्णजहण्णोत्तियअसङ्खसङ्खं गुणं तत्तो। इत्यसंख्यातगुणकारसंभववचनात्तस्यासंख्यातभागहाराभिव्यक्तिप्रसिद्धेः। तत्र तु सूक्ष्मापर्याप्तवात-

६।८।२२
अ
कायजघन्यावगाहनन्यासोऽयं प १९।८।८।८।२२।१ ९ पृथ्वीकायबादरपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनप्रमाण-
अ अ अ

शरीरवाले स्थूल और अघात शरीरवाले सूक्ष्म होते हैं। जिनका शरीर घात सहित होता है अर्थात् घाता जाता है, वे घातशरीर हैं और जिनका शरीर घात रहित होता है, वे अघातशरीर हैं। इस प्रकार बाध्यत्व और अबाध्यत्व रूप परिणमन सम्भव होनेसे शरीर बादर-सूक्ष्म होते हैं ॥१८३॥

उन बादर और सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि चार प्रकारके जीवोंके शरीर घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होते हैं। क्योंकि सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तककी जघन्य शरीर अवगाहनासे लेकर बादरपर्याप्त पृथ्वीकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त बयालीस स्थानोंमें घनांगुलका पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र भागहार होता है। अथवा परमागममें कहा है कि 'दोइन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना पर्यन्त असंख्यातवें भाग गुणाकार है और आगे संख्यातवें भाग गुणाकार है' इस सूत्रसे बयालीसवें स्थानको असंख्यातसे गुणा करनेपर अगले स्थानमें संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना होती है।अतः बयालीसवें स्थानमें घनांगुलका

रपर्य्याप्तकोत्कृष्टावगाहनप्रमाणमिदु ६।८।४ आधारदोळाश्रयदोळु वर्त्तिसुव

ə ए—
प।४।८।४।१।९
ə ə

शरीरम नुळ्ळवावु केलवु जीवंगळवेल्लमुं स्थूलंगळु बादरंगळे बुदत्थं। आधारदिंदमा जीवंगळगे बादरस्वभावप्रतिघाताभावमादोडमधःपतनरूपगतिप्रतिघातसंभवदिंदं मुं पेळ्द लक्षण समणसमर्त्थनं मेणिदक्कुं। सर्व्वत्र सर्व्वलोकदोळं जलस्थलाकाशदोळं मेणु निरंतरंगळुमाधारानपेक्षितशरीरमनुळ्ळ जीवंगळु सूक्ष्मंगळप्पुवु। जलस्थलरूपाधारदिंदमा जीवंगळ शरीरगतिप्रतिघातमुमिल्लत्यंत सूक्ष्मपरिणाममप्पुदरिंदमा जीवंगळु सूक्ष्मंगळप्पुवु। अंतरयति व्यवदधाति विलंबयतीत्यंतरमाधारस्ततो निष्क्रांता निरंतरा एंदितिल्लियुं पूर्व्वोक्तलक्षण समर्त्थनमरियल्पडुगुं। ओ एंदितु शिष्यसंबोधनमक्कुमेत्तलानु बादरपर्य्याप्तक वायुकायिकादिगळगे जघन्यशरीरावगाहनमल्पमदं नोडलसंख्येयगुणत्वदिंदं सूक्ष्मपर्य्याप्तकवायुकायिकादि पृथ्वीकायिकावसानमाद जीवंगळगे जघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनंगळु परिदप्पुवंतादोडे सूक्ष्मनामकर्म्मोदयसामर्थ्यदिंदमन्यदिंदमवक्के प्रतिघातमिल्लदु कारणमागि निष्क्रमिसि नुसुळ्दु पोप परिणतिसंभविसुगुमें तीगळु श्लक्ष्णवस्त्रनिष्क्रांतजलबिंदुविनंते, बादरंगळु मत्तल्पशरीरत्वमादोडं बादरनामकर्म्मोदयदि मन्यदिंदं प्रतिघातमक्कुं। श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रां-

६।८।४।
ə ए——
मिदं प।४।८।४।१।९। आधारे थूलाओ आधारे आश्रये वर्तमानशरीरविशिष्टाः ये जीवास्ते सर्वेऽपि
ə ə
स्थूलाः—बादरा इत्यर्थः। आधारेण तेषां बादरस्वभावप्रतिघाताभावेऽप्यधःपतनरूपप्रतिघातसंभवात् प्रागुक्तलक्षणमेव समर्थितं भवति। सर्वत्र—सर्वलोके जले स्थले आकाशे वा निरन्तराः—आधारानपेक्षितशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति। जलस्थलरूपाधारेण तेषां शरीरगतिप्रतिघातो नास्ति। अत्यन्तसूक्ष्मपरिणामत्वात्ते जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति। अन्तरयति—व्यवदधाति विलम्बयतीत्यन्तरं—आधारः, ततो निष्क्रान्ता निरन्तरा इत्यत्रापि पूर्वोक्तलक्षणमेव समर्थितं ज्ञातव्यम्। ओ इति शिष्यसंबोधनम्। यद्यपि बादरापर्याप्तवायुकायिकादीनां जघन्यशरीरावगाहनमल्पम्। ततोऽसंख्येयगुणत्वेन सूक्ष्मपर्याप्तकवायुकायिकादिपृथ्वीकायिकावसानजीवानां जघन्योत्कृष्ट-

भागहार असंख्यात सिद्ध है, यह स्पष्ट है। पीछे जीव समासाधिकारमें सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायकी जघन्य अवगाहना और बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिककी उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण कहा ही है सो जानना। वर्तमान शरीरसे विशिष्ट जो जीव आधार अर्थात् आश्रयसे रहते हैं, वे सब बादर होते हैं। आधारसे उनके बादर स्वभावका प्रतिघात नहीं होनेपर भी नीचे गिरनेरूप स्वभावका प्रतिघात होता है। अतः पहले जो घातरूप लक्षण बादर शरीरका कहा था, उसीका समर्थन होता है। गाथामें 'ओ' पद शिष्यके लिए सम्बोधन है। यद्यपि बादर अपर्याप्त वायुकायिक आदिकी जघन्य शरीरावगाहना अल्प है और उससे असंख्यात गुणी होनेसे सूक्ष्म पर्याप्तक वायुकायिकसे लेकर पृथ्वीकायिक पर्यन्त जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना महान् है। फिर भी सूक्ष्मनामकर्मके उदयके सामर्थ्यसे उनका अन्यसे प्रतिघात नहीं होता, और जैसे महीन वस्त्रसे जलकी बूंद निकल जाती है उसी तरह वे सूक्ष्म जीव निकलकर चले जाते हैं। किन्तु बादरोंका शरीर अल्प होनेपर भी बादर-

१. म °वदोलम्। २. म °णं मेणि°।

तसर्षपवंते । एत्तलानुं वृद्धिप्राप्तर स्थूलशरीरक्के वज्रशिलादिनिष्क्रांतियुंटु अदु तपोतिशयमाहात्म्यदिनेंदु पेळ्वेमंचित्यं हि तपोविद्यामणिमंत्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्वभावमप्पुदु कारणमागि स्वभावोऽतर्कगोचरः एंदितु समस्तवादिसंमतमक्कुमप्पुदरिंदं अतिशयरहितवस्तुविचारदल्लि पूर्वोक्तशास्त्रमार्गमे बादरसूक्ष्मंगळगे सिद्धमक्कुं ।

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति ।
पत्तेयं सामण्णं पदिट्ठिदिदरंति पत्तेयं ॥१८५॥

उदये तु वनस्पतिकर्म्मणश्च जीवा वनस्पतयो भवंति । प्रत्येकं सामान्यप्रतिष्ठितेतरमिति प्रत्येकं ॥

वनस्पतिविशिष्टस्थावरनामकर्म्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयदोळु तु मत्ते जीवंगळु वनस्पतिकायिकंगळप्पुवुमवुं प्रत्येकशरीरंगळुं सामान्यशरीरंगळेंदितु द्विविधंगळप्पुवु । एकं प्रतिनियतं प्रत्येकमोंदु जीवक्कोंदे शरीरमेंबुदर्थं । प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । समानमेव सामान्यं सामान्यं शरीरं येषां ते सामान्यशरीराः साधारणशरीरा इत्यर्थः ।

शरीरावगाहनानि महान्ति तथापि सूक्ष्मनामकर्मोदयसामर्थ्यात् अन्यतस्तेषां प्रतिघाताभावात् निष्क्रम्य गच्छन्ति श्लक्ष्णवस्त्रनिष्क्रान्तजलबिन्दुवत् । बादराणां पुनरल्पशरीरत्वेऽपि बादरनामकर्मोदयवशादन्येन प्रतिघातो भवत्येव श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रान्तसर्षपवत् । यद्यपि ऋद्धिप्राप्तानां स्थूलशरीरस्य वज्रशिलादिनिष्क्रान्तिरस्ति सा कथं ? इति चेत् तपोऽतिशयमाहात्म्येनेति ब्रूमः, अचिन्त्यं हि तपोविद्यामणिमन्त्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्वभावत्वात् । 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' इति समस्तवादिसंमतत्वात् । अतिशयरहितवस्तुविचारे पूर्वोक्तशास्त्रमार्ग एव बादरसूक्ष्माणां सिद्धः ॥१८४॥

वनस्पतिविशिष्टस्थावरनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदये तु पुनः जीवा वनस्पतिकायिका भवन्ति । ते च प्रत्येकशरीराः सामान्यशरीरा इति द्विविधा भवन्ति । एकं प्रति नियतं प्रत्येकं एकजीवस्य एकशरीरमित्यर्थः ।

नामकर्मका उदय होनेसे अन्यसे प्रतिघात होता ही है;जैसे सरसों छोटी होनेपर भी महीन वस्त्रमें-से नहीं निकलती ।

शंका—यदि ऐसा है तो ऋद्धिधारी मुनियोंका शरीर स्थूल होनेपर भी वज्रशिला आदि में-से कैसे निकल जाता है ?

समाधान—तपके अतिशयके माहात्म्यसे निकल जाता है । तप, विद्या, मणि, मन्त्र, औषधकी शक्तिके अतिशयका माहात्म्य अचिन्त्य है । सभी वादी इस बातसे सहमत हैं कि वस्तुका स्वभाव तर्कका विषय नहीं है । अतिशय रहित वस्तुके विचारमें पूर्वोक्त शास्त्रमार्ग ही बादर और सूक्ष्मोंका सिद्ध है ॥१८४॥

वनस्पतिविशिष्ट स्थावर नामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतिका उदय होनेपर जीव वनस्पतिकायिक होते हैं । वे दो प्रकारके होते हैं—एक प्रत्येकशरीर और एक सामान्यशरीर । एकके प्रति नियत जो है,वह प्रत्येक है अर्थात् एक जीवका एक शरीर । जिनका शरीर प्रत्येक है,वे प्रत्येकशरीर हैं । समान ही हुआ सामान्य । जिनका सामान्य शरीर है, वे सामान्यशरीर अर्थात् साधारणशरीर हैं । उनमें-से प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितके भेदसे दो प्रकार-

---

१. युं म° तपो° । २. तो नास्तीति नत् नि—ब । ३. सा तपो—ब ।

इल्लि प्रत्येकशरीरंगळु प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेददिंदं द्विविधंगळु । इति शब्दमिल्लि प्रकारवाचियक्कुं । बादरनिगोदैराश्रिताः प्रतिष्ठितास्तैरनाश्रिता अप्रतिष्ठिता एंदितु प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदंगळरियल्पडुगुं ।

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंधबीजबीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥१८६॥

मूलाग्रपर्व्वबीजाः कंदा स्कंधबीजास्तथा बीजरुहास्संमूर्च्छिमाश्च भणिताः प्रत्येका अनंतकायाश्च ॥

मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः आर्द्रकहरिद्रादिगळु । अग्रं बीजं येषां ते अग्रबीजाः आर्य्यकोदिब्यादिगळु कगोरले मुडिवाळादिगळु । पर्व्वबीजं येषां ते पर्व्वबीजाः इक्षुवेत्रादिगळु । कंदो बीजं येषां ते कंदबीजाः पिंडालसूरणादिगळु । स्कंधो बीजं येषां ते स्कंधबीजाः सल्लकी कंटकी पलाशादिगळु । बीजाद्रोहंतीति बीजरुहाः शालिगोधूमादिगळु । संमूर्च्छे सं समंतात्प्रसृतपुद्गलस्कंधे भवास्ते संमूर्च्छिमाः । मूर्च्छिमाः मूलादिनियतबीजनिरपेक्षास्ते च इन्ती मूलादिबीजनिरपेक्षसंमूर्च्छिमंगळु पेळल्पट्टवु ।

प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । समानमेव सामान्यं, सामान्यं शरीरं येषां ते सामान्यशरीराः—साधारणशरीरा इत्यर्थः । तत्र प्रत्येकशरीराः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद् द्विविधाः । इतिशब्दोऽत्र प्रकारवाची । बादरनिगोदैराश्रिताः प्रतिष्ठिताः, तैरनाश्रिताः अप्रतिष्ठिता इति तयोर्भेदावगमनात् ॥१८५॥

मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः आर्द्रकहरिद्रादयः । अग्रं बीजं येषां ते अग्रबीजाः—आर्यकोदीच्यादयः । पर्व बीजं येषां ते पर्वबीजाः इक्षुवेत्रादयः । कन्दो बीजं येषां ते कन्दबीजाः—पिण्डालुसूरणादयः । स्कन्धो बीजं येषां ते स्कन्धबीजाः—सल्लकीकण्टकीपलाशादयः । बीजात् रोहन्तीति बीजरुहाः—शालिगोधूमादयः । संमूर्छे समन्तात् प्रसृतपुद्गलस्कन्धे भवाः सम्मूर्छिमाः—मूलादिनियतबीजनिरपेक्षाः ते च ये प्रत्येकशरीरा जीवाः परमागमे भणितास्ते अनन्तकायाश्च अनन्तानां निगोदजीवानां कायाः—शरीराणि एष्विति अनन्तकायाः

के हैं । यहाँ इति शब्द प्रकारवाची है । जो प्रत्येकशरीर वनस्पति बादर निगोद जीवोंके द्वारा आश्रयरूपसे स्वीकार किया गया है, वह प्रतिष्ठित है । और जो उनसे आश्रित नहीं है, वह अप्रतिष्ठित है । इस प्रकार उन दोनोंमें भेद जानना ॥१८५॥

जिन वनस्पतियोंका बीज उनका मूल होता है; जैसे अदरक, हल्दी वगैरह वे मूलबीज हैं । जिनका बीज उनका अग्रभाग होता है; जैसे आर्यक उदीचि (?) आदि, वे अग्रबीज हैं । जिनका बीज पर्व होता है; जैसे ईख, वेंत वगैरह वे पर्वबीज हैं । जिनका बीज कन्द होता है, जैसे सूरण वगैरह वे कन्दबीज हैं । जिनका बीज स्कन्ध होता है; जैसे पलास, सल्लकी वगैरह वे स्कन्धबीज हैं । जो बीजसे पैदा होते हैं; जैसे धान, गेहूँ वगैरह, वे बीजरुह हैं । सम्मूर्च्छ अर्थात् चारों ओरसे आये पुद्गलस्कन्धोंसे होनेवाली वनस्पति सम्मूर्च्छिम है । उनके लिए मूल आदि नियत बीजकी अपेक्षा नहीं होती । इस प्रकार परमागममें जो ये प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव कहे हैं, वे अनन्तकाय होते हैं । जिनमें अनन्तकाय अर्थात् अनन्तानन्त निगोद जीवोंके शरीर रहते हैं, उन्हें अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठितप्रत्येक कहते हैं तथा 'च'

---

१. क्षाः ते च ये प्रत्येक शरीरा जीवाः परमागमे भणितास्ते अनन्तकायाश्च अ—गु० ।

प्रत्येकाः प्रत्येकशरीरंगळप्प जीवंगळे दु मत्तमिवनंतकायिकंगळुमनंतकायंगळल्लदवुमक्कुमे दु च शब्ददिंदमरियल्पडुवुवु ।

अनंतानां निगोदजीवानां कायाः शरीराणि येष्विति तेऽनंतकायाः प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थः । च शब्दादप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्च संतीत्यर्थः । मूलबीजादि संमूर्च्छिमपर्य्यंतमाद प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित-
५ प्रत्येकशरीरजीवंगळनितुं संमूर्च्छिमंगळेयप्पुवु । प्रतिष्ठितं साधारणशरीरैराश्रितं प्रत्येकशरीरं येषां ते प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरास्तैरनाश्रितशरीरा अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः स्युः । प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीर-जीवसर्व्वोत्कृष्टावगाहनमुं घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वदिंद पूर्व्वोक्तार्द्रकादिस्कंधंगळोळोंदोंदरोळ-संख्यातंगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळु ज्ञातव्यंगळप्पुदरिंदनी त्रैराशिकमरियल्पडुगुं ।

इंतिनितु क्षेत्रक्केत्तलानुमोंदु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमक्कुमागळिनितु क्षेत्रक्केनितु प्रतिष्ठित-
१० प्रत्येकशरीरंगळप्पुवेंदितु प्र ६।प १।इ १।६।२ लब्धराशियोंदोंदु आर्द्रकादि-
प।२।१।९
ə
स्कंधंगळोळ् संभविसुव प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु प २।१।१० अप्रतिष्ठितप्रत्येक-
ə

प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थः, चशब्दादप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्च सन्तीत्यर्थः । प्रतिष्ठितं-साधारणशरीरैराश्रितं प्रत्येक-शरीरं येषां ते प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः तैरनाश्रितशरीरा अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः स्युः । एते मूलबीजादि-सम्मूर्छिमपर्यन्ताः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरजीवास्तेऽपि सम्मूर्छिमा एव भवन्ति । प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति-
१५ जीवशरीरस्य सर्वोत्कृष्टावगाहनमपि घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेवेति पूर्वोक्तार्द्रकादिस्कन्धेषु एकैकस्मिंस्तानि असंख्यातानि असंख्यातानि सन्ति । यद्येतावत्क्षेत्रस्य प्र ६ प।२।१।९ एकं प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरं फ–१
ə
स्यात् तदेतावत्क्षेत्रस्य इ–।६।१ कति प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि स्युरिति त्रैराशिकलब्धानि एकैकार्द्रकादि-स्कन्धसंभवीनि प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि भवन्ति प २।१।१० । अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिजीवशरीराणि
ə

शब्दसे अप्रतिष्ठितप्रत्येक भी होते हैं। जिनका प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित अर्थात् साधारण-
२० शरीरोंसे आश्रित होता है, वे प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर हैं। और जिनका प्रत्येक शरीर साधारण शरीरोंसे आश्रित नहीं होता, वे अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर होते हैं। ये मूलबीजसे लेकर सम्मूर्छिम पर्यन्त जो प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर और अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर जीव कहे हैं, वे भी सम्मूर्छनजन्मवाले ही होते हैं। अर्थात् सम्मूर्छिम वनस्पतिसे यह नहीं समझना चाहिए कि अकेले उन्हींका सम्मूर्छन जन्म होता है। प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवके
२५ शरीरकी सबसे उत्कृष्ट अवगाहना भी घनांगुलके असंख्यातवें भाग-मात्र ही है। अतः पूर्वोक्त अदरक आदि स्कन्धोंमें एक-एकमें असंख्यात-असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर होते हैं। घनांगुलको दो बार पल्यके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने क्षेत्रमें यदि एक प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रहता है, तो संख्यात घनांगुल प्रमाण अदरक आदिमें कितने रहेंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्ध-
३० राशि दो बार पल्यका असंख्यातवाँ भाग और दस बार संख्यातको रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना प्रमाण होता है, उतने प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर एक अदरक आदि स्कन्धमें

वनस्पतिजीवशरीरंगळु यथासंभवमागियसंख्यातमुं संख्यातमुं मेणप्पुवु मेनितु प्रत्येकशरीरंगळनिते प्रत्येकवनस्पतिजीवंगळप्पुवु मल्लि प्रतिशरीरमेकैकजीवप्रतिज्ञानमप्पुदरिंदं।

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८७॥

गूढशिरासंधिपर्व्वाणि समभंगमहीरुहकं च छिन्नरुहं । साधारणं शरीरं तद्विपरीतं च प्रत्येकं ॥ ५

यत्प्रत्येकशरीरं आवुदोंदु प्रत्येकशरीरं गूढशिरं अदृश्यबहिः स्नायुकमुं। गूढसंधि अदृश्यसंधिरेखाबंधमुं। गूढपर्व्वं अदृश्यग्रंथिकमुं। समभंगं त्वग्गृहीतत्वदिंद सदृशच्छेदप्पुदुं। अहीरुकमंतर्गतसूत्ररहितमुं छिन्नरुहं छिन्नं रोहतीति छिन्नमादोडं मोळेवुदुं। साधारणं साधारणजीवाश्रितत्वदिंदं साधारणमेंदुपचारदिंदं पेळल्पट्टदु प्रतिष्ठितशरीरमेंबुदर्थं । तद्विपरीतं गूढसिरत्वादिपूर्व्वोक्तलक्षणरहितं तालं नालिकेरंतिंत्रिणिकादिशरीरमप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमेंदु विभागार्थमागि १०
च शब्दमक्कुं ।

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥१८८॥

मूले कंदे छल्लीप्रवालशालादलकुसुमफलबीजे । समभंगे सत्यनंता असमे सति भवंति प्रत्येकाः ॥ १५

यथासंभवं असंख्यातानि संख्यातानि वा भवन्ति । यावन्ति प्रत्येकशरीराणि तावन्त एव प्रत्येकवनस्पतिजीवाः तत्र प्रतिशरीरं एकैकस्य जीवस्य प्रतिज्ञानात् ॥१८६॥ अथ साधारणशरीरवनस्पतिजीवस्वरूपं गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति—

यत् प्रत्येकशरीरं गूढशिरं-अदृश्यबहिःस्नायुकं, गूढसन्धि-अदृश्यसन्धिरेखाबन्धं, गूढपर्व-अदृश्यग्रन्थिकं, समभङ्गं-त्वग्रहितत्वेन सदृशच्छेदं, अहीरुकं-अन्तर्गतसूत्ररहितं, छिन्नं रोहतीति छिन्नरुहं तच्छिन्नरुहं साधारणं- २०
साधारणजीवाश्रितत्वेन साधारणमित्युपचर्यते प्रतिष्ठितशरीरमित्यर्थः । तद्विपरीतं गूढशिरत्वादिपूर्वोक्तलक्षणरहितं तालनालिकेरतिन्तिणीकादिशरीरं अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमिति विभागं चशब्दः सूचयति ॥१८७॥

रहते हैं। तथा एक स्कन्धमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति जीव यथासम्भव असंख्यात अथवा संख्यात होते हैं। जितने प्रत्येकशरीर होते हैं, उतने ही प्रत्येकवनस्पति जीव होते हैं; क्योंकि उनमें प्रत्येकशरीरमें एक-एक जीवके होनेका नियम है ॥१८६॥ २५

आगे साधारण शरीर वनस्पतिजीवका स्वरूप चार गाथाओंसे कहते हैं—

जिस प्रत्येकशरीर वनस्पतिके ऊपरकी बाह्य स्नायु, भीतरमें फाँकोंकी सन्धियाँ, पोरियाँ जैसे ईखमें, अदृश्य हों, प्रकट नहीं हुई हों, तोड़नेपर बिल्कुल समान रूपसे दो टुकड़ोंमें टूट जाये, तोड़नेपर दोनों टुकड़ोंके बीचमें कोई तार-सा लगाव न हो, तथा काटने पर भी उग आवे तो वह साधारण है। साधारण जीवोंके द्वारा आश्रित होनेसे प्रतिष्ठित प्रत्येकको ३०
उपचारसे साधारण कहा है। यहाँ वैसे साधारणका अर्थ प्रतिष्ठित शरीर है। जो इससे विपरीत है अर्थात् जिसके सिर आदि प्रकट हैं, वह अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर है; जैसे तालफल, नारियल, इमली वगैरह। गाथा का 'च' शब्द इस भेदका सूचक है ॥१८७॥

---

१. विभागः चशब्देन सूचितः ब ।

मूलदोळं कंददोळं त्वक्किनोळं पल्लवांकुरदोळं क्षुद्रशाखेयोळं पत्रदोळं कुसुमदोळं फलदोळं बीजदोळमुं समभंगे सति समभंगमागुत्तिरलु नारिल्लदुदरिनेरडु खंडमादोडे अनंताअनंतकायंगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळें बुदर्थं ।

आ मूलादिगळोळु समभंगमिल्लद वनस्पतिगळुप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु ।

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दु तणुकदरी ॥१८९॥

कंदस्य वा मूलस्य वा सालायाः स्कंधस्य वापि बहुलतरा । त्वक् ते अनंतजीवाः प्रत्येकजीवास्तु तनुत्वचः ॥

आवुवु केलवु प्रत्येकवनस्पतिगळ कंदक्के मेणु मूलक्के मेणु सालेगे क्षुद्रशाखेगे मेणु स्कंधक्के मेणु आवुदो दुत्वक् बहुलतरं स्थूलतरमक्कुमप्पोडे या वनस्पतिगळनंतकायजीवंगळुमप्पुवु । निगोदजीवंगळोळ् कूडिदप्रतिष्ठितप्रत्येकंगळें बुदर्थं । तु मत्ते आवुवु केलवक्के कंदादिगळोळ् त्वक्कनुतरमादोडे तद्वनस्पतिगळऽप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु ।

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमदि सो व अण्णो वा ।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥१९०॥

बीजे योनीभूते जीवः प्रक्रामति स वान्यो वा । येपि च मूलादिकास्ते प्रत्येकाः प्रथमतायां ।

योनीभूते जीवोत्पत्तिगे योग्यमाद मूलाग्रादिबीजावसानमाद बीजंगळोळु जीवं स एव वाऽन्यो वा पेरगे तत्रस्थितजीवं स्वायुःक्षयवर्शदिदं मुक्तशरीरनागि मत्तमल्लियें प्रक्रामत्युत्पद्यते

मूले कन्दे त्वचि पल्लवाङ्कुरे क्षुद्रशाखायां पत्रे कुसुमे फले बीजे च समभङ्गे सति अनन्ताः—अनन्तकायाः—प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा इत्यर्थः । मूलादिषु समभङ्गरहितवनस्पतिषु अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति ॥१८८॥

येषां प्रत्येकवनस्पतीनां कन्दस्य वा मूलस्य वा शालायाः वा क्षुद्रशाखाया वा स्कन्धस्य वा या त्वक् बहुलतरी-स्थूलतरी स्यात् ते वनस्पतयः अनन्तकायजीवा भवन्ति—अनन्तजीवैः-निगोदजीवैः सहिताः प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति इत्यर्थः । तु पुनः येषां कन्दादिषु त्वक् तनुतरी ते वनस्पतयः अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति ॥१८९॥

बीजे—मूलादिबीजावसाने, योनिभूते—जीवोत्पत्तियोग्ये, जाते सति स एव—तत्र स्थित एव जीवः मृत्वा—स्वायुःक्षयवशेन मुक्तशरीरो भूत्वा पुनस्तत्रैव प्रक्रामति—उत्पद्यते । अन्यो वा अन्यशरीरान्तरव्यवस्थितो जीवः

जिन प्रत्येक वनस्पतियोंके मूल, कन्द, छाल, कोंपल, अंकुर, छोटी टहनी, बड़ी डाल, पत्ते, फूल, फल और बीज यदि तोड़नेपर इनका समभंग होता है, तो ये अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं और यदि समभंग नहीं होता,तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं ॥१८८॥

जिस प्रत्येक वनस्पतिके कन्द, मूल, क्षुद्र, शाखा, या स्कन्धकी छाल मोटी हो,तो वे वनस्पति अनन्तकाय होती है अर्थात् निगोद जीवोंसे सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होती है । किन्तु जिनकी छाल पतली होती है,वे वनस्पतियाँ अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती हैं ॥१८९॥

बीज अर्थात् मूलसे लेकर बीज पर्यन्त, योनिभूत अर्थात् जीवोंकी उत्पत्तिके योग्य हो जानेपर वही जीव जो उसमें वर्तमान है, मरकर अर्थात् अपनी आयुके क्षय हो जानेसे शरीरको छोड़कर पुनः उसीमें उत्पन्न होता है । अथवा अन्य शरीरमें रहनेवाला जीव अपनी

पुट्टुगुमन्योपि वा परगे शरीरांतरव्यवस्थितनप्प जीवं स्वायुःक्षयवशदिंदं त्यक्तशरीरनागि बंदु स्वयोग्यमूलादिबीजंगळोळु प्रक्रामति पुट्टुगु मावु केलवु मूलादिगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरत्वदिंदं प्रसिद्धंगळु अवु प्रथमतायां स्वोत्पन्नप्रथमसमयं मोदल्गोंडु यावदंतर्म्मुहूर्त्तं तावत्कालपर्य्यंतं साधारणजीवंगळिंदमप्रतिष्ठितंगळेयप्पुवु ।

अनंतरं साधारणशरीरवनस्पतिस्वरूपनिरूपणमं गाथाचतुष्टयदिं माडिदपं । ५

साहारणोदएण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा ।
ते पुण दुविहा जीवा बादरसुहुमात्ति विण्णेया ॥१९१॥

साधारणोदयेन निगोदशरीरा भवंति सामान्याः । ते पुनर्द्विविधाः जीवा बादरसूक्ष्मा इति विज्ञेयाः ॥

साधारणनामकर्म्मोदयदिंदं समुत्पन्ननिगोदशरीर जीवंगळु सामान्यवनस्पतिजीवंगळप्पुवु । साधारणवनस्पतिगळप्पुवें बुदर्त्थं । नि नियतां गां भूमिं क्षेत्रमनंतानंतजीवानां ददातीति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः । ते पुनः साधारणवनस्पतिकायिकाः जीवाः बादराः सूक्ष्माश्च भवंति । एतेषां बादराणां सूक्ष्माणां च लक्षणं पूर्व्वोक्तमेवेति विज्ञेया भवंति । १०

स्वायुःक्षयवशेन त्यक्तशरीरो भूत्वा आगत्य स्वयोग्यमूलादिबीजे प्रक्रामति । येऽपि च मूलकादयः प्रतिष्ठित-प्रत्येकशरीरत्वेन प्रसिद्धाः तेऽपि खलु प्रथमतायां स्वोत्पन्नप्रथमसमये अन्तर्मुहूर्तकालं साधारणजीवैरप्रतिष्ठिता एव भवन्ति ॥१९०॥ १५

साधारणनामकर्मोदयेन जीवा निगोदशरीरा भवन्ति । नि–नियतां गां–भूमिं क्षेत्रं अनन्तानन्तजीवानां ददाति इति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः इति लक्षणसिद्धत्वात् । त एव सामान्याः–साधारणशरीरा जीवाः पुनः बादराः सूक्ष्माश्चेति द्विधा पूर्वोक्तलक्षणलक्षिता विज्ञेयाः ॥१९१॥

आयुके क्षय हो जानेसे वह शरीरको छोड़कर अपने योग्य मूल आदि बीज पर्यन्तमें उत्पन्न होता है। जो भी मूली आदि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रूपसे प्रतिबद्ध हैं, वे भी अपनी उत्पत्तिके प्रथम समयमें अन्तर्मुहूर्त काल तक साधारण जीवोंसे अप्रतिष्ठित ही होते हैं ॥१९०॥ २०

विशेषार्थ—मूलसे लेकर बीज पर्यन्त वनस्पतिमें जो जीव पहले था, उसकी आयु पूरी होनेसे मर गया। किन्तु उस वनस्पतिकी उत्पादन शक्ति नष्ट नहीं हुई है, तो बाह्य कारण मिलनेपर वही जीव जो पहले उसमें प्रत्येकशरीररूपमें जीकर मर गया था, पुनः उसी मूलादि बीजको शरीर बनाकर उत्पन्न होता है अथवा यदि वह पूर्व शरीरका स्वामी जीव अन्यत्र उत्पन्न हो जाता है, तो अन्य जीव आकर उसमें उत्पन्न होता है। तथा जो प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है, वह भी अपनी उत्पत्तिके प्रथम समयमें या अन्तर्मुहूर्त कालतक अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है। पीछे जब निगोद जीव उसके आश्रित हो जाते हैं, तब प्रतिष्ठित हो जाती है। २५ ३०

साधारण नामकर्मके उदयसे जीव निगोद शरीरवाले होते हैं। 'निं' अर्थात् नियत गां अर्थात् भूमि, क्षेत्र या निवास अनन्तानन्त जीवोंको देता है, वह निगोद है। निगोद शरीर जिनका है, वे निगोद शरीर हैं, इस प्रकार लक्षणसे सिद्ध है। वही सामान्य अर्थात् साधारण-शरीर होते हैं। उनके दो भेद हैं—बादर और सूक्ष्म। इनका लक्षण पहले कहा है ॥१९१॥

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥१९२॥

साधारणमाहारः साधारणमानापानग्रहणं च । साधारणजीवानां साधारणलक्षणं भणितं ॥

आवुवु केलवु साधारणनामकर्म्मोदयवशवर्त्तिगळप्पनंतजीवंगळगे उत्पन्नप्रथमसमयदोळाहारपर्य्याप्तियं तत्कार्य्यमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधखलरसभागपरिणमनमुं साधारणं सदृशं समकालमक्कुमंते शरीरपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगे शरीराकारपरिणमनमुमंते इंद्रियपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यं स्पर्शनेंद्रियाकारपरिणमनमुमंतेयानपानपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यमुच्छ्वासनिःश्वासग्रहणमुं साधारणं सदृशरूपं समकालमुमक्कुमा जीवंगळु साधारणजीवंगळर्दितु साधारणजीवंगळगे उत्पत्तिप्रथमसमयोत्पन्नंगळगे तंतेया शरीरदोळु द्वितीयादिसमयोत्पन्नंगळगेयुमनंतजीवंगळगे पूर्व्वपूर्व्वसमयोत्पन्नानंतजीवंगळोडनेयाहारपर्य्याप्त्यादिसर्व्वं सदृशरूपं समकालमक्कुमेंदितु साधारणलक्षणं पूर्व्वसूरिगळिंदं भणितं ज्ञातव्यमक्कुं । च शब्दिंद शरीरेंद्रियपर्य्याप्तिद्वयसमुच्चयं माडल्पट्टुदु ।

जत्थेक्क मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थणंताणं ॥१९३॥

यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र तु मरणं भवेदनंतानां । प्रक्रामति यत्रैकः प्रक्रमणं तत्रानंतानां ॥

यत्साधारणनामकर्मोदयवशवर्त्यनन्तजीवानां उत्पन्नप्रथमसमये आहारपर्याप्तिस्तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागपरिणमनं साधारणं सदृशं समकालं च भवति । तथा शरीरपर्याप्तिः तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां शरीराकारपरिणमनं तथा इन्द्रियपर्याप्तिः तत्कार्यं च स्पर्शनेन्द्रियाकारपरिणमनं तथा आनपानपर्याप्तिः तत्कार्यं च उच्छ्वासनिश्वासग्रहणं साधारणं सदृशं समकालं च भवति । तथा प्रथमसमयोत्पन्नानामिव तत्रैव शरीरे द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामपि अनन्तानन्तजीवानां पूर्वपूर्वसमयोत्पन्नानन्तानन्तजीवैः सह आहारपर्याप्त्यादिकं सर्वं सदृशं समकालं च भवति । तदिदं साधारणलक्षणं पूर्वसूरिभिर्भणितं ज्ञातव्यम् । चशब्देन शरीरेन्द्रियपर्याप्तिद्वयं समुच्चयीकृतं ॥१९२॥

साधारण नाम कर्मके उदयके वशीभूत अनन्त जीवोंका उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें आहारपर्याप्ति और उसका कार्य आहारवर्गणाके आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका खल और रसभागरूपमें परिणमन साधारण अर्थात् एक समान तथा एक ही कालमें होता है । तथा शरीरपर्याप्ति और उसका कार्य आहारवर्गणाके आये पुद्गलस्कन्धोंका शरीरके आकाररूपसे परिणमन साधारण होता है । इन्द्रियपर्याप्ति और उसका कार्य स्पर्शन इन्द्रियके आकाररूपसे परिणमन तथा श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और उसका कार्य उच्छ्वास-निश्वासका ग्रहण समान और समान कालमें होता है । तथा प्रथम समयमें उत्पन्न होनेवालोंकी ही तरह उसी शरीरमें द्वितीय-तृतीय आदि समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंका पूर्व-पूर्व समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंके साथ आहारपर्याप्ति वगैरह सब समान और समान कालमें होती है । यह साधारण जीवोंका लक्षण पूर्वाचार्योंने कहा है । यहाँ 'च' शब्दसे शरीरपर्याप्ति और इन्द्रियपर्याप्तिका ग्रहण किया है ॥१९२॥

१. समुच्चीयते ब ।

यस्मिन्नेकस्मिन् शरीरे आवुदानों दु निगोदशरीरदोळु यदा आगळोम्में एको जीवः ओंदु जीवनु स्वस्थितिक्षयवशदिंदं म्रियते सत्तुदादोडे तदा तस्मिन् शरीरे आगला निगोदशरीरदोळु समस्थितिकंगळप्पनंतजीवंगळुगे मरणमोडनेयक्कु मावुदों दु निगोदसरीरदोळागळोम्मेयों दु जीवं प्रक्रामति पुट्टुगुमागळा निगोदशरीरदोळु समस्थितिकंगळप्पनंतजीवंगळुगे प्रक्रमणमुत्पत्तियुमोडनेयक्कु मितुत्पत्तिमरणंगळुगे समकालत्वमुं साधारणलक्षणं तोरल्पट्टदु। द्वितीयादिसमयोत्पन्नानंतजीवंगळगेयुं स्वस्थितिक्षयदोळुमोडने मरणमरियल्पडुगुमितों दु निगोदशरीरदोळु प्रतिसमयमनंतानंतजीवंगळ्गोडने मरणमुमोडनुत्पत्तियुमन्नेवरेगं संभविसुगुमेन्नेवरमसंख्यातसागरोपमंगळ कोटिकोटिगळसंख्यातलोकमात्रसमयप्रमितंगळुत्कृष्टनिगोदकायस्थिति परिसमाप्तियक्कुं।

इल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे ओंदु बादरनिगोदशरीरदोळु सूक्ष्मनिगोदशरीरदोळु मेणु अनंतसाधारणजीवंगळु केवलं पर्य्याप्तकंगळे पुट्टुवु मत्तमा ओंदु शरीरदोळे केवलमपर्य्याप्तकंगळे पुट्टुवुवु अल्लदे मिश्रंगळु पुट्टुवुदिल्लेकेंदोडे अवक्के समानकर्म्मोदयनियममप्पुदु कारणमागि एगस्स ओंदु साधारणजीवनकर्म्मादानशक्तिलक्षणयोगदिंदं तंगेयल्पट्ट पुद्गलपिंडोपकारमनंतानंत साधारणजीवंगळगेयुमाहारकनप्प तनगेयुमनुग्रहणमक्कुं। मत्तमनंतानंतसाधारणजीवंगळ योगशक्ति-

---

यन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः स्वस्थितिक्षयवशेन म्रियते तदा तन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः अनन्तानन्ता जीवाः सहैव म्रियन्ते। यन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः प्रक्रामति—उत्पद्यते तदा तन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः—अनन्तानन्ता जीवाः सहैव प्रक्रामन्ति। एवमुत्पत्तिमरणयोः समकालत्वमपि साधारणलक्षणं प्रदर्शितं। द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामनन्तानन्तजीवानामपि स्वस्थितिक्षये सहैव मरणं ज्ञातव्यं। एवमेकनिगोदशरीरे प्रतिसमयमनन्तानन्तजीवास्तावत्सहैव म्रियन्ते सहैवोत्पद्यन्ते यावदसंख्यातसागरोपमकोटीकोटिमात्री असंख्यातलोकमात्रसमयप्रमिता उत्कृष्टनिगोदकायस्थितिः परिसमाप्यते। अत्र विशेषोऽस्ति—स च कः? एकबादरनिगोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा अनन्तानन्ताः साधारणजीवा केवलपर्याप्ता एवोत्पद्यन्ते पुनरपि एकशरीरे केवलमपर्याप्ता एवोत्पद्यन्ते न च मिश्रा उत्पद्यन्ते तेषां समानकर्मोदयनियमात्। एकस्य साधारण-

---

जिस निगोद शरीरमें जब एक जीव अपनी आयुके क्षय होनेसे मरता है, तभी उस निगोद शरीरमें समान आयुवाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं। जिस निगोद शरीरमें जब एक जीव उत्पन्न होता है, तब उस निगोद शरीरमें समान आयुवाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पत्ति और मरणका समकालमें होना भी साधारणका लक्षण कहा है। द्वितीय आदि समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंका भी अपनी आयु पूरी होनेपर एक साथ ही मरण जानना। इस प्रकार एक निगोद शरीरमें प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। ऐसा तबतक होता रहता है, जबतक निगोदकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात सागरोपम कोटि-कोटि मात्र जो कि असंख्यात लोक मात्र समय प्रमाण है, समाप्त हो।

यहाँ कुछ विशेष कथन है—एक बादर निगोद शरीरमें या सूक्ष्म निगोद शरीरमें अनन्तानन्त साधारण जीव या तो केवल पर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं या एक शरीरमें केवल अपर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं। दोनों एक ही शरीरमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि उनके एक समान कर्मके उदयका नियम है। एक साधारण जीवके कर्मोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप योगके

---

१. यस्मिन्नि ब। २. तस्मिन्नि ब। ३. णे द ब। ४. ते तेषां ब।

गळिंदमाहारिसल्पट्ट पुद्गलपिंडोपकारमीयोव्वंगमा अनंतानंतसाधारणजीवंगळ्ग मनुग्रहणं समास-दिदं संपिंडितत्वदिंदमक्कुमो दु बादरनिगोदशरीरदोळ् सूक्ष्मनिगोदशरीरदोळु मेणु यथासंख्यमागि पर्य्याप्तकंगळप्प बादरनिगोदजीवंगळु सूक्ष्मनिगोदजीवंगळं भवप्रथमसमयदोळमनंतानंतंगळ्ग पुट्टुववु। द्वितीयसमयदोळमवं नोडलसंख्येयगुणहीनंगळु पुट्टुगुमिंतु निरंतरमावल्यसंख्यातैक-भागकालपर्य्यंतं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमदिंद पुट्टुववल्लिंदं मेलें जघन्यदिनो दु समयमुत्कृष्ट-दिनावल्यसंख्येयभागमात्रकालमंतरिसि मत्तं जघन्यदिनो दु समयमुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्येयभाग-मात्रकालं निरंतरमा निगोदशरीरदोळसंख्यातगुणहीनक्रमदिंदं साधारणजीवंगळु पुट्टुवंतु सांतरनिरंतरक्रमदिंदमन्नेवरं पुट्टुववन्नेवरं प्रथमसमयोत्पन्नसाधारणजीवन सर्व्वजघन्यमप्प निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालमवशेषमक्कुं। २ १। मत्तमा प्रथमादिसमयंगळोळुत्पन्नंगळप्प सर्व्वसाधारण-जीवंगळाहारशरीरेंद्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तिगळ्गे स्वस्वयोग्यकालदोळु निष्पत्तियक्कुं।

अनंतरं बादरनिगोदशरीराधारप्रतिपादनमं माडिदपं।

जीवस्य कर्मादानशक्तिलक्षणयोगेन गृहीतपुद्गलपिण्डोपकारोऽनन्तानन्तसाधारणजीवानां तस्य चानुग्रहणं भवति। पुनरपि अनन्तानन्तसाधारणजीवानां योगशक्तिभिः गृहीतपुद्गलपिण्डोपकारः एकस्य अनन्तानन्त-साधारणजीवानां चानुग्रहणं समासेन संपिण्डितत्वेन भवति। एकबादरनिगोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा यथासंख्यं पर्याप्ताः बादरनिगोदजीवाः सूक्ष्मनिगोदजीवाश्च भवप्रथमसमये अनन्तानन्ता उत्पद्यन्ते। द्वितीयसमये तेभ्योऽसंख्येयगुणहीना उत्पद्यन्ते। एवं निरन्तरमावल्यसंख्येयभागकालपर्यन्तं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमेणोत्पद्यन्ते। ततः परं जघन्येनैकसमयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालमन्तरयित्वा पुनरपि जघन्येनैकसमयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं निरन्तरं निगोदशरीरे असंख्यातगुणहीनक्रमेण साधारणजीवा उत्पद्यन्ते। एवं सान्तरनिरन्तरक्रमेण तावदुत्पद्यन्ते यावत्प्रथमसमयोत्पन्नसाधारणजीवस्य सर्वजघन्यो निर्वृत्यपर्याप्तकालोऽवशिष्यते २ १। पश्चात् तत्प्रथमादिसमयोत्पन्नसर्वसाधारणजीवानां आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तीनां स्वस्वयोग्यकाले निष्पत्तिर्भवति ॥१९३॥ अथ बादरनिगोदशरीराधारं प्रतिपादयति—

द्वारा गृहीत पुद्गलपिण्ड अनन्तानन्त साधारण जीवोंका भी उपकारी होता है, उस जीवका भी उपकारी होता है। इसी तरह अनन्तानन्त साधारण जीवोंकी योगशक्तिके द्वारा गृहीत पुद्गल पिण्ड एक साथ संयुक्त रूपसे एक जीवका भी उपकारी है और अनन्तानन्त साधारण जीवोंका भी उपकारी होता है। एक बादर निगोद शरीरमें अथवा सूक्ष्म निगोद शरीरमें यथाक्रम पर्याप्त बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव भवके प्रथम समयमें अनन्तानन्त उत्पन्न होते हैं। दूसरे समयमें उससे असंख्यातगुणा हीन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निरन्तर आवलीके असंख्यातवें भाग काल पर्यन्त प्रतिसमय असंख्यात गुण हीन क्रमसे उत्पन्न होते हैं। उसके बाद जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र कालका अन्तर देकर पुनः जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक निरन्तर निगोद शरीरमें असंख्यात गुण हीन क्रमसे साधारण जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निरन्तर या सान्तरके क्रमसे निगोद शरीरमें तबतक जीव उत्पन्न होते हैं, जबतक प्रथम समयमें उत्पन्न साधारण जीवका सबसे जघन्य निर्वृत्यपर्याप्तकाल शेष रहता है। तथा प्रथम समय आदिमें उत्पन्न सर्वसाधारण जीवोंकी आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और उच्छ्वासपर्याप्तिकी पूर्ति अपने-अपने योग्य कालमें होती है ॥१९३॥

आगे बादर निगोद शरीरोंका आधार बतलाते हैं—

खंधा असंखलोगा अंडरआवासपुलविदेहावि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥१९४॥

स्कंधा असंख्यलोका अंडरावासपुळविदेहा अपि । अधस्तनयोनिका असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥

बादरनिगोदजीवंगळ शरीरसंख्यानयनार्थमुदाहरणपूर्व्वकमागि गाथाद्वयमिदं पेळल्पडुगुमे तने स्कंधाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवंगळ शरीरंगळसंख्यातलोकंगळु स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्रंगळे बुदर्त्थमल्लि लोकाकाशप्रदेशंगळु जगच्छ्रेणिघनप्रमितंगळा लोकाकाशप्रदेशंगळोळनंतानंतपुद्गलपरमाणुगळवगाहपरिणामदंतेयुमेकनिगोदजीवकार्म्मणशरीरदोळनंतानंतनिगोदजीवकार्म्मणशरीरंगळवगाहदंतेयुं मेणिल्लियुमो दो दु स्कंधदोळसंख्यातलोकमात्रंगळंडरंगळु प्रत्येकजीवशरीरविशेषंगळप्पुवंतेयो दोंडरंगळोळुमसंख्यातलोकमात्रावासंगळु अवुं प्रत्येकशरीरभेदंगळप्पुवु। ओ दो दावासंगळोळेसंख्यातलोकमात्रंगळपुळुविगळवुं प्रत्येकजीवशरीरविशेषंगळप्पुवु । ओ दो दु पुळविगळोळमसंख्यातलोकमात्रंगळु बादरनिगोदजीवशरीरंगळप्पुवितंडराद्युत्तरोत्तरंगळधस्तनाधस्तनस्कंधादियोनिकंगळप्पुवेंदितिल्लि त्रैराशिकमं माडल्पडुगुमो दु स्कंधदोळेत्तलानुमसंख्यातलोकमात्रांडरंगळप्पुवागळसंख्यातलोकमात्रस्कंधंगळगेनितंडरंगळप्पुवेंदितु प्र स्कं १। फ अं ≡। ऽ। इ। स्कं ≡ ऽ। लब्धांडरंगळसंख्यातलोकमात्रस्कंधंगळनसंख्यातलोकदिंदं गुणिसिदनितप्पुवु

बादरनिगोदजीवशरीरसंख्यानयनार्थं उदाहरणपूर्वकमिदं गाथाद्वयमुच्यते । तद्यथा—स्कन्धाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवशरीराणि, असंख्यातलोकाः स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्रा इत्यर्थः । तत्र एकैकस्मिन् स्कन्धे लोकाकाशप्रदेशेषु जगच्छ्रेणिघनप्रमितेषु अनन्तानन्तपुद्गलानामवगाहपरिणामवत्, एकनिगोदजीवकार्मणशरीरे अनन्तानन्तनिगोदजीवकार्मणशरीराणामवगाहनवद्वा असंख्यातलोकमात्रा अण्डराः प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः सन्ति । तथैव एकैकस्मिन्नण्डरे असंख्यातलोकमात्रा आवासास्तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरभेदाः सन्ति । एकैकस्मिन्नावासे असंख्यातलोकमात्राः पुलवयः तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः एव । एकैकस्मिन् पुलवौ असंख्यातलोकमात्राणि बादरनिगोदजीवशरीराणि सन्ति । एवमण्डरादीनि उत्तरोत्तराण्यधस्तनस्कन्धादियोनिकानि तत्र जातानि भवन्ति । यद्येकैकस्मिन् स्कन्धे असंख्यातलोकमात्रा अण्डराः सन्ति तदा असंख्यात-

बादर निगोद जीवोंके शरीरकी संख्या लानेके लिए उदाहरणपूर्वक दो गाथाओंसे यह कथन करते हैं । स्कन्ध अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवके शरीर असंख्यातलोक हैं अर्थात् अपने योग्य असंख्यातसे लोकके प्रदेशोंको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतने हैं । तथा जैसे जगतश्रेणीके घन प्रमाण लोकाकाशके प्रदेशोंमें अनन्तानन्त पुद्गलोंका अवगाह होता है, या एक निगोद जीवके कार्मण शरीरमें अनन्तानन्त निगोद जीवोंके कार्मण शरीरोंका अवगाहन होता है, वैसे ही एक-एक स्कन्धमें असंख्यात लोक मात्र अण्डर रहते हैं। ये अण्डर प्रत्येक जीव शरीरके विशेष अवयवरूप होते हैं । उसी तरह एक-एक अण्डरमें असंख्यात लोक मात्र आवास होते हैं। वे भी प्रत्येक जीवशरीरके भेद हैं। एक-एक आवासमें असंख्यात लोक मात्र पुलवियाँ हैं। वे भी प्रत्येक जीवशरीरके विशेष भेद हैं । एक-एक पुलविमें असंख्यात लोक मात्र बादरनिगोद जीवोंके शरीर होते हैं । इस प्रकार ये अण्डर आदि उत्तरोत्तर नीचेके स्कन्ध आदिकी योनि हैं । अर्थात् नीचे कहे भेदोंकी संख्याकी उत्पत्तिका

१. एवमण्डरादयः उत्तरोत्तरेऽधस्तनाधस्तनस्कन्धारियोगिकाः ब ।

इंतावासादिगळोळं प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमदिंद लब्धंगळसंख्यातलोकगुणाकारंगळनुळ्ळप्पुववर विन्यासमिदु स्कंधंगळु ≡ अ अडरंगळु ≡ अ ≡ अ आवासंगळु ≡ अ ≡ अ ≡ अ पुळवुगळु ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ बादरनिगोदशरीरंगळु ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ।

जंबूदीवं भरहं कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधंडर-आवासा-पुलविसरीराणि दिट्ठंता ॥१९५॥

जंबूद्वीप भरत कोशल साकेत तद्गृहादयो वा। स्कंधांडरावासपुळविशरीराणि दृष्टांता॥

स्कंधंगळगे जंबूद्वीपादिगळु दृष्टांतमंडरंगळगे भरतादिक्षेत्रंगळु दृष्टांतमावासंगळगे कोसलादिदेशंगळु दृष्टांतं पुळविगळगे साकेतादिनगरंगळु दृष्टांतं। बादरनिगोदशरीरंगळगे तत् साकेतादिनगरंगळ गृहंगळु दृष्टांतं। वा शब्दमिवार्थमो पेळ्द दृष्टांतमें तंतेयन्यंगळु दृष्टांतंगळ् नडसल्पडुवुवु।

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥१९६॥

एकनिगोदशरीरे जीवा द्रव्यप्रमाणतो दृष्टाः। सिद्धेभ्योऽनंतगुणाः सर्व्वस्मादप्यतीतकालात्॥

लोकमात्रस्कन्धानां कति अण्डराः स्युः ? इति त्रैराशिकेन–प्र स्कं १, फ अं≡अ। इ स्कं≡अ। लब्धाण्डराः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवमावासादिषु प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमेण लब्धानामसंख्यात-लोकगुणकाराणां विन्यासोऽयं–स्कन्धाः≡अ। अण्डराः ≡ अ ≡ अ। आवासाः ≡ अ ≡ अ ≡ अ। पुलवयः ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ। बादरनिगोदशरीराणि ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ ≡ अ ॥१९४॥

स्कन्धानां दृष्टान्ताः जम्बूद्वीपादयः। अण्डराणां भरतादिक्षेत्राणि। आवासानां कोशलादिदेशाः। पुलवीनां साकेतादिनगराणि। बादरनिगोदशरीराणां साकेतादिनगरगृहाणि। वा शब्दः इवार्थः। उक्तदृष्टान्तव-दन्येऽपि दृष्टान्ता नेतव्याः ॥१९५॥

कारण ऊपरके भेद हैं। यदि एक-एक स्कन्धमें असंख्यात लोक मात्र अण्डर हैं,तब असंख्यात लोक मात्र स्कन्धोंमें कितने अण्डर हुए; इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर असंख्यात लोकसे गुणित असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर होते हैं। इसी तरह आवास आदिके सम्बन्धमें भी त्रैराशिक करनेपर अण्डरसे असंख्यात लोकगुणे आवास होते हैं। आवाससे असंख्यात लोक गुणे पुलवी होते हैं,उनसे असंख्यात लोकगुणे बादर निगोद होते हैं ॥१९४॥

स्कन्धोंका दृष्टान्त जम्बूद्वीप आदि हैं। अण्डरोंका दृष्टान्त भरत आदि क्षेत्र हैं। आवासोंका दृष्टान्त कोशल आदि देश हैं। पुलवीका दृष्टान्त साकेत आदि नगर हैं और बादर निगोद शरीरोंका दृष्टान्त साकेत आदि नगरोंके घर हैं। 'वा' शब्द दृष्टान्तके अर्थमें है। अर्थात् जैसे मध्यलोकमें जम्बूद्वीप आदि द्वीप हैं, वैसे ही लोकमें स्कन्ध है। जैसे एक जम्बूद्वीपमें भरत आदि क्षेत्र हैं,वैसे ही स्कन्धमें अण्डर हैं। जैसे भरत क्षेत्रमें कोशल आदि देश हैं,वैसे ही अण्डरमें आवास हैं। जैसे कोशल देशमें अयोध्या आदि नगर हैं, वैसे ही आवासमें पुलवियाँ हैं। तथा जैसे अयोध्यामें अनेक घर हैं, वैसे ही पुलवीमें बादर निगोद शरीर है। इसी तरह अन्य भी दृष्टान्त जानना ॥१९५॥

एकनिगोदशरीरदोळु वर्त्तमानजीवंगळु द्रव्यप्रमाणतो द्रव्याश्रयप्रमाणसंख्येयिंदमनंतानंतंगळु सर्व्वजीवराश्यनंतबहुभागंगळु संसारिजीवराश्यसंख्येयभागप्रमितंगळु सर्व्वदा विद्यमानंगळवुमक्षयानंतंगळेंदु परमागमदोळ् पेळल्पट्टुवु । सर्व्वजीवराश्यनंतैकभागमुमप्पनादिकालसिद्धजीवंगळं नोडलनंतगुणंगळुमंते सर्व्वातीतकालमं नोडेयुमनंतगुणंगळु मक्कुविदरिंदं कालमनाश्रयिसि एकशरीरनिगोदजीवसंख्ये पेळल्पट्टुदु । क्षेत्रभावंगळनाश्रयिसि तत्संख्येयागमानुसारिंदिदं योजनीयमदें तेनें सर्व्वाकाशप्रदेशंगळं नोडेयुं केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळं नोडेयुमनंतगुणहीनतेयिंदं ।

लोकाकाशप्रदेशंगळं नोडेयुं सर्व्वावधिज्ञानविषयभावमं नोडेयुमनंतगुणितमक्कुं । तत्संख्येय परमागमदोळु जिनदृष्टत्वप्रसिद्धियुंटप्पुदरिनविरुद्धमक्कुं । इल्लि विशेषविचारमुंटदावुदेंदोडे—अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरदोळष्टोत्तरषट्शतजीवंगळु कर्म्मक्षयमं माडि सिद्धरागुत्तमिरलु सिद्धराशिगे पेच्चुगेयुं संसारिजीवराशिगे हानियु काणल् बर्प्पुददरिनाव प्रकारदिंद सर्व्वदा सिद्धरुगळं नोडलनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवंगळगेकेंदोडे सर्व्वजीवराश्यनंतगुणमप्प कालसमयसमूहक्के तद्योग्यानंतभागं पोगुत्तिरलु संसारिजीवराशिक्षयक्कं सिद्धराशिबहुत्वक्कं सुघटत्वमें दितेनल्वेडेकेंदोडे केवलज्ञानदृष्टियिंदं केवलिगळिंदं श्रुतज्ञानदृष्टियिंदं श्रुतकेवलिगळिंदमुं सदा काणल्पट्ट भव्यसंसारिजीवा-

---

एकस्मिन् निगोदशरीरे वर्तमाना जीवा द्रव्यप्रमाणतः द्रव्याश्रयप्रमाणसंख्यया अनन्तानन्ताः सर्वजीवराश्यनन्तबहुभागमात्रसंसारिजीवराश्यसंख्येयभागप्रमिताः सर्वदा विद्यमानाः ते अक्षयानन्ता इति परमागमे भण्यन्ते । ते च सर्वजीवराश्यनन्तैकभागमात्रेभ्योऽनादिकालसिद्धजीवेभ्योऽनन्तगुणाः । तथैव सर्वातीतकालतोऽप्यनन्तगुणाः । अनेन कालमाश्रित्यैकशरीरनिगोदजीवसंख्या कथिता । क्षेत्रभावावाश्रित्य तत्संख्या आगमानुसारेण योज्यते । सर्वाकाशप्रदेशेभ्यः केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चानन्तगुणहीनाः, तथा लोकाकाशप्रदेशेभ्यः सर्वावधिज्ञानविषयभावेभ्यश्चानन्तगुणिताः सन्ति । तत्संख्यायाः परमागमे जिनदृष्टत्वप्रसिद्धेर्विरोधो नास्ति । ननु अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धेषु सत्सु सिद्धराशेर्वृद्धिदर्शनात् संसारिजीवराशेश्च हानिदर्शनात् कथं सर्वदा सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वं एकशरीरनिगोदजीवानां सर्वजीवराश्यनन्तगुणकालसमयसमूहस्य तद्योग्यानन्तभागे गते सति संसारिजीवराशिक्षयस्य सिद्धराशिबहुत्वस्य च सुघटत्वात् ? इति चेत्तन्न, केवलज्ञानदृष्ट्या केवलिभिः, श्रुतज्ञानदृष्ट्या श्रुतकेवलिभिश्च सदा दृष्टस्य भव्यसंसारिजीवराश्य-

---

एक निगोद शरीरमें वर्तमान जीव द्रव्यप्रमाणसे अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षा संख्यासे अनन्तानन्त हैं । अर्थात् सर्वजीव राशिके अनन्त बहुभाग मात्र संसारी जीवोंकी राशि है । उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव एक निगोद शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं । वे अनन्तानन्त हैं, ऐसा परमागममें कहा है । तथा वे सर्व जीवराशिके अनन्तवें भागमात्र जो अनादिकालसे हुए सिद्ध जीव हैं, उनसे अनन्तगुणे हैं । तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे भी अनन्तगुणे हैं । इससे कालकी अपेक्षा एक शरीरमें निगोद जीवोंकी संख्या कही । क्षेत्र और भावकी अपेक्षा उनकी संख्या आगमके अनुसार कहते हैं । समस्त आकाशके प्रदेशोंसे और केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे अनन्तगुणा हीन हैं । तथा लोकाकाशके प्रदेशोंसे और सर्वावधिज्ञानके विषयभूत भावोंसे अनन्त गुणित हैं । परमागममें उनकी संख्याको जिन भगवान्के द्वारा दृष्ट कहा है, इसलिए कोई विरोध नहीं है ।

शंका—आठ समय और छह मासमें छह सौ आठ जीवोंके कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होनेपर सिद्ध राशिकी वृद्धि देखी जाती है और संसारी जीवराशिकी हानि देखी जाती है । तब कैसे सर्वदा एक शरीरमें रहनेवाले निगोद जीव सिद्धोंसे अनन्तगुणे हो सकते हैं ? तथा

क्षयत्वमंतेसूक्ष्ममप्पुदरिंदं तर्क्कविषयमल्तदु कारणमागि प्रत्यक्षागमबाधितमप्प तर्कक्कप्रमाणत्वदिंदं अनुष्णोग्निर्द्रव्यत्वाद्यद्यत् द्रव्यं तत्तदनुष्णं यथा जलं। प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्म्मः पुरुषाश्रितत्वात्। यो यः पुरुषाश्रितः स सोऽसुखप्रदो यथा अधर्म्मः इत्यादि तर्क्कदंते तर्क्कबाधितमप्पागमक्कं तु प्रामाण्यमेंदितेनल्वेडेकेदोडे प्रत्यक्षप्रमाणतर्क्कांतरसंभावितमप्पागमक्कविसंवादित्वदिंदं प्रामाण्य सुनिश्चयमप्पुदरिंदं तद्द्वयविरोधियप्प निन्न तर्क्कक्कऽप्रमाणत्वमक्कुमंतादडावुदा तर्क्कांतरमेंदितें बेयप्पोडे पेळल्पडुगुं।

"सर्व्वो भव्यसंसारिराशिरनंतेनापि कालेन न क्षीयते अक्षयानंतत्वात्। यो योऽक्षयानंतः स सोऽनंतेनापि कालेन न क्षीयते यथा इयत्तया परिच्छिन्नः कालसमयौघः। सर्वद्रव्याणां पर्य्यायोऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो वा।"

एंदितनुमानांगगममप्प तर्क्कक्के प्रामाण्यं सुनिश्चयमक्कुं। हेतुविंगे साध्यसमत्वमेंदितेंबेयप्पोडे भव्यराश्यक्षयानंतत्वक्के आप्तागमसिद्धमप्पुदक्के साध्यसमत्वाभावमप्पुदरिंदं। किं

क्षयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तर्कविषयत्वाभावात्। प्रत्यक्षागमबाधितस्य च तर्कस्याप्रमाणत्वात्। अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वात् यद्यद्द्रव्यं तत्तदनुष्णं यथा जलम्। प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात् यो यः पुरुषाश्रितः स सोऽसुखप्रदो यथाऽधर्मः इत्यादितर्कवत्। तर्हि तर्कबाधितस्य आगमस्य कथं प्रामाण्यं ? इति चेत्तन्न प्रत्यक्षप्रमाणतर्कान्तरसंभावितस्यागमस्याविसंवादित्वेन प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तद्द्वयविरोधिनस्तव तर्कस्याप्रमाणत्वाच्च। तर्हि किमिदं तर्कान्तरमिति चेदुच्यते सर्वो भव्यसंसारिराशिरनन्तेनापि कालेन न क्षीयते अक्षयानन्तत्वात् यो योऽक्षयानन्तः स सोऽनन्तेनापि कालेन न क्षीयते यथा इयत्तया परिच्छिन्नः कालसमयौघः, सर्वद्रव्याणां पर्यायोऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो वा इत्यनुमानाङ्गस्य तर्कस्य प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तर्हि हेतोः साध्यसमत्वमिति चेन्न—

कालके समयोंका समूह सर्व जीवराशिसे अनन्तगुणा है। अतः अपने योग्य अनन्त भाग काल बीतनेपर संसारी जीव राशिका क्षय और सिद्धराशिकी वृद्धि सुघटित है।

समाधान—उक्त शंका ठीक नहीं है, क्योंकि केवल ज्ञान रूप दृष्टिसे केवलियोंके द्वारा और श्रुतज्ञानरूप दृष्टिसे श्रुतकेवलियोंके द्वारा सदा देखा गया भव्य संसारी जीव राशिका अक्षयपना अति सूक्ष्म होनेसे तर्कका विषय नहीं है। तथा जो तर्क प्रत्यक्ष और आगमसे बाधित है, वह प्रमाण नहीं है। जैसे अग्नि शीतल होती है, क्योंकि द्रव्य है। जो-जो द्रव्य होता है, वह शीतल होता है जैसे जल। धर्म मरनेपर दुःख देता है; पुरुषके आश्रित होनेसे। जो-जो पुरुषके आश्रित होता है, वह-वह दुःखदायी होता है, जैसे अधर्म। ये तर्क प्रत्यक्ष और आगमसे बाधित हैं।

शंका—तब तर्कसे बाधित आगमको कैसे प्रमाण माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और अन्य तर्कोंसे सम्भावित आगमके असंवादि होनेसे उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है। तथा आपका तर्क प्रत्यक्ष और आगमका विरोधी होनेसे अप्रमाण है।

शंका—तब वह तर्क कौन-सा है। जिससे आगमका प्रामाण्य निश्चित है ?

समाधान—समस्त भव्य संसारी जीव राशि अनन्तकाल बीतनेपर भी क्षयको प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह अक्षय अनन्त प्रमाण है। जो-जो अक्षयानन्त होता है, वह-वह अनन्तकालमें भी क्षयको प्राप्त नहीं होता। जैसे इतने हैं, इस रूपसे परिमित होनेपर भी तीन

---

१. नागमस्य त ब।

बहुना सर्वतत्वंगळ प्रवक्तृपुरुषनप्पाप्तनु सिद्धनागुत्तिरलु तद्वाक्यमप्पागमद सूक्ष्मांतरितदूरार्थंगळोळु प्रामाण्य सुप्रसिद्धियप्पुदरिंदं तदागमपदार्थंगळोळ् निःशंकमेम्म चित्तं साकिन्नु वावदूकतेयिं। आप्तसिद्धियुं "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः" इत्यादि वेदवाक्यदिंदं "प्रणम्य शंभुम्" इत्यादि नैय्यायिकवाक्यदिंदं "बुद्धो भवेयम्" इत्यादि बौद्धवाक्यदिंदं "मोक्षमार्गस्य नेतारमित्याद्यार्हतवाक्यदिंदं परिंदं तत्तद्दर्शनदेवतेयं स्तवरूपवाक्यंगळिंदं सामान्यदिनोडंबडल्पट्टुरु। विशेषदिंदं मत्तं सर्व्वज्ञः वीतरागनप्प स्याद्वादियप्पाप्तंगंये युक्तियिंद साधनमुंटप्पकारणदिंदं विस्तरदिंदं स्याद्वादतर्क्कशास्त्रंगळोळु तत्सिद्धि ज्ञातव्यमक्कुमेंदितु सुनिश्चिताऽसंभवद्बाधकप्रमाणत्वदिंदं आप्तंगं तदागमक्कं सिद्धत्वदत्तणिंदं तत्प्रणीतमप्प मोक्षतत्वमुं बंधतत्वमुमवश्यमभ्युपगमनीयमेंदितु सिद्धमाय्तु। सिद्धरं नोडलनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवंगळ्गे।

भव्यराश्यक्षयानन्तत्वस्याप्तागमसिद्धस्य साध्यसमत्वाभावात्। किं बहुना सर्वतत्त्वानां प्रवक्तरि पुरुषे आप्ते सिद्धे सति तद्वाक्यस्यागमस्य सूक्ष्मान्तरितदूरार्थेषु प्रामाण्यसुप्रसिद्धेः। तदागमपदार्थेषु निश्शङ्कं मम चित्तं किन्तु वावदूकतया। आप्तसिद्धिस्तु विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः इत्यादिवेदवाक्येन। प्रणम्य शम्भुमित्यादिनैयायिकवाक्येन। बुद्धो भवेयमित्यादिबौद्धवाक्येन। मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यार्हतवाक्येन अपरैस्तत्तद्दर्शनदेवतास्तवनरूपवाक्यैश्च सामान्यतोऽङ्गीकृता। विशेषेण सर्वज्ञवीतरागस्याद्वाद्याप्तस्यैव युक्त्यापि साधनात्। विस्तरतः स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु तत्सिद्धिर्ज्ञातव्या इत्येवं सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् आप्तस्य तदागमस्य च सिद्धत्वात् तत्प्रणीतं मोक्षतत्त्वं बन्धतत्त्वं वावश्यमभ्युपगमनीयमिति सिद्धं सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवानाम् ॥१९६॥

कालके समय कभी समाप्त नहीं होते; या सब द्रव्योंकी पर्याय अथवा अविभाग प्रतिच्छेदोंका समूह कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अनुमानका अंग जो तर्क है, उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है।

शंका—तब आपका हेतु भी साध्यके समान हुआ, क्योंकि साध्य भी अक्षयानन्त है और हेतु भी वही है।

समाधान—नहीं, क्योंकि भव्यराशिका अक्षयानन्तपना आप्त प्रणीत आगमसे सिद्ध है, अतः साध्यसम नहीं है। अधिक कहनेसे क्या, सब तत्त्वोंके प्रवक्ता पुरुषके आप्त सिद्ध होनेपर उसके वचनरूप आगमका प्रमाण सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थोंमें सुप्रसिद्ध है। इसलिए उनके द्वारा उपदिष्ट आगममें कहे हुए पदार्थोंके सम्बन्धमें मेरा चित्त शंका रहित है। वृथा बकवाद करनेसे क्या लाभ है? आप्तकी सिद्धि तो 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' इत्यादि वेदवाक्यसे, 'प्रणम्य शम्भुं' इत्यादि नैयायिकोंके वाक्यसे, 'बुद्धो भवेयम्' इत्यादि बौद्ध वाक्यसे और 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि जैनवाक्यसे तथा दूसरे वादियोंके अपने-अपने मतके देवताके स्तवनरूप वाक्योंसे सामान्यसे स्वीकृत ही है। विशेष रूपसे सर्वज्ञ वीतराग स्याद्वादी आप्तको ही युक्तिसे भी सिद्ध किया है। विस्तारसे उसकी सिद्धि स्याद्वादके तर्कशास्त्रोंसे जाननी चाहिए। इस प्रकार बाधक प्रमाणके सुनिश्चित रूपसे असम्भव होनेसे आप्त और उसके द्वारा उपदिष्ट आगम सिद्ध है। अतः उसमें कहे हुए मोक्ष तत्त्व और बन्ध तत्त्वको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार एक शरीरमें निगोद जीव सिद्धोंसे अनन्तगुणे होते हैं, यह सिद्ध है ॥१९६॥

१. म °नंदिदमुं वि°।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥१९७॥

सन्त्यनंता जीवा यैर्न प्राप्तः त्रसानां परिणामः । भावकलंकसुप्रचुरा निगोदवासं न मुंचंति ॥

नित्यनिगोदलक्षणमिदरिंदमरियल्पडुगुमदं तेने यैर्निगोदजीवैः आवुवु केलवु निगोदजीवंगळिदं त्रसानां द्वींद्रियादिगळ परिणामः पर्य्यायमेंतप्पडं प्रायेण न प्राप्तः पिरिदुं पोर्द्दल्पडदु ते जोवाः आ जीवंगळु अनंताः अनंतानंतंगळु । अनादिसंसारदोळु निगोदभवमनेयनुभविसुवंतप्प नित्यनिगोदसंज्ञेयनुळ्ळवु सर्व्वदा संति एल्ला कालमोळवु । किं विशिष्टाः भावकलंकसुप्रचुराः भावमप्प निगोदपर्य्यायादकलंकदिंदं तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितदुर्ल्लेश्यालक्षणमप्प संक्लेशदिंदं सुप्रचुराः अत्यंतसंघटितंगळुमितप्प नित्यनिगोदजीवंगळु निगोदावासं निगोदभवस्थितियं कदाचिदपि न मुंचंति एंदप्पडं बिडुवुवल्तु । अदु कारणमागि निगोदभवक्काद्यंतरहितत्वदिंदमनंतानंतजीवंगळ्गे नित्यनिगोदत्वं समर्थितमाय्तु ।

नित्यविशेषणदिंदमनित्यनिगोदंगळु चतुर्गतिनिगोदंगळप्प सादिसांतरनिगोदभवंगळनुळ्ळवु जीवंगळु मोळवेंबु सूचितमरियल्पडुगु "णिच्च चदुग्गदि णिगोदथूलिदरा" इत्यादिपरमागमदोळु निगोदजीवंगळ्विवितत्वक्के सुप्रसिद्धत्वदिंदं । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचियप्प प्रचुरशब्ददिंदं कदाचित् अष्ट समयाधिकषण्मासाभ्यंतरदोळु चतुर्गतिजीवराशियर्त्तणिदं पोरमट्टष्टोत्तरषट्शत-

---

नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यम् । तत्कथम् ? यैर्निगोदजीवैः त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां परिणामः—पर्यायः, कदाचिदपि-प्रायेण न प्राप्तः ते जीवा अनन्तानन्ता अनादिसंसारे निगोदभवमेवानुभवन्तो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा सन्ति । किं विशिष्टाः ? भावकलङ्कसुप्रचुराः—भावस्य—निगोदपर्यायस्य कलङ्केन तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणसंक्लेशेन प्रचुराः—अत्यन्तं संघटिताः । एवंविधनित्यनिगोदजीवाः निगोदवासं निगोदभवस्थितिं कदाचिदपि न मुञ्चन्ति । तेन कारणेन निगोदभवस्य आद्यन्तरहितत्वादनन्तानन्तजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं जातम् । नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाः चतुर्गतिनिगोदरूपसादिसान्तनिगोदभवयुता केचन जीवाः सन्तीति सूचितं ज्ञातव्यम् । 'णिच्चचदुग्गणिगोदेत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात् । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे चतुर्गतिजीवराशितो निर्गतेषु अष्टो-

---

इस गाथासे नित्यनिगोदका लक्षण जानना । वह इस प्रकार है—

जिन निगोद जीवोंने दोइन्द्रिय आदि त्रसोंके परिणाम अर्थात् पर्यायको कभी भी प्रायः करके प्राप्त नहीं किया, वे अनन्तानन्त जीव अनादि कालसे निगोद भवको ही भोगते हुए सर्वदा नित्यनिगोद संज्ञावाले होते हैं । वे भाव अर्थात् निगोद पर्यायके, कलंक अर्थात् उसके योग्य कषायके उदयसे प्रकट हुई अशुभ लेश्यारूप संक्लेशसे प्रचुर अर्थात् अत्यन्त सम्बद्ध होते हैं । इस प्रकारके नित्यनिगोद जीव निगोदवास अर्थात् निगोदकी भवस्थितिको कभी भी नहीं छोड़ते । इस कारणसे निगोद भवके आदि और अन्तसे रहित होनेसे अनन्तानन्त जीवोंके नित्यनिगोदपनेका समर्थन होता है । नित्य विशेषणसे यह सूचित होता है कि चतुर्गति निगोदरूप सादि सान्त निगोद भववाले कुछ जीव अनित्यनिगोद होते हैं । 'णिच्चचदुग्गतिणिगोद' इत्यादि परमागममें निगोद जीवोंके दो प्रकार सुप्रसिद्ध हैं । एकदेशके अभावसे विशिष्ट सकल अर्थके वाचक प्रचुर शब्दसे यह अर्थ प्रतिपादित हुआ जानना

---

१. ब °भावजाता । २. ब देशभाव° ।

जीवंगळ् मुक्तिगे सलुत्तिरलनितु जीवंगळु नित्यनिगोदभवमं पत्तुविट्टु चतुर्गतिभवमनेय्दुवर्नेंवितीयर्थं प्रतिपादितमदरियल्पडुवुदु ।

अनंतरं त्रसकायप्ररूपणनिमित्तं गाथाद्वयमं पेळ्दपं ।

बिहि तिहि चदुहि वि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्हि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवदेसेण ॥१९८॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्ल्लोके । ते त्रसकाया जीवा ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥

स्पर्शनरसनमेंबेरडुं स्पर्शनरसनघ्राणमेंबी मूरुं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुस्सेंब नाल्कं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमेंबैदुमिंद्रियंगळिंदं सहितंगळप्प जीवंगळावुवु केलवु लोकदोळोळवु त्रसकायंगळेंदितु वीरवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेवनुपदेशदिंदमविच्छिन्नगुरुपर्व्वक्रमागतसंप्रदायदिंदं श्रुत गृहीतधारितार्थरप्पेंम्मिंदं प्रतिपादितंगळेंदितु ज्ञेयंगळु ।

उववादमारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसनालिबाहिरम्मि य णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥१९९॥

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः । त्रसनालिबाह्ये च न संति इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

विवक्षितभवप्रथमसमयपर्य्यायप्राप्तिरुपपादः । मरणं प्राणत्यागः । मरणमंतोवसानं यस्य स मरणांतः कालः वर्त्तमानभवस्थितिचरमांतम्मुहूर्त्तः । मरणांते भवो मारणांतिकः समुद्घात

त्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिगतेषु तावन्तो जीवा नित्यनिगोदभवं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवन्तीत्ययमर्थः प्रतिपादितो बोद्धव्यः ॥१९७॥ अथ त्रसकायं गाथाद्वयेनाह—

स्पर्शनरसनाभ्यां, द्वाभ्यां ताभ्यां घ्राणेन चेति त्रिभिः, तैश्चक्षुषा चेति चतुर्भिः, तैः श्रोत्रेण चेति पञ्चभिश्चेन्द्रियैः सहिता ये जीवा लोके सन्ति ते जीवास्त्रसकाया इति वीरवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन श्रुतगृहीतधारितार्थेन प्रतिपादिता ज्ञेयाः ॥१९८॥

विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः उपपादः । मरणं—प्राणत्यागः अन्तः अवसानं यस्य स मरणान्तः

कि कदाचित् छह महीना आठ समयके भीतर चतुर्गति राशिसे निकलकर छह सौ आठ जीवोंके मुक्ति जानेपर उतने ही जीव नित्यनिगोद भवको छोड़कर चतुर्गति भवमें आते हैं ॥१९७॥

आगे दो गाथाओंसे त्रसकायको कहते हैं—

स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियोंसे, स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन इन्द्रियोंसे, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इन्द्रियोंसे, तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियोंसे सहित जो जीव लोकमें हैं, वे जीव त्रसकाय हैं। ऐसा वर्धमान तीर्थंकर परमदेवके उपदेशसे अविच्छिन्न गुरु परम्परासे आगत सम्प्रदायसे हमने श्रुतके अर्थका अवधारण करके कहा है सो जानना ॥१९८॥

विवक्षित भवके प्रथम समयमें पर्यायकी प्राप्तिको उपपाद कहते हैं। मरण अर्थात् प्राणत्याग और अन्त अर्थात् अवसान जिसके हों, वह मरणान्त काल वर्तमान भवकी

---

१. °न अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः मु ।

उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्य्यंतं जीवप्रदेशप्रसरणलक्षणः । उपपादपरिणतमप्प मारणांतिक समुद्घातपरिणतमप्प त्रसजीवमं वर्ज्जिसि च शब्दादिंद सूचिसल्पट्ट केवलिसमुद्घातपरिणतमप्प त्रसमं वर्ज्जिसि शेषंगळप्प स्वस्थानादिपदपरिणतंगळप्प सर्वमुं त्रसजीवंगळु त्रसनाळिबाह्यलोकक्षेत्रदोळिल्लेंदितु जिनैर्न्निर्दिष्टमर्हदादिगळिंदं पेळल्पट्टुदु । अदु कारणमागि त्रसंगळ नळिगेयंते त्रसनाळियं देकरज्जुविष्कंभायतमुं चतुर्द्दशरज्जूत्सेधमुमप्प लोकमध्यस्थितमन्वर्थसंज्ञेयिंदं पेळल्पट्टुदु ।

ओंदानुमोर्व्व जीवनु त्रसनाळिबाह्यमप्प वातवलयदोळिद्दु त्रसदोळ् बद्धायुष्कनु प्राक्तनवायुकायिकभवमं पत्तुविट्टु मुंदण त्रसकायिकभवमं पोंद्दि विग्रहगतिय प्रथमसमयदोळु त्रसनामकर्म्मोदयदिंदं त्रसमागि वर्त्तिसुगुमेंदितुपपाद परिणत त्रसक्कं त्रसनाळिबाह्यदोळस्तित्वं । ओंदानुमोर्व्व त्रसजीवं त्रसनाळिमध्यदोळिद्दु तनुवातवलयद वायुकायिकदोळ् बद्धायुष्कं स्वायुरवसानांतर्म्मुहूर्त्तकालदोळ् तनुवातवलयपर्य्यंतं त्रसनाळिबाह्यक्षेत्रदोळात्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणांतिकसमुद्घातमं माळ्कुमेंदितुमा त्रसक्कं त्रसनाळिबाह्यक्षेत्रदोळस्तित्वं केवलियुं कवाटाद्याकारदिंदं

कालः वर्तमानभवस्थितिचरमान्तर्मुहूर्तः । मरणान्ते भवः मारणान्तिकः समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यन्तजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः । उपपादपरिणतं मारणान्तिकसमुद्घातपरिणतं चशब्दात् केवलिसमुद्घातपरिणतं च त्रसं उज्झित्वा–वर्जित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणताः सर्वे त्रसजीवाः त्रसनाडिबाह्ये लोकक्षेत्रे न सन्तीति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं–कथितम् । ततः कारणात् त्रसानां नालिरिव नालिस्त्रसनालिः । सा च एकरज्जुविष्कम्भायामा चतुर्दशरज्जूत्सेधा लोकमध्यस्थिता अन्वर्थसंज्ञया कथिता । कश्चिज्जीवः त्रसनालिबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्कः प्राक्तनं वायुकायिकभवं त्यक्त्वा उत्तरं त्रसकायं प्राप्य अग्रतनविग्रहगतिप्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयेन त्रसो जातः इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालिबाह्येऽस्तित्वम् । कश्चित् त्रसजीवः त्रसनालिमध्ये स्थितः तनुवातवलयस्य वायुकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानान्तर्मुहूर्तकाले तनुवातवलयपर्यन्तं त्रसनालिबाह्ये क्षेत्रे आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणान्तिकसमुद्घातं करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्यक्षेत्रेऽप्यस्तित्वम् ।

स्थितिका अन्तिम मुहूर्त है । मरणान्तमें हुआ मारणान्तिक समुद्घात है । उत्तर भवकी उत्पत्ति स्थान पर्यन्त जीवके प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं । उपपादसे परिणत, मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत और 'च' शब्दसे केवलि समुद्घातसे परिणत त्रसको छोड़कर शेष स्वस्थान आदि पदरूपसे परिणत सब त्रसजीव त्रसनाड़ीसे बाहरके लोकक्षेत्रमें नहीं रहते;ऐसा अर्हन्त आदिने कहा है । इसी कारणसे त्रसोंकी नालिके समान नालि त्रसनालि यह सार्थक नाम है । यह त्रसनालि लोकके मध्यमें स्थित है । एक राजू लम्बी, चौड़ी और चौदह राजू ऊँची है । कोई जीव त्रसनालिके बाहर वातवलयमें स्थित है, उसने त्रसकी आयु बाँधी है । अपने वर्तमान वायुकायिक भवको त्यागकर उत्तर त्रसकायको प्राप्त करके आगेकी विग्रहगतिके प्रथम समयमें त्रसनामकर्मका उदय होनेसे त्रस हुआ । इस प्रकार उपपाद परिणत त्रसका त्रसनालिके बाहर अस्तित्व हुआ । कोई त्रसजीव त्रसनालिके मध्यमें स्थित है । उसने तनुवातवलयके वायुकायिककी स्थितिका बन्ध किया । अपनी आयुके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त कालमें तनुवातवलय पर्यन्त त्रसनालीके बाहरके क्षेत्रमें आत्माके प्रदेशोंके विस्तार रूप मारणान्तिक समुद्घातको करता है । उस त्रसका त्रसनालिके बाह्य क्षेत्रमें भी अस्तित्व-

---

१. ब त्यक्त्वाग्र° ।

त्रसनाळिबाह्यदोळमात्म प्रदेशप्रसर्प्पणलक्षणमप्प समुद्घातमं माळ्कुमेंदितु केवलिगं त्रसनालि-बाह्यदोळस्तित्वं सिद्धमेंदितु शास्त्रकारन तात्पर्य्यं ।

अनंतरं वनस्पतियंते पेरवु जीवंगळगं प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागमं पेळ्दपं ।

पुढवीयादिचउण्हं केवलियाहारदेवाणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा णिगोदहि पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णां केवल्याहारदेवनारकांगानि । अप्रतिष्ठितानि खलु निगोदैः प्रतिष्ठितांगानि शेषाणि ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळ् नाल्कुं तेरद जीवंगळंगगळुं केवलियाहारकदेवनारकांगंगळुं बादरनिगोदजीवशरीरंगळिदं अप्रतिष्ठितंगळनाश्रितंगळेंबुदर्थं । शेषंगळऽप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिक-शरीरंगळुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्य्यंग्जीवशरीरंगळुमवशिष्टमनुष्यजीवशरीरंगळुं बादरनिगोदजीव शरीरंगळिदं प्रतिष्ठितंगळुमाश्रितंगळु ।

अनंतरं स्थावरकायिकंगळगेयुं त्रसकायिकंगळगेयुं शरीरसंस्थानं पेळ्दपं :—

मसुरंबुबिंदुसूई कलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीयादि चउण्हं तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुबिंदु सूचीकलापध्वजसंनिभो भवेद्देहः । पृथिव्यादिचतुर्णां तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥

केवलीकवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणसमुद्घातं करोतीति तस्य केवलिनोऽपि त्रसनालि-बाह्येऽप्यस्तित्वं सिद्धमिति शास्त्रकारस्य तात्पर्यम् ॥१९९॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवानां प्रतिष्ठिता-प्रतिष्ठितविभागं कथयति—

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकचतुर्विधजीवाङ्गानि केवल्याहारकदेवनारकाङ्गानि च बादरनिगोदजीवशरीरैर-प्रतिष्ठितानि अनाश्रितानीत्यर्थः । शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीव-शरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च बादरनिगोदजीवशरीरैः प्रतिष्ठितानि—आश्रितानि भवन्ति ॥२००॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानमाह—

हुआ। जो केवली कपाट आदिके आकाररूपसे त्रसनालीके बाहर आत्माके प्रदेशोंके फैलावरूप समुद्घातको करता है, उस केवलीका भी त्रसनालीके बाह्य क्षेत्रमें अस्तित्व सिद्ध है। यह ग्रन्थकारका तात्पर्य है ॥१९९॥

वनस्पतिकी तरह अन्य जीवोंके भी प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेद कहते हैं—

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक इन चार प्रकारके जीवोंके शरीर, केवलीका शरीर, आहारकशरीर, देवों और नारकियोंका शरीर, बादरनिगोद जीवोंके शरीरसे अप्रतिष्ठित हैं; इन शरीरोंमें उनका वास नहीं है। शेष सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति-कायिक शरीर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंके शरीर, ऊपर कहेसे बाकीके मनुष्योंके शरीर बादर निगोद शरीरोंसे प्रतिष्ठित हैं; उनमें उनका वास है ॥२००॥

आगे स्थावरकायिकों और त्रसकायिकोंके शरीरका आकार कहते हैं—

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवंगळ्नाल्कर देहं यथाक्रमं मसूरांबुबिंदुसूचीकलापध्वजसन्निभमक्कुं।

पृथिवीकायिकन शरीरं मसूरवृत्त चणकदोडने सदृशमंते गोलकाकारमें बुदत्थं। अप्कायिकन शरीरं जलबिंदुविनोडने सदृशमिदुवुं गोलकाकारमें बुदत्थं। तेजस्कायिकनशरीरं सूचीकलापदोडन सदृशमंतेयूर्ध्वबहुमुखमें बुदत्थं। वातकायिकन शरीरं ध्वजदोडने सदृशमंतेयायतचतुरस्रमें बुदत्थं एत्तलानुमिवर शरीरंगळ्गे पेळल्पट्ट संस्थानंगळुमंतादोडं तदवगाहनं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमेयक्कुमप्पुदरिंदं दृष्टिगोचरमल्तु। इंद्रियगोचरत्वदिंदं प्रतीयमानमप्प पृथिव्यादिकमुं बहुशरीरसमूहमेंदितु ग्राह्यमक्कुं। तरुगळप्प वनस्पतिकायिकंगळ त्रसकायिकंगळ कायंगळनेकविधंगळऽ नियतसंस्थानंगळ यथासंभवं घनांगुलासंख्यातभागमुं संख्यातभागमुं [2]संख्यातगुणितप्रमितावगाहनंगळनुळ्ळ वेंदरियल्पडुवुवु।

इंतु कायमार्गणेयं पेळ्वनंतरं तत्कायसहितनप्प संसारिजीवंगे दृष्टांतपूर्व्वकमागि व्यवहारमं पेळ्दपं।

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवानां चतुर्णां देहाः—शरीराणि यथाक्रमं मसूराम्बुबिन्दुसूचीकलापध्वजसन्निभानि भवन्ति। पृथ्वीकायिकशरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं [3]तादृक्गोलकाकारमित्यर्थः। अप्कायिकशरीरं जलबिन्दुना सदृशं इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः। तेजस्कायिकशरीरं सूचीकलापेन सदृशं तादृगूर्ध्वबहुमुखमित्यर्थः। वातकायिकशरीरं ध्वजेन सदृशं तादृगायतचतुरस्रमित्यर्थः। यद्यपि तच्छरीराणि उक्तसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेवेति दृष्टिगोचरं नास्ति—इन्द्रियगोचरत्वेन प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं बहुशरीरसमूह इति ग्राह्यम्। तरूणां वनस्पतिकायिकानां, त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां च कायाः शरीराणि अनेकविधाः अनियतसंस्थाना यथासंभवं घनाङ्गुलासंख्येयभागादिसंख्यातगुणितघनाङ्गुलावसानावगाहनविकल्पविशिष्टाः सन्तीति ज्ञातव्याः ॥२०१॥ एवं कायमार्गणाकथनान्तरं कायसहितसंसारिजीवस्य दृष्टान्तपूर्वकं व्यवहारमाह—

पृथिवी, अप, तेज और वायुकायिक इन चारका शरीर क्रमसे मसूर, जलकी बूँद, सूचीकलाप, और ध्वजाके समान होता है। अर्थात् पृथिवीकायिकका शरीर मसूरके समान गोलाकार होता है। अप्कायिकका शरीर जलकी बूँदके समान गोलाकार होता है। तेजस्कायिकका शरीर सूचीकलापके समान अर्थात् जैसे सूचीसमूह ऊँचा और बहुत मुखवाला होता है वैसा ही आकार होता है। वायुकायिकका शरीर ध्वजाके समान लम्बा चौकोर होते हैं। यद्यपि इनके शरीर उक्त आकारवाले हैं तथापि इनकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र है इसलिए इन्द्रियगोचर नहीं हैं। जो पृथिवी आदि इन्द्रियगोचर प्रतीत होती है, वह तो बहुत-से शरीरोंका समूह है ऐसा जानना। तरु अर्थात् वनस्पतिकायिकोंके तथा दोइन्द्रिय आदि त्रसोंके शरीर अनेक प्रकारके हैं, उनका कोई नियत आकार नहीं है। उनकी अवगाहना यथासम्भव घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर संख्यात गुणित घनांगुल पर्यन्त भेदोंको लिये हुए है; ऐसा जानना ॥२०१॥

इस प्रकार कायमार्गणाके कथनके पश्चात् कायसहित संसारी जीवोंका व्यवहार दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं—

---

१. म °भागमेयप्पुद°। २. म संख्यात संख्यातभागमुं गुणित°। ३. तद्वद्गो० मु।

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेण्हियूण कावलियं ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं ॥२०२॥

यथा भारवहः पुमान् वहति भारं गृहीत्वा कावटिकं । एवमेव वहति जीवः कर्मभरं कायकावटिकं ॥

लोकदोळे तिगळु भारवाहकनप्प पुरुषं कावटिकं कावट्यां भवः कावटिकस्तं कावटियोळिट्ट भारमं कोंडु विवक्षितस्थानमं वहति नयति प्रापयति येयिदिसुगुमंते संसारिजीवनुमौदारिकादिनोकर्म्मशरीरमं ब कवाडियोळिट्टिर्द्द ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्म्मभारमं पोत्तुकोंडु नानायोनिस्थानंगळनु वहति येयिदिसुगुं । बलिक्कं विप्रमुक्तकावटिक भारनप्प पुरुषनंतोंदु तन्निष्टस्थानदोळु तद्भाराक्रांतिजनितदुःखविगमदिंदं सुखियागिक्कुमंतेयो दानुमोर्व्व भव्यजीवनुं लब्धियिंदं दोरेकोंड सम्यग्दर्शनादिसामग्रिसंपन्ननप्प तत्वज्ञानि शरीरकावटिकेयोळु तोविर्द्द कर्म्मभरमं लेसागि पत्तुविट्टु तद्भाराक्रांतिजनित नानाविधदुःखवेदनाविगमदिंदं एंदानुमोम्मे इष्टमप्प लोकाग्रनिवासदोळ् सुखियागिक्कुमेंदितु भव्यजनहितोपदेशमिदाचार्य्यनभिप्रायगतं लक्ष्यमक्कुं ।

अनंतरं दृष्टांतपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रांतमप्प सोपायसिद्धस्वरूपमं पेळदपं ।

जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ॥२०३॥

यथा कांचनमग्निगतं मुच्यते किट्टेन कालिकया च । तथा कायबंधमुक्ता अकायिका ध्यानयोगेन ॥

लोके यथा भारवाहकः पुरुषः कावटिकः—कावटिभूतं भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति नयति प्रापयति तथा संसारिजीवः औदारिकादिनोकर्मशरीररक्षितज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । पुनरपि स एव विप्रमुक्तकावटिकभारः एकत्र तदिष्टस्थाने तद्भाराक्रान्तिजनितदुःखविगमेन सुखी भूत्वा तिष्ठति । तथा कश्चिद्भव्यजीवोऽपि लब्धिभिः स्वीकृतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसम्पन्नः तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिकभूतकर्मभरं विप्रमुच्य तद्भाराक्रान्तिजनितनानाविधदुःखवेदनाविगमेनेष्टे लोकाग्रनिवासे सुखीभूत्वा तिष्ठति इति भव्यजनहितोपदेशोऽयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्यः ॥२०२॥ अथ दृष्टान्तपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रान्तसोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

लोकमें जैसे बोझा ढोनेवाला पुरुष कावटिकामें रखे भारको लेकर विवक्षित स्थानको ले जाता है, वैसे ही संसारी जीव औदारिक आदि नोकर्म शरीरमें रखे ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मोंके भारको लेकर नाना योनिस्थानोंमें जाता है। पुनः वही मनुष्य कावटिकाके भारसे मुक्त होकर अपने इष्ट स्थानमें उस भारसे होनेवाले दुःखके चले जानेसे सुखी होकर बैठता है। उसी प्रकार कोई भव्य जीव भी पाँच लब्धियोंके द्वारा सम्यग्दर्शन आदि सामग्रीसे सम्पन्न हो, तत्त्वज्ञानी बन शरीररूपी कामरमें भरे कर्मोंके भारसे मुक्त होकर उस भारसे होनेवाली नाना प्रकारके दुःखोंकी वेदनाके चले जानेसे इष्ट लोकके अग्रभागमें सुखी होकर रहता है। इस प्रकार आचार्यके अभिप्रायमें भव्यजीवोंके लिये जो यह हितोपदेश है, उसपर दृष्टि देना चाहिए ॥२०२॥

आगे दृष्टान्त पूर्वक कायमार्गणासे रहित सोपाय सिद्धोंका स्वरूप कहते हैं—

१. म °रनागियोंदु°तन्निष्ट ।

एंतीग लोकदोळु मलिनमप्प कांचनं सुवर्णमग्निगतं प्रज्वलज्ज्वलनदग्धमंतरंगसूतादिभावनासंस्कृतमादुदु, किट्टमप्प बहिर्म्मलदिंदमुं वैवर्ण्यरूपमप्पंतरंगमलदिंदमुं पत्तुविट्टु बळिक्कं जाज्वलवत् षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोलब्धियं पोंदि सर्व्वजनंगळिंद श्लाघनीयमक्कुमन्ते ध्यानयोगदिंदं धर्म्मशुक्लध्यानभावनेयिंदं संस्कृतबहिरंगतपोऽग्निविशेषदग्धंगळप्पासन्नभव्यजीवंगळौदारिकतैजसकायद्वयदिंदं कार्म्मणशरीरसंश्लेषरूपमप्प बंधदिंदमुं मुक्तरागि अकायिका अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिगळु अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धियनेय्दि लोकाग्रदोळु सर्व्वलोकदिंदं स्तुतिप्रणामार्च्चनादिगळिंद श्लाघ्यरप्परु। कायोऽस्त्येषामिति कायिकाः शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळेकादशगाथासूत्रंगळिंदं कायमार्गणेयं पृथ्वीकायिकादि जीवंगळ संख्येयं पेळ्दरु।

आउट्ठरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ।
भूजलवाऊ अहिया पडिभागो असंखलोगो दु॥२०४॥

अर्द्धचतुर्थराशिवारान् लोकान् अन्योन्यसंगुणिते तेजस्कायिकाः भूजलवायवोऽधिकाः प्रतिभागोऽसंख्यलोकस्तु॥

जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणमं शलाकाविरलनदेयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श वि दे

यथा लोके मलिनं काञ्चनं-सुवर्णं, अग्निगतं-प्रज्वलज्ज्वलनदग्धं, अन्तरङ्गसूतादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन-बहिर्मलेन वैवर्ण्यरूपान्तरङ्गमलेन च मुच्यते जाज्वलत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वजनैः श्लाघ्यते। तथा ध्यानयोगेन-धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृतबहिरङ्गतपोऽग्निविशेषेण आसन्नभव्यजीवा अपि औदारिकतैजसकायाभ्यां कार्मणशरीरसंश्लेषरूपबन्धेन च मुक्ता भूत्वा अकायिकाः-अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिनः, अनन्तज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य लोकाग्रे सर्वलोकेन स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यन्ते। काय अस्ति एषामिति कायिकाः-शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः॥२०३॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवा एकादशगाथासूत्रैः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवसंख्यामाख्यान्ति—

जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श। वि। दे।

जैसे लोकमें मलयुक्त सुवर्ण प्रज्वलित अग्निमें जलकर तथा अन्तरंगमें पारा आदि भावनासे संस्कारयुक्त होकर बाह्य मल और कालिमारूप अन्तरंग मलसे मुक्त हो जाता है और चमकते हुए सोलहतावरूप स्वरूपको प्राप्त करके सर्वजनोंसे प्रशंसित होता है। उसी तरह ध्यान योगरूप धर्म और शुक्ल भावनाके द्वारा संस्कृत बहिरंगतप रूप अग्निविशेषसे निकट भव्यजीव भी औदारिक और तैजस तथा कार्मणशरीरके साथ संश्लेषरूप बन्धसे मुक्त होकर अशरीर सिद्धपरमेष्ठी, अनन्तज्ञानादि स्वरूपको प्राप्त करके लोकके अग्रभागमें स्थित होकर सब लोगोंके द्वारा स्तुति, प्रणाम, पूजा आदिसे प्रशंसित होते हैं। जिनके काय अर्थात् शरीर हैं वे कायिक अर्थात् संसारी हैं। और जो उससे विपरीत अकायिक हैं, वे मुक्त हैं॥२०३॥

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथासूत्रोंसे कायमार्गणामें पृथ्वीकायिक आदि जीवोंकी संख्या कहते हैं—

जगतश्रेणीके घन प्रमाण लोकके प्रदेश होते हैं। लोकके प्रदेश प्रमाण विरलन, देय

विरलनराशियं विरलिसि देयराशियं रूपं प्रति कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि समंतात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गो वर्गितसंवर्गस्तं कृत्वा शलाकाराशियोळोंदु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनदनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मनोंदुरूपं कळेंदितु लोकप्रमित-शलाकाराशि परिसमाप्तियप्पन्नेवरं विरलनदेयक्रमदिदं वर्गितसंवर्गं माडि माडि शलाकाराशियोळोंदोंदु रूपं कळेयुत्तं बंदु पुट्टिद चरम तत्रोत्पन्नराशियं शलाकाविरलन देयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि ५

श वि दे विरलनमं विरलिसि देयमं रूपं प्रति कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयवारं
≡ a ≡ a ≡ a

स्थापिसिद शलाकाराशियोळोंदोंदु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मत्तोंदुरूपं कळेंदितु द्वितीयवारमुं स्थापिसि शलाकाराशियं निष्ठापिसि चरमतत्रोत्पन्नमहाराशियं मुन्निनंते त्रिप्रतीकं माडि श वि दे विरलनमं
≡ a ≡ a ≡ a

विरलिसि देयमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि तृतीयवारं स्थापिसिद शलाकाराशियोळोंदु रूप १०

विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा, समन्तात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गः वर्गितसंवर्गः तं विधायेत्यर्थः शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तच्छलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं लोकप्रमित-शलाकाराशिपरिसमाप्तिपर्यन्तं कृत्वा तं च समुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा द्वितीयवार- १५
≡ a ≡ a ≡ a

स्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्रतन-चरमसमुत्पन्नराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति
≡ a ≡ a ≡ e

देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तृतीयवारस्थापितशलाकाराशितः एकं 'रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं

और शलाका राशि स्थापित करके विरलन राशिका एक-एकके रूपमें विरलन करो और देय- २०
राशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें वर्गित संवर्ग करो। समन्तरूपसे वर्ग करनेको संवर्ग कहते हैं और वर्गितके संवर्गको अर्थात् परस्परमें गुणा करनेको वर्गित संवर्ग कहते हैं। वह करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। पुनः उससे उत्पन्नराशिका विरलन करके एक-एक-पर उसी राशिको देकर वर्गित संवर्ग करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। इसी तरह लोक प्रमाण शलाका राशिकी समाप्ति तक करो। ऐसा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो २५
उसको शलाका विरलन और देयके रूपमें तीन जगह स्थापित करके विरलन राशिको विरलित करके एक-एकके ऊपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो और द्वितीय बार स्थापित शलाका राशिमें-से एक कम करो। उससे उत्पन्न राशिका विरलन करके और एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। इस तरह दूसरी बार स्थापित शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो महाराशि उत्पन्न हो, पहलेकी तरह उसे शलाका विरलन और देयके रूपमें स्थापित करके विरलन ३०
राशिका विरलन करो और एक-एकपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करो और तीसरी बार स्थापित शलाका राशिसे एक कम करो। उससे उत्पन्न राशिका विरलन करके और

कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मत्तों दु रूपं कळेदितु तृतीयवारं स्थापिसिद शलाकाराशियं निष्ठापिसि चरमतत्रोत्पन्नमहाराशियं मुन्निनंते त्रिप्रतीकं माडि श वि दे विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनित्तु वर्गित-
=ə =ə =ə
संवर्गं माडि चतुर्थवारं स्थापिसिद शलाकाराशियोळो दु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि
१ देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळु मत्तों दु रूपं कळेदितु चतुर्थवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्तशलाकाराशियोळ् प्रथमद्वितीयतृतीयवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्त शलाकाराशित्रयंगळं कळेदु मिक्क चतुर्थवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्तशलाकाराशि परिसमाप्तियप्पन्नेवरं तत्रोत्पन्नराशिगळं वर्गितसंवर्गं माडिमाडि विरलनदेयक्रमदिदं पुट्टिद चरमतत्रोत्पन्नमहाराशि तेजःकायिकजीवंगळ प्रमाणमक्कुं।

१० ई राशियन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियुं तद्वर्गशलाकेगळुं तदर्द्धच्छेदंगळुमिंती मूरु राशिगळगं प्रमाणमं परिभाषेयोळ् पेळ्दंमल्लिये अल्पबहुत्वमुमनरिवुदु। तु मत्ते भूजलवायुकायिकंगळु क्रमदिदं तेजस्कायिकराशियं नोडलधिकाधिकंगळु अधिकागमननिमित्तं भागहारं प्रतिभागहारमसंख्यातलोकप्रमितमक्कुमदक्के संदृष्टि नवांक। ९। मवरधिकक्रममं तंदोडे असंख्यातलोक-

---

विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं
१५ तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य चरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे
=ə =ə =ə
विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा, वर्गितसंवर्गं कृत्वा चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नमहाराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं प्रथमद्वितीयतृतीयवारस्थापितशलाकाराशिन्यूनचतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिपरिसमाप्तौ सत्यां तत्रोत्पन्नमहाराशिः तेजस्कायिकजीवराशेः प्रमाणं भवति। अस्य राशेः
२० अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशिवर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशीनां प्रमाणं तदल्पबहुत्वं च प्राक् परिभाषोक्तमत्रापि ज्ञातव्यम्। पुनः भूजलवायुकायिकाः क्रमेण तेजस्कायिकराशितोऽधिका भवन्ति तदधिकागमनिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः असंख्यातलोकप्रमितो भवति। तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः। अधिकक्रमो दर्श्यते तद्यथा—

एक-एकपर उसी राशिको देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। इस तरह तीसरी बार स्थापित शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो महाराशि
२५ उत्पन्न हो, पहलेकी तरह उसे विरलन शलाका और देयके रूपमें तीन जगह स्थापित करके विरलनराशिका विरलन करके एक-एकपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करो और चतुर्थ बार स्थापित शलाका राशिमें-से एक कम करो। उससे उत्पन्न महाराशिका विरलन करके और एक-एकपर उसी राशिको देकर शलाकाराशिमें-से एक कम करो। इस बार शलाका राशिमें-से प्रथम बार, द्वितीय बार और तृतीय बारकी स्थापित शलाकाराशियाँ कम
३० करके जितनी शेष रहें, उतनी चतुर्थ बारकी शलाकाराशि समाप्त करनेपर जो महाराशि उत्पन्न होती है, उतना ही तैजस्कायिक जीवराशिका प्रमाण है। इस राशिकी परस्पर गुणकार शलाका राशि, वर्गशलाकाराशि और अर्धच्छेदराशिका प्रमाण और उसका अल्पबहुत्व पहले द्विरूपवनाघनधाराके कथनमें कहा है सो यहाँ भी जानना। पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वायुकायिक जीव क्रमसे तैजस्कायिक राशिसे उत्तरोत्तर अधिक हैं। उस अधिकका प्रमाण

मात्रमप्प तेजस्कायिकराशियनिदं ≡a । संस्थापिसि तद्योग्यासंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं तत्तेजःकायिकराशियोळ् प्रक्षेपिसुवुदितु प्रक्षेपिसुत्तिरलुमा राशि पृथ्वीकायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु । ≡a । १० मी पृथ्वीकायिकजीवराशियनसंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं तत्पृथ्वी-
९

कायिकजीवराशियोळे प्रक्षेपिसुत्तिरला राशियुमप्कायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु ≡a१० । १० मीय-
९ ९

प्कायिकजीवराशियनसंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं तदप्कायिकजीवराशियोळे प्रक्षेपि- ५
सुत्तिरला राशि वायुकायिकजीवराशिप्रमाणमक्कुं ≡ a १० । १० । १० ॥
९ ९ ९

अपदिट्ठिदपत्तेया असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण असंखलोगेण संगुणिदा ॥२०५॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका असंख्यलोकप्रमाणका भवंति । ततः प्रतिष्ठिताः पुनरसंख्यलोकेन १०
संगुणिताः ॥

अप्रप्रिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळु यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणंगळप्पुवु ≡ a मत्तं प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळुमवं नोडलसंख्येयलोकगुणितंगळप्पुवु ≡ a ≡ a ।

उक्ततेजस्कायिकराशौ ≡ a अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡ a । १ अधिकीकृते सति पृथ्वीकायिक-
९

जीवराशिप्रमाणं भवति । ≡ a १० । पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन १५
९

≡a । १० । १ अधिकीकृते सत्यप्कायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡ a १० । १० । पुनः अस्मिन्नेव राशौ
९ । ९ ९ । ९

अस्यैव प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡ a । १० । १० । १ अधिकीकृते सति वायुकायिकजीवराशिप्रमाणं
९ । ९ । ९

भवति ≡ a । १० । १० । १० ॥२०४॥
९ । ९ । ९

अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवन्ति ≡ a । पुनः प्रतिष्ठित-
प्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः तेभ्यः असंख्येयलोकगुणिता भवन्ति ≡ a ≡ a ॥२०५॥ २०

लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंख्यात लोक है । अधिकका क्रम बतलाते हैं—

उक्त तैजस्कायिक राशिमें असंख्यातलोक भागहारसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे तैजस्कायिक जीवराशिमें जोड़नेपर पृथ्वीकायिक जीवराशिका प्रमाण आता है । उस पृथ्वीकायिक जीवराशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे पृथ्वीकायिक जीवराशिमें जोड़नेपर अप्कायिक जीवराशिका प्रमाण होता है । पुनः अप्कायिक जीवराशिमें २५
असंख्यातलोकका भाग देनेसे जो लब्ध आवे, उसे उसीमें जोड़नेपर वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण आता है ॥२०४॥

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव यथायोग्य असंख्यातलोक प्रमाण हैं । उनसे असंख्यात लोक गुणे प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव होते हैं ॥२०५॥

तसरासिपुढवियादीचउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी । साधारणजीवानां परिमाणं भवति जिनदृष्टं ॥

वक्ष्यमाणत्रसराशियावल्यसंख्येयभागभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितं $\frac{=}{४}$ पृथिव्यादि $\frac{}{२}$ $\frac{}{अ}$

५ चतुष्टयं ते $=अ$ पृ$=अ$ $=अ\cdot१\cdot१$ अ$=अ$ $=अ\cdot२\cdot९$ वा$=अ$ $=अ\cdot३\cdot९$ $=अ\cdot१\cdot३\cdot९$ युति$=अ$ ४ $=अ\cdot६\cdot९$ $=अ\cdot४\cdot९\cdot९$ $=अ\cdot१\cdot९\cdot९\cdot९$

१० इदु साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणं $=अ$ ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिभेदद्वयं $=\overline{अ\,अ}$ इंती राशित्रयविहीनसंसारिराशिसाधारणजीवराशिप्रमाणमक्कुमेंदु जिनदृष्टं जिनकथितं । १३॥

त्रसराशिना वक्ष्यमाणप्रमाणेन आवल्यसंख्येयभागभक्तप्रतराङ्गुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितेन $\frac{=}{४}$ तथा $\frac{}{२}$ $\frac{}{अ}$

पृथिव्यादिचतुष्टयेन उक्तप्रमाणेन एतावता

१५ ते $=अ$ पृ $=अ$ $=अ\cdot१\cdot१$ अ $=अ$ $=अ\cdot२\cdot९$ वा $=अ$ $=अ\cdot३\cdot९$ $=अ\cdot१\cdot३\cdot९$ मिलितेन $=अ\cdot१\cdot४$ $=अ\cdot१\cdot६$ $=अ\cdot१\cdot४\cdot९$ $=अ\cdot१\cdot१\cdot४\cdot९$

साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणेन $=$ । ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिद्वयेन $=\overline{अ\,अ}$ । चेति राशि-
२० त्रयेण विहीनसंसाररराशिरेव साधारणजीवराशिप्रमाणं भवतीति जिनैर्दृष्टं–कथितं वा १३ ॥२०६॥

आगे त्रसराशिका प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतना है। तथा पृथिवीकाय आदि चारोंका प्रमाण जो ऊपर कहा है तैजस्कायिक राशिके प्रमाणसे चौगुनेसे भी कुछ अधिक है। तथा सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिका परिमाण ऊपर कहा है। ये तीनों राशियाँ संसारी जीवोंके
२५ परिमाणमें-से कम कर देनेपर जो शेष रहे, उतना ही साधारण जीवोंका परिमाण जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥२०६॥

---

१. म °तुष्कयुते ।

सगसग असंखभागो बादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥२०७॥

स्वकस्वकाऽसंख्यभागो बादरकायानां भवति परिमाणं । शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळ साधारणवनस्पतिकायिकंगळ पूर्व्वोक्तस्वकस्वकसंख्येगळऽसंख्यातैकभागमात्रं । स्वस्वबादरकायंगळ परिमाणमक्कुं । शेष तद्बहुभागंगळु सूक्ष्मकायजीवंगळं प्रमाणमक्कुमिल्लि पोक्क प्रतिभागं प्रतिभागहारं पूर्व्वदलु पेळ्दऽसंख्यातलोकमात्रोमें दितु ज्ञातव्यमदक्कंक संदृष्टि नवांकं । ९ । पृ=बा ≡ अ १० अ बा ≡ अ १० । १० तेज=
९ ९ ९ ९

बा ≡ अ १० वा=बा ≡ अ १० । १० । १० साधारणबादरंगळु १३ ≡ १ सूक्ष्मंगळु
९ ९ ९ ९ ९

बहुभागंगळु पृ सू । ≡ अ । १० । ८ । अ ≡ सू ≡ अ १० १० । ८ । ते=सू ≡ अ ८ । १०
९ ९ ९

वा=सू ≡ अ १० । १० । १० । ८ साधा=सू १३ ≡ ८
९ ९ ९ ९ ९

सुहुमेसु संखभागं संखाभागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥२०८॥

सूक्ष्मेषु संख्यभागः संख्याभागा अपूर्णका इतराः । यस्मात्कारणादपूर्णाद्धायाः पूर्णाद्धाः संख्यगुणितक्रमाः ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकंगळ आवुवु केलवु सूक्ष्मकायंगळु पूर्वोक्तसंख्यासमन्वितंगळवरोळु अपर्य्याप्तंगळु तत्संख्यातैकभागप्रमाणंगळप्पुवु । पर्य्याप्तंगळु तत्संख्यातबहुभाग प्रमितंगळप्पुवेकें दोडे कारणं पेळल्पडुगुं । यस्मात् आवुदों दु कारणदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रापर्य्याप्ताद्धेयदं नोडे तत्पर्य्याप्ताद्धे संख्यातगुणितक्रममक्कुमदें तें दोडे शुद्धपृथ्वीकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळ् द्वादश-

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां साधारणवनस्पतिकायिकानां च असंख्येयलोकैकभागमात्रं स्वस्वबादरकायानां परिमाणं भवति । शेषाः तद्बहुभागाः सूक्ष्मकायिकजीवानां प्रमाणं भवति । अत्र प्रविष्टप्रतिभागः प्रतिभागहारः पूर्वोक्तासंख्यातलोकमात्र एवेति ज्ञातव्यः । तदङ्कसंदृष्टिर्नवाङ्कः ॥२०७॥

पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्माः प्रागुक्तास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागप्रमाणा भवन्ति । पर्याप्तकास्तत्संख्यातबहुभागप्रमिता भवन्ति । किं कारणं ? इति चेदुच्यते यस्मात्कारणादन्तर्मुहूर्तमात्र्याः अपर्याप्ताद्धायाः कालात्तत्पर्याप्ताद्धा संख्यातगुणितक्रमा भवति । मृदुकठिनभूमिजलवायुवनस्पतितेज-

सहस्रंगळु १२०००। खरपृथ्वीकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु द्वाविंशतिसहस्रंगळु २२०००। अप्कायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु सप्तसहस्रंगळु ७०००। तेजस्कायिकक्कुत्कृष्टायुष्यं दिनत्रयमक्कुं दिन ३। वायुकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु त्रिसहस्रंगळु ३०००। वनस्पतिकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु दशसहस्रंगळु १०००० । एवं परमागमोक्तपंचस्थावरंगळुत्कृष्टस्थितिगळु पर्य्याप्तकालमक्कुमपर्य्याप्तकालमंतर्मुहूर्त्तमात्रमदं नोडे संख्येयगुणत्वं सुप्रसिद्धमदु कारणदिदं कालसंचयमनाश्रयिसि प्रवर्त्तिसिदुदी पेळ्द

त्रैराशिकं पर्य्याप्तापर्य्याप्तकालद्वयमिलितक्के २१ १ त्तलानुमितु सूक्ष्मपृथ्वीकायिकंगळु आगुत्तिरलु—आगळुमितुमपर्य्याप्तकालदोळितु सूक्ष्मपृथ्वीकायिकंगळु पडेयल् बक्कुमेंबुदु बंद लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातैकभागमात्रं तदपर्य्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणमक्कुं।

प्र २१ ४ फ≡अ१०।८। इ। २१। लब्धं≡अ१०।८।१ संख्यातक्के संदृष्टि पंचांकं।
९।९ ९९ ५

एवं पर्य्याप्तंगळ्गमिन्ते त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र २१ ४। फ≡ अ १०।८। इ =२१।४ लब्धं
९ ९

स्कायिकजीवानामुत्कृष्टायुषो द्वादशद्वाविंशतिसप्तत्रिदशसहस्रवर्षत्रिदिनप्रमितत्वेन अन्तर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात्

२१ पर्याप्तकालस्य संख्येयगुणत्वप्रसिद्धेः। तस्मात्कारणात्तत्पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयेन २१। १ अनेन २। १।

४ यद्येतावन्तः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका जीवाः ≡ अ। १०। ८ लभ्यन्ते तदा एतावदपर्याप्तकालेन २१ कियन्तः
९। ९

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकजीवा लभ्यन्ते? इति त्रैराशिकेन लब्धः संख्यातैकभागमात्रः तदपर्याप्तजीवराशिर्भवति

≡ अ। १०। ८। १ संख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चाङ्कः। तथा—प्र २१। ४। फ ≡ अ। १०। ८।
९। ९। ५ ९। ९

कारण यह है कि अपर्याप्तका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और उससे उनके पर्याप्तकोंका काल संख्यात गुणा है। कोमल पृथ्वीकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष, खर पृथिवीकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष, जलकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष, वायुकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष और तैजस्कायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु तीन रात-दिन होनेसे अन्तर्मुहूर्तमात्र अपर्याप्तकालसे पर्याप्त काल संख्यातगुणा प्रसिद्ध है। इस कारणसे पृथ्वीकायिकके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों कालोंमें यदि समस्त सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं, तो अन्तर्मुहूर्तमात्र अपर्याप्तकालमें कितने पाये जायेंगे? ऐसा त्रैराशिक करनेपर

---

१. पर्याप्तकालोऽयं २१। १ अपर्याप्तकालोऽयं २१ द्वावपि मिलित्वा २१। १ एवं जातम्। अस्य संदृष्टिः।

२१। ४। रूपाधिकसंख्यातस्य रूपाधिकचतुरङ्कत्वं कृत्वमित्यर्थः।

पर्य्याप्तपृथ्वीकायसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणमक्कुं ≡ a १०।८।४ एवं सूक्ष्माप्कायिकादि-
९।९।५
गळगेयुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तपरिमाणं तरल्पडुगुं। कालसंचयाश्रितसंख्यानयनमो प्रकारमल्लेडयोळमें-
दरियल्पडुगुं। अप्कायिकसूक्ष्मापर्य्याप्तराशि ≡ a १०।१०।८ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं
९।९।५
≡ a १०।१०।८।४ तेजस्कायिकापर्य्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणं ≡ a।८
९।९।९।५ ९।५
तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं ≡ a।८।४ वायुकायिकापर्य्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणं ५
९।५
≡ a।१०।१०।१०।८ तत्पर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणं ≡ a।१०।१०।१०।८।४
९ ९ ९ ९ ।५ ९ ९ ९ ९।५
साधारणसूक्ष्म अपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणं १३ ≡ ८ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं १३ ≡ ८।४
९ ५ ९।५

पल्लासंखेज्जवहिदपदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे।
जलभूणिपबादरया पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा ॥२०९॥

पल्यासंख्यातापहृतप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे। जलभूनिपबादराः पूर्णाः आवल्यसंख्य- १०
भजितक्रमाः ॥

इ २ १।४। इति त्रैराशिकेन लब्धस्तत्पर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a।१०।८।४ एवमुक्तत्रैराशिकद्वय-
९।९।५
क्रमेण लब्धः सूक्ष्माप्कायिकापर्याप्तराशिः ≡a।१०।१०।८।१ तत्पर्याप्तराशिः ≡a।१०।१०।८।४।
९। ९।९।५ ९। ९।९।५
सूक्ष्मतेजस्कायिकापर्याप्तराशिः ≡ a।८।१ तत्पर्याप्तराशिः। ≡ a।८।४ सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्त-
९।५ ९।५
राशिः ≡ a।१०।१०।१०।८।१ तत्पर्याप्तराशिः— ≡ a।१०।१०।१०।८।४ सूक्ष्म-
९। ९। ९।९।५ ९। ९। ९। ९।५
साधारणापर्याप्तजीवराशिः १३ ≡ ।८।१ तत्पर्याप्तराशिः १३ ≡ ।८।४ ॥२०८॥ १५
९।५ ९।५

प्रमाणराशि पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों कालोंके समयोंका समूह, फलराशि सूक्ष्मजीवोंका प्रमाण, इच्छाराशि अपर्याप्तकालके समयोंका प्रमाण। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण-राशिका भाग देनेपर जो लब्ध राशिका प्रमाण आता है, उतने ही सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानना। तथा प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त तथा इच्छाराशि पर्याप्तकाल करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण आता है, उतना ही सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवोंका प्रमाण २० जानना। इसीसे संख्यातका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अपर्याप्त और बहुभाग प्रमाण पर्याप्त कहे हैं। इसी प्रकार उक्त दोनों त्रैराशिकके अनुसार अपने-अपने सर्वकालको प्रमाण राशि, अपने-अपने प्रमाणको फलराशि और अपर्याप्तकाल तथा पर्याप्तकालको इच्छाराशि बनाकर लब्धराशि प्रमाण सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और सूक्ष्म-साधारणवनस्पतिकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण जानना ॥२०८॥ २५

पल्यासंख्यातभागापहृतप्रतरांगुलदिदं जगत्प्रतरेयं भागिसुत्तिरलावुदो दु लब्धं तावत्प्रमितं बादराप्कायिकपर्य्याप्तजीवंगळप्पुवो = ४ प अ राशियनावल्यसंख्यातभागदिदं भागिसि बंद-

लब्धप्रमितं बादरपृथ्वीकायिकपर्य्याप्तजीवंगळ प्रमाणमक्कुं = ४ प । १ अ मत्तमी राशियनावल्य-

संख्यातदिदं भागिसि बंद लब्धप्रमितं प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणमक्कुं = ४ प ९ ९ अ मत्तमी

राशियनावल्यसंख्यातदिदं भागिसि बंद लब्धप्रमितमप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तजीवंगळ प्रमाणमक्कुं = ४ प ९ ९ ९ अ निगोदशब्ददिनिल्लि निगोदाश्रितंगळप्प प्रतिष्ठितप्रत्येकंगळगे ग्रहणमक्कुं साधारण-

---

पल्यासंख्येयभागापहृतप्रतराङ्गुलेन जगत्प्रतरे भाजिते यल्लब्धं तद्बादराप्कायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति = ४ प अ अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तद्बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति = ४ । १ । पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तत्प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिप्रमाणं भवति = ४ । १ १ पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तदप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति । = ४ । १ । १ । १ । निगोदशब्देन अत्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका एव गृह्यन्ते । न

पल्यके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आये, उतना बादर अप्कायिक पर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है। इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवराशिका प्रमाण है। पुनः इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशिका प्रमाण है। पुनः इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तराशिका प्रमाण

गळिगल्लेकें दोडे मुंदे सुव्यक्तमागि पेळ्दपनप्पुदरिंदं । इल्लियावळियसंख्यातभागक्कंक संदृष्टि नवांकं । ९ ॥

बिंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं ।
पज्जत्ताण पमाणं तेहि विहीणा अपज्जत्ता ॥२१०॥

वृंदावलिलोकयोरसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनां पर्य्याप्तानां प्रमाणं तैर्विहीना अपर्य्याप्ताः ॥ ५

वृंदावलियनू लोकवनू यथासंख्यमसंख्यातदिंदं संख्यातदिंदं भागिसि बंद लब्धमात्रं बादर-तेजस्कायिकपर्य्याप्तंगळु बादरवायुकायिकपर्य्याप्तंगळुमप्पुवु । ते = बा = प = ८ = वा = ८ बा = प = ८ बादरशब्दक्कप्रयोगमप्पुदरिन्नें तरियल्पडुगुमें दोडे पेररे सूक्ष्मंगळ्गे पेळ्द कारणदिंदमिल्लि बादरंगळ्गे ग्रहणमक्कुं । तैर्विहीना अपर्य्याप्ताः स्युः । तत्सूत्रद्वयोक्तंगळप्प बादर-जल भू । नि । प । तेजोवायुपर्य्याप्तजीवराशिविहीनंगळप्प तंतम्म बादरअप्कायिकादिजीवराशिगळे १० तंतम्मऽपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणंगळप्पुवु । बादरअप्कायिकापर्य्याप्तंगळु = ८ । १० । १० । २ ९ ९ ९ ४ प ८

बादरपृथ्वीकायिकापर्य्याप्तजीवंगळु = ८ । १० E४ ९ ९ ४ प ८ अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तंगळु = ८ = ८ २ ९ ९ ४ प ८

साधारणाः तेषामग्रे वक्तव्यं कथितत्वात् । अत्र आवल्यसंख्येयभागस्य संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ ॥२०९॥

वृन्दावलेरसंख्यातभक्तैकभागमात्राः बादरतेजस्कायिकपर्याप्तजीवा भवन्ति ८ तथा लोकस्य संख्यात-भक्तैकभागप्रमिता बादरवायुकायिकपर्याप्तजीवा भवन्ति ८ । सूक्ष्माणां तु प्राक्कथितत्वात् अत्र बादरा एव १५

होता है । गाथामें आये 'नि' अक्षरसे निगोद शब्दसे निगोदोंके आश्रित प्रतिष्ठित प्रत्येक ही ग्रहण किये गये हैं, साधारण जीव नहीं; क्योंकि आगे उनका स्पष्ट कथन किया है ॥२०९॥

घनावलीके असंख्यातवें भागमात्र बादर तैजस्कायिक पर्याप्त जीव हैं । तथा लोकमें संख्यातका भाग देनेसे लब्ध एक भाग प्रमाण बादर वायुकायिक पर्याप्तजीव होते हैं । सूक्ष्म जीवोंका प्रमाण पहले कहा है इसलिए यहाँ बादर जीवोंका ही ग्रहण किया है । पहले जो दो २० गाथाओंसे बादर जलकायिक, पृथिवीकायिक, सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित, तैजस्कायिक और

---

१. व्यक्तं मु ।

प्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तांगळ्गु $= \frac{\text{अ}}{\text{अ}}$ ॥ बादरतेजस्कायिकापर्य्याप्तांगळ्गु $= \frac{\text{अ}}{\text{अ}}\frac{८}{}$ बादर-

$= \frac{\text{०}}{४९९९}$

$\frac{\text{प}}{\text{अ}}$

वायुकायिकापर्य्याप्तांगळ्गुं $= \frac{\text{अ}}{\text{अ}}\frac{१०}{}\frac{१०}{}\frac{१०}{}\frac{२}{}$ ।

$= \frac{\text{०}}{९९९९१}$

साहारणबादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा ।
पुण्णाणमपुण्णाणं परिमाणं होदि अणुकमसो ॥२११॥

साधारणबादरेष्वसंख्यं भागमसंख्यका भागाः । पूर्णानामपूर्णानां परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥

साधारणबादरंगळोळावुवु केलवु पर्य्याप्तकंगळवरप्रमाणं तद्राशियोळसंख्यातैकभागपरिमाण-मक्कु $\frac{१३}{९}\frac{}{१}$ मिवर असंख्यात बहुभागिगळऽपर्य्याप्तांगळक्कु $\frac{१३}{९}\frac{=}{१}\frac{६}{}$ मेंदितनुक्रमदिंदमा

सर्वबादरपर्य्याप्तभवंगळगे दुर्ल्लभत्वमाचार्य्यसंप्रदायानुक्रममनाश्रयिसि तदल्पसंख्यत्वमुक्तमाय्तु ।

कालसंचयमनाश्रयिसि पेळ्दकेयिल्लेंबुदिदाचार्य्यन हृदयं । इल्लि असंख्यातक्के संदृष्टि सप्तांकं ।

आवलि असंखसंखेणवहिद पदरंगुलेण हिदपदरं ।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥२१२॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहृत प्रतरांगुलेन हृतप्रतरः । क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसाः अपूर्णाः खलु ॥

गृह्यन्ते । तैः सूत्रद्वयोक्तबादरजलभूनिपतेजोवायुपर्याप्तजीवराशिभिर्विहीनाः स्वस्वबादराप्कायिकादिराशय एव स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवन्ति ॥२१०॥

साधारणबादरेषु ये पर्याप्तजीवास्तेषां प्रमाणं तद्राशेरसंख्यातैकभागमात्रं भवति । $\frac{१३}{९}\frac{=}{१}\frac{१}{७}$ शेषाः

असंख्यातबहुभागाः अपर्याप्ता भवन्ति $\frac{१३}{९}\frac{=}{१}\frac{६}{७}$ । अनेन अनुक्रमेण तत्सर्वं बादरपर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमित्याचार्यसंप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्तम् । कालसंचयमाश्रित्य कथनं नास्तीति आचार्यस्य हृदयम् ॥२११॥

वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण कहा था, उसमें-से अपने-अपने पर्याप्त जीवोंके प्रमाणको घटानेपर जो शेष रहे, उतना-उतना अपने-अपने बादर अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण जानना ॥२१०॥

साधारण बादरोंमें जो पर्याप्त जीव हैं, उनका प्रमाण साधारण बादरोंकी राशिके असंख्यातवें भागमात्र है । शेष असंख्यात बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त होते हैं । इस अनुक्रमसे साधारण बादरोंमें पर्याप्त भवोंका दुर्लभपना कहा है । इस आचार्य परम्पराके अनुक्रमको लेकर बादरोंमें पर्याप्तकोंकी संख्या थोड़ी कही है । यहाँ कालके संचयको लेकर कथन नहीं है, ऐसा आचार्यका अभिप्राय है ॥२११॥

आवल्यसंख्यातभागदिंदमुं शुद्धसंख्यातदिंदमुं भागिसल्पट्ट प्रतरांगुलंगळिंदमवहृतजगत्प्रतरं यथासंख्यं त्रसराशियुं तत्पर्य्याप्तराशियुमक्कुं। पूर्णोनत्रसंगळुमपूर्णंगळप्पुवुमिल्लियुं पर्य्याप्तभवंगळ्गे दुर्ल्लभत्वमे पर्य्याप्तजीवसंख्याल्पत्वक्क कारणमक्कुं। त्र $\frac{=}{४\ २\ ०}$ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणमिदु $\frac{=}{४\ ५}$

अपर्य्याप्तराशिप्रमाणमक्कु $\frac{=}{४\ २\ ०} - \frac{=}{४\ ५}$ अपनयन $\frac{=}{४\ २\ ०} - ०\ ५$ [1]त्रैराशिकविधियिंदिंतादरु संदृष्टियक्कुं। ५

अनंतरं बादर तेजस्कायिकादि षट्राशिगळ्गे संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु।

आवलि असंखभागेणवहिदपल्लूण सायरद्धछिदी।
बादरतेपणिभूजलबादाणं चरिमसायरं पुण्णं ॥२१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहृतपल्योनसागरार्द्धच्छेदाः। बादरतेपनिभूजलवातानां चरमसागरः पूर्णः॥ १०

आवल्यसंख्यातभागभक्तप्रतराङ्गुलेन भाजितजगत्प्रतरमात्रं सामान्यत्रसराशिप्रमाणं भवति। $\frac{=}{४\ २\ ०}$ तथा संख्यातभक्तप्रतराङ्गुलेन भक्तजगत्प्रतरमात्रं तत्पर्याप्तराशिप्रमाणं भवति $\frac{=}{४\ ५}$। पूर्णत्रसराशिरहितः सामान्यत्रसराशिरेव अपूर्णत्रसराशिप्रमाणं भवति $\frac{=}{४\ ०}$—५ अत्रापि पर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमेव पर्याप्तजीवसंख्याल्पत्वकारणम् ॥२१२॥ अथ बादरतेजस्कायिकादिषड्राशीनां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमाह—

आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आवे, उतना सामान्य त्रसराशिका प्रमाण होता है। तथा संख्यातसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे पर्याप्त त्रसराशिका प्रमाण होता है। सामान्य त्रसराशिमें-से पर्याप्त त्रसराशिको घटा देनेपर जो शेष रहे, उतना अपर्याप्त त्रसराशिका प्रमाण होता है। यहाँ पर्याप्त भवोंकी दुर्लभता ही पर्याप्त जीवोंकी संख्याके अल्प होनेका कारण है ॥२१२॥ १५

आगे बादर तेजस्कायिक आदि छह राशियोंकी संख्याविशेषके निर्णयके लिए दो गाथाएँ कहते हैं— २०

---

१. त्रैराशिक आदि पाठः म प्रतौ नास्ति।

२. विशदतया तु $\left.\begin{matrix}=\\४\\२\\०\end{matrix}\right\} = \begin{matrix}४\\५\end{matrix}$ एवं भवति।

बादरतेजस्कायिकाप्रतिष्ठितप्रत्येकप्रतिष्ठितप्रत्येकपृथ्वीजलवायुकायिकंगळप्पारुं राशिगळगर्द्धच्छेदंगळ प्रमाणंगळ् पेळल्पडुगुमवरोळ् मोदल तेजस्कायिक बादरजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवेंदोडाऽवल्यसंख्यातभागदिंदमवहृतपल्योनसागरोपमप्रमितंगळप्पुवु । ते=बा= । ≅ ə
९

तदर्द्धच्छेदंगळु सा प मत्तमावल्यासंख्यातैकभागमनावल्यसंख्यातैकभागदिंद भागिसिदेकभाग-
९

होनसागरप्रमितंगळऽप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । अ प्र ≅ ə । तदर्द्धच्छेदंगळु सा प मत्तं तदेकभागमनावल्यसंख्यातदिंदं भागिसिदेकभागहीनसागरोपमप्रमितंगळु प्रतिष्ठित-
९ ९

प्रत्येकजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळप्पुवु ≅ ə ≅ ə । तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तं तदेकभाग-
९ ९ ९

मनावल्यसंख्यातदिंद भागिसिदेकभागहीनसागरोपमप्रमितंगळु बादरभूकायिकजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळप्पुवु भू ≅ बा ≅ ə १० तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तं तदेकभागमनावल्यसंख्यातदिंदं
९ ९ ९ ९ ९

भागिसिदेकभागोनसागरोपप्रमितंगळु बादराप्कायिकजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळप्पुवु ।

अ = बा = ≅ ə १० । १० तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तंसंपूर्णसागरोपमप्रमितंगळु
९ ९ ९ ९ ९ ९ ९

बादरवायुकायिकजीवराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । वा = बा ≅ ə १० । १० । १० तदर्द्धच्छेदंगळु ।
९ ९ ९ ९

अर्धच्छेदाः खलु बादरतेजस्कायिकजीवराशेः आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपमप्रमिता भवन्ति सा–प । अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनः एकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपममात्रा भवन्ति
९

सा–प । प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागापहृतपल्यरहितसागरोपमसंख्या भवन्ति ।
९ । ९

सा—प । बादरभूकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यहीनसागरोपमप्रमाणा भवन्ति ।
९ । ९ । ९

सा—प बादराप्कायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभाजितपल्यविहीनसागरोपममात्रा भवन्ति ।
९ । ९ । ९ । ९

बादर तैजस्कायिक, अप्रतिष्ठित और सप्रतिष्ठित वनस्पति, पृथ्वी, अप्, वायु इन छहों की राशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण कहते हैं । आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देनेसे जो एक भाग आवे, उसे सागरमें-से घटानेपर बादर तैजस्कायिक जीवराशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । दो बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देकर लब्धको सागरमें-से घटानेपर अप्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । तीन बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देकर लब्धको सागरमें-से घटानेपर प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । चार बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे सागरमें-से घटानेपर शेष बादर पृथ्वीकायिक जीवराशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । पाँच बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना सागरमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतना बादर अप्कायिक जीवराशिके

सा चरमसागरोपमं विदरिदं वायुकायिकबादरजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळ् पेळल्पट्टुवदु कारणदिदं ॥

तेवि विसेसेणहिया पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण ।
तम्हा ते रासीओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥२१४॥

तेऽपि विशेषेणाधिकाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रेण । तस्मात् ते राशिका असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥

तेपि आ अर्द्धच्छेदंगळु पूर्व्वपूर्व्वंगळं नोडलुत्तरोत्तरंगळु पल्यासंख्यातभागमात्रदिंदं द्वितीयादिगळोळु पल्यासंख्यातैकभागमात्रद बहुभागमात्रदिंदमधिकाधिकंगळप्पुवु । संदृष्टि ते ३ अ ९

तदर्द्ध सा प प ८। ९। अ प्र ३ अ। तदर्द्धच्छेद सा प प ८। ९ । प ८ ९ ९ नि ३ अ ३ अ।

तदर्द्धच्छेद सा प प ८। ९ । प ८। ९ ९ । प ८ ९ ९ ९ तदर्द्ध सा। प प ८। ९ । प ८। ९ ९ । प ८। ९ ९ ९ । प ८ ९ ९ ९

अ ३ अ १०। १० ९ ९ ९ तदर्द्ध सा। प प ८। ९ । प ८। ९ । प ८ । प ८ । प १ ९। ९ ९। ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९। ९९९९९

वा ३ अ। १०। १०। १० ९ ९ ९ ९ तदर्द्ध सा — प प ८। ९ । प ८। ९ । प ८। ९। प ८। ९ । प ८ । प ८ ९। ९९। ९९९। ९९९९। ९९९९९। ९९९९९

इंतु बादरतेजस्कायिकजीवंगळर्द्धच्छेदंगळं नोडलु द्वितीयाप्रतिष्ठितप्रत्येकादिगळोळावल्यसंख्यातैकभागदिंदभागिसिदंतप्प पल्यासंख्यातैकभागम प निदनावल्यसंख्यातैकभागदिंदं ९

भागिसि भागिसि बहुभाग बहुभागाधिकक्रमदिदं पोगि चरमबादरवायुकायिकजीवंगळोळेकभागमेयधिकममक्कुं । संदृष्टिगळु :—

अ प्र = । प ८। ९ । णि । प ८। ९ ९ । भू । प ८। ९ ९ ९ । ज । प ८। ९ ९ ९ ९ । वा । प १ ९ ९ ९ ९ ९ ।

सा—प बादरवायुकायिकजीवराशेः सम्पूर्णसागरोपमप्रमिता भवन्ति । सा चरिमसायरं पुण्णमिति ९ । ९ । ९ । ९ । ९
वचनात् ॥२१३॥

यतः कारणात् ते उक्तार्धच्छेदराशयः बादरतेजस्कायिकोक्तार्धच्छेदराशितः अप्रतिष्ठितप्रत्येकादीनामुक्तार्धच्छेदराशयः पञ्चापि आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यासंख्येयभागमात्रेण स्वस्वैकैकविशेषेण क्रमशः एवंविधेन—

अ प ८ / ९ । ९	णि प ८ / ९ । ९ । ९	भू प ८ / ९ । ९ । ९ । ९	ज प ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । ९	वा प १ / ९ । ९ । ९ । ९ । ९

अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । बादर वायुकायिक जीवराशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण सम्पूर्ण सागर है, क्योंकि गाथामें "चरिम सायरं पुण्णं" ऐसा कहा है ॥२१३॥

जिस कारणसे बादर तैजस्कायिककी उक्त अर्धच्छेदराशिसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि उक्त पाँचों भी अर्धच्छेद राशियाँ आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र अपने-अपने एक-एक विशेषसे क्रमसे अधिक हैं, तिस कारणसे जितना-जितना

---

१. म °लोलधिकाधिक° ।

मदु कारणदिंदमीयधिकाधिकार्द्धच्छेदप्रमितद्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकदिंदं बादरतेजस्कायिकजीवराशियं नोडलु गुणितक्रमंगळप्पुविन्नवरेधिकार्द्धच्छेदप्रमितद्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमं तोरल्पडुगुं अदे ते दोडे :—मोदलोळन्नेवरमंकसंदृष्टियिदं तोरल्पडुगुं । तस्मात्ते राशिका असंख्यातलोकेन गुणितक्रमाः एंदितु पेळ्दरप्पुदरिनिल्लि त्रैराशिक माडल्पडुगु। षोडश द्विकान्योन्याभ्यासविरलनराशिगे येत्तलानुं पण्णट्ठि राशि पडेयल्बरुत्तिरलुमागलु चतुःषष्टि द्विकान्योन्याभ्यासविरलनराशिगेंतप्प राशि पडेयल्पडुगुमेंदितु प्रमाणफलइच्छाराशिगळं माडि प्र १६ वि दे २ फ इष्ट ६५=इ। वि दे २। ६४ लब्धानयनविधानदोळु विशेषकरणसूत्रमुंटदावुदेंदोडे :—

अधिकाः सन्ति ततः कारणात् तत्तदधिकप्रमिततद्द्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकेन ते जीवराशयो गुणितक्रमा भवन्ति। तदसंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमः अङ्कसंदृष्ट्यर्थसंदृष्टिभ्यां दर्श्यते—तत्राङ्कसंदृष्ट्या यथा—षोडशद्विकान्योन्याभ्यासे यदि पण्णट्ठिराशिर्लभ्यते तदा चतुःषष्टिद्विकान्योन्याभ्यासे को राशिर्लभ्यते इति प्रमाणफलेच्छाराशीन् कृत्वा—

दे २	दे २	लब्धानयने करणसूत्रमाह—
प्र। वि १६। फ ६५=। इ वि ६४		

अर्धच्छेदोंका अधिक प्रमाण कहा है, उतने-उतने दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो यथासम्भव असंख्यात लोक मात्र प्रमाण होता है, उतने प्रमाण वे जीवराशियाँ क्रमसे गुणित होती हैं। यहाँ असंख्यात लोककी उत्पत्तिका क्रम अंकसंदृष्टिसे दिखाते हैं—जैसे यदि सोलह जगह दो-दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस लब्ध आता है, तो चौंसठ जगह दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे क्या राशि प्राप्त होगी। इस प्रकार प्रमाणराशि १६, फलराशि पण्णट्ठी और इच्छाराशि ६४ रखकर फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्धका प्रमाण आता है।

विशेषार्थ—पं. टोडरमलजीने अपनी टीकामें इसे अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट किया है। उसे यहाँ दिया जाता है। पल्यका प्रमाण है—६५५३६ पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस। आवली के असंख्यातवें भागका प्रमाण है-आठ। सागरका प्रमाण है-छह लाख पचपन हजार तीन सौ साठ ६५५३६०। कल्पित पल्य पण्णट्ठीमें एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार और पाँच बार कल्पित आवलीके असंख्यातवें भाग आठसे भाग देनेपर क्रमसे इक्यासी सौ बानवे ८१९२, एक हजार चौबीस १०२४, एक सौ अट्ठाईस १२८, सोलह १६ और दो २ आते हैं। ये क्रमसे आठ-आठ गुने घटते हुए हैं। इनको कल्पित सागरके प्रमाण छह लाख पचपन हजार तीन सौ साठमें-से घटाइए। अन्तिममें कुछ भी नहीं घटाना; क्योंकि उसका प्रमाण पूर्ण सागर है। तब अग्निकायिक आदिकी अर्धच्छेद राशिका प्रमाण ६४७१६८, ६५४३३६, ६५५२३२, ६५५३४४, ६५५३५८ और ६५५३६० होता है। यहाँ अधिकका प्रमाण लानेके लिए पण्णट्ठीको सातसे गुणा करके दो, तीन, चार, पाँच बार आठका भाग देनेपर तथा अन्तमें एकसे गुणा करके पाँच बार आठका भाग देनेपर इकहत्तर सौ अड़सठ ७१६८, आठ सौ छियानवे ८९६, एक सौ बारह ११२, चौदह १४ और दो २ क्रमसे अधिकका प्रमाण आता है। इसी प्रकार यथार्थमें भी जानना।

---

१. म °वर एकार्द्धच्छेद°।

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहि पयदविरलणे भजिदे ।
लद्धम्मिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयराश्यर्द्धच्छेदंगळिंदं फलभूतेष्टराश्यर्द्धच्छेदंगळं भागिसि तल्लब्धदिंदं साध्यभूतप्रकृतराशिय विरलनराशियं भागिसि तल्लब्धप्रमितेष्टराशियनन्योन्याभ्यासदिंदं साध्यभूतप्रकृतधनमक्कुमेंदिल्लि प्रमाणराशिय देयार्द्धच्छेदमो दु १ इदरिंदं फलभूतेष्टराशि पण्णट्ठि इद ६५ = अर्द्धच्छेदंगळु विरलनंगळु १६ पदिनारु ई राशियं भागिसि १६ बंद लब्धमुं मनितेयक्कु १६। मी राशियिंदं
१
साध्यभूत प्रकृत धनदर्द्धच्छेदंगळप्प विरलनराशियं ६४। अरुवत्तनाल्कुं भागिसि ६४ बंद
१६
तल्लब्धं नाल्कुं ४ ई राशियं विरलिसि इष्टराशियं पण्णट्ठियं प्रतिरूपमित्तन्योन्याभ्यासं माडिदो ६५=६५=६५=६५= डुत्पन्नराशि साध्यभूतप्रकृतधनमेक्कंटुनक्कू १८। = ।
१ १ १ १

मितेयर्थं संदृष्टियिदमिनितु रूपमात्रद्विकान्योन्याभ्यासदिंदमिष्टराशियप्प लोकं पुट्टुत्तिरलेतावद्रूपमात्रप्रकृतधनदर्द्धच्छेदंगळनन्योन्याभ्यासं माडलेंतप्प प्रकृतधनमक्कुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र वि दे २ छे छे छे ९। फ = इष्टराशि ≡ इ ≡ प्रकृत द वि दे २। सा प लब्धं प्रकृतधनानयन-
अ ९

देयराश्यर्धच्छेदेन १ फलभूतेष्ट ६५ = राश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा १६ तल्लब्धेन साध्यभूतप्रकृतराशेः
१
१८ = विरलनराशि ६४ भक्त्वा ६४ तल्लब्ध ४ प्रमितेष्टराशि ६५ =। ६५ =। ६५ =। ६५ = अन्योन्या-
१६ १ १ १ १
भ्यासेन साध्यभूतप्रकृतधनमेकट्ठराशिर्भवति १८ = एवमर्थसंदृष्टचापि—एतावतां द्विकानामभ्यासे यदि लोको
प्र दे २
जायते तदा एतावतां द्विकानामभ्यासे को राशिर्जायते इति त्रैराशिकं रचयित्वा वि छे छे छे ९। फ
अ
दे २
इष्टराशिः। ≡ इ प्रकृतस्य वि सा—प प्रकृतधनमानीयते—देयस्य रूपद्वयस्य अर्धच्छेदेनैकेन फलभूतेष्टराशेर्लोक-
९

देयराशि दोके अर्धच्छेद एक १ से फलभूत इष्ट राशि पण्णट्ठी ६५५३६ के अर्धच्छेद सोलहमें १६ भाग देनेपर सोलह ही लब्ध आया। उस लब्ध सोलह १६ से साध्यभूत प्रकृत राशि एकट्ठीके अर्धच्छेद ६४ में भाग देनेपर लब्ध चार ४ आया। चार जगह इष्ट राशि पण्णट्ठीको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे साध्यभूत प्रकृत धनराशि एकट्ठी आती है। इसी प्रकार अर्थसंदृष्टिसे भी जानना। सो पहले लोकके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण कहा है, उतने दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे लोकराशि होती है, तो यहाँ अग्निकायिक जीवराशिके अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे कितने लोक होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर यहाँ प्रमाणराशिमें देयराशि दो, विरलनराशि लोकके अर्धच्छेद, और फलराशिलोक। तथा इच्छाराशिमें देयराशि दो, विरलनराशि अग्निकायिकराशिके अर्धच्छेद प्रमाण है। सो लब्धराशि लानेके लिए देयराशि दोके अर्धच्छेद एकका भाग फलराशि लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेपर लोकके अर्धच्छेद मात्र लब्ध आया। इस लब्धसे अग्निकायिक

विधानकरणसूत्रदिंदं दिण्णाच्छेदेणवहिदेत्यादिइंदं देयरूपुगळेरडरर्द्धच्छेदमोंदरिंदं फलराशिभूतेष्ट-राशियप्प लोकदर्द्धच्छेदंगळु भागिसुत्तिरलु लब्धमुमोंदरिंदमुं भागिसिदडु तावन्मात्रमक्कुमा राशियिदमिच्छाराशिभूतप्रकृतधनार्द्धच्छेदविरलनराशियं भागिसि सा—प बंद लब्धं छे। छे छे ९। ९।

लोकार्द्धच्छेदभक्तकिंचिन्यूनसंख्यातपल्यप्रमितवारंगळं प १ लोकमनन्योन्याभ्यासं माडि- छे छे छे ९

५ दोडे लब्धराशि असंख्यातलोकमात्रं बादरतेजस्कायिकप्रकृतधनप्रमाणमक्कुं ≡ ० लोकच्छेद- ९

भक्तमूनप्रमाणमं प विरळिसि तावन्मात्रलोकंगळनन्योन्याभ्यासं माडलु पुट्टिद लब्धराशिय- ९ छे छे छे ९

संख्यातलोकमात्रमक्कु ≡ ० मा राशियं बादरतेजस्कायिकराशिगे हारहारमक्कु ≡ ० ९

मेकें दोडे—

विरलण रासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि ।

१० तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ [ ]

एंबी निर्णयमुंटप्पुदरिंदं ई भागहारं मुंदणऽप्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशिगळ भागहारंगळ-नितुमं नोडेयुं अधिकमक्कुमेकें दोडे मुंदण मुंदणप्रतिष्ठित प्रत्येकादिगल ऊनंगळु मावल्यसंख्यात-गुणहीनक्रमंगळप्पुदरिंदं ॥

स्यार्धच्छेदान् भक्त्वा तेन लब्धेनेच्छाराशिभूतप्रकृतधनार्धच्छेदे विरलनराशौ भक्ते सति सा — प छे छे छे ९। ९ ०

१५ यल्लब्धं लोकार्धच्छेदभक्तं किञ्चिन्न्यूनसंख्यातपल्यप्रमितं प १— एतावतां लोकानामभ्यासे कृते यो लब्ध- छे छे छे ९ ०

राशिः सोऽसंख्यातलोकमात्रो भवति— ≡ ०। अस्य च लोकच्छेदभक्तन्यूनप्रमाण प मात्रलोका- ० छे छे छे ९ ०

नामन्योन्याभ्यासेन समुत्पन्नमसंख्यातलोकं स्तोकत्वात् संदृष्ट्या नवाङ्कं कृत्वा न्यूनराशिमात्रद्विकैर्जनितत्वात् वारं कुर्यात्। सोऽयमसंख्यातलोको बादरतेजस्कायिकराशिर्भवति ≡ ०। अस्य च भागहारः अग्रतना- ९

राशिके अर्धच्छेदरूप इच्छाराशिमें भाग देनेपर जो प्रमाण आया सो लोकमें अर्धच्छेदोंसे २० कुछ कम संख्यात पल्यमें भाग देनेसे जो प्रमाण आता है, उतना है। सो इतने लोकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो लब्ध राशि होती है, वह असंख्यात लोकमात्र होती है। यही बादर अग्निकायिक जीवराशिका प्रमाण है। यहाँ कुछ कम संख्यात पल्य प्रमाण लोकों-को परस्परमें गुणा करनेसे जो महान् असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया, वह तो भाज्य राशि जानना। और लोकके अर्धच्छेद प्रमाण लोकोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो छोटा २५ असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया सो भागहार जानना। भागहारका भाग भाज्यमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतना ही बादर अग्निकायिक जीवोंका प्रमाण है। यहाँ अग्निकायिक

ई क्रमदिंदमप्रतिष्ठितादिराशिगळूनविशेषदिंदं मुं पेळ्द त्रैराशिकविधानदिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळागुत्तमुत्तरोत्तरंगळुमसंख्यातलोकगुणितक्रमंगळप्पुवेकें दोडे तद्भागहारंगळुमूनभेदर्दिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळागुत्तमुत्तरोत्तरंगळुमसंख्यातलोकगुणहीनक्रमंगळप्पुवेकें दोडे आकारणं मुं पेळ्दुदेयक्कुं। इल्लियसंख्यातलोकक्कमावळियसंख्यातैकभागक्कं नवांकमेयक्कु।९। मत्तु कारणदिंदमा भाज्यराशिगळप्पाबहुत्वदोळु मूढभावमं ताळ्ददे समीक्षिसि बेक्कें यल्कुवुवु। ५

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित-पुण्यपुंजायमान श्रीमद्राय राजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्न्नाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळष्टम कायमार्गणाप्ररूपणमहाधिकारं प्रलपितमाय्तु। १०

प्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशीनां सर्वभागहारेभ्योऽसंख्यातलोकगुणितः तत्तन्न्यूनराशीनामावल्यसंख्येयगुणहीनक्रमेण सद्भावात्। तत एव प्रागुक्तत्रैराशिकक्रमेणागता अप्रतिष्ठितादिराशयोऽसंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरे असंख्यातलोकगुणितक्रमा भवन्ति। अत्रासंख्यातलोकस्यावल्यसंख्येयभागस्य च संदृष्टिभूतो नवाङ्को भाज्याल्पबहुत्वं ज्ञात्वा विवेचनीयः ॥२१५॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु कायप्ररूपणानामाष्टमोऽधिकारः ॥८॥ १५

जीवोंकी राशिमें जो भागहार कहा है, वह आगेके अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशियोंमें जो भागहारका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकारसे आता है, उन सबसे असंख्यात लोक गुणा है। क्योंकि सागरमें-से जो-जो राशि घटायी है, वह क्रमसे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा कम है। इसीलिए प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त प्रकारसे स्थापित करके और इच्छाराशिमें-से विरलनराशि अपने-अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापित कर पूर्वोक्त प्रकारसे त्रैराशिकके क्रमसे आयी हुई अप्रतिष्ठित आदि प्रत्येक राशियाँ सामान्यसे असंख्यात लोकमात्र होनेपर भी उत्तरोत्तर क्रमसे असंख्यात लोक गुणित होती हैं। जहाँ भागहार घटता हुआ होता है, वहाँ राशि बढ़ती हुई होती है। सो यहाँ भागहार असंख्यात लोक गुणा क्रमसे घटता हुआ है। इससे राशि असंख्यात लोक गुणा हुई। यहाँ असंख्यातलोक और आवलीके असंख्यातवें भागकी संदृष्टिभूत अंक भाज्यका अल्पबहुत्व जानकर करना चाहिए ॥२१५॥ २० २५

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहको भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से काय प्ररूपणा नामक आठवाँ महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥८॥ ३०

योगमार्गणाप्ररूणाधिकारः ॥९॥

अनन्तरं शास्त्रकारं योगमार्गणा प्ररूपणेयं पेळलुपक्रमिसुत्तमन्नेवरं मोदलोळु योगक्के साधारणलक्षणमं पेळ्दपं।

पोग्गलविवाइदेहोदएण मणवयणकायजुत्तस्स ।
जीवस्स जा हु सत्ती कम्मागमकारणं जोगो ॥२१६॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य। जीवस्य या खलु शक्तिः कर्म्मागमकारणं योगः॥

पुद्गलविपाकित्वं देहक्के विशेषणमल्तु। पुद्गलविपाकीशब्दंदिदमंगोपांगनामकर्म्मक्के ग्रहणमक्कुं। अंगोपांगशरीरनामकर्म्मंगळु दयदिंदं मनोवचनकाय पर्य्याप्तिपरिणतनप्प कायवाङ्मनोवर्गणावलंबियप्प संसारिजीवन लोकमात्रप्रदेशगतकर्म्मादानकारणमप्पावुदो दु शक्तियदु भावयोगमक्कुं। तद्विशिष्टात्मप्रदेशंगळोळावुदो दु किंचिच्चलनरूपपरिस्पंदमदु द्रव्ययोगमक्कुं। कर्म्ममेंदितुपलक्षणमप्पुदरिंदं कर्म्मनोकर्म्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधक्के ज्ञानावरणादि कर्म्मस्वरूपदिंदमुमौदारिकादिनोकर्म्मभावदिंदमुं। परिणमनहेतुमप्पुदावुदानुमो दु सामर्त्थ्यमुं आत्मप्रदेशपरिस्पंदमुं योगमेंदितु पेळल्पट्टुदु।

कल्याणैः पञ्चभिर्भान्तं नवकेवललब्धिभिः।
शतेन्द्रपूज्यपादाब्जं पुष्पदन्तं नमाम्यहम् ॥९॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तदादौ योगस्य साधारणलक्षणमाह—

पुद्गलविपाकिनः अङ्गोपाङ्गनामकर्मणः, देहस्य च शरीरनामकर्मणः, उदयेन मनोवचनकायपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलम्बिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता कर्मादानकारणं या शक्तिः सा भावयोगः। तद्विशिष्टात्मप्रदेशेषु च यः किञ्चिच्चलनरूपपरिस्पन्दः स द्रव्ययोगः। कर्मेति लक्षणेन कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कन्धस्य ज्ञानावरणादिकमौदारिकादिनोकर्मभावेन परिणमनहेतुर्यत्सामर्थ्यं आत्मप्रदेशपरिस्पन्दश्च

पाँच कल्याणकों और नव केवललब्धियोंसे शोभित तथा सौ इन्द्र जिनके चरण कमल को पूजते हैं, उन पुष्पदन्त भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ।

आगे शास्त्रकार योगमार्गणाको प्रारम्भ करते हुए उसके आदिमें योगका साधारण लक्षण कहते हैं—

पुद्गलविपाकी अंगोपांग नामकर्म और शरीरनामकर्मके उदयसे मन-वचन और कायपर्याप्तिरूपसे परिणत तथा कायवर्गणा वचनवर्गणा और मनोवर्गणाका अवलम्बन करनेवाले संसारी जीवके लोकमात्र प्रदेशोंमें रहनेवाली जो शक्ति कर्मोंको ग्रहण करनेमें कारण है, वह भावयोग है। और उस शक्तिसे विशिष्ट आत्म प्रदेशोंमें जो कुछ हलन-चलन रूप परिस्पन्द होता है वह द्रव्य योग है। 'कर्म' इस शब्दसे कर्म वर्गणारूप पुद्गल स्कन्धोंको ज्ञानावरण आदि कर्म रूपसे और नोकर्मवर्गणारूप पुद्गल स्कन्धको औदारिक आदि नोकर्म

अंगोपांगशरीरनामकर्म्मोदयगळिंदं मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ आहारवर्गणायातनोकर्म्मपुद्गलस्कंधंगळ संबंधदिंदं जीवप्रदेशंगळ्गे, अग्निसंबंधदिनें तु लोहक्के दहनशक्तिपुट्टुगुमंते कर्म्मनोकर्म्मादानशक्तिसामर्थ्यं पुट्टुगुमें बुदिदु भावार्त्थं ।

अनंतरं योगविशेषमं पेळ्दपं ।

मणवयण्णाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु ।
तण्णामं होदि तदा तेहि दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनवचनयोः प्रवृत्तयः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगात् खलु तद्योगाः ॥

सत्यासत्योभयानुभयार्थंगळोळावुकलवु प्रवृत्तिगळु मनोवचनंगळ्गेत्तळ् ज्ञानवाक्प्रयोगजननदोळ् जीवप्रयत्नंगळा प्रवृत्तिगळ्गे सत्यादितन्नाममक्कुं सत्यमन इत्यादि । तु मत्ते तैस्तु योगात् आ सत्याद्यर्थंगळोडने संबंधदत्तणिंदं खलु स्फुटमागि ताः आ मनोवचनप्रवृत्तिगळुं । तद्योगाः सत्यादिविशेषणं गळिंदं विशिष्टंगळप्प नाल्कुं मनोयोगंगळुं नाल्कुं वाग्योगंगळुमप्पुवु । सम्यग्ज्ञानविषयमप्पर्थं सत्यमें बुदु यथा जलज्ञानविषयं जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावादिदं ।

योग इत्युच्यते । अङ्गोपाङ्गशरीरनामकर्मोदयेन मनोभाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां आहारवर्गणायातनोकर्मपुद्गलस्कन्धानां च संबन्धेन जीवप्रदेशानामग्निसंयोगेन लोहस्य दहनशक्तिवत् कर्मनोकर्मादानशक्तिः सामर्थ्यमुत्पद्यते इति भावार्थः ॥२१६॥ अथ योगविशेषमाह—

सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु याः प्रवृत्तयः मनोवचनयोः तदा ज्ञानवाक्प्रयोगजनने जीवप्रयत्नरूपप्रवृत्तीनां सत्यादि तन्नाम भवति सत्यमन इत्यादि । तु—पुनः तैः सत्याद्यर्थैः सह योगात्—संबन्धात्, खलु—स्फुटं, ताः मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः—सत्यादिविशेषणविशिष्टाः, चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवन्ति । सम्यग्ज्ञानविषयोऽर्थः सत्यः यथा जलज्ञानविषयो जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोऽर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोऽर्थः उभयः

रूपसे परिणमनमें हेतु जो सामर्थ्य है तथा आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दको योग कहते हैं। भावार्थ यह है कि जैसे अग्निके संयोगसे लोहेमें दहन शक्ति होती है, उसी तरह अंगोपांग शरीर नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणा तथा भाषावर्गणाके आये पुद्गल स्कन्धोंके और आहारवर्गणाके आये नोकर्म पुद्गल स्कन्धोंके सम्बन्धसे जीवके प्रदेशोंमें कर्म और नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥२१६॥

आगे योगके भेदोंका लक्षण कहते हैं—

सत्य, असत्य, उभय और अनुभयरूप पदार्थोंमें जो मन और वचनकी प्रवृत्तियाँ होती हैं,तब जानने और वचनका प्रयोग करनेमें जीवके प्रयत्नरूप वृत्तियाँ सत्य आदि उन नामवाली होती हैं;जैसे सत्य मन इत्यादि । पुनः उन सत्य आदि अर्थोंके सम्बन्धसे वे मन वचनकी प्रवृत्तियाँ सत्य आदि विशेषणसे विशिष्ट होनेसे चार मनोयोग और चार वचन योग होते हैं । सम्यग्ज्ञानके विषयभूत अर्थको सत्य कहते हैं । जैसे जलज्ञानका विषय जल सत्य है, क्योंकि स्नान पान आदि अर्थ क्रिया उसमें पायी जाती है । मिथ्या ज्ञानका विषय पदार्थ असत्य है । जैसे मरीचिकामें जल ज्ञानका विषय जल असत्य है,क्योंकि उसमें स्नान

---

१. म °लमप्प प्र° ।

मिथ्याज्ञानविषयमप्पर्थमसत्यं एंतीगळ्जलज्ञानविषयमप्प मरीचिकाचक्रदोळ् जलं स्नानपानाद्यर्थ-क्रियाविरहिंदमसत्यं ।

सत्यासत्यज्ञानविषयमप्पर्थमु भयमक्कुं । सत्यासत्यमें बुदर्थं । येंतीगळु घटज्ञानविषयमप्प कमंडलुविनोळु घटं । यिल्लि जलधारणार्थक्रियासद्भावमुंटप्पुदरिंदं सत्यतेयुं घटाकारविकलतेयिंदमसत्यतेयुं प्रतीतियक्कुमेंदितु इदु गौणार्थमग्निर्माणवकः एंदीत्यादिरूपं । अनुभयज्ञानविषयात्थोनुभयः । सत्यासत्यार्थद्वयंगळिंदमव्यक्तमक्कुं । एंतीगळु किंचित्प्रतिभासते एंदितु सामान्यदिंदं प्रतिभासमानमप्पर्थं स्वात्थंक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावदिंदं सत्य येंदितु नुडियल्बारदु । सामान्यप्रतिभासदिंदमसत्यमेंदितुं नुडियल्बारदेंदितु जात्यंतरमनुभयार्थं स्फुटमागि नाल्कनेय भेदमक्कुमितु घटे घटविकल्पः सत्यः घटे पटविकल्पोऽसत्यः कुंडिकायां जलधारणे घटविकल्प उभयः आमंत्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पोऽनुभयः कालेनैव गृहीता सा कन्या किं मृत्युनाऽथवा धर्म्मणेति अनुभयः ।

सत्यार्थविषयमप्प मनोयोगं सत्यमनोयोगमेंदित्यादिविशेषलक्षणमं गाचतुष्टयदिंद पेळ्दपरु ।

सब्भावमणो सच्चो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२१८॥

सद्भावमनः सत्यं यो योगस्तेन सत्यमनोयोगः । तद्विपरीतो मृषा जानीह्युभयं सत्यमृषेति ॥

सत्यासत्य इत्यर्थः यथा जलज्ञानविषयः कमण्डलुनि घटः । अत्र जलधारणार्थक्रियायाः सद्भावात् सत्यतायाः घटाकारविकलत्वादसत्यतायाश्च प्रतीतेः । अयं गौणार्थः अग्निर्माणवक इत्यादिवत् । अनुभयज्ञानविषयोऽर्थः अनुभयः सत्यासत्यार्थद्वयेनावक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासते । सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तुं न शक्यते । सामान्यप्रतिभासात् असत्य इत्यपि वक्तुं न शक्यते इति जात्यन्तरं अनुभयार्थः स्फुटं चतुर्थो भवति । एवं घटे घटविकल्पः सत्यः, घटे पटविकल्पोऽसत्यः, कुण्डिकायां जलधारणे घटविकल्पः उभयः, आमन्त्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पः अनुभयः । कालेनैव गृहीता सा कन्या किं मृत्युना अथवा धर्मणा इत्यनुभयः ॥२१७॥ सत्यार्थविषयो मनोयोगः सत्यमनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं गाथाचतुष्टयेन कथयति—

पान आदि अर्थ क्रियाका अभाव है । सत्य और असत्य ज्ञानका विषय अर्थ उभय अर्थात् सत्यासत्य है । जैसे कमण्डलुमें घटव्यवहार । कमण्डलुमें घटकी तरह जलधारणरूप अर्थ क्रिया होनेसे सत्यताकी और घटका आकार न होनेसे असत्यताकी प्रतीति होती है । माणवकमें अग्निकी तरह यह गौण अर्थ है । अनुभयज्ञानका विषय अर्थ अनुभय है, उसे न सत्य ही कहा जा सकता है और न असत्य ही कहा जा सकता है; जैसे कुछ प्रतिभासित होता है । यहाँ सामान्य रूपसे प्रतिभासमान अर्थ अपनी अर्थक्रिया करनेवाले विशेषके निर्णयके अभावमें सत्य नहीं कहा जा सकता । और सामान्यका प्रतिभास होनेसे असत्य भी नहीं कहा जा सकता । इसलिये जात्यन्तर होनेसे अनुभय अर्थ स्पष्ट ही चतुर्थ होता है । इसी तरह घटमें घटका विकल्प सत्य है । घटमें पटका विकल्प असत्य है । कुण्डिकामें जलधारणसे घटका विकल्प उभय है । किसीको बुलाने पर 'हे देवदत्त' यह विकल्प अनुभय है ॥२१७॥

आगे सत्य अर्थको विषय करनेवाला सत्य मनोयोग है; इत्यादि विशेष लक्षण चार गाथाओंसे कहते हैं—

सद्भावः सत्यार्थः। सद्भावविषयमप्प मनमं सत्यमनमेंदु। सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपमप्प भावमनमें बुदर्थं। तेन अंतप्प सत्यमनदिंदं जनितमप्पावुदो दु योगं प्रयत्नविशेषमदु सत्यमनोयोगमें बुदु। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजननशक्तिरूपभावमनदिंदं जनितमप्प प्रयत्नविशेषं मृषा असत्यमनोयोगमक्कुं। उभयं सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषमुभयमनोयोगमें दितु जानीहि हे भव्यजीवने नीनरि। ५

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥२१९॥

न च सत्यमृषा युक्तं यन्मनस्तदसत्यमृषामनः। यो योगस्तेन भवेदसत्यमृषा स तु मनोयोगः।

यन्मनः आवुदो दु मनं सत्यमृषायुक्तं सत्यमुं मृषेयुमें बिवरोळ् कूडिदुदु न च नैव भवति अल्लदुदक्कुं। तु मत्ते असत्यमृषा मनः अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनमें बुदर्थं। तेन जनितो यो योगः आभावमनदिंदं जनितमप्पावुदो दु योगं प्रयत्नविशेषं सः अदु, तु मत्ते असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोगमें बुदर्थमितु नाल्कुं मनोयोगंगळ् पेळल्पट्टुवु। १० १५

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२२०॥

दशविधसत्ये वचने यो योगः स तु सत्यवाग्योगस्तद्विपरीतो मृषा जानीह्युभयं सत्यमृषेति ॥

सद्भावः सत्यार्थः, तद्विषयं मनः सत्यमनः, सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः। तेन सत्यमनसा जनितो यो योगः—प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजनितशक्तिरूपभावमनसा जनितप्रयत्नविशेषो मृषा—असत्यमनोयोगः। उभयः—सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोगः, इति हे भव्य! त्वं जानीहि ॥२१८॥ २०

यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च भवति तु—पुनः, तदसत्यमृषामनः, अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमन इत्यर्थः। तेन भावमनसा जनितो यो योगः—प्रयत्नविशेषः स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः। इति चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥२१९॥

सद्भाव अर्थात् सत्य अर्थ। उसको विषय करनेवाला मन सत्य मन है। अर्थात् सत्य अर्थका ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमन सत्यमन है। उस सत्य मनसे उत्पन्न हुआ योग अर्थात् प्रयत्न विशेष सत्य मनोयोग है। उससे विपरीत अर्थात् असत्य अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भाव मनसे उत्पन्न प्रयत्न विशेष मृषा अर्थात् असत्य मनोयोग है। उभय अर्थात् सत्य और असत्य अर्थके ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमनसे उत्पन्न प्रयत्न विशेष उभयमनोयोग है। हे भव्य,ऐसा तुम जानो ॥२१८॥ २५

जो मन सत्य और असत्यसे युक्त नहीं होता,वह असत्यमृषामन है अर्थात् अनुभय रूप अर्थके ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमन असत्यमृषा मन है। उस भावमनसे उत्पन्न जो योग अर्थात् प्रयत्नविशेष है, वह असत्यमृषा मनोयोग अर्थात् अनुभयमनोयोग है। इस प्रकार चार मनोयोग कहे हैं ॥२१९॥ ३०

सत्यार्थवाचकं वचः सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थमप्पस्वरनामकर्म्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणावलंबनात्मप्रदेशशक्तिरूपमप्पावुदो दु भाववचनदिंद जनितमप्प योगं प्रयत्नविशेषं सः अदु सत्यवचोयोगः सत्यवचनयोगमक्कुं। तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नमसत्यवचोयोगोऽसत्यवाग्योगमक्कुं। कमंडलुविनोळु घटमिदें-
५ दित्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नमदु उभयवाग्योगमें दितु जानीहि नीनरि भव्यने।

जो णेव सच्चमोसो सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादि ॥२२१॥

यो नैव सत्यमृषा स जानीह्यसत्यमृषावचनयोगः। अमनसां या भाषा संज्ञिनामामंत्रण्यादिः॥

यः आवुदो दु सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति सत्यासत्यार्थविषयमल्तु। सः अदु असत्य-
१० मृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषमनुभयवचोयोगमेंदितु जानीहि नीनरि। अदावुदें दोडे अमनसां द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमाद जीवंगळावुदो दु अनक्षरात्मिकेयप्प भाषेयुं संज्ञिनां संज्ञिजीवंगळा मंत्रण्याद्यक्षरात्मिकेयप्प भाषेयुमेल्लमुमनुभयवचोयोगमें दितु पेळल्पट्टुदु।

अनंतरं जनपदादिदशविधसत्यमनुदाहरणपूर्व्वकमागि गाथात्रयदिं पेळ्दपरु।

सत्यार्थवाचकं वचनं सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थः, स्वरनामकर्मो-
१५ दयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणावलम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपो यो भाववचनजनितो योगः प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगो भवति। तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः असत्यवाग्योगो भवति। कमण्डलुनि घट इत्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नतः स उभयवाग्योग इति भव्य! त्वं जानीहि॥२२०॥

यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति हे भव्य! त्वं जानीहि। स कः? उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति—अमनसां द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तजीवानां या अनक्षरात्मिका भाषाः संज्ञिनां च आमन्त्रण्याद्यक्षरात्मिकाभाषास्ताः सर्वाः अनुभयवचोयोग इत्युच्यते॥२२१॥

२० अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह—

सत्य अर्थका वाचक वचन सत्यवचन है। वह जनपद आदि दस प्रकारके सत्य अर्थको विषय करनेवाले वचन व्यापारको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। स्वर नाम कर्मके उदयसे प्राप्त भाषापर्याप्तिसे उत्पन्न भाषावर्गणाके आलम्बनसे आत्मप्रदेशोंमें शक्तिरूप जो भाववचनसे उत्पन्न योग अर्थात् प्रयत्नविशेष है, वह सत्यवचनयोग है। उससे विपरीत
२५ असत्य है अर्थात् असत्य अर्थको विषय करनेवाला वचन व्यापाररूप प्रयत्न असत्यवचन योग है। कमण्डलुमें घटव्यवहारकी तरह सत्य और असत्य अर्थविषयक वचन व्यापाररूप प्रयत्न उभय वचन योग है। हे भव्य, तुम जानो ॥२२०॥

जो सत्य और असत्य अर्थको विषय नहीं करता, वह असत्यमृषा अर्थको विषय करनेवाला वचन व्यापाररूप प्रयत्न विशेष अनुभय वचन योग है, ऐसा हे भव्य! तुम जानो।
३० वह कौन है? यह उत्तरार्धसे उदाहरण देकर कहते हैं—अमनस् अर्थात् दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंकी जो अनक्षरात्मक भाषा है तथा संज्ञी पंचेन्द्रियोंकी जो आमन्त्रण आदि रूप अक्षरात्मक भाषा है, वह सब अनुभयवचन योग कही जाती है ॥ २२१ ॥

आगे जनपद आदि दस प्रकारके सत्य उदाहरण पूर्वक तीन गाथाओंसे कहते हैं—

जणवदसंउदिट्ठवणाणामे रूवे पडुच्चववहारे ।
संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं ॥२२२॥

जनपदसंवृतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतीत्यव्यवहारे। संभावनायां भावे उपमायां दशविधं सत्यं॥

जनपददोळं संवृतियोळं-सम्मतियोळं मेणु स्थापनेयोळं नामदोळं रूपदोळं प्रतीत्यदोळं व्यवहारदोळं संभावनेयोळं भावदोळं उपमेयोळमितु पत्तेडेयोळं सत्यं दशविधमक्कुं। ५

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो ।
सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥२२३॥

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः । श्वेतो दीर्घो रध्यते क्रूर इति च यत् भवेद्वचनं ॥

जनपदंगळोळल्लल्लिय व्यवहर्तृजनंगळ रूढमप्पावुदो दु वचनमदु जनपदसत्यं। यें तोगळु १०
महाराष्ट्रदेशदोळ् भातु भेदु। आंध्रदेशदोळु वटिकमु। ककूडु। कर्णाटदेशदोळु कूलु। द्रविडदेशदोळु चोरु। इंति हिंगे संवृतिः कल्पना कल्पनेयिंदं सम्मतिबंहुजनाभ्युपगमः बहुजनंगळनुमतदिंदं मेणु सर्व्वदेशसामान्यमप्प नामं रूढमदु संवृतिसत्यं। सम्मति सत्यं मेणु। एंतोगळग्रमहिषित्वाभावदोळ्-मों दानुमोर्व्वळिगे देवि एंदितु सम्मतं। अन्यत्र अन्यवस्तुविंगे समारोपं स्थापनेयें बुदु तथाश्रितमप्प मुख्यवस्तुविन नामं स्थापनासत्यमक्कुं। यें तोगळु चंद्रप्रभप्रतिमे चंद्रप्रभनें ब हंगे तथा च यन्तोगळु १५
भातु एंबित्यादिनामं देशाद्यपेक्षेयिंदं सत्यमक्कुमन्ते मत्तन्यनिरपेक्षतेयिंदमे संव्यवहारार्थमागियो-

---

जनपदे संवृत्तौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये व्यवहारे संभावनायां भावे उपमायां चेति दशस्थानेषु सत्यं दशविधं भवति ॥२२२॥

जनपदेषु तत्रतनतत्रतनव्यवहर्तृजनानां रूढं यद्वचनं तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु भेटु, आन्ध्रदेशे वण्टक मूकुडु, कर्णाटदेशे कूलू, द्रविडदेशे चोरु। तथा संवृत्त्या कल्पनया सम्मत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारणं यन्नाम रूढं तत् संवृतिसत्यं सम्मतिसत्यं वा, यथा अग्रमहिषीत्वाभावेऽपि कस्याश्चिद्देवीति नाम। अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रितं मुख्यवस्तुनो नाम स्थापनासत्यं यथा चन्द्रप्रभप्रतिमा चन्द्रप्रभ इति। तथा च यथा भातु इत्यादि नाम देशाद्यपेक्षया सत्यं तथा अन्यनिरपेक्षतयैव संव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्तं संज्ञाकर्म नामसत्यं यथा कश्चित् पुरुषो जिनदत्त इति। अत्र जिनैर्दत्त इति

जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, सम्भावना, भाव, उपमा २५
इन दस स्थानोंमें दस प्रकारका सत्य जानना ॥२२२॥

भिन्न-भिन्न जनपदोंमें उस-उस जनपदके व्यवहारी पुरुषोंके रूढ़ वचनको जनपद सत्य कहते हैं; जैसे भातको महाराष्ट्र देशमें भातु-भेटु कहते हैं, आन्ध्र देशमें वटक मुकुडु कहते हैं, कर्णाट देशमें कुलु और द्रविड देशमें चोरु कहते हैं। संवृत्ति अर्थात् कल्पनासे य सम्मति अर्थात् बहुत जनोंके स्वीकार करनेसे सर्वदेश साधारण जो नाम रूढ़ है, वह संवृति ३०
सत्य या सम्मति सत्य है; जैसे पट्टरानीपना नहीं होनेपर भी किसीको देवी कहना। अन्यमें अन्यवस्तुका समारोप स्थापना है। उसका आश्रय करके मुख्य वस्तुका नाम स्थापना सत्य है; जैसे चन्द्रप्रभकी प्रतिमाको चन्द्रप्रभ कहना। तथा जैसे भातु इत्यादि नाम देश आदिकी अपेक्षा सत्य है, उसी तरह अन्यकी अपेक्षा न करते हुए ही संव्यवहारके लिए किसीका नाम रखना नाम सत्य है; जैसे किसी पुरुषका जिनदत्त नाम। जिनदेवने जिसे दिया, वह जिनदत्त ३५
होता है, किन्तु इस दान क्रियाकी अपेक्षा न करते हुए यह नाम प्रयुक्त होता है। चक्षुके

दानुमोव्वंगे प्रयुक्तसंज्ञाकर्म्मं नामसत्यमक्कुं । यें तीगळोंदानुमोर्व्व पुरुषं जिनदत्तन हंगे, इल्लि जिनैर्दत्तो जिनदत्तः यें दितु दानक्रियानिरपेक्षमागिये प्रयुक्तमिदुं। चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वदिदं रूपादिपुद्गलगुणंगळोळगे रूपप्रधान्यदिदं तदाश्रितवचनं रूपसत्यमक्कुं । यें तीगळोर्व्व पुरुषं श्वेतनेंदि हेंगे इल्लि केशंगळ नीलादिवर्णांतरंगळगं रसादिगुणांतरंगळगं सद्भावदोळविवक्षितमागि श्वेतनेंदे वाक्प्रयोगं प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं एंबुदु विवक्षितदत्तणिदं मत्तों दुनुद्देशिसि विवक्षितक्कंये स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमेंबुदर्थं । एंतीगळों दानुमों दु दीर्घमें दिए हेंगे मत्तोंदर ह्रस्वत्वमनपेक्षिसि प्रकृतक्के दीर्घत्वमादुदुं एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनंगळुं प्रतीत्यसत्यंगळें दु ज्ञातव्यंगळु । नैगमादिनयप्राधान्यमनाश्रयिसि प्रवृत्तमप्प वचनं व्यवहारसत्यमक्कुमल्लि नैगमनयप्राधान्यदिदं यें तीगळु रध्यते क्रूरः एंदितु पच्यते ओदन यें दितुं इति शब्दं संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारप्रदर्शनार्थमक्कुं। इंतु नयव्यवहाराश्रितमप्पावुदों दु वचनं स्यात् सर्वं सत् स्यात्सर्व्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्यमक्कुं। च शब्दं सर्व्वनयसमुच्चयार्थं पच्यते ओदनः यें दिल्लि पाकसमाप्त्यनंतरकालभावियप्पोदनपर्य्यायं । पाककालदोळे एत्तलानुमिल्लमंतादोडं तंडुलंगळोदनपर्य्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षेयिंदमोदनपर्य्यायपरिणामि द्रव्यापेक्षेयिंदं तद्वाक्यक्के सत्यत्वसिद्धियक्कुं ।

दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदम् । चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वेन रूपादिपुद्गलगुणेषु रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचनं रूपसत्यं यथा कश्चित् पुरुषः श्वेत इति । अत्र केशादीनां नीलादिवर्णान्तररसादिगुणान्तरसद्भावेऽप्यविवक्षितत्वात् । प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः । यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वकथनात् । एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनान्यपि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि । नैगमादिनयप्राधान्यमाश्रित्य प्रवृत्तं वचनं व्यवहारसत्यम् । अत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते क्रूर पच्यते ओदन इति । इतिशब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारदर्शनार्थः । नयव्यवहाराश्रितं यद्वचनं—स्यात्सर्वं सत् स्यात् सर्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्यं भवति । चशब्दः सर्वनयसमुच्चयार्थः । पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनन्तरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तण्डुलानामोदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥२२३॥

व्यापारकी अधिकतासे रूपादिसे युक्त पुद्गलके गुणोंमें रूपकी प्रधानतासे तदाश्रित वचन रूप सत्य है; जैसे अमुक पुरुष श्वेत है। यहाँ मनुष्यके केशोंके नील आदि वर्णके होनेपर तथा रस आदि अन्य गुणोंका सद्भाव होनेपर भी उनकी विवक्षा नहीं है। प्रतीत्य अर्थात् विवक्षित वस्तुसे अन्यकी अपेक्षा करके विवक्षित वस्तुके ही स्वरूपको कहना प्रतीत्य सत्य अर्थात् आपेक्षिक सत्य है; जैसे किसीको दीर्घ कहना। यहाँ दूसरेके छोटेपनकी अपेक्षा करके ही प्रकृतको दीर्घ कहा गया है। इसी तरह यह स्थूल है या यह सूक्ष्म है, इत्यादि वचन भी प्रतीत्यसत्य जानना। नैगमादि नयकी प्रधानता लेकर कहा गया वचन व्यवहार सत्य है। जैसे नैगमनयकी प्रधानतासे 'भात पकता है', ऐसा कहना; क्योंकि पकते तो चावल हैं, पकनेपर भात होगा। गाथामें आया इति शब्द संग्रहनय आदिके द्वारा होनेवाले व्यवहारके प्रकारको दर्शाता है। नयव्यवहारके आश्रयसे होनेवाला वचनव्यवहार; जैसे स्यात् सब वस्तु सत् है, स्यात् सब वस्तु असत् है, इत्यादि वाक्य व्यवहार सत्य है। 'च' शब्द सब नयोंके समुच्चयके लिए है। 'भात पकता है' यहाँ भातपर्याय पाककी समाप्तिके अनन्तर कालमें होती है, अतः पाककालमें यद्यपि नहीं है; तथापि चावलोंकी भातरूप पर्यायकी निकटताके

सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि पावबज्जवयणं च ।
पल्लोवमं च कमसो जणवदसच्चादिदिट्ठंता ॥२२४॥

शक्रो जंबूद्वीपं परावर्त्तयति पापवर्जवचनं च । पल्योपमं च क्रमशो जनपदसत्यादिदृष्टांताः ॥

संभावनेयिंदमसंभवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्म्मविधिलक्षणदिंदमावुदोंदु प्रवृत्तमप्प वचनमदु संभावनासत्यं येंतोगळु शक्रनु जंबूद्वीपमं परावर्त्तिसुगुं परिवर्त्तिसलार्प्पनेंबुदर्त्थं । जंबूद्वीपपरिवर्त्तन शक्त्यसंभवपरिहारदिंदं तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं । सत्यमेंदितु बीजदोळंकुरजननादिशक्तिवचनदंते असंभवपरिहारदिंदं वस्तुधर्म्मविधिरूपमप्प संभावनेगं नियमदिंद तत्क्रियापेक्षे घटिसुवुदिल्लेकेंदोडे क्रियेगे बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वमप्पुदे कारणमागि । अतींद्रियार्थंगळोळु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामं भावमक्कुं तदाश्रितमप्पवचनं भावसत्यमेंतोगळु शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यंगळु प्रासुकमदु कारणदिंद तत्सेवनदोळ् पापबंधमिल्लेंदितु पापवर्ज्यवचनदंतिल्लि । सूक्ष्मप्राणिगळिंद्रियागोचरत्वदोळं प्रवचनप्रामाण्यदिंदं प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपमप्प भावाश्रितमप्प वचनक्के सत्यत्वमुंटप्पुदरिंदं । समस्तातींद्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनक्के सत्यत्वमुंटप्पुदे कारणमागि च शब्दमेवंविधाऽनुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थं प्रसिद्धार्थसादृश्य-

---

संभावनया असंभवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचनं तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जम्बूद्वीपं परावर्तयेत् परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः । जम्बूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं सत्यमिति बीजे अङ्कुरजननादिशक्तिवचनवत् । असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपसंभावनाया नियमेन तत्क्रियापेक्षा न घटते क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात् । अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः । तदाश्रितं वचनं भावसत्यम् । यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यं प्रासुकं ततस्तत्सेवने पापबन्धो नास्तीति पापवर्जनवचनम् । अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिन्द्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात् । समस्तातीन्द्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य

प्ररूपक नैगमनयकी विवक्षासे भात पर्यायरूप परिणमन करनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा 'भात पकता है', इस वचनकी सत्यता सिद्ध है ॥२२३॥

असम्भवके परिहारपूर्वक वस्तुके धर्मका विधान करनेवाली सम्भावनाके द्वारा जो वचनव्यवहार होता है, वह सम्भावनासत्य है; जैसे इन्द्र जम्बूद्वीपको पलटनेमें समर्थ है। यहाँ जम्बूद्वीपको पलटनेकी शक्तिकी असम्भवताका परिहार करते हुए उस शक्तिके विधानका वचन पलटनेकी क्रियासे निरपेक्ष होते हुए सत्य है; जैसे यह कहना कि बीजमें अंकुरको उत्पन्न करनेकी शक्ति है। इन्द्रमें जम्बूद्वीपको पलटनेकी शक्ति असम्भव है। इस असम्भवताका परिहार करके इन्द्रमें पलटन रूप धर्मके अस्तित्वकी सम्भावना नियमसे उस क्रियाकी अपेक्षा नहीं रखती। अर्थात् इन्द्र जम्बूद्वीपको पलट दे, तभी इन्द्र जम्बूद्वीपको पलट सकता है, यह कहा जा सकता है, ऐसी बात नहीं है। क्रिया तो बाह्य कारण समूहके व्यापारसे उत्पन्न होती है। अतीन्द्रिय पदार्थोंमें प्रवचनमें कहे गये विधि निषेधके संकल्परूप परिणामको भाव कहते हैं। उसके आश्रित वचन भाव सत्य है; जैसे सूखा हुआ, पकाया हुआ, छिन्न-भिन्न किया हुआ, खटाई या नमक मिलाया हुआ तथा जला हुआ द्रव्य प्रासुक है। अतः उसके सेवनमें पापबन्ध नहीं है। इस प्रकारके पापके त्यागरूप वचन भावसत्य है। यहाँ सूक्ष्म प्राणियोंके इन्द्रियोंके अगोचर होनेपर भी आगमकी प्रामाणिकतासे प्रासुक और अप्रासुकका संकल्परूप भावके आश्रयसे वचन सत्य है, क्योंकि आगममें ऐसा कहा है। और

मनुपमे एंबुदु। तदाश्रितमप्प वचनमुमनुपमासत्यमें बुदें तोगळु पल्योपमं पल्यं धान्याधारकुशूलमदरोडनुपमे सदृशत्वं रोमखंडाधारतेयिंदमावुदो दक्के उंदु तत्संख्यानपल्योपममें दितु असंख्याताऽसंख्यातरोमखंडाश्रयमप्प तत्प्रमाणसमयमप्प संख्यानविशेषक्कं यथाकथंचित्पल्यसादृश्यमनाश्रयिसि प्रवृत्तमप्प पल्योपमवचनक्कुपमा सत्यत्वसिद्धियक्कुं। अंते सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थं च शब्दं। इंतु यथाक्रमं भक्तादिगळु जनपदसत्यादिदृष्टांतंगळुदाहरणंगळु पेळल्पट्टुवु।

अनंतरमनुभयवचनभेदंगळं पेळ्वातं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपं।

आमंतणि आणवणी याचणियापुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥२२५॥

आमंत्रणी आज्ञापनी याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी। प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोमवचनी च॥

आगच्छ भो देवदत्त इत्याद्याह्वानभाषे आमंत्रणी एंबुदु। इदं माडु एंबुदु मोदलाद कार्य्यनियोजन भाषे आज्ञापनी एंबुदु। [2]इदनेनगं कोडु एंबुदु मोदलाद प्रार्थनाभाषे याचनी एंबुदु। [3]येनिदें बु मोदलादुदु प्रश्नभाषे आपृच्छनी एंबुदु। येगेय्वेनें बुदु मोदलाद विज्ञापनाभाषे प्रज्ञापनी

सत्यत्वादेव कारणात्। चशब्दः एवंविधानुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यमुपमासत्यं यथा पल्योपमं पल्येन धान्याधारकुशूलेन सह उपमासदृशत्वं रोमखण्डाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यानं पल्योपममिति असंख्याताऽसंख्यातरोमखण्डाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यानविशेषस्य यथाकथञ्चित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। तथा सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थश्चशब्दः। एवं यथाक्रमं भक्तादयो जनपदसत्यादिदृष्टान्ता उदाहरणान्युक्तानि ॥२२४॥ अथानुभयवचनभेदान् गाथाद्वयेनाह—

आगच्छ भो देवदत्त, इत्याद्याह्वानभाषा आमन्त्रणी। इदं कुरु इत्यादिकार्यनियोजनभाषा आज्ञापनी। इदं मह्यं देहीति प्रार्थना भाषा याचनी। किमेतदित्यादिप्रश्नभाषा आपृच्छनी। किं करवाणीत्यादिविज्ञापन-

---

समस्त अतीन्द्रिय पदार्थोंके ज्ञाताके द्वारा उपदिष्ट आगम सत्य ही होता है, इसलिए उसके आधारसे जो संकल्प भावपूर्वक वचन है, वह सत्य है। 'च' शब्द इस प्रकारके जो भावसत्य यहाँ नहीं कहे गये हैं, उन सबके समुच्चयके लिए है। प्रसिद्ध अर्थके साथ सादृश्य बतलानेवाला वचन उपमा सत्य है; यथा पल्योपम। पल्य अर्थात् अनाज भरनेका खत्ता, उसके साथ उपमा अर्थात् सदृशता जिसकी है, क्योंकि पल्यमें रोमखण्ड भरे जाते हैं, उसकी संख्याको पल्योपम कहते हैं। इस प्रकार असंख्यातासंख्यात रोमखण्डोंका आधारभूत अथवा उतने प्रमाण समयोंका आधारभूत जो संख्यानविशेष है, उसकी जिस-किसी प्रकारसे पल्यसे समानताका आश्रय लेकर प्रवृत्त हुआ पल्योपमका वचन उपमा सत्य है; यह सिद्ध होता है। तथा 'च' शब्द सागरोपम आदि उपमासत्यके भेदोंके समुच्चयके लिए है। इस प्रकार क्रमसे जनपद सत्य आदिके भक्त आदि दृष्टान्त कहे ॥२२४॥

आगे दो गाथाओंसे अनुभय वचनके भेद कहते हैं—

'हे देवदत्त आओ'। इस प्रकारकी बुलानेरूप भाषा आमन्त्रणी है। 'यह करो', इत्यादि कार्यमें नियुक्त करनेकी भाषा आज्ञापनी है। 'यह मुझे दो', इस प्रकारकी प्रार्थनारूप भाषा याचनी है। 'यह क्या है' इस प्रकारकी प्रश्नरूप भाषा आपृच्छनी है। 'क्या करूँ' इस

---

१. म °क्के तत्संख्यानमुंटदु पल्यो°। २. म यिद ननगे कुडु एंबिदु। ३. म एनिर्देंदीत्यादि प्रश्न°।

यंबुदु । इदं वर्ज्जिसुवेनेंबिदु मोदलाद परिहरणभाषे प्रत्याख्यानि एंबुदु । यिदु बलाकेयो मेण् पताकेयो एंबिदु मोदलाद संदेहभाष संशयवचनि एंबुदु ।

अंतक्कुमेंबिदु मोदलाद इच्छानुवृत्तिभाषे इच्छानुलोमवचनि एंबुदु । ओंदु च शब्दं समुच्चयार्थमोंदु चरम च शब्दमनुक्तसमुच्चयार्थं ।

णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ। ५
सोदाराणं जम्हा वत्तावत्तंससंजणया ॥२२६॥

नवमी अनक्षरगता असत्यमृषा भवंति भाषाः । श्रोतृणां यस्माद्व्यक्ताव्यक्तांशसंजनिकाः ॥

अनक्षरगता अनक्षरात्मिकेयप्प द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमप्प जीवंगळ स्वस्वसंकेतप्रदर्शिकेयप्प भाषे नवमी ओंभत्तनेयनुभयभाषे । पूर्व्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षेयिंदमिंतामंत्रण्यादिगळुं असत्यमृषाः । सत्यासत्यलक्षणरहितंगळनुभयभाषेगळप्पुविल्लि कारणं पेळल्पडुगुं । १० यस्मात्कारणात् आवुदोंदु कारणदिंद श्रोतृजनंगळगे सामान्यदिंदं व्यक्तमुं विशेषदिंदमव्यक्तमुमेंबी व्यक्ताव्यक्तार्थावयवंगळगे संज्ञापिकेगळप्प प्रकाशिकेगळे भाषेगळप्पवदु कारणदिंदं सामान्यरूपदिंदं व्यक्तार्थत्वदिंदं असत्यंगळेंदितुं नुडियलु शक्यंगळल्तु । विशेषस्वरूपदिंदमव्यक्तार्थत्वदिंदं सत्यंगळेंदितुं नुडियलु शक्यमल्तुवितेत्तलानु पेरवनुभयभाषेगळु संभविसुगुमप्पोडे अवुमिल्लिये ई

भाषा प्रज्ञापनी । इदं वर्जयामीत्यादिपरिहरणभाषा प्रत्याख्यानी । किमिदं बलाका वा पताका वा इत्यादि- १५
संदेहभाषा संशयवचनी । तथैव मयापि भवितव्यमित्यादि इच्छानुवृत्तिभाषा इच्छानुलोमवचनी । एकश्चशब्दः समुच्चयार्थः चरमश्चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः ॥२२५॥

अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तजीवानां स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी पूर्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षया । एवमामन्त्रण्याद्याः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवन्ति । अत्र कारणमुच्यते यस्मात्कारणात् श्रोतृजनानां सामान्येन व्यक्तानां विशेषेणाव्यक्तानां अर्थावयवानां संज्ञापिकाः २०
प्रकाशिकाः भाषा भवन्ति यस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषस्वरूपेणाव्यक्तार्थत्वात्सत्या इत्यपि वक्तुं न शक्यते इत्यनुभयत्वम् । एवं यद्यपि परा अनुभयभाषाः संभवन्ति

प्रकारकी विज्ञापनरूप भाषा प्रज्ञापनी है । 'मैं इसका त्याग करता हूँ', इस प्रकारकी त्यागनेरूप भाषा प्रत्याख्यानी है । 'क्या यह बगुलोंकी पंक्ति है या पताका है ?' इत्यादि सन्देहात्मक भाषा संशयवचनी है । 'मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए', इत्यादि इच्छाको प्रकट करनेवाली २५
भाषा इच्छानुलोमवचनी है । पहला 'च' शब्द समुच्चयके लिए है और अन्तिम 'च' शब्द अनुक्त भेदोंके समुच्चयके लिए है ॥२२५॥

अनक्षरगता अर्थात् अनक्षरात्मिका दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञीपंचेन्द्रियपर्यन्त जीवोंकी अपने-अपने संकेतोंको बतलानेवाली नवमी भाषा है । पहली गाथामें कही आठ अनुभयभाषाओं- की अपेक्षा यह नवमी अनुभय भाषा है । इस प्रकार आमन्त्रिणी आदि असत्यमृषा अर्थात् ३०
सत्य और असत्यके लक्षणसे रहित अनुभय भाषा होती हैं । यहाँ कारण बतलाते हैं—जिस कारणसे श्रोताजनोंको सामान्यसे व्यक्त और विशेष रूपसे अव्यक्त अर्थके अवयवोंकी संज्ञापक अर्थात् प्रकाशक ये भाषाएँ होती हैं, तिस कारणसे सामान्य रूपसे व्यक्त अर्थको कहनेसे इन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता और विशेष रूपसे व्यक्त अर्थको न कहनेसे इन्हें सत्य भी नहीं कहा जा सकता; इसलिए ये अनुभय हैं । इसी प्रकार अन्य भी अनुभय भाषाएँ हैं; तथापि ३५

ओं भत्तरोळेयंतर्भावनोयंगळु । अथवा इवक्कुपलक्षणत्वदिंदं व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिकेगळु परवुमनुभयभाषेगळु पृथगनुसर्त्तव्यंगळप्पुवु । अनक्षरात्मकेयप्प भाषेयोळु व्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावदिंदमे तनुभयत्वनेंदितें दोडदल्तेकें दोडे द्वींद्रियादिजीवंगळप्प तद्भाषावक्तृगळ सुखदुःखप्रकरणाद्यवलंबनदिंदं हर्षाद्यभिप्रायमनरियल्के शक्यत्वदिंद व्यक्तत्वोपपत्तियक्कुमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगंगळगे कारणमं पेळ्दपं :—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्म्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु । मृषोभययोर्म्मूलनिमित्तं खलु भवत्यावरणं ॥

सत्यमनोयोगक्कं सत्यवाग्योगक्कमनुभयमनोयोगक्कमनुभयवचनयोगक्कं पर्य्याप्तनामकर्म्मोदयमुं शरीरनामकर्म्मोदयमुं खलु स्फुटमागि मूलनिमित्तं प्रधानकारणं सामान्यक्के विशेषाविना भावित्वदिंदं मनोवचनसामान्यग्रहणदिंदं तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धं । अथवा मोसुभयाणमेंदितु कंठोक्तमादुदरिंदं । शेषसत्यानुभयमनोवचनंगळगे पारिशेषिकन्यायदिंदं ग्रहणमक्कुमेकें दोडे आवरणक्के मंदोदयमागुत्तिरलु विद्यमानत्वमादोडमसत्यजनकत्वाभावमप्पुदरिंदं । मृषोभययोः असत्यमनोवाग्योगंगळगमुभयमनोवाग्योगंगळगमावरणतीव्रानुभागोदयमे मूलकारणं । खलु स्फुट-

(सन्ति) तथापि ता अत्रैव नवस्वेवान्तर्भावनीयाः । अथवा एतासामुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अपरा अनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः । अनक्षरात्मकभाषाया सुव्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावात् कथमनुभयत्वमिति चेत्तन्न, द्वीन्द्रियादिजीवानां तद्भाषावक्तृणां सुखदुःखप्रकरणाद्यवलम्बनेन हर्षाद्यभिप्रायस्य ज्ञातुं शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तिभावात् ॥२२६॥ अथ सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगानां कारणं कथयति—

सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवचनयोगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु स्फुटं मूलनिमित्तं प्रधानकारणं भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धमेव । अथवा 'मोसुभयाणमिति' कण्ठोक्तत्वात् शेषसत्यानुभयमनोवचनयोः पारिशेषिकन्यायाद् ग्रहणं भवति । आवरणस्य मन्दोदये विद्यमाने असत्यजनकत्वाभावात् मृषोभयोः

वे सब इन्हीं नौ भाषाओंमें अन्तर्भूत करना । अथवा ये भाषाएँ उपलक्षणरूप हैं, अतः व्यक्त और अव्यक्त अर्थके अवयवोंकी प्रकाशिका अन्य अनुभय भाषा पृथक् जानना ।

शंका—अनक्षरात्मक भाषा सुव्यक्त अर्थके अंशकी प्रकाशक नहीं है, तब वह कैसे अनुभयरूप हो सकती है ?

समाधान—उस भाषाको बोलनेवाले दोइन्द्रिय आदि जीवोंके सुख-दुःखके प्रकरण आदिके अवलम्बनसे हर्ष आदिका अभिप्राय जाना जा सकता है । इसलिए व्यक्तपना सम्भव है ॥२२६॥

आगे सत्य, असत्य, उभय और अनुभय मनोयोग तथा वचन योगके कारण कहते हैं—

सत्यमनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभयमनोयोग और अनुभयवचनयोगका मूलनिमित्त अर्थात् प्रधानकारण पर्याप्तनामकर्म और शरीरनामकर्मका उदय है । यतः सामान्य विशेषका अविनाभावी होता है, अतः मन सामान्य और वचन सामान्यके ग्रहणसे उसके विशेष सत्य और अनुभयका ग्रहण सिद्ध ही है । अथवा 'मोसुभयाणं' ऐसा कण्ठोक्त होनेसे शेष सत्य मन, वचन और अनुभयमन तथा वचनका ग्रहण पारिशेष न्यायसे होता है । आवरणका मन्द

मागि इल्लि विशेषमुंटदावुदे दोडे तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणमसत्यमनोवाग्योगनिमित्तं। तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणमुभयमनोवाग्योगनिमित्तमेंदरिगे। दर्शनचारित्रमोहोदयंगळगसत्योभययोगकारणत्वमेके पेळल्पडुदे दॆनल्वेडेके दोडे मिथ्यादृष्टिगे तंते असंयतसम्यग्दृष्टिगं संयतंगं तद्योगसद्भावमप्पुदरिंदं सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळु सत्यासत्ययोगव्यवहारक्कावरणंगळ मंदतीव्रानुभागोदयंगळे कारणं गळेंदितु प्रवचनदोळु प्रसिद्धियुंटप्पुदरिंदं। तु मत्ते केवलियोळु सत्यानुभययोगव्यवहारं सर्व्वावरणक्षयजनितमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुमयोगकेवलियोळु शरीरनामकर्म्मोदयाभावदिंदं योगाभावमप्पुदरिंदं सत्यानुभयव्यवहारमिल्लेंदितु सुव्यक्तं। सयोगकेवलिगे दिव्यध्वनिगें तु सत्यानुभयवाग्योगत्वमेंदितॆनल्वेडेके दोडे तदुत्पत्तियोळु अनक्षरात्मकत्वदिंदं श्रोतृश्रोत्रप्रदेशव्याप्तिसमयपर्य्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धियुं तदनंतरं श्रोतृजनाभिप्रेतार्थंगळोळु संशयादिनिराकरणदिंदं सम्यग्ज्ञानजनकत्वदिंदं सत्यवाग्योगत्वसिद्धियुं सुनिश्चितमक्कुं।

असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च आवरणतीव्रानुभागोदय एव मूलकारणं भवति खलु-स्फुटम्। अस्त्रायं विशेषः। स कः? तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणं असत्यमनोवाग्योगनिमित्तम्। तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणं उभयमनोवाग्योगनिमित्तमिति जानीहि। दर्शनचारित्रमोहोदययोः असत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टेरिव असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात्। सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्यावरणमन्दतीव्रानुभागोदय एव कारणमिति प्रवचनप्रसिद्धेः। तु-पुनः केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः। अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्ति इति सुव्यक्तम्। सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेत्तन्न तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेश-प्राप्तिसमयपर्यन्तमनुभयभाषात्वसिद्धेः। तदनन्तरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्व-

उदय होते हुए असत्यकी उत्पत्ति नहीं होती, अतः असत्य मनोयोग, असत्य वचन योग, उभय मनोयोग, उभय वचनयोगका मूल कारण आवरणके तीव्र अनुभागका उदय ही है;यह स्पष्ट है। यहाँ इतना विशेष है कि तीव्रतर अनुभागके उदयसे विशिष्ट आवरण असत्यमनोयोग और असत्यवचनयोगका कारण है। और तीव्र अनुभागके उदयसे विशिष्ट आवरण उभयमनोयोग और उभयवचनयोगका कारण है; ऐसा जानना।

शंका—दर्शनमोह और चारित्रमोहके उदयको असत्य और उभययोगका कारण क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टिकी तरह असंयत सम्यग्दृष्टिके और संयतके भी असत्य और उभय योग होते हैं। सर्वत्र मिथ्यादृष्टि आदिमें सत्य और असत्य योगके व्यवहारका कारण आवरणके मन्द और तीव्र अनुभागका उदय ही है, यह बात आगममें प्रसिद्ध है। किन्तु केवलीके सत्य और अनुभय योगका व्यवहार समस्त आवरणके क्षयसे होता है;यह ज्ञातव्य है। अयोगकेवलीके शरीरनामकर्मके उदयका अभाव होनेसे योगका अभाव है। अतः सत्य और अनुभयका व्यवहार भी नहीं है;यह स्पष्ट है।

शंका—सयोगकेवलीकी दिव्यध्वनि कैसे सत्य और अनुभयवचन योगरूप होती है?

समाधान—दिव्यध्वनि उत्पत्तिके समय अनक्षरात्मक होती है।अतः श्रोताके श्रोत्र प्रदेशको प्राप्त होनेके समय तक अनुभय भाषारूप होना सिद्ध है। उसके अनन्तर श्रोता

१. ब सत्ययोगव्यं ।

अनंतरं सयोगकेवलियोळु मनोयोगसंभवप्रकारमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं ।

मणसाहेयाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि ।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्हि ॥२२८॥

मनःसहितानां वचनं दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे । उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥

इंद्रियज्ञानविहीने मतिज्ञानविहीनमप्प सयोगनोळु मुख्यवृत्तियिंदं मनोयोगाभावमक्कुमादोडमा मनोयोगमुपचारदिंदमुंटेंदु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदा उपचारमुं निमित्तप्रयोजनंगळनुळ्ळु दन्नेवरं निमित्तं पेळल्पडुगमस्मदादिच्छद्मस्थमनोयुक्तर्गे तत्पूर्वकं मनःपूर्व्वकमागिये वचनं वर्णपदवाक्यात्मकमप्प वाग्व्यापारं काणल्पट्टुदु । इति इति हेतोः इदु कारणमागमनसोऽस्मदाद्यनतिशयपुरुषरोळु काणल्पट्ट धर्म्मं सातिशयपुरुषनप्प भगवंतनोळु केवलियोळदेंतु कल्पिसल्पडुगुमेन्तवडकंदोडे अदु कारणमागिये केवलियोळु मुख्यमनोयोगक्कभावदिंदमे तत्कल्पनारूपोपचारं पेळल्पट्टुददक्क प्रयोजमीग पेळल्पडुत्तिदे ।

अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंदचंदम्हि ।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयतो द्रव्यमनोर्थं जिनेंद्रचंद्रे । मनोवर्गणास्कंधानां आगमनतस्तु मनोयोगः ॥

घटनात् ॥२२७॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेनाह—

इन्द्रियज्ञानेन—मतिज्ञानेन, विहीने सयोगिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावेऽपि उपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे कथितः । उपचारो हि निमित्तप्रयोजनवानेव । तत्र निमित्तं यथा अस्मदादेः छद्मस्थस्य मनोयुक्तस्य तत्पूर्वकं मनःपूर्वकमेव वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इति कारणात् । अस्मदाद्यनतिशयपुरुषे दृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति केवलिनि कथं कल्पते ? इति न च वाच्यं, तत्कारणस्य मुख्यमनोयोगस्य केवलिन्यभावादेव तत्कल्पनारूपोपचारः कथितः । तस्य प्रयोजनमधुना कथयति ॥२२८॥

जनोंके इष्ट पदार्थोंमें संशय आदिको दूर करके सम्यग्ज्ञानको उत्पन्न करनेसे सत्य वचन योगपना सिद्ध है । इस तरह वह उभय योगरूप होती है ॥२२७॥

आगे सयोगकेवलीमें दो गाथाओंसे मनोयोगको बतलाते हैं—

इन्द्रियज्ञान अर्थात् मतिज्ञानसे रहित सयोगकेवलीमें मुख्य रूपसे मनोयोगका अभाव होनेपर भी उपचारसे मनोयोग है; ऐसा परमागममें कहा है । उपचारके होनेमें निमित्त और प्रयोजन दो कारण होते हैं । निमित्त इस प्रकार है—जैसे हमारे जैसे मनसे युक्त छद्मस्थ जीवोंके तत्पूर्वक अर्थात् मनपूर्वक ही वचन अर्थात् वर्णपदवाक्यात्मक वचन व्यापार देखा जाता है, अतः केवलीके भी मनोयोगपूर्वक वचन कहा है ।

शंका—हमारे जैसे अतिशयरहित पुरुषोंमें देखा गया धर्म सातिशय पुरुष भगवान् केवलीमें कैसे कल्पना करते हैं ?

समाधान—ऐसा मत कहिए, उसका कारण मुख्य मनोयोगका केवलीमें अभाव होनेसे ही मनोयोगकी कल्पनाका उपचार कहा है । अब उपचारका प्रयोजन कहते हैं ॥२२८॥

जिनेंद्रचंद्रे जिन इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः सम्यग्दृष्टयस्तेषां । चंद्र इव चंद्रः भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्तस्मिन् जिनेंद्रचंद्रे । इंतप्प जिनेंद्रचंद्रनोळंगोपांगनामकर्म्मोदयदिंदं हृदयांतर्भागदोळक्कुं । तत्परिणमनकारणमप्प मनोवर्गणास्कंधंगळागमनवत्तणिंदं द्रव्यमनःपरिणमनप्राप्तिरूपप्रयोजनदत्तणिंदं पूर्वोक्तनिमित्तदिंदं मुख्यमप्प भावमनोयोगाभावदिंदमुपचारदिंदं मनोयोगमुंटेंदितु पेळल्पट्टुदु । ५

अथवात्मप्रदेशंगळ्गे कर्म्मनोकर्म्माकर्षणशक्तिरूपमप्प भावमनोयोगमामनोयोगदिंदं समुद्भूतमप्प मनोवर्गणाद्रव्यमनःपरिणमनरूपं द्रव्यमनोयोगमुमी गाथासूत्रदिंदं भाषितमाय्तु । पूर्व्वोक्तोपचारक्के प्रयोजनं तु मत्ते सर्व्वजीवदयेयुं तत्त्वार्थदेशनेयुं शुक्लध्यानादिकमेंदितु तु शब्ददिंदं सूचितमाय्तु ।

अनंतरं काययोगमं पेळ्वातं मुन्नमौदारिककाययोगमं निरुक्तिपूर्व्वकं पेळ्वपं । १०

पुरुमहदुदारुरालं एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं ।
ओरालियं ति उच्चइ ओरालियकायजोगो सो ॥२३०॥

पुरुमहदुदारुरालं एकार्थः संविजानीहि । तस्मिन् भवं औदारिकमित्युच्यते औरालिककाययोगः सः ॥

जिनेन्द्रचन्द्रे—जिनः इन्द्रो येषां ते जिनेन्द्राः सम्यग्दृष्टयः, तेषां चन्द्र इव चन्द्रः, भवतापाज्ञानतमो- १५
विनाशकत्वात् तस्मिन् जिनेन्द्रचन्द्रे अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन द्रव्यमनो विकसिताष्टदलपद्माकारेण हृदयान्तर्भागे भवति । तत्परिणमनकारणमनोवर्गणास्कन्धानामागमनाद् द्रव्यमनःपरिणमनेन प्राप्तिरूपप्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्चोपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते । अथवा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः तत्समुद्भूतो मनोवर्गणानां द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्चानेन गाथासूत्रेण भाषितो जातः । पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तुशब्देन सूचितम् ॥२२९॥ २०
अथ काययोगं कथयन् प्रथमौदारिककाययोगं निरुक्तिपूर्वकं कथयति—

जिन जिनका इन्द्र हैं, वे जिनेन्द्र अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं। भवरूप सन्ताप और अज्ञानरूप अन्धकारका विनाशक होनेसे उन जिनेन्द्रोंके लिए जो चन्द्रमाके तुल्य हैं, उन जिनेन्द्रचन्द्रमें अंगोपांग नाम कर्मका उदय होनेसे हृदयके अन्तर्भागमें खिले हुए आठ दलवाले कमलके आकार द्रव्यमन होता है। उसके परिणमनमें कारण मनोवर्गणाके स्कन्धोंके आनेसे २५
द्रव्यमनका परिणमन होता है। अतः प्राप्तिरूप प्रयोजनसे तथा पूर्वोक्त निमित्तसे और मुख्य मनोयोगका अभाव होनेसे उपचारसे मनोयोग कहा है। अथवा आत्मप्रदेशोंके कर्म और नोकर्मको आकृष्ट करनेकी शक्तिरूप भावमनोयोग है। उससे उत्पन्न हुआ मनोवर्गणाका द्रव्यमनरूपसे परिणमनेरूप द्रव्यमनोयोग है। यह इस गाथासूत्रसे कहा गया है। पूर्वोक्त उपचारका प्रयोजन तो सब जीवोंपर दया, तत्त्वार्थका उपदेश, शुक्लध्यान आदिका केवलीमें ३०
होना है। यह 'तु' शब्दसे सूचित किया है ॥२२९॥

आगे काययोगका कथन करते हुए निरुक्तिपूर्वक प्रथम औदारिक काययोगको कहते हैं—

उदारं उरालं वा पुरु महत् स्थूलंगळेंबुदत्थं तत्स्वार्थंदोळंठण्विधानमुंटप्पुदरिंदमुदारमुरालमेव वा औदारिकं उदारे उराले वा भवं औदारिकं मेणिंतुं भवार्त्थदोळं ठण्विधानमुंटप्पुदरिंदमक्कुं। औदारिकमेवोपचितपुद्गलपिंडरूपत्वात्कायः। औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः। औदारिकशरीरनामकर्म्मोदयसंपादितमप्पौदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामं वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणाममं नोडे महत्वसंभवदिंदमोदारिककायमक्कुं। सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणशरीरंगळ्गे स्थूलत्वाभावदिंदमे तवक्कौदारिकत्वमे देनल्बेडेके दोडवं नोडलुं सूक्ष्मतरमप्प वैक्रियिकादिशरीरापेक्षयिंदं अवक्के महत्वमुळ्ळुदरिंदं परमागमरूढियिंदं मेणौदारिकत्वं संभविसुगुमौदारिककायार्थमागि यावुदोंदात्मप्रदेशंगळ्गे कर्म्मनोकर्म्मकिर्षणशक्तियदु तानेयौदारिककाययोगमेंदितु पेळल्पट्टुदु।

औदारिकवर्गणास्कंधंगळौदारिककायत्वपरिणमनकारणमात्मप्रदेशपरिस्पंदमेणौदारिककाययोगमेंदितु एले भव्यनीनरियें दितु संबोधिसल्पट्टुदु।

अथवा औदारिककाय औदारिककाययोगमेंदितु कारणे कार्योपचारः एंबी न्यायदिं पेळल्पट्टुदावुपचारमुं निमित्तप्रयोजनंगळनुळ्ळुदरिंदं औदारिककायाद्योगः औदारिककाययोगः एंबी

उदारं उरालं वा पुरु महत् स्थूलमित्यर्थः। वार्थे कन्[1] विधानात् उदारं उरालमेवौदारिकमौरालिकम्। उदारे उराले वा भवमौदारिकं औरालिकं वेति भवार्थे[2] ऽण्विधानात्। औदारिकमेव उपचितपुद्गलपिण्डरूपत्वात् कायः, औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः, औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादितः औदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कन्धपरिणामः। वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामादेव महत्त्वसंभवेन औदारिककायः स्यात्। सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात्[3] कथमेषामौदारिकत्वमिति न वाच्यं, ततोऽपि सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरीरापेक्षयैषां महत्त्वयुक्तत्वात् परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वं संभवति। औदारिककायार्थं वा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः सैव औदारिककाययोग इत्युच्यते तदा औदारिकवर्गणास्कन्धानां औदारिककायत्वपरिणमनकारणं आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो वा औदारिककाययोग इति, हे भव्य! त्वं

उदार, उराल, पुरु, महत् ये सब शब्द एकार्थवाची हैं। इनका अर्थ है स्थूल। स्वार्थमें 'कन्' प्रत्ययका विधान करनेसे उदार और उराल ही औदारिक और औरालिक होता है। अथवा उदारमें या उरालमें जो हो, वह औदारिक या औरालिक है। यहाँ होनेके अर्थमें 'अण्' का विधान किया है। औदारिक ही पुद्गलपिण्डका संचय रूप होनेसे काय है। औदारिक वही हुआ काय सो औदारिककाय है। औदारिक शरीर नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ औदारिक शरीरके आकार स्थूल पुद्गलस्कन्धोंका परिणाम औदारिककाय है। वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणामरूप हैं, अतः उनसे स्थूल होनेसे औदारिककाय होता है।

शंका—सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकायके शरीर तो स्थूल नहीं होते, तब वे शरीर औदारिक कैसे हैं?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उनसे भी सूक्ष्मतर वैक्रियिक आदि शरीरकी अपेक्षा ये शरीर स्थूल हैं। अथवा परमागममें रूढ़ होनेसे उनको औदारिक कहा है। औदारिक शरीरके लिए जो आत्मप्रदेशोंकी कर्म और नोकर्मको आकर्षण करनेकी शक्ति है, उसे ही

---

२५ १-२. ठण् मु-। ३. ब सूक्ष्मत्वभा°।

निमित्तत्वदिंदमुं तस्माद्योगात् आकृष्टकर्म्मनोकर्म्म परिणामरूपप्रयोजनदिंदमुं औदारिककायक्कुपचारदिं तद्योगत्वसिद्धियक्कुं।

अनंतर औदारिकमिश्रकाययोगमं पेळ्दपरु।

ओरालिय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सजोगो सो ॥२३१॥

औदारिकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्। यस्तेन संप्रयोगः औदारिकमिश्रयोगः सः॥

प्रागुक्तलक्षणमप्पौदारिकशरीरमदु तानंतर्म्मुहूर्तपर्य्यंतमपूर्णमपर्य्याप्तमन्नेवरं मिश्रमेंदितु पेळल्पट्टुदु। अपर्य्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्म्मणकाययोगाकृष्टकार्म्मणवर्गणा संयुक्तत्वदिंदं परमागमरूढियिंदं मेणपर्य्याप्तमप्प शरीरं मिश्रमेंबुदर्त्थमदु कारणदिंदं औदारिककायमिश्रदोळने तदर्त्थमागि वर्त्तिसुव यः संप्रयोगः आत्मंगे कर्म्मनोकर्म्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पंदसंयोगमदु शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्यभावदिंदं औदारिकवर्गणास्कंधंगळगे परिपूर्णशरीरपरिणमनसमर्थमप्पुदौदारिककायमिश्रयोगमेंदितु विजानीहि अरि।

जानीहि इति संबोध्यते। अथवा औदारिककाय एव औदारिककाययोग इति कारणे कार्योपचारात्। अयमुपचारोऽपि निमित्तप्रयोजनवानेव। औदारिककायाद् योगः औदारिककाययोग इति निमित्तस्य तद्योगाकृष्टकर्मनोकर्मपरिणामरूपप्रयोजनस्य च भावात् ॥२३०॥ अथ तस्मिन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपूर्णं अपर्याप्तं तावन्मिश्रमित्युच्यते। अपर्याप्तकालसंबन्धिसमयत्रयसंभविकार्मणकाययोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्त–अपर्याप्तशरीरमिश्रमित्यर्थः। ततः कारणादौदारिककायमिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्मनोकर्मादान-

---

औदारिककाययोग कहते हैं। ऐसी अवस्थामें औदारिकवर्गणाके स्कन्धोंका औदारिककायरूप परिणमनमें कारण जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द है, वह औदारिककाययोग है; ऐसा हे भव्य, तू जान। अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे औदारिककाय ही औदारिककाय योग है। यह उपचार भी निमित्त और प्रयोजनको लिये हुए है। औदारिककायसे योग होता है, इसलिए औदारिककाययोग है, यह तो निमित्त हुआ और उस योगके द्वारा आकृष्ट पुद्गलोंका कर्म नोकर्मरूपसे परिणमन होता है; यह प्रयोजन हुआ ॥२३०॥

आगे औदारिकमिश्रकाय योगको कहते हैं—

औदारिक शरीरका लक्षण पहले कहा है। वही अन्तर्मुहूर्त काल तक अपूर्ण अर्थात् अपर्याप्त होता है, तब उसको औदारिक मिश्र कहते हैं। अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुरूके तीन समयोंमें होनेवाले कार्मणकाय योगसे आकृष्ट कार्मणवर्गणासे संयुक्त होनेसे औदारिक मिश्र कहते हैं। अर्थात् मिश्रनाम मेलका है। सो जब जीव पूर्व शरीरको छोड़कर नया शरीर धारण करनेके लिए विग्रहगतिसे गमन करता है, तब अधिकसे अधिक तीन समय तक उसके कार्मणकाय योग होता है। उससे कार्मण वर्गणाओंका ग्रहण होता है। इस तरह कार्मण और औदारिक वर्गणाका मेल होनेसे अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकको ही औदारिक मिश्र कहा जाता है। अथवा परमागममें ऐसा रूढ़ है कि अपर्याप्त शरीर मिश्र होता है। इस कारणसे औदारिककायमिश्रके साथ उसके लिए वर्तमान जो संप्रयोग अर्थात् आत्माका कर्म और

अनंतरं वैक्रियिककाययोगमं पेळ्दपरु ।

विविहगुणइड्ढिजुत्तं विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं ।
तिस्से भवं च णेयं वेगुव्वियकायजोगो सो ॥२३२॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं विक्रियं वा हि भवति वैगूर्व्वं । वैक्रियिकं वा तस्मिन् भवं च ज्ञेयं वैक्रियिककाययोगः सः ॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं विविधशुभाशुभप्रकारंगळप्प अणिमाद्यतिशयंगळऋद्धिर्महत्वमदरोळ्कूडिद देवनारकशरीरं वैगूर्व्वमक्कुं मेणु वैक्रियिकमक्कुं । विगूर्व्वे विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्व्वं येंदितु निर्व्वचनं संभविसुगुमप्पुदरिंदं वैक्रियिकमेंबुदर्त्थं । वैगूर्व्विकमेंदितु पाठमक्कुमल्लि विगूर्व्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्व्विकमेंदितु ठण् प्रत्ययमक्कुं । अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकाणिमादिविकारमेंबुदर्त्थं । तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकमेंदितुं च शब्दं प्रयोजनार्त्थसमुच्चयार्थमप्पुदरिनक्कुं । यः आवुदो दु वैगूर्व्विककायार्त्थमागि तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणाशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः सः अदु वैगूर्व्विककाययोगमेंदितुं वैक्रियिककाययोगमेंदितुं ज्ञेयं अरियल्पडुगुं ।

अथवा वैक्रियिककायमे कारणे कार्य्योपचारन्यायदिंदं वैक्रियिककाययोगमेंदितुपचरिसल्पडुगुं । तदुपचारं निमित्त प्रयोजनमनुळ्ठुदप्पुदरिंदं वैक्रियिककायाद्योगो वैक्रियिककाययोगः

शक्तिप्रदेशपरिस्पन्दसंयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावेन औदारिकवर्गणास्कन्धानां परिपूर्णशरीरपरिणमनासमर्थः औदारिककायमिश्रयोग इति विजानीहि ॥२३१॥ अथ वैक्रियिककाययोगं कथयति—

विविधगुणर्धियुक्तं—विविधानां—शुभाशुभप्रकाराणां गुणानां—अणिमाद्यतिशयानां ऋद्धिः—महत्त्वं तेन सहितं देवनारकशरीरं वैगूर्व वैक्रियिकं वा भवति । विगूर्वे—विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात् । वैक्रियिकमित्यर्थः । वैगूर्विकमिति पाठे विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति ठण्प्रत्ययविधानात् । अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकोऽणिमादिविकार इत्यर्थः । तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं, चशब्दस्य प्रयोजनार्थसमुच्चयार्थत्वात् । यः वैगूर्विककायार्थं तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कन्धाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पन्दः स वैगूर्विककाययोग इति ज्ञेयः—ज्ञातव्यः । अथवा वैक्रियिककाय

नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिको लिये हुए प्रदेशपरिस्पन्दरूप योग है, वह शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता न होनेसे औदारिक वर्गणाके स्कन्धोंको परिपूर्णरूपसे शरीररूप परिणमानेमें असमर्थ होनेसे औदारिक मिश्रयोग होता है;ऐसा जानो ॥२३१॥

आगे वैक्रियिक काययोगको कहते हैं—

विविध अर्थात् शुभ और अशुभ प्रकारके गुण अर्थात् अणिमा आदि अतिशय रूप ऋद्धि, उससे सहित देव और नारकियोंका शरीर वैगूर्व अथवा वैक्रियिक होता है । विगूर्व अर्थात् विविध गुणोंके उद्योगमें हुआ शरीर वैगूर्व है,ऐसी व्युत्पत्ति है । उसका अर्थ वैक्रियिक है । 'वैगूर्विक' पाठ होनेपर विगूर्व जिसका प्रयोजन है, वह वैगूर्विक है; इस प्रकार ठण् प्रत्ययका विधान किया है । अथवा विविध क्रिया-विक्रिया है, उसका अर्थ है-अनेक अणिमा आदि विकार । उस विक्रियामें जो हो अथवा विक्रिया जिसका प्रयोजन हो,वह वैक्रियिक है । 'च' शब्द प्रयोजनके समुच्चयके लिए है । वैगूर्विक शरीरके लिए जो उस रूप परिणमनके योग्य शरीर वर्गणाके स्कन्धोंको आकृष्ट करनेकी शक्तिसे विशिष्ट आत्मप्रदेशोंका कम्पन है,

एंदितुं निमित्तमुं। तस्माद्वैक्रियिककाययोगात्कर्म्मनोकर्म्मरूपपरिणमनप्रयोजनमुमेंब निमित्त-प्रयोजनंगळिंदमुं वैक्रियिककायक्कुपचारदिंदं तत्काययोगत्वसिद्धियक्कुं।

अनंतरं वैक्रियिककाययोगक्के संभवस्थानांतरं पेळ्दपं :—

बादरतेऊवाऊ पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति ।
ओरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥२३३॥

बादरतेजोवायुपंचेंद्रियपूर्णका विगुर्व्वंति विकूर्व्वंति वा। औदारिकं शरीरं विगूर्व्वणात्मकं विकुर्व्वणात्मकं च वा भवेद्येषां ॥

बादरंगळु स्थूलंगळप्प तेजस्कायिकंगळु वायुकायिकंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तंगळप्प तिर्य्यग्मनुष्यरुं भोगभूमिजतिर्य्यग्मनुष्यरुं तंतम्मौदारिकशरीरंगळनवु विगूर्व्वंति विकुर्व्वंति वा विगुर्व्विसुवुवु। एंतप्पुवेंदोडे एषां आवुवु केलवु जीवंगळ्औदारिकशरीरमे विगूर्व्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् अक्कुमा जीवंगळु मपृथग्विक्रियर्यिदं परिणमंति परिणमिसुवरेंबुदर्त्थं भोगभूमिजरुं चक्रवर्त्तिगळुं पृथग्विगुर्व्विसुवरु।

अनंतरं वैक्रियिककायमिश्रयोगमं पेळ्दपरु :—

वेगुव्विय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥२३४॥

वैगूर्व्विकोक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्। यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्व्विकमिश्रयोगः सः ॥

एव वैक्रियिककाययोगः कारणे कार्योपचारात्, अयमप्युपचारः प्राग्वदेव निमित्तप्रयोजनयुक् 'वैक्रियिककाया-द्योगः वैक्रियिककाययोगः इति निमित्तस्य तद्योगात्, कर्मनोकर्मरूपपरिणमनप्रयोजनस्य चात्रापि संभवात्॥२३२॥

अथ वैक्रियिककाययोगसंभवस्थानान्तरमाह—

बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः भोगभूमितिर्यग्मनुष्याश्च स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वन्ति—विकुर्वन्ति वा। ते के? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् ते जीवाः अपृथग्विक्रियया परिणमन्तीत्यर्थः। भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वन्ति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति—

वह वैगूर्विककाययोग जानना। अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे वैक्रियिककाय ही वैक्रियिककाययोग है। यह उपचार भी पहलेकी तरह निमित्त और प्रयोजनको लिये हुए है। वैक्रियिककायसे हुआ योग वैक्रियिककाययोग है; यह निमित्तका योग है। तथा कर्म-नोकर्म रूपसे परिणमन होना प्रयोजन है। यह भी यहाँ वर्तमान है ॥२३२॥

अन्यत्र भी जहाँ वैक्रियिककाययोग सम्भव हैं उनको बतलाते हैं—

बादर तैजस्कायिक, बादर वायुकायिक तथा संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य, भोगभूमिके तिर्यंच और मनुष्य अपने-अपने औदारिक शरीरको विक्रियारूप परिणमाते हैं। सभी ऐसा नहीं करते; किन्तु जिन जीवोंका औदारिक शरीर ही विक्रियारूप होता है, वे जीव अपृथक् विक्रिया करते हैं। भोगभूमिया और चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया करते हैं। अपने शरीरसे भिन्न अनेक शरीरादि बनाते हैं ॥२३३॥

आगे वैक्रियिक मिश्रकाययोगको कहते हैं—

उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणमप्प तत् आ वैगूर्व्विकशरीरमे वैक्रियिकशरीरमे मेणु । अपरिपूर्णं यन्नेवरमंतर्म्मुहूर्त्तमात्राऽपर्य्याप्तिकालपर्य्यंतं अपरिपूर्णं । शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्त्यभावदिंद वैक्रियिककाययोगजननासमर्थमन्नेवरं तु मत्ते औदारिककायमिश्रदंते मिश्रमेंदितु जानीहि अरि। तेन आ वैक्रियिकमिश्रकायदोडने यः संप्रयोगः आवुदोंदु कर्म्मनोकर्म्म आकर्षणशक्तिसंगतमप्पऽपर्य्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पंदरूपमप्पयोगं सः अदु वैक्रियिककायमिश्रयोगमक्कुमपर्य्याप्तयोगं मिश्रकाययोगमेंबुदर्त्थं ।

अनंतरमाहारकाययोगमं गाथापंचकदिंदं पेळ्दपं :—

आहारस्सुदयेण य पमत्तविरदस्स होदि आहारो ।
असंजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥

आहारस्योदयेन च प्रमत्तविरतस्य भवत्याहारमसंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशनार्थं च ॥

प्रमत्तविरतंगाहारशरीरनामकर्म्मोदयदिंद माहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गाहारकशरीररूपपरिणमनदिंदमाहारकशरीरमक्कुमदेनु निमित्तमक्कुमेंदोडे सार्द्धद्वीपद्वयवर्त्तितीर्थयात्रादिविहारदोळसंयमपरिहरणार्थं ऋद्धिप्राप्तनादोडं प्रमत्तसंयतंगे श्रुतज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशममांद्यमागुत्तिरलागळोम्मे धर्म्मध्यानविरोधियप्प श्रुतार्थसंदेहमक्कुमागळु तत्संदेहविनाशनार्थमुमाहारकशरीरमोगगुमेंबुदर्त्थं ।

उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदन्तर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तिकालपर्यन्तं अपरिपूर्णं शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावेन वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः औदारिककायमिश्रवन्मिश्रमिति जानीहि । तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह यः संप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसङ्गतापर्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पन्दरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगः अपर्याप्तयोगो मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥२३४॥ अथाहारककाययोगं गाथापञ्चकेनाह—

प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरनामकर्मोदयेन आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां आहारकशरीररूपपरिणमनेनाहारकशरीरं भवति तत् किमर्थं ? सार्धद्वीपद्वयवर्तितीर्थयात्रादिविहारे असंयमपरिहरणार्थं ऋद्धिप्राप्तस्यापि प्रमत्तसंयतस्य श्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशममांद्ये सति यदा धर्म्यध्यानविरोधी श्रुतार्थसन्देहः स्यात्तदा तत्सन्देहविनाशार्थं च आहारकशरीरमुत्तिष्ठतीत्यर्थः ॥२३५॥

जिसका लक्षण पहले कहा है, वह वैक्रियिक शरीर ही अन्तर्मुहूर्त मात्र अपर्याप्त काल तक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता न होनेसे वैक्रियिककाययोगको उत्पन्न करनेमें असमर्थ होता है। तब तक औदारिककाय मिश्रकी तरह उसे वैक्रियिक कायमिश्र जानो। उस वैक्रियिक कायमिश्रके साथ जो संप्रयोग अर्थात् कर्म-नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिको प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्माके प्रदेशोंका चलनरूप योग वैक्रियिक मिश्रकाय योग है। अर्थात् अपर्याप्तयोगका नाम मिश्रकाय योग है ॥२३४॥

आगे पाँच गाथाओंसे आहारककाययोगको कहते हैं—

प्रमत्तविरतके आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारवर्गणाके आये हुए पुद्गल स्कन्धोंको आहारक शरीररूप परिणमन करनेसे आहारक शरीर होता है। उसका प्रयोजन कहते हैं—अढ़ाई द्वीपके तीर्थोंकी यात्रा आदिके लिए विहार करना हो, तो असंयमसे बचनेके लिए ऋद्धिप्राप्त प्रमत्त संयत मुनिके आहारक शरीर होता है। अथवा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी मन्दता होनेपर जब धर्मध्यानका विरोधी शास्त्रके अर्थमें सन्देह

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुडि कल्लाणे ।
परखेत्ते संवित्ते जिण जिणघरवंदणट्ठं च ॥२३६॥

निजक्षेत्रे केवलियुगविरहे निष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे । परक्षेत्रे संवृत्ते जिनजिनगृहवंदनार्थं च ॥

निजक्षेत्रे स्ववृत्त्याधारदेशदोळु केवलियुगरहितमागि केवलिश्रुतकेवलिगळाभावमागि परक्षेत्रे औदारिकशरीरगमनागोचरमप्प दूरक्षेत्रदोळु केवलिश्रुतकेवलिगळ तीर्थकरपरिनिष्क्रमण- ५
प्रभृतित्रिकल्याणंगळ संवृत्ते वर्त्तमाने सति प्रवर्त्तिसुतंविरलुमसंयमपरिहरणार्थमुं संदेहविनाशार्थमुं जिनवंदनार्थं जिनगृहवंदनार्थं गंतुमुद्युक्तमप्प प्रमत्तसंयतंगाहारकशरीरमक्कुं ।

उत्तम अंगम्मि हवे धादुविहीणं सुहं असंघडणं ।
सुहसंठाणं धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥२३७॥

उत्तमांगे भवेद्धातुविहीनं शुभं असंहननं । शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदयं ॥ १०

तदा तदाहारकशरीरमें तुटें दोडे धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितमुं शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवंगळनुळ्ळुदुं । असंहननं रहितास्थिबंधनमुळ्ळुदुं शुभसंस्थानं शुभं प्रशस्तं समचतुरस्राख्यं संस्थानमंगोपांगविन्यासो यस्य तच्छुभसंस्थानं । धवलं चंद्रकांतनिर्म्मितदंतति विशदमुं । हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितमुं । प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिगळोळु

निजक्षेत्रे स्ववृत्त्याधारदेशे केवलियुगरहिते—केवलिश्रुतकेवलिद्वयाभावे, परक्षेत्रे औदारिकशरीरगमनागोचरे दूरक्षेत्रे केवलिश्रुतकेवलिद्वये तीर्थकरपरिनिष्क्रमणादिकल्याणत्रये च संवृत्ते वर्तमाने सति असंयमपरिहरणार्थं सन्देहविनाशनार्थं जिनजिनगृहवन्दनार्थं च गन्तुं समुद्युक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारकशरीरं भवति ॥२३६॥ १५

तदाहारकशरीरं कथंभूतं ? धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितं, शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवविशिष्टं, असंहननं—अस्थिबन्धनरहितं, शुभसंस्थानं—प्रशस्तसमचतुरस्रसंस्थानांगोपाङ्गविन्यासयुतं, धवलं—चन्द्रकान्तनिर्मितमिवातिविशदं, हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहाराङ्गुलप्रमितं प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिषु २०

होता है, तब उस सन्देहको दूर करनेके लिए ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयतके आहारक शरीर प्रकट होता है ॥२३५॥

निजक्षेत्र अर्थात् मुनिके अपने रहनेके देशमें केवली और श्रुतकेवली दोनोंका ही अभाव होनेपर तथा परक्षेत्र अर्थात् औदारिक शरीरसे जाना जहाँ सम्भव नहीं है, ऐसे २५
दूरवर्ती क्षेत्रमें केवली, श्रुतकेवलीके होनेपर या तीर्थंकरके तप आदि तीन कल्याणक होनेपर असंयमके परिहारके लिए, सन्देहको नष्ट करनेके लिए तथा जिनदेव और जिनालयोंकी वन्दनाके लिए जानेको उद्यत प्रमत्त संयतके आहारक शरीर होता है ॥२३६॥

वह आहारकशरीर रस आदि सात धातुओंसे रहित होता है, शुभ अर्थात् शुभ नामकर्मके उदयसे प्राप्त प्रशस्त अवयवोंसे विशिष्ट होता है, अस्थिबन्धनसे रहित होता है, प्रशस्त ३०
समचतुरस्र संस्थान सहित अंगोपांगकी रचनासे युक्त होता है, धवल अर्थात् चन्द्रकान्तमणिसे निर्मितकी तरह अत्यन्त स्वच्छ होता है, हस्त प्रमाण अर्थात् चौबीस व्यवहारांगुल परिमाणवाला होता है । प्रशस्तोदय अर्थात् अध्रुवोदयी प्रकृतियोंमें आहारकशरीर, आहारक-

---

१. आत्मांगुलमिति भावः ।

आहारकशरीरतदबंधनसंघाताहारकांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृतिगळुदयमनुळ्ळुदुमेंवविधमप्पाहारकशरीरमुत्तमांगदोळु भवेत् पुट्टुगु ।

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे ।
पज्जत्तीसंपुण्णे मरणंपि कदाचि संभवइ ॥२३८॥

अव्याघात्यंतमुंहूर्त्तकालस्थिति च जघन्येतरस्मिन् पर्याप्तिपरिपूर्णायां मरणमपि कदाचित् संभवति ॥

तदाहारकशरीरमन्यनिंदं तनगे तन्निंदमन्यंगे मेणु व्याघातरहितं बाधवर्ज्जितं अदु कारणमागिये वैक्रियिकशरीरदंते वज्रशिलादिनिर्भेदनसमर्थं जघन्योत्कृष्टदिंदमंतर्मुंहूर्त्तकालस्थितियनुळ्ळुदुं तच्छरीरपर्य्याप्तिपरिपूर्णमागुत्तंविरलु कदाचित्तच्छरीरर्द्धियुक्तमप्प प्रमत्तसंयतंगाहारककाययोगकालदोळे स्वायुःक्षयवशदिंदं मरणमुं संभविसुगुं ।

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारगो जोगो ॥२३९॥

आहारत्यनेन मुनिः सूक्ष्मानर्थान् स्वकस्य संदेहान् । गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥

आहारकर्द्धियुक्तनप्प प्रमत्तमुनीश्वरं तनगे प्रवचनपदार्थंगळोळु संशयमादुदादोडे तद्व्यवच्छेदार्थमागि ई आहारकशरीरदिंदं केवलिगळ श्रीपादपार्श्ववनेय्दि सूक्ष्मंगळप्पर्थंगळनाहारति गृह्णाति कळ्दुकों बनें दिताहारं आहारमें बुदक्कुं माहार एवाहारकं शरीरं यतः आवुदो दु कारणदिंद-

---

आहारकशरीरतद्बन्धनसङ्घाताङ्गोपाङ्गादिप्रशस्तप्रकृत्युदययुतं, एवंविधं आहारकशरीरं उत्तमाङ्गे भवेत् जायते ॥२३७॥

तदाहारकशरीरं परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा व्याघातरहितं बाधावर्जितं ततः कारणादेव वैक्रियिकशरीरवत् वज्रशिलादिनिर्भेदनसमर्थं जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तकालस्थितियुतं, तच्छरीरपर्याप्तिपरिपूर्णायां सत्यां कदाचिच्छरीरर्धियुक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारककाययोगकाले स्वायुःक्षयवशेन मरणमपि संभवति ॥२३८॥

यतः कारणात् आहारकर्धियुक्तः प्रमत्तमुनीश्वरः[2] स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु संशये जाते तद्व्यवच्छेदार्थं अनेनाहारकशरीरेण केवलिश्रीपादपार्श्वं गत्वा सूक्ष्मार्थान् आहरति गृह्णाति इत्याहारः, आहार एव आहारकं-

---

बन्धन, आहारक संघात, आहारक अंगोपांग आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके उदयसे सहित होता है । इस प्रकारका आहारक शरीर उत्तमांग मस्तकसे प्रकट होता है ॥२३७॥

वह आहारकशरीर परसे अपनी और अपनेसे परकी बाधासे रहित होता है; इसी कारणसे वैक्रियिक शरीरकी तरह वज्रशिला आदिमें-से निकलनेमें समर्थ है । उसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण होती है । आहारक शरीरपर्याप्ति परिपूर्ण होनेपर कदाचित् आहारक शरीरऋद्धिसे युक्त प्रमत्तसंयतकी आहारक काययोगके कालमें अपनी आयुका क्षय हो जानेसे मरण भी हो जाता है ॥२३८॥

जिस कारणसे आहारकऋद्धिसे युक्त प्रमत्त मुनीश्वर आगमिक पदार्थोंमें संशय होनेपर उसको दूर करनेके लिए इस आहारक शरीरके द्वारा केवलीके चरणोंके समीप जाकर सूक्ष्म अर्थोंको ग्रहण करता है, इसलिए आहार कहते हैं । आहार ही आहारक शरीर है ।

---

१. ब दिभि भेदेन । २. ब तस्य ।

मदुकारणदिंद शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्तियागुत्तिरलु आहारवर्गणेयिनाहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदमाहारककाययोगमें दितु ज्ञातव्यमक्कुं।

अनंतरमाहारककायमिश्रयोगमं पेळ्दपं :—

आहारय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सगो जोगो ॥२४०॥

आहारकोक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् । यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोग सः ॥

उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपमप्पुदावुदानुमोंदाहारकशरीरमे यन्नेवरमपर्य्याप्तकालांतर्मुहूर्त्तपर्य्यंतमपरिपूर्णमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधमनाहारकशरीराकारदिंदं परिणमिसलकसमर्थमन्नेवरं मिश्रमेंदु पेळल्पट्टुदु । तत् प्राक्काल भावियप्पौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वदिंद मंदरोडने वर्त्तमानमप्प यस्संप्रयोग अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदं स अदाहारककायमिश्रयोगमें दितु भणितमाय्तु । तु शब्दमीयर्थमन्नेले भव्य विजानीहि एंदिती विशेषमं पेळ्गुं ।

अनंतरं कार्म्मणकाययोगमं पेळ्दपं :—

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं तेण जो दु संजोगो ।
कम्मइयकायजोगो इगिविगतिगसमयकालेसु ॥२४१॥

कर्म्मैव च कर्म्मभवं कार्म्मणं तेन यस्तु संयोगः । कार्म्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयकालेषु ॥

शरीरं ततः कारणाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्यां आहारकवर्गणाभिः आहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कन्धाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पन्दः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यम् ॥२३९॥ अत्र तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

यत् उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं आहारकशरीरं तदेव यावदपर्याप्तकालान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपरिपूर्ण आहारकवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् आहारकशरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते । तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः—अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दः स आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते । तु शब्दः इममर्थं हे भव्य ! त्वं जानीहि इति विशेषं कथयति ॥२४०॥ अथ कार्मणकाययोगमाह—

तिस कारणसे शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता होनेपर आहार वर्गणाओंके द्वारा आहारक शरीरके योग्य पुद्गलस्कन्धोंको ग्रहण करनेकी शक्तिसे विशिष्ट आत्माके प्रदेशोंका चलन आहारकाय योग जानना ॥२३९॥

जिसका स्वरूप ऊपर कहा है, वह आहारक शरीर ही जब अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अपर्याप्तकालमें अपरिपूर्ण होता है अर्थात् आहारवर्गणाके गृहीत पुद्गल स्कन्धोंको आहारक शरीरके आकार रूपसे परिणमानेमें असमर्थ होता है, तब तक उसे आहारक मिश्र कहते हैं। उससे पहले होनेवाली औदारिक शरीर वर्गणासे मिला होनेसे उनके साथ जो संप्रयोग अर्थात् अपरिपूर्ण शक्तिसे युक्त आत्माके प्रदेशोंका चलन है, उसे आहारकमिश्रयोग कहते हैं। 'तु' शब्द 'हे भव्य ! इस अर्थको तुम जानो' यह विशेष कथन करता है ॥२४०॥

आगे कार्मणकाय योगको कहते हैं—

---

१. क °स्सजोगो सो । २. म मिवरो° । ३. म कालम्मि ।

कर्म्मैव अष्टविधकर्म्मस्कंधमे कार्म्मणं कार्म्मणमप्प शरीरं अथवा कर्म्मभवं कार्म्मणशरीरनामकर्म्मोदयदोळादुदु कार्म्मणम्। तेन आ कार्म्मणस्कंधदोडने प्रवर्त्तमानमप्प यः संयोगः आत्मन कर्म्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपमप्प योगः सः अदा कार्म्मणकाययोगमें दुक्तमाप्तु। आ कार्म्मणकाययोगमुमेकद्वित्रिसमयविशिष्टंगळप्प विग्रहगतिकालंगळोळु केवलिसमुद्घात संबंधिगळप्प प्रतरद्वयलोकपूरणसमयत्रयदोळं प्रवर्त्तिसुगुमुळिद कालदोळिल्लें दितु विभागं तु शब्ददिदं सूचितमक्कुमिदरिंदं शेषयोगंगळगे अव्याघातविषयदोळंतर्म्मुहूर्त्तमप्पकालमुं व्याघातविषयदोळेकसमयादियथासंभवांतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमप्प कालमेकजीवं प्रति भणितमक्कुं। नानाजीवापेक्षेयिंदं उवसमसुहुमेत्यादि सांतरमार्गणाष्टकमं वर्ज्जिसि शेषनिरंतरमार्गणेगळगे सर्व्वकालमें दितु विशेषमरियल्पडुगुं।

अनंतर योगप्रवृत्तिप्रकारमं पेळ्दपं।

वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्मि।
जोगो वि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥२४२॥

वैक्रियिकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते। योगोप्येककाले एक एव च भवति नियमेन॥

कर्मैव—अष्टविधकर्मस्कन्ध एव, कार्मणं—कार्मणशरीरं, अथवा कर्मभवं—कार्मणशरीरनामकर्मोदयजातं तत् कार्मणं तेन कार्मणस्कन्धेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसङ्गतप्रदेशपरिस्पन्दरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते। स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसम्बन्धिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तुशब्देन सूच्यते। अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अन्तर्मुहूर्तकालो व्याघातविषये एकसमयादि यथासंभवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तकालश्च एकजीवं प्रति भणितो भवति। नानाजीवापेक्षया उवसमसुहुमेत्याद्यष्टसान्तरमार्गणावर्जितशेषनिरन्तरमार्गणानां सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥२४१॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकारमाह—

कर्म ही अर्थात् आठ प्रकारके कर्मोंका स्कन्ध ही, कार्मण अर्थात् कार्मण शरीर है। अथवा कर्मभव अर्थात् कार्मणशरीरनामकर्मके उदयसे जो उत्पन्न हुआ, वह कार्मण है। उस कार्मणस्कन्धके साथ वर्तमान जो सम्प्रयोग अर्थात् आत्माके कर्मोंको आकर्षण करनेकी शक्तिसे संयुक्त प्रदेशोंका परिस्पन्दरूप योग है, वह कार्मणकाय योग कहा जाता है। वह कार्मणकाययोग एक-दो या तीन समयवाली विग्रहगतिके कालमें और केवलीसमुद्घात सम्बन्धी दो प्रतर और लोकपूरणके तीन समयोंमें होता है; शेष कालमें नहीं होता। यह विभाग 'तु' शब्दसे सूचित होता है। इससे शेष योग यदि कोई व्याघात न हो, तो अन्तर्मुहूर्त काल तक और यदि व्याघात हो, तो एक समयसे लेकर यथासम्भव अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त एक जीवकी अपेक्षा होते हैं, यह कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा 'उवसमसुहुमाहारे' इत्यादि गाथामें कही आठ सान्तर मार्गणाओंको छोड़ शेष निरन्तर मार्गणाका सर्वकाल कहा है सो ही जानना ॥२४१॥

आगे योगोंकी प्रवृत्तिका प्रकार कहते हैं—

१. म व्याघातं ।

प्रमत्तविरतरोळु वैक्रियिकयोगक्रियेयुमाहारकयोगक्रियेयुं युगपत्संभविसुववल्लवु आगळोम्मेयाहारकयोगमवलंबिसि प्रमत्तसंयतंगे गमनादिक्रिये प्रवर्त्तिसुगुमागळु विक्रियर्द्धिबलदिंदं वैक्रियिकयोगमवलंबिसि प्रमत्तसंयतनोळु वैक्रियिकक्रिये घटिसदेकेंदोडे आहारकर्द्धिविक्रियर्द्धियुक्तरोळु युगपद्वृत्तिविरोधमप्पुदरिंदमिर्वरिवं गणधरादिगळ्गमितरर्द्धि युगपद्वृत्तिसंभवं सूचिसल्पट्टुदंत । योगोपि योगमु मोदे कालदोळु स्वयोग्यांतर्मुहूर्त्तदोळेकयोगमे नियमदिंदमक्कुमेरडुं मूरुं मेणु योगंगळेकजीवनोळ्संभविसवु ।

अंतागुत्तिरलेकयोगकालदोळन्ययोगकार्य्यंगळप्प गमनादिक्रियेगळ्गे संभवमेंबुदतिक्रांतयोगसंस्कारजनितं विरोधिसल्पडदेंतेंदोडे कुलालदंडप्रयोगाऽभावदोळं तत्संस्कारबलदिंदं चक्रभ्रमणदंते संस्कारक्षयदोळु बाणपतनदंते क्रियावृत्ति काणल्पडुगुमदु कारणदिंदमे संस्कारवशदिंदं युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगमागुत्तिरलु प्रमत्तविरतनोळु वैक्रियिकाहारकशरीरक्रियेगळ्गे युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधमाचार्य्यनिंदं प्ररूपितमाय्तु ।

अनंतर योगरहितात्मस्वरूपमं पेळ्दपं ।

प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च द्वे युगपन्न संभवतः । तद्यथा—कदाचिदाहारकयोगमवलम्ब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते, तदा विक्रियर्द्धिबलेन वैक्रियिकयोगमवलम्ब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते; आहारकर्द्धिविक्रियर्द्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनां इतरर्द्धियुगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः । तथा योगोऽपि एककाले स्वयोग्यान्तर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति । द्वौ त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न संभवन्ति । तथा सति एकयोगकाले अन्ययोगकार्यरूपगमनादिक्रियाणां संभवो नामातिक्रान्तयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते । कुलालदण्डप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत् संस्कारक्षये बाणपतनवत्क्रियानिवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेकक्रियावृत्तिप्रसङ्गे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितो जातः ॥२४२॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति—

प्रमत्तविरतमें वैक्रियिकयोगक्रिया और आहारकयोगक्रिया ये दोनों एक साथ नहीं होतीं । जब आहारकयोगका अवलम्बन लेकर प्रमत्तसंयतके गमन आदि क्रिया होती है, तब विक्रिया ऋद्धिके बलसे वैक्रियिक योगका अवलम्बन लेकर वैक्रियिक क्रिया नहीं होती । क्योंकि उसके आहारकऋद्धि और विक्रियाऋद्धि दोनोंके एक साथ होनेमें विरोध है । इससे गणधर आदिके अन्य ऋद्धियोंका एक साथ रहना सूचित किया है । तथा योग भी एक कालमें अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे एक ही होता है । दो या तीन योग एक जीवमें एक साथ नहीं होते । ऐसा होनेपर एक योगके कालमें अन्य योगका कार्यरूप गमन आदि क्रियाके होनेमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जो योग चला गया; उसके संस्कारसे एक योगके कालमें अन्य योगकी क्रिया होती है । जैसे कुम्हार दण्डके प्रयोगसे चाकको घुमाता है । पीछे दण्डका प्रयोग नहीं करनेपर भी संस्कारके बलसे चाक घूमता रहता है । या धनुषसे छूटनेपर बाण जबतक उसमें पूर्व संस्कार रहता है, तबतक जाता है; पीछे संस्कार नष्ट हो जानेसे गिर जाता है । इस प्रकार संस्कारके वश एक साथ अनेक योगोंकी क्रियाके होनेका प्रसंग उपस्थित होनेपर प्रमत्तविरतमें वैक्रियिक और आहारक शरीरकी क्रियाओंके एक साथ होनेका निषेध आचार्यने किया है । अर्थात् ये दोनों क्रिया प्रमत्तविरतके संस्कारवश भी एक साथ नहीं होतीं ॥२४२॥

आगे योगरहित आत्माका स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °गलनरकजीव° ।

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥२४३॥

येषां न संति योगाः शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः । ते भवंत्ययोगिजिना अनुपमानंतबलकलिताः ॥

येषामात्मनां आक्कें कलंबरात्मग्गें पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्म्मबंधहेतुगळप्प शुभाशुभयोगाः कायवाग्मनःकर्म्मलक्षणंगळप्प शुभाशुभयोगंगळु न संति ते आत्मानः इल्लदिर्प्पा जीवंगळु अयोगिजिनाः चरमगुणस्थानवर्त्तिगळप्प अयोगिकेवलिगळुं । तदनंतरगुणस्थानातीतसिद्धपर्य्यायपरिणतरुगळुं भवंति विद्यंते ओळरु । इल्लि योगा भावमागुत्तिरलु अयोगिकेवल्यादिगळगें बलाभावं प्रसंगिसल्पडुगुमेकें दोडे अस्मदादिगळोळु बलक्के योगाश्रितत्वदर्शनादिदमें दिताशंकिसि इदु पेळल्पट्टुदु । अनुपमानंतबलकलिताः अनुपममस्मदाद्युपमातिक्रांतमनंतमक्षयानंताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्य्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्त्ति सकलद्रव्यगुणपर्य्यायुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन कलिताः व्याप्तास्तत्स्वभावपरिणता इत्यनंतबलकलिताः एंदितु योगाश्रितमप्पबलं प्रतिनियतविषयमप्पुदु । परमात्मनबलं केवलज्ञानादियंते आत्मस्वभावत्वदिंदमप्रतिनियतविषयमप्पुदरिनंनंतबलकलितमुमनुपममुमें बुदु भावार्थं ।

अनंतरं शरीरक्कें कर्म्मनोकर्म्मविभागमं पेळ्दपं ।

येषामात्मनां पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मबन्धहेतवः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणाः शुभाशुभयोगाः न सन्ति ते आत्मानः अयोगिजिनाः चरमगुणस्थानवर्त्ययोगिकेवलिनः तदनन्तरगुणस्थानातीतसिद्धपर्यायपरिणताश्च भवन्ति विद्यन्ते । अत्र योगाभावे सति अयोगिकेवल्यादीनां बलाभावः प्रसज्यते, अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनात् इत्याशङ्क्य इदमुच्यते अनुपमानन्तबलकलिताः—अनुपमं अस्मदाद्युपमातिक्रान्तं, अनन्तं अक्षयानन्ताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन कलिताः व्याप्ताः तत्स्वभावपरिणताः इत्यनन्तबलकलिताः इत्येवं योगाश्रितबलं प्रतिनियतविषयं भवेत्, परमात्मनो बलं केवलज्ञानादिवदात्मस्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयमित्यनन्तबलकलिता इति भावार्थः ॥२४३॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं कथयति—

जिन आत्माओंके पुण्य-पाप रूप प्रशस्त और अप्रशस्त कर्मबन्धके कारण मन-वचन-कायकी क्रियारूप शुभ और अशुभ योग नहीं हैं, वे आत्मा चरम गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली और उसके अनन्तर गुणस्थानोंसे रहित सिद्धपर्यायरूप परिणत मुक्त जीव होते हैं । योगका अभाव होनेसे अयोगिकेवली आदिमें बलका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि हम लोगोंमें बल योगके आधारपर ही देखा जाता है । ऐसी आशंका करके कहते हैं—'अनुपमानन्तबलकलिताः ।' अनुपम अर्थात् हमारे जैसे लोगोंकी उपमाको अतिक्रान्त करनेवाले, अनन्त अर्थात् अक्षयानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंसे सम्पूर्ण, बल अर्थात् त्रिकालके लोक-अलोकवर्ती समस्त द्रव्य, गुणपर्यायको एक साथ ग्रहण करनेकी सामर्थ्य, उससे कलित अर्थात् तत्स्वभावपरिणत अयोगी होते हैं । इस प्रकार योगके आधारसे जो बल होता है, वह तो प्रतिनियत विषयवाला ही होता है । परमात्माका बल केवलज्ञान आदिकी तरह आत्माका स्वभाव होनेसे अप्रतिनियत विषयवाला होता है । यह 'अनन्तबलकलिता' का भावार्थ है ॥२४३॥

आगे शरीरोंमें कर्म-नोकर्मका विभाग कहते हैं—

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजणामकम्मुदए ।
चउणोकम्मसरीरा कम्मेव य होदि कम्मइयं ॥२४४॥

औदारिकवैक्रियिकाहारक तैजसनामकर्म्मोदये । चतुर्न्नोकर्म्मशरीराणि कर्म्मैव च भवति कार्म्मणं ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्म्मोदयमागुत्तिरलु यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसंगळ्नालकुं नोकर्म्मशरीरंगळप्पुवु । अकर्म्मशरीराणि ईषत्कर्म्मशरीराणीति वा नो कर्म्मशरीराणि एंदितु नो शब्दके विवक्षितकर्म्मविपर्य्ययदोळं इषदर्त्थदोळं वृत्तिसंभवं नो इंद्रियादिगेतरियल्पडुगुं । कर्म्मशरीरकें तंते आत्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वभावदिंदं कर्म्मविपर्य्ययत्वमुं कर्म्मशरीरसहकारित्वदिंदमीषत्कर्मशरीरत्वमुमेंदितु नोकर्म्मशरीरत्वं युक्तमक्कुं । कर्म्मैव कर्म्मणि भवं वा कार्म्मणमेंदितु कार्म्मणशरीरनामकर्म्मक्कुदयमागुत्तिरलु कार्म्मणशरीरमक्कुं । मेकें दोडे ज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्म्मणस्कंधसमूहवल्लदन्यकार्म्मणशरीरक्कं परमागमदोळ् पेळ्दकेयिल्लप्पुदरिदं ।

अनंतरमौदारिकादिशरीरंगळगे समयप्रबद्धादिसंख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं ।

परमाणूहि अणंतहि वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहि अणंतहि णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥२४५॥

परमाणुभिरनंतैर्व्वर्ग्गणासंज्ञा खलु भवत्येका खलु । ताभिरनंतैर्न्नियमात्समयप्रबद्धो भवेदेकः ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मोदये सति यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसनामानि चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवन्ति । नोशब्दस्य विपर्यये ईषदर्थे च वृत्तेः । तेषां शरीराणां कर्मवदात्मगुणघातित्वगत्यादिपारतन्त्र्यहेतुत्वाभावेन कर्मविपर्ययत्वात् कर्मसहकारित्वेन ईषत्कर्मत्वाच्च नोकर्मशरीरत्वसंभवात् । कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मोदयसञ्जातज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कन्धसमूह एव कार्मणशरीरं भवति तदन्यस्य परमागमे कार्मणशरीरत्वेन कथनाभावात् ॥ २४४ ॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धादिसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस शरीर नाम कर्मका उदय होनेपर क्रमसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस नामक चार नोकर्म शरीर होते हैं। 'नो' शब्द विपरीत अर्थमें और ईषद् अर्थमें प्रवृत्त होता है। वे शरीर कर्मकी तरह आत्माके गुणोंके घाती नहीं हैं, न गति आदिकी तरह परतन्त्रताके हेतु हैं। अतः कर्मसे विपरीत होनेसे तथा कर्मोंके सहायक होनेसे और ईषत्कर्म होनेसे शरीरोंको नोकर्म कहा है। तथा कार्मण शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कार्मणस्कन्धका समूह ही कार्मण शरीर होता है। परमागममें इससे अन्य कार्मणशरीरका कथन नहीं किया है ॥२४४॥

आगे औदारिक आदि शरीरोंके समयप्रबद्ध आदिकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म °कर्मदुदय° । २. ब सम्पादित ।

अनंतैः द्विकवारानंतमध्यपतितसिद्धानंतैकभागमात्रमुमभव्यराशियं नोडलनंतगुणप्रमाणंगळप्प परमाणुगळिंदमो दु वर्गणेयें बुदक्कुं। खलु स्फुटं संख्यातपरमाणुगळिंदमु मेणसंख्यातपरमाणुगळिंदं वर्गणेयें बुदल्तु। मत्तदं तें दोडे अनंतपरमाणुगळिंदमे वर्गणेयें बुदु निश्चयिसल्पडुगुमेंदुमर्थं। पुद्गलद्रव्यक्के संख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणासद्भावमादोडमिल्लियौदारिकादिशरीरप्रकरणदोळौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणवर्गणेगळगेये ग्रहणमक्कुं। सिद्धानंतभागमुमभव्यानंतगुणप्रमितंगळुमप्पा वर्गणेगळनंतानंतंगळिंदं नियमदिंदमो दु समयप्रबद्धमक्कुं। समये समये समयेन वा प्रबध्यते स्म—कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः सः समयप्रबद्धः एंदितु निरुक्तिसिद्धमक्कुं।

आत्मन मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामंगळिंदं प्रतिसमयं कर्म्मनोकर्म्मरूपतेयिंदं परिणमिसुतिर्प्प तत्तद्योग्यपुद्गलस्कंधं समयप्रबद्धमेंदितु स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धमप्पुदरिनरियल्पडुगुं। नियमशब्दिंदं वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थंगळेरडु मो प्रकारदिंदं पेळल्पट्ट स्वरूपमनुळ्ळवु स्याद्वादिगळगेये गोचरंगळप्पुदिं सर्व्वथैकांतवादिगळगे गोचरंगळल्लवुमें बी विभागं व्यवस्थापिसल्पट्टुदु।

अनन्तैः द्विकवारानन्तमध्यपतितसिद्धानन्तैकभागमात्राभव्यराश्यनन्तगुणप्रमाणैरेव परमाणुभिरेका वर्गणा भवति खलु स्फुटं, न संख्यातैर्वा असंख्यातैर्वा परमाणुभिरित्यर्थः। यद्यपि पुद्गलद्रव्यस्याणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कन्धरूपवर्गणाः सन्ति तथाप्यत्रौदारिकादिशरीरप्रकरणे औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात्। ताभिश्च सिद्धानन्तैकभागाभव्यराश्यनन्तगुणप्रमितानन्तवर्गणाभिर्नियमेनैकः समयप्रबद्धो भवति। समये समयेन वा प्रबध्यते स्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना सम्बध्यते स्म यः पुद्गलस्कन्धः स समयप्रबद्ध इति निर्वचनात्। आत्मनो मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानः तद्योग्यपुद्गलस्कन्धः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धान्तप्रसिद्धो बोद्धव्यः। नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ द्वावप्येवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ, न सर्वथैकान्तवादिनामित्ययं विभागो व्यवस्थापितः (व्यवस्थाप्यते) ॥२४५॥

अनन्त अर्थात् अनन्तानन्तके मध्यमें पतित सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्य राशिसे अनन्तगुणे परमाणुओंकी एक वर्गणा होती है, संख्यात या असंख्यात परमाणुओंकी एक वर्गणा नहीं होती। यद्यपि पुद्गल द्रव्यकी अणुवर्गणा, संख्यात परमाणुरूप असंख्यात-परमाणुस्कन्धरूप वर्गणा भी होती है। तथापि इस औदारिक शरीरके प्रकरणमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण वर्गणाका ही ग्रहण किया है। और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग तथा अभव्यराशिसे अनन्तगुणी वर्गणाओंका नियमसे एक समयप्रबद्ध होता है। समयमें या समयसे जो पुद्गल स्कन्ध कर्म-नोकर्म रूपसे आत्मासे सम्बद्ध होता है, वह समय प्रबद्ध है;ऐसी व्युत्पत्ति है। आत्माके मिथ्यादर्शन आदि संक्लेश परिणामोंसे प्रतिसमय कर्म-नोकर्म रूपसे परिणमन करनेवाला उसके योग्य पुद्गल स्कन्ध समयप्रबद्ध है। यह प्रसिद्ध स्याद्वाद सिद्धान्त जानना। 'नियम'शब्दसे यह व्यवस्थापित किया है कि वर्गणा और समयप्रबद्ध शब्दोंका जो स्वरूप ऊपर कहा है, वह स्याद्वादियोंके ही यहाँ है, एकान्तवादियोंके यहाँ नहीं है ॥२४५॥

---

१. म °रंगलिदं।

ताणं समयपबद्धा सेडियसंखेज्जभागगुणिदक्कमा ।
णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहुमं खु ॥२४६॥

तेषां समयप्रबद्धाः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः । अनंतेन च तेजोद्विकं परं परं भवति सूक्ष्मं खलु ॥

तेषां समयप्रबद्धाः तदौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणशरीरंगळ संबंधिगळप्प समयप्रबद्धंगळु सर्व्वमुं परस्परं सदृशंगळल्तु । मत्तं तप्पुवें दोडे उत्तरोत्तरमधिकपरमाणु संख्येयनुळ्ळुवु । अदें तें दोडे सर्व्वतः स्तोकमौदारिकसमयप्रबद्धमनदं नोडलु श्रेण्यसंख्यातैकभागगुणितपरमाणुप्रमितं वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धं स ā इदं नोडलु श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितमाहारकशरीरसमयप्रबद्धं स ā ā श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः एंदिवरिंदमाहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्य्यंतमे विवक्षितमप्पुदरिंदमतः परमाहारकशरीरसमयप्रबद्धमं नोडे तैजसशरीरसमयप्रबद्धमनंतगुणमक्कुम स ā ā ख मिदं नोडे कार्म्मणशरीर समयप्रबद्धमनंतगुणपरमाणुप्रमितमक्कु स ā ā ख । ख । मेकें दोडे अनंतेन च तैजसद्विकमेंदिवरिंदमाहारकशरीर समयप्रबद्धदत्तणिंद मुंदे तैजसकार्मणशरीर समयप्रबद्धंगळनंतानंतगुणत्वकथनमुंटप्पुदरिंदं च शब्दिंदिदं प्रत्येकसमुच्चयं सूचिसल्पट्टुदु । एत्तलानुमितादोडे वैक्रियिकादिशरीरंगळ्गे उत्तरोत्तरं प्रदेशा-

---

तेषां औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणां सम्बन्धिनः समयप्रबद्धाः सर्वेऽपि न परस्परं सदृशाः किन्तु उत्तरोत्तरेऽधिकपरमाणुसंख्याविशिष्टा भवन्ति । तद्यथा—सर्वतः स्तोकः औदारिकसमयप्रबद्धः । औ स । ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः । वै स ā । ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः । आ स ā ā । श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यन्तमेव विवक्षितत्वात् । तेन परं तदाहारकशरीरसमयप्रबद्धादग्रे तैजसशरीरसमयप्रबद्धोऽनन्तगुणपरमाणुप्रमितः । तै स ā ā ख । ततः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धोऽनन्तगुणपरमाणुप्रमितः । का स ā ā ख ख । अनन्तेन च तैजसद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात् परं तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्ध-

---

उन औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीरोंके समयप्रबद्ध सब परस्परमें समान नहीं हैं, किन्तु उत्तरोत्तर अधिक परमाणुओंकी संख्याको लिये हुए हैं । सबसे कम औदारिकके समयप्रबद्ध हैं । उससे श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणित परमाणु प्रमाण वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्ध हैं । उससे श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणित परमाणु प्रमाण आहारकके समयप्रबद्ध हैं । श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणितका क्रम आहारक शरीरके समयप्रबद्ध तक ही विवक्षित है । आहारकशरीरके समयप्रबद्धसे आगे तैजसशरीरके समयप्रबद्ध अनन्तगुणे परमाणु प्रमाण हैं । उससे कार्मण शरीरके समयप्रबद्ध अनन्तगुणे परमाणु प्रमाण हैं । 'णं तेण य तेजदुगा' इससे आहारक शरीरके समय प्रबद्धसे आगे तैजस और कार्मण शरीरके समयप्रबद्धोंको अनन्तगुणा-अनन्तगुणा कहा है । 'च' शब्दसे प्रत्येकके समुच्चयको सूचित किया है । यदि इनके समयप्रबद्ध उत्तरोत्तर अधिक हैं, तो वैक्रियिक

धिक्यदिंदं स्थूलत्वं प्रसंगिसल्पडुगुमेंदिताशंकिसि परं परं सूक्ष्मं भवति खलु परं परं सूक्ष्ममक्कुमेंदितु पेळल्पट्टुदु। एत्तलानुं वैक्रियिकादि उत्तरोत्तरशरीरंगळ्गे बहुपरमाणु संचयत्वमंतादोडं बंधपरिणतिविशेषदिंदं सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवमक्कुं। एंतेनलकार्प्पासपिंडायःपिंडंगळंते विरोधिसल्पडवु। खु खलु इंतु निश्चयिसल्पडुगुं।

अनंतरमौदारिकादिशरीरंगळ समयप्रबद्धवर्गणावगाहनभेदमं पेळ्दपं :—

ओगाहणाणि ताणं समयपबद्धाण वग्गणाणं च।
अंगुलअसंखभागा उवरुवरिमसंखगुणहीणा ॥२४७॥

अवगाहनानि तेषां समयप्रबद्धानां वर्गणानां च। अंगुलासंख्यभागानि उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि ॥

मुंपेळल्पट्टौदारिकादि शरीरंगळ संबंधिसमयप्रबद्धंगळतद्वर्गणेगळ अवगाहनंगळु घनांगुलासंख्यातैकभागप्रमितंगळागुत्तं मेले मेलसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवदें तेंदोडौदारिकशरीरसमयप्रबद्धदवगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभाजितघनांगुल प्रमितमक्कुं। औ स ६ तद्वर्गणाव-
२
अ

गाहनक्षेत्रप्रमाण मुमदे मत्तं सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तैकभागप्रमाणमक्कु-। औ व ६ मितें
२ २
अ अ

योरनन्तानन्तगुणत्वकथनात्। चशब्देन प्रत्येकसमुच्चयः सूचितः। यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणां उत्तरोत्तरं प्रदेशाधिक्येन स्थूलत्वं प्रसज्यते इत्याशङ्क्य परं परं सूक्ष्मं भवतीत्युक्तम्। यद्यपि वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसञ्चयत्वं तथापि बन्धपरिणतिविशेषेण सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवः कार्पासपिण्ड-अयःपिण्डवन्न विरुध्यते खल्विति निश्चेतव्यम् ॥२४६॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदानाह—

तेषामौदारिकादिशरीराणां सम्बन्धिनां समयप्रबद्धानां तत्तद्वर्गणानां च अवगाहनानि घनाङ्गुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुणहीनानि भवन्ति। तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यङ्गुलासंख्येयभागभक्तघनाङ्गुलप्रमितम्। औ स ६। तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं, तदेव पुनरपि सूच्यङ्गुलासंख्येय-
अ

आदि शरीरोंके उत्तरोत्तर अधिक प्रदेश होनेसे स्थूलता प्राप्त होती है। ऐसी आशंका करके 'परं परं सूक्ष्मं' कहा है। यद्यपि वैक्रियिक आदि उत्तरोत्तर शरीर बहुत परमाणुओंके संचयको लिये हुए हैं, तथापि बन्धपरिणतिकी विशेषतासे कपासके पिण्ड और लोहेके पिण्डकी तरह सूक्ष्म-सूक्ष्म अवगाहन होनेमें कोई विरोध नहीं है; यह निश्चय करना चाहिए ॥२४६॥

आगे औदारिक आदि शरीरोंके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनामें भेद कहते हैं—

उन औदारिक आदि शरीर सम्बन्धी समयप्रबद्धोंकी और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और ऊपर-ऊपर असंख्यात गुणी हीन है। जो इस प्रकार है—औदारिक शरीरके समय प्रबद्धका अवगाहन क्षेत्र सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुल प्रमाण है। और उसकी वर्गणाका अवगाहन क्षेत्र उसमें पुनः

---

१. म मुमदने सूं ।

वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तर शरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहंगळेरडुगळुं पूर्व्वपूर्व्वतदवगाहनद्वयक्षेत्रंगळं नोडलु सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्राऽसंख्येय गुणहीनंगळागुत्तं पोपवु। वै स $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$ ६। तद्वर्गणावगाह

$\frac{२}{\text{अ अ}}$

६ आहा। स $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$। ६ तद्वर्ग ६ तै स $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$ ख ६

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २

अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ

तद्वर्ग ६ का। स। $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$ ख ख ६। तद्वर्गणावगाह ६ ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २

अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ

यीयर्त्थमने श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरु विशदं माडिदपरु। ५

तस्समयबद्धवग्गण ओगाहो सूइअंगुलासंख।
भागहिदघिंद अंगुलमुवरुवरिं तेण भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयप्रबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्येयभागहृतघनांगुलमुपर्य्युपरि तेन भजितक्रमाः ॥

आ समयप्रबद्धवर्गणावगाहंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागहृतघनांगुलमात्रंगळु। मेले आ

भागभक्तं घनाङ्गुलप्रमितम्। औ व ६। एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि १०
$\frac{२}{\text{अ अ}}$

पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रासंख्येयगुणहीने गच्छतः।

वै स $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$। ६ २ २ अ अ	व। ६ २ २ २ अ अ अ	आ। स। $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$। ६ २ २ २ अ अ अ	व। ६ २ २ २ २ अ अ अ अ	तै स। $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$ ख। ६ २ २ २ २ अ अ अ अ
व। ६ २ २ २ २ २ अ अ अ अ अ	का। स। $\frac{\text{अ}}{\text{अ अ}}$ ख ख ६। २ २ २ २ २ अ अ अ अ अ	व। ६ २ २ २ २ २ २ अ अ अ अ अ अ	॥२४७॥ अमुमेवार्थं श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयन्ति—	१५

पूर्वोक्तौदारिकादिशरीरसम्बन्धिसमयप्रबद्धतद्वर्गणानामवगाहनानि घनाङ्गुलासंख्येयभागप्रमितान्यपि उपर्युपर्यसंख्यातगुणहीनक्रमाणि भवन्ति। तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यङ्गुलासंख्येय-

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दो, उतना है। इस प्रकार वैक्रियिक आदि उत्तरोत्तर शरीरोंके समयप्रबद्ध और वर्गणाके अवगाहन क्षेत्र दोनों भी पूर्व-पूर्व अपने क्षेत्रोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात गुणा हीन होते हैं। अर्थात् वैक्रियिकसे आहारककी, आहारकसे तैजसकी, तैजससे कार्मणकी समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना असंख्यात गुणी असंख्यातगुणी क्रमसे घटती हुई जानना ॥२४७॥ २०

इसी बातको आगे माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव भी कहते हैं—

पूर्वोक्त औदारिक आदि शरीर सम्बन्धी समयप्रबद्ध और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी ऊपर-ऊपर क्रमसे असंख्यात २५

सूच्यंगुलासंख्येयभागर्दिदं भक्तप्रमाणंगळप्पुवु ।

अनंतरं विस्रसोपचयस्वरूपमं पेळ्वपं ।

जीवादोणंतगुणा पडिपरमाणुम्मि विस्ससोपचया ।
जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडि समाणा हु ॥२४९॥

जीवादनंतगुणा प्रतिपरमाणु विस्रसोपचयाः । जीवेन च समवेताः एकैकं प्रति समानाः खलु ॥

जीवराशियं नोडलुमनंतानंतगुणितमप्प विस्रसोपचयंगळुमुंपेळ्दौदारिकादि कर्म्मनोकर्म्म परमाणुगळोंदोंदरोळेकैकं प्रति समानसंख्यावच्छिन्नंगळु जीवप्रदेशंगळोडने समवेताः संबद्धाः संयुतंगळप्पुवु विस्रसा स्वभावेनैवात्मपरिणामनिरपेक्षतयैवोपचीयंते । तत्तत्कर्मनोकर्म्मपरमाणु-

भागभाजितघनाङ्गुलप्रमितं औ स ६ तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तस्यैव सूच्यङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणम् । तद्व ६ एवं
२ २ २
अ अ

वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणामपि समयप्रबद्धतद्वर्गणावगाहौ पूर्वपूर्वतदवगाहनक्षेत्राभ्यां सूच्यङ्गुलासंख्येयभाग-गुणहीनौ गच्छतः ।

वै । स $\bar{अ}$ ६	तद्व ६	आ । स $\bar{अ}$ । $\bar{अ}$ । ६	तद्व ६	तै । स $\bar{अ}$ । $\bar{अ}$ ख ६
२ । २	२ । २ २	२ । २ २	२ । २ । २ २	२ । २ । २ २
अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ अ	अ अ अ अ

तद्व ६	का । स $\bar{अ}$ $\bar{अ}$ ख ख ६	तद्व ६	॥२४८॥ अथ विस्रसोपचय - स्वरूपं प्ररूपयति—
२ । २ । २ । २ २	२ । २ । २ । २ २	२ । २ । २ । २ । २ २	
अ अ अ अ अ	अ अ अ अ अ	अ अ अ अ अ अ	

जीवराशितोऽनन्तानन्तगुणितविस्रसोपचयाः पूर्वोक्तौदारिकादिकर्मनोकर्मपरमाणुषु एकैकं प्रति समान-संख्यावच्छिन्नाः जीवप्रदेशैः सह समवेताः संबद्धाः संयुक्ताः सन्ति । विस्रसा स्वभावेनैव आत्मपरिणामनिरपेक्ष-तयैव उपचीयन्ते—तत्तत्कर्मनोकर्मपरमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कन्धतां प्रतिपद्यन्ते इति विस्रसोपचयाः कर्मनोकर्म-

---

गुणा हीन होती है। वही कहते हैं—औदारिक शरीरके समयप्रबद्धका अवगाहन क्षेत्र सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुल प्रमाण है। और उसकी वर्गणाका अवगाहन क्षेत्र उसके भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिक आदि उत्तरो-
२० त्तर शरीरोंके भी समयप्रबद्ध और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना पूर्व-पूर्व अवगाहन क्षेत्रसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणा हीन होती हैं।

विशेषार्थ—वैक्रियिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनाको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर औदारिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना होती है। और औदारिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनाको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका
२५ भाग देनेपर वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना होती है। ऐसे ही सर्वत्र जानना ॥२४८॥

आगे विस्रसोपचयका स्वरूप कहते हैं—

जीवराशिसे अनन्तानन्तगुणे विस्रसोपचय पूर्वोक्त औदारिक आदि कर्म और नोकर्मके परमाणुओंमें एक-एकके प्रति समान संख्याको लिये हुए जीवके प्रदेशोंके साथ सम्बद्ध हैं।

स्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यंते इति विस्रसोपचयाः एंबी निरुक्तिलक्षणसिद्धत्वदिंद बेरवक्के लक्षणं पेळल्पडदु। तद्विस्रसोपचयपरमाणुगळ् कर्म्मनोकर्म्मपरिणतिरहितंगळु तद्योग्यंगळरियल्पडुवुदु विशेषं। ओंदु कर्म्मनोकर्म्मपरमाणुविनोळु एत्तलानुमिनितु विस्रसोपचयंगळागुत्तिरलु मागळु किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्म्मनोकर्म्मसत्वपरमाणुगळगेनितु विस्रसोपचयंगळक्कुमेंदितु त्रैराशिकविधानदिंदं प्रमाणं फलं इच्छां इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेत्। प्र १। फ १६ ख। इ। स ७ १ ७। एंदु बंद लब्धमात्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचय परमाणुगळिनितप्पुवु –। स ७ १२। १६ ख। मिवरोळ् किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाण कर्म्मनोकर्म्मसत्वदोळु प्रक्षेपिसुत्तिरलु विस्रसोपचयसहितकर्म्मनोकर्म्मसत्वमितुटक्कुं स ७ १ २ – १६ ख।

अनंतरं कर्म्मनोकर्म्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपमप्प स्थानलक्षणमं पेळदपं—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे सगसगउक्कस्ससंचयो होदि।
पणदेहाणं वरजोगादिसगसामग्गिसहियाणं ॥२५०॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति। पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानां॥

परिणतिरहितपरमाणव इति भावः। यद्येकस्मिन् कर्मनोकर्मपरिमाणौ एतावान् विस्रसोपचयः तदा किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वपरमाणूनां कियान् विस्रसोपचयः? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र १। फ १६ ख। इ स ७ १२–इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा ये लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचयपरमाणवः ते एतावन्तः स ७ १२—१६ ख। एतेषु पुनः किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते सति विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमेतावद्भवति। स ७ १२—। १६ ख ॥२४९॥ अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपस्थानलक्षणं प्ररूपयति—

'विस्रसा' अर्थात् स्वभावसे ही आत्माके परिणामसे निरपेक्ष रूपसे जो 'उपचीयन्ते' अर्थात् उन-उन कर्म-नोकर्म परमाणुओंके स्निग्ध-रुक्ष गुणके कारण स्कन्धरूप होते हैं, वे विस्रसोपचय है। अर्थात् कर्म और नोकर्मरूप परिणमनसे रहित परमाणु विस्रसोपचय कहे जाते हैं।

विशेषार्थ—विस्रसोपचयरूप परमाणु कर्म-नोकर्मरूप होनेके योग्य तो होते हैं, किन्तु वर्तमानमें कर्म-नोकर्मरूप नहीं परिणमे हैं, उनको विस्रसोपचय कहते हैं। वे जीवके प्रदेशोंके साथ ही एक क्षेत्रावगाही होते हैं। किन्तु उनका जीवके परिणामोंसे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यदि एक-एक कर्म परमाणुमें इतने विस्रसोपचय होते हैं,तो सत्तामें स्थित डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र नोकर्म-कर्म परमाणुओंके कितने विस्रसोपचय होते हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक, फलराशि जीवराशिसे अनन्तगुणा, इच्छाराशि डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध। सो इच्छाराशिसे फलराशिको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेसे जो लब्ध आया,वह है-आत्माके प्रदेशोंमें स्थित समस्त विस्रसोपचयरूप परमाणु। इनमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म-नोकर्म परमाणुओंको मिलानेपर विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्मका सत्त्व होता है ॥२४९॥

उत्कृष्टयोगादिस्वसामग्रिसहितंगळप्प जीवंगळऔदारिकादिपंचशरीरंगळ स्वस्वोत्कृष्टस्थिति चरमसमयदोळु स्वस्वोत्कृष्टकर्म्मनोकर्म्मपरमाणुसंचयमक्कुं । तत्तत् स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धदोळु गळितैकनिषेकावशेषमात्रंगळनितु संचीयमानमागुत्तिरलु तत् स्थितिचरमसमयदोळायुर्वर्जितकर्म्मनोकर्मशरीरंगळगे गलितावशेषोत्कृष्टसंचयं किंचिदून द्वयर्द्धगुण-
५ हानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्वमक्कुं । स ० १२ ।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळुत्कृष्टसंचयसामग्रिविशेषमं पेळ्दपरु ।

आवासया हु भवा अद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणयं छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ।।२५१।।

आवश्यकानि खलु भवाद्धा आयुष्यं योगः संक्लेशश्चापकर्षणमुत्कर्षणकं षट् चैतानि गुणित-
१० कर्म्मांशे ।।

भवाद्धा भवाद्धेयुमायुष्यमुं योगमुं संक्लेशमुमपकर्षणमुमुत्कर्षणमुमेंदितु षट्चैतान्यावश्यकानि ईयारुमावश्यकंगळवश्यं भवान्यावश्यकानि एंबी निरुक्तिसिद्धंगळुमुत्कृष्टसंचयकारणंगळुमिवु गुणितकर्म्मांशनप्पुत्कृष्टकर्म्मसंचयमनुळ्ळ जीवनोळप्पुविवुं मुंदे विस्तारदिंदं पेळल्पट्टप्पुवु । खलु स्फुटमागि ।

१५ अनंतरमौदारिकादिपंचशरीरंगळुत्कृष्टस्थिति प्रमाणमं पेळ्दपं ।

उत्कृष्टयोगादिस्वस्वसामग्रीसहितानां जीवानाम् औदारिकादिपञ्चशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति । तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयम् एकैकसमयप्रबद्धगलितैकैकनिषेकावशेषमात्रेषु तावत्सु संचीयमानेषु सत्सु तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषोत्कृष्टसंचयः किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रः सत्त्वं भवति स ० १२—।।२५०।। अथ श्रीमाधव-
२० चन्द्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं कथयन्ति—

भवाद्धा आयुष्यं योगः संक्लेशः अपकर्षणमुत्कर्षणं चेति षट् उत्कृष्टकर्मसंचयकर्तुर्जीवस्य आवश्यकानि इत्युच्यन्ते । गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचययुते जीवे तेषामवश्यम्भावात् अग्रे तानि विस्तरेण वक्ष्यन्ति खलु स्फुटम् ।।२५१।। अथौदारिकादिपञ्चशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमाह—

आगे कर्म-नोकर्मके उत्कृष्ट संचयका स्वरूप, स्थान और लक्षण कहते हैं—

२५ उत्कृष्ट योग आदि अपनी-अपनी उत्कृष्ट बन्धकी सामग्रीसे सहित जीवोंके औदारिक आदि पाँच शरीरोंका अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम समयमें अपने-अपने कर्म-नोकर्म परमाणुओंका उत्कृष्ट संचय होता है । अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध बँधता है और उसमें-से एक-एक निषेक प्रतिसमय निर्जरित होकर शेष संचित होता जाता है । तब अपनी-अपनी स्थितिके अन्तिम समयमें आयुकर्मको छोड़ शेष
३० कर्म और नोकर्मरूप शरीरोंका निर्जरासे शेष रहा उत्कृष्ट संचय कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सत्तामें होता है ।।२५०।।

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव उत्कृष्ट संचयकी सामग्री कहते हैं—

भवाद्धा, आयुष्य, योग, संक्लेश, अपकर्षण और उत्कर्षण ये छह उत्कृष्ट कर्मसंचय करनेवाले जीवके आवश्यक कहे जाते हैं । गुणितकर्मांश अर्थात् उत्कृष्ट कर्म संचयसे युक्त
३५ जीवमें ये अवश्य होते हैं । आगे इन्हें विस्तारसे कहेंगे ।।२५१।।

आगे औदारिक आदि पाँच शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण कहते हैं—

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं ।
छावट्ठीकम्मट्ठिदि बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥२५२॥

पल्यत्रयमुदधीनां त्रयस्त्रिंशदंतर्म्मुहूर्त्त उदधीनां । षट्षष्टिः कर्म्मस्थितिर्बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषां ॥

तदौदारिकादिपंचशरीरंगळगे यथासंख्यमागि बंधोत्कृष्टस्थितिगळु त्रिपल्यमुं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममंतर्म्मुहूर्त्तमुं षट्षष्टिसागरोपमंगळुं कर्म्मसामान्योत्कृष्टस्थिति सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमंगळप्पुवु । विशेषदिंदं ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायंगळुत्कृष्टस्थिति त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटिगळप्पुवु । मोहनीयक्कुत्कृष्टस्थिति सप्ततिसागरोपमकोटीकोटिगळप्पुवु । नामगोत्रंगळगे विंशति कोटीकोटिसागरोपमंगळुत्कृष्टस्थितियप्पुवु । त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळायुष्यक्कुत्कृष्टस्थितियक्कुं ।

अनंतरमौदारिकादिपंचशरीरंगळोळुत्कृष्टस्थितिगळगे गुणहान्यायामप्रमाणमं तोरिदपं ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं ।
पल्लासंखेज्जदिमं गुणहाणी तेजकम्माणं ॥२५३॥

अंतर्म्मुहूर्त्तमात्रा गुणहानिर्भवत्यादिमत्रयाणां । पल्यासंख्येयभागा गुणहानिस्तैजसकार्म्मणयोः ॥

आदिमत्रयाणां औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरंगळुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनियप्प गुणहानिः गुणहान्यायामंगळु प्रत्येकं स्वयोग्यांतर्म्मुहूर्त्तमात्रंगळप्पुवु । २ १ । तैजसकार्म्मणशरीरंगळुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनियप्प गुणहानिः गुणहान्यायामं स्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुववरोळु

तेषामौदारिकादिपञ्चशरीराणां यथासंख्यं बन्धोत्कृष्टस्थितयः त्रिपल्यं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममन्तर्मुहूर्तः षट्षष्टिसागरोपमं उत्कृष्टकर्मस्थितिः, सा च सामान्येन सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि । विशेषेण तु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणां त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणि । मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि, नामगोत्रयोः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि, आयुषस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवन्ति । (बन्धप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या) ॥२५२॥ अथौदारिकादिपञ्चशरीरोत्कृष्टस्थितीनां गुणहान्यायामं प्रमाणयति—

आदिमानामौदारिकवैक्रियिकाहारकत्रिशरीराणाम् उत्कृष्टस्थितिसम्बन्धिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः प्रत्येकं स्वस्वयोग्यान्तर्मुहूर्तमात्रो भवति । २ १ । तैजसकार्मणशरीरयोः उत्कृष्टस्थितिसम्बन्धिनी गुणहानिः

उन औदारिक आदि पाँच शरीरोंकी बन्धरूप उत्कृष्ट स्थिति औदारिककी तीन पल्य, वैक्रियिककी तैंतीस सागर, आहारककी अन्तर्मुहूर्त, तैजसकी छियासठ सागर है। तथा कार्माणकी सामान्यसे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण और विशेषसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर, मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, नाम और गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्मकी तैंतीस सागर है। इस प्रकार बन्धके प्रकरणमें कही सबकी उत्कृष्ट स्थिति ग्रहण करना ॥२५२॥

आगे इन पाँच शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें गुणहानि आयामका प्रमाण कहते हैं—

आदिके औदारिक, वैक्रियिक और आहारक तीन शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी गुणहानि और गुणहानि आयाम प्रत्येक अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। अर्थात् अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होते हैं, उतना गुणहानिका आयाम जानना।

---

१. कोष्ठकगतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति ।

तैजसशरीरके संख्यातपल्यमात्रस्वोत्कृष्टस्थितियनु पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदोन पल्यार्द्धच्छेदसंख्येयगुणितमात्र भक्तैकभागमात्रं गुणहान्यायाममक्कुं। तन्नुत्कृष्टस्थितियं नानागुणहानिशलाकेगळिंदं भागिसिबंदलब्धमात्रं गुणहान्यायाममेंबुदर्थं प १ कार्म्मणशरीरक्के मत्ते संख्यातपल्यछे व छे ०

मात्रस्वोत्कृष्टस्थितियनदरिं नानागुणहानिशलाकेगळप्प पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदोनपल्यच्छेदराशियं भक्तैकभागमात्रं गुणहान्यायाममक्कु प १ मेंबी विशेषमरियल्पडुगुं।
छे व छे

इल्लि त्रैराशिकंगळ्माडल्पडुवुवंतेंदोडे—अंतर्मुहूर्तमात्रायामक्के सलानुमोंदु गुणहानियागुत्तिरलु सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामं पल्यत्रयक्के नितु नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकं माडि २ १। फ। १, इ। प ३। बंद लब्ध प्रमितंगलौदारिकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळप्पु प ३। इ एवं वैक्रियिकादिशरीरंगळगं नानागुणहानिशलाकेगळसाधिसल्पडुवुवु प्र २ १ फ १। इ। २ १
सा ३३। लब्धं वैक्रियिकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेळप्पुवु सा ३३। प्र। २ १।
२ १

स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवति। तत्र तैजसशरीरस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदेभ्योऽसंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिप्रमितेन शलाकाराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमाणस्वोत्कृष्टस्थितिमात्री प १ कार्मणशरीरस्य तु स्वनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यच्छेदराशिना छे व छे १

भक्तसंख्यातपल्यप्रमितस्वोत्कृष्टस्थितिप्रमाणा प १ इति विशेषो ज्ञातव्यः। यदि अन्तर्मुहूर्तायामस्य एका छे व छे

गुणहानिः तदा सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य पल्यत्रयस्य कियत्यः इति प्र २ १। फ १। इ, प ३। त्रैराशिकेन

तैजस और कार्मण शरीरकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी गुणहानि अपने-अपने योग्य पल्यके असंख्यातवें भागमात्र होती है। उनमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से कम करके जो शेष रहे, उसे असंख्यातसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी तैजस शरीरकी नाना गुणहानि शलाका है। इस शलाका राशिसे तैजसकी उत्कृष्ट स्थिति संख्यात पल्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तैजस शरीरकी गुणहानिका आयाम है। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से घटानेसे जो शेष रहे, उतनी कार्मणकी नाना गुणहानि शलाका है। इस शलाकाका भाग कार्मणकी उत्कृष्ट स्थिति संख्यात पल्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतना पल्यके असंख्यातवें भाग कार्मण शरीरकी गुणहानिका आयाम है; इतना विशेष जानना। अब यदि अन्तर्मुहूर्तमात्र आयामकी एक गुणहानि होती है, तो तीन पल्य प्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थितिके आयामकी कितनी गुणहानि होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि अन्तर्मुहूर्तके समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्यके समय। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर तीन पल्यको अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे,

---

१. ब °गुणितस्वनानागुणहानिशलाका।

फ १ । इ । २ १ १ । लब्धमाहारकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवु २ १ १
२ १

प ७ । प १ फ १ । इ । सा ६६ लब्धं । तैजसशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवु
छे व छे ०

छे—व छे ० – प्र सा ७० को २ । फ १ । इ । सा ७० को २ । लब्धं कार्म्मणशरीरस्थितिगे
छे व छे

नानागुणहानिशलाकेळप्पुवु । छे—व छे । इंतु पेळल्पट्ट नानागुणहानिशलाकेगळौदारिकादिशरीरंगळ
स्थितिगळ्गे भागहारप्पंतु त्रैराशिकंगळं माळ्पुदंतु माडुत्तिरलेकगुणहानि आयामंगळप्पुवदं तेंदोडे ५
इनितु नानागुणहानिशलाकेगळ्गेत्तलानुमितु स्थित्यायाममागुत्तिरलु आगळो दु गुणहानिगे नितायाम-
मक्कुमेंदितु त्रैराशिकंगळं माडिबंद लब्धंगळौदारिकादिशरीरस्थितिगळगेकगुणहान्यायामंगळप्पुवु
ए ३ फ । प ३ । इ । १ । लब्धमौदारिकशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं २ १ । प्र सा ३३
२ १ २ १

फ । सा ३ ३ । इ । १ । लब्धं वैक्रियिकशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं २ १ प्र १ । फ २ १ १ । इ । १ ।
लब्धमाहारकशरीरस्थितिगेकगुणहान्यायामं २ १ । प्र । छे—व छे ० । फ सा ६ ६ । इ । १ लब्धं १०
तैजसशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं । प १ प्र छे व छे । फ, सा ७० को २ । इ १ । लब्धं
छे व छे

लब्धाः नानागुणहानिशलाकाः औदारिकशरीरस्थितेरेतावत्यः प ३ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि ताः
२ १

साधयेत् । तत्र प्र २ १ । फ १ । इ सा ३३ लब्धा वैक्रियिकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः
सा ३३ । प्र २ १ । फ १ । इ २ १ १ । लब्धाः आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः
२ १

२ १ १ । प्र सा ६६ । फ १ । इ सा ६६ लब्धास्तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः— १५
२ १ छे । व । छे । ०

छे व छे ० । प्र सा ७० को २ । फ १ । इ सा ७० को २, इ लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका
छे व छे

उतना लब्ध आता है ; उतना ही औदारिक शरीरकी स्थितिकी नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण है। ऐसे ही वैक्रियिक शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि तैंतीस सागर। सो तैंतीस सागरको अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतना नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना। आहारक शरीरमें प्रमाणराशि छोटा अन्तर्मुहूर्त, फल- २०
राशि एक, इच्छाराशि बड़ा अन्तर्मुहूर्त है। सो बड़े अन्तर्मुहूर्तमें छोटे अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी नाना गुणहानि जानना। तैजस शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि छियासठ सागर है। सो प्रमाणराशिका इच्छाराशिमें भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंको असंख्यातसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतनी नाना गुणहानि तैजसकी जानना। कार्मणशरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, २५
फलराशि एक, इच्छाराशि मोहकी स्थितिकी अपेक्षा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। सो प्रमाण-राशिका इच्छाराशिमें भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद

कार्मणशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं प १ [इल्लि सर्व्वस्थानंगळल्लि यथायोग्यवागि
छे व छे
अपवर्त्तनं माडल्पडुगुं ।]

इन्नौदारिकादिशरीरंगळ स्थितिगळन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्पेळल्पडुगुं । तंतम्म शरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळं विरलिसि प्रतिरूपं द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु तंतम्मन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्पुटुगुमदं तें दोडिल्लिगुपयोगियप्प त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । इनितु विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गमं माडुत्तिरलिंतप्प राशि पुट्टुत्तिरलागळेनितु विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गमं माडलेंतप्प राशि पुट्टुगुमेंदितु त्रैराशिकं माडि लब्धमनीकरणसूत्रदिंदं साधिसुगे ।

दे २ फ । ≡ इ देय २
प्र वि छे छे छे ९
अ
३ वि प ३
२ १

एतावत्यः । छे व छे । अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामाः साध्यन्ते । तद्यथा—एतावन्नानागुणहानीनां
अ
यद्येतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प्र प ३ । फ प ३ । इ १ ।
२ १
लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र सा ३ ३ । फ सा ३३ । इ १ । लब्धः वैक्रियिक-
२ १
शरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र १ । फ २ १ १ । इ १ । लब्धः आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र, छे व छे अ । फ सा ६६ । इ १ । लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ ।
छे व छे ।
प्र छे व छे । फ, सा ७० को २ । इ १ । लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ । औदारिकादि-
अ छे व छे

मात्र नाना गुणहानि जानना । अब औदारिक आदि शरीरोंके गुणहानि आयामको साधते हैं—

यदि अपने-अपने नाना गुणहानि प्रमाणका आयाम अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण होता है, तो एक गुणहानिका आयाम कितना हुआ ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशि प्रमाण गुणहानिका आयाम होता है । सो औदारिकमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य, इच्छाराशि एक, फलराशि तीन पल्य । सो औदारिक शरीरकी स्थितिकी एक गुणहानिका आयाम अन्तर्मुहूर्तमात्र हुआ । वैक्रियिक शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तैंतीस सागर, फलराशि तैंतीस सागर, इच्छाराशि एक । सो वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी एक गुणहानिका आयाम अन्तर्मुहूर्त आया । आहारक शरीरमें प्रमाणराशि संख्यात, फलराशि अन्तर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक । सो छोटा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण गुणहानि आयाम हुआ । तैजसमें प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंसे असंख्यातगुणी । फलराशि छियासठ सागर । इच्छाराशि एक । सो संख्यात पल्यमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंसे असंख्यात गुणे प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे,

१ म प्रतौ नास्ति [ ] पाठः ।

दिण्णच्छेदेणवहिद इट्ठच्छेदेहि पयदविरलण भजिदे।
लद्धमिद इट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदो रासी॥

एंदी सूत्राभिप्रायदिंदं लोकार्द्धच्छेदंगळिंदं औदारिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशियं भागिसि प ३ तल्लब्धमितमिष्टराशियप्प लोकमं वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु २ १। छे छे छे ९ अ

पुट्टिद राशियौदारिकशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमसंख्यातलोकमक्कु = अ। मंते वैक्रियिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशियं लोकार्द्धच्छेदंगळिंदं भागिसि सा ३ ३ २ १ छे छे छे ९

शरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु तत्तन्नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यन्ते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २ प्र वि छे छे छे ९।[1] फ =। इ वि प ३। अ २ १

[1] लब्धं करणसूत्रेणानीयते—
दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहि पयदविरलणं भजिदे। लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं॥

उतना गुणहानि आयाम जानना। कार्मण शरीरमें प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, इच्छाराशि एक। सो संख्यात पल्यमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना गुणहानि आयाम जानना। इस प्रकार सर्वत्र एक गुणहानिका आयाम जानना।

विशेषार्थ—इतने-इतने समयोंके समूहका नाम एक गुणहानि है। समस्त स्थितिमें जितनी गुणहानियाँ हों, उसके प्रमाणका नाम नाना गुणहानि है। अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हो, उतना गुणहानि आयाम है। आयाम नाम लम्बाईका है। जैसे छह नाना गुणहानिका अड़तालीस समय प्रमाण स्थिति आयाम होता है तो एक गुणहानिका आयाम आठ-आठ समय हुआ। नाना गुणहानि प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, उसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे नाना गुणहानिका प्रमाण छह। सो छहका विरलन करके एक-एक जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे ६४ अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है।

इसी प्रकार औदारिक आदि शरीरोंकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्त राशि लानेके लिए उनकी नाना गुणहानि शलाकाओंका विरलन करके प्रत्येकपर दो देकर उन्हें परस्परमें गुणा करना चाहिए। सो लोकके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर लोकराशि उत्पन्न होती है, तो नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर कितने लोक होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करना। इसका लब्ध लानेके लिए करण सूत्र कायमार्गणा गाथा २१४ में कहा है। उसके अनुसार देयराशि दोका अर्धच्छेद एक, उसका भाग इष्टराशिके अर्द्धच्छेद लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेसे उतने ही रहे।

१ ब छे ३।

तल्लब्धप्रमितलोकंगळं वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलावुदों दु राशियुमसंख्यातलोकप्रमितमागुत्तिरलु-मौदारिकशरीरस्थितियन्योन्याभ्यस्तराशियं नोडलसंख्यातलोकगुणितमागि वैक्रियिकशरीरस्थिति-गन्योन्याभ्यस्तराशियक्कु ≡ a ≡ a मेकें दोडौदारिकशरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळं नोडलु वैक्रियिकशरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळुमंतर्मुहूर्त्तभाजितत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमि-
५ तंगळप्पुदरिंदं। अंतर्मुहूर्तभक्तमप्प त्रिगुणितमप्प नूरेपत्तु कोटीकोटिपल्योपमंगळप्पुदरिंदं। नूरपत्तु कोटिकोटि पल्योपमंगळु गुणकाररूपंगळधिकंगळप्पुदरिंदं। ११० को २ एतावन्मात्र लोकंगळ वर्गिततंवर्गसिंदं पुट्टिदंतप्प राशि असंख्यातलोक ≡ a गुणितमप्पुदरिंदं ≡ a ≡ a अथवा। इनितौदारिकशरीर नानागुणहानिशलाकेगळेत्तलानुमितप्पन्योन्याभ्यस्तराशियागलु मागळिनितु वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकेगळिंगतप्पऽसंख्यातलोकमक्कुमें दितु त्रैराशिकं माडि प्र व प ३ फ १ इ

---

१० इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकादिशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा २ १। छे छे छे ९। a

तल्लब्धप्रमितेष्विष्टराशिरूपलोकेषु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति ≡ a। तथाहि वैक्रियिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा सा ३३ २ १। छे छे छे ९। तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्त- a

राशिर्भवति। ≡ a। ≡ a। अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशितोऽसंख्यातलोकगुणितः ≡ a। अन्तर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽन्तर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां ऐकशतदशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्र-द्विकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य ≡ a गुणकारत्वसंभवात्। अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्या-

---

इन लोकके अर्धच्छेदोंके प्रमाणका भाग औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी नानागुणहानिके प्रमाणमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतनी जगह इष्टराशि लोकको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो लब्ध आवे, उतना औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातलोकमात्र होता है। इसी तरह वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी नाना गुणहानि शलाका-राशिको लोकके अर्धच्छेदोंसे भाग देकर जो प्रमाण आवे, उतने लोकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, वह वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है। यह राशि औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे असंख्यात-लोक गुणित होती है। क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्यसे अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तैंतीस सागर एक सौ दस कोड़ाकोड़ी गुणित होते हैं। सो इस अधिक प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे असंख्यात लोक आता है सो ही औदारिककी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे वैक्रियिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातलोक गुणी है। अथवा यदि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य प्रमाण औदारिक शरीरकी नानागुणहानिकी अन्योन्या-भ्यस्त राशि असंख्यातलोक मात्र होती है, तो एक सौ दस कोड़ाकोड़ी गुणित अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य प्रमाण वैक्रियिक शरीरकी नानागुणहानिकी कितनी अन्योन्याभ्यस्तराशि

---

१. ब दशोत्तरशतकोटि°। २. ब °र असं°।

क ≡ ८। इ व प ३ ११०। को २। लब्धं विण्णच्छेदेत्याद्यानीत तं वैक्रियिकशरीरस्थिति-
२ १
गन्योन्याभ्यस्तराशि नूरपत्तु कोटिकोटिवारंगळौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिवर्गितसंवर्ग-
मादंतप्पऽसंख्यातलोकमें बु निश्चैसल्पडुवुदु।

आहारकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकेगळ्संख्यातंगळवं विरलिसि रूपं प्रति द्विकमनित्तु
वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरल्पुट्टिदराशियुं संख्यातमेयक्कुमा राशि तानाहारकशरीरस्थितिगन्योन्याभ्य- १
स्तराशियक्कुं १ १। तैजसशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिकार्म्मणशरीरस्थितिनानागुण-
हानिशलाकाराशियं नोडलसंख्यातगुणमा राशियं पल्यार्द्धच्छेदराशियिंदं भागिसि छे व छे ८
छे
ऋणरूपं गुणकार भागहारं बेरसु तेगदु बेरिरिसि व छे ८ शेष ऋणसहितराशिय छे। ८
छे छे
निदनु पल्यच्छेदभाज्यराशिगे पल्यच्छेदभागहारं सरियें देरडु राशिगळनपवर्त्तिसि कळदु शेष तद्-
गुणाकारभूतासंख्यातमदु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रमेयागल्वेळ्केकें दोडे पल्यच्छेदप्रमितमादोडे १०

म्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३। फ ≡ ८। इ प ३। ११० को २। लब्धस्य एकशतदशकोटी-
२ १ २ १
कोटिवारमौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानाम् अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः।
आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्न-
राशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् १ १। तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मण-
शरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे ८ ऋणं १५
छे
सगुणकारभागहारं पृथग्धृत्य व छे ८ शेषऋणरहितराशि छे ८ पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः
छे छे
सदृशः इति तावपवर्तयेत् ८। शेषतद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यच्छेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः,

---

होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर एक सौ दस कोड़ाकोड़ी बार औदारिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे वैक्रियिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। इससे औदारिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे वैक्रियिक २०
शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातलोक गुणित सिद्ध हुई। आहारक शरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका संख्यात हैं। उनका विरलन करके और एक-एक पर दो-दोका अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर संख्यात राशि उत्पन्न होती है। वह आहारक शरीरकी अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना। तैजस शरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका कार्मण शरीर-
की नानागुणहानि शलाकाओंसे असंख्यात गुणी हैं। सो पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको २५
पल्यके अर्धच्छेदोंमेंसे घटानेपर जो शेष रहे, उससे असंख्यात गुणी जानना। यहाँ सरलताके लिए इसे पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग देना। उसमें-से 'पल्यकी वर्गशलाकाकी अर्धच्छेद राशिको असंख्यातसे गुणा करना और पल्यकी अर्धच्छेद राशिका भाग देना' इस ऋणरूप गुणाकार और भागहारको पृथक् रखकर, शेष ऋणरहित राशि पल्यके अर्धच्छेदोंको असंख्यातसे गुणा करें और पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग दें, इतना रहा। यहाँ भाज्यराशि ३०
और भाजक राशिमें पल्यकी अर्धच्छेदराशि समान है। अतः उसका अपवर्तन करनेपर शेष असंख्यात गुणाकार रहा। सो इस असंख्यातका जितना प्रमाण है, उतनी जगह पल्योंको

तावन्मात्रपल्यसंवर्गादिदं सूच्यंगुलं पुट्टिदप्पुदन्तु पुट्टुत्तिरलु तैजसशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशियल्लदे पोक्कुदेकेंदोडे तैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिक्षेत्रप्रमाणदिदं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमक्कुं कालप्रमाणदिदमसंख्यातकल्पप्रमितमेंबागमविरोधमागि बप्पुदरिंदं अंतु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागप्रमितासंख्यातरूपुगळं विरळिसि रूपं प्रति पल्यमनित्तु वग्गितसंवग्गं माडुतिरलु पुट्टिदराशि द्विरूपवर्गधारियोळ् पल्यराशियिंदं मेले विरलनराशिगे हारभूताऽसंख्यातक्कंनितर्द्धच्छेदंगळप्पुविंनितु वर्ग्गस्थानंगळं नडदु पोगि पुट्टिद सूच्यंगुलासंख्यातैकभागप्रमितऋणसहितधनमक्कु २
ə
मिदं मुंतेगेदु बेरिरिसिद ऋणरूपुगळ व छे ə नपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्येयभागप्रमितमक्कु-
छे
मेकेंदोडे कारणं मुं पेळ्दुदेयक्कुं।

आ रूपाऽसंख्येयभागदिदं पल्यमं गुणिसिदोडे पल्यासंख्यातैकभागमप्पुदा राशि मुन्निन ऋणसहितमप्प सूच्यंगुलासंख्यातैकभागक्के हारमक्कुमेकेंदोडे :—

विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यङ्गुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात्। तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्यं दत्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूताऽसंख्यातस्य यावन्तोऽर्धच्छेदाः तावन्ति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यङ्गुलासंख्येयभागः २। अयं च—
ə
विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि। तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

रखकर परस्परमें गुणा करो। क्योंकि असंख्यात गुणा पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना ही पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग देनेपर अवशेष गुणाकार असंख्यात रहा, उतनी जगह पल्यको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर प्रमाण होता है, जैसे पल्यका प्रमाण सोलह मानें, तो उसके अर्धच्छेद चार हुए और असंख्यातका प्रमाण तीन। सो तीनसे चारको गुणा करनेपर बारह हुए। सो बारह जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर चार हजार छियानवे होते हैं। तथा बारहको चारसे भाग देनेपर तीन रहा। सो तीन जगह सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेपर भी चार हजार छियानवे होते हैं। अतः सरलताके लिए पूर्वोक्त राशिको पल्यके अर्धच्छेदराशिसे भाग देकर लब्धराशि असंख्यात प्रमाण पल्य रखकर परस्परमें गुणा किया। सो यहाँ यह गुणकार रूप जो असंख्यात है, वह पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र है। पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण नहीं है। यदि यह असंख्यात पल्यके अर्धच्छेदोंके बराबर होवे, तो उतने पल्योंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर तैजस शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि सूच्यंगुल प्रमाण हो जायेगी; किन्तु वह उतनी नहीं है। क्योंकि परमागममें क्षेत्र प्रमाणसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र और कालप्रमाणसे असंख्यात कल्पमात्र तैजस शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण कहा है। अतः पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यातका विरलन करके और एक-एकपर पल्यको देकर परस्परमें गुणा करनेसे

एंदु भागहारमप्पुदी कारणमागि अंता पल्यासंख्यातदिदं भागिसिदोड २ प मपवर्त्तसि
ठ ठ
शुद्धराशियुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमेयक्कुं २ कार्म्मणशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाके-
ठ
गळगे छे—व छे। प्रतिरूपं द्विकमनित्तु वर्ग्गितसंवर्ग्गं माडलुत्पन्नराशिकार्म्मणशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमदुवुं स्ववर्ग्गशलाकाराशिप्रभक्तपल्यप्रमितमक्कुमेकें दोडे विरलिदरासोदो पुणेत्यादि सूत्राभिप्रायदिदं पल्यच्छेदराशिगे ऋणरूपमप्पतद्वर्ग्गशलाकार्द्धप्रमितमं तेगदु बेरिरिसि व छे शेषपल्यच्छेदराशियं विरलिसि तावन्मात्रद्विकसंवर्ग्गदिदं पुट्टिद ऋणसहितमप्प पल्यक्के मुं पेळ्द ऋणरूपंगळं विरलिसि तावन्मात्रद्विकसंवर्ग्गमं माडल् पुट्टिद राशि पल्यवर्ग्गशलाकाराशिप्रमितमदा ऋणसहित धनमप्प पल्यक्के हारमक्कुमप्पुदरिंदं।

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे ठ अपवर्तितेन एकस्यासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजात-
छे
पल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा २ प अपवर्तितः सूच्यङ्गुलासंख्येयभाग एव भवति २। कार्मणशरीरस्थितेर्नाना-
ठ ठ ठ
गुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्वा संवर्गोत्पन्नः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्त-
राशिर्भवति। प। पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशिमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्न-
व

सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भागमात्र प्रमाण आता है। सो द्विरूपवर्गधारामें पल्यराशिरूप स्थानसे ऊपर विरलनराशिरूप असंख्यातके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जाकर उत्पन्न सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग आता है।

'विरलनराशिसे जितने रूप हीन होते हैं, उनका परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, वह उत्पन्न राशिका भागहार है।'

इस नियमके अनुसार जो ऋणरूप राशि पहले अलग स्थापित की थी, उसका अपवर्तन करनेपर एकका असंख्यातवाँ भाग हुआ। इसको पल्यसे गुणा करनेपर पल्यका असंख्यातवाँ भाग हुआ। यतः असंख्यात गुणा पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद प्रमाण दो-दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेसे भी इतना ही प्रमाण होता है। इसलिए सरलताके लिए यहाँ पल्यकी अर्द्धच्छेदराशिका भाग देकर एकका असंख्यातवाँ भाग पाया, उसे पल्यसे गुणा किया है। सो ऐसा करनेसे जो पल्यका असंख्यातवाँ भाग आया, उसका भाग सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको देनेपर भी सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग ही रहा; वही तैजस शरीरकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्तराशि है।

कार्मणशरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण है। इसका विरलन करके एक-एकके ऊपर दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, वह पल्यकी वर्गशलाकासे भाजित पल्य प्रमाण है वही अन्योन्याभ्यस्त राशि है। क्योंकि यहाँ पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे पल्य उत्पन्न होता है, वह तो भाज्य है और पूर्वोक्त नियमके अनुसार पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदराशि प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे पल्यकी वर्गशलाका होती है, वह भाजक है।

इन्नौदारिकादिशरीरस्थितिगळगे निषेकहारमेंतेंदोडे दोगुणहाणियें बुदा निषेकहारंगळ्गुं तंतम्मेकगुणहान्यायामंगळनेरडरिंदं गुणियिसुत्तिरलु तंतम्मौदारिकादिशरीरस्थितिगे निषेकहारंगळप्पुवु औ २ १ । २ । वै २ १ । २ । आ २ १ २ । तै प १ । २ । का प १ २ इन्नौदारिछे व छे ० छे व छे

कादिशरीरंगळ द्रव्यस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणंगळुमंक संदृष्टिगळु द्र ६३००। स्थि ४८। गु ८। ना ६। नि १६। अ ६४। इन्नौदारिकादि शरीरसमयप्रबद्धंगळु प्रकृतिप्रदेशस्थित्यनुभागमें दु चतुर्विधबंधमनुळवप्पुवल्लि मोदल प्रकृतिप्रदेशबंधमेरडुं योगदिंदप्पुवु । स्थित्यनुभागबंधंगळेरडुं कषायोदयदिंदमप्पुवल्लि विवक्षितसमयदोळ् कट्टल्पट्ट कार्म्मणेय समयप्रबद्धक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुमा स्थितियोळु बंधप्रथमसमयं मोदलुगोंडु सप्तसहस्रवर्षसमयमात्रकालमनाबाधेयं कळेदुळिद स्थितिय प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकंगळप्प परमाणुपुंजंगळं निषेकंगळेंबुदा निषेकरचनेयं माळ्प विधानमनंकसंदृष्टियिंदमन्नेवरं तोरिदपेमदें तेंदोडे विवक्षितैकसमयदोळ् कट्टिद कार्म्मणसमयप्रबद्धद्रव्यं । स ७ । इदक्कंकसंदृष्टि ६३०० ।

पल्यवर्गशलाकाराशेर्हारत्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेकहारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ १ । २ । वै २ १ । २ । आ २ १ । २ । तै प १ । २ । छे व छे ० । का प १ । २ । तदौदारिकशरीरसमयप्रबद्धानां अङ्कसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नानाछे व छे

गुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ । औदारिकादिशरीरसमयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धवन्तः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबन्धौ योगतः स्याताम्, स्थित्यनुभागबन्धौ कषायतः स्याताम् । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबन्धस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यन्तमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यन्तं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुञ्जाः निषेका भवन्ति । तद्रचनाकरणविधानं तावदङ्कसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदम् । स । अङ्कसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

औदारिक आदि शरीरोंकी स्थितियोंका जो-जो गुणहानि आयाम है, उसे दोसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी दो गुणहानि होती है। उसीका दूसरा नाम निषेकहार है। अंकसंदृष्टिसे औदारिक शरीरके समय प्रबद्धका द्रव्य ६३००। स्थिति ४८। गुणहानि ८। नानागुणहानि ६। दो गुणहानि १६। अन्योन्याभ्यस्त राशि ६४। औदारिक शरीरके समयप्रबद्ध, प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धको लिये होते हैं। उनमें-से प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगसे तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं। विवक्षित समयमें बँधे कार्मणके समयप्रबद्धका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है। उसमें प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष काल पर्यन्त आबाधाकाल है। उसे छोड़कर शेष स्थितिके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परमाणुपुंजरूप निषेक होते हैं। प्रत्येक निषेककी स्थिति अपने-अपने काल प्रमाण होती है। उनकी रचनाका विधान अंक संदृष्टिसे दिखाते हैं—विवक्षित एक समयमें बँधे कार्मणके समय प्रबद्धका द्रव्य अंकसंदृष्टिसे ६३०० है।

रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥

एंदिल्लि कार्म्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिमुं पेळ्द पल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रदमदक्कंकसंदृष्टि ६४ । ई राशियं रूपहीनं माडि समयप्रबद्धद्रव्यमं भागिसिदोडे तदेकभागं ६३००।१ पूर्व्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूह छे—व छे मिदक्कंकसंदृष्टि ६ ईयारुं गुण- ५
६३
हानिगळोळु चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यमक्कुं । १०० । मेले प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रममक्कुमंतागुत्तिरलु प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यमं नोडलु रूपोननानागुणहानिशलाकप्रमितद्विकसंवर्गजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धदिंदं गुणिसिद चरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणमक्कुं १००
६४ सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासं ।—
२

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति । १०

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अङ्कसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४रूपोऽनेन भक्त्वैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे ।
६३
अङ्कसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबधिद्रव्यं भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ । १५
२

'एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग द्रव्यमें देनेसे अन्तिम गुणहानिका द्रव्य आता है । उससे आदिम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य दूना-दूना होता है ।'

इस नियमके अनुसार पूर्वोक्त पल्यकी वर्गशलाकाराशिसे भाजित पल्य प्रमाण कार्मण शरीरकी अन्योन्याभ्यस्तराशि है । जो अंक संदृष्टिसे ६४ कल्पना की गयी है, उसमें एक कम करके ६३०० में भाग देनेपर नानागुणहानि ६ में-से अन्तिम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्य २०
१०० होता है । आगे प्रथम गुणहानि पर्यन्त यह द्रव्य दूना-दूना क्रमसे होता है । ऐसा होनेपर एक कम नानागुणहानिशलाका प्रमाण दो-दोको परस्परमें गुणा करनेसे जो अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधा प्रमाण होता है, उससे अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है । सो एक कम नाना गुणहानि पाँच, उतने प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे २×२×२×२×२ = बत्तीस आता है । सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठका २५
आधा है । इससे अन्तिम गुणहानिके द्रव्य सौको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य

१००
१०० २
१०० २ । २
१०० २ । २ । २
१०० २ । २ । २ । २
१०० २ । २ । २ । २ । २

प्रथमगुणहानिद्रव्यमनदं ३२००। 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि' एंददनेकगुणहान्यायामदिंदं ८ भागिसुत्तिरलु मध्यमधनमें बुदक्कुं ४०० तं रूऊण अद्धाण अद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहिरिदे पचयं एंदा मध्यमधनमं रूपोनगुणहान्यर्द्धदिंदं होनमप्प निषेकहारदिंदं भागिसुतिरलु तत्प्रथमगुणहानि संबंधिप्रचयमक्कुं ४०० — मिदनपवर्त्तसलिनितक्कु ३२

१६ — ८
२

मिदं द्विगुणगुणहानियिंदं गुणिसुत्तिरलु ३२ । १६। प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमक्कुं। ५१२। तत्तो विसेसहीणकमं मेले मेले तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्य्यंतमेकैकचयहीनमागुत्तं पोगि चरमनिषेकदोळु

रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंद रूपाधिकगुणहानिगुणितचयप्रमाणमक्कुं ३२ ८ मिदं गुणिसिदोडिनितक्कुं २८८। प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासमिदु

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः।

१००
१०० । २
१०० । २ । २
१०० । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २ । २

प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२००, अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८भक्ते सति मध्यमधनं भवति। ४००। तं रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् तत्प्रथमगुणहानिसम्बन्धिप्रचयो भवति। ४०० अयं चापवर्तितो ३२

१६–८
२

निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२। १६ प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति ५१२ 'तत्तो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यन्तमेकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति

इति रूपाधिकगुणहानिगुणितचयप्रमाणो भवति ३२। ८ अयं च गुणित एतावान् भवति। २८८। प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

बत्तीस सौ होता है। सर्व गुणहानियोंका द्रव्य अन्तसे लेकर आदि पर्यन्त क्रमसे १००,२००, ४००,८००,१६००,३२०० होता है। इस तरह प्रथम गुणहानिका द्रव्य ३२०० है। 'गुणहानिआयामसे सर्वधनमें भाग देनेपर मध्यम धन आता है।' इस सूत्रके अनुसार गुणहानि आयाम ८ से भाग देनेपर मध्यधन ४०० होता है। उसे एक कम गुणहानिके आधेसे हीन निषेकहारसे भाग देनेपर उसका प्रथम गुणहानि सम्बन्धी प्रचय होता है। इस नियमके अनुसार मध्यधनमें एक कम गुणहानि ८–१ = ७ के आधेसे कम निषेकहार १६—३½ = १२½ का भाग देनेपर ३२ चय होता है। इस चयको दो गुणहानिरूप निषेकहारसे गुणा करनेपर ३२ × १६ प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक ५१२ होता है। उससे ऊपर-ऊपर उस गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त एक एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छमात्र चय हीन होता है। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित चयप्रमाण ३२ × ९ = २८८

२८८ | द्वितीयगुणहानिद्रव्य १६०० मिदनद्धाणेणेत्यादियिंदं मध्यमधनमिदि २०० मध्यमधनमं
३२० | रूऊणद्धाणद्धेणेत्यादियिंदं भागिसुत्तिरलु तच्चयमक्कु २०० मिदं भागिसि
३५२ |
३८४ | ८।३
४१६ | २
४४८ | बंद लब्ध १६ मी चयमं निषेकहारदिंदं गुणिसुत्तिरलु १६।१६। द्वितीयगुणहानि
४८० | प्रथमनिषेकमक्कुं २५६। मेलेतन्नेकैकविशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमनिषेकदोळु तन्न
५१२ | रूपोनगच्छमात्र विशेषहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणित तन्न चयप्रमाण ५

१६८ मक्कं १४४। तृतीयगुणहानिद्रव्यम ८०० निदं गुणहानियिंदं भागिसि मध्यमधन १०० मिदं रूपोनगुणहान्यर्द्धहीनद्विगुणगुणहानियिंदं भागिसुत्तिरलु तच्चय १०० मदं दोगुण-
२५
२
हानियिंदं गुणिसुत्तिरलु प्रथमनिषेकमक्कुं १२८ मेले मेले तन्नेकैकचयहीनक्रमदिंदं पोगि चरम-

२८८ | द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खण्डिते मध्यमधनं २००। इदं पुनः
३२० | रूपोनगुणहान्यायामार्धहीननिषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव १०
३५२ | १६—८
३८४ | २
४१६ | द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६। उपरि निजैकैकविशेषहीन-
४४८ | क्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवन्ति इति रूपाधिकगुणहानिगुणित-
४८० | निजप्रचयप्रमाणो भवति १४४। तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १००
५१२ | इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः १०० अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथम-
२५
२

निषेकः १२८। अयमुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिक- १५
गुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८। ८ गुणितः ७२। एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १००

होता है। प्रथम गुणहानिकी निषेक रचना इस प्रकार जानना ५१२।४८०।४४८।४१६।३८४। ३५२।३२०।२८८।

इसी तरह द्वितीय गुणहानिके द्रव्य १६०० को गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्य-धन २०० होता है। इसको एक कम गुणहानि आयामसे हीन निषेकहारसे भाग देनेपर द्वितीय २० गुणहानिका प्रचय होता है १६—$\frac{१}{२}$ = १२$\frac{१}{२}$ से २०० में भाग देनेपर चय १६ होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक १६×१६ = २५६ होता है। इससे ऊपर द्वितीयादि निषेक अपना एक-एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छ प्रमाण अपने चय हीन होते हैं। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चय प्रमाण अन्तिमनिषेक होता है—१६×९ = १४४। तीसरी गुणहानिके द्रव्य २५ ८०० में गुणहानिका भाग देनेपर मध्यमधन १०० होता है। इसे एक कम गुणहानिसे

निषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणमक्कु ८८ मिदं गुणिसिदोडिनितक्कु ७२ मितो क्रमदिंदं पोगि चरमगुणहानिद्रव्य १०० मिदं मुन्निनंते गुणहानियिंदं भागिसिदोडे लब्धं मध्यमधनमक्कु १०० मदं रूपोनगुणहान्यर्द्धहीनदोगुण-
८
हानियिं भागिसुत्तिरलु चरमगुणहानिसंबंधिगच्छमक्कु १०० मिदनपवर्त्तिसिदोडिनितक्कु १
८।२५
२

मिदं दोगुणहानियिंदं गुणिसुत्तिरलु चरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणमक्कु १६ मिल्लिदं मेले मेले तन्नेकैकचयहीनक्रमदिंदं पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुण-हानिगुणितस्वप्रचयप्रमाण १।९। चरमनिषेकमक्कु ९। मितु द्वितीयादिगुणहानिगळोळु गुणहीनक्रमं चरम गुणहानिपर्यंतं काणल्पट्टुदरिंदं गुणहानित्वमन्वर्थमक्कुं। प्रथमगुणहानिगें तु गुणहानित्वमेनल्वेडेकें दोडे मुख्यमप्प गुणहानित्वमिल्लदिद्दोडं मेलणगुणहानित्वक्क निमित्तमप्प

प्राग्वद्गुणहान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं १००। इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत्तच्चरमगुण-
८
हानिसम्बन्धिचयः १०० अपवर्तितोऽयं १, दोगुण ८ हान्या गुणितः चरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति
८।२५
२

१६। तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेकरूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुण-हानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १।९ चरमनिषेको भवति। एवं द्वितीयादिद्विगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यन्तासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात्। तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेत्तन्न, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्या उपचारेण

हीन दो गुणहानिका भाग देनेपर १०० − $\frac{३५}{२}$ = चय ८ होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर १६ × ८ = १२८ प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। इसमें ऊपर-ऊपर अपना एक-एक चय हीन करते-करते अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छमात्र हीन होकर एक अधिक गुण-हानिसे गुणित अपने चय प्रमाण अन्तिम निषेक ९ × ८ = ७२ होता है। इस प्रकार इसी क्रमसे जाकर अन्तिम गुणहानिके द्रव्य १०० को पहलेकी तरह गुणहानि ८ से भाग देनेपर मध्यम $\frac{१००}{८}$ होता है। इसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिका भाग देनेपर अन्तिम गुणहानिसम्बन्धी चय होता है। इसे अपवर्तित करनेपर चयका प्रमाण एक होता है। दो गुणहानिसे इसे गुणा करनेपर अन्तिम गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण १६ होता है। इससे अपना एक-एक चय क्रमसे हीन करते जाकर अन्तिम निषेक एक कम गच्छमात्र चयोंसे हीन होता है। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चयप्रमाण ९ × १ = ९ अन्तिम निषेक होता है। इस प्रकार द्वितीय आदि गुणहानिसे लेकर अन्तिम गुणहानि पर्यन्त द्रव्यादि गुणकाररूप हानिको लिये हुए होते हैं। इसलिए इनका गुणहानि नाम सार्थक है। शंका—तब पहली गुणहानिमें गुणहानिपना कैसे घटित होता है?

---

१. ब °दिगुणहानिपर्यन्तासु गुणहानिक्रमस्य दर्शनात् गुण°। २. मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति तस्या अप्युप—।

विशेषहीनत्वमुंटप्पुदरिंदमुपचारदिंदं गुणहानित्वं पेळल्पट्टुदु ।

इनितो दु समयदोळ् कट्टिदेकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्वनिषेकविन्यास रचनेयिदु

२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

तत्सिद्धेः । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्वनिषेकविन्यासरचनेयम् ।

	२२८	१४४	७२	३६	१८	९
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

एकत्र ६३००

समाधान—उसमें यद्यपि मुख्य रूपसे गुणहानिपना नहीं है, तथापि ऊपरकी गुण-हानियोंमें निमित्तभूत चयकी हीनताका सद्भाव होनेसे उसे उपचारसे गुणहानिपना सिद्ध है।

इस प्रकार एक समयप्रबद्धकी समस्त गुणहानियोंके सब निषेकोंकी रचना जानना।

२२८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

इंतु प्रथमादिगुणहानिद्रव्यंगळुं तद्विशेषंगळुं निषेकंगळुमर्द्धार्द्धक्रममेंदु निश्चैसुवुदो दु विशेषमुंटदावुदे दोडे तंतम्म गुणहानिय चरमनिषेकदोळु तंतम्म चयमनोंदंदं कळयलु मेलण मेलण गुणहानिगळ प्रथम प्रथमनिषेकंगळप्पुवु ।

इंतौदारिकादितैजसपर्य्यंतमाद नोकर्म्मसमयप्रबद्धंगळगे तंतम्म द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि निषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणनरिदु निषेकरचनेयं माळ्पुदुमिल्लियो दु विशेषमुंटदावुदे दोडे नाल्कुं शरीरसमयप्रबद्धंगळगे निषेकरचनेयं माळ्पागळाबाधावर्जिततंतम्मस्थितिप्रथमसमयमोदल्गो दु निषेकरचनेयं बुदिल्ल । औदारिकादिशरीरंगळगे मुंदे विशेषं पेळल्पडुगुमप्पुदरिंदं ।

इन्नौदारिकादिशरीरंगळर्थसंदृष्टिसंक्षेपदिंदं तोरल्पडुगुमदें तें दोडे—मुंनं कार्म्मणशरीरस्थितिनिषेकरचनेगंकसंदृष्टियोळ् पेळ्दंते 'रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिदेत्यादि' विधानदिंदं स्वस्थितिय रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं द्रव्यमं भागिसुत्तिरलु चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं स ā ā ख ख ई द्रव्यमं लघुसंदृष्टिनिमित्तमागि स एंदु बरेवुदु । स । रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं भागिसि २ दु स

अ

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निषेकाश्च अर्धार्धक्रमा[1] इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिषेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिषेको भवति । एवमौदारिकादितैजसान्तानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्तं स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं स्मृत्वा स्वस्वस्थितिप्रथमसमयादेव आरभ्य निषेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्श्यते तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स ā ā ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (स) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति ।

इस प्रकार प्रथम आदि गुणहानिका द्रव्य, उनका चय और निषेक क्रमसे आधे-आधे होते हैं । इतना विशेष है कि अपनी-अपनी गुणहानिके अन्तिम निषेकमें अपना-अपना एक चय घटानेपर ऊपर-ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । इस प्रकार औदारिकसे तैजस पर्यन्त नोकर्म समयप्रबद्धोंकी तो अपनी-अपनी स्थिति सम्बन्धी गुणहानि, नानागुणहानि, निषेकहार और अन्योन्याभ्यस्तराशिके प्रमाणका स्मरण करके अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे ही निषेक रचना करनी चाहिए । आगे औदारिक आदि शरीरोंके सम्बन्धमें ऐसा ही कहेंगे । अब अर्थसंदृष्टिसे दिखाते हैं—

कार्मणके समयप्रबद्धका द्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण जानना । उसमें एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर अन्तिम गुणहानिका द्रव्य होता है । उससे प्रथम गुणहानि पर्यन्त दूने-दूने क्रमसे जाकर प्रथम गुणहानिका द्रव्य अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधेसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना होता है । इसको गुणहानिका भाग देनेपर मध्यमधन होता है । उसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम गुणहानि सम्बन्धी चयका प्रमाण होता है । इसको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । उससे अपने अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक चय हीन क्रमसे जाते हुए अन्तिम निषेकमें एक कम गुणहानि आयाम मात्र चयके घटनेपर एक अधिक

---

१. ब °क्रमात् निश्चेतव्यम् ।

चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमल्लिदं बळिकलु प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदं पोगि प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यमं नोडलु अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धगुणितप्रमाणमक्कु स अ

अ २

मिदनद्धाणेण सव्वधणे खंडितेत्यादिविधानदिंदं गुणहानियिंदं भागिसलु मध्यमधनमक्कु स अ

अ २ गु

मी मध्यमधनमं रूवूण अद्धाण अद्धेण ऊणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदेपचयमेंदितु मध्यमधनमं रूपोनगुणहान्यर्द्धोनद्विगुणगुणहानियिंदं भागिसुत्तिरलु प्रथमगुणहानिसंबंधिचयमक्कु स अ मिदं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयमं दु द्विगुणगुणहानियिंदं गुणिसुत्तिरलु

अ २ गु गु ३

२

प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमक्कु स अ गु २ तत्तो विसेसहीणकममेंदु तन्न चरम-

अ २ गु गु ३

निषेकपर्य्यंतमेकैक स्वचयहीनमागुत्तं पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगुणहान्यायाममात्रचयहीनमप्पु-

---

स । ततः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्त-

अ

राश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । स । अ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति स । अ तच्च

अ । २ अ । २ गु

स । अ

रूपोनगुणहान्यर्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसम्बन्धिचयो भवति । अ । २ । गु । गु ३ ।

२

स । अ । गु २

अयं च दोगुणहान्या गुणितः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । अ । २ गु । गु । ३ ततः स्वचरम-

२

निषेकपर्यन्तं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगुणहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुण-

---

गुणहानिसे गुणित चयप्रमाण अन्तिम निषेक होता है। इसी प्रकार द्वितीय आदि गुणहानियोंमें अपने-अपने द्रव्यकी निषेक रचना करना। अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणहानिसे भाजित करनेपर मध्यमधन होता है। इसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिसे भाग देनेपर उसकी चरम गुणहानिका चय होता है। इसको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है। उससे ऊपर अपने एक-एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छ प्रमाण चय हीन होता है तब एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चय प्रमाण अन्तिम निषेक होता है। इस प्रकार कार्मणशरीरकी सर्वोत्कृष्ट स्थितिगत एक समयप्रबद्धको

१. ब प्रथमनिषेको भवति चयो भवति ।

दरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणमक्कु स अ गु मी प्रकारदिं
अ २ गु गु ३
२

द्वितीयादिगुणहानिगळोळु निषेकंगळोलु तंतम्म द्रव्यंगळगे रचनेयं माडि चरमगुणहानिद्रव्यमनिद
स नद्धाणेत्यादिविधानदिंदं गुणहानियिंदं भागिसलु मध्यमधनमक्कु स मी मध्यम-
अ अ गु
धनमं रूऊणद्धाणद्धणेत्यादिविधानदिं रूपोनगुणहान्यर्द्धहीनदोगुणहानियिंदु भागिसुत्तिरलु
५ तच्चरमगुणहानिचयमक्कु । स मी चयमं दोगुणहानियिंदं गुणिसलु प्रथम-
अ गु गु ३
२

निषेकमक्कुं स गु २ तत्तो विसेसहीणकममें दु मेले तन्नेकैकचयहीनमागुत्तं
अ गु गु ३
२

पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्रमितं

स । अ । गु
हानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु स्वस्य द्रव्यस्य
२

स स
निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं अ , गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति अ । गु । इदं च रूपोन-
स
१० गुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति अ । गु । गु । ३ । अयं च दोगुण-
स । गु २ । २
हान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति—अ । गु । गु । ३ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरम-
२

समस्त गुणहानियोंकी रचना जानना। इस प्रकार प्रथम आदि गुणहानियोंका द्रव्य, उनका चय और निषेक उत्तरोत्तर आधे-आधे होते जाते हैं ॥२५३॥

विशेषार्थ—कार्मण शरीरकी स्थितिमें आबाधाकाल भी सम्मिलित है। अतः आबाधा
१५ रहित स्थितिमें गुणहानिका जितना प्रमाण होता है, उतने समय पर्यन्त प्रथम गुणहानि कही जाती है। तथा विवक्षित समयप्रबद्धके जितने परमाणु प्रथम समयमें निर्जीर्ण होते हैं, उनका नाम प्रथम निषेक है। दूसरे समयमें जितने परमाणुओंकी निर्जरा हो, उनका नाम द्वितीय निषेक है। इस प्रकार प्रथम गुणहानिके अन्तपर्यन्त जानना। उसके बाद अनन्तर समयसे लगाकर द्वितीय गुणहानि होती है। उसमें भी उक्त प्रकारसे प्रथम निषेक आदि जानना।

चरमनिषेकप्रमाणमक्कु स। गु इंतु कार्म्मणशरीरसर्व्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयबद्ध-
अ गु गु ३
२

समयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासमिदु :— ५

स अ गु अ २ गु गु ३ ० २ ० ० स अ गु २ अ २ गु गु ३ २	स अ गु अ २।२। गु गु ३ ० २ ० ० स अ गु २ अ २।२। गु गु ३ २	००० छे व छे ००००	स २ गु अ गु गु ३ ० २ ० ० स २ गु २ अ गु गु ३ २	स गु अ गु गु ३ ० २ ० ० स गु २ अ गु गु ३ २
स अ अ २	स अ अ २।२	००००	स २ अ	स २ अ
प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि		द्वि चरम गुणहानि	चरम गुणहानि

१०

स गु १५
अ । गु ।
निषेको रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्रमितश्चरमनिषेको भवति
गु ३ एवं कार्मणशरीरसर्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोऽयं.....
२

स। अ। गु अ। २। गु। गु। ३ ० २ ० ० स। अ। गु २ अ। २। गु। गु ३ स। अ २ अ। २	स। अ। गु। अ। २।२। गु। गु। ३ ० २ ० ० स। अ। गु। २ अ। २। २ गु। गु ३ स, अ २ अ, २, २	० ० ० छे व छे ० ० ० ० ००	स, २, गु अ, गु, गु ३ ० २ ० ० स, २, गु, २, अ गु, गु, ३, स २ २ अ,	स, गु, अ, गु, गु, ३, ० २ ० ० स, गु, २ अ, गु, गु, ३ स २ अ,

२०

इंतो प्रथमादिगुणहानिद्रव्यंगळुं विशेषंगळुं निषेकंगळुमर्द्धार्द्धक्रमंगळरियल्पडुवुवु ।
अनंतरमौदारिकादिसमयप्रबद्धंगळ्गे बंधोदयसत्वाऽवस्थयोळु द्रव्यप्रमाणमं पेळ्दपं :—

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥२५४॥

एकं समयप्रबद्धं बध्नाति एक उदेति चरमे । गुणहानीनां द्वयर्द्धः समयप्रबद्धः भवेत्सत्त्वं ॥

औदारिकादिशरीरंगळोळु तैजसकार्म्मणशरीरंगळ्गनादिसंबंधत्वदिंद सर्व्वदा बंधोदयसत्त्वसंभवमप्पुदरिंदं जीवं मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तकमप्प तैजसेयमुमं कार्म्मणेयमुमं प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धमं बध्नाति तैजसशरीररूपतेयुमं ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्मस्वरूपतेयमनेयिदिसुगुं । प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धमुमुदेति फलदानपरिणतेयिंदं परिणमिसि स्वफलमं कोट्टु तैजसशरीररूपतेयुमं कर्मरूपतेयुमं त्यजिसि गलिसुगुमेंबुदत्थं ।

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥२५३॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बन्धोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

औदारिकादिशरीराणां मध्ये तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबद्धत्वेन सर्वदा बन्धोदयसत्त्वसंभवात् जीवो मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तं तैजसं कार्मणीयं च प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धं बध्नाति—तैजसशरीररूपतां ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरूपतां च नयति, प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धमुदेति च स्वफलदानपरिणत्या परिणम्य फलं दत्त्वा तैजसशरीररूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः । विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमनिषेके किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवति, परमार्थतस्तु एतावत्सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभवतीत्यर्थः । औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धानां विशेषोऽस्ति । स कः ? तच्छरीरद्वयग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यन्तं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीवः प्रतिसमयमेकैकं तच्छरीरसमयप्रबद्धं बध्नाति

प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य, चय आदि अपनी-अपनी पूर्व गुणहानिसे उत्तरोत्तर आधा-आधा होता जाता है । इसी तरह औदारिक आदिका भी जानना । किन्तु उनकी स्थितिमें आबाधाकाल नहीं होता, अतः अपनी स्थितिके प्रथम समयसे ही निषेक रचनाका क्रम चलता है ।

आगे औदारिक आदि समयप्रबद्धोंके बन्ध, उदय और सत्त्व अवस्थामें द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

औदारिक आदि पाँच शरीरोंमें तैजस और कार्मण शरीरका जीवके साथ अनादि सम्बन्ध होनेसे सर्वदा बन्ध, उदय और सत्त्व रहता है । अतः जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणामके निमित्तसे प्रतिसमय तैजस और कार्मण सम्बन्धी एक-एक समयप्रबद्धको बाँधता है । अर्थात् पुद्गलवर्गणाओंको तैजस शरीररूप और ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूप परिणमाता है । प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता है और अपने फल देने रूप परिणतिसे परिणमन करके फल देकर तैजस शरीररूपता और कार्मणरूपताको छोड़कर निर्जीर्ण होते हैं । विवक्षित समयप्रबद्धकी स्थितिके अन्तिम निषेकमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य सत्तामें रहता है । परमार्थसे तो इतने द्रव्यकी सत्ता प्रतिसमय रहती है । औदारिक और वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्धोंमें कुछ विशेषता है । उन दोनों शरीरोंके ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त शरीरनामकर्मके उदयसे विशिष्ट जीव प्रतिसमय उस शरीरका एक-एक समयप्रबद्ध बाँधता है अर्थात् उस समयप्रबद्धको औदारिक या वैक्रियिक शरीररूपसे परिणमाता है ।

विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमस्थितिनिषेकदोळु किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रसत्वद्रव्यमक्कुं परमार्थवृत्तियिदं इनितु सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभविसुगुमें बुदर्थं ।

औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धंगळगे विशेषमुंटदें तेंदोडे तच्छरीरद्वयगहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टजीवं प्रतिसमयमेकैकतच्छरीरसमयप्रबद्धमं बध्नाति तत्तच्छरीरस्वरूपतयनेय्दिसुगुमुदयमंतल्तु । मत्तें तेंदोडे शरीरग्रहणप्रथमसमयदोळु बद्धमाद समयप्रबद्धदोळु प्रथमनिषेकमोंदुदयिसुगुं । तदेकदेशस्तद्ग्रहणेन गृह्यते एंदितौपचारिकन्यायमनाश्रयिसि प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेति एंदितु पेळल्पट्टुदु । द्वितीयसमयदोळु प्रथमसमयसमयप्रबद्धद द्वितीयनिषेकमुं द्वितीयसमयसमयप्रबद्धद प्रथमनिषेकमुमुदयिसुगुमितु तृतीयादिसमयंगळोळु मुंपेळ्दंतेकैकनिषेकवृद्धियिदमुदयिसुगुं चरमसमयदोळुदयमुं सत्वसंचयमुं द्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रमक्कुमाहारकशरीरक्कमुमी क्रममेयक्कुमिदु विशेषं आहारकशरीरग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वस्थितियंतर्मुहूर्त्तकालावसानसमयदोळु किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यक्कुदयमुं सत्वसंचयमं युगपत्तक्कुमें बी विशेषमरियल्पडुगुं ।

अनंतरमौदारिकवैक्रियिकशरीरंगळगे विशेषमं पेळ्दपं ।

तत्तच्छरीररूपेण परिणमयतीत्यर्थः । तर्हि उदयः कियान् ? इति चेदुच्यते—शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः उदेति तदेकदेशस्य उपचारेण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेतीति कथनात् । द्वितीयसमये प्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः एवं द्वौ उदयतः । एवं तृतीयादिसमयेषु प्राग्वदेकैकनिषेकवृद्ध्योदयक्रमेण चरमसमये उदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्द्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति । आचार्येणापि तथा वक्ष्यते । आहारकशरीरस्याप्येवमेव । अयं तु विशेषः, तच्छरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थित्यन्तर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः ॥२५४॥ अथौदारिकवैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबन्धोदयसत्वविशेषमाह—

शंका—तब उदय कितना होता है ?

समाधान—शरीरग्रहणके प्रथम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका प्रथम निषेक उदयमें आता है । समयप्रबद्धके एकदेशको उपचारसे समयप्रबद्ध मानकर यह कहा है कि प्रतिसमय एक समयप्रबद्धका उदय होता है । दूसरे समयमें प्रथम समयमें बँधे समयप्रबद्धका दूसरा निषेक और दूसरे समयमें बँधे समयप्रबद्धका प्रथम निषेक इस तरह दो निषेकोंका उदय होता है । इसी तरह तीसरे आदि समयोंमें पहलेकी तरह एक-एक निषेककी वृद्धिके उदयके क्रमसे अन्तिम समयमें उदय और सत्त्वका संचय एक साथ डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र होता है । आचार्य भी आगे ऐसा कहेंगे । आहारक शरीरका भी ऐसा ही है । किन्तु यह विशेष है कि आहारक शरीरके ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी स्थिति अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तिम समयमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यका उदय और सत्त्वसंचय एक साथ होता है ॥२५४॥

आगे औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंके स्थितिबन्ध उदय और सत्त्वमें विशेष कहते हैं—

---

१. ब भवति । आहारकशरीरस्य तु तं ।

णवरि य दुसरीराणं गलिदवसेसाउमेत्तट्ठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

विशेषोऽस्ति द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रः स्थितिबंधः। गुणहानीनां द्वयर्धः संचयः उदयश्चचरमे ॥

औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयक्कं शरीरग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वस्थितिचरमसमयपर्य्यंतं बध्यमानशरीरसमयप्रबद्धंगळगे गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुमदेंतेंदोडे शरीरग्रहणप्रथमसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रमक्कुं। द्वितीयसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुं। तृतीयसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के द्विसमयोनस्वायुस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुं। इंतु चतुर्त्थाद्युत्तरोत्तरसमयगळोळु कट्टिद समयप्रबद्धंगळगे स्थितिबंधंगळु गलितावशेषायुःप्रमितंगळेदरियल्पडुवुवु। चरमसमयदोळु कट्टिद समयप्रबद्धक्के स्थितिबंधमेकसमयमात्रमक्कुं प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं कट्टिद समयप्रबद्धंगळगे स्वायुरवसानसमयमनतिक्रमिसि स्थितिसत्वासंभवमप्पुदरिंदं।

चरमसमयदोळ्गलितावशेषसर्वसमयप्रबद्धंगळ्किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसंचयंगळो-म्मोदलोळे उदयमक्कुमदरिना चरमसमयं दत्तणि मुंदणसमयदोळु जीवक्के तच्छरीरद्वयदोळिरि-विल्लवप्पुदरिंदं। देवर्क्कंरोळं नारकरोलं वैक्रियिशरीर संचयमक्कुं, मनुष्यरोलं तिर्य्यंचरोळमौदारिकशरीरसंचयमक्कुमौदारिकशरीरसंचयमावेडेयोळं तप्पसामग्रियप्पावश्यकंगळनुळ्ळनोळुत्कृष्टसंचयमक्कुमेंदोडे :—

औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयस्य[3] शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यन्तं बध्यमानशरीरसमयप्रबद्धानां स्थितिबन्धः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवति। तद्यथा—शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः। द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः, एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः द्विसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। एवं चतुर्थाद्युत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबन्धो गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवन् चरमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः एकसमयमात्रो भवति। प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्तं बद्धानां समयप्रबद्धानां स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य अवस्थित्यसंभवात् चरमसमये गलितावशेषसर्वसमयप्रबद्धानां किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्राणां देवनारकयोर्वैक्रियिकशरीरस्य तिर्यग्मनुष्ययोरौदारिकशरीरस्य च

औदारिक और वैक्रियिक शरीरका शरीरग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी स्थितिके अन्तिम समय पर्यन्त बँधनेवाले समयप्रबद्धोंका स्थितिबन्ध गलनेसे जितनी आयु शेष रहती है, उतनी स्थितिको लिये हुए होता है। जैसे, शरीरग्रहणके प्रथम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका स्थितिबन्ध अपनी सम्पूर्ण आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। दूसरे समयमें बद्ध समयप्रबद्धका स्थितिबन्ध एक समय कम अपनी आयुकी स्थितिमात्र होता है। तीसरे समयमें बद्ध समयप्रबद्धका स्थितिबन्ध दो समय कम अपनी आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। इसी तरह चतुर्थ आदि उत्तरोत्तर समयोंमें बद्ध समयप्रबद्धोंका स्थितिबन्ध गलनेसे शेष रही अपनी आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। तथा अन्तिम समयमें जो समयप्रबद्ध बँधता है, उसका स्थितिबन्ध एक समय मात्र होता है। प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त बद्ध समय प्रबद्धोंका अपनी आयुके अन्तिम समयके बाद ठहरे रहना असम्भव होनेसे अन्तिम समयमें निर्जरासे

---

१. म °य दोले जीवक्के। २. म °दोलिरिप्पु। ३. ब °कशरीरग्रहण°।

ओरालियवरसंचं देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स ।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औदारिकवरसंचयो देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य । तिरश्चो मनुष्यस्य भवेत् चरमद्विचरमयोः त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥

आवनोर्व्व जीवनु त्रिपल्योपमायुष्यमनुळ्ळ देवोत्तरकुरुगळोळु तिर्य्यंचनुं मेणु मनुष्यनुमागि पुट्टिदवनु तन्नुत्पन्नप्रथमसमयदोळुत्कृष्टयोगदिंदमा हरिसिदातनुत्कृष्टयोगवृद्धियिंद वर्द्धितनुत्कृष्टयोगस्थानंगळं बहुवारं पोद्दुगुं । जघन्ययोगस्थानंगळं बहुवारं पोर्द्दनुं तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानंगळनेय्दुगुं । तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानंगळं बहुवारं पोर्द्दनुं अधस्तनस्थितिगळ निषेकक्के जघन्यपदमं माळपनुपरितनपरमाणुगळनपकर्षिसियधस्तनभागदोळु स्तोकंगळं निक्षेपिसुगमेंबुदर्त्थं । उपरितनस्थितिनिषेकगळुत्कृष्टपदमं माळपनुपरितन भागदोळु अधस्तनपरमाणुगळनुत्कर्षिसि बहुपरमाणुगळं क्षेपिसुगुमेंबुदर्त्थं ।

अंतरदोळु नडुवे विकुर्व्वणंगेय्यदनुमंतरदोळु नखच्छेदमं माडल्पडदनुमल्पंगळप्प भाषादिगळुमल्पंगळप्प मनोयोगादिगळुं स्तोकंगळप्प वाग्योगशलाकेगळं स्तोकंगळप्प मनोयोगशलाकेगळु-

---

संचय उदयश्च युगपदेव भवति ॥२५५॥ औदारिकशरीरस्य कस्मिन् स्थाने कीदृक्सामग्रीरूपावश्यकयुतजीवे उत्कृष्टसंचयः स्यात् ? इति चेदाह—

यो जीवः त्रिपल्योपमायुष्को देवोत्तरकुर्वोः तिर्यङ् मनुष्यो वा भूत्वा उत्पन्नः तदुत्पत्तिप्रथमसमये उत्कृष्टयोगेन आहारितः उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः उत्कृष्टानि योगस्थानानि बहुशो गच्छति जघन्यानि न गच्छति । तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानानि बहुवारं गृह्णाति तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति । अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति—उपरितनपरमाणूनपकृष्य अधस्तनभागस्तोकान्निक्षिपतीत्यर्थः । उपरितनस्थितिनिषेकानामुत्कृष्टपदं करोति—उपरितनभागे अधस्तनपरमाणूनुत्कृष्य बहून्निक्षिपतीत्यर्थः । अन्तरे गमनविकुर्वणां न प्राप्नोति अन्तरे नखच्छेदं न करोति—अल्पा भाषाद्धाः अल्पा मनोयोगाद्धाः स्तोकाः

शेष रहे सब कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित प्रमाण समयप्रबद्धोंका देव और नारकियोंमें वैक्रियिक शरीरका तथा तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीरका संचय और उदय एक साथ होता है ॥२५५॥

आगे औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय किस स्थानमें किस प्रकारकी सामग्रीसे युक्त जीवके होता है, यह कहते हैं—

जो जीव तीन पल्यकी आयु लेकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें तिर्यंच या मनुष्य होकर उत्पन्न हुआ । उत्पत्तिके प्रथम समयमें उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया । वह उत्कृष्ट वृद्धिसे बढ़े हुए उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बार ग्रहण करता है, जघन्य योगस्थानोंको ग्रहण नहीं करता । अर्थात् अपने योग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंको तो बहुत बार ग्रहण करता है, किन्तु अपने योग्य जघन्य योगस्थानोंको बहुत बार ग्रहण नहीं करता । नीचेकी स्थितियोंके निषेकोंका जघन्यपद करता है अर्थात् ऊपरके निषेक सम्बन्धी परमाणुओंका अपकर्षण करके स्थिति घटाकर नीचेके निषेकोंमें क्षेपण करता है । और ऊपरकी स्थितिके निषेकोंका उत्कृष्ट पद करता है । अर्थात् नीचेके निषेकोंके बहुतसे परमाणुओंका उत्कर्षण करके उनकी स्थितिको

---

१. म °गलनेक्षेपि° ।

मितंतर्म्मुहूर्त्तमात्रजीवितावशेषमागुत्तिरलु योगयवमध्यदुपरिमभागार्द्धदोळंतर्म्मुहूर्त्तमिर्द्दितं चरमजीवगुणहानिस्थानांतरदोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रकालमिर्द्दितं द्विचरमचरमसमयंगळोळुत्कृष्टयोगस्थानमं पोद्दुगुं। आतंगौदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुं। वैक्रियिकशरीरक्केयुमिते पेळल्पडुवुदु ओंदु विशेषमुंटावुदेंदोडे अंतरे नखच्छेदो न कृतः एंबी विशेषणमं पेळलागदु।

वेगुव्वियवरसंचं बावीससमुद्द आरणदुगम्मि।
जम्हा वरजोगस्स य वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा ॥२५७॥

वैक्रियिकवरसंचयो द्वाविंशतिसमुद्रारणद्वये। यस्माद्वरयोगस्य च वारा अन्यत्र न हि बहुकाः॥

आरणाच्युतकल्पद्वयदुपरितनपटलवर्त्तिगळोळु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिसंभवमप्पुदरिंदं तत्पटलवर्त्तिगळप्प देवर्क्कळोळु वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्टसंचयमक्कुं अन्यत्राधस्तनपटलंगळोळमुपरितनपटलंगळोळं नारकरोळं वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्टसंचयं संभविसुवुदेकेंदोडन्यत्र न हि बहुकायोगवाराः यस्मात् आवुदों दु कारणदिंदमारणाच्युतकल्पद्वयदिनन्यत्र वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्ट-

---

वाग्योगशलाकाः स्तोका मनोयोगशलाकाः। एवमन्तर्मुहूर्तमात्रे जीवितावशेषे सति योगयवमध्यस्योपरिमभागार्धान्तर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थितः द्विचरमचरमसमययोरुत्कृष्टयोगस्थानं गतः। तस्य औदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति। वैक्रियिकशरीरस्याप्येवमेव वक्तव्यं किन्तु अन्तरे नखच्छेदो न कृतः इत्येतद्विशेषणं न संभवति ॥२५६॥

वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः आरणाच्युतकल्पद्वयस्य उपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु एव देवेषु संभवति नान्यत्र अधस्तनोपरितनपटलेषु नारकेषु च। कुतः (वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो न भवति। कुतो नास्तीत्याशङ्क्य उत्तरं कथयति) यस्मात्कारणात् आरणाच्युतकल्पद्वयादन्यत्र

बढ़ाकर ऊपरके निषेकोंमें क्षेपण करता है। अन्तरमें गमन विकुर्वणा नहीं करता, नखच्छेद नहीं करता? उसके मनोयोगका काल अल्प है, वचनयोगका काल अल्प है, वचनयोगके बार थोड़े हैं, मनोयोगके बार थोड़े हैं अर्थात् काययोगके बार बहुत हैं, काल भी बहुत है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवन शेष रहनेपर योगयव मध्यके ऊपरके भागार्धमें अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थित रहे, फिर अन्तिम जीव गुणहानि स्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक स्थित रहे, द्विचरम और चरम समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो। उसके औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय होता है। वैक्रियिक शरीरका भी उत्कृष्ट संचय इसी प्रकार कहना चाहिए। किन्तु 'अन्तरमें नखच्छेद नहीं करता' यह विशेषण यहाँ सम्भव नहीं है ॥२५६॥

विशेषार्थ—पहले उत्कृष्ट संचयके लिए जो छह आवश्यक कहे थे, उन्हींको ऊपर कहा है। उत्कृष्ट स्थिति होनी चाहिए सो औदारिककी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य होती है। उत्कृष्ट योग होना चाहिए, उत्कर्षण-अपकर्षण होना चाहिए, उत्कृष्ट योगके लिए उत्कृष्ट संक्लेश होना चाहिए। ये ही सब ऊपर कहे हैं। अन्तमें जो गमन विकुर्वणा और नखच्छेद कहा है, पं. टोडरमलजी साहब भी उसे स्पष्ट नहीं कर सके, उनके भी जाननेमें यह नहीं आये। यवमध्य रचना कर्मकाण्डके योग प्रकरणमें आयेगी।

वैक्रियिक शरीरका उत्कृष्ट संचय आरण और अच्युत कल्पके ऊपरके पटलमें रहनेवाले बाईस सागरकी स्थितिवाले देवोंमें ही होता है। अन्यत्र नीचे और ऊपरके पटलोंमें

---

१ व. गच्छति।

योगवारंगळ् बहुकंगळु [1]संभविसवु । तद्योग्यसामग्र्यंतरंगळुं बहुवारं संभविसवदु कारणमागि तदारणाच्युतकल्पद्वयदोळे बहुवारोत्कृष्टयोगादि सामग्र्यंतरसंभवमप्पुदरिंदं वैक्रियिकशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुमेंदु निश्चयिसल्पडुवुदु । च शब्दादिदं तद्योग्यसामग्र्यंतरं संचिसल्पट्टुदु ।

अनंतरं तैजसशरीरकार्म्मणशरीरद्वयोत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमं पेळ्दपं :—

तेजासरीरजेट्ठं सत्तमचरिमम्मि बिदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य णिरए बहुवारभमियस्स ॥२५८॥

तैजसशरीरोत्कृष्टं सप्तम्यां चरमे द्वितीयवारस्य । कार्म्मणस्यापि तत्रैव च निरये बहुवारान् भ्रमितस्य ॥

तैजसशरीरक्कमुमौदारिकशरीरक्कं तंते वक्तव्यमप्पुदु विशेषमुंटदावुदेंदोडे सप्तमपृथ्वियोळु वारद्वयं पुट्टिदं-गेंदितु पेळल्पडुवुदु ।

आहारशरीरक्कमुमौदारिकशरीरक्कंतंते पेळल्पडुगुं विशेषमुंटदावुदेंदोडे :—प्रमत्तविरतंगाहारशरीरमनुत्थापिसिदंगेंदितु वक्तव्यमक्कुं । कार्म्मणशरीरसंचयसामग्रिविशेषमुं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडा सप्तमपृथ्वियोळे नरकंगळोळु बहुवारं भ्रमिसल्पट्टंगेंदु पेळ्दुवाव प्रकारदिनेंदोडे आवनोर्व जीवं बादरपृथ्वीकायंगळोळंतर्म्मुहूर्त्तोनपूर्व्वकोटिपृथक्त्वदिनधिकमप्प द्विसहस्रसागरोपमहीनकर्म्म-

---

वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा[2] चशब्दात्तद्योग्यसामग्र्यन्तरं न संभवति तस्मात् कारणात् ॥२५७॥ अथ तैजसशरीरकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमाह—

तैजसशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः औदारिकशरीरवज्ज्ञातव्यः । किन्तु सप्तमपृथिव्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्यैव [जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो] भवतीति विशेषः । आहारकशरीरस्यापि औदारिकशरीरवत् किन्तु प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरमुत्थापितस्यैव भवति । कार्मणशरीरस्य तु सप्तमपृथिव्यामेव नारकेषु बहुवारं भ्रमितस्यैव [चरमवारे कार्मणशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो] भवति [अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्यासंभवात्] केन कारणेन[3] ? इति चेद्—कश्चिज्जीवः बादरपृथ्वीकायेष्वन्तर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटिपृथक्त्वाधिकद्विसहस्रसागरोपम-

---

रहनेवाले देवों और नारकियोंमें नहीं होता; क्योंकि आरण और अच्युत कल्पोंको छोड़कर अन्यत्र उत्कृष्ट योगके बार बहुत नहीं होते । तथा 'च' शब्दसे उत्कृष्ट संचयके योग्य अन्य सामग्री भी बहुत बार अन्यत्र नहीं होती । इसलिए यहीं उत्कृष्ट संचय होता है ॥२५७॥

आगे तैजसशरीर और कार्मणशरीरके उत्कृष्ट संचयका स्थान कहते हैं—

तैजस शरीरका उत्कृष्ट संचय औदारिक शरीरकी तरह जानना । किन्तु इतना विशेष है कि सातवीं पृथ्वीमें दूसरी बार उत्पन्न हुए जीवके तैजस शरीरका उत्कृष्ट संचय होता है । आहारक शरीरका भी औदारिक शरीरवत् जानना । किन्तु आहारक शरीरकी उत्थापना करते हुए प्रमत्त विरतके ही उसका उत्कृष्ट संचय होता है । कार्मण शरीरका उत्कृष्ट संचय सातवीं पृथिवीमें ही जो नरकोंमें बहुत बार भ्रमण कर चुका है, उसके अन्तिम बारमें होता है । क्योंकि अन्यत्र उसके योग्य उत्कृष्ट संक्लेश नहीं होता । क्यों नहीं होता ? यह बतलाते हैं—कोई जीव बादर पृथ्वीकायोंमें अन्तर्मुहूर्तहीन पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरसे न्यून कर्मकी स्थितिको प्राप्त हुआ । वहाँ भवस्थितिको भोगते हुए उसने पर्याप्त भव थोड़े

---

१. म घटयिसवु । २. °वारा बहवो न सन्ति च शब्दात्तद्योग्यसामग्र्यन्तरं च बहुवारं न संभवति—मु ।
३. ब प्रकारेण इति चेत् यो जीवो ।

स्थितियोळिर्द्द बादरपृथ्वीकायभवंगळनु पालिसुतिप्पंगपर्य्याप्तभवंगळल्पंगळु पर्य्याप्तभवंगळु बहुकंगळु पर्य्याप्ताद्धेगळदीर्घंगळपर्य्याप्ताद्धेगळु ह्रस्वंगळागळोम्मे आयुष्यमं कट्टुगुमागळागळ् तत्प्रायोग्यजघन्ययोगदिदं कट्टुगु उत्कृष्टयोगदिदमाहारिसुगुमुत्कृष्टयोगदिदं पेच्चुगुं। पलवुं पलवुं सूळ्गळुत्कृष्टयोगस्थानमुं पोद्दुगुं जघन्ययोगस्थानंगळं पलवुं सूळ् पोद्ददनुं पलवुं पलवुं सूळ् बहुसंक्लेशपरिणामपरिणतनुं विशुद्धनागुत्तलुं तत्प्रायोग्यजघन्यविशुद्धिविशिष्टनुमधस्तनस्थितिनिषेकंगळोळपकर्षणविधानदिदमुपरितनपरमाणुगळं स्तोकंगळं प्रक्षेपिसुगुमुपरितननिषेकंगळोळुत्कर्षणविधानदिदमधस्तनपरमाणुगळं बहुकंगळं प्रक्षेपिसुगुमितु परिभ्रमिसि ऋजुगतियिंदमे बादरत्रसपर्य्याप्तकरोळ् पुट्टियुमल्लियुं तोळल्वंगे पर्य्याप्तभवंगळ् बहुकंगळपर्य्याप्तभवंगळु स्तोकंगळ् पर्य्याप्ताद्धेगळदीर्घंगळपर्य्याप्ताद्धेगळु ह्रस्वंगळु। यदा यदायुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्यजघन्ययोगेन बध्नाति इत्यादि पूर्वोक्तसर्वविशेषणविशिष्टनितु परिभ्रमिसियुं पश्चिमभवग्रहणदोळेळनेय नरकद नारकरोळ् पुट्टि तद्भवग्रहणप्रथमसमयदोळु तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगदिदमाहरिसियुत्कृष्टयोगवृद्धियिंद वर्द्धितं सर्वलघुसर्वपर्य्याप्तिगळनंतर्मुहूर्त्तदोळ् नेरेदा नरकदोळु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यकमं संक्लेशावश्यकमनेय्दिर्दनितु परिभ्रमिसि जीवितव्यं स्तोकावशेषमागुत्तिरलु योगयवमध्यदमेगणभागदोळगंत-

---

हीनकर्मस्थितिस्थितः तत्र भवस्थितिमनुपालयमानस्य स्तोकाः अपर्याप्तभवाः बहवः पर्याप्तभवाः दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः। यदा यदा आयुष्यं बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येन जघन्ययोगेन बध्नाति। उत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः बहुशो बहुशः उत्कृष्टयोगस्थानानि गतः जघन्ययोगस्थानानि न गतः बहुशो बहुशो बहुक्लेशपरिणामपरिणतः विशुध्यन् तत्प्रायोग्यविशुद्धया विशुध्यति। अधस्तनीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति। उपरितनीनां स्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं करोति। एवं संसरित्वा बादरत्रसपर्याप्तकेषूत्पन्नः। तत्र च संसरमाणस्य बहवः पर्याप्तभवाः स्तोकाः अपर्याप्तभवा दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः, ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः। एवं संसरित्वा पश्चिमे भवग्रहणे अधःसप्तमपृथ्वीनारकेषूत्पन्नः तद्भवग्रहणप्रथमसमये तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टयोगवृद्धया वर्धितः अन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः प्राप्तः। तत्र नरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यकं संक्लेशावश्यकं च प्राप्तः। एवं परिभ्रम्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे सति योगयव-

---

धारण किये और पर्याप्त भव बहुत धारण किये। अतः पर्याप्तकाल बहुत हुआ और अपर्याप्तकाल थोड़ा हुआ। जब-जब आयुबन्ध करता है, तब-तब उसके योग्य जघन्य योगसे करता है। उत्कृष्ट योगसे आहारित और उत्कृष्ट वृद्धिसे वर्धित होता हुआ बहुत बार उत्कृष्ट योग स्थानोंको प्राप्त हुआ, जघन्ययोगस्थानोंको प्राप्त नहीं हुआ। बहुत बार बहुत संक्लेशरूप परिणामोंसे परिणत हुआ, विशुद्ध हुआ तो अपने योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता है। नीचेकी स्थितिके निषेकोंका जघन्यपद करता है और ऊपरकी स्थितिके निषेकोंका उत्कृष्ट पद करता है। इस प्रकार भ्रमण करके बादर-त्रस पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ भ्रमण करते हुए पर्याप्तके भव बहुत धारण किये, अपर्याप्तके भव थोड़े धारण किये। पर्याप्तका काल बहुत हुआ, अपर्याप्तका काल थोड़ा हुआ। इस प्रकार भ्रमण करके अन्तिम भव ग्रहण करते समय सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। उस भवको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे आहार ग्रहण किया, उत्कृष्ट योगकी वृद्धिसे बढ़ा। सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तमें सब पर्याप्तियोंको प्राप्त किया। उस नरकमें तैंतीस सागर काल तक आवश्यक योग और आवश्यक संक्लेशको प्राप्त हुआ। इस प्रकार भ्रमण करके थोड़ी आयु शेष रहनेपर योगयवमध्यके ऊपरके भागमें अन्तर्मुहूर्त तक स्थित रहकर जीवयवमध्य रचनाकी

र्मुहूर्त्तमिदर्द्दु चरमजीवगुणहानिस्थानांतरदोळावल्यसंख्यभागमात्रकालमिदर्द्दु त्रिचरमद्विचरम समयदोळुत्कृष्टसंक्लेशमं पोद्दि चरमद्विचरमसमयदोळुत्कृष्टयोगस्थानमं पोद्दि चरमसमयतद्भवस्थानादनातंगे कार्म्मणशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुं। यितौदारिकादिशरीरंगळुत्कृष्टसंचयसामग्रिविशेषमं पेळ्दनंतरं।

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं॥

एंदी गाथासूत्रमनाचार्य्यं त्रिकोणरचनेयं कटाक्षिसि पेळ्दनदें तेंदोडे एकसमयदोळोर्वजीवनिंदं कट्टल्पट्टोंदु समयप्रबद्धदस्थिति एप्पत्तुकोटिकोटिसागरोपममक्कुमदरोळाबाधार्वर्ज्जितस्थितिप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टस्थितिचरमसमयपर्य्यंतमिद्दं निषेकंगळु प्रतिसमयमेकैकनिषेकंगळे यथाक्रमदिनुदयिसला स्थितियनिते कालमेप्पत्तुकोटिसागरोपमकालकल्लदोंदु समयप्रबद्धमुदयिसि पोगदु कारणदिनेक्कं उदेदि एंदु प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धंगळं कट्टुवागळोंदोंदु समयप्रबद्धंगळुमुदयिसुववेंबिदें तु घटियिसुगुमें दोडनादिबंधनिबंधनबद्धविवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेक ।९। मुदयिसुवागळा समयप्रबद्धमं कट्टिदनंतरसमयदोळकट्टिद समयप्रबद्धद द्विचरमनिषेकमुदयिसुगुं।

मध्यस्य उपरितनभागे अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थित्वा त्रिचरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं संप्राप्य चरमद्विचरमसमये उत्कृष्टयोगस्थानं प्राप्य चरमसमयतद्भवस्थो जायते तस्य कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति। एवमौदारिक[-आदि-]शरीराणाम् उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषः कथितः। ननु एकैकसमये जीवेन बद्धैकैकसमयप्रबद्धस्य आबाधावर्जितस्वस्वस्थितिप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयमेकैकनिषेक एवोदेति कथमेकैकसमयप्रबद्ध उदेतीति प्रश्ने उच्यते—अनादिबन्धनिबन्धनबद्धविवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेकः ९ उदेति। तदा तदनन्तरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य द्विचरमनिषेकः उदेति १०, तदनन्तर-

---

अन्तिम गुणहानिरूप योगस्थानमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर आयुके अन्तसे पहले तीसरे और दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर अन्तिम समयमें तथा अन्तिमसे पहले समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त करके जब वह उस भवके अन्तिम समयमें स्थित होता है, तब उसके कार्मणशरीरका उत्कृष्ट संचय होता है। इस प्रकार औदारिक आदि शरीरोंके उत्कृष्ट संचयकी सामग्री विशेषका कथन किया।

शंका—एक-एक समयमें जीवके द्वारा बाँधे गये एक-एक समयप्रबद्धका आबाधारहित अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे लेकर उसके अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय एक-एक निषेकका ही उदय होता है। तब एक-एक समयप्रबद्धका उदय प्रतिसमय कहाँ हुआ?

समाधान—अनादि बन्धनके कारण बँधे विवक्षित समयप्रबद्धके अन्तिम निषेक ९ का उदय होता है। तब उसके अनन्तर समयमें बद्ध समयप्रबद्धका अन्तसे दूसरा निषेक १० का उदय होता है। उसके अनन्तर समयमें बद्ध समयप्रबद्धका अन्तसे तीसरा निषेक

---

१. ब स्थितः त्रिरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंचयो भवति।

तदनंतरसमयदोळ्कट्टिद समयप्रबद्धद त्रिचरमनिषेकमुदयिसुगुं ॥ ११ ॥ इंतु चतुर्थादिसमयंगळोळ् कट्टिद समयप्रबद्धंगळ चतुश्चरमादिनिषेकंगळ्गुदयमागुत्तं पोगलु विवक्षितसमयप्रबद्धदग्रभागदोळ्-तदाबाधाकालसमयमात्रनिषेकावशिष्टमादागळ्कट्टिद समयप्रबद्धद प्रथमनिषेकमुदयिसुगुमन्नेवरमितो दो दा विवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेकमुदयिसुवागळदुगूडिदो दु समयप्रबद्धमुदयिसुगुमें बाग-मोक्ति सुघटितमाय्तु । इंतो दु समयप्रबद्धं बंधमक्कुमो दुं समयप्रबद्धमुदयिसुगुमीयुदयसमयप्रबद्धं

समये बद्धसमयप्रबद्धस्य त्रिचरमनिषेकः उदेति ११ । एवं चतुर्थादिसमयेषु बद्धसमयप्रबद्धानां चतुश्चरमादि-निषेकोदयक्रमेण आबाधावर्जितविवक्षितस्थितिसमयमात्रस्थानेषु गत्वा चरमतत्समयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति । एवं विवक्षितसमये एकः समयप्रबद्धो बध्नाति एक उदेति किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं

११ का उदय होता है। इस प्रकार चतुर्थ आदि समयोंमें बद्ध समयप्रबद्धोंके अन्तसे चतुर्थ आदि निषेकोंके उदयके क्रमसे आबाधारहित विवक्षित स्थितिके जितने समय हों उतने स्थान जाकर उसके अन्तिम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका प्रथम निषेक उदयमें आता है। इस तरहसे विवक्षित समयमें एक समयप्रबद्धका बन्ध और एकका उदय होता है तथा कुछ कम डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धका सत्त्व रहता है। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

जिन समयप्रबद्धोंके सब निषेक गल गये,उनका तो उदय रहा ही नहीं। जिस समय-प्रबद्धके सैंतालीस निषेक गल गये, उसका अन्तिम निषेक नौका वर्तमानमें उदय होता है। जिस समयप्रबद्धके छियालीस निषेक गल गये,उसके दसका निषेक उदयमें आता है। इसी तरह जिस समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला,उसका प्रथम निषेक पाँच सौ बारह उदय-में आता है। इस तरह किसी भी एक विवक्षित समयमें सब निषेकोंका उदय होता है ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ । १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ । ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४ । ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८ । १४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६ । २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२ । इन सबको जोड़नेसे पूरे समयप्रबद्धका प्रमाण ६३०० होता है। आगे-आगे जैसे-जैसे नवीन समयप्रबद्धके निषेकोंका उदय होता जाता है, वैसे-वैसे पुराने समयप्रबद्धके निषेकोंके उदयका अभाव होता जाता है। जैसे आगामी समयमें नवीन समयप्रबद्धका ५१२ का निषेक उदयमें आयेगा,तो वर्तमान समयमें जिस समयप्रबद्धका ५१२ का निषेक उदयमें है, आगामी समयमें उसका दूसरा निषेक चार सौ अस्सीका उदय होगा। जिस समयप्रबद्धका चार सौ अस्सीका निषेक वर्तमानमें उदयमें है, आगामी समयमें उसका तीसरा निषेक चार सौ अड़तालीसका उदय होगा। इसी तरह जिस समयप्रबद्धका अन्तिम नौका निषेक उदयमें है,उसका आगामी समयमें अभाव हो जायेगा। प्रत्येक समयमें यही क्रम चलता है। अतः प्रत्येक समयमें पूर्वबद्ध एक-एक समयप्रबद्धका क्रमसे एक-एक निषेक मिलकर एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता जाता है। अन्तमें अवशेष

सहितमागि मेलणमेलण[1] समयनिषेकंगळं संकलिसिदोडे तत्समयदोळु द्वयर्द्धगुणहानि किंचिदून समयप्रबद्धंगळु सत्वमक्कुमिदक्के संदृष्टियिदु :—

भवति । तत्संदृष्टिरियम्—

रहे,सब निषेकोंको जोड़नेसे कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्तामें शेष रहता है। उसे इस प्रकार जानना—जिस समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला, उसके सब निषेक नीचे एक पंक्तिमें लिखिए। उसके ऊपर जिस समयप्रबद्धका एक निषेक गल गया, उसके पहले निषेकको छोड़कर शेष सब निषेक एक पंक्तिमें लिखिये। उसके ऊपर जिस समयप्रबद्धके दो निषेक गल गये हों,उसके दो निषेकोंके विना शेष सब निषेक एक पंक्तिमें लिखिये। इसी तरह ऊपर-ऊपर एक-एक निषेक घटते हुए शेष सब निषेकोंको एक-एक पंक्तिमें लिखते जाइये। सबसे ऊपर जिस समयप्रबद्धका केवल एक अन्तिम ही निषेक शेष रहा हो, उसे लिखना। ऐसा करनेसे त्रिकोण रचना होती है। जैसे सबसे नीचे अड़तालीस निषेक एक पंक्तिमें लिखे। उसके ऊपर पाँचसौ बारहके विना शेष ४७ निषेक लिखे। उसके ऊपर पाँचसौ बारह और चारसौ अस्सीके विना शेष छियालीस निषेक लिखे। इसी तरह ऊपर-ऊपर एक-एक निषेक घटते हुए लिखे। अन्तमें सबसे ऊपर केवल नौका अंक लिखा। इस तरह यह तिकोनी रचना होती है। इसका जोड़ समस्त सत्त्व द्रव्यका प्रमाण होता है जो कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। पहले जो गुणहानि आयामका प्रमाण कहा है,उसमें उसका आधा मिलानेसे डेढ़ गुणहानि होती है। उसमें कुछ कम संख्यात गुणी पल्यकी वर्गशलाकासे अधिक गुणहानिका अठारहवाँ भाग घटानेपर जो प्रमाण होता है उसे कुछ कम डेढ़ गुणहानि कहते हैं। उससे समयप्रबद्धके परमाणुओंको गुणा करनेसे जो प्रमाण हो,उतना ही त्रिकोण रचनाके परमाणुओंको जोड़नेसे प्रमाण होता है। जैसे अंक संदृष्टिके आधारपर रचित त्रिकोण रचनाकी सब पंक्तियोंको जोड़नेसे इकहत्तर हजार तीनसौ चार होता है। और गुणहानि आयाम आठमें उसका आधा चार मिलानेसे डेढ़ गुणहानिका प्रमाण बारह होता है। उससे समयप्रबद्धके परमाणु तिरेसठसौको गुणा करनेसे छिहत्तर हजार छहसौ होता है। त्रिकोण रचनाका जोड़ इससे कम है। इसलिये कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धका सत्त्व कहा है। यहाँ त्रिकोण रचना और उसके जोड़को उदाहरणके रूपमें अंकित करते हैं;यह केवल अन्तिम गुणहानिको लेकर है।

---

१. म मेलणऽनुदयनिषेकंगलं संदणिसिदोडे ।

								९	सा ७०
							९	१०	को २
						९	१०	११	०००००
					९	१०	११	१२	
				९	१०	११	१२	१३	
			९	१०	११	१२	१३	१४	
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	

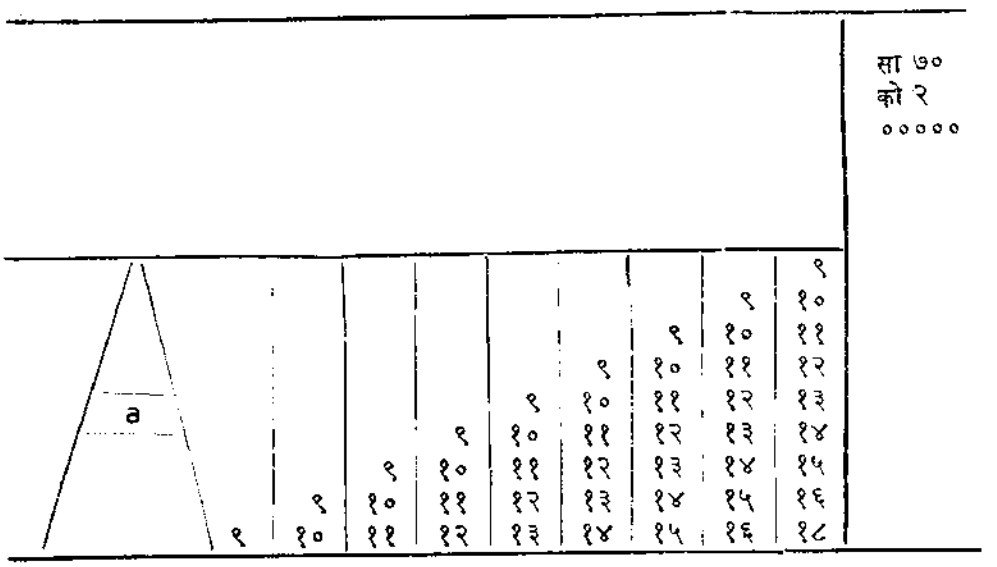

								९	
							९	१०	
						९	१०	११	
					९	१०	११	१२	
				९	१०	११	१२	१३	
			९	१०	११	१२	१३	१४	
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१८	
जोड़	९	१९	३०	४२	५५	६९	८४	१००	११८

९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	१४४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१४४	१६०	०	०	०	०	०	३२०	०	०	०	०
१६०	१७६	१९२	२२४	२४०	२५६	२८८	३५२	०	०	०	०
१७६	१९२	२०८	२४०	२५६	२८८	३२०	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
१९२	२०८	२२४	२५६	२८८	३२०	३५२	४१६	४४८	४८०	५१२	०
२०८	२२४	२४०	२८८	३२०	३५२	३८४	४४८	४८०	५१२	०	०
२२४	२४०	२५६	३२०	३५२	३८४	४१६	४८०	५१२	०	०	०
२४०	२५६	२८८	३५२	३८४	४१६	४४८	५१२	०	०	०	०
२५६	२८८	३२०	३८४	४१६	४४८	४८०		०	०		
२८८	३२०	३५२						०			
								०			
								०			
								०			
								०			

अभावद्रव्य

९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१४४	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८
१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०
२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०
२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०
२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०	०

सब गुणहानियोंका पृथक्-पृथक् जोड़ इस प्रकार होता है—

	षष्ठ गुणहानि	पंचम गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	प्रथम गुणहानि	
	९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८	
	१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८	
	३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०	
	४२	१८४	४६८	१०३६	२१७२	४४४४	
	५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०	
	६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८	
	८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८	
	१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००	
जोड़	४०८	१६१६	४०३२	८८६४	१८५२८	३७८५६	७१३०४

इंतनादियिंदं प्रतिसमयमों दु समयप्रबद्ध बद्धमुमोंदुमों दु समयप्रबद्धोदयमुमं द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वमुमं तोरलाप्पंत्रिकोणरचनासंकलनधन मं तंदु द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वमं तोरिदपं। त्रिकोणरचनावस्थितद्रव्यक्के हीनहीनसंकलनदिंदमुमधिकाधिकसंकलनधनदिंदमुमनुलोमविलोमसंकलनदिंदमुं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिसमयप्रबद्धसत्वमं सुव्यक्तमाडिदपनल्लि हीनहीनसंकलनदिंदमे तें दोडे प्रथमसमयप्रथमनिषेकदोळु संपूर्णसमयप्रबद्धमात्रं । ६३००। द्वितीयसमयद्वितीयनिषेकदोळु प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। तृतीयसमयतृतीयनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। चतुर्थसमयचतुर्थनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयतृतीयनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। पंचमसमयपंचमनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रमिंतु षष्ठादिसमयषष्ठादिनिषेकंगळोळु प्रथमनिषेकप्रभृतिरूपोनगच्छमात्रनिषेकंगळिदं परिहीनसमयप्रबद्धमात्रंगळल्लल्लिगप्पुवेंदितु तदभावद्रव्यमनिक्के नोडुत्तिरलु प्रथमगुणहानियोळु गुणहानिमात्रंगळु समयप्रबद्धंगळप्पुवु। ६३००।८। तत्राभावद्रव्यमं निरीक्षिसुवागळु रूपोनगुणहानिमात्रंगळु

प्रथमनिषेकंगळप्पुवु। ५१२। ८। द्विरूपोनगुणहानिमात्रंगळु द्वितीयनिषेकंगळप्पुवु। ४८०।८२।

तावत्तत्त्रिकोणरचनावस्थितं सत्त्वद्रव्यं हीनहीनसंकलनेन अधिकाधिकसंकलनेन अनुलोमविलोमसंकलनेन च सुव्यक्तयति। तत्र हीनहीनसंकलनेन यथा—प्रथमसमयप्रथमनिषेके सम्पूर्णसमयप्रबद्धः ६३००, द्वितीयसमयद्वितीयनिषेके प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धः, तृतीयसमयतृतीयनिषेके प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, चतुर्थसमयचतुर्थनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयसमयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, पञ्चमसमयपञ्चमनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धः। एवं षष्ठादिसमयषष्ठादिनिषेकेषु प्रथमनिषेकादिरूपोनगच्छमात्रनिषेकोनसमयप्रबद्धाः। अतस्तदभावद्रव्ये निक्षिप्ते प्रथमगुणहानौ गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धा भवन्ति ६३०० × ८। तदभावद्रव्यं तु

प्रथमनिषेकाः रूपोनगुणहानिमात्राः ५१२ × ८। द्वितीयनिषेकाः द्विरूपोनगुणहानिमात्राः ४८०। ८–२।

इस तरह त्रिकोण रचनामें स्थित सत्त्व द्रव्यको जोड़नेकी तीन विधियाँ हैं—उत्तरोत्तर हीन संकलनके द्वारा, अधिक-अधिक संकलनके द्वारा और अनुलोम-विलोम संकलन द्वारा। हीन-हीन संकलनके द्वारा यथा—प्रथम समयप्रबद्धके निषेकमें सम्पूर्ण समयप्रबद्ध ६३०० है। द्वितीय समयके द्वितीय निषेकमें प्रथम निषेक ५१२ से हीन समयप्रबद्ध ५७८८ है। तीसरे समयके तीसरे निषेकमें प्रथम और द्वितीय निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ५३०८ है। चतुर्थ समयके चतुर्थ निषेकमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय समय सम्बन्धी निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ४८६० है। पंचम समयके पंचम निषेकमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ४४४४ है। इसी तरह छठे आदि समय सम्बन्धी छठे आदि निषेकोंमें प्रथम निषेकसे लेकर एक कम गच्छ प्रमाण निषेकोंसे हीन समय प्रबद्ध होते हैं। अतः प्रथम गुणहानिमें गुणहानि मात्र समयप्रबद्ध ६३०० × ८ होते हैं। अब इसमें-से जो अभावरूप द्रव्य है,वह एक हीन गुणहानि प्रमाण तो प्रथम निषेक ५१२ × ८-१ है। दूसरा निषेक दो कम गुणहानि प्रमाण है ४८० × ८-२। तीसरा निषेक तीन हीन गुणहानि प्रमाण है ४४८ × ८-३। इस प्रकार क्रमसे हीन होते-होते अन्तमें अन्तिम निषेक ३२० एक रहता है।

१. यिल्लियु मुन्निनंते प्रथमादिपंक्तिगळोळु द्वितीयादिनिषेकंगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वविशेषंगळं प्रक्षेपिसिकोंडर बुदर्त्थ। ऋणद्रव्यनिक्षेपः॥

तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपोनगुणहानिमात्रंगळप्पुवु । ४४८ । ८–३ । मितु क्रमहानियिंद नडदु पर्य्यवसानदोळु ओंदे द्विचरमनिषेकमक्कु–३२० । मत्रतनप्रथमादिपंक्तिगळोळु द्वितीयादिनिषेकंगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वस्वविशेषंगळं प्रक्षेपिसुत्तिरलु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छेय एकवार-

संकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यमक्कु ५ । १२ । ८ । ८ मभावद्रव्यदोळु
२

प्रविष्टाभावद्रव्यमुं द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलितमात्रविशेषप्रमाणमक्कु ३२ । ८ । ८ । ८ ५
३ । २ । १

मिदं पूर्व्वाभावद्रव्यदोळ् कळेयुत्तिरलु द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छेय एकवारसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु शुद्धसर्वऋणमक्कु । मी एरडुं धनऋणद्रव्यंगळुनोंदे पंक्तियोळु

स्थापिसल्पडुवुवु ६३०० । ८३२ ८ । ५ । ८ । ८ मतं द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु
३ २ १

तृतीयनिषेकाः त्रिरूपोनगुणहानिमात्राः ४४८ । ८–३ । एवं क्रमहान्या गत्वा चरमे चरमनिषेकः एकः ३२० अत्र प्रथमादिपङ्क्तिषु द्वितीयादिनिषेकेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषेषु प्रक्षिप्तेषु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य १०

एकवारसंकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यं भवति । ५१२ । ८ । ८ । अत्र स्थिताभावद्रव्यं च
२ १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारे संकलितमात्रविशेषमिदं ३२ । ८ । ८ । ८ पूर्वाभावद्रव्यादपनीय शेषद्विरूपा-
३ । २ । १

इन प्रथम आदि पंक्तियोंके द्वितीय आदि निषेकोंमें एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ाते हुए अपने-अपने चयोंके मिलानेपर एक कम गुणहानि प्रमाण गच्छका एक बार संकलन मात्र प्रथम निषेक प्रमाण अभावद्रव्य होता है। इसका आशय यह है कि नीचेसे लेकर आठ पंक्ति १५
रूप जो प्रथम गुणहानि है, उसकी दूसरी आदि पंक्तियोंमें जो निषेक घटे, उनके प्रमाणरूप घटाने योग्य जो ऋण, उसको मिलानेपर गुणहानि मात्र पंक्तियोंका धन गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है, क्योंकि प्रथम पंक्तिका जोड़ समयप्रबद्ध प्रमाण है। ऋणको मिलानेपर अन्य पंक्तियोंका जोड़ भी उसीके समान होता है। इस तरह गुणहानिका प्रमाण आठ है, उससे गुणित समयप्रबद्धका प्रमाण तिरेसठ सौ है। अब इसमें ऋण कितना घटाना २०
है, यह कहते हैं—

---

१. म गुणहानिसंकलनमात्र । २. म °हानिसंकलनत्रिभाग° ।

३. स्वस्वप्रचयेषु प्रक्षिप्तेषु इति किं ? प्रथमनिषेक ५१२ संपूर्णः, द्वितीयनिषेके ४८० । ३२ । एकचयाधिके, तृतीयनिषेके ४४८ । ३२ । ३२ । द्विचयादिके एवं एकोत्तराधिकक्रमेण चरमनिषेकपर्यन्तं क्रियमाणे सति अष्टाविंशतिप्रमितानि द्वादशोत्तरपञ्चशतकानि जायन्ते । अत्र षट्पञ्चाशत्प्रमितानि द्वात्रिंशत्कानि ऋणेऋण- २५
रूपाणि सन्तीति ज्ञातव्यम् । ४. व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारो धृतो मुखेन युतः । रूपाधिकवरान्तासपदार्द्ध-ङ्घ्नैर्हृतो वित्तं ॥१॥ हारारूपादिकाः स्थाप्या अंशा गच्छादिकास्तथा । सैकवारप्रमाणान्ताश्चैकवारादिकं धनम् ॥२॥ एकवारद्विवारादिसंकलनसूत्रमिदम् ।

द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यमेल्लमुमुंटु । ३१००। तदनंतरसमयनिषेकदोळु द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनद्वितीयादिगुणहानिद्रव्यमेल्लमुमुंटु । ३१००—२५६ । मिंतु प्रथमगुणहानिविधानदिंद हानिप्रमाणमवधरिसि कूडुत्तिरलु गुणहानिमात्रद्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळप्पुवु । ३१००। ८ ।

रूपोनगुणहानिसंकलितमात्राऽभावस्वकप्रथमनिषेकंगळप्पुवु । २५६ । ८ । ८ द्विरूपोन-
२ । १

गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वकविशेषंगळु ऋणप्रविष्टऋणंगळप्पुवु—। १६ ८ ८ ८
३ २ १

मिदं पूर्वाभावद्रव्यदोळु कळेयुत्तिरलु द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छेय एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषंगळु शुद्धसर्वऋणमक्कु मी येरडुं द्रव्यगळुं मुन्नं स्थापिसिद धनऋणद्वयंगळ मेलेकपंक्तियागि मुन्निनंते स्थापिसल्पडुवुवु :—

धिकपञ्चगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसङ्कलनत्रिभागमात्रविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति ।

एते द्वे धनऋणे एकस्यामेव पङ्क्तौ स्थापयितव्ये ६३००। ८। ३२। ८। ५। ८। ८ पुनः द्वितीयगुणहानि-
३ २ १

प्रथमनिषेके द्वितीयादिगुणहानिसर्वद्रव्यमिदमस्ति ३१००। तदनन्तरसमयनिषेके द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनं तदस्ति ३१००—२५६। एवं प्रथमगुणहानिवद्हानिप्रमाणमवधार्य निक्षिप्ते तदा गुणहानिमात्रं द्वितीयादिगुण-

हानिद्रव्याणि भवन्ति ३१००। ८। रूपोनगुणहानिसंकलितमात्रेभ्योऽभावस्वप्रथमनिषेकेभ्यः २५६। ८। ८।
२। १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वविशेषे ऋणप्रविष्टऋणे १६। ८। ८।८ अपनीते शेषं द्विरूपाधिक-
३। २।१

पञ्चगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति। एते द्वे पूर्वस्थापितधनर्णयोः उपर्येकपङ्क्त्या पूर्ववत् स्थापयितव्ये—

प्रथम निषेक एक कम गुणहानि प्रमाण ५१२। ७। द्वितीय निषेक दो कम गुणहानि प्रमाण अर्थात् ६। इस तरह एक-एक घटता तीसरा आदि निषेक होता है। अन्तमें द्विचरम निषेक एक प्रमाण होता है। इस तरह गुणहानि प्रमाण पंक्तियोंमें एक-एक निषेक घटता है। अन्तिम निषेक सब पंक्तियोंमें रहता है। सो यहाँ द्वितीय आदि निषेकोंमें प्रथम निषेकसे जितने अपने-अपने चय घटें, उनको मिलानेपर सब निषेक प्रथम निषेकके समान होते हैं। यथा—

५१२। ७
५१२। ६
५१२। ५
५१२। ४

---

१. म °णहानिसंकलन त्रिभाग ।

२
३१००।८ ऋ १६।८।५। ८ ८ मितु मेले मेले ऋणराशिगळर्द्धार्द्धक्रमदिंद नडेववु। धन-
३ ३ २ १

६३००।८। ऋ ३२।८ ५ ८ ८
३ २ १

राशिगळधस्तनाधस्तनराशिगळोळु गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमं १००।८। कळेदु द्विरूप-भाजितमात्रंगळागि नडेववदु कारणमागियुपरितनोपरितनगुणहानिद्रव्यं पढमस्स हीणदळमेत्तमें दितु पेळल्पट्टुदिंतिरुतिर्द्दं पंक्तिद्वयद्रव्यंगळोळु मोदल धनपंक्तियोळु

१००।८	५
३००।८	
७००।८	
१५००।८	
३१००।८	
६३००।८	१०

३१००–८।	ऋ १६। ८×५। ८। ८
	३। २। १
६३००। ८	ऋ ३२। ८ ५। ८। ८
	३। २। १

एवयुपर्यपि ऋणराशयोऽर्धार्धक्रमेण धनराशयो

गुणहानिगुणितचरमगुणहानिधन १००।८। न्यूनाधस्तनगुणहानिधनार्धक्रमेण गच्छन्तीत्युपरितनोपरितनगुण-हानिद्रव्यं पढमस्स हीणदलमेत्तमित्युक्तमेव भवति। तत्र पङ्क्तिद्वये प्रथमधनपङ्क्तौ–

१००।८	१५
३००।८	
७००।८	
१५००।८	
३१००।८	
६३००।८	२०

५१२।३
५१२।२
५१२।१

इन सबका जोड़ एक कम गच्छका एक बार संकलन मात्र प्रथम निषेक प्रमाण होता है। यहाँ गच्छका प्रमाण आठ है। गणितके नियमानुसार एक कम गच्छको दो और सम्पूर्ण गच्छको एकसे भाग देकर उससे प्रथम निषेक पाँच सौ बारहको गुणा करनेपर २५

१ कम
५१२ × ८ ८ = इतना जोड़ होता है।

इसमें अभाव द्रव्यका प्रमाण लाना है, क्योंकि प्रथम निषेक ५१२ सम्पूर्ण है। प्रथम पंक्तिमें कोई निषेक घटा नहीं। दूसरी पंक्तिमें एक प्रथम निषेक कम है। उसमें कोई चय नहीं मिलाया। तीसरी पंक्तिमें पहला और दूसरा दो निषेक कम हैं। उसके दूसरे निषेक ३० ४८० में एक चय ३२ मिलानेसे ५१२ होते हैं। तीसरी पंक्तिमें पहला, दूसरा और तीसरा निषेक कम है। यहाँ दूसरे निषेक ४८० में एक चय ३२, और तीसरे निषेक ४४८ में दो चय

चरमगुणहानिमोदल्गोंडु प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं सर्वत्र गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमनितितं । १००।८। कूडि २००।८ कूडि द्विरूपदिदं बेरिसि १००८। २। गुणसंकलन-
४००।८ २००।८।२।
८००।८ ४००।८।२।
१६००।८ ८००।८।२।
३२००।८ १६००।८।२।
६४००।८ ३२००।८।२।

दिदं तंदुभयपंक्तिद्रव्यमितिप्पुड संदृष्टियिदु ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। इल्लि

धनपंक्तियोळु प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिगुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदु १००।८।६। ई मूरुं द्रव्यंगळु । ६३००। समयप्रबद्धदिंद । शलाकीकृतंगळु यथाक्रमदिंनितिप्पुवु

८।२।८ ५ ८।८ ८६ इवरोळु मध्यमराशिगे भागहार भूतशतषट्कंगळोळु यथाक्रमं
१०० ६ ६३

चरमगुणहानिमादिं कृत्वा प्रथमगुणहानिपर्यन्तं सर्वत्र हानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यम् १००।८ मेलयित्वा मेलयित्वा— | २००।८ | द्वाभ्यां संभेद्य— | १००।२ | गुणसंकलने आनीते उभयपङ्क्तिद्रव्ये एवं
४००।८ २००।२
८००।८ ४००।२
१६००।८ ८००।२
३२००।८ १६००।२
६४००।८ ३२००।२

तिष्ठतः । ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। अत्र धनपङ्क्तौ प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिमात्र-
चरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदम् १००।८।६। एतानि त्रीणि द्रव्याणि समयप्रबद्धेन ६३०० शलाकीकृतानि

३२-३२ मिलानेसे ५१२ होते हैं। इस तरह अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक अधिक चय मिलानेसे ५१२ होते हैं। इस सबका जोड़ दो कम गच्छका दो बार संकलन मात्र चय प्रमाण होता है। उक्त चयोंका प्रमाण इस प्रकार होता है— ३२×३१
३२×१५
३२×६
३२×३
३२×१

गणित सूत्रके अनुसार इनका जोड़ दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छको
२ कम १ कम
तीन, दो और एकसे भाग देकर उससे चयके प्रमाण ३२ को गुणा करनेपर ३२×६ ५ ६
इस प्रकार होता है। इसको पहलेके अभाव द्रव्यमें-से घटाना है। कन्नड़ वृत्तिके अनुसारी संस्कृत टीकाकारने जिस पुरानी रीतिसे लिखा है, उससे आजके पाठकोंको समझानेमें कठिनता होती है। अतः सीधा अभिप्राय यह है कि ६३००×८ में-से जो घटाना है, वह ५१२×२८ में-से ३२×५६ को घटा देनेपर जो शेष रहे, उतना है। इतना घटा देनेपर प्रथम

चतुष्कदिंदमुं द्विकदिंदमुं भेदिसि चतुष्कमं द्विकदिंदं गुणिसि गुणहानिगे गुणहानियनुत्पादिसि गुण-
हानिगे गुणहानियनपवर्तिसि मत्तं भागहारभूतपंचविंशतिरूपुगळं मूररिंदं भेदिसि रूपाधिकत्रिगुण-

हानियनुत्पादिसि स्थापिसिदोडितिक्कु ८ । ५ । ८ मिल्लिर्द ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशिर्द्वन-

८ ३ । ३

मंदेकरूपं पार्श्वदोळु स्थापितमिदु संदृष्टि ८ । ५ । ८ । ८ ५ १ ई येरडुं राशिगळ

८ । ३ । १ ८ । ३ । ३

मेलिर्द्द द्विरूपुगळं तंतम्म केळगे स्थापिसि [२८३ ८ १ । ८ ५८ । २ । ८ । २ ध] ५

९८ ८३ ८३ ८३ ३ ८३ ३

क्रमेणैवं तिष्ठन्ति ८ । २ ।, ८ । ५ । ८ । ८ , ।८।६ एतेषु मध्यराशेर्भागहारभूतशतषट्कयोर्यथाक्रमं
१०० । ६ । , ६३ ।

चतुष्कद्वयाभ्यां संभेद्य चतुष्कं द्वाभ्यां गुणयित्वा गुणहानिमुत्पाद्य गुणहान्या गुणहानिमपवर्त्य पुनर्भागहारभूत-

पञ्चविंशतौ रूपाधिकत्रिगुणहानौ कृतायां एवं ८ । ५ । ८ । अत्र स्थिते ऋणरूपे ऋणस्य ऋणं राशेर्वन-

८ । ३ । ३

मिति पार्श्वे स्थापिते एवं ८ । ५ । ८ | ८ । ५ । १ एतयोरुपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य
८ । ३ । ३ | ८ । ३ । ३

८ । ५ । ८ | ८ । ५ । गुणहानिगुणितप्रथमकिट्टं २ । ८ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणयित्वा
८ । ३ । ३ | ८ । ३ । ३ | ८ । ३ । ३
२ । ८ | २ ।
८ । ३ । ३ | ८ । ३ । ३

गुणहानिका जोड़ आजाता है । इसी तरह द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेकमें सर्व द्रव्य ३१०० है । द्वितीय गुणहानिके दूसरे निषेकका द्रव्य उससे २५६ कम है । इसी तरह प्रथम गुणहानिके समान हानिका प्रमाण जानकर उसमें जोड़नेपर द्वितीय गुणहानिका सर्व द्रव्य ३१००×८ होता है । जैसे पहली गुणहानिमें प्रथम गुणहानिका प्रथम द्रव्य ५१२ और चय बत्तीस है । दूसरी गुणहानिमें उससे आधा अर्थात् २५६ और १६ है । अतः २५६×२८ में १६×५६ को कम करके ३१००×८ में घटानेपर दूसरी गुणहानिका जोड़ आता है । इसी तरह ऊपर भी

---

१. म द्विगुण° । २. म प्रतौ न विद्यते संदृष्टिः ।

गुणहानिगुणित प्रथमद्विकमं केळगेयु मेगेयुं त्रिगुणिसियल्लि पंचरूपुगळं मेले समच्छेदं माडि पंच-गुणहानिगे पंचगुणहानियं तोरि तदात्मप्रमाणमनों दु रूपं त्रिगुणहानियोळकूडियदनपर्वर्तिसिदोडि-नितक्कुं ८।५ शेषमं १।८ । मेलण पार्श्वदोळु समच्छेदमं माडि
९ ८।३।९

गुणहानिगे गुणहानियं तोरि त्रिगुणपंचकदोळों दूपं कळेदोडितक्कुं ८।३।९ मत्तमा केळ-
८।३।९

गेयुं स्थापिसिदं द्वितीयद्विकमं केळगेयुं मेगेयुं ओं भत्तरिंदं गुणिसि २।९ यिल्लिय
८।३।३।९

४३९ ८।३।३९
८३ ३९
चतुर्दशरूपयुगळं मूरारिंदं समच्छेद माडिद मेलण राशियोळु रूपोनत्रिगुणपंचकके रूपोनत्रिगुण पंचकमप्प पदिनाल्कु रूपुगळं तोरि त्रिगुणहानियोळात्मप्रमाणमनों दुरूपं कूडि रूपाधिकत्रिगुणहानिगे

| ६। ८ | अतः पञ्चरूपाण्युद्धृत्य १।५।८ उपरि समच्छेदं कृत्वा पञ्चगुणहानेः
| ८।३।९ | ८।३।९

पञ्चगुणहानिं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणमेकरूपं त्रिगुणगुणहानौ निक्षिप्य ८।३।८।५ अपवर्तिते एवं ८।५
८।३।९ ९

शेषं १।८। उपरितनपार्श्वे समच्छेदं कृत्वा गुणहानेर्गुणहानिं प्रदर्श्य त्रिगुणपञ्चके रूपे १।८
८।३।९ ८।३।९

अपनीते एवं ८।५।३। पुनस्तदधःस्थापितद्वितीयद्विकं- २ । १ उपर्यधो नवभिर्गुणयित्वा
८।३।९ ८।३।३

२।९ अत्रतनचतुर्दश- १।५।३। रूपाणि त्रिभिः समच्छेदीकृत्य उपरितनराशौ रूपोन-
८।३।३।९

त्रिपञ्चकस्य रूपोनत्रिपञ्चकरूपचतुर्दशरूपाणि दर्शयित्वा त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं मेलयित्वा

सब गुणहानियोंका धन जानना। यथा ६३००।८।, ३१००।८।, १५००।८।, ७००।८।, १००।८।

---

१. व °कस्वरूपोनत्रिवञ्च पञ्चचतुर्दश° ।

रूपाधिकत्रिगुणहानियनपवर्त्तितसि ५।३ भागहारं सप्तविंशतिरूपुगळप्पुवरिंदमेकरूपहीनत्वमनव
९।३

गणिसियपवर्त्तितसिदोडेकरूपार्द्धमक्कुं । १ मिदरोळवशिष्ट नाल्कु रूपुगळं ४ रूपा-
२ ८।३।२१

संख्येय भागमं १ साधिकं माडि १ द्वितीयऋणदोळु ८।६ इदरोळु प ७ छे व छे
१ २ ६ ३

छे ८ छे प
व

किंचिन्न्यूनं माडियपवर्त्तितसिदोडे संख्यातवर्गशलाकेगळप्पुवु । द्वित्रिऋण ९३
व १—प्रथमऋणमं ८, ५
९

१
संदृष्टिनिमित्तं केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसि ८, १० एकरूपमं बेरे स्थापिसि ८।१८ शेषमनपवर्त्तितसि ५
१८

द्विगुणहानियोळु ८।१ शोधिसिदोडिनितक्कु ८।३ द्वितीयऋणदिंदं व १—साधिकमप्प
२ २

बेरिरिसिद गुणहान्यष्टादशैकभागमं ८।१ किंचिन्न्यूनं माडिदिंदं १२ समयप्रबद्धदिंदं गुणिसुत्तिरलु
१८

८।३।५।१ रूपाधिकत्रिगुणगुणहान्या रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिमपवर्त्य- ५।३ भागहारभूतसप्त-
८।३।३।९ ३।९

विंशतौ एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्तिते एकरूपार्धं स्यात् १ अत्र च प्राक्तनावशिष्टरूपचतुष्टयं ४
२

८।३।२७

अपवर्तिते रूपासंख्येयभागत्वात् १ साधिकं कृत्वा १ द्वितीयऋणे ८, ६ अर्थसंदृष्ट्या अत्र— १०
८ २ ६३

प, १, छे व छे किंचिदूनं कृत्वा अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकाः स्युः व १–। प्रथमऋणं ८।५
९

छे व छे प
व

अर्थसंदृष्टिनिमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणयित्वा ८, १० एकरूपं पृथक् संस्थाप्य- ८।१ शेषमपवर्त्य ८।१
१८ १८ २

यहाँ एक गुणहानिके धनमें अन्तिम गुणहानिका धन मात्र ऋण १००।८ मिलानेसे तथा दोका भाग देनेसे धन इस प्रकार होता है—३२००।८।२।, १६००।८।२।, ८००।८।२।, ४००।८।२।, २००।८।२।, १००।८।२।,

गणित सूत्रके अनुसार अन्तधन ३२००।८।२। को दोसे गुणा करनेपर ६४००।८।२। होता है। इसमें आदि धन १००।८।२। को घटानेपर सब गुणहानियोंके धनका जोड़ ६३००।८।२। होता है। ऊपर कह आये हैं कि द्वितीयादि गुणहानिका ऋण भी क्रमसे आधा-आधा होता जाता है। इसीको टीकामें बहुत विस्तारसे स्पष्ट करके दिखलाया है।

किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वमक्कुं ० स ० १२॥ अधिकाधिकसंकलनदिंद ७ १ ३ ० ४
६ ३ ० ०
अब्धि शेष १ १ मेंतेंदोडे आबाधारहितकर्म्मस्थितिमात्रसमयप्रबद्धंगळ चरमसंचयगुणहानियोळु
२ ० ० ४
६ ३ ० ०

गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकंगळादि धनरूपिंदिदिक्कुं। ९ ८ ८ रूपोनगुणहानिसंकलन
२

मात्रविशेषंगळु चयधनरूपिंदमिर्त्तप्पुं १ ८ ८ ८ वी येरडु द्रव्यंगळनेकत्रं माडिदोडे
३ २ १

द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु चरमगुणहानिसर्वधनमक्कु
२ १
१ ८ । ४ ८ । ८ मदकेंदोडे आदि धनद चरमनिषेकदोळो दु रूपं [1]बेरिरिसि १ ८ ८
६ २ । १

शेषमिदु ८ । ८ ८ उत्तरधनदोळिद्दंऋणरूपं तेगेदु बेरिरिसि १ । ८ । ८ शेषमिदु
२ १ ६

८ । ८ । ८ नादि धनदोळ् कूडुवागळु त्रिरूपुगळिंदं समच्छेदं माडि ८ ३ ८ ८ तंदु
६ ६

द्विगुणगुणहानौ शोधिते एतावत् ८ । ३ इदं पुनः द्वितीयऋणा व १-धिकेन पृथक्संस्थापितगुणहान्यष्टादशैक-
२
भागेन ८ , १ न्यूनयित्वा १२- समयप्रबद्धेन गुणितं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति।
१८
स १२-। अथाधिकसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते—

आबाधारहितकर्मस्थितीनां समयप्रबद्धानां चरमसंचयगुणहानौ गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकाः आदि-

धनरूपेण तिष्ठन्ति-९ , ८ , ८ रूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषाः चयधनरूपेण तिष्ठन्ति
२ , १

१ , ८ , ८ , ८ , एतद्धनद्वयमेकीकृतं द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं
३ , २ , १

चरमगुणहानिसर्वधनं भवति १ , ८ , ४ , ८ , ८ तद्यथा-आदिधनस्य चरमनिषेकस्थरूपं पृथग् न्यस्य
६

ऐसे करनेसे समय-प्रबद्धसे गुणित कुछ कम डेढ़ गुणहानि मात्र समयप्रबद्धका सत्त्व रहता है। जिसका चिह्न स १२- जानना।

---

१. म नेरिसि।

कुडुत्तिरलुमिदु ८।४।८/६ ८ बेरिरिसिदादिधनदेकरूपं मूररिंदं समच्छेदं माडि ३।८।८/६

उत्तरधनदोळिर्द्देकऋणरूपनदरोळ् कळेदुदनिद २ ८ ८/६ नुभयधनद चतुर्गुणहानिय मेळे-

निलिसिदुदप्पुदरिंदं।

रूपमावुदोंदु कारणदिंदं द्विचरमगुणहानियोळु तन्न चरमादिनिषेकंगळु चरमगुणहानि-चरमादिनिषेकंगळं नोडलु द्विगुणद्विगुणंगळागि चरमगुणहानिद्रव्यदिंदं अधिकंगळप्पुवुमदु कारणदिंदं ५

द्विचरमगुणहानिद्रव्यं पूर्व्वमं नोडलादिधनमु चयधनमुं द्विगुणमक्कुं १ ८।८/२ ८ २ ८।८/३ ८/२ ८/१

अदु कारणदिं सर्व्वधनं द्विगुणमागि गुणिहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यनधिकमक्कु २ ८ ४ ८/६ ८

१००।८। मिदं तादुदें दोडे संदृष्टि इदं संकलिसिदोडे :—

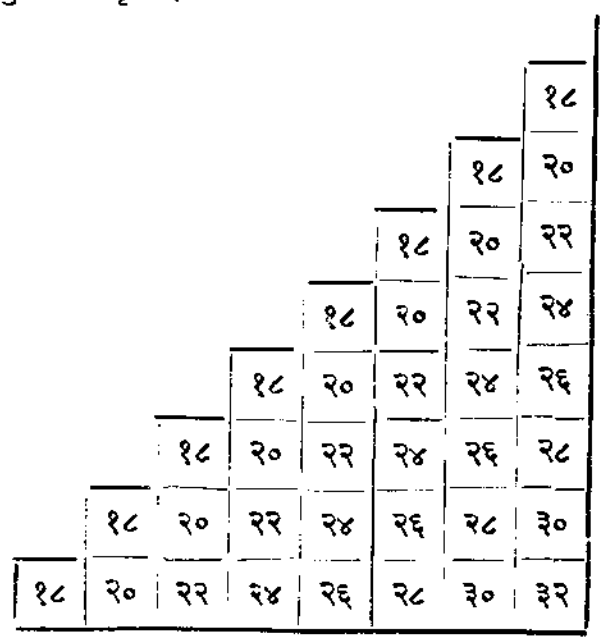

१०

१५

१, ८, ८/२,१ शेषे ८, ८, ८/२,१ त्रिभिः समच्छेदीकृते ८, ३, ८।८/६ उत्तरधनस्थितऋणरूपं पृथग्न्यस्य

१, ८, ८/६ अवशिष्टेन ८, ८, ८/६ युते सति एतावति ८, ४, ८, ८/६ पुनः पृथक्स्थापितादिधनैकरूपेण

त्रिभिः समच्छेदीकृतेन ३, ८, ८/६ उत्तरधनस्थितैकऋणरूपन्यूनेन— २, ८, ८/६ चतुर्गुणहानीनामुपरियुक्त-

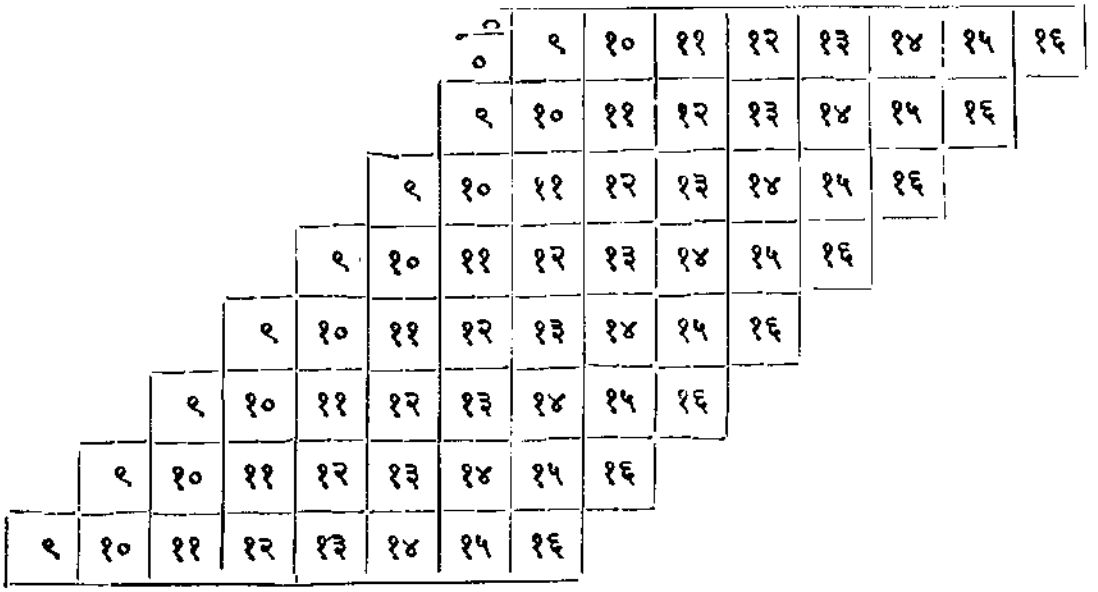

पूर्व्वमं नोडलु द्विगुणमक्कुं २।८।४।८।८ गुणहानिगुणितमादोडे चरमगुण-
६

हानिद्रव्यमधिकप्रमाणमक्कु १००।८ मितु त्रिचरमादिगुणहानिद्रव्यंगळु तंतम्माधस्तनधनमं
नोडलू द्विगुणद्विगुणंगळ् ०—१ गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यादिवमधिकंगळुमागि
मऽवन्नेवरमं दोडे प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं संदृष्टि रचने—

स्यात्, पुनः यतः कारणाद् द्विचरमगुणहानौ निजचरमादिनिषेकाः चरमगुणहानिचरमादिनिषेकेभ्यो द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चरमगुणहानिद्रव्येणाधिकाः स्युस्ततः कारणाद् द्विचरमगुणहानिद्रव्यं पूर्वस्मादादिधनं चयधनं च

द्विगुणं द्विगुणं स्यात् ९, २, ८, ८ | २, ८, ८, ८ अतः कारणात् सर्वधनं द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा
२, १ ३, २, १

२—
गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्येणाधिकं भवति— २, ८, ४, ८, ८। १००, ८, तद्यथा संदृष्टिः—
६

							१८
						१८	२०
					१८	२०	२२
				१८	२०	२२	२४
			१८	२०	२२	२४	२६
		१८	२०	२२	२४	२६	२८
	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२

२—
इदं संकलितं सत्पूर्वस्माद् द्विगुणं भवति २।८।४।८।८। इदं च
६

१	२८ / ८,४,८,८	उ । ०	ॠ १००।८	ॠ १००।८	ॠ १००।८	ॠ १००।८	ॠ १००।८	१	२
२	२८ / ८,४,८,६,१	१००।८	ॠ १००।८	१००।८	१००।८	१००।८		२	८४
४	२८ / ८,४,८,६,१	२००।८	१००।८	२००।८	२००।८	चरमपंक्ति		४	२
८	२८ / ८,४,८,६,१	४००।८	२००।८	४००।८	पं = पंक्ति			८	८४
१६	२८ / ८,४,८,६,१	८००।८	४००।८	च = पंक्ति		पदमेत्ते गुणयारे इत्या		१६	२
३२	२८ / ८,४,८,६,१	१६००८	८००।८					३२	८४
	प्रथम पंक्ति	द्वि=पंक्ति	तृ = पंक्ति						२
									८४
									४

							९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
						९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
					९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		
				९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६			
			९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६				
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६					
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६						
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६							

संकलितं गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं तदधिकप्रमाणं भवति १००।८। एवं चरमादिगुणहानिद्रव्याणि स्वस्वाधस्तनतो द्विगुणद्विगुणगुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्याधिकानि भूत्वा गच्छन्ति। तद्यथा—प्रथमगुणहानिपर्यन्तं संदृष्टिः—

१	८ , ४,८, ८ / ६	ॠ १००,८				
२	८ , ४,८, ८ / ६	१००,८	ॠ १००,८			
४	८ , ४,८, ८ / ६	२००,८	१००,८	ॠ १००,८		
८	८ , ४,८, ८ / ६	४००,८	२००,८	१००,८	ॠ १००,८	
१६	८ , ४,८, ८ / ६	८००,८	४००,८	२००,८	१००,८	ॠ १००,८
३२	८ , ४,८, ८, / ६	१६००,८	८००,८	४००,८	२००,८	१००,८	ॠ १००,८
	प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पञ्चमपंक्तिः	चरमपंक्तिः	

इल्लि चरमगुणहानिद्रव्यमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं गुणिसुत्तमिरलु सर्वगुणहानि

प्रथमपंक्ति सर्वधनमिनितक्कु ६३।८।४८८ मी प्रकारदिंदं गुणहानिगुणितचरमगुण-

हानिद्रव्यमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं गुणिसुत्तिरलधिकसर्व्वधनमक्कु ६३००।८। मदें तेंदोडे

ऋण सहितमुत्तरधनरचने संदृष्टि

१००८	यिदं संकलिसिदडे तत्प्रमाणमक्कुमेंबुदर्त्थं । इल्लि उत्तरधनसंकलनार्त्थं
२००८	नानागुणहानिशलाकागुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणद्रव्यप्रमाणमक्कुं
४००८	१००।८।६। इंती मूरु राशिगळु समयप्रबद्धप्रमाणदिंदं शलाकीकृतंगळागुत्तिरलु
८००८	यथाक्रमदिंदमिदु संदृष्टि
१६००८	
३२००८	

८।४।८।८ आदिधन उत्तरधनमिदु ८।१। ऋणधनमिदु ८।६ इल्लियुं शतषट्कवि-

धानदिंदं संजातद्रव्यमिदु ८,४।८ अधिकरूपं पार्श्वदोळिरिसिदोडिदु शे ८।४।८

८।३।३ ८।३।३

अत्र चरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् सर्वगुणहानिप्रथमपंक्तिसर्वधनमेतावत्स्यात्

६३, ८, ४, ८, ८, अनेन प्रकारेण गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना

गुणितं सत् अधिकसर्वधनं स्यात् ६३००।८ तद्यथा—ऋणसहितोत्तरधनरचनासंदृष्टिः—

१००।८	इदं संकलितं तत्प्रमाणमित्यर्थः। अत्रोत्तरधनसंकलनार्थं निक्षिप्तं नानागुणहानिशलाका-
२००।८	गुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणं भवति १००, ८, ६। एते त्रयो राशयः
४००।८	समयप्रबद्धेन प्रमाण्यन्ते तदा क्रमेणादिधनमिदं ८, ४, ८, ८ (१००, ६) उत्तरधनमिदं
८००।८	
१६००।८	
३२००।८	८, १ ऋणमिदं ८, ६ (६३) अत्रापि शतषट्कविधानसंजातद्रव्यमिदं ८, ४, ८
	८, ३, ३

अधिकरूपे पार्श्वे स्थापिते एवं | ८, ४, ८ | ८, ४, १ | उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः

८, ३, ३	८, ३, ३

२
अ ८ ४ । १ उभयत्रोपरिस्थितद्विरूपुगळं तंतम्म क्केळगे स्थापिसि ८ । ४ । ८ ८ । ४ । १

८ । ३ । ३ ८ । ३ । ३ ८ । ३ । ३
२ २

८ ८
८ । ३ । ३ ८ । ३ । ३

प्रथमद्विकमं केळगेयुं मेगे त्रिगुणिसि २ । ३ । ८ नाल्कुरूपु गळं कोंडु मेगे

८ । ३ । ३ । ३

कूडिदोडिदु अपवर्तितमिदु ४ । ८ मत्तं द्वितीय-
८ । ३ । ४ ८ ९

८ । ३ । ९

द्विकमं केलगेयुं मेगेयुं त्रिगुणिसि ६ । १ नाल्कु
८ । ३ । ९

रूपुगळं कोडु मेलण पाश्वंदोळु ८ । ४ सूरिंदं समच्छेदं माडि कूडिदोडिदु
८ । ३ । ३

८ । ३ । ४ अपवर्तितमिदु ४ इदरोळगे प्रथमद्विकशेषमिदु २ । ८ इदरोळु द्विती-
९
८ । ३ । ९ ८ । ३ । ९

यद्विकशेषवनिदं ८ । ३ । ९ साधिक माडि २ । ८ कोंडु बंदु साधिकं माडि-
८ । ३ । ९

संस्थाप्य | ८ , ४ , ८ | ८ , ४ , १ | प्रथमद्विकमुपर्यधस्त्रिभिः संगुण्य | २ , ३ , ८ |
८ , ३ , ३	८ , ३ , ३		८ , ३ , ३ , ३
२ , ८	२ , १		
८ , ३ , ३	८ , ३ , ३		

रूपचतुष्कं गृहीत्वा उपरिनिक्षिप्ते एवं | ८ , ३ , ४ , ८ | अपवर्तितं ४ , ८ पुनः द्वितीयद्विकमुपर्यधः
| ८ , ३ , ९ | ९

त्रिभिर्गुणयित्वा ६ , १ अस्मादूपचतुष्टयं चतुर्गुणितैकरूपात्मकं गृहीत्वा १ , ४ उपरि समच्छेदेन १०

८ , ३ , ९ ८ , ३ , ९

त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं निक्षिप्य ८ , ३ , ४ अपवर्तिते एवं ४ इदं प्रथमद्विकशेषेण २ , ८
९

८ , ३ , ९ ८ , ३ , ९

दोडिदु ४/९ इदनपवर्त्तिसिदोडे किंचिदूनार्द्धमक्कु —१/२ मिवं द्वितीयऋण संख्यातवर्गशलाके-
गळोळु किंचिदूनं माडुवुदु व १—। इन्नु प्रथमधनमिदु ४।८/९ द्वितीयधनमिदु ८। ई
येरडु राशिगळं समच्छेदं माडि कूडिदोडिदु ८।१।३/९ इद रोळु संदृष्टिनिमित्तमागि
गुणहान्यष्टादशभागमनिक्के अपवर्त्तिसिदुदरोळु ८।३/२ किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाके-
गळिदं साधिकाष्टादशभागमं १।८/१८ किंचिदूनं माडि समयप्रबद्धमं गुणिसिदोडे
किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानि समयप्रबद्धसत्वमक्कुं स ड १२— ॥

अनुलोमविलोमसंकलनदिंदं सत्वद्रव्यमं तंदोडे इल्लि त्रिकोणरचनयोळु प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमो दु ५१२।१। द्वितीयनिषेकंगळेरडु ४८०।२। तृतीयनिषेकंगळु मूरु ४४८।३। इंतेकैकोत्तरक्रमदिंदं नडदु चरमनिषेकंगळु गुणहानिमात्रंगळप्पुवु २८८।८। इवु प्रथमपंक्ति। मत्तं द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकंगळु रूपाधिकगुणहानिमात्रंगळु २५६/८/२ द्वितीयनिषेकंगळु द्विरूपोत्तरद्विगुणहानिमात्रंगळु। २४०/८। तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपाधिकगुणहानिमात्रंगळु। २२४/८/३। इंतु पदमात्रंगळु नडदु चरमनिषेकंगळु द्विगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। १४४/८/१

द्वितीयद्विकशेषा २, १ धिकेन २, ८/९ अधिकं कृत्वा ४ अपवर्तितं किंचिदूनार्धं १/२ भवति। अनेन ८, ३, ९/९ ८, ३, ९/९

द्वितीयऋणसंख्यातवर्गशलाकाः किंचिदूनयेत् व १—शेषप्रथमधनमिदं ४, ८/९ द्वितीयधने ८ समच्छेदेन मेलयित्वा ८, १३/८ संदृष्टिनिमित्तं गुणहान्यष्टादशैकभागं ८, १/१८ ऋणं निक्षिप्यापवर्त्य ८, ३/२ किंचिदूनसंख्यात-
वर्गशलाकाभ्यधिकाष्टादशभागेनोनयित्वा समयप्रबद्धेन गुणिते किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वं भवति स ड १२—।

अथानुलोमविलोमसंकलनेन सत्वद्रव्यमुच्यते। तत्र त्रिकोणरचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकः एकः ५१२—१ द्वितीयनिषेकौ द्वौ ४८०—२ तृतीयनिषेकास्त्रयः ४४८—३। एवमेकैकोत्तरक्रमेण गत्वा चरमनिषेका गुणहानिमात्राः सन्ति २८८, ८। इयं प्रथमा पङ्क्तिः। पुनर्द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकगुणहानिमात्राः २५६, ८/९ द्वितीयनिषेकाः द्विरूपाधिकगुणहानिमात्राः २४०, ८/२ । तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकगुणहानि-
मात्राः २२४, ८/३। एवं एकैकाधिकक्रमेण गत्वा चरमनिषेकाः द्विगुणगुणहानिमात्राः सन्ति १४४, ८/१

यिदु द्वितीयपंक्ति। मत्तं तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकंगळु रूपाधिकद्विगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। १२८। ८̄। २। द्वितीयनिषेकंगळु द्विरूपोत्तरद्विगुणहानिमात्रंगळप्पुवुं १२०। ८̄। २। तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। ११२। ८̄। २। ई प्रकारदिंदं नडदु चरमनिषेकंगळु त्रिगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। ७२। ८। ३। इदु तृतीयपंक्ति इंतु चतुर्थादिपंक्तिप्रथमादिनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळागुत्तं पोपुवन्नेवरं स्वस्वचरमनिषेक प्राप्तंगळक्कवन्नेवरं इंतवडनि तुं तिर्य्यग्रूपदिंदं रचिसल्पडुवुवंतु रचिसल्पडुत्तिरलु नानागुणहानिशलाकामात्रंगळुपंक्ति गळप्पुवक्के संदृष्टियिदु :—

२८८	८।०	१४४	८̄।२	७२	८।३	३६	८।४	१८	८।५	९	८।६
३२०	८—१	१६०	८०।२	८०	८।३–१	४०	८।४–१	२०	८।५–१	१०	८।६–१
३५२	८—२	१७६	८।२–२	८८	८।३–२	४४	८।४–२	२२	८।५–२	११	८।६–२
३८४	८—३	१९२	८।२–३	९६	८।३–३	४८	८।४–३	२४	८।५–३	१२	८।६–३
४१६	४	२०८	८–४	१०४	८।३–४	५२	८।४–४	२६	८।५–४	१३	८।६–४
४४८	३	२२४	८–५	११२	८।३–५	५६	८।४–५	२८	८।५–५	१४	८।६–५
४८०	२	२४०	२	१२०	८०।२	६०	८।२–३	३०	८०।२।४	१५	८–५
५१२	१	२५६	८	१२८	८।२	६४	८।३	३२	८।४	१६	८।५
			८̄								

इयं द्वितीया पङ्क्तिः। पुनः तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२८, ८̄, २। द्वितीयनिषेका द्विरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२०, ८̄, २। तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः ११२, ८̄, २,। अनेन प्रकारेण गत्वा चरमनिषेकाः त्रिगुणगुणहानिमात्राः सन्ति ७२, ८, ३ इयं तृतीया पङ्क्तिः। एवं चतुर्थादिपङ्क्तिः प्रथमादिनिषेकाः गच्छमात्रा भूत्वा गच्छन्ति यावत् स्वस्वचरमनिषेकं तावत्। एवमेताः सर्वाः तिर्यग्रूपेण रचयितव्याः। तथा सति नानागुणहानिशलाकामात्राः पङ्क्तयो भवन्ति। तत्संदृष्टिः—

१. म तृतीयनिषेकं°।

इल्लि प्रथमपंक्तियोळु चरमनिषेकप्रभृति प्रथमनिषेकपर्य्यंतं स्वस्वगुणकारमात्रंगळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वविशेषंगळु तेगेदु पृथक् स्थापिसल्पडुवुवु संदृष्टि :

	३२	८	१	३२	८	३२	३६
	३२	७	२	३२	१४	३२	२८
५	३२	६	३	३२	१८	३२	२१
	३२	५	४	३२	२०	३२	१५
	३२	४	५	३२	२०	३२	१०
	३२	३	६	३२	१८	३२	६
	३२	२	७	३२	१४	३२	३
१०	३२	१	८	३२	८	३२	१

इवर युतियुं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु ३२ ८ ८ ८ कळेद
२ १ ३ २ १

शेषंगळु द्वितीयगुणहान्यादिनिषेकमात्रंगळेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदमितिप्पुंवु संदृष्टि :—

२५६	८
२५६	७
२५६	६
२५६	५
२५६	४
२५६	३
२५६	२
२५६	१

इवर संकलनधनं गुणहान्येकवारसंकलनमात्रंगळु द्वितीयगुणहान्यादिनिषेकंगलप्पुवु २५६।८ ८ ई येरडु राशिगळुमनेकत्र माडिदोडे द्विरूपाधिक
२।१
चतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु प्रथमपंक्त्यादिधनमक्कुं।
२
३२।८।४।८।८ इल्लि वुत्तरधनमिल्ल। मत्तं द्वितीयपंक्तिय स्वकप्रथमादि-
६

		८	८	८	८	८
	२८८।८	१४४।८	७२।८।२	*३६।८।३	१८।८।४	९।८।५
		७	७	७	७	७
	३२०।७	१६०।८	८०।८।२	४०।८।३	२०।८।४	१०।८।५
		६	६	६	६	६
	३५२।६	१७६।८	८८।८।२	४४।८।३	२२।८।४	११।८।५
		५	५	५	५	५
२०	३८४।५	१९२।८	९६।८।२	४८।८।३	२४।८।४	१२।८।५
		४	४	४	४	४
	४१६।४	२०८।८	१०४।८।२	५२।८।३	२६।८।४	१३।८।५
		३	३	३	३	३
	४४८।३	२२४।८	११२।८।२	५६।८।३	२८।८।४	१४।८।५
		२	२	२	२	२
	४८०।२	२४०।८	१२०।८।२	६०।८।३	३०।८।४	१५।८।५
		१	१	१	१	१
	५१२।१	२५६।८	१२८।८।२	६४।८।३	३२।८।४	१६।८।५
२५	प्रथमपङ्क्तिः	द्वितीयपङ्क्तिः	तृतीयपङ्क्तिः	चतुर्थपङ्क्तिः	पञ्चमपङ्क्तिः	चरमपङ्क्तिः

निषेकंगळोळु तच्चरमनिषेकपर्य्यंतमेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदमिर्द्धिकरूपगळ तेगेदु स्थापिसुवुदु संदृष्टि :

१४४	८ १४४ ८
१६०	७ १६० ८
१७६	६ १७६ ८
१९२	५ १९२ ८
२०८	४ २०८ ८
२२४	३ २२४ ८
२४०	२ २४० ८
२५६	१ २५६ ८

अंनु स्थापिसिदवरोळु चरमनिषेकप्रभृति स्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वकविशेषंगळं तेगुदु स्थापिसुवुदु संदृष्टि :

अत्र प्रथमपङ्क्तौ चरमनिषेकात्प्रभृति प्रथमनिषेकपर्यन्तं स्वस्वगुणकारमात्राः एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वस्वविशेषानुद्धृत्य पृथक् स्थापयितव्याः । संदृष्टिः— ५

३२ , १ , ८	
३२ , २ , ७	एषां युतिः गुणहानिप्रमितगच्छस्य द्विकवारसंकलनमात्रविशेषा भवन्ति—३२ । ८ । ८ । ८
३२ , ३ , ६	३ २ १
३२ , ४ , ५	
३२ , ५ , ४	अपनीतशेषद्वितीयगुणहान्यादिनिषेक एकाद्येकोत्तरक्रमेण एते २५६ , ८
३२ , ६ , ३	२५६ , ७
३२ , ७ , २	२५६ , ६
३२ , ८ , १	२५६ , ५
	२५६ , ४
	२५६ , ३
	२५६ , २
	२५६ , १

संकलिताः सन्तो गुणहानिरूपगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रा भवन्ति २५६ , ८ , ८ , एतौ द्वौ राशी
२ १

मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं प्रथमपङ्क्त्यादिधनं भवति

३२ , ८ , ४ , ८ , ८ , अत्रोत्तरधनं नास्ति, तथा द्वितीयपङ्क्तेः स्वप्रथमादिनिषेकेषु तच्चरमनिषेकपर्यन्तेषु १०
६

एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थितानि अधिकरूपाणि पृथक्स्थाप्यानि । संदृष्टिः—

१४४ । ८	१४४ । ८
१६० । ७	१६० । ८
१७६ । ६	१७६ । ८
१९२ । ५	१९२ । ८
२०८ । ४	२०८ । ८
२२४ । ३	२२४ । ८
२४० । २	२४० । ८
२५६ । १	२५६ । ८

अत्र चरमनिषेकात्प्रभृति स्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषानुद्धृत्य स्थापयेत्—

---

१. ब °हानिसंकलनत्रिभाग° ।

१६।८।१	१६। ८	१६।३६
१६।७।२	१६।१४	१६।२८
१६।६।३	१६।१८	१६।२१
१६।५।४	१६।२०	१६।१५
१६।४।५	१६।२०	१६।१०
१६।३।६	१६।१८	१६। ६
१६।२।७	१६।१४	१६। ३
१६।२।८	१६। ८	१६। १

इंतु स्थापिसि संकलिसुत्तिरलु गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु ।

१६	८ ८ ८	शेषमिदु
	३ २ १	

१२८	८
१२८	७
१२८	६
१२८	५
१२८	४
१२८	३
१२८	२
१२८	१

इवं संकलिसिदोडे गुणहान्येकवारसंकलनमात्रंगळु तृतीयगुणहान्याद्यनिषेकंगळप्पुवु।

१२८।८ ८ ई येरडु राशिगळनेकत्रं मांडिदोडे द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु द्वितीयपंक्त्यादिधनमिदु पूर्वमं नोडलर्द्धमक्कुं। १६।८।४।८।८।

६

मुन्नं कळेदशेषदोळु चरमनिषेकप्रभृति सर्वत्रगुणहानिगुणितविशेषंगळनेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदं तगेदोडे यिदु—

१६।८।१	१६। ८	१६।३६
१६।७।२	१६।१४	१६।२८
१६।६।३	१६।१८	१६।२१
१६।५।४	१६।२०	१६।१५
१६।४।५	१६।२०	१६।१०
१६।३।६	१६।१८	१६। ६
१६।२।७	१६।१४	१६। ३
१६।१।८	१६। ८	१६। १

एषां संकलनं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषं भवति—

१६।८।८।८ तदुद्धृतशेषमिदं ३।२।१

१२८।८
१२८।७
१२८।६
१२८।५
१२८।४
१२८।३
१२८।२
१२८।१

अस्य संकलितगुणहान्येकवारसंकलनमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति। १२८।८।८ एतौ द्वौ राशी २।१ मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं द्वितीयपंक्त्यादिधनं पूर्वस्मादर्धप्रमाणं भवति। १६।८।४।८।८। पुनरपरस्मादपनीतशेषाच्चरमनिषेकात् प्रभृति सर्वत्र गुणहानिगुणितैकाद्येकोत्तरविशेषानपनीय—

६

१. ब चतुर्गनि संकलनत्रि।

१६	८	१
१६	८	२
१६	८	३
१६	८	४
१६	८	५
१६	८	६
१६	८	७
१६	८	८

इदं संकलिसिदोडे इदु १६।८।८ $\overline{८}_{२}$ गुणहानिगुणित-गुणहानिसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु कळेद शेषंगळु सर्वत्र गुणहानिगुणित-तृतीयगुणहान्याद्यनिषेकमात्रंगळप्पुववक्के संदृष्टि :—

१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८

इदं त्रैराशिकक्रमदिंदं गुणिसुत्तमिरलु गुणहानिवर्गमात्रंगळु तृतीय-गुणहान्याद्यनिषेकंगळप्पुवु। १२८।८।$\overline{८}_{२}$। ई येरडु राशिगळुमनेकत्रं माडुत्तिरलु रूपाधिकद्वयार्द्धगुणहानिगुणितगुणहानिवर्गमात्रविशेषंगळु द्वितीय-पंक्त्युत्तरधनमक्कुं १६।८।८।$\overline{८}_{२}$ इंतु तृतीयादिपंक्तिगळोळादि-धनमुत्तरधनमर्द्धार्द्धमागि नडेवन्नेवरं चरमपंक्ति अन्नेवरं :— ५

१६।८।१	
१६।८।२	
१६।८।३	
१६।८।४	
१६।८।५	
१६।८।६	
१६।८।७	
१६।८।८	

संकलने १६।८।८।$\overline{८}_{२}$। गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनमात्रविशेषा भवन्ति। अपनीत-शेषं सर्वत्र गुणहानिगुणिततृतीयगुणहान्याद्यनिषेकमात्रं— १०

१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	

इति गुणहानिवर्गमात्रतृतीयगुणहान्यायनिषेकं भवति १२८, ८, ८, एतौ द्वौ राशी मिलित्वा

रूपाधिकद्वयार्धगुणहानिगुणितगुणहानिवर्गमात्रविशेषं द्वितीयपङ्क्त्युत्तरधनं भवति १६, ८, ८, ८, ३, $\overline{२}$

एवं तृतीयादिपङ्क्तिष्वपि आद्युत्तरधने अर्धार्धक्रमेण गच्छतः यावच्चरमपङ्क्तिस्तावत्, कितूत्तरधनं सर्वत्र रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितं भवति। संदृष्टिः—[कर्नाटटीकावत्]

१. व °न्यादिनिं। २. व °न्यादिवर्गमात्रविशेषं°। १५

नाम	आदिधनं ।	उत्तरधनं ।
अंतगुणहानिः	१, ८, ४, ८, ८/६	१ । ५ । ८ । ८ । ८/२ । ३
पंचमगुणहानिः	२, ८, ४, ८, ८/६	२ । ४ । ८ । ८ । ८/२ । ३
चतुर्थगुणहानिः	४, ८, ४, ८, ८/६	४ । ३ । ८ । ८ । ८/२ । ३
तृतीयगुणहानिः	८, ८, ४, ८, ८/६	८ । २ । ८ । ८ । ८/२ । ३
द्वितीयगुणहानिः	१६, ८, ४, ८, ८/६	१६ । १ । ८ । ८ । ८/२ । ३
प्रथमगुणहानिः	३२, ८, ४, ८, ८/६	०

इल्लि विशेषमुंटावुदेंदोडे वुत्तरधनंगळु रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितंगळप्पुवु, चरमपंक्त्यादिधनमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिदं गुणिसुत्तिरलु सर्वपंक्त्यादिधनसंकलितधनमक्कुं ६३८४८/६८१ उत्तरधनगुणकारंगळोळु सर्वत्र स्वस्वगुण्यवोडगूडिदेकैकरूपं तेगेदु बेरे बेरिरिसूदितु बेरिरिसिद राशिगळु रूपोननानागुणहानिशलाकमात्रराशिगळु प्रथमपरिपाटियिदमि (मो) रुतिप्पुवु :—

अत्र चरमपङ्क्त्यादिधनं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं तदा सर्वपङ्क्त्यादिधनं संकलितं स्यात् १३ । ८/६ । ४ । ८ । ८ । उत्तरधनगुणकारेषु सर्वत्र स्वस्वगुण्ययुतैकैकरूपेषु अपनीय पृथक् स्थापितेष रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रराशयः प्रथमपरिपाट्या तिष्ठन्ति । [कर्नाटटीकावत्]

१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	०
२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	०	०
४।८।८।८।३/२	४।८।८।८।३/२	४।८।८।८।३/२	०	०	०
८।८।८।८।३/२	८।८।८।८।३/२	०	०	०	०
१६।८।८।८।३/२	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०

इवरोळु प्रथमराशि रूपाधिक द्वयर्द्धगुणहानिर्यिदमुं गुणहानिवर्ग्गदिंमुं गुणितद्वितीयगुणहानि-विशेषमात्रंगळप्पुवु। तच्चरमराशियुं तद्गुणकारगुणितचरमगुणहानिविशेषमात्रमक्कुमितु विशेष-गुणकारंगळोळु पूर्व्वोक्त प्रमाणदिंदं राशिगळं क्रमदिंदं तेगेदु बेरिरिसिदवु रूपोननानागुणहानि शलाकामात्रंगळु परिपाटियिनिर्द्दवर गुणसंकलनंगळिवु :—

३१।८।८।८।३/२ १५।८।८।८।३/२ ७।८।८।८।३/२ ३।८।८।८।३/२ १।८।८।८।३/२

इवरोळु, गुणसंकलनमं पुट्टिसल्वेडि चरमपरिपाटिद्रव्यमात्रमनिनितं १।८।८।८।८।३/२

सर्व्वत्र मिक्कल्पट्टप्पुदरिंदं नानागुणहानिमात्रंगळं १।८।८।८।८।३/२ ऋणमनिक्कि गुणसंकलनधनमं तंदोडे इदु :—

एते च क्रमेण संकलिता एवं तिष्ठन्ति—

३१, ८, ८, ८, ३/२	१५, ८, ८, ८, ३/२	७, ८, ८, ८, ३/२	३, ८, ८, ८, ३/२	१, ८, ८, ८, ३/२

पुनः एतेषु गुणसंकलनार्थं नानागुणहानिमात्रस्थानेषु चरमपरिपाटिमात्रमेतावदेतावत्

१, ८, ८, ८, ३/२ ऋणं निक्षिप्य—

३१।८।८।८।३ १५।८।८।८।३ ७।८।८।८।३ ३।८।८।८।३ १।८।८।८।३ १।८।८।८।३
२ २ २ २ २ २

इदर गुणसंकलनधनमिनितक्कुं ६३ ८।८ ८।३ इल्लि ओंदु गुणहानियं
२

गुणकाररूपदिंदं मुंदे स्थापिसि ६३।८।८।३।८ मिक्कुदं परस्परं गुणिसुत्तिरलु
२

रूपाधिकत्रिगुणहानियं गुणिसिदोडे यिप्पत्तय्दु एरडनेंटरोळुपवर्त्तिसि शेषनाल्कुरिवं गुणिसलु
६३००।८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रमें बुदर्त्थ-। मिल्लि संकलननिमित्तमिक्किव मुन्निन
ऋणमिनितप्पुदि १।८।८।३।६ लिल्लियमोंदु गुणहानियं नानागुणहानियुमं मुंदे
२

स्थापिसि १।८।८।३।८।६ मिक्कुदं परस्परं गुणिसुत्तिरलु मिनितक्कुं।
२

१००।८।६। मितावधनमिवु ६३।८।४।८। उत्तरधनमिवु ६३००।८। ऋण
६

१००।८।६। ई मूरु राशिगळं समयप्रबद्धशलाकेगळं माडिदोडे यथाक्रमदिंनितप्पुंवु

३१,८,८,८,३ / २	१५,८,८,८,३ / २	७,८,८,८,३ / २	३,८,८,८,३ / २	३,८,८,८,३ / २	१,८,८,८,३ / २

संकलितेषु धनमेतावद्भवति। ६३।८।८।८।३। अत्रैकगुणहानिगुणकाररूपेणाग्रे संस्थाप्य—
२

६३।८।८।३।८। रूपाधिकत्रिगुणगुणहानौ परस्परं गुणितायां पञ्चविंशतिः। तस्यां च द्वौ अष्टभिर-
२

पवर्त्य शेषचतुर्भिर्गुणितायां ६३००।८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं दृश्यते। प्रागत्र संकलनार्थं निक्षिप्ते
एतावदृणे १।८।८।८।३।६। अप्येकगुणहानिं नानागुणहानिं चाग्रे संस्थाप्य
२

१।८।८।३।८।६। परस्परं गुणिते एवं भवति १००।८।६ एवमुक्तमादिधनम्।
२

६३।८।४।८।८। उत्तरधनं ६३००।८। ऋणं च १००।८। समयप्रबद्धशलाकाः कृत्वा
६

८।४।८।८ ८ ८।६ मुंबे अधिकाधिकसंकलनविधानदोळ् पेळ्दंते नडसिदोडे
१००।६ ६३
किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळु सत्वमप्पुवु स ० १२। इंतायुर्वर्जिताष्टविधकर्म्म मूलोत्तरप्रकृतिगळगे प्रतिसमयं बंधोदयसत्वलक्षणमं पेळ्वुत्तलक्षणविलक्षणमप्प बंधोदयसत्व सामग्रिविशेषमनायुष्यकर्म्मक्के पेळ्दपं।

यो जीवः आवनोर्व्वं कर्म्मभूमिय मनुष्यजीवं भुज्यमानपूर्व्वकोटिवर्षायुष्यमनुळं परभव- ५
संबंधि पूर्व्वकोटिवर्षायुष्यमं जलचरंगळोळु दीर्घमप्पायुबंधाद्धेयिंदमुं तत्प्रायोग्यसंक्लेशदिंदमुं तत्प्रायोग्योत्कृष्ट योगदिंदमुं कट्टुगुं। योगयवमध्यदमेगंतर्म्मुहूर्त्तमिर्द्दों चरमजीवगुणहानिस्थानांतर-दोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रकालमिर्द्दों क्रमदिं कालंगतनागि पूर्व्वकोटचायुर्ज्जलचरंगळोळ्पुट्टिदो नंतर्म्मुहूर्त्तदिंदं सर्व्वलघुसर्व्वपर्य्याप्तिगळिंदं पर्य्याप्तकनादोनंतर्म्मुहूर्त्तं विश्रमिसिदों अंतर्म्मुहूर्त्तदिंदं पुनरपि परभवसंबंधि पूर्वकोटचायुष्यमं जलचरंगळोळ्कट्टुगुं तदा दीर्घायुबंधाद्धेयिंदमुं तत्प्रायोग्य- १०
संक्लेशदिंदमुं तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगदिंदमुं कट्टुगुं योगयवचरमजीवं बहुशः सातद्धेयोळु कूडिवोन-

८।४।८।८ ।८।८।६। अधिकाधिकसंकलनवन्मेलयित्वा किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्ध-
१००।६ ६३
सत्त्वं भवति स ० १२–।

एवमायुर्वर्जिताष्टविधकर्ममूलोत्तरप्रकृतीनां प्रतिसमयं बन्धोदयसत्त्वलक्षणं कथयित्वा उक्तलक्षणविलक्षणं बन्धोदयसत्त्वसामग्रीविशेषं आयुःकर्मणः कथयति—

कश्चिज्जीवः कर्मभूमिमनुष्यः भुज्यमानपूर्वकोटिवर्षायुष्कः परभवसम्बन्धिपूर्वकोटिवर्षायुष्यं जलचरेषु १५
दीर्घायुर्बन्धाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति। योगयवमध्यस्योपर्यन्तमुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रकालं स्थितः क्रमेण कालं गमयित्वा पूर्वकोट्यायुर्जल-चरेषु उत्पन्नोऽन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः अन्तर्मुहूर्तेन विश्रान्तः अन्तर्मुहूर्तेन पुनरपि परभव-सम्बन्धिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरेषु बध्नाति तदा दीर्घायुर्बन्धाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन २०

इस प्रकार आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रतिसमय बन्ध, उदय और सत्त्वका लक्षण कहकर आयुकर्मके बन्ध, उदय सत्त्वकी सामग्री विशेष कहते हैं जो उक्त लक्षणसे विलक्षण है।

एक पूर्वकोटि वर्षकी आयुको भोगनेवाला कोई कर्मभूमिया मनुष्य परभवसम्बन्धी एक पूर्वकोटि वर्षकी जलचरसम्बन्धी आयु उसके योग्य संक्लेश और उसके योग्य उत्कृष्ट- २५
योगसे बाँधता है। योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक स्थित होकर अन्तिम जीवगुणहानि-स्थानमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल तक ठहरता है। फिर क्रमसे एक पूर्वकोटि काल बिताकर एक पूर्वकोटिकी आयुके साथ जलचरोंमें उत्पन्न हुआ। अन्तर्मुहूर्तमें सब पर्याप्तियोंको पूर्ण करके पर्याप्त हुआ, फिर अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम किया। अन्तर्मुहूर्तमें पुनः परभवसम्बन्धी पूर्वकोटिकी जलचर सम्बन्धी आयु बाँधता है। वह भी उसके योग्य संक्लेश ३०

१. यः कर्म° ब। २. ब योगपञ्चमं°।

नंतर समयदोळायुर्बंधमं निर्लेपि सुगुमेंदितु। जीवंगायुर्वेदनाद्रव्यमुमेरडुमुत्कृष्टसंचयमक्कुं। "अंतोमुहुत्तमेत्तेण सव्वलहु सव्वपज्जत्तीहि पज्जत्तयदो "एंदिल्लितु पर्य्याप्तिगळं परिसमाप्ति माडि तदनंतरमंतर्म्मुहूर्तकालं विश्रमिसि जीविसि बंदंतर्म्मुहूर्ताद्धा प्रमाणदिदं मेलणपूर्व्वकोटचायुष्यमनेल्लमनोदे समयदिदं जीविताद्धायाममात्रसंख्यातसदृशखंडमं कदळीघातदिदं घातिसि मत्तं घातिसिद समयदोळे परभवद संबंधि पूर्व्वकोटचायुष्यमं जलचरसंबंधियनन्यायुर्बंधाद्धिय नोडलू जलचरायुर्बंधाद्धिदीर्घ्यमेंदितु दीर्घायुर्बंधाद्धियिं कट्टिट जलचरंगळोळु विवेकाभावदिदं संक्लेशवर्जितंगळप्पसातबहुलंगळोळपकर्षणकरणदिदं विनाश्यमानद्रव्यक्के बहुत्वाभावमं कुरुत्तु मेण् जलचरंगळोळायुर्बंधमरियल्पट्ट एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकमं स्थापिसि स ३२।१६ जीविताद्धियिदं गुणिसि

८।पू १६ पू
२

स ३२।१६।२१९४ अल्लि रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषंगळं

८।पू १६—पू
२

---

१० च बध्नाति। योगैचरमजीवो बहुशः साताद्धया सहितः अनन्तरसमये आयुर्बन्धं निर्लिपति इत्येवं तज्जीवानां आयुर्वेदनाद्रव्ये द्वेऽपि उत्कृष्टसंचये भवति। अन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं विश्रम्य जीवित्वा उत्पन्नान्तर्मुहूर्ताद्धाप्रमाणेन वा पूर्वकोट्यायुष्यं सर्वमप्येकेनैव समयेन जीविताद्धाया ममात्रसंख्यातसदृशखण्डं कदलीघातेन घातयित्वा पुनः घातसमये एव परभवसम्बन्धिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरसम्बन्धिन्यान्यायुर्बन्धाद्धातो जलचरायुर्बन्धाद्धा दीर्घेति दीर्घायुर्बन्धाद्धया बद्ध्वा जलचरेष्वेकभावेन

१५ संक्लेशवर्जितेषु सातबहुलेषु अपकर्षणकारणेन विनाश्यमानद्रव्यस्य बहुत्वाभावं स्तोकं वा जलचरेषु आयुर्बन्धो ज्ञातव्यः। एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकं स्थापयित्वा स ३२ । १६ जीविताद्धया गुणयित्वा

८।पू, १६—पू
२

और उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे बाँधता है। योगयवरचनाके अन्तमें वह जीव बहुत बार साताके कालसे युक्त होता हुआ अनन्तर समयमें आयुबन्धको घटाता है। इस प्रकार उन जीवोंके आयुके वेदनाद्रव्यका उत्कृष्ट संचय होता है। इसीका विस्तारसे वर्णन कर्णाटक २० वृत्ति तथा तदनुसारी संस्कृत टीकामें किया है।

विशेषार्थ—आयुके बन्ध, उदय, सत्त्वका लक्षण अन्य कर्मोंसे विलक्षण है; क्योंकि आयुका बन्ध अपकर्ष कालमें अथवा अन्तिम कालमें ही होता है। तथा आयुका आबाधाकाल पूर्वभवमें ही बीत जाता है। इससे आयुकी स्थिति जितने समयकी होती है, उतनी ही निषेकरचना होती है। यहाँ आयुकी स्थितिमें-से आबाधाकाल घटाया नहीं जाता।

---

२५ १. ब योग्यचरमजीवो बहुशः साताद्धय सहितो। २. ब द्रव्यं च उत्कृष्टसंचयं भवति—मु। ३. ब सर्वमेकैकेनैव। ४. ब द्रव्यबहुत्वाभावं।

स ३२-२१११४,२११,४ कळदु २११ अपवर्तनमं रूपोनार्द्धार्द्धरहितदोगुणहानिगे रूपो-
८ पू १६ पू २ २
स ३२।१६। २११४
८ पू १६—पू
२
न जीवितार्द्धार्द्धहीनदोगुणहानियं सरिगळेदोडिदु शेष स ३२। २ ११ ४ मिदुनुत्कृष्टायुर्बं-
८। पू
धाद्धियिंदं गुणिसलिदु स ३२। २११। ४। ११ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धमक्कुं
८ पू २
स ३२। २ एकेंदोडे उत्कृष्टबंधाद्धियिंदं गुणिसिद जीविताद्धावलिय शलाकेगळं नोडलुं
८ १
पूर्वकोटिय आवलियशलाकेगळ्गे संख्यातगुणमुंटप्पुदरिंदं— ५

४ अद्धाणेण। पू। सव्वधणे। स ३२। खंडेडे। स ३२ मज्झिमधनमाच्छेदे तंह रूऊण
अद्धाणे। पू। अद्धेण। पू। ऊणेण निषेयहारेण। पू—१६ मज्झिमधणमवहरिदे
२ २
स ३२। पदयं। तद्दोगुणहाणिणा १६ गुणिदे। स ३२। १६ आदिणिसेयं=४। १
८ पू १६—पू ८। पू १६—पू
२

स ३२।१६। २११४ अत्र रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषान् स ३२, २११४, २११, ४,
८, पू, —पू ८, पू, १६ पू २
२

अपनीय स ३२, २११, ४, १६, २११४, अपवर्तितं रूपोनार्धार्धरहितदोगुणहान्या रूपोनजीवि- १०
८ पू १६ पू, २
२

ताधार्द्धहीनदोगुणहानिमपवर्त्य शेषं स ३२। २११४, उत्कृष्टायुर्बन्धाद्धया गुणितं स ३२, २११४,
८, पू ८ पू

२११ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धं भवति—स ३२, २ तत्कथं? उत्कृष्टबन्धाद्धागुणितजीवि-
८ १

ताद्धावलि शलाकानां संख्यातगुणत्वात्, प्रकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेके जीविताद्धामात्रनिषेकेषु अपनीतेषु
स ३२ १६ २११४ एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृतिगोपुच्छस्य प्रथमखण्डप्रथमनिषेको भवति
८ पू १६ पू,
२

समयक्के ३२।१'१४ इष्टद्रव्यमागलु इनितक्के २११ नितु द्रव्यमक्कुं=४॥
८पू

प्रकृतिगोपुच्छेयप्रथमनिषेकदोळु जीविताद्धामात्रविशेषंगळं कळेयुतिरलु स ३२।१६२११४
८१६-पू
२

एकसमयप्रबद्धमनाश्रयिसि विकृतिगोपुच्छेय प्रथमखंड प्रथमनिषेकमपवर्तितमिनितक्कु स ३२
८।पू

मिदं संख्यातरूपमात्रखंडशलाकेगळिंदं गुणिसि स ३२—पू इवरोळु जीविताद्धामात्रविशेषंगळ-
८पू।२११४

५ नादियं माडि स ३२।२११४ जीविताद्धामात्रविशेषंगळनुत्तरमं माडि स ३२ २११४
८ पू १६ पू
२

८ पू १६ पू
२

रूपोनखंडशलाकेगळं गच्छेयं माडि १ संकलन धनमं तंदु स ३२।२११४ ११ इवं कळे-
२१

८पू १६—पू
२

युत्तिरलेकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखंडविकृतिगोपुच्छेय प्रथमनिषेकंबक्कुं स ३२ पू
त पू २११४

स ३२ २११४११
८ पू १६-पू २१
२

मेकें दोडे प्रथमखंडप्रथमनिषेकमं नोडलु द्वितीयादिखंडंगळ प्रथमनिषेकंगळल्लिल्लि जीविताद्धामात्र-विशेषहीनंगळप्पुदरिंदं :

---

१० अपवर्तितः स ३२ असावेव संख्यातरूपमात्रखण्डशलाकागुणितः स ३२ , पू , जीविद्धा-
८ , पू २११४ ८ पू , २११४

मात्रविशेषान् स ३२ , २११४ आदिमुत्तरं च कृत्वा रूपोनखण्डशलाकाः १ गच्छं कृत्वा आनीत-
८ , पू , १६ , - पू
२

संकलनेन स ३२।२ १ १ १, ४ १ । १ । ऊनितः एकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखण्डविकृति-
८।पू।१६-पू।२।१।
२

गोपुच्छस्य प्रथमनिषेको भवति—स ३२ , पू तत्कथं ? प्रथमखण्डप्रथमनिषेकाद्द्वितीयादिखण्डप्रथम-
८ , पू , २११४

पू
२ १ १ ४

मत्तमा विकृतिगोपुच्छेयसंख्यातखंडप्रथमनिषेकमं स ३२ पू— नष्टद्रव्यप्रमाणा-
८ पू २ १ ४

नयननिमित्तमागि रूपोनोत्कृष्ट बंधाद्धियिंवं गुणिसि स ३२–पू २७७—१ बी राशियोळु
८ पू २ १ १ ४

खंडशलाकामात्रविशेषादि स ३२ १ खंडशलाकामात्रविशेषोत्तरमागि द्विरूपोनोत्कृष्टायु-
८ पू १६ –पू
२

बंधाद्धागच्छ २ १ १—२ संकलनधनमं तंदिदं स ३२ । १ । १ २ १ १ कळेदोडेक- ५
२१
८ पू १६—पू
२

निषेकाणां तत्र जीविताद्धामात्रप्रचयहीनत्वात्–

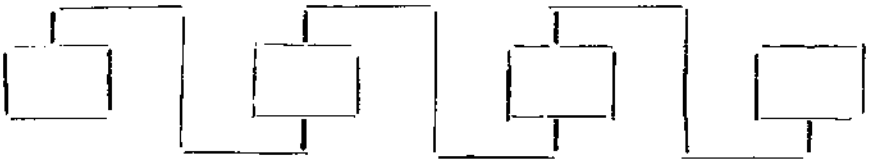

पू
२ १ १ ४

पुनरपि स एव विकृतगोपुच्छस्य[2] संख्यात खण्ड– स ३२ , २ १ १ । ४ , १ , १ , प्रथमनिषेकः
८ , पू , १६ पू । २
२

स ३२ , पू— नष्टद्रव्यप्रमाणमानेतुं रूपोनोत्कृष्टबन्धाद्धया गुणयित्वा—स ३२ , पू २ १ १–१ ।
८ । पू । २ १ १ ४ ८ , पू , २ १ १ ४

खण्डशलाकामात्रविशेषान् स ३२ । १ आदिमुत्तरं च कृत्वा द्विरूपोनोत्कृष्टबन्धाद्धां गच्छं २ १ १ १०
८ , पू १६—पू
२

---

१. उत्कृष्टबंधाद्धायाश्चरमनिषेके स्थित्वा आयुष्यस्योत्कृष्टसंचयो निरीक्ष्यत इति हेतोस्तद्द्विचरमपर्यंतस्था एव निषेका नष्टद्रव्यप्रमाणं ततोऽन्यनिषेकनिरासार्थं रूऊणेत्युक्तं ± ।

२. ब °स्य खण्डे प्रथमनिषेकं संख्यातप्रमाणरूपमानेतुं रूपेणोत्कृष्टबन्धाद्धया गुणयित्वा संख्यातनष्टद्रव्यखण्ड-शलाकामात्रविशेषान् U U आदिमुत्तरं च कृत्वा ।

समयप्रबद्धमनाश्रयिसि विकृतिगोपुच्छेय नष्टसर्व्वनिषेकंगळु समयप्रबद्धसंख्येय भागंगळप्पुववनुत्कृष्टायुबंधाद्धियिंदं गुणिसुत्तमिरलु आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धंगळु विकृतिस्वरूपदिंदं नष्टंगळु बप्पुवु स ३२ − १ पू २ १ १−१ २ १ १ अपवर्तितमिदु स ३ २ २ इल्लि
८ पू २ १ १ ४ ८ १

विशेषमुंटदावुदेंदोडे ई विकृतिस्वरूपदिंदं नष्टद्रव्यं प्रकृतिरूपदिंदं नष्टद्रव्यमं नोडलु संख्यातगुणमेकेंदोडेयुत्कृष्टबंधाद्धियिंदं कदळीघातदिंदं घातिसिदधस्तनाद्धेयं गुणिसि पूर्वकोटियिंदं भागगोळ-
२
ळावुदोंदु लब्ध स ३२ १ १ ४ २ १ १ मिदं नोडलु कदळीघातैकखंडायामदिंदमुत्कृष्ट-
८ पू

बंधाद्धावर्गमं भागिसुतिरलावुदोंदु लब्ध स ३२ पू २ १ १ २ १ १ मिदक्के संख्यात-
८ पू २ १ १ ४

गुणत्वोपलंभमप्पुदरिंदं ई येरडुं द्रव्यंगळनेकत्रं माडुत्तिरलु प्रकृतिविकृतिस्वरूपदिंदं नष्टसर्व्वद्रव्यमावळियसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुविव स ३२ २ नुभयोत्कृष्टबंधाद्धामात्रसमय-
८ १

प्रबद्धंगळोळु कळेयुत्तमिरलायुष्योत्कृष्टसंचयद्रव्यमक्कुं स ३२ २ १ १ २ −
८

अनंतरं द्वादशगाथासूत्रं गळिंदं योगमार्गणेयोळु संख्येयं पेळ्दपरु—

कृत्वानीतसंकलनेन स ३२ , १ , २ १ १ , २ १ १ ऊनः एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृति-
८ , पू १६—पू , २
२

गोपुच्छस्य नष्टसर्वनिषेकाः समयप्रबद्धसंख्येयभागानां भवन्ति, ते उत्कृष्टायुर्बन्धाद्धया गुणिताः तदावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धाः विकृतिस्वरूपेण नष्टा आगच्छन्ति स ३२—, पू २ १ १ । २ १ १ अपवर्तिते एवं
८ , पू , २ १ १ ४

स ३२ , २ । अत्रायं विशेषः—एतद्विकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यं प्रकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यात्संख्यातगुणं , कुतः ?
८ १

उत्कृष्टबन्धाद्धया कदलीघातेन घातिताधस्तनाद्धां गुणयित्वा पूर्वकोट्या भागे गृहीते यल्लब्धं—

स ३२ , २ १ १ ४ , २ १ १ तस्मात्कदलीघातैकखण्डायामेन उत्कृष्टबन्धाद्धावर्गे भक्ते यल्लब्धं
८ पू

स ३२ , पू २ १ १ २ १ १ , अस्य संख्यातगुणत्वोपलम्भात् एते द्रव्यद्वये एकत्र कृते सति प्रकृति-
८ , पू २ १ १ ४

स्वरूपेण (प्रकृतिविकृतिरूपेण) नष्टद्रव्यमावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धा भवन्ति स ३२ , २ एतेषु
८ १

उभयोत्कृष्टबन्धाद्धामात्रसमयप्रबद्धेषु अपनीतेषु आयुरुत्कृष्टसंचयद्रव्यं भवति स ३२ , २ १ १ , २ ॥२५८॥
८

अथ द्वादशगाथासूत्रैर्योगमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

बादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥२५९॥

बादरपूर्णास्तैजसाः स्वकराशेरसंख्यभागमिताः । विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्याता वायवः ॥

विक्रियाशक्तियुक्तंगळप्प बादरपर्य्याप्ततैजस्कायिकजीवंगळु तम्म राशि वृंदावल्य ८
अ
संख्येयभागमात्रमप्पुददर पुनरप्यसंख्येयभागप्रमितंगळ ८ बादरपर्य्याप्तवायुकायिकजीवं- ५
अ
गळोळु विक्रियाशक्तियुक्तंगळु पल्यासंख्येयभागप्रमितंगळु ≡विक्कि = प "बादरतेऊवाऊ-
१ अ
पंचिंदिय पुण्णगा विगुव्वंते" एंदितो तैजस्कायिकवायुकायिकंगळ्गे वैक्रियिकयोगकथनमुंटप्पुदरिंदं ।

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।
वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥२६०॥

पल्यासंख्याताहृतवृंदांगुलगुणितश्रेणिमात्रा खलु । वैक्रियिकपंचेंद्रिया भोगभौमाः पृथक् १०
विगूर्व्वंति ॥

वैक्रियिकयोगिगळप्प पर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यंचरुं मनुष्यरु पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्तघनांगुल-

---

बादरपर्याप्ततेजस्कायिकजीवेषु विक्रियाशक्तियुक्ताः स्वराशेर्वृन्दावल्यसंख्येयभागमात्रस्य ८ पुनरसंख्येय-
अ
८ ≡
भागप्रमिता भवन्ति अ अ बादरपर्याप्तवायुकायिकजीवेषु लोकसंख्येयभागमात्रेषु १ विक्रियाशक्तियुक्ताः
प
पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवन्ति अ । "बादरतेऊवाऊपंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति" इत्यनेन अनयोर्वैक्रियिक- १५
योगस्य अस्तित्वकथनात् ॥२५९॥

पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येषु वैक्रियिकयोगिनः पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्ता घनाङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रा

आगे माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव बारह गाथाओंसे योगमार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

बादर पर्याप्तक तैजस्कायिक जीवोंमें विक्रिया शक्तिसे युक्त जीव अपनी राशि अर्थात् आवलीके घनके असंख्यातवें भागमें असंख्यातका भाग देनेसे जितना प्रमाण आता है, उतने हैं । तथा बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवोंमें जो कि लोकके असंख्यातवें भागमात्र कहे हैं, विक्रिया शक्तिसे युक्त जीव पल्यके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं । पीछे 'बादरवाऊतेऊ पंचिंदियपुण्णगाविगुव्वंति' इस गाथाके द्वारा बादर पर्याप्त अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिक योगका सद्भाव कहा है ॥२५९॥

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योंमें वैक्रियिककाय योगी पल्यके असंख्यातवें

---

१. ब नेन एषामपि वै- ।

गुणितजगच्छ्रेणिमात्रंगळ्‌ —६ – प । खलु स्फुटमागि अप्पुवल्लि भोगभूमिजतिर्य्यङ्मनुष्यरुगळ्‌ कर्म्मभूमिजरोळ्‌ चक्रवर्त्तिगळ्‌ पृथक् मूलशरीरवर्त्तिणिदमन्यच्छरीरमं विगुर्व्विसुवरु । इदरिंदं कर्म्मभूमिजरिगे पृथग्विक्रिये सूचिसल्पट्टुदु ।

देवेहि सादिरेया तिजोगिणो तेहि हीण तसपुण्णा ।
बियजोगिणो तदूणा संसारी एकजोगा हु ॥२६१॥

देवैः सातिरेकास्त्रियोगिनस्तैर्विहीनाः त्रसपूर्णाः । द्वियोगिनस्तदूनाः संसारिणः एकयोगाः खलु ॥

नारकरु—२ घनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरु । तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरु- = ४ । ६५ = १ पर्य्याप्तमनुष्यरु ४२ = ४२ = ४२ = इंतो मूरुं राशिगळिंदं सातिरेकमप्प देवराशि = १ त्रियोगिराशियक्कुं । कायवाग्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशियेंबुदर्त्थमा- ४ । ६५ = १

भवन्ति—६ । प खलु-स्फुटं । तत्र भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथक्मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विगुर्वन्ति । अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया सूचिता ॥२६०॥

घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितनारकैः —२ , संख्यातषण्णट्ठीप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरप्रमित- = संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्भिः ४ , ६५ = १ बादालघनप्रमितपर्याप्तमनुष्यैश्च ४२ = ४२ = ४२ = , सातिरेकः = ११ साधिको देवराशिः ४ , ६५ = १ त्रियोगिराशिर्भवति—कायवाङ्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिरित्यर्थः । तं-

भागसे गुणित घनांगुलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण आता है, उतने हैं । उनमें-से भोगभूमिमें जन्मे तिर्यंच और मनुष्य तथा कर्मभूमिजोंमें चक्रवर्ती पृथक् अर्थात् मूल-शरीरसे भिन्न ही विक्रिया करते हैं । इससे कर्मभूमिजोंमें अपृथक् विक्रिया ही होती है, यह सूचित किया है ॥२६०॥

पहले देवराशिका प्रमाण साधिक ज्योतिष्क देवराशि प्रमाण कहा था । उस देवराशिमें घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणी प्रमाण नारकी, और असंख्यात षण्णट्ठी तथा प्रतरांगुलसे भाजित जगतप्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच तथा बादालके घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इन सबको मिलानेसे जो परिमाण होता है, उतनी त्रियोगी अर्थात् काय-वचन-मन तीनों योगोंसे युक्त जीवोंकी राशि होती है । पर्याप्त त्रसराशि प्रमाणमें-से त्रियोगी जीवोंके परिमाणको कम कर देनेसे जो शेष रहे, उतने द्वियोगी अर्थात् काययोग और वचनयोगसे

१. ब °रादन्यशरीरं ।

त्रियोगिजीवहीनत्रसपर्य्याप्तराशि $\frac{\overline{=}}{५-४}$ द्वियोगिराशिप्रमाणमक्कुं। काययोगयुक्तजीवराशियें बुदर्त्थमा द्वियोगिजीवंगळिंदमुं त्रियोगिजीवंगळिंदमुं हीन संसारिराशि १३ एकयोगिराशियक्कुं काययोगजीवराशियें बुदर्त्थमितु खलु स्फुटमागि ज्ञातव्यमक्कुं।

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्म्मुहूर्त्तमात्राश्चतुर्म्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः। तद्योगः सामान्यं चतुर्व्वाग्योगास्ततस्तु संख्यगुणाः॥

सत्यासत्योभयानुभयमें बी विकल्पंगळप्प नाल्कुं मनोयोगंगळुमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रंगळु। प्रत्येकमंतर्मुहूर्त्तकालवृत्तिगळप्पुवंतादोडं क्रमदिदं संख्येयगुणंगळु

सा	२१	८५	मी नाल्कुं
अ	२१	६४	
उ	२१	१६	
अ	२१	४	
स	२१	१	

योगकालंगळु युतियुमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुमी नाल्कुं मनोयोगकालयुति सामान्यमं नोडलु २१। ८५।

हीनत्रसपर्याप्तराशिः $\frac{\overline{=}}{५-४}$ द्वियोगिराशिप्रमाणं भवति—काययोगयुक्तजीवराशिरित्यर्थः। ताभ्यां द्वित्रियोगराशिभ्यां हीनसंसारी १३ = एकयोगिराशिर्भवति—काययोगिजीवराशिरित्यर्थः। एवं खलु स्फुटं ज्ञातव्यम् ॥२६१॥

सत्यासत्योभयानुभयाख्याः चत्वारो मनोयोगाः अन्तर्मुहूर्तमात्राः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवन्ति—

अ २१। ६४	एषां कालानां युतिः सामान्यं सामान्यमनोयोगकालो भवति २१ ८५। अयमप्यन्तर्मुहूर्तमात्र
उ २१। १६	एव, ततः सामान्यमनोयोगकालात्तु पुनः ते चत्वारो वाग्योगकाला अपि क्रमेण संख्यातगुणाः,
अ २१। ४	तथापि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्रा एव—
स २१। १	

युक्त जीवोंका परिमाण होता है। संसारी जीवराशिमें-से दो योग और तीन योगवाले जीवोंका परिमाण हीन कर देनेपर जो शेष रहे, उतना एक योगी अर्थात् काययोगी जीवोंकी राशि होती है ॥२६१॥

सत्य, असत्य, उभय और अनुभय नामक चारों मनोयोगोंमें-से प्रत्येकका काल अन्तर्मुहूर्त है, तथापि क्रमसे संख्यात गुणा है अर्थात् सत्य मनोयोगका काल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्य मनोयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभय मनोयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभय मनोयोगका काल है। इन चारों योगोंके कालका जोड़ सामान्य मनोयोगका काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है। सामान्य मनोयोगके कालसे चारों वचनयोगोंका काल भी क्रमसे संख्यातगुना है, तथापि प्रत्येकका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है अर्थात् चारों मनोयोगोंके कालोंके जोड़से संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त सत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा

तु मत्तं नाल्कुं वाग्योगकालंगळ्गु संख्यातगुणंगळु क्रमदिंदप्पुवु सम ञं । वाग्योग इल्लियुं

	२१।८५	३४०
आ	२१।८५	२५६
उ	२१।८५	६४
अ	२१।८५	१६
स	२१।८५	४

प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्तकालवृत्तिगळप्पुवंतादोडं क्रमदिंदं संख्येयगुणंगळुमी नाल्कुं वाग्योगकालयुतियुमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुं २१।८५।३४०।

तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं ।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ॥२६३॥

तद्योगः सामान्यं कायः संख्याताहतस्त्रियोगमितं । सर्व्वसमासविभाजिदं स्वकस्वगुणसंगुणे तु स्वकराशिः ॥

आ नाल्कुं वाग्योगकालंगळं योगं सम्मेलनं सामान्यवाग्योगकालमक्कुं । २१।८५।३४०। मिदं नोडलु काययोगकालं संख्यातगुणमक्कुं । २१८५। १३६०। मनोवाक्काययोगंगळ सर्व्वसमासदिंदं । त्रियोगिमितिं त्रियोगिगळ प्रमाणमप्प मिश्रिपिंडमं भागिसि स्वस्वगुणकारगळिंदं सत्य-

अ	२१।८५।२५६	एषां युतिः २१, ८५, ३४० अपि अन्तर्मुहूर्तमात्री भवति ॥२६२॥
उ	२१।८५।६४	
अ	२१।८५।१६	
स	२१।८५।४	

तेषां चतुर्णां वाग्योगकालानां योगः—युतिः सामान्यवाग्योगकालो भवति २१, ८५, ३४०। अस्मात् काययोगकालः संख्यातगुणः २१, ८५, १३६०। सर्वसमासेन सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां संयोगेन २१, ८५, १७०१ त्रियोगमितं प्रागुक्तं—

म	२१, ८५, १	त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालेन गुणिते सति स्वस्वसत्य-
व	२१, ८५, ३४०	
का	२१, ८५, १३६०	
एषां योगः १७०१		

अन्तर्मुहूर्त असत्य वचनयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभयवचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभयवचन योगका काल है। इन सबका योग भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है। संदृष्टिके रूपमें सत्यमनोयोगका काल १ है, तो असत्यमनोयोगका काल ४ है, उभय मनोयोगका काल १६ है और अनुभयका ६४। इन सबका जोड़ ८५ होता है। इससे संख्यातगुणा ८५×४ सत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा ८५×१६ असत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा ८५×६४ उभयका तथा उससे संख्यातगुणा ८५×२५६ अनुभयवचन योगका काल है। इसका जोड़ ८५×३४० होता है ॥२६२॥

इन चारों वचनयोगोंके कालका जोड़ ८५×३४० सामान्य वचनयोगका काल है। इससे संख्यात गुणा ८५×१३६० काययोगका काल है। सब मनोयोग, वचनयोग और

१. ब "त्रियोगिजीवराशिप्रमाणं भक्त्वा स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालरूपगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वसत्यमनोयोग्यादि जीवराशिप्रमाणमायाति तद्यथा—।"

मनोयोगादिगुणकारंगळिदं गुणिसुत्तमिरलु स्वस्वराशिप्रमाणं बक्कुं। सत्यमनोयोगियादिगळ संख्ये बक्कुमदं तंदोडे—'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः, एंदी गणितसूत्रोक्तदिंद इनितु कालदोळेल्लमिनितु जीवंगळगे संचयमागुत्तिरलु सत्यमनोयोगकालमिनितरोळेनितु जीवंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकं माडि तंतम्म शलाकेगळिदं गुणिसि प्रमाणराशिप्रक्षेपकयोगदिंदं भागिसुत्तिरलु

सत्यमनोयोगिगळादियाद योगिगळ संख्येयमक्कुं। सत्यमनोयोगिगळु $= \frac{१}{४।६५} \cdot \frac{१}{=१।८५।१७०१}$ ५

असत्यमनोयोगिगळु $= \frac{१}{४।६५।} \cdot \frac{४}{=।१।८५।१७०१}$ उभयमनोयोगिगळु

$= \frac{१।१६}{४।६५=१।८५।१७०१}$ अनुभयमनोयोगिगळु $= \frac{१।६४}{४।६५=१।८५।१७०१}$

समस्तमनोयोगिगळु $= \frac{१}{४।६५=१।१७०१}$ सत्यवाग्योगिगळु $= \frac{१-४}{४।६५=१।१७०१}$

मनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता, तद्यथा—एतावति काले

प्र २ १, ८५, १७०१ यद्येतावन्तो जीवाः संचीयन्ते फ = $\frac{॥}{४, ६५ = १}$ १ तदा एतावति काले इ २ १ कियन्तो १०

जीवाः संचीयन्ते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा स्वस्वशलाकाभिर्गुणयित्वा प्रमाणराशिना भक्ते सति सत्यमनोयोगादि-

योगिनां संख्या भवति, सत्यमनोयोगिनः— $= \frac{॥}{१, १}$ असत्यमनोयोगिनः—

$४, ६५ = १, ८५, १७०१$

$= \frac{॥}{१।४}$ उभयमनोयोगिनः $= \frac{॥}{१।१६}$ अनुभयमनोयोगिनः—

$४।६५=१।८५।१७०१$ $४।६५=१।८५।१७०१$

$= \frac{॥}{१।६४}$ समस्तमनोयोगिनः $= \frac{॥}{१।}$ सत्यवाग्योगिनः-

$४।६५=१।८५।१७०१$ $४।६५=१।१७०१$

काययोगके कालोंका जोड़ ८५ × १७०१ होता है। यथा ८५ × १ + ३४० + १३६० = १७०१। १५
इस अन्तर्मुहूर्त कालके जितने समय होते हैं, उनसे त्रियोगी जीवोंकी संख्यामें भाग देनेपर जो एक भाग परिमाण आये, उसे सत्य मनोयोग आदिके कालसे गुणा करनेपर सत्य मनोयोग आदिसे युक्त जीवराशिका परिमाण होता है। इससे कालके संचयका आश्रय लेकर संख्याका कथन किया है जो इस प्रकार है—यदि सब योगोंके कालमें पूर्वोक्त सब त्रियोगी जीव पाये जाते हैं, तो विवक्षित योगके कालमें कितने जीव पाये जायेंगे। इस प्रकार २०
त्रैराशिक करनेपर सब योगोंका काल तो प्रमाणराशि, त्रियोगी जीवोंका परिमाण फलराशि और जिस योगकी विवक्षा हो, उसका काल इच्छाराशि। सो यहाँ फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो परिमाण आवे, उतने-उतने जीव उस-उस

असत्यवाग्योगिगळु =१।१६ / ४।६५=१।१७०१ उभयवाग्योगिगळु =१।६४ / ४।६५=१।१७०१

अनुभयवाग्योगिगळु =१।२५६ / ४।६५=१।१७०१ समस्तवाग्योगिगळु =१।३४० / ४।६५=१।१७०१

समस्तकाययोगिगळु =१।१३६०। / ४ ६५=१।१७०१ द्वियोगिगळोळु वाग्योगकालमंतर्मुहूर्त्तं

२१। काययोगकालमदं नोडलु संख्यातगुणमी उभययोगकालयुतियिंदं २१४ द्वियोगि-
गळसंख्येयं त्रियोगिहीनत्रसपर्य्याप्तराशियं ४/५ भागिसि स्वस्वगुणकारदिंदं गुणिसुत्तिरलु
तंतम्म राशिगळप्पुवु। द्वियोगिवाग्योगिगळु =२१।१ / ४।२१।५ / ५-। द्वियोगिकाययोगिगळु =२१।४ / ४।२१।५ / ५-।

=१।४ असत्यवाग्योगिनः =१।१६ उभयवाग्योगिनः =१।६४
४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१

अनुभयवाग्योगिनः =१।२५६ समस्तवाग्योगिनः =१।३४० समस्तकाययोगिनः—
४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१

=।१।१३६०। द्वियोगिषु वाग्योगकालोऽन्तर्मुहूर्तः। २१। काययोगकालः ततः संख्यातगुणः
४।६५=१।१७०१

२१।४। उभयकालयुत्या २१।४। द्वियोगिजीवसंख्यां त्रियोगिहीनत्रसपर्याप्तराशिमात्रीं भक्त्वा स्वस्वगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति। द्वियोगिवाग्योगिनः =२१।१। द्वियोगिकाययोगिनः ४।२१।५ / ५-

---

योगवाले जानना। जैसे ८५×१७०१=१४४५८५ अन्तर्मुहूर्तमें १४४५८५०० इतने त्रियोगी-जीव होते हैं,तो एकमें कितने होंगे। अन्तर्मुहूर्त कालसे त्रियोगीकी संख्यामें भाग देनेपर लब्ध सौ आया। उसमें सत्य मनोयोगके काल एकसे गुणा करनेपर सत्यमनोयोगियोंकी संख्या सौ आती है। असत्यमनोयोगके काल चारसे गुणा करनेपर उनकी संख्या चार सौ आती है। इसी तरह शेष योगवालोंकी भी संख्या जानना। द्वियोगी जीवोंमें वचनयोगका काल अन्तर्मुहूर्त है,उसकी संदृष्टि एक मान लो। इससे संख्यातगुणा काययोगका काल है, उसकी संदृष्टि चार मान लो। इन दोनोंके कालको जोड़नेपर जो प्रमाण हो,उसका भाग दो योग-वाले जीवोंकी राशिमें देनेपर जो एक भाग परिमाण आवे,उसे अपने-अपने कालसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी राशि होती है। सो कुछ कम त्रसराशिके प्रमाणको उक्त संदृष्टि अपेक्षा

कम्मोरालियमिस्सय ओरालद्धासु संचिद अणंता ।
कम्मोरालियमिस्सय ओरालियजोगिणो जीवा ॥२६४॥

कर्म्मौदारिकमिश्रकौदारिकाद्धासु संचितानंताः । कर्म्मौदारिकमिश्रकौदारिकयोगिनो जीवाः ॥

कार्म्मणकाययोगमौदारिकमिश्रकाययोगमौदारिककाययोगमेंबिवर कालंगळोळु मुंदे पेळ्व प्रमाणमनुळ्ळवरोळु संचितंगळप्प कार्म्मणकाययोगिगळुमौदारिककायमिश्रयोगिगळुमौदारिककाय योगिगळुमप्प जीवंगळु प्रत्येकमनंतानंतंगळप्पुवदंतेंदोडे :—

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगसगगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो ॥२६५॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहृतराशिः । स्वकगुणगणिते स्तोकः असंख्यसंख्याहृतः क्रमशः ॥

कार्म्मणकाययोगकालं समयत्रयमक्कुमेकेंदोडे विग्रहगतियोळनाहारकसमयत्रयदोळु कार्म्मणकाययोगक्कंये संभवमप्पुदरिंदं औदारिकमिश्रकाययोगक्के कालं संख्यातावलिमात्रमेकेंदोडंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितापर्य्याप्तकालक्कंये तत्कालत्वमप्पुदरिंदं औदारिककाययोगकालमदं नोडे संख्यातगुणमेकेंदोडा कालद्वयहीन सर्व्वकालमौदारिककाययोगकालमप्पुदरिंदं आ कालंगळ न्यासमिदु । स ३ । २१ । २१ । ४ । इवर युति २१५ । इवरिंदं द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारि राशि ।

=२१ । ४ ॥२६३॥
४ । २१ । ५
५—

कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु ये संचिताः कार्मणकाययोगिनः औदारिकमिश्रकाययोगिनः औदारिककाययोगिनश्च जीवाः ते प्रत्येकमनन्तानन्ताः भवन्ति ॥२६४॥ तद्यथा—

कार्मणकाययोगकालः समयत्रयं भवति विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य कालः संख्यातावलिमात्रो भवति अन्तर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । औदारिककाययोगकालः ततः संख्यातगुणः तत्कालद्वयहीनसर्वकालस्यैव औदारिककाययोगकालत्वात् । तेषां

पाँचसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे,उसे एकसे गुणा करनेपर दो योगियोंमें वचन योगवालोंका प्रमाण होता है और चारसे गुणा करनेपर दो योगियोंमें काययोगियोंका प्रमाण होता है ॥२६३॥

कार्मणकाययोग,औदारिक मिश्रकाययोग, औदारिककाययोगके आगे कहे गये कालोंमें संचित हुए कार्मणकाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और औदारिक काययोगी जीव प्रत्येक अनन्तानन्त जानना ॥२६४॥

कार्मणकाय योगका काल तीन समय होता है, क्योंकि विग्रहगतिमें अनाहारकके तीन समयोंमें कार्मणकाय योग ही सम्भव है । औदारिकमिश्र काययोगका काल संख्यात आवलिमात्र होता है,क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्तका काल ही औदारिक मिश्रका काल है ।

प्रमितमेककाययोगिसंख्येयं भागिसि स्वस्वकालमात्रगुणकारदिं गुणिसुत्तिरलु लब्धं स्वस्वयोगिसंख्येयक्कुमल्लि कार्म्मणकाययोगिजीवराशिप्रमाणं सर्व्वतः स्तोकमिदु १३=। ३ इवं स ३—
२१।५

नोडलौदारिकमिश्रकाययोगिजीवराशि असंख्यातगुणितमक्कु १३=२१ मिदुं नोडलौ- ३—
२१।५

दारिककाययोगिजीवराशिसंख्यातगुणमक्कु १३=२१।४ मी राशिगळुमिनितु काल- ३—
२१।५

दोळिनितु जीवराशिगळु संचिसल्पडुवुवागळिनितु कालदोळेनितु जीवंगळु मिनितु कालदोळेनितु जीवराशिगळु संचिसल्पडुवुवागळिनितु कालदोळेनितु जीवंगळु संचिसल्पडुवुवेंदितु त्रैराशिकसिद्धलब्धराशिगळिदरिवुदु ।

कालानां न्यासः—स ३ । २१ । २१ । ४ । एषां युतिः २१ । ५ । अनया द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारिराशिप्रमितैककाययोगिसंख्यां भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते सति लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या भवति । अत्र कार्मणकाययोगिनः सर्वतः स्तोकाः १३=३ एभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिनः असंख्यात- ३—
२१५

गुणाः— १३= २१ । एभ्य औदारिककाययोगिनः संख्यातगुणाः— १३=।२१।४ । एते त्रयोऽपि ३— ३—
२१।५ २१।५

राशयः । एतावति काले यद्येतावन्तो जीवा संचीयन्ते तदा एतावति काले कियंतो जीवाः संचीयन्ते ? इति त्रैराशिकसिद्धा ज्ञातव्याः ।

औदारिक काययोगका काल उससे संख्यातगुणा है, क्योंकि उन दोनों कालोंसे हीन सब काल ही औदारिक काययोगका काल है । इन तीनों कालोंको जोड़नेसे जो प्रमाण हुआ, उससे दो योगी और तीन योगियोंकी संख्यासे हीन संसारी जीवराशि प्रमाण एक काययोगियोंकी संख्याको भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे अपने-अपने काल प्रमाण गुणाकारसे गुणा करनेपर अपने-अपने योगवालोंकी संख्या होती है । यहाँ कार्मणकाययोगी सबसे थोड़े हैं । इनसे औदारिक मिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं । इनसे औदारिक काययोगी संख्यातगुणे हैं । यहाँ भी जो तीनों काययोगोंके कालमें इतने सब एक योगी जीव पाये जाते हैं, तो विवक्षित कार्मणकाययोग आदिके कालमें कितने जीव पाये जायेंगे, इस प्रकार त्रैराशिक होता है । सो तीनों काययोगोंका काल तो प्रमाणराशि है, एक योगी जीवोंका परिमाण फलराशि है और विवक्षित कार्मणकाय आदिका काल इच्छाराशि है । फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो-जो प्रमाण आवे, उतना-उतना विवक्षित योगके धारक जीव जानना ।

प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ = । इ स ३	लब्धं का = जी =	१३ = ३
प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ = । इ २ १	लब्धं औ = मिश्र	$\overset{३}{२}$ १ । ५ १३ = २ १
प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ = । इ २ १ । ४	लब्ध औ = का	$\overset{३}{२}$ १ । ५ १३ = । २ १ ४
			$\overset{३}{२}$ १ । ५

क्रमशः एंबीदरिंदं धवले येंब प्रथमसिद्धांतोक्तसंख्यानुक्रममनाश्रयिसि ई संख्याप्ररूपणे येन्निंदं पेळल्पट्टुदें दौद्धत्य परिहारं शास्त्रकारनिंदं सूचिसल्पट्टुदु ।

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलि असंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥२६६॥

सोपक्रमानुक्रमकालो संख्यातवर्षस्थितिः वाने । आवल्यसंख्यभागः संख्येयावलिप्रमः क्रमशः ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्येयुं वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्येयुं गाथा चतुष्टयदिंदं पेळल्पट्टुदर्दे तें दोडे जघन्यस्थितिदशवर्षसहस्रायुष्यवनुळ्ळ वानररुगळोळा स्थितिगे सोपक्रमकालमों दुमनुपक्रमकालमें दितेरडु भागमक्कु-। मल्लि उत्पत्तिरूपक्रमस्तेन सहितः कालः सोपक्रमकालः

प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ =	इ स ३ ।	ल । का. जी.	१३ = ३
प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ =	इ २ १	ल । औ. मि. जी.	$\overset{३}{२}$ १ । ५ १३ = २ १
प्र $\overset{३}{२}$ १ । ५	फ १३ =	इ २ १ । ४	ल औ. का. जी.	$\overset{३}{२}$ १ । ५ १३ = । २ १ ४
				$\overset{३}{२}$ १ । ५

क्रमशः इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धान्तोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्य उक्तेयं संख्या प्ररूपणा अस्माभिरित्यौद्धत्य-परिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥२६५॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते । तद्यथा—संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु वानेषु देवेषु तत्स्थितेः सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति

गाथामें 'आये 'कमसो' पदसे शास्त्रकारने यह सूचित किया है कि धवल नामक प्रथम सिद्धान्तमें कही गयी संख्याके अनुसार ही यह कथन हमने किया है। इस तरह उन्होंने अपनी उद्धतताका परिहार किया है ॥२६५॥

आगे वैक्रियिक मिश्रकाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं जो इस प्रकार है—संख्यात वर्षकी स्थितिवालोंमें दस हजार वर्षकी

१. म °नाश्रैसिपेलल्पट्टी सं° ।

एंदिता कालप्रमाणमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कुं। निरंतरोत्पत्तिकालमेंबुदर्त्थं। अनुपक्रमकालमें बुदुत्पत्तिरहितकालमदु संख्यातावलिप्रमितमक्कु द्वादशमुहूर्त्तमात्रमुत्कर्षदिंदमुत्पत्त्यभावकालमें-बुदर्त्थमितु क्रमशः यथाक्रमं वनेषु भवा वाना व्यंतरा इत्यर्थः वाने एंदितेकवचनं सामान्यापेक्षेयिंदं माडल्पट्टुदु अ = २ १
उ २
ə
अ २ १
उ २
ə

५ तहि सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्मि सुद्धसला ॥२६७॥

तत्र सर्व्वाः शुद्धशलाकाः सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः। ततः संख्यगुणोना अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः॥

तद्दशसहस्रवर्षमात्रस्थितियोळेल्ला पर्य्याप्तापर्य्याप्तकालद्वयसंबंधिगळप्प शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकगळु आवल्यसंख्यात भागमात्रमप्प सोपक्रमकालमं नोडलु संख्यातगुणितंगळु २ १ १
ə
मवं नोडलु अपर्य्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकेगळु संख्यातगुणहीनंगळप्पु २ १— वर्वं तें दोडे इल्लि त्रैराशिकंगळु माडल्पडुवुवदें तें दोडे सोपक्रमानुपक्रमकालद्वययुतिगिनितु कालक्कों दु शलाकेया-

---

द्वौ भंगौ भवतः। तत्र उत्पत्तिः—उपक्रमः तत्सहितः कालः सोपक्रमकालः निरन्तरोत्पत्तिकालः इत्यर्थः। तत्प्रमाणं आवल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। अनुपक्रमकालः—उत्पत्तिरहितः कालः, स च संख्यातावलिप्रमितो भवति। द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेण उत्पत्त्यभावकालः इत्यर्थः। क्रमशः—यथाक्रमं, वनेषु भवाः वानाः—व्यन्तराः इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतम् ॥२६६॥

तत्र दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसम्बन्धिन्यः शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागमात्रात् सोपक्रमकालात् संख्या गुणिता भवन्ति २ १ १। एताभ्यः
ə
अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकाः संख्यातगुणहीना भवन्ति। २। १ तद्यथा सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयस्य यद्येका
ə

जघन्य स्थितिवाले व्यन्तर देवोंकी स्थितिके सोपक्रमकाल और अनुपक्रमकाल इस प्रकार दो भाग हैं। उपक्रमका अर्थ है उत्पत्ति। अतः उत्पत्ति सहित कालको सोपक्रम काल कहते हैं, उसका अर्थ है निरन्तर उत्पत्तिकाल। उसका प्रमाण आवलिका असंख्यातवाँ भागमात्र है। उत्पत्तिरहित कालको अनुपक्रम काल कहते हैं, उसका प्रमाण संख्यात आवली है। अर्थात् उत्पत्तिके अभावका काल उत्कृष्ट बारह मुहूर्त मात्र है। इसका यह अभिप्राय है कि यदि व्यन्तर देवोंमें निरन्तर व्यन्तर देव जन्म लेते रहें, तो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल तक लेते रहते हैं। और यदि कोई भी व्यन्तर देव नहीं उत्पन्न होता, तो अधिकसे अधिक बारह मुहूर्त तक उत्पन्न नहीं होता ॥२६६॥

उस दस हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिमें सब पर्याप्त और अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध शलाका अर्थात् शुद्ध उपक्रमकाल सम्बन्धी शलाका आवलीके असंख्यातवें भागमात्र सोपक्रम कालसे संख्यात गुणित होती हैं। इनसे अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाका

गलु दशवर्षसहस्रकालस्थितियोळेनितु शलाकगळप्पुवेंदु प्र २ १ फ। श १। इ। वर्ष १०००० लब्धं मिश्रशलाकेगळु २ १ १ १ ई भाज्यराशियोळिनितु ऋणमनिक्कि २ १ १
२ ८ २ १ ८

दोडिदु २ २ १। १ मत्तमिदनपवर्तिसि प्रक्षिप्तऋणमं किंचिन्न्यूनं माडिदोडिदु प्र। श १। फ
८ २ १

उ २ इ। श १ १— लब्धं शुद्धोपक्रम सर्व्वंकालमपर्वात्तितमिदु २ १ १— इदक्के
८ ८

कालक्के शुद्धशलाकाजनितत्वविंदं शुद्धशलाकेगळेंदिताचार्य्यरिंदं पेळल्पट्टुदु। मत्तं दशसहस्रवर्षप्रमितसर्व्वकालदोळु शुद्धोपक्रमकालमिंतु पडेयल्पडुत्तिरलागळु पर्य्याप्तकालमिनितरोळेनितु शुद्धोपक्रमकालं पडेयलुपडुगुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र स = २ १ १ फ २ १ १—। इ २ १ १।

शलाका तदा दशसहस्रवर्षकालस्थितौ कियन्त्यः शलाका भवेयुरिति त्रैराशिकेन प्र २ १ ८, फ श १,
८
इ वर्ष १०००० लब्धमिश्रशलाका २ १ १ १ भवन्ति। अत्र भाज्यराशौ एतावद्ऊने २ १ १ प्रक्षिप्ते
८
२ १ ८
८

एवं २ १ १ १ ८ इदमपवर्त्य प्रक्षिप्तऋणे किंचिदूनिते एवं १ १—। प्र श १। फ उ २। इ श १ १—।
८ । ८
२ १ ८
८

लब्धशुद्धोपक्रमसर्वकालो भवति २ १ १—। अस्य कालस्य शुद्धशलाकाजनितत्वेन शुद्धशलाका इत्याचार्येण
८

उक्तम्। पुनरपि दशसहस्रवर्षप्रमितसर्वकाले शुद्धोपक्रमकाल एतावान् लभ्यते तदा अपर्याप्तकाले एतावति कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र सर्व २ १ १ १। फ २ १ १—। इ २ १ १ लब्धं
८

संख्यातगुणी हीन हैं। जो इस प्रकार हैं। यदि सोपक्रम और अनुपक्रम दोनों कालोंकी मिलकर एक शलाका होती है, तो दस हजार वर्ष प्रमाण स्थितिमें कितनी शलाकाएँ होंगी; इस प्रकार त्रैराशिक करना। सो सोपक्रम और अनुपक्रम कालको मिलाकर आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तो प्रमाण राशि हुई, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि दस हजार वर्ष। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाण राशिसे भाग देनेपर कुछ कम संख्यात गुणा संख्यात प्रमाण मिश्र शलाका होती है। अर्थात् जघन्य स्थितिमें इतनी बार उपक्रम और अनुपक्रमकाल होता है। तथा प्रमाण राशि शलाका एक, फलराशि आवलिका संख्यातवाँ भाग उपक्रमकाल, इच्छाराशि मिश्रशलाका कुछ कम संख्यातगुणा संख्यात। ऐसा करनेपर जघन्य स्थिति प्रमाण कालमें शुद्ध उपक्रम शलाका

लब्धमपर्य्याप्तकालदोळु शुद्धोपक्रमकालमिदु २।१ अथवा प्र का २ फ श १। इ
अ अ
२ १ १ लब्धमपर्य्याप्तपर्य्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकेगळ् २ १ १ मत्तं प्र श १। फ श २।
अ
१ इ १ १। लब्धमपर्य्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकमिदु २ १ उभयत्र जघन्यजननांतरमेक-
अ
समयमनाश्रयिसि शुद्धोपक्रमशलाकेगळु साधिसल्पट्टुवेंदरिवुदु। अनुपक्रमकालरहितमुपक्रमकालं
५ शुद्धोपक्रमकालमक्कुं।

तत्सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहि।
सुद्धसलागाहिगुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥२६८॥

तच्छुद्धशलाकाहृतनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः। शुद्धशलाकाभिर्गुणे व्यंतरवैक्रियिक-मिश्राः खलु॥

---

१० अपर्याप्तकालस्य शुद्धोपक्रमकालो भवति २ १। अथवा—प्र का २। फ श १। इ २ १ १—लब्धाः पर्याप्ता-
अ अ अ
पर्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकाः १ १—। प्र श १। फ २। इ श १ १—लब्धः सर्वशुद्धोपक्रमकालः २ १ १—।
अ अ
पुनरपि प्र श १ फ २ इ १ लब्धः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमकालः २ १। उभयत्र जघन्यजनानन्तरमेकसमय-
अ अ
माश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिता इति ज्ञातव्यम्। अनुपक्रमकालरहितः उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः॥२६७॥

कालका परिमाण कुछ कम संख्यात गुणा संख्यातसे गुणित आवलीका असंख्यातवाँ भाग
१५ होता है। तथा प्रमाण राशि जघन्य स्थिति, फलराशि शुद्ध उपक्रम शलाका काल, इच्छाराशि अपर्याप्तकाल। ऐसा करनेपर अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यात-गुणा आवलीका असंख्यातवाँ भागमात्र होता है। दूसरे प्रकारसे—प्रमाण राशि एक शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल, फल एक शलाका, इच्छाराशि सर्वशुद्ध उपक्रम काल। ऐसा करनेसे पर्याप्त-अपर्याप्त सर्वकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाका कुछ कम संख्यातगुणी संख्यात
२० जानना। तथा प्रमाण राशि एक शलाका, फलराशि शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग, इच्छाराशि सब शुद्ध शलाका कुछ कम संख्यात गुणित संख्यात। ऐसा करनेसे लब्ध सर्व जघन्यस्थिति सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम काल आवलीके असंख्यातवें भागको कुछ कम संख्यात गुणित संख्यातसे गुणा करनेपर जितना प्रमाण आये, उतना होता है। तथा प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक शलाकाका काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग,
२५ इच्छाराशि अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शलाका संख्यात। ऐसा करनेसे लब्ध अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवाँ भाग मात्र होता है। उक्त दोनों प्रकारके कथनोंमें उत्पत्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, उसको लेकर शुद्ध उपक्रम शलाकाएँ साधी हैं, ऐसा जानना। अनुपक्रम कालसे रहित उपक्रम कालको शुद्ध उपक्रम काल जानना ॥२६७॥

---

३० १. ब साधिका इति।

तत्सर्वकालसंबंधिगळप्प शुद्धोपक्रमशलाकेगळिदं २ १ १ भागिसल्पट्ट निजराशियप्प व्यंतरजीवराशियनपर्य्याप्तकाल लब्धशुद्धोपक्रमशलाकेगळिवं गुणिसुत्तिरलावुदो दु लब्धं तत्प्रमाणं व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशियक्कुं २ १ खलु स्फुटमागरिय-

= a

४।६५=८१।१०

ल्पडुवुदु।

तहि सेसदेवणेरयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा वेगुव्वियकायजोगा दु ॥२६९॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगूव्वं। सुरनारककाययोगिनो वैक्रियिककाययोगिनस्तु॥

तद्व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशियोळु शेषदेवर्क्कळप्प भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवर्क्कळं नारकवैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळं कूडुतिरलावुदो दु राशियक्कुमा राशि सर्व्ववैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशियक्कुं =१= शेषदेवनारकरोळनुपक्रमकालक्के

४।६५=८१।१० १

तत्सर्वकालसम्बन्धिशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २ १ १—। भक्ते निजराशौ व्यन्तरजीवराशौ अपर्याप्तकाल-

a

लब्धशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २ १ गुणिते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो व्यन्तरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति

a

= २ १ खलु स्फुटम् ॥२६८॥

a ०

४। ६५=।८१ । १०।२ १ १—

a

तद्व्यन्तरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशौ शेषदेवेषु भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवेषु सप्तपृथ्वीनारक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिषु च युतेषु यो राशिः सः सर्ववैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति।

इस प्रकार जघन्य स्थिति प्रमाण सर्वकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण कुछ कम संख्यातगुणा संख्यातसे गुणित आवलीका असंख्यातवाँ भाग जो ऊपर कहा है, उसका भाग व्यन्तर देवोंके पूर्व कहे परिमाणमें देनेसे जो लब्ध आये, उसे अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाके प्रमाण संख्यातगुणा आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो परिमाण आवे, उतना वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यन्तर देवोंका प्रमाण जानना।

विशेषार्थ—पहले जो व्यन्तर देवोंका परिमाण कहा था, उसके संख्यातवें भाग वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यन्तर देव होते हैं। संख्यात वर्षकी स्थितिवाले व्यन्तर अधिक जन्म लेते हैं, इसलिए उन्हींकी मुख्यतासे यहाँ कथन किया है ॥२६८॥

उस वैक्रियिक मिश्रकाय योगी व्यन्तर देवोंके परिमाणमें शेष देव भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिकदेव तथा सात पृथिवियोंके नारकी वैक्रियिक मिश्रकाय योगियोंके परि-

---

१. ब शेषभावन—।

बहुतरत्वदिंदं वैक्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणमल्पमेंदितु तद्राशिगळु साधिकं माडल्पट्टुवु। देवनारककाय-योगिराशिद्वयमं कूडिदोडावुदो दु राशिप्रमाणं आ राशिय प्रमाणं वैक्रियिककाययोगिराशियक्कुं।

त्रियोगिराशियोळावुदो दु काययोगिप्रमाणं पिदेपेळल्पट्टु $= \frac{\text{I}}{\text{४}} \text{१} \text{।।} \text{१३६०}$ $\frac{\text{I}}{\text{४ । ६५}} = \text{१ । १७०१}$ दरोळु

तिर्य्यग्मनुष्यसंबंध्यौदारिकाहारक काययोगिसंख्याद्वयहीनमप्प तद्राशिप्रमाणमे वैक्रियिककाययोगि

५ जीवराशियक्कुमेंबुदर्त्थं $= \frac{\text{I}}{\text{४}} \text{१ । १३६०} =$ $\frac{\text{I}}{\text{४ । ६५}} = \text{१ । १७०१}$ तु शब्द मी विशेषमं सूचिसुगुं।

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एक्कसमयम्मि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सा ॥२७०॥

आहारकाययोगाश्चतुःपंचाशद्भवंत्येकसमये। आहारकमिश्रयोगाः सप्तविंशतिस्तूत्कृष्टात् ॥

$= \text{२} \frac{\text{I}}{\text{१}}$ शेषदेवनारकेषु अनुपक्रमकालस्य बहुत्वेन वैक्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणं

१० $\text{४ । ६५} = \text{। ८१ । १०} \frac{\text{०}}{\text{१}} \text{२ १ १}$—

अल्पमिति तद्राशयः साधिकाः कर्तव्याः। देवनारककाययोगिराशिद्वये युते यो राशिः स वैक्रियिककाययोगि-

राशिर्भवति। त्रियोगिराशौ यत्काययोगिराशिप्रमाणं प्रागुक्तं $= \frac{\text{II}}{\text{४}} \text{१ । १३६०}$। तन्मध्यात्तिर्य-$\text{४ । ६५} = \text{। १ । १७०१}$

ग्मनुष्यसम्बन्ध्यौदारिकाहारककाययोगिसंख्याद्वये अपनीते यावदवशिष्यते स वैक्रियिककाययोगिजीवराशि-

रित्यर्थः। $= \frac{\text{II}}{\text{४}} \text{१ । १३६० =} \text{।}$ तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥२६९॥
$\text{४ । ६५} = \text{१ । १७०१}$

---

१५ माणको मिलानेपर जो राशि हो,वह सर्ववैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंकी राशि होती है। व्यन्तर देवोंके सिवाय शेष देव नारकियोंका अनुपक्रम काल बहुत है,इसलिए उनमें वैक्रियिक मिश्रयोगियोंका प्रमाण अल्प है। अतः वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यन्तरदेव बहुत हैं,इसलिए उनको साधिक कर लेना चाहिए। काययोगके धारी देवों और नारकियोंके परिमाणको मिलानेसे जो राशि हो,उतना वैक्रियिक काययोगके धारी जीवोंका प्रमाण होता
२० है। पूर्वमें जो तीन योगवाले जीवोंके परिमाणमें काययोगके धारी जीवोंका परिमाण कहा था, उसमें-से तिर्यंच और मनुष्य सम्बन्धी औदारिक तथा आहारक काययोगके धारक जीवोंका परिमाण घटानेपर जो शेष रहे,उतने वैक्रियिक काययोगके धारक जीव जानना। गाथामें आगत 'तु' शब्द इस विशेष अर्थको सूचित करता है ॥२६९॥

आहारककाययोगिगळेकसमयदोळ् युगपत् चतुःपंचाशत्प्रमितरप्परु । आहारकमिश्रकाय-योगिगळेकसमयदोळु युगपत्सप्तविंशतिप्रमितरप्परु । एकसमये तूत्कृष्टात्तेंबी विशेषणद्वयं पिंदे पेळल्पट्ट गत्यादिजीवसंख्येगळ्गं वक्ष्यमाणजीवसंख्येगळ्गमुं संबंधिसल्पडुवुदिल्लि मध्यदीपकत्वदिंदं पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं । जघन्यसंख्यापेक्षेयिंदं नानाकालापेक्षेयिंदमुं संभविसुव विशेषं परमागमदोळ्-नोडल्पडुवुदु ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांत-चक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळनवमं योगमार्गणाप्ररूपण महाधिकारं भाषितमाय्तु ।

आहारककाययोगिनः एकसमये युगपच्चतुष्पञ्चाशत्प्रमिता भवन्ति, आहारकमिश्रकाययोगिनः एकसमये युगपत्सप्तविंशतिप्रमिता भवन्ति । एकसमये उत्कृष्टादिति विशेषणद्वयं तु प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्याभिः वक्ष्यमाण-जीवसंख्याभिश्च सम्बन्धनीयं । अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात् । जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालापेक्षया च संभवन् विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥२७०॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु योगमार्गणानाम नवमोऽधिकारः ॥९॥

आहारक काययोगके धारक एक समयमें एक साथ अधिकसे अधिक चौवन होते हैं तथा आहारक मिश्रकाययोगी एक समयमें एक साथ अधिकसे अधिक सत्ताईस होते हैं। यहाँ गाथामें 'एक समयम्हि' तथा 'उक्कस्सं' ये दोनों विशेषण मध्यदीपक रूपसे कहे हैं। अतः पूर्वमें जो गति आदिकी अपेक्षा जीव संख्या कही है और आगे जो जीव संख्या कहेंगे, वह सब उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें जानना। अर्थात् उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें उक्त संख्या प्रमाण जीव होते हैं, इससे कम हो सकते हैं; किन्तु अधिक नहीं हो सकते। जघन्य रूपसे तथा अनेक काल सम्बन्धी संख्या विशेष परमागमसे जानना ॥२७०॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से योग प्ररूपणा नामक नवम महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

वेदमार्गणाधिकारः ॥१०॥

अनंतरं वेदमार्गणेयं पेळ्दपं :—

पुरुसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसित्थिसंढवो भावे ।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥२७१॥

पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंडो भावे । नामोदयेन द्रव्ये प्रायेण समाः क्वचिद्विषमाः ॥

पुरुषस्त्रीषंडनामांगळप्प मूरुं वेदंगळ चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतिगळुदयदिंद भावे चित्परिणामदोळु यथासंख्यमिदं पुरुषनुं स्त्रीयुं षंडनुं जीवनक्कु । निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मविशेषोदयदिंदं । द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्य्यायविशेषदोळु पुरुषस्त्रीषंडनुमक्कुं अदंतेंदोडे पुंवेदोदयदिंदं स्त्रीयोळभिलाषारूपमैथुनसंक्रांतनप्प जीवं भावपुरुषनेंबनक्कुं । स्त्रीवेदोदयदिंदं पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतनप्प जीवं भावस्त्रीयेंबनप्पं । नपुंसकवेदोदयदिंदमुभयाभिलाषारूपमैथुनसंज्ञाक्रांतनप्प जीवंभावनपुंसकनेंबनप्पं । पुंवेदोदयदिंदं निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयवशदिंदं श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीरमनुळ्ळजीवं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषनक्कुं । स्त्रीवेदोदयदिंदं निर्म्माण-

---

कल्याणैः पञ्चकैर्भान्तं षट्चत्वारिंशता गुणैः ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वन्दे शीतलसूक्तिकम् ॥१०॥

अथ वेदमार्गणामाह—

पुरुषस्त्रीषण्ढाख्यत्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनामुदयेन भावे—चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षण्ढश्च जीवो भवति । निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मविशेषोदयेन, द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षण्ढश्च भवति । तद्यथा—पुंवेदोदयेन स्त्रियां अभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावस्त्री भवति । नपुंसकवेदोदयेन उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावनपुंसकं भवति । पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयवशेन

अब वेदमार्गणाको कहते हैं—

चारित्र मोहनीयका भेद नोकषायकी पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नामक प्रकृतियोंका उदय होनेपर जीव भाव अर्थात् चित्परिणाममें पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। निर्माण नामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांगनामकर्म विशेषके उदयसे द्रव्य अर्थात् पुद्गलद्रव्यकी पर्याय-विशेषमें पुरुष, स्त्री और नपुंसक होता है। वह इस प्रकार जानना—पुरुषवेदके उदयसे स्त्रीमें अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञासे आक्रान्त जीव भावपुरुष होता है। स्त्रीवेदके उदयसे पुरुषकी अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञासे आक्रान्त जीव भावस्त्री होता है। नपुंसकवेदके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंकी अभिलाषारूप मैथुनसे आक्रान्त जीव भावनपुंसक होता है। पुरुषवेदके

---

१० १. ब पञ्चभिः युक्तं ।

नामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयदिंदं निर्ल्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरमनुळ्ळ जीवं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्य्यंतं द्रव्यस्त्रीयेंबुदक्कुं। नपुंसकवेदोदयदिंदं निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयदिंदं उभयलिंगव्यतिरिक्तदेह मनुळ्ळं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्य्यंतं द्रव्यनपुंसकजीवनक्कुं।

ई द्रव्यभाववेदंगळु प्रायेण प्रचुरवृत्तियिंदं देवनारकरोळु भोगभूमिगळोळु तिर्य्यंम्मनुष्यरेल्लरोळं समंगळु द्रव्यदिंदं भावदिंदं समवेदोदयंगळनुळ्ळरप्परु। क्वचित् कर्म्मभूमिमानुषतिर्य्यग्गतिद्वयदोळु विषमाः विसदृशंगळप्परू। अदंतेंदोडे द्रव्यदिंदं पुरुषनोळु भावपुरुष-भावस्त्रीभावनपुंसकनेंदुं। ५

द्रव्यस्त्रीयोळु भावपुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसकनेंदुं, द्रव्यनपुंसकनोळु भावपुरुष-भावस्त्री-

=

भावनपुंसकनेंदु विषमत्वं द्रव्यभावंगळगनियमं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे द्रव्यपुरुषनप्प क्षपकश्रेण्यारूढनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्य्यंतं वेदत्रयक्के परमागमदोळु :— १०

पुंवेयं वेदंता पुरुसा जे खवगसेडिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य सिज्झंति॥

श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिङ्गाङ्कितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिङ्गलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन उभयलिङ्गव्यतिरिक्तदेहाङ्कितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण—प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमिसर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयाङ्किता भवन्ति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः—विसदृशा अपि भवन्ति। तद्यथा—द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यस्त्रियां भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यनपुंसके भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं इति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः? द्रव्यपुरुषस्य क्षपकश्रेण्यारूढानिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यन्तं वेदत्रयस्य परमागमे "सेसोदयेण

उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयवश दाढ़ी, मूँछ, शिश्न आदि चिह्नोंसे अंकित शरीरसे विशिष्ट जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यपुरुष होता है। स्त्रीवेदके उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयसे रोमरहित मुख, स्तन, योनि आदि चिह्नोंसे युक्त शरीरवाला जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यस्त्री होता है। नपुंसकवेदके उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयसे दोनों लिंगोंसे भिन्न शरीरवाला जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यनपुंसक होता है। ये द्रव्यवेद और भाववेद प्रायः अर्थात् अधिक रूपसे देव, नारकियों और भोगभूमिके सब तिर्यंचों तथा मनुष्योंमें सम होते हैं अर्थात् जो द्रव्यवेद होता है वही भाववेद होता है। किन्तु क्वचित् अर्थात् कर्मभूमिसम्बन्धी तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें विषम अर्थात् असमान होते हैं। जैसे, द्रव्यसे पुरुष भावसे पुरुष स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्यसे स्त्री भावसे पुरुष स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्यसे नपुंसक भावसे पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। इस प्रकार द्रव्य और भावका अनियम विषम शब्दसे कहा है। क्योंकि क्षपक श्रेणीपर आरूढ़

एंदितु प्रतिपादितत्वदिंदं संभवमप्पुदरिंदं ।

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो ।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हु गुणं व दोसं वा ॥२७२॥

वेदस्योदीरणया परिणामस्य च भवेत्संमोहः । संमोहेन न जानाति जीवः खलु गुणं वा दोषं वा ॥

वेदस्य चारित्रमोहभेदमप्प नोकषायप्रकृतिय अपक्वपाचन लक्षणोदीरणेयिंदमुं स्वकालपाकलक्षणोदयदिंदमुं परिणामस्य चित्पर्य्यायक्के संमोहः रागावेशरूपचित्तविक्षेपमक्कुं—। मदरिंदमा संमोहदिंदं गुणमं मेणु दोषमं मेणु जीवं बगेयनें दितिदरिंदं गुणदोषविवेकाभावलक्षणवेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवमनर्थं तोरल्पट्टुददु कारणमागि परमागमभावनाबलदिंदं जीवनिदं यथावत्स्वरूपसंवेदियिंदं । आत्महितदेव[-तमेतद्]व्रतमवश्यमनुष्ठातव्यमें बुदु भावार्थं ।

पुरुगुणभोगेसेदे करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो ॥२७३॥

पुरुगुणभोगे शेते करोति लोके पुरुगुणं कर्म्म । पूरूत्तमश्च यस्मात्तस्मात्स वर्णितः पुरुषः ॥

यस्मात् कारणात् आवुदो दु कारणदिंदं लोकदोळु यो जीवः आवनोवं जीवं पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाद्यधिकगुणसमूहदोळु शेते स्वामित्वदिंदं प्रवर्त्तिसुगुं । पुरुभोगे नरेंद्र नागेंद्र देवेंद्राद्यधिकभोगचयदोळु भोक्तृत्वदिंदं प्रवर्त्तिसुगुं । पुरुगुणवत्कर्म्म धर्म्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनमप्प

वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ।" इति प्रतिपादितत्वेन संभवात् ॥२७१॥

वेदस्य चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः अपक्वपाचनलक्षणोदीरणया स्वकाले पाकलक्षणोदयेन च परिणामस्य चित्पर्यायस्य संमोहः—रागद्वेषरूपः चित्तविक्षेपो भवति । तेन संमोहेन गुणं वा दोषं वा जीवो न जानाति । अनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणः वेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवः अनर्थो दर्शितः । ततः कारणात् परमागमभावनाबलेन जीवेन यथावत्स्वरूपसंवेदनादिना आत्महितमेतद्व्रतमवश्यमनुष्ठातव्यमिति भावार्थः॥२७२॥

यस्मात् कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते, पुरुभोगे नरेन्द्रनागेन्द्रदेवेन्द्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते, पुरुगुणं कर्म धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनरूप-

---

जीवके अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त तीनों वेदोंका अस्तित्व परमागममें कहा है। यथा—'शेष वेदोंके उदयसे भी ध्यानमें मग्न जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं' ॥२७१॥

चारित्रमोहनीयके भेद नोकषायरूप वेद प्रकृतिकी उदीरणा या उदयसे आत्माके परिणामोंमें सम्मोह अर्थात् रागद्वेषरूप चित्तविक्षेप होता है। बिना ही काल आये कर्मके फल देनेको उदीरणा कहते हैं, इसीसे इसका लक्षण अपक्वपाचन कहा है। और काल आनेपर फल देना उदय है। उस सम्मोहके होनेसे जीव गुण या दोषको नहीं जानता। इस कथनसे यह दिखलाया है कि गुण और दोषका विवेक न होने रूप अनर्थ वेदके उदयसे होनेवाले चित्तविक्षेपसे होता है। इसलिए जीवको परमागमकी भावनाके बलसे यथार्थ स्वरूप संवेदन आदिके द्वारा आत्महित (ब्रह्मचर्यव्रत) को अवश्य ग्रहण करना चाहिए, यह भावार्थ है ॥२७२॥

जिस कारणसे लोकमें जो जीव पुरुगुण अर्थात् सम्यग्ज्ञान आदि गुणसमूहमें 'शेते' अर्थात् स्वामीरूपसे प्रवृत्त होता है, पुरुभोग अर्थात् नरेन्द्र, नागेन्द्र, देवेन्द्र आदिसे भी अधिक भोगोंका भोक्ता होता है, 'पुरुगुणकर्म' अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थकी

दिव्यानुष्ठानमं शेते कर चोति माळ्कुं। पुरौ उत्तमे परमेष्ठिपदेशेते तिष्ठति। पूरुत्तमस्सन् तिष्ठतीत्यर्थः। तस्मात् कारणात् अवु कारणदिंदमा जीवं पुरुषनेंदितु द्रव्यभावंगळेरडरिंदं संपन्न पुरुषनेंदी जीवं वर्णितः पेळल्पट्टं, धातुगळगनेकार्थवाचकत्वसंभवदिंदं शीङ् स्वप्ने एंबी धातुविंगे प्रवृत्ति। करण। स्थान। लक्षणार्थविशेषंगळुमाचार्य्यनिंदं पेळल्पद्दुवु विरोधिसल्पडवु। पृषोदरादित्वदिंदमक्षरविपर्य्यासमुं तालव्यक्के षत्वमुं पुरुष एंदितु षो अंतकर्म्मणि येंबी धातुविंगं मेणरियल्पडुगुं।

छादयदि सयं दोसे, णयदो छादेदि परं वि दोसेण।
छादण सीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥२७४॥

छादयति स्वयं दोषेण नयतश्छादयति परमपि दोषेण छादनशीला यस्मात्तस्मात्सा वर्णिता स्त्री॥

यस्मात्कारणात् आवुदों दु कारणदिंद स्वयमात्मानं तंतनु दोषैर्मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभंगळिंदं छादयति संवृणोति पोद्दर्दसुगुं। यतो नयतः आवुदों दु नयदिंदं मृदु भाषित स्निग्धविलोकन अनुकूलवर्तनादि कुशलव्यापारंगळिंद परमपि अन्यनप्प पुरुषनुमं स्ववशं माडि दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकदिंदं छादयति पोदिसुगुं। तस्मात् कारणात् अवु कारणदिंदं छादनशीला द्रव्यभावंगळिंदप्प सा आ अंगने स्त्री इति वर्णिता, द्रव्यभावंगळिंदं स्त्रीयेंदितु परमागमदोळु प्रतिपादिसल्पट्टळु। एत्तलानुं तीर्थंकरजनन्यादिस्त्रीयरुगळप्प सम्यग्दृष्टिगळगे यितु पेळल्पट्ट दोषाभावमादोडमवर्गळगे दुर्ल्लभत्वदिंदं सर्व्वत्र सुलभप्राचुर्य्यव्यवहारापेक्षेयिंदं

दिव्यानुष्ठानं शेते—करोति च। पुरूत्तमे परमेष्ठिपदे शेते—तिष्ठति पुरूत्तमः सन् तिष्ठति इत्यर्थः। तस्मात् कारणात् स द्रव्यभावद्वयसंपन्नः जीवः पुरुषः इति वर्णितः। धातूनामनेकार्थवाचकत्वसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्येतस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषाः आचार्येण उक्ता न विरुध्यन्ते। पृषोदरादित्वेन अक्षरविपर्यासश्च तालव्यस्य षत्वं पुरुष इति। षोऽन्तकर्मणि इत्येतस्य धातोर्वा ज्ञातव्यः ॥२७३॥

यस्मात्कारणात् स्वयमात्मानं दोषैः मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभैः छादयति संवृणोति, नयतः मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः परमपि-अन्यपुरुषमपि स्ववशं कृत्वा दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति आवृणोति तस्मात्कारणात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्यां सा अङ्गना स्त्रीति वर्णिता—परमागमे प्रतिपादिता। यद्यपि तीर्थंकरजनन्यादीनां[2] कासांचित् सम्यग्दृष्टीनां एतदुक्तदोषाभावः,

---

साधनादिरूप अनुष्ठान करता है, 'पुरूत्तम' अर्थात् परमेष्ठीपदमें 'शेते' अर्थात् विराजता है, तिस कारणसे वह जीव द्रव्य और भावरूपसे पुरुष कहा जाता है। धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं; इससे 'शीङ् स्वप्ने' इस धातुका आचार्यने जो प्रवृत्ति करना, ठहरना आदि अर्थ कहा है, उसमें कोई विरोध नहीं आता। पृषोदरादिमें पाठ होनेसे अक्षरविपर्यास तथा तालव्य शकारका मूर्धन्य षकार होनेसे पुरुष शब्द निष्पन्न हुआ है, अथवा 'षोऽन्तकर्मणि' इस धातुसे पुरुष शब्द निष्पन्न हुआ जानना ॥२७३॥

जिस कारणसे स्वयं अपनेको मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, क्रोध, मान, माया, लोभरूप दोषोंसे आच्छादित करती है, अन्य पुरुषोंको भी कोमल वचन, कटाक्ष सहित अवलोकन, अनुकूल प्रवर्तन आदि कुशल व्यापारोंसे अपने वशमें करके हिंसा, झूठ, चोरी,

---

१. ब °दि स्त्रीसम्यं। २. ब °भावेऽपि।

स्त्रीलक्षणं या स्तृणोति स्वयमन्यं च दोषैरिति स्त्री येंदितु निरुक्तिपूर्वकमाचार्य्यरिदं पेळल्पट्टुवु ।

णेवित्थी णेव पुमं णउंसओ उभयलिंगवदिरित्तो ।
इट्टावग्गिसमाणगवेयणगुरुओ कलुसचित्तो ॥२७५॥

नैव स्त्री नैव पुमान् नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः । इष्टिकापाकाग्निसमानक वेदनागुरुकः कलुषचित्तः ॥

यो जीवः आवनोर्वजीवं नैव पूमान् परगे पेळल्पट्टु पुरुषलक्षणाभावदिंदं पुरुषनुमल्तु । नैव स्त्री उक्तस्त्रीलक्षणाभावदिंदं स्त्रीयुमल्तु । ततः अदु कारणदिंदं उभयलिंगव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादि पुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितनुं इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकनुं कलुषचित्तः सर्व्वदा तद्वेदनेयिंदं कलंकितहृदयनुमप्प स जीवः आ जीवनु नपुंसकमिति नपुंसकनेंदितु परमागमदोळु वर्णितः पेळल्पट्टनु । स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षण भावनपुंसकवेदमुंटेंदिताचार्य्यन तात्पर्यमरियल्पडुगुं ।

तिणकारिसिट्ठपागग्गि-सरिस-परिणामवेयणुम्मुक्का ।
अवगयवेदा जीवा सयसंभवणंतवर सोक्खा ॥२७६॥

तृणकारीषेष्टकापाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः अपगतवेदा जीवाः स्वकसंभवानंतवर सौख्याः ॥

तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं स्तृणाति स्वयमन्यं च दोषैरिति स्त्री निरुक्तिपूर्वकमाचार्येणोक्तम् ॥२७४॥

यो जीवो नैव पुमान्–पूर्वोक्तपुरुषलक्षणाभावात् पुरुषो न भवति, नैव स्त्री–उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् स्त्री अपि न भवति । ततः कारणात् उभयलिङ्गव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिङ्गरहितः इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः, कलुषचित्तः सर्वदा तद्वेदनया कलङ्कितहृदयः स जीवो नपुंसकमिति परमागमे वर्णितः कथितः, तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनपुंसकवेदोऽस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यम् ॥२७५॥

अब्रह्म, परिग्रह आदि पापोंसे आच्छादित करती है, तिस कारणसे द्रव्य और भावसे छादनशील होनेसे परमागममें स्त्री कहा है । यद्यपि तीर्थंकरकी माता आदि किन्हीं सम्यग्दृष्टि स्त्रियोंमें इन दोषोंका अभाव होता है, तथापि उनके दुर्लभ होनेसे तथा सर्वत्र उक्त दोषोंसे युक्त स्त्रियोंके सुलभ होनेसे आधिक्य व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीका उक्त लक्षण निरुक्ति पूर्वक कहा है ॥२७४॥

जो जीव पूर्वोक्त पुरुष लक्षणोंका अभाव होनेसे पुरुष नहीं है और उक्त स्त्री लक्षणोंका अभाव होनेसे स्त्री भी नहीं है, तिस कारणसे दाढ़ी, मूँछ और स्तन आदि पुरुष और स्त्रीके चिह्नोंसे रहित, ईंट पकानेके पजावेकी आगके समान तीव्र कामवेदनासे पीड़ित होनेसे कलुषित चित्त उस जीवको परमागममें नपुंसक कहा है । उस जीवके स्त्री और पुरुषकी अभिलाषारूप तीव्र कामवेदना लक्षणवाला भाव नपुंसक वेद होता है ऐसा आचार्यका तात्पर्य जानना ॥२७५॥

तृणाग्नि । कारीषाग्नि । इष्टकापाकाग्नि सदृशस्त्रीपुरुषोभयाभिलाषरूपजीव परिणामंगळ तीव्रवेदनेगळिंदमावुदो दु संक्लेशमा, संक्लेशदिंदमुन्मुक्तरुमनिवृत्तिकरणापगतवेदभावं मोदल्गोंड योगिचरमसमयपर्य्यंतं भावदिंद गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळु द्रव्यभावदिंदं वेदोदयजनित-कामवेदनोन्मुक्तरु मोळरु, किंविशिष्टरेंते दोडे स्वकसंभवानंतवरसौख्याः शुद्धज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणस्वात्मोत्थानंतानंतमुख्यसुखसंपन्नरुगळु । एत्तलानुमपगतवेदानिवृत्तिकरणादिगळ्गे वेदोदय- ५
जनितकामवेदनारूप[1]संक्लेशाभावमादोडं गुणस्थानातीतमुक्तात्मरुगळ्गे स्वात्मोत्थसुखसद्भावं ज्ञानादिगुणसद्भावमें तंते तोरल्पट्टुदु । परमार्थवृत्तियिंदं मत्तमपगतवेदरुगळ्गेनिवर्ग्गमुं ज्ञानोप योगस्वास्थ्यलक्षणपरमानंदजीवस्वभावमप्पुदेंदितु निश्चयिसल्पडुवुदु ।

अनंतरं वेदमार्गणेयोळु जीवसंख्याप्ररूपणार्थं गाथापंचकमं पेळ्दपरु ।

जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरिसा य सण्णिणो जीवा । १०
तत्तेउपम्मलेस्सा संखगुणूणा कमेणेदे ॥२७७॥

ज्योतिष्कवानयोनिमत्तिर्य्यक्पुरुषाश्च संज्ञिनो जीवाः । तत्तेजःपद्मलेश्याः संख्यगुणोनाः क्रमेणैते ॥

तृणाग्निकारीषाग्नीष्टिकापाकाग्निसदृशस्त्रीपुरुषोभयाभिलाषरूपजीवपरिणामानां तीव्रवेदनाभिः यः संक्लेशः तेनोन्मुक्तः अनिवृत्तिकरणादपगतवेदभागादारभ्यायोगिचरमसमयपर्यन्ताः, भावेन गुणस्थानातीतसिद्ध- १५
परमेष्ठिनश्च द्रव्यभावाभ्यां वेदोदयजनितकामवेदनोन्मुक्ताः सन्ति । किंविशिष्टाः ? स्वकसंभवानन्तवरसौख्याः— शुद्धज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणात्मोत्थानन्तानन्तमुख्यसुखसंपन्नाः । यद्यपि अपगतवेदानिवृत्तिकरणादीनां वेदोदय-जनितकामवेदनारूपसंक्लेशाभावः तथापि गुणस्थानातीतमुक्तात्मनां स्वात्मोत्थसुखसद्भावः ज्ञानादिगुणसद्भाव-वद्दर्शितः । परमार्थवृत्त्या पुनः अपगतवेदानामेषामपि ज्ञानोपयोगस्वास्थ्यलक्षणपरमानन्दो जीवस्वभावोऽ-स्तीति निश्चेतव्यम् ॥२७६॥ अथ वेदमार्गणायां जीवसंख्यां गाथापञ्चकेन प्ररूपयति— २०

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी आगके समान होता है । स्त्रीवेदीका परिणाम कंडेकी आगके समान होता है । और नपुंसक वेदीका परिणाम पजावेकी आगके समान होता है । इन तीनों ही अग्नियोंके समान स्त्री, पुरुष और स्त्री-पुरुषकी अभिलाषा रूप परिणामोंकी तीव्र वेदनासे होनेवाले संक्लेशसे रहित, भाववेदकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थानके अन्तिम समयपर्यन्त जीव तथा गुणस्थान रहित सिद्ध- २५
परमेष्ठी द्रव्यवेद और भाववेदके उदयसे होनेवाली कामवेदनासे उन्मुक्त हैं । तथा वे शुद्ध ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग लक्षणवाली आत्मासे उत्पन्न हुए अनन्त सुखसे सम्पन्न होते हैं । यद्यपि अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे ही वेदके उदयसे होनेवाली वेदनारूप संक्लेशका अभाव होता है, तथापि गुणस्थानातीत मुक्तात्माओंके ज्ञानादि गुणके सद्भावकी तरह आत्मिक सुखका सद्भाव दिखलाया है । परमार्थसे तो वेदोंका अभाववाले गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी ३०
ज्ञानोपयोग तथा स्वास्थ्य लक्षणरूप परमानन्द जीवस्वभाव रहता है; ऐसा निश्चय जानना ॥२७६॥

---

१. म °पस्वभावमा° ।

ज्योतिष्करुगळ पण्णट्ठिगुणप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु ४। ६५= मुंदे वानररुं तिर्य्यंचयोनिमतिगळप्प द्रव्यस्त्रीयरुं। तिर्य्यग्द्रव्यपुरुषरुं। तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियंगळु। तत्तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञितेजोलेश्या जीवंगळुं। संज्ञिपंचेंद्रियपद्मलेश्याजीवंगळुं क्रमदिदं ज्योतिष्करराशियत्तणिदं पद्मलेश्याजीवपर्य्यंतमाद जीवंगळु संख्यातगुणहीनंगळेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं।

व्यंतररु ४। ६५ = १ तिर्य्यंचयोनिमतिगळु ४। ६५ = १ १ तिर्य्यंचपुरुषरु ४। ६५ = १ १ १ तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियंगळु ४। ६५ = १ १ १ १ तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियतेजोलेश्याजीवंगळु ४। ६५ = १ १ १ १ १ तिर्य्यक्पंचेंद्रियसंज्ञिपद्मलेश्याजीवंगळु ४। ६५ = १ १ १ १ १ १

इगिपुरिसे बत्तीसं देवी तज्जोग भजिददेवोघे ।
सगगुणगारेण गुणे पुरिसा महिला य देवेसु ॥२७८॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यस्तद्योगभाजितदेवौघे । स्वकगुणकारेण गुणे पुरुषाः महिलाश्च देवेषु ॥

देवगतियोळोर्व्वपुरुषंगे देवियरुगळु मूवत्तोर्व्वरु। ओरोर्व्वंगे सर्व्वजघन्यदिदं द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्। देवियरुगळेंबुदत्थं। एत्तलानुमिंद्रादिगळगे संख्यातगुणितदेवियरुगळप्परादोडमवर्गळगल्पत्वदिदं।

ज्योतिष्काः पण्णट्ठिगुणितप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरप्रमिताः सन्ति, = ४। ६५ = एतेभ्योऽग्रे वानाः वने भवाः—वानाः व्यन्तरा इत्यर्थः, योनिमत्तिर्यञ्चः तिर्यग्द्रव्यस्त्रिय इत्यर्थः, तिर्यग्द्रव्यपुरुषाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियतेजोलेश्या जीवाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियपद्मलेश्या जीवाश्चेत्येते षड्राशयः क्रमेण संख्यातगुणहीनाः सन्तीति ज्ञातव्यम्। व्यन्तराः = ४। ६५ = १ तिर्यग्योनिमत्यः = ४। ६५ = १। १ तिर्यक्पुरुषाः = ४। ६५ = १ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः = ४। ६५ = १ १ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियतेजोलेश्या जीवाः = ४। ६५ = १ १ १ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियपद्मलेश्या जीवाः = ४। ६५ = १ १ १ १ १ १ ॥२७७॥

देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् सर्वजघन्येन एकैकस्य पुरुषस्य द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्।

आगे वेदमार्गणामें पाँच गाथाओंसे जीव संख्या कहते हैं—

ज्योतिषीदेव पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे गुणित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जितना परिमाण आवे, उतने हैं। इनसे संख्यातगुणे हीन व्यन्तर हैं। व्यन्तरोंसे संख्यातगुणे हीन योनिमती तिर्यंच अर्थात् तिर्यंच द्रव्यस्त्री हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन द्रव्य पुरुषवेदी तिर्यंच हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन पीतलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच है। उनसे संख्यातगुणे हीन पद्मलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। इस प्रकार ये छह राशियाँ क्रमसे संख्यातगुणा हीन जानना ॥२७७॥

देवगतिमें एक पुरुषदेवकी सबसे कम बत्तीस-बत्तीस देवियाँ होती हैं। यद्यपि इन्द्रादिकोंके उससे संख्यातगुणित देवियाँ होती हैं, तथापि इन्द्रादिकी संख्या अल्प है, तथा प्रकी-

१. ब "देवगतौ एकपुरुषस्य देव्यः सर्वजघन्येन द्वात्रिंशत् भवन्ति"।

प्रकीर्णकादिगळ्गे असंख्येयगुणितत्वदिंदं बहुत्वमेंदितिंद्रादिदेव्याधिक्यक्कविवक्षे माडल्पट्टुदा देवदेवियर संख्यायोगं त्रयस्त्रिंशन्मात्रमक्कु ३३ मी भागहारदिंदं देवौघमप्प देवसामान्यराशियं भागिसि तदेकभागमं पुरुषरु गुणकारमोंदरिंदं गुणिसुत्तिरलु तल्लब्धमात्रं देववर्क्कळोळु पुरुषरुगळप्परु। द्वात्रिंशत्प्रमित गुणकारदिंदं गुणिसुत्तिरलु तल्लब्धमात्रं देवर्क्कळुगळोळु देवियरुगळप्परु।

संदृष्टि। देवपुंवेदिगळु $\frac{=१।१}{४।६५।१।३३}$ देवस्त्रीयरुगळु $\frac{=१।३२}{४।६५=१।१३}$

देवेहि सादिरेया पुरिसा देवीहि साहिया इत्थी।
तेहि विहीण सवेदो रासी संढाण परिमाणं ॥२७९॥

देवैः सातिरेकाः पुरुषाः देवीभिः साधिकाः स्त्रियः। ताभ्यां विहीनः सवेदो राशिः षंढानां परिमाणं ॥

तिर्य्यग्मनुष्यपुरुषराशिद्वयदिंदं साधिकमप्प देवपुरुषराशियदु सामान्यपुरुषवेदराशियक्कुं

$\frac{=१।१}{४।६५=१३३}$ मनुष्यतिर्य्यग्योनिमतिराशिद्वयदिंदं साधिकमप्प देविराशियदु सामान्यस्त्रीराशि-

---

यद्यपि इन्द्रादीनां ततः संख्यातगुणिता देव्यः सन्ति तथापि तेषां अल्पत्वेन प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणितत्वेन[२] बहुत्वं, इन्द्रादिदेव्याधिक्यस्य विवक्षा न कृता। तदेकदेवद्वात्रिंशद्देवीनां संयोगेन त्रयस्त्रिंशता ३३ देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागेन एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते यल्लब्धं तावन्तो देवगतौ पुरुषा भवन्ति। $= \frac{॥}{१।१}$ $\frac{४।६५=।१।३३।}{}$ द्वात्रिंशता गुणिते तु यल्लब्धं तावन्त्यो देव्यो भवन्ति।

$= \frac{॥}{१।३२}$ $\frac{४।६५=।१।३३}{}$ (देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति उक्तं तेनात्र भेदो ज्ञातव्यः) ॥२७८॥

तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिभ्यां अधिको देवपुरुषराशिः स सामान्यपुरुषराशिर्भवति $= \frac{॥ ॥}{१।१।}$ $\frac{४।६५=१।३३।}{}$

र्णक आदि जातिके देव उनसे असंख्यातगुणे होनेसे बहुत हैं। इसलिए इन्द्रादिकी अधिक देवियोंकी विवक्षा यहाँ नहीं की। अतः एक देव और बत्तीस देवियोंकी संख्याको मिलाकर तैंतीस संख्यासे सामान्य देवराशिको भाग देनेपर जो एक भाग आवे, उसमें पुरुषका गुणकार एकसे गुणा करनेपर जो लब्ध हो, उतने देवगतिमें पुरुष होते हैं। और उस एक भागको बत्तीससे गुणा करनेपर जो लब्ध आवे, उतनी देवियाँ होती हैं ॥२७८॥

पुरुषवेदी देवोंकी राशिमें पुरुषवेदी तिर्यंचों और पुरुषवेदी मनुष्योंकी राशि मिलानेपर समस्त पुरुषवेदी जीवोंका परिमाण होता है। तथा देवियोंकी राशिमें मनुष्य और तिर्यंच

---

२. ब °त्वेन तद्देव्या°।

प्रमाणमक्कु = ९ ३२ मी सामान्यपुरुषस्त्रीराशिद्वयदिदं हीनमप्प सवेदराशि नपुंसक- ४।६५=९३३
वेदिगळ परिमाणमक्कु। १३= मपगतवेदानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषाय सयोगिकेवलि अयोगिकेवलि संख्याविहीनसंसारिराशियदुसवेदराशियक्कुं।

गब्भणपुंइत्थिसण्णी सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा।
कुरुजा असण्णिगब्भज णउंइत्थीवाणजोइसिया ॥२८०॥
थोवा तिसु संखगुणा तत्तो आवलि असंखभागगुणा।
पल्लासंखेज्जगुणा तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥२८१॥

युगलं। गब्भज। नपुंसक। पुंस्त्रीसंज्ञिनः संमूर्च्छन संज्ञिपूर्णकाः इतराः। कुरुजाः असंज्ञिगब्भंजः नपुंसकपुंस्त्रियः वानज्योतिषिकाः। स्तोकास्त्रिषु संख्यगुणाः तत आवल्यसंख्यभागगुणाः। पल्यासंख्येयगुणाः ततः सर्वत्र संख्यगुणाः॥

संज्ञिपंचेंद्रियगब्भंजनपुंसकवेदिगळु संज्ञिपंचेंद्रियगब्भंजपुंवेदिगळु संज्ञिपंचेंद्रियगब्भंजस्त्रीवेदिगळु संमूर्च्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरु संमूर्च्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्य्याप्तकरु मी स्थानद्वयदोळु नपुंसकवेदिगळेयप्परु। भोगभूमिजरुमवरं गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तपुंस्त्रीवेदिगळेयप्परु। असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिगळुं व्यंतरदेवर्कळुं ज्योतिष्करुमेंदितेकादशजीवराशिगळुक्तक्रमदिदं मेगे मेगे रचिसल्पडुववु। अंतु

मनुष्यतिर्यक्स्त्रीराशिभ्यामधिको देवीराशिः स सामान्यस्त्रीराशिर्भवति = ९।३२ एतत्पुरुष- ४।६५=९।३३।
स्त्रीराशिद्वयविहीनसवेदराशिर्नपुंसकवेदराशिर्भवति १३ = सवेदराशिस्तु अवेदानिवृत्तिकरणाद्ययोगकेवल्यन्तानां संख्यया हीनसंसारराशिः १३—॥२७९॥

संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ताः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थानद्वये नपुंसकवेदिन एव। कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंवेदिन एव। असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः,

स्त्रियोंकी राशि मिलानेपर सब स्त्रीवेदी जीवोंका परिमाण होता है। सवेद जीवोंकी राशिमें उक्त पुरुषवेदियों और स्त्रीवेदियोंकी राशि घटानेपर नपुंसकवेदी जीवोंकी राशि होती है। तथा सब संसारी जीवोंकी राशिमें अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त जीवोंकी संख्या घटानेपर सवेद जीवोंका परिमाण होता है ॥२७९॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी, संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी, संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी, सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी, सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त नपुंसकवेदी, भोगभूमिया गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पुरुषवेदी तथा स्त्रीवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी, व्यन्तरदेव, ज्योतिषीदेव ये ग्यारह जीव राशियाँ उक्त क्रमसे ऊपर-ऊपर

स्थापिसिद सर्व्वाधस्तनराशि सर्व्वतः स्तोकमक्कुमष्टवारसंख्यातरूपुगळिवं आवल्यसंख्यातभागदिंवं पल्यासंख्यातभागदिंदमुं पण्णट्ठिगुणप्रतरांगुलंगळिंदमुं जगत्प्रतरमं भागिसुत्तिरलुमावुदो दु लब्धं तत्प्रमाणमें बुदर्त्थं प्रथम ४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८। १ १ १ द्वितीयः—

४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८। १ १ तृतीयराशि ४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८। १

चतुर्थ ४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८ पंचम ४। ६५ = १ १ १ १ १ प षष्ठ ५

४। ६५ = १ १ १ १ सप्तम ४। ६५ = १ १ १ अष्टम ४। ६५ = १ १

नवम ४। ६५ = १ १ दशम ४। ६५ = १ एकादश ४६५ = द्वितीयादि

असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजपुंवेदिनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः व्यन्तरदेवाः ज्योतिष्काश्च इत्येकादश जीवराशयः उक्तक्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः। तत्र सर्वाधस्तनराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पण्णट्ठिगुणितप्रतराङ्गुलैश्च जगत्प्रतरे भक्ते यल्लब्धं तत्प्रमाणं भवति। १

४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८ १ १ १। ततः उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीय–४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८ १ १

तृतीय—४। ६५ = १ १ १ १ १ प ८ १ चतुर्थ—४। ६५ १ १ १ १ १ प ८ राशयः संख्यातगुणितक्रमा

भवन्ति। ततः उपरि स्थितः पञ्चमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणितः ४। ६५ = १ १ १ १ १ प अतः

उपरि स्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणितः—४। ६५ = १ १ १ १ १ अतः उपरि स्थानेषु सर्वेषु

सप्तम— ४। ६५ = १ १ १ १ अष्टम—४। ६५ = १ १ १ नवम—४। ६५ = १ १ दशम ४। ६५ = १ १५

स्थापित करनी चाहिए। इनमें-से सबसे नीचेकी राशि सैनी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी सबसे कम हैं अर्थात् आठ बार संख्यात, आवलीका असंख्यातवाँ भाग, पल्यका असंख्यातवाँ भाग और पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आये, उतना परिमाण होता है। उसके ऊपर संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदीसे लेकर तीन स्थानोंका परिमाण क्रमसे संख्यातगुणा होता है। चतुर्थसे ऊपर पंचम राशि सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त नपुंसकवेदी आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित हैं। पंचम राशिसे छठी राशि पल्यके २०

---

१. ब °ण इत्यर्थ....ततः द्वितीय। २. ब ततः पं°। ३. ब अतःषष्ठ। ४. ब अतः सप्तम।

त्रिस्थानदोळु संख्यातगुणं चरमराश्यावल्यसंख्यातैकभागगुणमक्कुं। षष्ठराशिपल्यासंख्यात भागगुणमक्कुं सप्तमादिराशिगळु सर्व्वत्र संख्यातगुणक्रमंगळु।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमन्नयराजगुरु, ललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड-विंशतिप्ररूपणंगळोळु दशमं वेदमार्गणाप्ररूपणाधिकारं लपितमाय्तु ॥

एकादश[१]—४। ६५ = राशयः पञ्चापि संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥२८९-२८१॥

इति श्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीव-जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु वेदमार्गणाप्ररूपणो नाम दशमोऽधिकारः ॥१०॥

असंख्यातवें भाग गुणित हैं। इस छठी राशिसे ऊपर अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदीसे लेकर ज्योतिषीदेव पर्यन्त सातवीं, आठवीं, नवमी, दसवीं और ग्यारहवीं राशि क्रमसे संख्यातगुणी होती हैं ॥२८०-२८१॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से वेदमार्गणा प्ररूपणा नामक दसवाँ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

---

१. ब °दश सं°।

कषायमार्गणाधिकारः ॥११॥

अनंतरं कषायमार्गणेयं पेळ्दपरु ।

सुहदुक्खसुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं तेण कसाओत्ति णं बेंति ॥२८२॥

सुखदुःखसुबहुसस्यं कर्म्मक्षेत्रं कृषति जीवस्य । संसारदूरमर्य्यादं तेन कषाय इतीमं ब्रुवंति ॥

येन कारणेन आवुदो दु कारणदिंदं जीवस्य संसारिजीवन कर्म्मक्षेत्रं ज्ञानावरणादि मूलोत्तर-प्रकृतिभेदभिन्नशुभाशुभकर्म्मरूपक्षेत्रमं सस्याधिकरणभूतलमं कृषति विलिखति विलेखिसुगुमदु कारणदिंदं कषाय इति कषायमेंदितु इमं कषायपरिणामं ई कषायपरिणाममं कषाय इति कषाय-मेंदितु ब्रुवंति श्रीवर्द्धमानभट्टारकियरप्प गौतमगणधरदेवादिगळु पेळ्वरु । अदु कारणदिंदं कषाय-प्राभृतादियोळु गणधरसूत्रानुसारदिंदं यथोक्तमं कषायस्वरूपसंख्याशक्त्यवस्थाफलादिकमनानहंगे पेळ्वेनेंदितु स्वरुचिविरचितत्वं परिहरिसल्पट्टुदु ।

किं विशिष्टं कर्म्मक्षेत्रं सुखदुःखसुबहुसस्यं इंद्रियविषयसंबंधसमुद्भवहर्ष शारीरमानस-परितापरूपंगळप्प सुबहूनि बहुप्रकाराणि सस्यानि धान्यानि यस्मिन् भवंति तत् सुखदुःखसुबहुसस्यं ।

श्रेयोमार्गस्य नेतारं श्रेयोऽनेकान्तशासनम् ।
श्रेयांसं तीर्थकर्तारं श्रेयसे संस्तवीम्यहम् ॥११॥

अथ कषायमार्गणामाह—

येन कारणेन जीवस्य–संसारिणः कर्मक्षेत्रं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नशुभाशुभकर्मरूपक्षेत्रं सस्याधिकरणं भूतलं कृषति विलिखते, तेन कारणेन इमं क्रोधादिजीवपरिणामं कषाय इति ब्रुवन्ति श्रीवर्ध-मानभट्टारकीया गौतमगणधरदेवादयः कथयन्ति, ततः कारणात् कषायप्राभृतादौ गणधरसूत्रानुसारेण यथोक्तं कषायस्वरूपं संख्याशक्त्यवस्थाफलादिकं तथैव कथयिष्यामीति स्वरुचिविरचितत्वं परिहृतम् । किंविशिष्टं कर्मक्षेत्रं ? सुखदुःखसुबहुसस्यं सुखदुःखानि इन्द्रियविषयसंबन्धसमुद्भवहर्षशारीरमानसपरितापरूपाणि सुबहूनि

अब कषायमार्गणाको कहते हैं—

जिस कारणसे संसारी जीवके ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिके भेदसे भिन्न शुभ-अशुभ कर्मरूप क्षेत्रको अर्थात् धान पैदा होनेकी भूमिको यह कृषति अर्थात् जोतती है,इस कारणसे इन क्रोधादिरूप जीव परिणामको श्रीवर्धमान भट्टारकके गौतम गणधर आदि देव कषाय कहते हैं । अतः कषाय प्राभृत आदिमें गणधररचित सूत्रके अनुसार जैसा कषायका स्वरूप, संख्या, शक्ति, फल आदि कहा है,वैसा ही मैं कहूँगा । इस प्रकार ग्रन्थकारने स्वरुचि विरचितपनेका परिहार किया है । जैसे खेतमें बहुत प्रकारके धान्य उत्पन्न होते हैं,वैसे ही कर्मरूपी खेतमें इन्द्रियोंके विषयके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले हर्ष तथा शारीरिक और मानसिक सन्ताप रूप बहुत प्रकारके सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं । जैसे खेतके

पुनरपि कथंभूतं संसारदूरमर्य्यादं अनाद्यनिधनद्रव्यक्षेत्रकालभावभवानंतपरिवर्तनरूपसीमानुबद्धमेंबुदर्त्थं। इल्लि मिथ्यादर्शनादिजीवसंक्लेशपरिणामरूपबीजमं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदकर्म्मबंधलक्षणमप्प क्षेत्रदोळु बित्ति क्रोधादिकषायमेंबी जीवभृत्यनुं मत्तं कालादिसामग्रिलब्धिसमुत्पन्न सुखदुःखलक्षणबहुविधधान्यंगळननाद्यनिधनसंसारदूरसीमेयनुळ्ळुवनेंतु सुफलितंगळप्पुवंते मेले मेले कृषति एंडवरगुवरेंदितु कृष विलेखने यें बी धातुविन विलेखनार्थमं कोंडु निरुक्तिपूर्व्वकं कषायशब्दकर्थनिरूपणमाचार्य्यनिंदं माडलूपट्टुदें बुदु तात्पर्य्यार्थं।

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खाद-चरणपरिणामे ।
घादंति वा कसाया चउसोल असंखलोगमिदा ॥२८३॥

सम्यक्त्वदेशसकलचारित्रयथाख्यातचरणपरिणामान्। घ्नंतीति वा कषायाश्चतुष्षोडशाऽसंख्यलोकमिताः ॥

वा अथवा सम्यक्त्वं तत्वार्थश्रद्धानमं। देशचारित्रं अणुव्रतमं। सकलचारित्रं महाव्रतमं। यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रमेंनितप्पात्मविशुद्धिपरिणामंगळं कषंति हिंसंति घ्नंतीति केलिसुववेंदितु कषायाः कषायंगळेंदितु निर्व्वचनं माडल्पट्टुददं तें दोडे अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषायंगलात्मन सम्यक्त्वपरिणामम कषंति केडिसुवनंतसंसारकारणत्वात् मिथ्यात्वमनंतमनंतभवसंस्कारकालं वाऽनुबध्नंति संघटयंतीत्यनंतानुबंधिनः एंदितो निरुक्तिसामर्थ्यमुळ्ळुदरिंदं।

बहुप्रकाराणि सस्यानि धान्यानि यस्मिन् भवन्ति तत्सुखदुःखसुबहुसस्यम्। पुनरपि कथंभूतं ? संसारदूरमर्यादं अनाद्यनिधनद्रव्यक्षेत्रकालभवभावानन्तपरिवर्तनरूपसीमानुबद्धमित्यर्थः। अत्र मिथ्यादर्शनादिजीवसंक्लेशपरिणामरूपं बीजं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदकर्मबन्धलक्षणे क्षेत्रे उप्त्वा क्रोधादिकषायनामा जीवस्य भृत्यः पुनरपि कालादिसामग्रीलब्धिसमुत्पन्नसुखदुःखलक्षणबहुविधधान्यानि अनाद्यनिधनसंसारदूरसीमानि यथा सुफलितानि भवन्ति तथा उपर्युपरि कृषति इति कृषि विलेखने इत्यस्य धातोर्विलेखनार्थं गृहीत्वा निरुक्तिपूर्वकं कषायशब्दस्यार्थनिरूपणम् आचार्येण कृतमिति तात्पर्यार्थः ॥२८२॥

वा-अथवा सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं-अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रं एवंविधान् आत्मविशुद्धिपरिणामान् कषन्ति हिंसन्ति घ्नन्तीति कषाया इति निर्वचनोयम्। तद्यथा-अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभकषाया आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषन्ति अनन्तसंसारकारणत्वात् अनन्तं-मिथ्यात्वं, अनन्तभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नन्ति सुघटयन्तीत्यनन्तानुबन्धिन इति निरुक्तिसामर्थ्यात्।

मेड़ होती है, वैसे ही कर्मरूपी खेत अनादि अनिधन पंच परावर्तन रूप सीमासे अनुबद्ध है। यहाँ जीवके मिथ्यादर्शनादि संक्लेश परिणामरूप बीजको प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धरूप कर्म क्षेत्रमें बोकर जीवका क्रोधादि कषाय नामक नौकर काल आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे उत्पन्न सुख-दुःख रूप अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न करता है। अतः 'कृषि विलेखने' धातुका जोतना अर्थ लेकर आचार्यने निरुक्तिपूर्वक 'कषाय' शब्दका अर्थ कहा है; ऐसा तात्पर्यार्थ जानना ॥२८२॥

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व, अणुव्रतरूप देशचारित्र, महाव्रतरूप सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र रूप आत्माके विशुद्धि परिणामोंको 'कषति' अर्थात् घातते हैं इसलिए कषाय कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभकषाय आत्माके सम्यक्त्व परिणामको घातती है, क्योंकि अनन्त संसारका कारण होनेसे अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, या अनन्तभवके संस्कार कालको 'अनुबध्नन्ति' बाँधती है, इसलिए उसे

अप्रत्याख्यानावरणंगळवुमणुव्रतपरिणाममं कषंति केडिसुववप्रत्याख्यानमणुव्रतं तदावृण्वंति घ्नंतीति केडिसुववेंदितु निरुक्तिसिद्धत्वमप्पुदरिंदं। प्रत्याख्यानावरणंगळवुं सकलचारित्रमं महाव्रतपरिणाममं कषंति केडिसुववु प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तमावृण्वन्ति घ्नंतीति केडिसुववेंदितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पुदरिंदं। संज्वलनंगळुमवुं यथाख्यातचारित्रपरिणाममं कषंति केडिसुववु। सं समीचीनं विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहंतीति संज्वलनाः एंदितु निरुक्तिबलदिंदमदरुदयदोळं सामायिकादितरसंयमाविरोधं सिद्धमाय्तु।

इंतप्प कषायं सामान्यदिंदं मोदु १। विशेषविवक्षेयोळु अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलनभेददिं नाल्कप्पुवु ४॥ मत्तमा नाल्कक्कं प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभंगळेंदु षोडशभेदंगळप्पुवु। १६॥ अदे तेरदोडे अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभंगळेंदुमप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभगळेंदुं प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभंगळेंदु संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगळेंदितु। मत्त मेल्लमुदयस्थानविशेषापेक्षेयिंदं असंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवेके दोडे तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पंगळमसंख्यातलोकमात्रत्वदिंदं ॥ ८।

अप्रत्याख्यानावरणाः अणुव्रतपरिणामं कषन्ति। अप्रत्याख्यानं ईषत् प्रत्याख्यानं अणुव्रतं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। प्रत्याख्यानावरणाः सकलचारित्रं महाव्रतपरिणामं कषन्ति। प्रत्याख्यानं-सकलसंयमं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषन्ति, सं-समीचीनं, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलन्ति दहन्ति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलेन तदुदये सत्यपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः। एवंविधः कषायः सामान्येन एकः, विशेषविवक्षायां तु अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाच्चत्वारः। पुनस्ते चत्वारोऽपि प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति षोडश १६। तद्यथा—अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः संज्वलनक्रोधमानमायालोभाः इति। पुनः सर्वेऽपि उदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिता भवन्ति। कुतः? तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानां असंख्यातलोकमात्रत्वात् ॥ ८ ॥२८३॥

अनन्तानुबन्धी कहते हैं;इस निरुक्तिके बलपर उक्त कथन सिद्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय अणुव्रत परिणामोंको घातती है। अप्रत्याख्यान अर्थात् ईषत् प्रत्याख्यान यानी अणुव्रतको आवृण्वन्ति अर्थात् घातती है; इस निरुक्तिसे सिद्ध होता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय सकल चारित्ररूप महाव्रत परिणामोंको घातती है। प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयमको 'आवृण्वन्ति' अर्थात् घातती है, इस निरुक्तिसे सिद्ध है। संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्ररूप परिणामोंको घातती है। सं अर्थात् समीचीन विशुद्ध संयम यथाख्यात चारित्रको 'ज्वलन्ति' जो जलाती है, वह संज्वलन है इस निरुक्तिके बलसे संज्वलन कषायके उदयमें सामायिक आदि अन्य संयमोंके होनेमें कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकारकी कषाय सामान्यसे एक है। विशेष विवक्षामें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनके भेदसे चार हैं। पुनः वे चारों भी प्रत्येकके क्रोध, मान, माया, लोभ भेद होनेसे सोलह हैं। यथा, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ। पुनः सभी कषाय उदयस्थान विशेषकी अपेक्षा असंख्यात लोक

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८४॥

शिलापृथ्वीभेदधूलीजलराजिसमानो भवेत्क्रोधः । नारकतिर्य्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥

शिलाभेद पृथ्वीभेद धूलीरेखा जलरेखासमानउत्कृष्टानुत्कृष्टाऽजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टमप्प क्रोधकषायमदु नारकतिर्य्यग्नरामरगतिगळोळु क्रमशो यथाक्रममुत्पादिसुगुं जीवमनदें तेंदोडे शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायं जीवमं नारकगतियोळ्पुट्टिसुगुं । पृथ्वीभेदानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधं तिर्य्यग्गतियोळु जीवमं पुट्टिसुगुं । धूलीरेखाऽजघन्यशक्तियुक्तक्रोधं जीवनं मनुष्यगतियोळु पुट्टिसुगुं । जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तक्रोधं जीवनं देवगतियोळ्पुट्टिसुगुं । अदरिंदं तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतजीवं तत्तद्गत्युत्पत्तिकारण तत्तदायुर्ग्गत्यानुपूर्व्विनामादिप्रकृतिगळं कट्टुगुमें बुदर्त्थं । इल्लि राजिशब्दं रेखार्त्थवाचियक्कुं । पंक्ति वाचियल्तु । यें तीगळु शिलाभेदादिगळ्गे चिरतर चिर शीघ्र शीघ्रतर कालंगळिदमल्लदे संधानं घटिसदंते उत्कृष्टादिशक्तियुक्त क्रोधपरिणामजीवनुमंतप्प कालंगळल्लदे क्षमालक्षणसंधानार्हनागनें दितुपमानोपमेयंगळ्गे सादृश्यं संभविसुगुमें बिदु तात्पर्य्यार्त्थं ।

शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः स नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्रमशो यथाक्रमं उत्पादयति जीवम् । तद्यथा—शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः जीवं नरकगतावुत्पादयति । पृथ्वीभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । धूलीरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधो जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं देवगतावुत्पादयति । तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिप्रकृतीर्बध्नातीत्यर्थः । अत्र राजिशब्दो रेखार्थवाची न तु पङ्क्तिवाची । यथा शिलादिभेदानां चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना अनुसंधानं न घटते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न स्यात् इत्युपमानोपमेययोः सादृश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥२८४॥

प्रमाण है क्योंकि उसके कारण चारित्र मोहनीयके उत्तरोत्तर प्रकृति भेद असंख्यात लोक मात्र हैं ॥२८३॥

शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलीरेखा और जलरेखाके समान उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य शक्तिसे विशिष्ट क्रोध कषाय जीवको क्रमसे नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है । स्पष्टीकरण इस प्रकार है—शिलाभेदके समान उत्कृष्ट शक्तिसे विशिष्ट क्रोध कषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है । पृथ्वीभेदके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे विशिष्ट क्रोध जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराता है । धूलकी रेखाके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त क्रोध जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराता है । जलमें रेखाके समान जघन्य शक्तिसे युक्त क्रोध जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराता है । इसका अभिप्राय यह है कि उस-उस शक्तिसे युक्त क्रोध कषायरूप परिणमा जीव उस-उस गतिमें उत्पत्तिमें कारण उस-उस आयु, गति, आनुपूर्वी आदि प्रकृतियोंको बाँधता है । यहाँ गाथामें आया 'राजि' शब्दका अर्थ रेखा लेना चाहिए, पंक्ति नहीं । जैसे शिला आदिमें पड़ी दरार अतिचिरकाल,

१. ब शिलाभेदादीनां । २. ब °णामजीवः त° ।

सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८५॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः । नारकतिर्य्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥

शिलास्थिकाष्ठवेत्रान् शैलास्थिकाष्ठवेत्रंगळनु निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदंदिदमनुहरन् उपनीयमानुमानकषायं क्रमशः क्रमदिंद नारकतिर्य्यग्नरामरगतिगळोळु जीवनं पुट्टिसुगुमदे तेंदोडे शिलासमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं नारकगतियोळु पुट्टिसुगुमस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं तिर्य्यग्गतियोळ्पुट्टिसुगुं, काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायं मनुष्यगतियोळु जीवनं पुट्टिसुगुं, वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं देवगतियोळ्पुट्टिसुगुमें तोगळु चिरतरादिकालंगळिदमल्लदे शिलास्थिकाष्ठवेत्रंगळु मणिइसल्बारवंते उत्कृष्टादि शक्तियुक्तमानकषायपरिणतजीवनुमंतप्प कालंगळिदमल्लदे मानमनपहरिसि विनयरूपमप्प नमनमं माडलु शक्तनल्लेंदितु सादृश्यसंभवमिल्लेंदरियल्पडुगुं । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतजीवं तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतु तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्विनामादिकर्म्मबंधकनक्कुमें बुविदु तात्पर्य्यार्थं ।

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदैरनुहरन् उपमीयमानो मानकषायः क्रमशः—क्रमेण नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—शिलास्तम्भसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायो जीवं नारकगतावुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायो जीवं तिर्यग्गतावुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायो मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायो जीवं देवगतावुत्पादयति । यथा हि चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्राः नामयितुं न शक्यन्ते तथोत्कृष्टादिशक्तिर्युक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानं परिहृत्य विनयरूपनमनं कर्तुं न शक्नोतीति सादृश्यसंभवोऽत्र ज्ञातव्यः । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्म बध्नातीति तात्पर्यम् ॥२८५॥

चिरकाल, शीघ्र और अतिशीघ्र कालोंके बिना भरती नहीं है वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त क्रोधरूप परिणमा जीव भी उस प्रकारके कालके बिना क्षमा भाव धारणके योग्य नहीं होता है इस प्रकार उपमान और उपमेयमें समानता बनती है ॥२८४॥

शैल, अस्थि, काष्ठ और बेंतको अपनी उत्कृष्ट आदि शक्तिके भेदोंसे उपमा बनानेवाली मानकषाय क्रमसे जीवको नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न करातीं है । उसका स्पष्टीकरण—पत्थरके स्तम्भके समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न करातीं है । अस्थिके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न करातीं है । काष्ठके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न करातीं है । बेंतके समान जघन्य शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न करातीं है । जैसे चिरतर आदि समयके बिना पत्थर, हड्डी, काठ और बेंतको नमाना शक्य नहीं है वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त मानकषायरूप परिणत जीव भी उस प्रकारके कालोंके बिना मानको त्यागकर विनयरूप नमन करनेमें समर्थ नहीं होता है इस प्रकार समानता जानना । इसका आशय यह है कि उस-उस शक्तिसे युक्त मानकषायरूप परिणत जीव उस-उस गतिमें उत्पत्तिके कारण उस-उस गति, आयु और आनुपूर्वी नामकर्मका बन्ध करता है ॥२८५॥

वेणुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरुप्पे ।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जियं ॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण । सदृशी माया नरकतिर्य्यग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवं ॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्तमप्प माया वंचने यथाक्रमं नारकतिर्य्यग्नरामरगतिगळोळु जीवननिक्कुगुमदें तेंदोडे वेणूपमूलमें बुदु वेणूपमूलग्रंथियक्कुं अदरोडने समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायं जीवनं नरकगतियोळिक्कुगुं । उरभ्रकमें बुदु मेषमदरशृंगसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्त मायाकषाय जीवनं तिर्य्यग्गतियोळिक्कुगुं । गोमूत्रसमानाजघन्यशक्तियुक्त मायाकषायं जीवनं मनुष्यगतियोळिक्कुगुं । क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायं जीवनं देवगतियोळिक्कुगुमें तीगळु वेणूपमूलादिगळु चिरतरादिकालदिनल्लदे तंतम्म वक्रतेयं परिहरिसि ऋजुत्वमनेय्दुवंते जीवनुमुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतनुमंतप्प कालंगळिदमल्लदे तंतम्म वक्रतेयं परिहरिसि ऋजुपरिणामियागनें दितु सादृश्यं युक्तमक्कुं । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवं तत्तद्गतिक्षेपकारण तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्विनामादिकर्म्मबंधकनक्कुमें बुदु तात्पर्य्यार्थं ।

वेणूपमूलोरभ्रकशृङ्गगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया—वञ्चना यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं निक्षिपति । तद्यथा—वेणूपमूलं वेणुमूलग्रन्थिः तेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं नरकगतौ निक्षिपति । उरभ्रकः—मेषः, तच्छृङ्गसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं तिर्यग्गतौ निक्षिपति । गोमूत्रसमानाजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं मनुष्यगतौ निक्षिपति क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं देवगतौ निक्षिपति । यथा वेणूपमूलादयः चिरतरादिकालं विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुत्वं न प्राप्नुवन्ति तथा जीवोऽपि उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतः तथाविधकालैर्विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुपरिणामो न स्यात् इति सादृश्यं युक्तम् । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणं तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नाति । इति तात्पर्यार्थः ॥२८६॥

बाँसकी जड़, मेढ़ेके सींग, गोमूत्र तथा खुरपाके समान उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया जीवको यथाक्रम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है । स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाँसकी जड़के समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है । मेढ़ेके सींगके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराती है । गोमूत्रके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराती है । तथा खुरपेके समान जघन्य शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराती है । जैसे बाँसकी जड़ वगैरह चिरतर आदि कालोंके बिना अपने-अपने टेढ़ेपनेको छोड़कर सरलतासे सीधेपनेको प्राप्त नहीं होते, वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया कषायरूप परिणत जीव भी उस प्रकारके कालोंके बिना अपनी वक्रताको छोड़कर सरल परिणामी नहीं होता । इस प्रकार समानता योग्य है । इसका आशय यह है कि उस-उस उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया कषाय रूप परिणत जीव उस-उस गतिमें ले जानेमें निमित्त उस-उस आयु, गति और आनुपूर्वी आदि कर्मोंको बाँधता है ॥२८६॥

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएण सरिसओ लोहो ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो ॥२८७॥

किमिरागचक्रतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः । नारकतिर्य्यग्मानुषदेवेषूत्पादकः क्रमशः ॥

किमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबंधसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभकषायं विषयाभिलाषरूपं क्रमशः यथासंख्यं नारकतिर्य्यग्मानुषदेवगतिगळोळु जीवननुत्पादिसुगुं पुट्टिसुगुमदें तेंदोडे किमिरागदोडने कंबलादिरंजनदोडने समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं नारकगतियोलु पुट्टिसुगुं । चक्रमलं रथांगमलमदरोडने समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं तिर्य्यग्गतियोळु पुट्टिसुगुं । तनुमलं शरीरमलं बहिर्गतजल्लमलं तद्बंधसदृशाऽजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं मनुष्यगतियोळ्पुट्टिसुगुं । हरिद्रारागमंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागमदर बंधसदृशजघन्यशक्तियुक्तं लोभकषायं जीवनं देवगतियोळु पुट्टिसुगुं । किमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामदिदं जीवं तत्तद्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्विनामादिकर्म्मबंधकनक्कुमेंबुदु भावार्थं ।

णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्मि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥

नारकतिर्य्यग्नरसुरगतिषूत्पन्नप्रथमकाले । क्रोधो माया मानो लोभोदयोऽनियमो वापि ॥

किमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबन्धसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभकषायो विषयाभिलाषरूपः क्रमशो—यथासंख्यं नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—किमिरागेण कंबलादिरञ्जनेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायो जीवं नारकगतौ उत्पादयति । चक्रमलः—रथाङ्गमलः, तेन समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं तिर्यग्गतौ उत्पादयति । तनुमलः शरीरमलः बहिर्गतः जल्लमल्लः, तद्बन्धसदृशाजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायो जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । हरिद्रारागः, अङ्गवस्त्रादिरञ्जनद्रव्यरागः—तद्बन्धसदृशजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं देवगतावुत्पादयति । किमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामेन परिणतो जीवः तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नातीति भावार्थः ॥२८७॥

कृमिराग, चक्रमल, शरीरमल और हल्दीके रंगके समान उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त विषयोंकी अभिलाषारूप लोभ कषाय क्रमसे जीवको नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है; जो इस प्रकार है—कृमिराग जिससे कम्बल रंगे जाते हैं, उसके समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त लोभकषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है। चक्रमल अर्थात् रथके पहियेकी औंगनके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त लोभकषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराती है। शरीरके बाह्य मैलके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त लोभ कषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराती है। हल्दीके रंगके समान जघन्य शक्तिसे युक्त लोभ कषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराती है। इसका भावार्थ यह है कि कृमिराग आदिके समान उस-उस उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त लोभ परिणामसे परिणत जीव उस-उस नारक आदि भवोंमें उत्पत्तिके कारण उस-उस आयु, गति, आनुपूर्वी आदि कर्मोंका बन्ध करता है ॥२८७॥

नारकतिर्य्यग्नरसुरगतिगळोळु पुट्टिद जीवक्के तद्भवप्रथमकालदोळु प्रथमसमयदोळु यथासंख्यंक्रोधमानमायालोभकषायंगळगुदयमक्कुं मेंबी नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धांतव्याख्यातृगळप्प यतिवृषभाचार्य्यरभिप्रायमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुदु ।

वा अथवा महाकर्म्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतकर्तृगळप्प भूतबल्याचार्य्यरभिप्रायदिंदमनियममरियल्पडुगुं । पेरगे पेळ्द नियममिल्लदे यथासंभवं कषायोदयमक्कुमेंबुदर्त्थं ।

अपि शब्दं समुच्चयार्त्थमदुकारणदिंदमुभयसंप्रदायमेमगे संशयाधिरूढमेयक्कु मेकतरावधारणदोळु शक्तिरहितमप्पुदरिंदमी भरतक्षेत्रदोळु केवलिद्वयाभावमप्पुदरिंदं आरातीयाचार्य्यरुगळोळमी सिद्धांतद्वयकर्तृगळं नोडलु ज्ञानातिशयमनुळ्ळरुगळगभावमप्पुदरिंदमुं एत्तलानुं विदेहक्के पोगि तीर्त्थंकरादिसंनिधियोळु मोदानुमोव्वंगाचार्य्यंगे सकलश्रुतार्थंगळोळु संशयविपर्य्यासानध्यवसायव्यवच्छेददिंदं वस्तुनिर्णयमक्कुमागळु सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तियुं तथैवास्तीति आ प्रकारदिंदमेयुंटे दितावं प्रेक्षावंतं नंबुगुं ।

अप्पपरोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी ।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः । येषां न सन्ति कषायाः अमला अकषायिणो जीवाः ॥

नारकतिर्यग्नरसुरगत्युत्पन्नजीवस्य तद्भवप्रथमकाले—प्रथमसमये यथासंख्यं क्रोधमायामानलोभकषायाणामुदयः स्यादिति नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धान्तव्याख्यातुर्यतिवृषभाचार्यस्य अभिप्रायमाश्रित्योक्तम् । वा—अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्तकर्तुः भूतबल्याचार्यस्य अभिप्रायेणाऽनियमो ज्ञातव्यः । प्रागुक्तनियमं विना यथासंभवं कषायोदयोऽस्तीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः, ततः कारणादुभयसंप्रदायोऽपि अस्माकं संशयाधिरूढ एवास्ति एकतरावधारणे शक्तिरहितत्वात् अस्मिन् भरतक्षेत्रे केवलिद्वयाभावात् आरातीयाचार्याणामेतत्सिद्धान्तद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावात् । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थंकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धान्तद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति तत्प्रेक्षावान् कः श्रद्दधीत ॥२८८॥

नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न हुए जीवके जन्म लेनेके प्रथम समयमें क्रमसे क्रोध, माया, मान और लोभ कषायका उदय होता है, इस नियमका कथन कषाय प्राभृत नामक द्वितीय सिद्धान्त ग्रन्थके व्याख्याता आचार्य यतिवृषभके अभिप्रायको लेकर किया है । अथवा महाकर्म प्रकृति प्राभृत नामक प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थके रचयिता आचार्य भूतबलीके अभिप्रायसे अनियम जानना । अर्थात् पूर्वोक्त नियमके विना यथायोग्य कषायका उदय होता है । 'अपि' शब्द समुच्चयके लिए है । इसलिए दोनों ही आचार्यों के अभिप्राय हमारे लिए सन्देहास्पद हैं;दोनोंमें-से किसी एकको मान्य करनेकी शक्ति हमारेमें नहीं है,क्योंकि इस भरत क्षेत्रमें केवली, श्रुतकेवलीका अभाव है । तथा आरातीय आचार्योंमें दोनों सिद्धान्तोंके रचयिताओंसे अधिक ज्ञान नहीं है । यद्यपि विदेहमें जाकर तीर्थंकर आदिके निकटमें कोई आचार्य समस्त श्रुतके अर्थके विषयमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसायको दूर करके वस्तुका निर्णय कर सकते हैं;तथापि सिद्धान्तद्वयके कर्ताओंमें जो विवाद है उसके

१. म °र्य्यंगलामो ।

आत्मा तनगं पर पेरगं, उभय तनगं पेरगंमेंदी त्रिस्थानकदोळं प्रत्येकं बाधनमुं बंधनमुमसंयममुमेंबी मूरक्कं निमित्तमप्प क्रोधादयः कषायाः क्रोधमानमायालोभंगळुमेंब कषायंगळुं पुंवेदादिनोकषायंगळुं येषां न संति आवुवु केलवु जीवंगळिगल्लमवर्गळकषायरुं, द्रव्यभावनोकर्म्मरूपमलरहितरुमप्प सिद्धपरमेष्ठिगळुमोळरेंदितरियल्पडुगुं । येत्तलानुमुपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळुमकषायरुममलरुं यथासंभवद्रव्यभावमलरहितमप्परादोडमवर्गेयुं गुणस्थानप्ररूपणेयिंदमेयकषायत्वसिद्धियुंटेदरियल्पडुगुमिल्लि क्रोधादिकषायं तनगे बंधनबाधाऽसंयमहेतुमक्कुमेंतेदोडे ओदानुमोर्व्वजीवंगे क्रोधादिकषायवु आत्मन एव तनगे बंधनहेतुवुं स्वशिरोभिघातादि बाधाहेतुवु हिंसाद्यसंयमहेतुवुमक्कु । मत्तोर्व्वंन क्रोधादिकषायं परंगेये स्वशत्रादिगे बाधनबंधनाऽसंयमहेतुमक्कुं । मत्तोर्व्वंन कामुकादिजीवन क्रोधादिकषायमुभयक्कुं स्वपरद्वयक्कं यथासंभव बंधनबाधाऽसंयमहेतुवक्कुमेंदितु विभागं लोकानुसारदिंदमुमागमानुसारिंदमु नोडल्पडुवुदु ।

कोहादिकसायाणं चउ चोद्दसवीस होंति पद संखा ।
सत्तीलेस्सा आउगबंधाऽबंधगदभेदेहिं ॥२९०॥

क्रोधादिकषायाणां चतुश्चतुर्दश विंशतिश्च भवंति पदसंख्याः । शक्तिलेश्यायुर्ब्बंधाऽबंधगतभेदैः ॥

स्वस्मिन् परस्मिन् उभयस्मिन् इति स्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं बाधनबन्धनासंयमानां त्रयाणामपि निमित्तभूताः क्रोधादयः कषायाः, पुंवेदादयो नोकषायाश्च येषां जीवानां न सन्ति ते अकषायाः, अमलाः द्रव्यभावनोकर्ममलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः सन्तीति ज्ञातव्यम् । यद्यपि उपशान्तकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽपि अकषाया अमलाश्च यथासंभवं द्रव्यभावमलरहिताः सन्ति तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैव अकषायत्वसिद्धिरस्तीति ज्ञातव्यम् । तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः स्वस्यैव बन्धनहेतुः स्वशिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति । कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः परस्यैव स्वशत्रादेर्बाधनबन्धनासंयमहेतुर्भवति । कस्यचित्कामुकादिजीवस्य क्रोधादिकषायः स्वपरयोरपि यथासंभवं बाधनबन्धनासंयमहेतुर्भवति इति विभागः लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥२८९॥

सम्बन्धमें 'यही ठीक है'; ऐसा कौन बुद्धिशील श्रद्धान करेगा। अतः दोनों मतोंका कथन किया है ॥२८८॥

अपने, दूसरे और दोनोंके बन्धन, बाधा तथा असंयममें निमित्तभूत क्रोधादि कषाय और पुरुषवेद आदि नोकषाय जिन जीवोंके नहीं हैं, वे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप मलसे रहित सिद्धपरमेष्ठी अकषाय-कषाय रहित हैं, ऐसा जानना। यद्यपि उपशान्त कषाय आदि चार गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय तथा यथायोग्य द्रव्य मल और भावमलसे रहित होते हैं, तथापि उनके गुणस्थान प्ररूपणासे ही अकषायत्वकी सिद्धि जानना। किसी जीवकी क्रोधादि कषाय अपने ही बन्धनमें हेतु होती है, अपने सिर फोड़ने आदि बाधामें हेतु होती है तथा हिंसा आदि असंयममें हेतु होती है। किसी जीवकी क्रोधादि कषाय दूसरे अपने शत्रु आदिके बन्धन, बाधा तथा असंयममें हेतु होती है। किसी कामी आदि जीवकी क्रोधादि कषाय यथा सम्भव अपने और दूसरोंके बन्धन, बाधन और असंयममें हेतु होती है। इस प्रकारका विभाग लोकानुसार और आगमानुसार करना ॥२८९॥

---

१. म °दोडे स्वशिरोभिघातादिबाधाहेतुवु बन्धनहेतुवुं हिंसा° ।

क्रोधादिकषायंगळगे शक्तिलेश्यायुबंधाऽबंधगतभेदंगळिंदं यथाक्रमं चतुश्चतुर्दश विंशति-प्रमितस्थानंगळ संख्येगळप्पुवदं तें दोडे :—

शक्तिस्थानंगळु नाल्कु ४। लेश्यास्थानंगळु पदिनाल्कु १४। आयुर्ब्बंधाबंधगतस्थानंगळिप्पत्त २० प्पुवें बुदर्त्थमा स्थानादिगळं पेळ्दपं।

सिलसेलवेणुमूलकिमिरायादी कमेण चत्तारि।
कोहादिकसायाणं सत्ति पडि होंति णियमेण ॥२९१॥

शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि। क्रोधादिकषायाणां शक्तिं प्रति भवंति नियमेन॥

क्रोधादि चतुः कषायंगळगे शक्तियं कूर्तु स्वफलदानसामर्त्थ्यमनुद्देशिसि तीव्रतर तीव्र मंद मंदतरानुभागरूपंगळुमुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपंगळु मेणु स्थानंगळनाल्कुं नियमिंदं शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागंगळु तीव्रतरानुभागोदाहरणंगळु आदिगळागिप्पुवु-वावुवु केलवु पृथ्वीभेदादिगळप्प तीव्रानुभागाद्युदाहरणंगळगवु शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरगांगळनुळ्ळ स्थानंगळप्पुवें दितु शिलाभेदादिदृष्टांतंगळु स्फुटमागि व्यवहारावधारणंदिंदमप्पुवु। परमागम व्यवहारिगळप्पाचार्य्यरुगळिंदमव्युत्पन्नमंदप्रज्ञस्वशिष्यप्रतिबोधनार्त्थं व्यवहर्तव्यंगळप्पुवु। दृष्टांत-प्रदर्शनबलदिंदमे स्फुटमागियुमव्युत्पन्नमंदप्रज्ञरप्प शिष्यरु तिळिपल्के शक्यरप्परदु कारणदिंद दृष्टांतनामंगळे शिलाभेदादिगळु शक्तिगळगे नामंगळें दितु रूढंगळु।

क्रोधादिकषायाणां शक्तिलेश्यायुर्बन्धाबन्धगतभेदैर्यथाक्रमं चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमितपदानां[1] स्थानानां संख्या भवति। तद्यथा शक्तिस्थानानि चत्वारि ४ लेश्यास्थानानि चतुर्दश १४ आयुर्बन्धाबन्धस्थानानि विंशतिः २० इत्यर्थः ॥२९०॥

क्रोधादिचतुःकषायाणां शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमन्दमन्दतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागाः तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीनां तीव्रानुभागाद्युदाहरणानां तानि शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि भवन्ति इति शिलाभेदादिदृष्टान्ता स्फुटं व्यवहारावधारणेन भवन्ति। परमागमव्यवहारिभिराचार्यैः अव्युत्पन्नमन्दप्रज्ञशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवन्ति। दृष्टान्तप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमन्दप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिबोधयितुं शक्यन्ते। अतो दृष्टान्तनामान्येव शिलाभेदादिशक्तीनां नामानीति रूढानि ॥२९१॥

क्रोधादि कषायोंके शक्ति, लेश्या और आयुबन्धाबन्धगत भेदोंसे क्रमसे चार, चौदह और बीस स्थान संख्या होती है। अर्थात् शक्तिस्थान चार हैं, लेश्यास्थान चौदह हैं और आयुबन्धाबन्ध स्थान बीस हैं ॥२९०॥

उन स्थानोंको कहते हैं—

क्रोध आदि चार कषायोंके शक्ति अर्थात् अपना फल देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षा नियमसे चार स्थान होते हैं जो तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर अनुभागरूप अथवा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य अनुभागरूप हैं। शिला भेद, शैल, बाँसकी जड़ और कृमिराग ये तीव्रतर या उत्कृष्ट अनुभागके उदाहरण हैं। आदि शब्दसे तीव्र आदि अनुभागके उदाहरण पृथ्वीभेद आदि जानना। शिलाभेद आदि दृष्टान्त स्पष्टरूपसे व्यवहारके अवधारणके लिये हैं।

---

१. ब °प्रमितपदा°।

किण्हं सिलासमाणे किण्हादी छक्कमेण भूमिम्मि ।
छक्कादी सुक्कोत्ति य धूलिम्हि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने कृष्णादि षट् क्रमेण भूमौ । षट्कादिशुक्लपर्य्यंतं धूलौ जले शुक्लैका ॥

शिलाभेदसमानमप्प क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थानदोळु ओंदे कृष्णलेश्ययक्कुं । येत्तलानुमल्लिय-संख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टकषायोदयस्थानंगळप्पुवादोडमवेल्लमुं कृष्ण-लेश्येय संक्लेशहानिस्थानंगळेयप्पुवन्यलेश्येय स्थानंगळल्लेंदीयभिप्रायदिंदं शिलाभेदसमानोत्कृष्ट-स्थानदोळु कृष्णलेश्येये यें दिताचार्य्यनिंदं पेळल्पट्टुदु । नियमेनेंदितन्वर्थमनुळ्ळुदरिंदं नियम-शब्ददिंदमिल्लियुमवधारणार्थं सूचिसल्पडुगुमदावुदें दोडे तच्चरमस्थानदोळुत्कृष्टशक्तिव्युच्छि-तियक्कुमें दितिदु ।

इन्नु भूमिभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थानदोळु क्रमदिंदं कृष्णलेश्यादिगळारुं लेश्यगळ-प्पुवें दोडे अल्लि स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूभेदसमानक्रोधानुकृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थान-मादियागि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळऽसंख्येयलोकमात्रंगळोळं कृष्णलेश्ययेयक्कुमेकें दोडे नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणक्कास्थानंगळोळसंभवमप्पुदरिंदं । अल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेश-हानिस्थानंगळसंख्येयलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमकृष्णलेश्ययुमुत्कृष्टनीललेश्ययुं वर्त्ति-

---

शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या भवति । यद्यपि तत्र असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि सन्ति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्याया इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमानोत्कृष्टस्थाने कृष्णलेश्यैव इत्याचार्येण कथितम् । नियमेन इत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देन अत्राप्यवधारणार्थः सूच्यते । स कः ? तच्चरमस्थाने उत्कृष्ट-शक्तिर्व्युच्छिद्यते इति । भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णादयः षडपि लेश्या भवन्ति । तद्यथा—तत्र स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थान-पतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेष्वपि कृष्णैव लेश्या भवति नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणस्य तत्रासम्भवात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु अपि उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या उत्कृष्टनील-

---

परमागमके व्यवहारी आचार्योंके द्वारा अव्युत्पन्न मन्दबुद्धि शिष्यको समझानेके लिये इनका व्यवहार किया गया है । दृष्टान्तके बलसे ही अव्युत्पन्न मन्दबुद्धि शिष्योंको समझाया जा सकता है । अतः दृष्टान्तके नाम ही शिलाभेद आदि शक्तियोंके नाम रूढ़ हो गये हैं ॥२९१॥

शिलाभेदके समान क्रोधके उत्कृष्ट शक्ति स्थानमें एक कृष्णलेश्या ही होती है । यद्यपि उस स्थानमें षट्स्थानपतित संक्लेशहानिसे विशिष्ट असंख्यातलोकमात्र कषायोंके उदयस्थान हैं तथापि वे सभी कृष्णलेश्याके ही संक्लेशहानिस्थान हैं; अन्य लेश्याके नहीं, इस अभिप्रायसे आचार्यने शिलाभेदके समान उत्कृष्टस्थानमें कृष्णलेश्या ही कही है ।

विशेषार्थ—षट्स्थान पतित संक्लेश हानिका स्वरूप ऐसा है कि कषायोंके अविभाग प्रतिच्छेद जितने पहले थे, उनसे घटने लगें तो अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि, अनन्तगुणहानिरूपसे घटते हैं । इस तीव्र कषायके घटनेको षट्स्थानपतितसंक्लेश हानि कहते हैं । कषायोंके अविभाग प्रतिच्छेद अनन्त हैं । उनकी अपेक्षा षट्स्थान पतित हानि होती है ।

सुववदें तें दोडा लेश्याद्वयलक्षणं संभविसुगुमप्पुदरिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्येयलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णलेश्येयुं मध्यमनीललेश्येयुमुत्कृष्टकपोतलेश्येयुं वर्तिसुववल्लिया लेश्यात्रयलक्षणसंभवमुळ्ळुदरिंद मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयमुं जघन्यतेजोलेश्येयुमेंदी नाल्कुं लेश्येगळु वर्तिसुवल्लियुमा लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावदिंद मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्येगळेंदी नाल्कु लेश्यगळुं जघन्यपद्मलेश्येयुमिनितय्दुं लेश्येगळु वर्तिसुवल्लिमा लेश्यापंचकलक्षणसद्भावदिंदं मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्याः पंचकमुं शुक्ललेश्याजघन्यमुमी यारु लेश्येगळु वर्तिसुवल्लियुमा लेश्याषट्कलक्षणसद्भावदिंद मल्लिया चरमस्थानदोळे अनुत्कृष्टशक्तिव्युच्छित्तियक्कुमल्लिदत्तलु धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थानदोळ यथाक्रमदिंदं लेश्या-

---

लेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणस्यैव संभवात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसंभवात्। ततः उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु अपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते तत्र, तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमस्थाने

पूर्व गाथासे नियम शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे यहाँ भी अवधारण अर्थ सूचित होता है। वह यह है कि उसके अन्तिम स्थानमें उत्कृष्ट शक्तिकी व्युच्छित्ति होती है। अस्तु। पृथ्वी भेदके समान क्रोधके अनुत्कृष्ट शक्ति स्थानमें क्रमसे कृष्ण आदि छहों लेश्याएँ होती हैं; जो इस प्रकार जानना—पृथ्वी भेदके समान क्रोधके अनुत्कृष्ट शक्तिवाले प्रथम उदय स्थानको लेकर असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानोंमें कृष्ण लेश्या ही होती है, नील आदि अन्य लेश्याका लक्षण वहाँ सम्भव नहीं है। यहाँसे आगे षट्स्थानपतित संक्लेशहानिको लिये हुए असंख्यातलोकमात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्णलेश्या और उत्कृष्ट नीललेश्या होती है, क्योंकि वहाँ इन दोनों लेश्याओंके लक्षण ही सम्भव हैं। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यमकृष्णलेश्या, मध्यमनीललेश्या और उत्कृष्ट कापोतलेश्या रहती है। वहाँ इन्हीं तीन लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, मध्यम कापोत लेश्या और जघन्यपीतलेश्या रहती है। वहाँ इन्हीं चार लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेशहानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्ण, नील, कापोत और पीतलेश्या तथा जघन्य पद्मलेश्या होती है। क्योंकि

---

१. म वर्तिपुवल्लिया लेश्या।

षट्कादिगळुशुक्ललेश्यपर्य्यंतंगळेकैकहीनंगळागि नडेवदें तें दोडे धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्त प्रथमस्थानमादियागि षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यकृष्णलेश्ययुं मध्यमनीलकपोततेजःपद्मशुक्लपंचकमुमंतारुं लेश्यंगळु वर्त्तिपुवल्लियु मा लेश्याषट्कलक्षणसद्भावदिंदमा चरमोदयस्थानदोळे कृष्णलेश्याव्युच्छित्तियक्कुमेकें दोडे तदनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाभावदिंद मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोत्रमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यनीललेश्ययुं मध्यमकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याचतुष्टयमुमंतु लेश्यापंचकंगळु वर्त्तिसुवल्लि तल्लेश्यापंचक लक्षणसद्भावदत्तणिंदं। तत्र तच्चरमोदय स्थानदोळे नीललेश्याव्युच्छित्तियक्कुं। तदनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाभावदिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यकपोतलेश्ययुं मध्यम तेजः पद्मशुक्ललेश्यात्रयमुमंतु नाल्कुलेश्यंगळु वर्त्तिपुवल्लि तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावदत्तणिंदमल्लिये चरमस्थानदोळे कपोतलेश्याव्युच्छित्तियक्कु मल्लिदत्तलनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाभावदिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळमुत्कृष्टतेजोलेश्ययुं मध्यमपद्मशुक्ललेश्याद्वयमुमिंतु लेश्यात्रयंगळु वर्त्तिपुवल्लियुं

अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते । ततः उपरि धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने यथाक्रमं लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यन्ताः एकैकहीना भूत्वा गच्छन्ति । तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमनीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात् । तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यनीललेश्या मध्यमाः कपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते । तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात् । तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात् । तत्रैव

वहाँ इन्हीं पाँच लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्ण, नील, कापोत, पीत और पद्म लेश्या तथा जघन्य शुक्ल लेश्या होती है,क्योंकि वहाँ छहों लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। यहाँ ही अन्तिम स्थानमें अनुत्कृष्ट शक्तिका विच्छेद हो जाता है। इससे ऊपर धूलिरेखाके समान क्रोधके अजघन्य शक्ति स्थानमें क्रमसे छह लेश्याओंको आदि लेकर एक-एक हीन होते हुए शुक्ल लेश्या पर्यन्त होती हैं; जो इस प्रकार जानना। धूलिरेखाके समान क्रोधके अजघन्य शक्तिवाले प्रथम स्थानसे लेकर षट्स्थान पतित संक्लेशहानि स्थानोंको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य कृष्णलेश्या, मध्यम नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है, क्योंकि वहाँ इन छह लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसके अन्तिम उदय स्थानमें कृष्ण लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है,क्योंकि उसके अनन्तर उदयस्थानमें कृष्णलेश्याका लक्षण नहीं पाया जाता। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य नील लेश्या और मध्यम कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं पाँच लेश्याओं-

१. म वर्तिपुवल्लि ।

तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावादिदमा चरमोदयस्थानदोळे उत्कृष्टतेजोलेश्याव्युच्छित्तियक्कुमनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाभावदत्तणिदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तासंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळमुत्कृष्टपद्मलेश्येयुं मध्यमशुक्ललेश्येयुमें बी लेश्याद्वयमे वर्तिपुवल्लि तल्लेश्याद्वयलक्षणसद्भावदत्तणिदमल्लिये चरमोदयस्थानदोळेयुत्कृष्टपद्मलेश्याव्युच्छित्तियक्कु-
५ मनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाऽभावदत्तणिदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्ताऽसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमशुक्ललेश्येये वर्त्तिसुगुमल्लि तल्लेश्यालक्षण सद्भावदिदमल्लिये चरमोदयस्थानदोळेयऽजघन्यशक्तिव्युच्छित्तियक्कु मल्लिदत्तलु जलरेखासमान क्रोधजघन्यशक्तिस्थानदोळु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिविशिष्टासंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमशुक्ललेश्येयो दे वर्त्तिसुगुमा चरमोदयस्थानदोळेयुत्कृष्टशुक्ललेश्येयक्कुमितु चतुःशक्ति-

---

१० चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु उत्कृष्टा तेजोलेश्या मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टतेजोलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषूत्कृष्टपद्मलेश्या [1]मध्यमशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तद्द्वयलेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमो-
१५ दयस्थाने उत्कृष्टपद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्र तल्लेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने अजघन्यशक्तिर्व्युच्छिद्यते। तत उपरि जलरेखासमानक्रोधजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिविशिष्टेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव

के लक्षण पाये जाते हैं। वहींपर उसके अन्तिम उदय स्थानमें नीललेश्याकी व्युच्छित्ति हो
२० जाती है क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेश हानिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य कापोत लेश्या और मध्यम पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या होती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं चार लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसके अन्तिम उदय स्थानमें कपोत लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर
२५ षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें उत्कृष्ट पीतलेश्या और मध्यम पद्म और शुक्ल लेश्या रहती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं तीन लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहींपर उसीके अन्तिम उदय स्थानमें उत्कृष्ट पीत लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है, क्योंकि उससे आगेके उदय स्थानमें उस लेश्याका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय
३० स्थानोंमें उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या होती है। वहाँ इन्हीं दोनों लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसीके अन्तिम उदयस्थानमें उत्कृष्ट पद्मलेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है, क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक मात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम शुक्ललेश्या ही रहती है वहाँ उसीका लक्षण पाया जाता है। वहीं उसीके अन्तिम उदयस्थान-
३५ में अजघन्य शक्तिकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उससे ऊपर जलरेखाके समान क्रोधके जघन्य

---

१. जघन्यशुक्ल° मु.।

क्रोधक्के लेश्याश्रयणदिंदं चतुर्दशस्थानंगळप्पेळ्दपट्टुवी क्रमदिंदं मानादिगळगं चतुर्दशलेश्याश्रित-स्थानंगळु नडसल्पडुवुवु ।

सेलगकिण्हे सुण्णं णिरयं च य भूगएगविट्ठाणे ।
णिरयं इगिविति आऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥२९३॥

शिलागतकृष्णे शून्यं नरकं च च भूगतैकद्वित्रिस्थाने । नरकं एकद्वित्र्यायूंषि त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥

शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानंगळोळसंख्यातलोकमात्रंगळोळावुववरोळमायुष्यमुं कट्टल्पडददु कारणदिंदं शून्यं बरेयल्पट्टुदेकेंदोडे तीव्रतमसंक्लेशस्थानंगळोळु आयुर्बंधाभावमप्पुदरिदं । मत्तमल्लिये मुंदण केलवु हीनसंक्लेशस्थानंगळोळु नरकायुष्यमोंदे कट्टल्पडुवुदेंदितोंदे अंकं बरेयल्पट्टुदु । अदं नोडलनं तगुणहीनसंक्लेशस्थानंगळनुळ्ळभूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानंगळोळं कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानंगळोळं नरकायुष्यमोंदे कट्टल्पडुगुमेंदिता येरडुस्थानदोळोंदोंदेयंकंगळु बरेयल्पट्टुवु ।

वर्तते तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्यैव स्यात् । एवं चतुःशक्तियुक्तानि क्रोधस्य लेश्याश्रयेण चतुर्दशस्थानान्युक्तानि । अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि नेतव्यानि ॥२९२॥

शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु केषुचित् किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं तीव्रतमसंक्लेशस्थानेषु आयुर्बन्धाभावात् । पुनस्तत्रैव अग्रतनेषु केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकाङ्को लिखितः । ततोऽनन्तगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इति तत्स्थानद्वये एकैकाङ्को लिखितः । पुनः तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रय-स्थानेषु केषुचिन्नरकायुरेकमेव बध्यते, अग्रे तत्रैव केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यगायुर्द्वयमेव बध्यते । तत्रैव अग्रे

शक्तिसे युक्त तथा षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धिसे विशिष्ट असंख्यात लोक मात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम शुक्ललेश्या ही रहती है । उसीके अन्तिम उदय स्थानमें उत्कृष्ट शुक्ललेश्या ही होती है । इस प्रकार क्रोधके लेश्याके आश्रयसे चार प्रकारकी शक्तिसे युक्त चौदह स्थान कहे । इसी क्रमसे मान आदिके भी लेश्याकी अपेक्षा चौदह स्थान जानना ॥२९२॥

शिलाभेदगत कृष्णलेश्यावाले असंख्यात लोक मात्र स्थानोंमें-से किन्हींमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता । इसलिए शून्य लिखा है । क्योंकि तीव्रतम संक्लेश स्थानोंमें आयुबन्धका अभाव है । पुनः वहीं आगेके कुछ हीन संक्लेशवाले स्थानोंमें एक नरकायु ही बँधती है, इसलिए एकका अंक लिखा है । उससे अनन्तगुणे हीन संक्लेशवाले पृथ्वीभेदगत कृष्णलेश्यावाले और कृष्ण नील लेश्यावाले स्थानोंमें एक नरकायुका ही बन्ध होता है, इसलिए इन दोनों स्थानोंपर एक-एक अंक लिखा है । पुनः पृथ्वीभेदगत कृष्ण, नील और कापोत तीन लेश्यावाले स्थानोंमें-से कुछमें एक नरकायुका ही बन्ध होता है, आगे उसीके कुछ स्थानोंमें नरक और तिर्यंच दो आयुका ही बन्ध होता है । उससे आगेके कुछ स्थानोंमें

---

१. म °तगुणसंक्लेश । २-३. ब इत्येको ।

मत्तमा भूभेदगतकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळु केलवरोळु नरकायुष्यमो दे कट्टल्पडुगुं। मुंदेयुमल्लिये केलवु स्थानंगळोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमे कट्टल्पडुगुमल्लिये मुंदे केलवु स्थानंगळोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुस्त्रयं कट्टल्पडुगुमेंदिंता भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानंगळोळेकद्वित्र्यंकंगळु बरेयल्पट्टुवु। मत्तमा भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळोळं पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानंगळोळं शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानंगळोळमुं नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यमेंबी नाल्कायुष्यंगळुं कट्टल्पडुववेंदितु शेषस्थानत्रयदोळं प्रत्येकं नाल्कुं नाल्कुमंकंगळु बरेयल्पट्टुवु।

धूलिगछक्कट्ठाणे चउराऊ तिगदुगं च उवरिल्लं।
पण चदुठाणे देवं देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥२९४॥

धूलिगतषट्कस्थाने चतुरायूंषि त्रिकद्विकं चोपरितनपंचचतुःस्थानयोर्द्वंवं दैवं शून्यं च त्रिस्थाने ॥

धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तंगळप्प लेश्याषट्कस्थानंगळोळु केलवरोळु भूभेदगतषट्कस्थानंगळ चरमस्थानशक्तियं नोडलनंतगुणहीनसंक्लेशंगळनुळ्ळवरोळु नाल्कायुष्यंगळु कट्टल्पडुववल्लिये नरकायुर्व्युच्छित्तियक्कुमल्लिये मुंदे केलवु स्थानंगळोळु नरकायुर्व्वर्ज्जितशेषायुस्त्रयं कट्टल्पडुवुवल्लिये तिर्य्यगायुर्व्युच्छित्तियक्कुमल्लिये मुंदे लेश्याषट्कस्थानंगळोळकेलवु स्थानंगळोळु शेषमनुष्यदेवायुर्द्वयमे कट्टल्पडुगुमल्लिये मनुष्यायुर्व्युच्छित्तियक्कुमेंदितु चतुस्त्रिद्व्यंकंगळु बरेयल्पट्टुवु मत्तमा कृष्णलेश्यारहितलेश्यापंचकस्थानंगळोळं कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानंगळोळमुं देवा-

---

केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते। इति तद्भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानेषु एकद्वित्र्यङ्का लिखिताः। पुनस्तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापञ्चकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्यापट्कस्थानेषु च नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यन्ते। इति शेषस्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं चतुरङ्को लिखितः ॥२९३॥

धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् भूभेदगतलेश्याषट्कस्थानचरमस्थानशक्ततोऽनन्तगुणहीनसंक्लेशयुक्तेषु चत्वार्यायूंषि बध्यन्ते। तत्रैव नरकायुर्व्युच्छिद्यते। तत्रैव अग्रे केषुचित्स्थानेषु नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयं बध्यते। तत्रैव तिर्यगायुर्व्युच्छिद्यते। तत्रैव अग्रे लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् शेषमनुष्यदेवायुषी बध्येते। तत्रैव मनुष्यायुर्व्युच्छिद्यते इति चतुस्त्रिद्व्यङ्का लिखिताः। पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्या-

---

नरक, तिर्यंच, मनुष्य तीन आयु बँधती है। इसलिए पृथ्वीभेदगत तीन लेश्यावाले स्थानोंमें एक, दो और तीनका अंक लिखा है। पुनः उसी पृथ्वीभेदगत कृष्ण, नील, कापोत, पीत लेश्यावाले स्थानोंमें, पद्मलेश्या सहित पाँच लेश्यावाले स्थानोंमें तथा शुक्ललेश्या सहित छह लेश्यावाले स्थानोंमें नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव चारों भी आयु बँधती है, इसलिए शेष तीनों स्थानोंमें भी प्रत्येकमें चारका अंक लिखा है ॥२९३॥

धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त छह लेश्यावाले स्थान पृथ्वीभेदगत छह लेश्यावाले स्थानोंके अन्तिम स्थानसे अनन्त गुणे हीन संक्लेशवाले होते हैं। उनमें-से कुछ स्थानोंमें चारों आयु बँधती हैं। नरकायु वहीं तक बँधती है; अतः उससे आगेके उसीके कुछ स्थानोंमें नरकायुको छोड़कर शेष तीन आयु बँधती हैं। तिर्यंचायु यहीं तक बँधती है, अतः उसी छह लेश्यावाले स्थानमें आगेके कुछ स्थानोंमें मनुष्यायु-देवायु बँधती है। मनुष्यायु यहीं तक बँधती है। इसीसे इनमें चार, तीन, दोके अंक लिखे हैं। पुनः उसी धूलरेखाके समान शक्तिसे

युष्यमोंदे कट्टल्पडुगुमेंदितु बोंदोंदंकगळे बरेयल्पट्टुवु। मत्तमा कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहित-शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु केलवरोळु देवायुष्यमोंदे कट्टल्पडुवुदेंदितेकांकमे बरेयल्पट्टुदल्लिये देवायुर्ब्बंधच्छेदयक्कं मत्तमा शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु मुंदे केलवरोळु तीव्रविशुद्धियुक्तंगळोळमा-वायुष्यं कट्टल्पडदेंदितु शून्यं बरेयल्पट्टुदु। लेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धविशिष्टपरिणामक्कायुबंध-हेतुत्वासंभवमप्पुदरिंदं। ५

सुण्णं दुगइगिठाणे जलम्मि सुण्णं असंखभजिदकमा।
चउ चोद्दसवीसपदा असंखलोगा हु पत्तेक्कं ॥२९५॥

शून्यं द्विकैकस्थानयोर्जले खलु शून्यमसंख्यभाजितक्रमाणि। चतुश्चतुर्दशविंशतिपदानि असंख्यलोकानि खलु प्रत्येकं ॥

तत्र धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानंगळोळु तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वयस्थानंगळोळं १०
केवलशुक्ललेश्यायुक्तस्थानंगळोळमुमायुष्यमावुदुं कट्टल्पडदेंदितेरडेयोळं शून्यंगळु बरेयल्पट्टुवु।

अदं नोडलनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशशक्तिविशिष्टशुक्ललेश्यास्थानंगळोळमा-वायुष्यमं कट्टल्पडदेंदितु शून्यं बरेयल्पट्टुदु। तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानंगळोळ-तिशयदिंदमायुर्ब्बंधहेतुत्वाभावदत्तणिदं। इंतु पेळल्पट्ट कषायंगळ नाल्कुं शक्तिस्थानंगळुं चतुर्द्दश-लेश्यास्थानंगळुं विंशत्यायुर्ब्बंधाबंधगतस्थानंगळुमेल्लमुं असंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवुमंतादोडमुत्कृष्ट- १५

रहितलेश्यापञ्चकस्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते। इत्येकैकाङ्को लिखितः। पुनस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकाङ्को लिखितः। तत्रैव देवायुर्व्युच्छिद्यते। पुनस्तच्छुभलेश्यात्रयस्थानेषु अग्रे केषुचित्तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितम्। शुभलेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धिविशिष्टपरिणामस्य आयुर्बन्धहेतुत्वासंभवात् ॥२९४॥

तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानेषु केषुचित् तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्या- २०
युक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति स्थानद्वये शून्यं लिखितं। ततोऽनन्तगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशशक्ति-विशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेष्वपि किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं, तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्यो-त्कृष्टस्थानेषु अतिशयेन आयुर्बन्धहेतुत्वाभावात्। एवं कथितानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि चतुर्दश-

---

युक्त कृष्ण लेश्या रहित पाँच लेश्यावाले स्थानोंमें, और कृष्ण-नील लेश्या रहित चार लेश्या-वाले स्थानोंमें एक देवायु ही बँधती है। इसलिए एक-एकका अंक लिखा है। पुनः उसीके २५
कृष्ण, नील, कापोत लेश्यासे रहित तीन शुभलेश्यावाले स्थानोंमें-से कुछमें एक देवायु ही बँधती है, इसलिए एकका अंक लिखा है। देवायुका बन्ध यहीं तक होता है। पुनः उन तीन शुभ लेश्यावाले स्थानोंमें-से आगेके तीव्र विशुद्धियुक्त कुछ स्थानोंमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता, इसलिए शून्य लिखा है। क्योंकि तीन शुभलेश्या सम्बन्धी तीव्रतर विशुद्धि विशिष्ट परिणामवालेके आयुबन्धका कारण नहीं है ॥ २९४॥ ३०

धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त, तेजोलेश्याके बिना दो शुभ लेश्यावाले तथा केवल शुक्ललेश्यावाले कुछ स्थानोंमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता। इसलिए दोनों स्थानोंमें शून्य लिखा है। उससे अनन्तगुणी विशुद्धि वृद्धिसे युक्त तथा जलरेखाके समान शक्ति विशिष्ट शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट स्थानोंमें भी किसी आयुका बन्ध नहीं होता। इसलिए शून्य लिखा है। क्योंकि तीव्रतम विशुद्धि विशिष्ट शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट स्थान आयुबन्धके कारण नहीं होते। ३५

स्थानं मोदल्गों डु तज्जघन्यस्थानपर्य्यंतं असंख्यातगुणहीनं गळप्पुवें तें दोडे सर्व्वकषायोदयस्थानं प्रमाणमनिदं ≡ ० तद्योग्यासंख्यातलोकदिदं खंडिसि तद्बहुभागमात्रंगळु शिलाभेदसमानोत्कृष्ट-शक्तियुक्तोदयस्थानंगळप्पुवें दु बगेदु ≡ ० ८ मत्तमा शेषैकभागमनसंख्यातलोकभागहारदिदं
९

भागिसि तद्बहुभागमात्रंगळु भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानंगळें दु बगेदु ≡ ० ८ मत्तमा
९ ९

शेषैकभागमनसंख्यातलोकदिदं भागिसि तद्बहुभागमात्रंगळु धूलीरेखासमानशक्तियुक्तोदयाऽजघन्य-स्थानंगळें दु बगेदु ≡ ० ८ मत्तमा शेषैकभागमात्रस्थानंगळु जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदय-
९ ९ ९

स्थानंगळें दु बरेयल्पट्टुवु ≡ ०।१। इल्लि भागहारभूताऽसंख्यातलोकक्के नवांकं संदृष्टियक्कुं
९ ९ ९

९। मत्तमंते चतुर्दशपदंगळोळु प्रथमकृष्णलेश्यापददोळु एनितु शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानंग-ळनिते तच्छक्तिगतकृष्णलेश्यासर्व्वोत्कृष्टस्थानं मोदलागि तद्योग्यमध्यमस्थानपर्य्यंतंगळसंख्यात-लोकमात्रषट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानंगळप्पुवु ≡ ० ८ वर्वं नोडलु भूभेदसमान
९

लेश्यास्थानानि विंशतिरायुर्बन्धाबन्धगतस्थानानि च सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति तथापि उत्कृष्ट-स्थानमादिं कृत्वा तज्जघन्यस्थानपर्यन्तमसंख्यातगुणहीनानि भवन्ति। तद्यथा सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमेतावत् ≡ ०। तद्योग्यासंख्यातलोकेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्ति इति लिखित्वा ≡ ०।८ पुनस्तच्छेषैकभागोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः। तमपि तद्भागहारेण भक्त्वा
९

तद्बहुभागमात्राणि भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्तीति लिखित्वा— ≡ ०।८ पुनस्तच्छेषैक-
९।९

भागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्तीति लिखित्वा ≡ ०।८ पुनस्तच्छेषैकभागमात्रासंख्यातलोकस्थानानि जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थाना-
९।९।९

नीति लेखितव्यानि— ≡ ०।१। अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्याङ्कसंदृष्टिर्नवाङ्कः ९। पुनस्तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावन्ति शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावन्त्येव तच्छक्तिगतानि कृष्णलेश्यासर्वोत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यन्तानि असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेश-

---

इस प्रकार कहे कषायके चार शक्तिस्थान, चौदह लेश्यास्थान और बीस आयुबन्धाबन्ध स्थान, ये सभी असंख्यात लोकमात्र होते हैं। तथापि उत्कृष्ट स्थानसे लेकर उसीके जघन्य स्थान पर्यन्त असंख्यात गुणा हीन होते हैं। इसका स्पष्टीकरण—सब कषायोंके उदय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उनमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण शिला भेदके समान उत्कृष्ट शक्ति युक्त उदय स्थान हैं। जो एक भाग शेष रहा, वह भी असंख्यात लोक मात्र है। उसमें भी यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर उसके बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेदके समान अनुत्कृष्ट शक्तियुक्त उदय स्थान हैं। पुनः जो एक भाग शेष रहा उसमें असंख्यात लोकसे भाग देकर उसके बहुभाग प्रमाण धूलिरेखाके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त उदयस्थान हैं। अवशेष एक भाग प्रमाण जलरेखाके समान जघन्य शक्ति-

शक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानंगळसंख्यातगुणहीनंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पु ≡ ९ । ९ । ९ । १ ८ । ८ । ८

वे ते दोडे भूभेदसमानशक्तियुक्तसर्व्वस्थानंगळोळ संख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळप्पुदरिंदं । तदेकभागबहुभागमात्रंगळल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ९ । ९ । ९ । २ ८ । ८ वर्व नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळु तदेकभागबहुभाग मात्रंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ९ । ९ । ९ । ३ ८ । ८ मत्तं तदेकभाग बहुभागमात्रंगळु कृष्णनील- ५

कपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ९ । ९ । ९ । ४ ८ । ८ मत्तं तदेकभागाऽ- संख्यातलोकबहुभागंगळल्लिये कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु

हानियुक्तस्थानानि भवन्ति । ≡ ९ । ८ एभ्यः भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानानि असंख्यातगुण-

हीनानि असंख्यातलोकमात्राणि– ≡ ९ । ९ । ९ । १ ८ । ८ । ८ कुतः ? भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलसर्वस्थानेषु असंख्यात-

लोकभक्तबहुभागमात्रत्वात् । तदेकभागमात्रेष्वेव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यात- १०

लोकमात्राणि– ≡ ९ । ९ । ९ । २ ८ । ८ । ८–तेभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि

असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि– ≡ ९ । ९ । ९ । ३ ८ । ८ । ८–पुनस्तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णनील-

कपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि– ≡ ९ । ९ । ९ । ४ ८ । ८ । ८–पुनस्तदेक-

भागासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापञ्चकस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यात-

---

युक्त उदय स्थान है। ये सभी असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं। यह १५
चार शक्ति स्थान सम्बन्धी उदय स्थानोंका प्रमाण जानना। अब चौदह लेश्या स्थान सम्बन्धी उदयस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—प्रथम कृष्णलेश्या स्थानमें जितने शिलाभेद समान उत्कृष्ट शक्तिको लिये उदयस्थान हैं, वे सब उत्कृष्ट शक्तिको प्राप्त कृष्णलेश्याके सर्वोत्कृष्ट स्थानसे लेकर यथायोग्य कृष्णलेश्याके मध्यम स्थान पर्यन्त षट्स्थानपतित संक्लेशहानियुक्त होते हैं। ये असंख्यात लोक मात्र स्थान उत्कृष्ट शक्तिके स्थान जानना। इनसे २०
असंख्यातगुणे हीन पृथ्वी भेद समान शक्तिसे युक्त केवल कृष्णलेश्याके स्थान असंख्यात-लोक प्रमाण हैं। क्योंकि पृथ्वी भेद समान शक्ति युक्त सब स्थानोंमें असंख्यातलोकका भाग देकर उसके बहुभाग मात्र वे स्थान हैं। उस शेष बचे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो बहुभाग हो, उतने उनसे असंख्यातगुणे हीन कृष्ण और नील लेश्याके स्थान वहाँ ही हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नील-कापोत २५
तीन लेश्याके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं, वे उस शेष बचे एक भागके योग्य असंख्यात लोकका भाग देकर उसके बहुभाग हैं। पुनः उस शेष बचे एक भागके बहुभागमात्र कृष्ण, नील, कापोत, पीत इन चार लेश्याओंके स्थान उनसे असंख्यातगुणे हीन शक्तिवाले तथा असंख्यात

≡ a।८।८। मत्तं तदेकभागा संख्यातलोकभक्तैकभागमात्रंगळु कृष्णनीलकपोततेजःपद्म-
९।९।९।५
शुक्ललेश्याषट्कस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a ८।१ वेकें दोडे बहुभागमप्पड-
९।९।९।५
संख्यातलोकगुणकाररहितत्वदिंदमसंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमप्पुदरिंदं।

मत्तमवं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळुं धूलीरेखासमानशक्तियुक्तसर्व्वस्थानंगळोळु तद्योग्या-
संख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु लेश्याषट्कस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८।
९।९।९।९।१

मत्तमल्लिये तदेकभागबहुभागमात्रंगळु कृष्णलेश्यारहितशेषलेश्यापंचकस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रं-
गळप्पुवु ≡ a।८।८ मत्तमल्लिये तदेकभागासंख्यातलोकबहुभागमात्रंगळु कृष्णनील-
९।९।९।९।२
लेश्याद्वयरहितशेषलेश्याचतुष्टयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८ मल्लिये
९।९।९।९।३
तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु शुभलेश्यात्रयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु

लोकमात्राणि— ≡ a।८।८ पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मशुक्ल-
९।९।९।५
लेश्याषट्कस्थानान्यसंख्यातलोकहीनानि ≡ a।८।१ कुतः बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहितत्वात्।
९।९।९।५
पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि धूलिरेखासमानशक्तियुक्तसर्वस्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षट्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि। ≡ a।८।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्ण-
९।९।९।९।१
लेश्यारहितशेषपञ्चलेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यात-
९।९।९।९।२
लोकभक्तबहुभागमात्राणि कृष्णनीलरहितशेषचतुर्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८।८
९।९।९।९।३
पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि शुभलेश्यात्रयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि

लोकमात्र हैं। पुनः उस शेष बचे एक भागमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभागमात्र कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म इन पाँच लेश्याओंके स्थान असंख्यातगुणे हीन तथा असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उस एक भाग प्रमाण जो असंख्यात लोक मात्र है, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल इन छह लेश्याके स्थान असंख्यात लोकहीन हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ बहुभाग रूप असंख्यात लोक गुणाकार नहीं है। इनसे असंख्यातगुणे हीन धूलिरेखाके समान शक्तियुक्त सब स्थानोंमें उनके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र छह लेश्याके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके अवशेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देकर बहुभाग प्रमाण कृष्णलेश्या रहित शेष पाँच लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके अवशेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग मात्र कृष्ण, नील लेश्यासे रहित चार लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके शेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र तीन शुभ

≡ अ । ८ । ८ मत्तमल्लिये तदेकभागाऽसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु तेजोलेश्यारहित-
९ । ९ । ९ । ९ । ४
शुभलेश्याद्वयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ अ । ८ । ८ मत्तमल्लिये तदेकभाग-
९ । ९ । ९ । ९ । ५
मात्रंगळु । केवलशुक्ललेश्यास्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळु पूर्व्वमं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु
≡ अ ८ । १ मेंतेंदोडे बहुभागमप्पऽसंख्यातलोकगुणकाररहितत्वादिंदमसंख्यातगुणहीनत्वं
९ । ९ । ९ । ९ । ५
सिद्धमप्पुदरिंदं । मत्तमवं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळु जलरेखासमानशक्तियुक्तंगळ्केवलशुक्ल- ५
लेश्यास्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ अ । १ मेकेंदोडे धूलीरेखासमानशक्तिसर्व्व-
९ । ९ । ९
स्थानंगळोळु केवलशुक्ललेश्यास्थानंगळोळु पोक्क भागहारंगळगे गुणकारभूतासंख्यातलोकबहु-
भागमं नोडलसंख्यातगुणहीनत्वदिंदं ।

मत्तमंतायुर्ब्बंधाऽबंधगतविंशतिपदंगळोळु प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्या-
स्थानंगळोळायुरबंधकस्थानंगळु कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानं मोदल्गोंडसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रा- १०

≡ अ । ८ । ८ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वय-
९ । ९ । ९ । ९ । ४
स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ अ । ८ । ८ पुनस्तत्रैव तदेकभागमात्राणि केवलशुक्ललेश्यास्थानानि
९ । ९ । ९ । ९ । ५
असंख्यातलोकमात्राण्यपि पूर्वस्मादसंख्यातगुणहीनानि ≡ अ । ८ । १ । कुतः ? बहुभागरूपासंख्यात-
९ । ९ । ९ । ९ । ५
लोकगुणकाररहितत्वात् । पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि जलरेखासमानशक्तियुक्तानि केवलशुक्ललेश्या-
स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ अ । १ । कुतः धूलिरेखासमानशक्तिसर्वस्थानेषु केवलशुक्ललेश्यास्थानेषु १५
९ । ९ । ९
प्रविष्टभागहाराणां गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागादसंख्यातगुणहीनत्वात् । पुनस्तथायुर्बन्धाबन्धगतविंशतिपदेषु
प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानेषु आयुरबन्धस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा

लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके शेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र तेजोलेश्या रहित दो शुभ लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः शेष रहे एक भाग मात्र केवल शुक्ल लेश्याके स्थान हैं। जो २०
असंख्यात लोक मात्र होनेपर भी पहलेसे असंख्यातगुणे हीन हैं। क्योंकि बहुभागरूप असंख्यात लोक गुणाकारसे रहित हैं। पुनः उनसे असंख्यातगुणे हीन भी जलरेखाके समान शक्तिसे युक्त केवल शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि धूलिरेखाके समान शक्तिवाले सब स्थानोंमें-से केवल शुक्ललेश्या सम्बन्धी स्थानोंमें प्रविष्ट भागहारोंके गुणाकार-भूत असंख्यात लोक बहुभागसे असंख्यातगुणाकार हीन हैं अर्थात् वहाँ गुणाकारभूत असंख्यात २५
लोकका बहुभाग हैं और यहाँ एक भाग है,इससे असंख्यातगुणा हीन कहा है।

अब आयु बन्धाबन्धगत बीस स्थानोंमें उदय स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

प्रथम शिलाभेद समान उत्कृष्ट शक्तिगत कृष्ण लेश्याके स्थानोंमें कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट स्थानसे लेकर असंख्यात लोक प्रमाण आयुके अबन्ध स्थान हैं। उनसे वहाँ

संख्यातलोकप्रमितस्थानंगळप्पुवं ≡ अ । ८ । ८ नोडलल्लिये नरकायुर्ब्बंधहेतुस्थानंगळ्-
९ । ९
संख्यातलोकमात्रस्थानंगळसंख्यातगुणहीगळप्पुवु ≡ अ । ८ । १ वेकें दोडे तदेकभागमात्रत्वदिदं ।
९ । ९
मत्तमदं नोडलु भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानंगळ् नरकायुर्ब्बंधकारणंगळसंख्यात-
लोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ अ । ८ । ८ ववं नोडलल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वय-
९ । ९ । ९ । १,
स्थानंगळु नरकायुर्ब्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ अ । ८ । ८
९ । ९ । ९ । २
ववं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळु केवलं नरकायुर्ब्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रं-
गळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ अ । ८ । ८ । ८ ववं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्या-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । १
त्रयस्थानंगळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयं बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु
≡ अ । ८ । ८ । ८ ववं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळु नरकतिर्य्यक्मनुष्यायु-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यप्यसंख्यातलोकप्रमितानि ≡ अ । ८ । ८ एम्यस्तत्रैव नरकायुर्बन्धहेतु-
९ । ९ ।
स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि अपि असंख्यातगुणहीनानि ≡ अ । ८ । १ कुतः ? तदेकभागमात्रत्वात् ।
९ । ९ ।
पुनस्तेभ्यो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि नरकायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि अपि
असंख्यातगुणहीनानि ≡ अ । ८ । ८ । एम्यस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नरकायुर्बन्धकारणानि
९ । ९ । ९ । १
असंख्यातलोकमात्राणि अपि असंख्यातगुणहीनानि । ≡ अ । ८ । ८ एम्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रय-
९ । ९ । ९ । २
स्थानानि केवलनरकायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ अ । ८ । ८ । ८
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । १
एम्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यगायुर्द्वयबन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यात-
गुणहीनानि ≡ अ । ८ । ८ । ८ । ८ एम्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्या-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

ही नरकायु बन्धके कारण स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन हैं, क्योंकि वे बहुभागमात्र हैं और ये एक भागमात्र हैं। उनसे पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्तिगत कृष्णलेश्याके स्थान नरकायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण-नील लेश्याके स्थान नरकायुबन्धके कारण हैं -- जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहीं कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान केवल नरकायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान नरकायु और तिर्यंचायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यात गुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायुके बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे

स्त्रयबंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ अ।८।८।१ ९।९।९।३।९।२ ववं नोड-
लल्लिये कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्ब्बंधकारणंगळसंख्यात-
लोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ अ।८।८ ९।९।९।४ ववं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोततेजः-
पद्मलेश्यापंचकस्थानंगळु चतुर्गत्यायुर्ब्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु
≡ अ।८।८ ९।९।९।५ ववं नोडलल्लिये लेश्याषट्कस्थानंगळु चतुरायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळ ५
संख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ अ।८।१ ९।९।९।५ वदें तें दोडे गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागरहितत्व-
दिदं। मत्तमवं नोडलु धूलीरेखासमानशक्तिगतसर्व्वस्थानंगळोळु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रं-
गळु लेश्याषट्कस्थानंगळु चतुरायुर्बंधकारणंगळ[1]संख्यातबहुभागंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु
≡ अ।८।८।८ ९।९।९।९।९।१ मत्तमल्लिये षड्लेश्यास्थानंगळु नरकायुर्व्वर्ज्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणंगळु

युस्त्रयबन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि- ≡ अ।८।८।१ ९।९।९।३।९।२ एभ्यस्तत्रैव १०
कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यात-
गुणहीनानि ≡ अ।८।८ ९।९।९।४ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापञ्चकस्थानानि चतुर्गत्यायुर्बन्ध-
कारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ अ।८।८ ९।९।९।५ एभ्यस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि
चतुरायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ अ।८।१ ९।९।९।५ कुतः ? गुणकारभूता-
संख्यातलोकबहुभागरहितत्वात्। पुनस्तेभ्यः धूलिरेखासमानशक्तिगतसर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभाग- १५
मात्राणि षड्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि
≡ अ।८।८।८ ९।९।९।९।९।१ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबन्धकारणानि तदेकभागा-

---

हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत, पीत लेश्याके स्थान नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवायुके बन्धके कारण हैं तथा पूर्व स्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोकमात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म लेश्याके स्थान चारों गतिकी २०
आयुबन्धके कारण हैं जो पूर्वस्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही छह लेश्याओंके स्थान चारों आयुके बन्धके कारण हैं जो पूर्व स्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि गुणाकारभूत असंख्यात लोक बहुभागसे रहित हैं अर्थात् वहाँ गुणाकार बहुभाग था यहाँ एक भाग है। इनसे असंख्यातगुणे हीन धूलिरेखाके समान शक्तिगत सब स्थानोंमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र छह लेश्या २५
सम्बन्धी स्थान चारों आयुके बन्धके कारण हैं और असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः वहाँ ही

---

१. म °लसंख्यातभागकारणंगलसंख्यात°।

तदेकभागासंख्यातबहुभागमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = ९।९।९।९।९।९।९।९।२

मत्तमल्लिये लेश्याषट्कस्थानंगळु मनुष्यदेवायुर्द्वयबंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळ् तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागंगळप्पुदरिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = ९।९।९।९।९।९।२

कृष्णलेश्यावर्ज्जितशेषलेश्यापंचकस्थानंगळु देवायुर्बंधकारणंगळुमसंख्यातगुणहीनंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = ९।९।९।९।९।२

मवं नोडलल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्टयस्थानंगळकेवलं देवायुर्बंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पु = ९।९।९।९।९।३

वर्व नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु देवायुर्बंधकारणस्थानंगळु यथायोग्याऽसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = ९।९।९।९।४।९

तदेकभागंगळल्लिये शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळायुर्बंधरहितस्थानंगळसंख्यात

संख्यातबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = ९।९।९।९।९।९।९।८ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि मनुष्यदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागत्वादसंख्यातलोकमात्राणि = ९।९।९।९।९।९।२ पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्यावर्जितशेषपञ्चलेश्यास्थानानि देवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = ९।९।९।९।९।२ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलरहितचतुर्लेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = ९।९।९।९।९।३ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशेषशुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बन्धकारणानि यथायोग्यासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि। = ९।९।९।९।९।४।९ तदेकभागगत

छह लेश्या सम्बन्धी स्थान नरकायुको छोड़ शेष तीन आयुके बन्धके कारण हैं। यह पूर्वमें शेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र है, अतः पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः वहाँ ही छह लेश्या सम्बन्धी स्थान मनुष्यायु और देवायुके बन्धके कारण हैं। यह उनसे असंख्यात गुणे हीन हैं, क्योंकि शेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भागमात्र है, तथापि असंख्यात लोक मात्र हैं। इनसे असंख्यात गुणे हीन वहाँ ही कृष्णलेश्याको छोड़ शेष पाँच लेश्या सम्बन्धी स्थान जो असंख्यात लोक मात्र हैं, देवायुके बन्धके कारण हैं। इनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नीलके सिवाय चार लेश्या सम्बन्धी स्थान केवल देवायुबन्धके कारण हैं जो असंख्यात लोक मात्र हैं। इनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नील, कपोत लेश्यासे रहित शेष तीन शुभ लेश्या स्थानोंमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र स्थान देवायुबन्धके कारण हैं जो असंख्यात लोक मात्र हैं। शेष एक भाग मात्र तीन शुभ लेश्याओंके स्थान

लोकमात्रंगळुमसंख्यातगुणहीनंगळमप्पुवु ≡ ९।९।९।९।८।१ मत्तमल्लिये पद्मशुक्ल-
लेश्याद्वयस्थानंगळायुरबंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ९।९।९।९।५
मदें तेंदोडे परगण शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळायुर्बंधरहितस्थानंगळोळु पोक्क भागहारक्कसंख्यात-
गुणहीनत्वमुंटप्पुदरिंदं असंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमक्कुं।

मत्तमवं नोडलल्लिये शुक्ललेश्यास्थानंगळोळायुरबंधकारणविशुद्धिपरिणामंगळसंख्यात- ५
लोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ ९।९।९।९।१ मेंतेंदोडे गुणकारभूतासंख्यातबहु-
भागरहितत्वदिंदं।

मत्तमवं नोडलु जलरेखसमानशक्तिगतलेश्यास्थानंगळायुर्ब्बंधशून्यंगळसंख्यातलोकमात्रंगळ-
संख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ ९।९।९ मदें तेंदोडे धूलीरेखासमानशक्तियुक्तस्थानंगळोळु केवलं
चरमशुक्ललेश्यास्थानंगळोळु पोक्क पंचवारासंख्यातलोकभागहारंगळं नोडलु तद्गुणकारभूता- १०
संख्यातबहुभागक्कसंख्यातगुणितत्वदिंदमसंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमक्कुं। चतुश्चतुर्दशविंशतिपद-
गळगे संदृष्टियिदु :—

शुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बन्धरहितानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ९।९।९।९।८।१।
पुनस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि आयुर्बन्धाकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि
≡ ९।९।९।९।८। कुतः प्राक्तनशुभलेश्यात्रयस्थानेषु आयुर्बन्धरहितस्थानेषु प्रविष्टभागहारस्य असंख्यात- १५
गुणहीनत्वात्। पुनस्तेभ्यस्तत्रैव शुक्ललेश्यास्थानेषु आयुर्बन्धाकारणविशुद्धिपरिणामस्थानानि असंख्यातलोक-
मात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ९।९।९।९।८।१ कथं ? इति चेत् गुणकारभूतासंख्यातबहुभागरहितत्वात्।
पुनस्तेभ्यो जलरेखासमानशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि आयुर्बन्धशून्यानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुण-
हीनानि ≡ ९।९।९।१। कथं ? धूलिरेखासमानशक्तियुक्तस्थानेषु केवलचरमशुक्ललेश्यास्थाने प्रविष्टपञ्चवारा-
संख्यातलोकभागहारेभ्यः तद्गुणकारभूतासंख्यातबहुभागस्य असंख्यातगुणितत्वात्। एवं चत्वारि पदानि, २०
चतुर्दशपदानि, विंशतिः पदानि च प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमाणि ज्ञातव्यानि ॥२९५॥ अथ श्रीमाधवचन्द्र-

---

आयुबन्धसे रहित हैं, वे असंख्यातगुणे हीन किन्तु असंख्यात लोकमात्र हैं। पुनः वहाँ ही पद्म और शुक्ल लेश्याके स्थान आयुबन्धके कारण नहीं हैं। वे पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि पहलेके तीन शुभ लेश्याओंके आयुबन्ध रहित स्थानोंमें प्रविष्ट भागहार असंख्यात गुणा हीन है। पुनः उनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही शुक्ल- २५
लेश्याके स्थानोंमें आयुबन्धके अकारण विशुद्धि परिणाम स्थान असंख्यात लोकमात्र हैं जो पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन हैं। क्योंकि गुणकार असंख्यात बहुभागसे रहित है। पुनः उनसे जलरेखाके समान शक्तिगत शुक्ललेश्या स्थान जो आयुबन्धसे रहित हैं, असंख्यातगुणे हीन हैं, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण है। क्योंकि धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त स्थानोंमें केवल अन्तिम शुक्ललेश्याके स्थानमें प्रविष्ट पाँच बार असंख्यात लोक भागहारोंसे उसके गुणकार- ३०

तीव्रतरशिलाभेद≡a ८ नरक ९		तीव्र	भूभेद ≡ a ८ तिरिक ९ ९			≡a	सर्व्व धनमेतत्		
कृष्ण १		कृष्ण १	कृष्ण नी २	कृष्ण नील कपोत ३			कृष्णादि ४	कृष्णादि ५	कृष्णादि ६
≡a । ८ ९		≡a।८।८ ९९।९।१	≡a।८।८ ९।९।९।२	≡a । ८ । ८ । ९।९ । ९ । ३			≡a।८।८। ९।९।९।४।	≡a।८।८ ९।९।९।५	≡a।८।१।
०	१	१	१	१	२	३	४	४	४
≡a।८।८ ९।९	≡a।८।१ ९।९	≡a।८।८ ९।९।९।१	≡a।८।८ ९।९।९।२	≡a।८।८।८ ९९।९।३।९	≡a।८।८।८ ९९९।३९	≡a।८८१ ९९९।३९२	≡a।८।८ ९।९।९।४।	≡a।८।८ ९।९।९।५	≡a।८।१ ९।९।६।५

मन्द	धूली रेखा ≡ a ८ मनुष्य ९ ९ ९						मन्दतर जलरेखा ≡a १। देवचतुः पदङ्गळु एकपदगळ ९ । ९ । ९ ।			
कृष्णादि ६			नीलादि ५	कपोतादि ४	३ तेजादि		पद्मादि २	शुक्ल १	शुक्ल १	चतुर्द्दश पदङ्गळु
≡ a।८।८ ९।९।९।९।१			≡a।८।८। ९।९।९।९।२	≡a।८।८। ९।९।९।९।	≡a।८।८। ९।९।९।९।४		≡a।८।१। ९९९।९।५	≡a।८।१ ९९९।९।५	≡a।१ ९९९	विंशति पदङ्गळु
४	३	२	१	१	१	०	०	०	०	विंशति पदङ्गळु
≡a।८।८।८ ९।९।९।९।९।१।	≡a।८।८।८ ९।९।९।९।९।२	≡a।८।८।१ ९।९।९।९।२	≡a।८।८ ९९९।९ २	≡a।८।८ ९९९।९।३	≡a।८।८।८ ९९९।९।४	≡a।८।१ ९९९।९।५	≡a।८।१ ९९९।९।५	≡a।८।१। ९९९।९।५	≡a।१ ९९९।	

इंतु चतुःपदंगळुं । चतुर्द्दशपदंगळुं । विंशतिपदंगळु । प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमंगळप्पुवे दरियल्पडुवुवु ।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळु कषायमार्गणेयोळु संख्येयं पेळ्दपरु :—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो ।
लोहादि संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥२९६॥

पृथक् पृथक् कषायकालो नरकेतर्म्मुहूर्तपरिमाणः । लोभादयस्संख्यगुणा देवेषु च क्रोध- ५
प्रभृतितः ॥

नरकगतियोळु नारकर्गे लोभादिकषायोदयकालंगळु पृथक् पृथक् बेरे बेरे प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त-परिमाणमक्कुमंतादोडमुत्तरोत्तरमायादिकषायंगळु क्रोधपर्य्यंतं संख्यातगुणक्रमंगळप्पुवल्लि सर्व्वतः स्तोकांतर्म्मुहूर्तमात्रं २१।१। लोभकषायोदयकालमक्कु—। मदं नोडलु संख्यातगुणं माया-कषायोदयकालमक्कुं। २१।४। अदं नोडलु संख्यातगुणं मानकषायोदयकालमक्कु—। २१।१६। १०
मदं नोडलु क्रोधकषायोदयकालं संख्यातगुणमक्कुं। २१।६४। देवगतियोळु देवर्कळगे क्रोधादि-कषायोदयकालंगळु पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्तमात्रंगळप्पुवादोडमुत्तरोत्तरमानादि लोभपर्य्यंतं संख्यातगुणक्रमंगळप्पुवदंतेदोडे अल्लि सर्व्वतः स्तोकं क्रोधकषायोदयकालमंतर्म्मुहूर्तकालमक्कु—। २१।१। मदं नोडलु मानकषायोदयकालं संख्यातगुणमक्कु—। २१।४। मदं नोडलु माया-कषायोदयकालं संख्यातगुणितमक्कु—। २१।१६। मदं नोडलु लोभकषायोदयकालं संख्यातगुण- १५
मक्कुं। २१।६४।

त्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेण कथयन्ति—

नरकगतौ नारकाणां लोभादिकषायाणां उदयकालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तपरिमाणो भवति । तथापि पूर्वपूर्वकषायोदयकालादुत्तरोत्तरकषायोदयकालः संख्यातगुणो ज्ञातव्यः । तद्यथा—तत्र लोभकषायोदय-कालः सर्वतः स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रः २१ । ततो मायाकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ ४ । ततो मानकषायोदय-कालः संख्यातगुणः २१।१६ । ततः क्रोधकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ ६४ । देवगतौ देवानां क्रोधादि- २०
कषायोदयकालाः पृथक् पृथक् प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्राः तथापि उत्तरोत्तरमानादिलोभपर्यन्तं संख्यातगुणक्रमा भवन्ति । तद्यथा—तत्र क्रोधकषायोदयकालः अन्तर्मुहूर्तः सर्वतः स्तोकः २१।१। ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१।४। ततो मायाकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१।१६। ततो लोभकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१।६४ ॥२९६॥

भूत असंख्यात बहुभाग असंख्यात गुणित हैं। इस प्रकार, चार, चौदह और बीस स्थानोंमें-से २५
प्रत्येक स्थान क्रमसे असंख्यातगुणा हीन जानना ॥२९५॥

अब श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव कषायमार्गणामें जीवसंख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

नरकगतिमें नारकियोंके लोभादि कषायका उदयकाल पृथक्-पृथक् प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। फिर भी पूर्व-पूर्व कषायके उदय कालसे उत्तरोत्तर कषायका उदयकाल ३०
संख्यातगुणा जानना। जो इस प्रकार है—नरकगति लोभकषायका उदयकाल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उससे माया कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। उससे मान कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। उससे क्रोध कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। अर्थात् यदि लोभका उदय काल एक है, तो मायाका चार, मानका सोलह और क्रोधका उदय काल चौसठ जानना। तथा देवगतिमें देवोंके क्रोधादि कषायका उदयकाल पृथक्-पृथक् प्रत्येकका ३५
अन्तर्मुहूर्त मात्र है, तथापि उत्तरोत्तर मानसे लेकर लोभ पर्यन्त क्रमसे संख्यातगुणा है।

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणो वि संगुणिदे ।
सगसगगुणकारेहि य सगसगरासीण परिमाणं ॥२९७॥

सर्व्वसमासेनापहृतस्वस्वराशिः पुनरपि संगुणिते । स्वस्वगुणकारैश्च स्वस्वराशीनां परिमाणं ॥

पुनः मत्तं नारकदेवगतिगळ सर्व्वकषायोदयकालंगळ समासदिंदं संयोगदिंदं युतियिंदं भागिसि स्वस्वगतिसंभविजीवराशियं स्वस्वकषायोदयकालगुणकारंगळिंदं गुणिसुत्तिरलु स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशिगळ परिमाणमक्कुमपि च शब्दंगळु गतिद्वयसमुच्चयार्थंगळु । नरकगतियोळं देवगतियोळमिते कर्तव्यमेंदितु इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमिनितु कालक्किनितु जीवंगळु पडेयल्पडुत्तिरलागळिनितु कालक्किनितु जीवंगळ्पडेयल्पडुवमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र का = २१।८५ फ-२' इ। २१।६४ अपवर्तिततलब्धप्रमितंगळु नरकगतिय क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवंगळ प्रमाणमक्कु-। —२।६४ मिते मानादिकषायोदयकालंगळनिच्छाराशिगळं
८५
माडि त्रैराशिकविधानदिंदं बंद लब्धप्रमाणमानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवंगळ प्रमाणमक्कुं । नारकमानकषायिगळु —२।१६ नारकमायाकषायिगळु —२।४ नारकलोभकषायिगळु
८५ ८५

पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायोदयकालानां समासेन युत्या भक्ते स्वस्वगतिसंभविजीवराशौ स्वस्वकषायोदयकालगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशीनां परिमाणं भवति । अपि च-शब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ देवगतौ चैवं कर्तव्यमिति । तत्र एतावता कालेन यद्येतावन्तो जीवा लभ्यन्ते तदैतावता कालेन कियन्तो जीवा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र २१।८५। फ-२। इ २१ ६४ अपवर्तिततलब्धप्रमिते नरकगतौ क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवराशिप्रमाणं भवति ।—। २। ६४। एवं
८५
मानादिकषायोदयकालान् इच्छाराशीन् कृत्वा त्रैराशिकविधानेन लब्धप्रमाणं मानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवराशिप्रमाणं भवति । नारकमानकषायिणः-२।१६ नारकमायाकषायिणः-२।४ नारकलोभ-
८५ ८५

यथा—देवोंमें क्रोध कषायका उदयकाल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् एक है। उससे मान कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है यथा ४। उससे माया कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है यथा १६। उससे लोभ कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है, यथा ६४ ॥२९६॥

नरकगति और देवगतिमें सब कषायोंके उदयकालोंको जोड़कर उससे अपनी-अपनी गतिमें सम्भवित जीवराशिमें भाग देनेपर तथा जो लब्ध आवे उससे अपने-अपने कषायके उदयकालरूप गुणकारसे गुणा करनेपर अपने-अपने कषायके उदयसे विशिष्ट जीव राशिका परिमाण होता है। गाथामें आये 'अपि' और 'च' शब्द दो गतियोंके समुच्चयके लिए है। अर्थात् नरकगति और देवगतिमें ऐसा करना चाहिए। अतः वहाँ यदि इतने कालमें इतने जीव प्राप्त होते हैं तब इतने कालमें कितने जीव प्राप्त हुए इस प्रकार त्रैराशिक करना चाहिए। प्रमाण राशि सब कषायोंका काल, फलराशि समस्त नारकियोंकी संख्या, इच्छाराशि अमुक कषायका काल। जैसे नरक गतिमें लोभका काल १, मायाका ४, मानका १६ और क्रोधका ६४ है सबका जोड़ पिचासी ८५ हुआ। नारकी जीवोंका प्रमाण कल्पना किया १७००। उसमें पचासीसे भाग देनेपर लब्ध बीस आया। उसको एकसे गुणा करनेपर बीस लोभ कषायवालोंकी संख्या आयी। चारसे गुणा करनेपर अस्सी आये सो माया कषाय-

—२।१ मत्तमंते देवगतियोळु लोभकषायिगळु संदृष्टि $\frac{१।६४}{८५}$ देवमायाकषायिगळु $\frac{१।६४}{४।६५=१।८५}$

$=\frac{१।१६}{४।६५=१।८५}$ देवमानकषायिगळु $=\frac{१।४}{४।६५=१।८५}$ देवक्रोधकषायिगळु $=\frac{१।१}{४।६५=१।८५}$

णरतिरिय लोहमाया कोहो माणो विइंदियादिव्व ।
आवलि असंखभज्जा सगकालं वा समासेज्ज ॥२९८॥

नरतिर्यग्लोभमायाक्रोधमानाः द्वीन्द्रियादिवत् । आवल्यसंख्या भाज्याः स्वकालं वा समाश्रित्य ॥

मनुष्यतिर्य्यग्गतिगळोळु लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्येगळु द्वींद्रिय त्रींद्रिय-चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारदिंदं तरल्पडुववल्लि मनुष्यगतियोळु मनुष्यजीवराशियं संस्थापिसि बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानदिंदं । मत्तं तिर्य्यग्गतियोळं अकषाय-

---

कषायिणः — , २ , १ तथा देवगतौ लोभकषायिणः $=\frac{१,६४}{८५}$ देवमायाकषायिणः $\frac{१,६४}{४,६५=१,८५}$

$=\frac{१,१६}{४,६५=१,८५}$ देवमानकषायिणः $=\frac{१,४}{४,६५=१,८५}$ देवक्रोधकषायिणः $=\frac{१,१}{४,६५=१,८५}$ ॥२९७॥

मनुष्यतिर्यग्गत्योर्लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियजीव-संख्यानयनप्रकारेणानेतव्या । तत्र मनुष्यगतौ अकषायसंख्योनमनुष्यजीवराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो

वालोंका परिमाण हुआ । सोलहसे गुणा करनेपर ३२० हुए सो मानवालोंका परिमाण हुआ । चौंसठसे गुणा करनेपर बारह सौ अस्सी हुए । यह क्रोधवालोंका परिमाण हुआ । इसी तरह देवगतिमें भी जानना । यदि देवगतिकी भी संख्या १७०० ही मान लें तो लब्ध बीसको एकसे गुणा करनेपर २० क्रोध कषायवालोंका, ४ से गुणा करनेपर ८० मान कषायी देवोंका, सोलहसे गुणा करनेपर तीन सौ बीस मायाकषायी देवोंका और चौंसठसे गुणा करनेपर बारह सौ अस्सी लोभकषायी देवोंका परिमाण होता है ॥२९७॥

मनुष्यगति और तिर्यंचगतिमें लोभ, माया, क्रोध और मान कषायरूप परिणत जीवों-की संख्या जैसे पहले इन्द्रिय मार्गणामें दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों-की संख्या निकाली थी उसी प्रकार लाना चाहिए । सो मनुष्यगतिमें मनुष्योंके परिमाणमें-से कषायरहित मनुष्योंके परिमाणको कम करके जो शेष बचे उतनी संख्या स्थापित करने उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखना चाहिए और शेष बहुभागके चार भाग करके चारों कषायवालोंमें समान देना चाहिए । फिर अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग लोभ कषायवालोंको दिये समान भागमें मिलानेपर लोभ कषायवाले मनुष्योंका परिमाण होता है । अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख, शेष बहुभागको मायाकषायवालोंको मिले समान भागमें मिलानेपर माया कषायी

जीवप्रमाणसंख्यातरूपहीन संसारिराशियंसंस्थापिसि बहुभागे समभागो च उण्हमित्यादिसूत्रविधानदिंदमे लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्येगळ् तरल्पडुवुवु वाथवा स्वस्वकालमप्प द्वींद्रियादि विधानाऽऽनीतालपबहुत्वमनंतर्मुहूर्तमात्रमप्प लोभादिकषायोदयकालमनाश्रयिसि लोभादिकषायपरिणतजीवसंख्येगळ् तरल्पडुववल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुवुवल्लिदं तें दोडे इनितु कालदोळेत्तलानुमितु जीवंगळ् पडेयल्पडुवागळिनितु कालदोळेनितु जीवंगळ् पडेयल्पडुवुवेंदितु त्रैराशिकमं

माडि प्र=२१।फ १।३ इ=का= २१।८४२४ अपवर्तितलब्धं लोभकषायोदय-
४।६५६१

परिणतमनुष्यजीवंगळ प्रमाणमक्कु— १।३ ८४२४ मंते मायाकषायोदयपरिणत-
४।६५६१

मनुष्यजीवराशिप्रमाणमिदु १।३।६१२० क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणमिदु
४।६५६१

चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्या, तथा तिर्यग्गतौ देवनारकमनुष्यसंख्योनसंसारराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेन च लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या, अथवा अन्तर्मुहूर्तमात्रात् सामान्यकषायोदयकालात् द्वीन्द्रियादिविधानानीतं स्वस्वलोभादिकषायोदयकालमाश्रित्य लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या। तद्यथा—एतावति काले यद्येतावन्तो जीवा लभ्यन्ते तदा एतावति काले कियन्तो जीवा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र २१, फ १।३, ४,

इ २१, ८४२४ अपवर्तिते लब्धं लोभकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं भवति। १।३, ८४२४
६५६१ ४, ६५६१

तथा मायाकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं १।३, ६१२० क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणं
४, ६५६१

मनुष्योंका परिमाण आता है। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागको क्रोध कषायको मिले समान भागमें मिलानेपर क्रोधी मनुष्योंका परिमाण आता है। शेष अलग रखे एक भागको मान कषायको दिये समान भागमें मिलानेपर मान कषायी मनुष्योंका परिमाण आता है। ऐसे ही तिर्यंचोंमें जानना। विशेष इतना कि तिर्यंचोंमें तिर्यंच गतिके जीवोंकी संख्या जो देव नारक मनुष्योंकी राशिसे हीन संसारी जीवराशि परिमाण है, स्थापित करके उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देना चाहिए। शेष विधि पूर्ववत् जानना।

अथवा सामान्य कषायके उदयकाल अन्तर्मुहूर्त मात्रसे दोइन्द्रिय आदिकी विधिसे लाये गये अपने-अपने लोभ आदि कषायके उदयकालको लेकर लोभादि कषायरूप परिणत जीवोंकी संख्या लानी चाहिये। वह इस प्रकार है—

चारों कषायोंका काल जो अन्तर्मुहूर्तमात्र है, उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखना। शेष बहुभागके चार भाग करके चार जगह समान

१।३, ५८६४ / ४।६५६१ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणमिदु १।३, ५८३६ / ४।६५६१ मत्तं तिर्य्यग्गतियोळमंते किंचिदूनसंसारिराशियं फलराशियं माडि तत्तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणं तरल्पडुगुमल्लि तिर्य्यग्लोभकषायंगळु संदृष्टि १३।८४२४ / ४।६५६१ तिर्य्यग्मायाकषायिगळु १३।६१२० / ४।६५६१ तिर्य्यक् क्रोधकषायिगळु १३।५८६४ / ४।६५६१ तिर्य्यक् मानकषायिगळु १३।५८३६ / ४।६५६१ द्वींद्रियादि विधानदोळं तावल्यसंख्यातभागमात्रं भागहारमंते इल्लियुं जीव- ५
संख्यानयनदोळं कालसंचयप्रमाणमनाश्रयिसि जीवराशिप्रमाणानयनदोळमुमावल्यसंख्येयभागमात्रं

लोभ	माया	क्रोध	मान	
२१।८४२४ / ४।६५६१	२१।६१२० / ४।६५६१	२१।५८६४ / ४।६५६१	२१।५८३६ / ४।६५६१	नरकतिर्य्यंच काल
दे को १ / २१	मा २१।१६	या २१।१६	लो २१।६४	देव काल
ना २१६४	२१।१६	२१।१	२१।१	नारक काल

१०

१।३, ५८६४ / ४, ६५६१ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशि प्रमाणं १।३, ५८३६ / ४, ६५३१ । तथा तिर्यग्गतावपि किंचिदूनसंसारराशि फलराशि कृत्वा तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणमानेतव्यम् । तत्र तिर्यग्लोभकषायिणः १३— ८४२४ / ४, ६५६१ तिर्यग्मायाकषायवन्तः १३— । ६१२० / ४। ६५६१ तिर्यक्क्रोधकषायिणः १३—, ५८६४ / ४, ६५६१ तिर्यग्मानकषायिणः १३—, ५८३६ / ४, ६५६१ [द्वीन्द्रियादिविधानेन यथा आवल्यसंख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि

रूपसे देना चाहिए। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक १५
भागको अलग रख शेष बहुभागको समान रूपसे दिये एक भागमें मिलानेसे लोभ कषायके कालका परिमाण होता है। अलग रखे एक भागमें पुनः पूर्ववत् भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागको दूसरे समान भागमें मिलानेसे माया कषायके कालका परिमाण होता है। अलग रखे एक भागमें पूर्ववत् भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभाग को तीसरे समान भागमें मिलानेपर क्रोधका काल होता है। अलग रखे एक भागको चौथे समान २०
भागमें मिलानेपर मान कषायका काल होता है। अब यहाँ त्रैराशिक करना चाहिए—यदि चारों कषायोंके कालमें सब मनुष्य पाये जाते हैं, तो लोभ कषायके कालमें कितने मनुष्य पाये जायेंगे। यहाँ प्रमाण चारों कषायोंका काल, फलराशि सब मनुष्य, इच्छाराशि लोभ कषाय-

१. एतत् [ ] कोष्ठान्तर्गतः पाठो ब प्रतौ नास्ति।

भागहारमेंदितु सुमुक्त्यर्थमागि कृपेयिनाचार्य्यरुगळिदं आवलि असंख्यभज्जा एंदितु पेळल्पट्टुदु ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांत चक्रवर्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्व-प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळेकादश-कषायमार्गणा प्ररूपणामहाधिकारं निरूपितमाय्तु ।

जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहारः इति तु व्यक्तार्थमाचार्यैः आवलि असंखभज्जेत्युक्तं] ॥२९८॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु कषायमार्गणाप्ररूपणा नाम एकादशोऽधिकारः ॥११॥

का काल सो फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर जो लब्ध आये, उतने लोभ कषायवाले मनुष्य जानना । इसी तरह प्रमाण राशि तथा फलराशि पूर्वोक्त रखकर और माया, क्रोध तथा मानके कालको इच्छाराशि बनाकर लब्धराशि प्रमाण मायादि कषायवाले मनुष्योंकी संख्या होती है । इसी तरह तिर्यंचगतिमें कषायाविष्ट जीवोंकी संख्या जानना । अन्तर केवल इतना है कि यहाँ फलराशि तिर्यंच जीवोंकी संख्या प्रमाण रखना चाहिए । शेष विधि पूर्ववत् है ॥२९८॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से कषायमार्गणा प्ररूपणा नामक एकादश महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित

जैनधर्म-दर्शन, सिद्धान्त, कर्म एवं न्यायग्रन्थ

महाबन्ध (प्राकृत, हिन्दी) : भगवन्त भूतबली
सम्पा.-अनु. : पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर,
पं. फूलचन्द्र शास्त्री (भाग 1 से 7)

सर्वार्थसिद्धि (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य पूज्यपाद
सम्पा.-अनु. : पं. फूलचन्द्र शास्त्री

तत्त्वार्थराजवार्तिक (संस्कृत, हिन्दी) : भट्ट अकलंक
सम्पा.-अनु. : डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

तत्त्वार्थवृत्ति : आचार्य श्रुतसागर सूरि
सम्पा.-अनु. : डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

षड्दर्शनसमुच्चय (संस्कृत, हिन्दी) : आ. हरिभद्र सूरि
सम्पा.-अनु. : डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

गोम्मटसार, जीवकाण्ड (प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी)
आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भाग 1,2
सं.-अनु. : डॉ. आ.ने. उपाध्ये, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

गोम्मटसार, कर्मकाण्ड (प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी)
आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भाग 1,2
सं.-अनु. : डॉ. आ.ने. उपाध्ये, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

षट्खण्डागम-परिशीलन : पं. बालचन्द्र शास्त्री

सत्यशासनपरीक्षा (संस्कृत), मूल : आचार्य विद्यानन्द
सम्पा.-अनु. : डॉ. गोकुलचन्द्र जैन

पाहुडदोहा (अपभ्रंश, हिन्दी) : मुनि रामसिंह
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

समयसार (अँग्रेज़ी) : आचार्य कुन्दकुन्द
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

समीचीन जैन धर्म : पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

योगसारप्राभृत (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य अमितगति
सम्पा.-अनु. : पं. जुगलकिशोर मुख्तार

नयचक्र (प्राकृत, हिन्दी) : माइल्ल धवल
सम्पा.-अनु. : पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

पञ्चास्तिकायसंग्रह (प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी)
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द
सम्पा.-अनु. : पं. मन्नूलाल जैन, एडवोकेट

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003